Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १८० रुपये

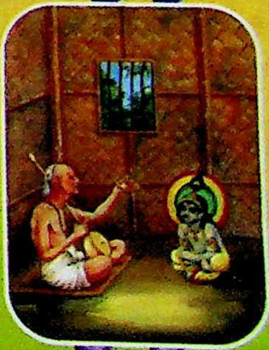

भक्तमाल-अङ्क

वर्ष ८७

संख्या १

गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,१५,०००)

'इतने गुन जामें सो संत'

इतने गुन जामें सो संत।
श्रीभागवत मध्य जस गावत, श्रीमुख कमलाकंत॥

हरिकौ भजन साधुकी सेवा, सर्वभूत पर दाया।
हिंसा, लोभ, दंभ, छल त्यागै, बिषसम देखै माया॥

सहनसील, आसय उदार अति, धीरजसहित बिबेकी।
सत्य बचन सबसों सुखदायक, गहि अनन्य ब्रत एकी॥

इंद्रीजित, अभिमान न जाके, करै जगतकों पावन।
भगवतरसिक तासुकी संगति तीनहुँ ताप नसावन॥

* कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखें।

एकवर्षीय शुल्क *
भारतमें १८० रु०
सजिल्द २०० रु०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंचवर्षीय शुल्क *
अजिल्द ९०० रु०
सजिल्द १००० रु०

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 40 (Rs.2200), पंचवर्षीय US$ 200 (Rs.11000) — Us Cheque Collection Charges $6 Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

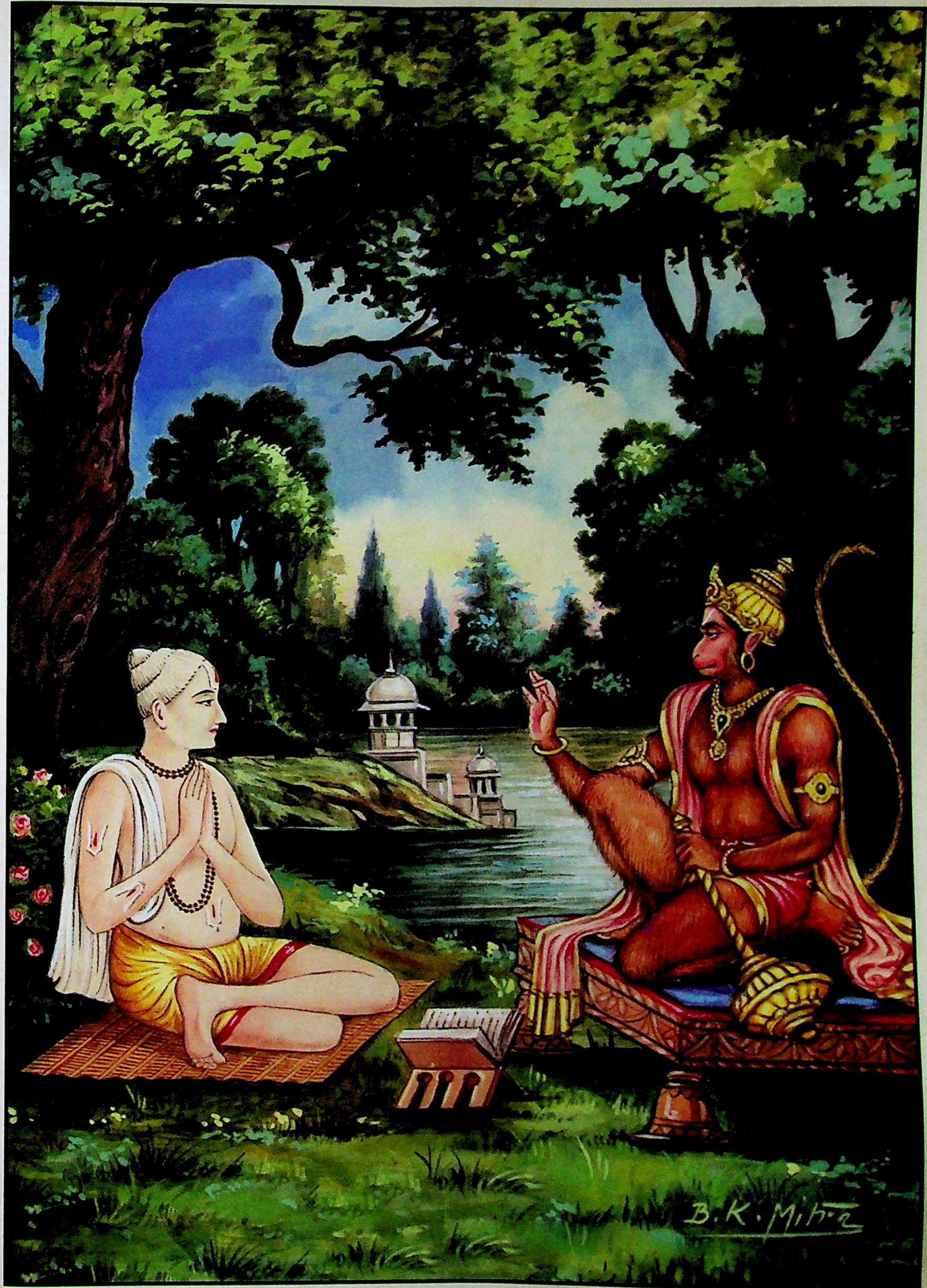

भक्तशिरोमणि श्रीतुलसीदासजीपर श्रीहनुमान्जीकी कृपा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

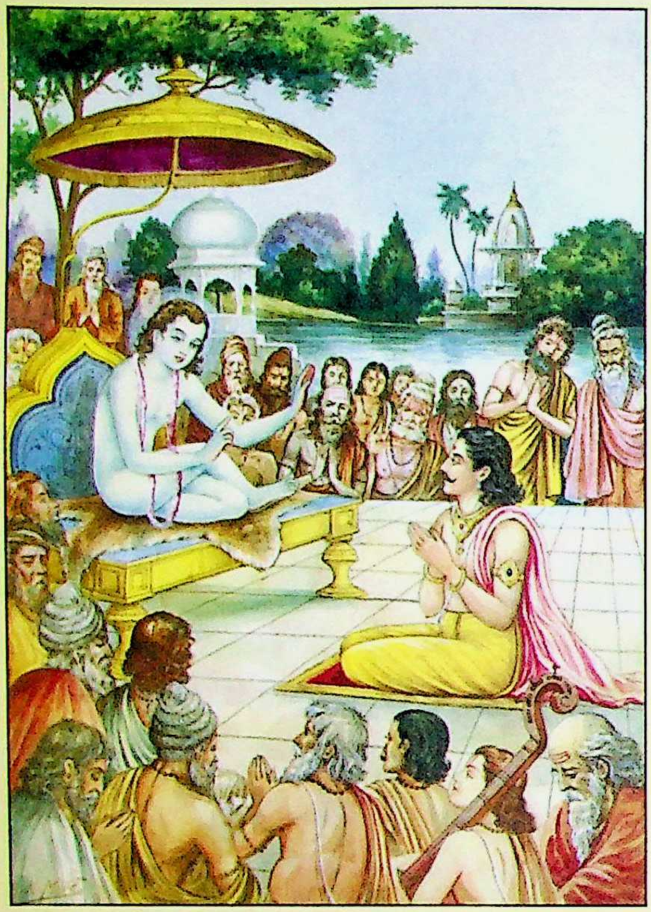

श्रीशुकदेवजी और राजा परीक्षित्

संकीर्तनके आचार्य देवर्षि नारद

भगवान् नृसिंहकी गोदमें भक्त प्रह्लाद

भक्त ध्रुवपर भगवान्का अनुग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

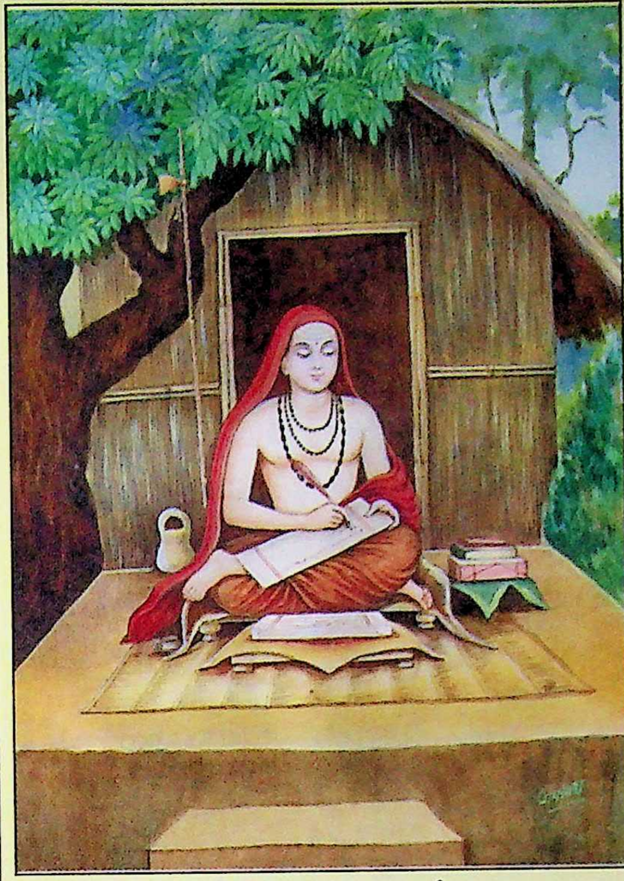

श्रीमदाद्यशंकराचार्य

श्रीवल्लभाचार्य

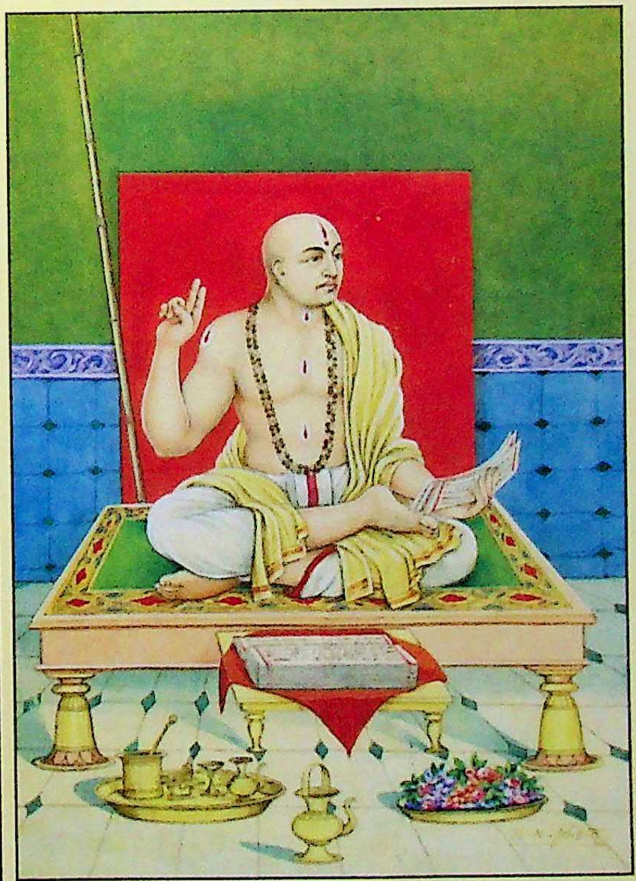

श्रीमध्वाचार्य

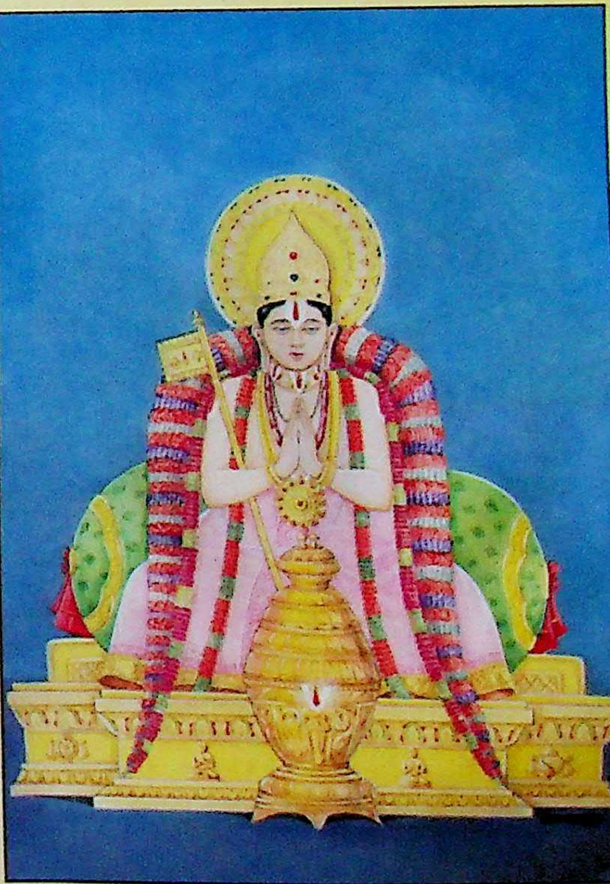

श्रीरामानुजाचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

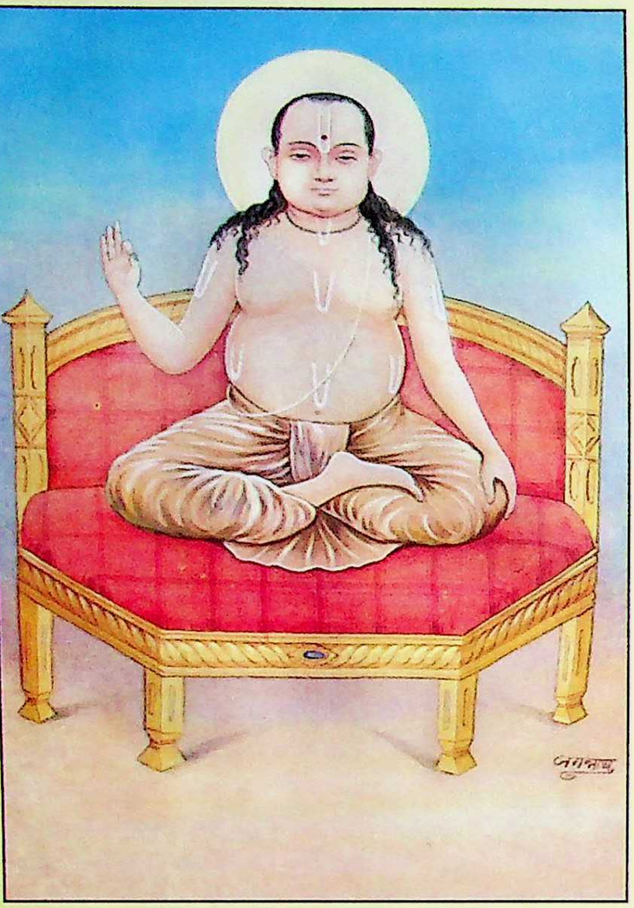

श्रीनिम्बार्काचार्य

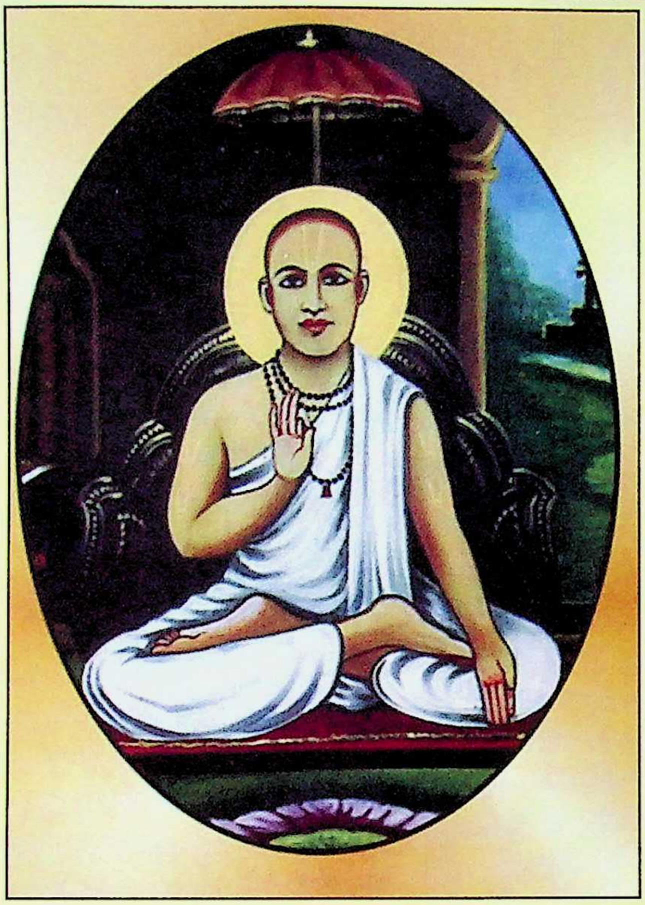

आचार्य श्रीविष्णुस्वामी

श्रीचैतन्यमहाप्रभुका प्रेमोन्माद

श्रीरामानन्दाचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

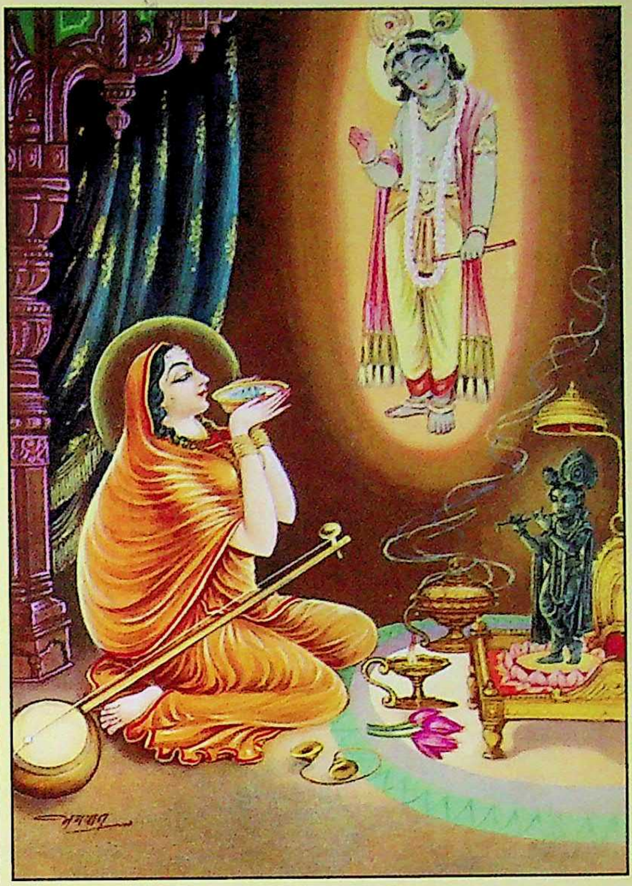

भक्तिमती मीराका विषपान

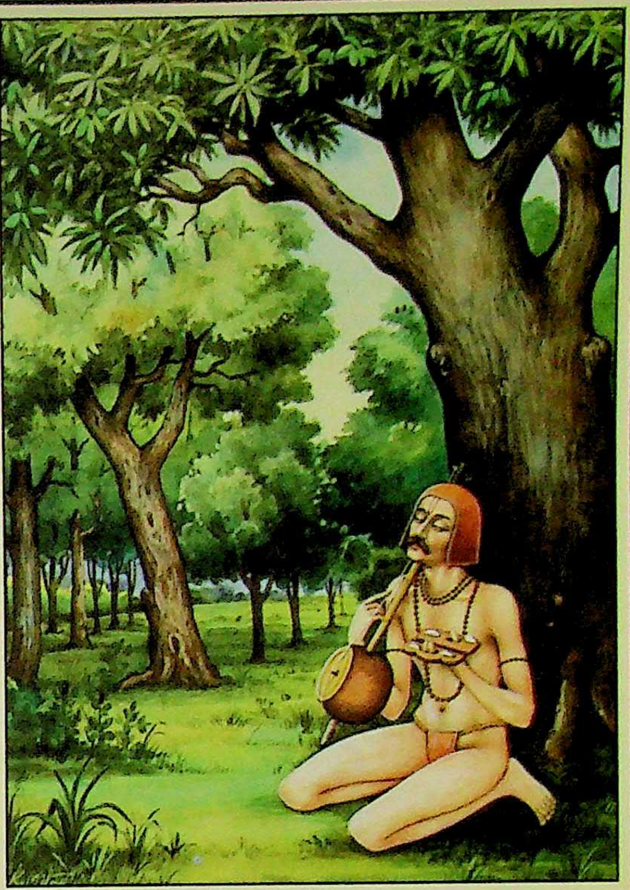

भक्त श्रीसूरदास

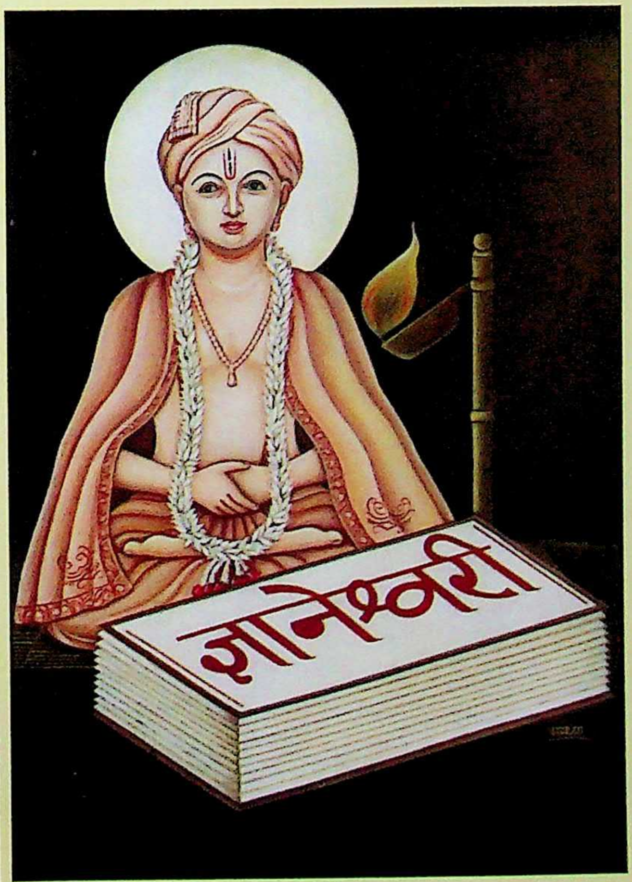

संत ज्ञानेश्वर

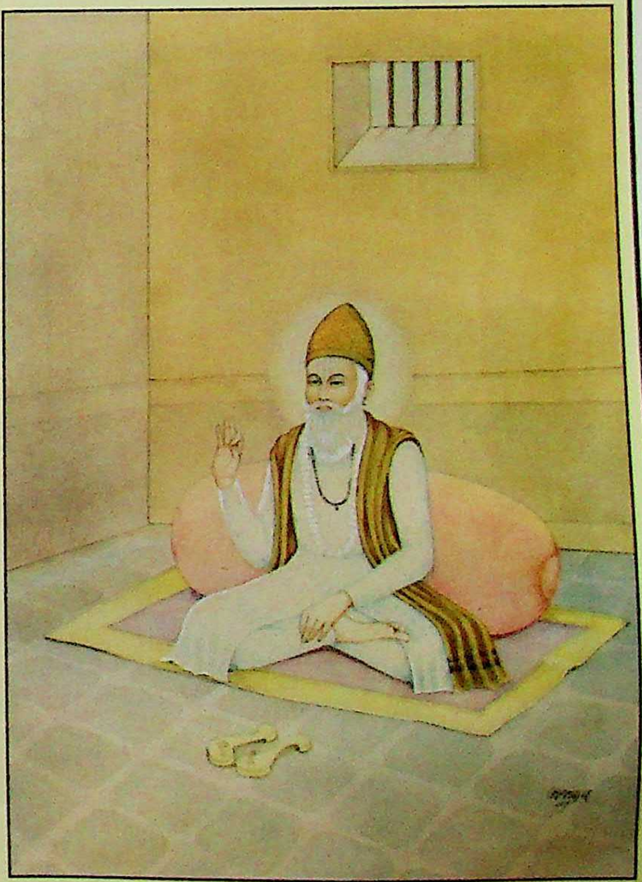

संत कबीरदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

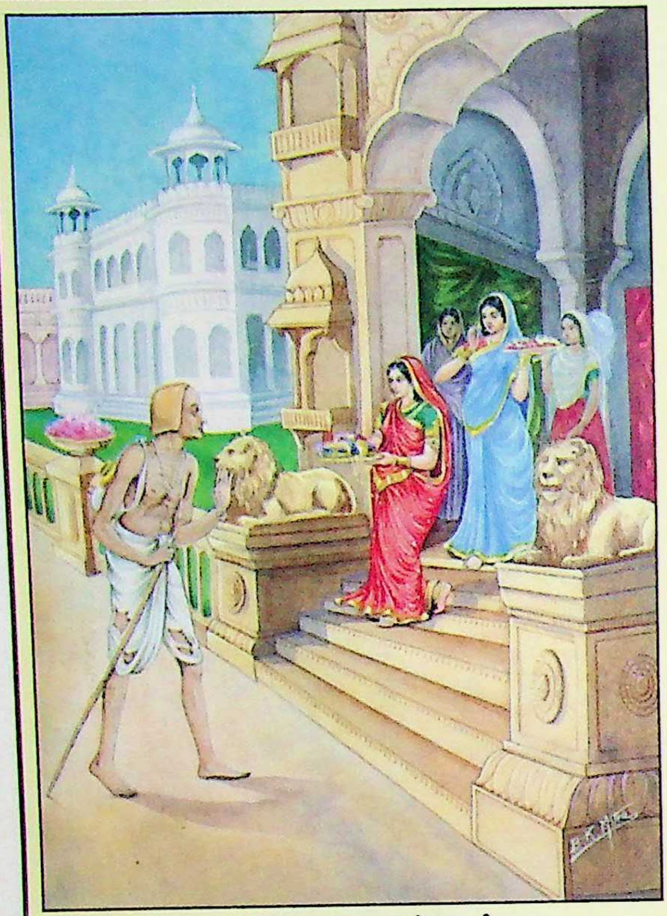

भक्त सुदामाका ऐश्वर्य

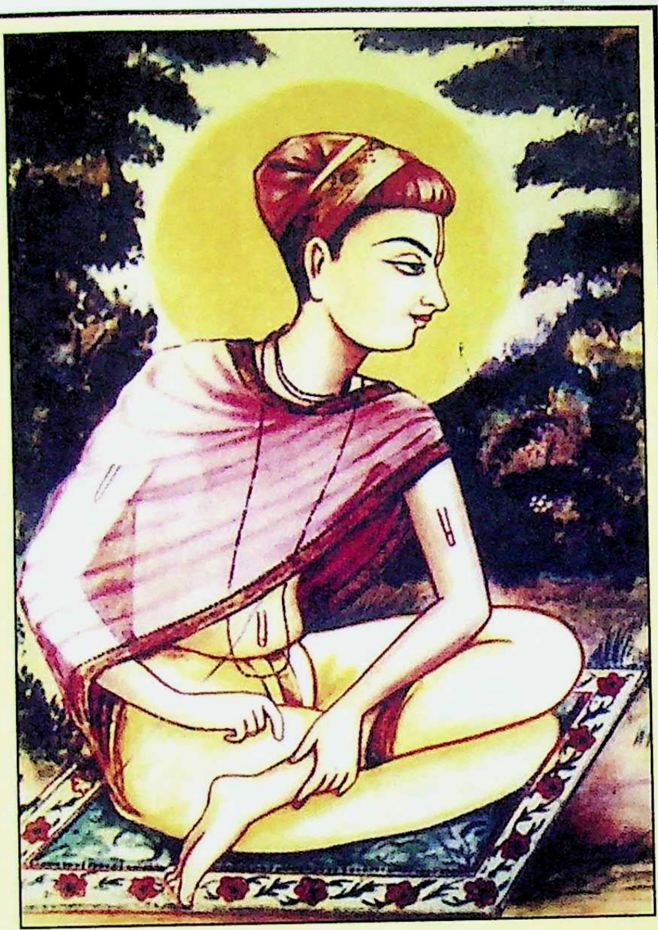

श्रीहितहरिवंशजी गोस्वामी

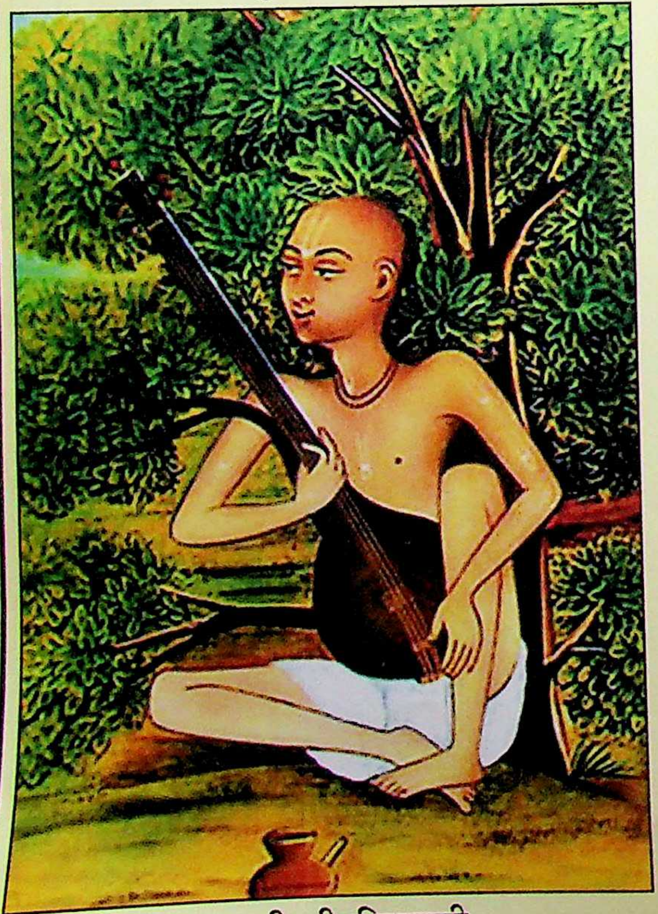

स्वामी श्रीहरिदासजी

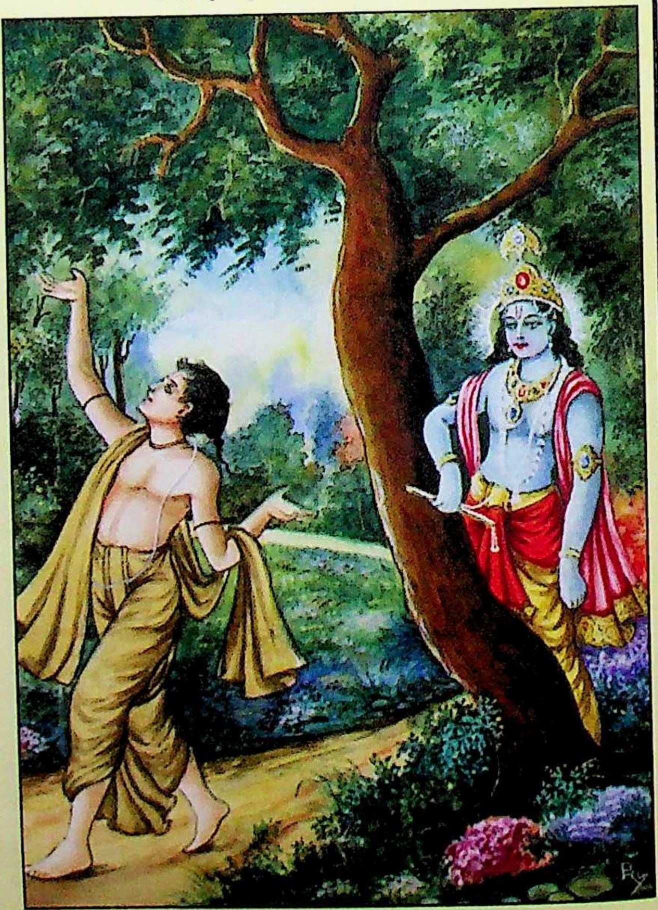

भक्त जयदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त बिल्वमंगल

श्रीशठकोपाचार्य

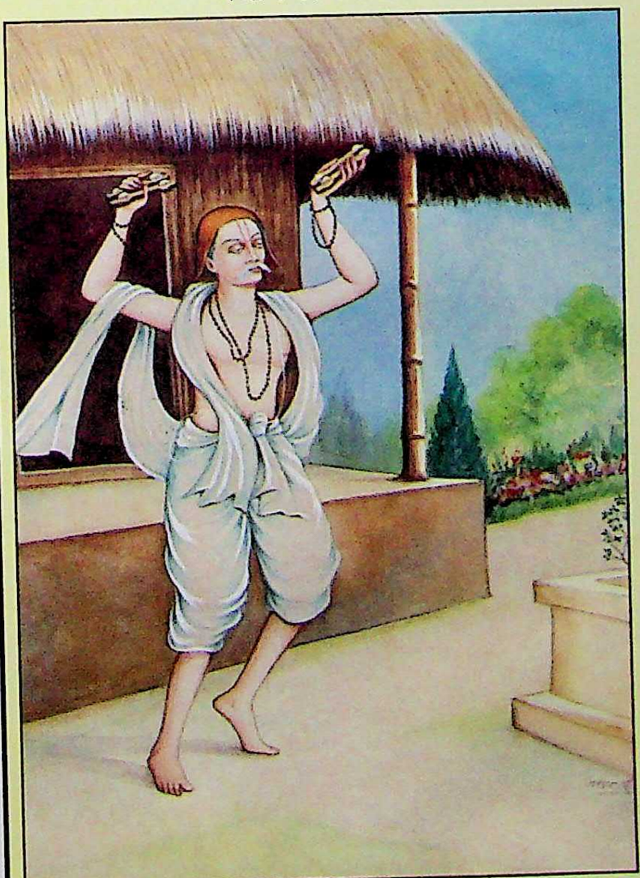

भक्त नरसीमेहता

संत नामदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

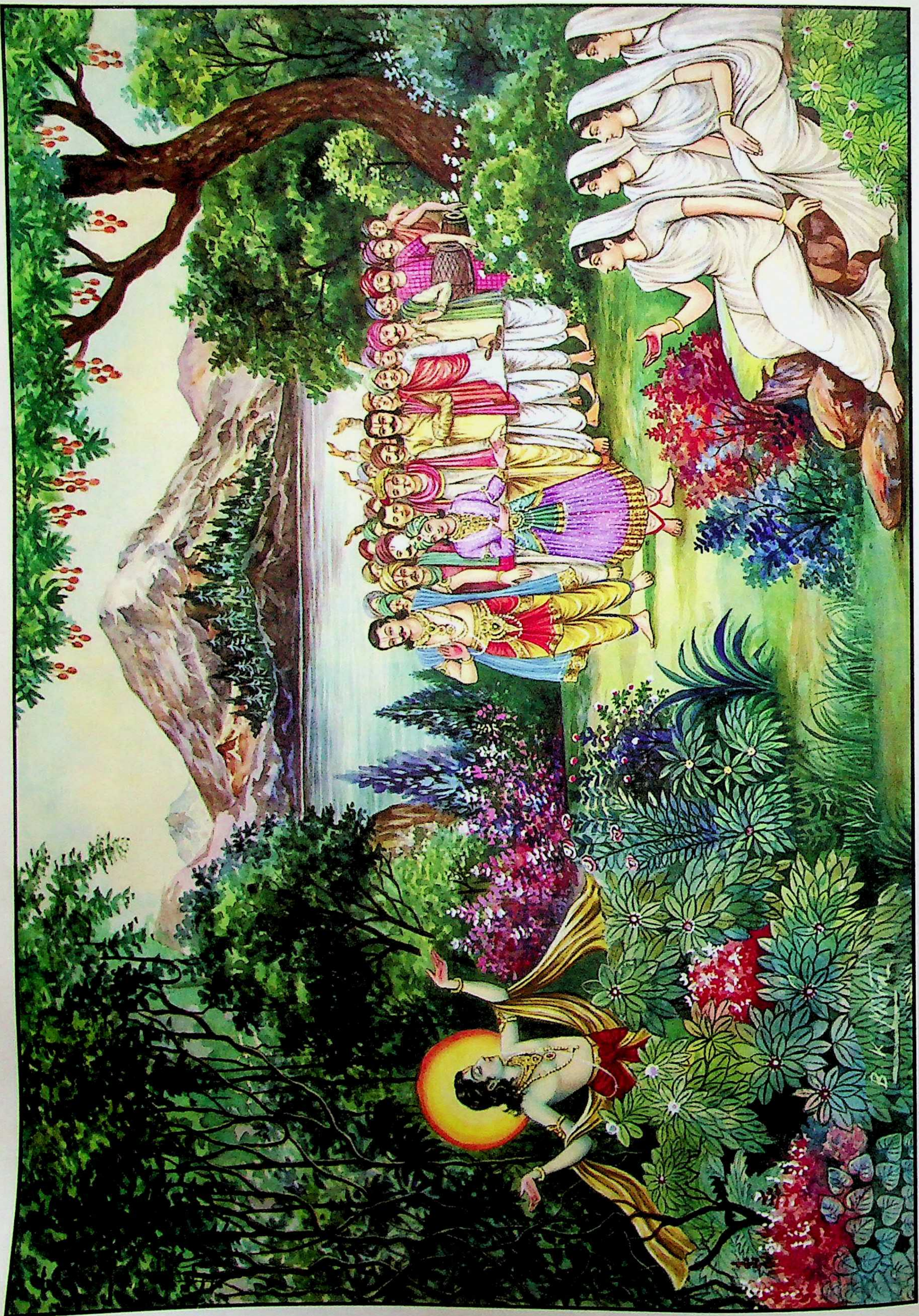

व्रजमण्डलके संकीर्तनमें महाभागवत श्रीउद्धवजीका प्राकट्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

Central Library
Gurukul Kangri University
Hardwar-249404 (U.A.)

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

वर्ष ८७ | गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०६९, श्रीकृष्ण-सं० ५२३८, जनवरी २०१३ ई० | संख्या १
पूर्ण संख्या १०३४

श्रीकृष्णकीर्तनोत्सवमें भक्त श्रीउद्धवजीका प्राकट्य

गोवर्धनाददूरेण वृन्दारण्ये सखीस्थले। प्रवृत्तः कुसुमाम्भोधौ कृष्णसङ्कीर्तनोत्सवः॥
वृषभानुसुताकान्तविहारे कीर्तनश्रिया। साक्षादिव समावृत्ते सर्वेऽनन्यदृशोऽभवन्॥
ततः पश्यत्सु सर्वेषु तृणगुल्मलताचयात्। आजगामोद्धवः स्रग्वी श्यामः पीताम्बरावृतः॥
गुञ्जामालाधरो गायन् वल्लवीवल्लभं मुहुः। तदागमनतो रेजे भृशं सङ्कीर्तनोत्सवः॥
चन्द्रिकागमतो यद्वत् स्फाटिकाट्टालभूमणिः। अथ सर्वे सुखाम्भोधौ मग्नाः सर्वं विसस्मरुः॥

गोवर्धनके निकट वृन्दावनके भीतर कुसुमसरोवरपर जो सखियोंकी विहारस्थली है, वहाँ ही श्रीकृष्णकीर्तनका उत्सव आरम्भ हुआ। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी तथा उनके प्रियतम श्रीकृष्णकी वह लीलाभूमि जब साक्षात् संकीर्तनकी शोभासे सम्पन्न हो गयी, उस समय वहाँ रहनेवाले सभी भक्तजन एकाग्र हो गये; उनकी दृष्टि, उनके मनकी वृत्ति कहीं अन्यत्र न जाती थी। तदनन्तर सबके देखते-देखते वहाँ फैले हुए तृण, गुल्म और लताओंके समूहसे प्रकट होकर श्रीउद्धवजी सबके सामने आये। उनका शरीर श्यामवर्ण था, उसपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। वे गलेमें वनमाला और गुंजाकी माला धारण किये हुए थे तथा मुखसे बारम्बार गोपीवल्लभ श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंका गान कर रहे थे। उद्धवजीके आगमनसे उस संकीर्तनोत्सवकी शोभा कई गुनी बढ़ गयी। जैसे स्फटिकमणिकी बनी हुई अट्टालिकाकी छतपर चाँदनी छिटकनेसे उसकी शोभा बहुत बढ़ जाती है। उस समय सभी लोग आनन्दके समुद्रमें निमग्न हो अपना सब कुछ भूल गये, सुध-बुध खो बैठे। [श्रीमद्भागवत-माहात्म्य]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_2_1_Front

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्यों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ८७वें वर्ष—सन् २०१३ का यह विशेषाङ्क *'भक्तमाल-अङ्क'* आपलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४८० पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये, जिससे जाँचकर आपके सुविधानुसार राशिकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो उक्त वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहयोगी भी हो सकेंगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा अपनी सदस्य-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पता एवं पिन-कोड आवश्यक है। अतः अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*'कल्याण'* एवं *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

'कल्याण' के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)
९	शक्ति-अङ्क	१५०
१०	योगाङ्क	१३०
१२	संत-अङ्क	१८०
१९	सं० पद्मपुराण	२००
२०	गो-अङ्क	१३०
२१	सं० मार्कण्डेयपुराण	७५
२१	सं० ब्रह्मपुराण	१००
२३	उपनिषद्-अङ्क	१५०
२५	सं० स्कन्दपुराण	२३०
२६	भक्त-चरिताङ्क	१६०
२८	सं० नारदपुराण	१५०
२९	संतवाणी-अङ्क	१५०
३०	सत्कथा-अङ्क	१४०
३१	तीर्थाङ्क	१५०
३४	सं० देवीभागवत (मोटा टाइप)	१७०

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)
३५	सं० योगवासिष्ठ	१२०
३६	सं०शिवपुराण (बड़ा टाइप)	१५०
३७	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१७५
३९	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	१२०
४३	परलोक और पुनर्जन्माङ्क	१५०
४४-४५	श्रीअग्निपुराण (सानुवाद)	१५०
४४-४५	गर्गसंहिता [भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	११०
४५	नरसिंहपुराण-सानुवाद	७०
४८	श्रीगणेश-अङ्क	१००
४९	श्रीहनुमान-अङ्क	१००
५१	सं० वाराहपुराण	७५
५३	सूर्याङ्क	८०

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)
५६	श्रीवामनपुराण	१९०
५८-५९	श्रीमत्स्यमहापुराण-सानुवाद	२००
६६	सं० भविष्यपुराण	१२०
६७	शिवोपासनाङ्क	१००
६९	गोसेवा-अङ्क	१००
७१	कूर्मपुराण-सानुवाद	१००
७२	भगवल्लीला-अङ्क	६५
७३	वेद-कथाङ्क	१००
७४	सं० गरुडपुराण	१२०
७५	आरोग्य-अङ्क (संवर्धित सं०)	१५०
७७	भगवत्प्रेम-अङ्क	८५
७९	देवीपुराण [महाभागवत] (सानुवाद)-शक्तिपीठाङ्क	९०
८२	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध)	१००
८३	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (उत्तरार्द्ध)	१००

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभागसे प्राप्य हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

'श्रीभक्तमाल-अङ्क' की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-चित्रका मैटर	११
२-भगवद्भक्तोंद्वारा की गयी प्रार्थना	२१
३-भक्त और भगवान्	२५
४-भक्तमाल—एक परिचय (राधेश्याम खेमका)	२७
भक्तमाल और भक्तिरसबोधिनी	
५-श्रीनाभादासजीकृत भक्तमालका मंगलाचरण	३७
६-श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीकाका मंगलाचरण	३७
७-भक्तिरसबोधिनी टीकाका नामस्वरूप-वर्णन	३८
८-श्रीभक्तिदेवीका शृंगार	३८
९-भक्तिरसबोधिनी टीकाकी महिमा	३८
१०-भक्तमालकी महिमा	३९
११-संतसंगके प्रभावका वर्णन	३९
१२-भक्तमाल-स्वरूपवर्णन	४०
१३-भक्तमाल-माहात्म्यवर्णन	४०
१४-भक्तमालके मंगलाचरणकी भक्तिरसबोधिनी टीका	४०
१५-भक्तमालकी रचनाके लिये श्रीनाभाजीको आज्ञा प्राप्त होना	४१
१६-श्रीनाभाजीका चरित्र-वर्णन	४२
भक्तमालका प्रारम्भ	
१७-चौबीस अवतारोंकी कथा	४३
१-मत्स्यावतार	४३
२-वराहावतार	४४
३-कमठ (कच्छप)-अवतार	४४
४-श्रीनृसिंहावतार	४४
५-वामनावतार	४५
६-परशुरामावतार	४६
७-श्रीरामावतार	४६
८-श्रीकृष्णावतार	४६
९-श्रीबुद्धावतार	४६
१०-कल्कि-अवतार	४६
११-श्रीव्यासावतार	४७
१२-पृथु-अवतार	४७
१३-श्रीहरि-अवतार	४७
१४-श्रीहंसावतार	४८
१५-मन्वन्तरावतार	४८
१६-यज्ञावतार	४८
१७-श्रीऋषभ-अवतार	४८
१८-श्रीहयग्रीव-अवतार	४८
१९-ध्रुवको वर देनेवाले श्रीहरि	४८
२०-श्रीधन्वन्तरि	४९
२१-श्रीबदरीपति (नर-नारायण)	४९
२२-श्रीदत्तात्रेय-अवतार	४९
२३-श्रीकपिलदेव-अवतार	४९
२४-श्रीसनकादि-अवतार	४९
१८-श्रीरामजीके चरणचिह्न	५०
१९-द्वादश प्रधान भक्त	५२
१-श्रीब्रह्माजी	५२
२-देवर्षि नारद	५२
३-श्रीशंकरजी	५३
४-श्रीसनकादि	५४
५-श्रीकपिलदेवजी	५४
६-श्रीमनुजी	५४
७-श्रीनरहरिदास (प्रह्लाद)	५५
८-योगिराज राजा जनक	५५
९-श्रीभीष्म पितामहजी	५५
१०-राजा बलि	५६
११-महात्मा शुकदेव	५६
१२-श्रीयमराजजी	५६
१३-अजामिलकी कथा	५७
२०-षोडश पार्षद [विष्वक्सेन, जय, विजय, प्रबल, बल, नन्द, सुनन्द, सुभद्र, भद्र, चण्ड, प्रचण्ड, कुमुद, कुमुदाक्ष, शील, सुशील और सुषेण]	५८
२१-हरिवल्लभ (भगवान्के प्रिय भक्त)	५८
१-श्रीकमला (श्रीलक्ष्मीजी)	५९
२-श्रीगरुड़जी	५९
३-सुनन्द आदि	५९
४-श्रीहनुमान्जी	५९
५-श्रीजाम्बवान्जी	६०
६-श्रीसुग्रीवजी	६०
७-श्रीविभीषणजी	६१
८-भक्तिमती शबरी	६२
९-श्रीजटायुजी	६४
१०-भक्तराज ध्रुव	६५
११-श्रीउद्धवजी	६५
१२-श्रीअम्बरीषजी	६५
१३-विदुर-विदुरानी	७१
१४-श्रीअक्रूरजी	७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या

१५- श्रीसुदामाजी ७३
१६- श्रीचन्द्रहासजी ७४
१७- श्रीचित्रकेतुजी ७८
१८- गज-ग्राह ७९
१९- भक्त पाण्डव ७९
२०- महर्षि मैत्रेयजी ७९
२१- श्रीकुन्तीजी ७९
२२- श्रीद्रौपदीजी ८०

२२-श्रीहरिध्याननिष्ठ भक्तगण ८२

१-नौ योगीश्वर ८२
[कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन]
२- श्रीश्रुतदेवजी ८३
३- श्रीअंगजी ८४
४- श्रीमुचुकुन्दजी ८४
५- श्रीप्रियव्रतजी ८५
६- श्रीपृथुजी ८६
७-महाराज परीक्षित् ८६
८- श्रीशेषजी ८७
९- श्रीसूतजी ८७
१०-महाशाल श्रीशौनकजी ८७
११- श्रीप्रचेतागण ८८
१२- श्रीशतरूपाजी ८८
१३- त्रयसुता ८८
१४- श्रीसुनीतिजी ८८
१५- श्रीसतीजी ८८
१६- श्रीमदालसाजी ८९
१७- यज्ञपत्नियाँ ९०
१८-महाभाग्यवती व्रजगोपियाँ ९१

२३-प्रभुप्राप्तिके मार्गका अनुसरण करनेवाले भक्त ९२

१- श्रीप्राचीनबर्हिजी ९२
२- श्रीसत्यव्रतजी ९२
३-राजा रहूगण और जड़भरतजी ९२
४- श्रीसगरजी ९३
५- श्रीभगीरथजी ९४
६-महर्षि वाल्मीकि ९४
७-श्वपच भक्त वाल्मीकिजी ९५
८- श्रीमिथिलेशजी ९७
९- श्रीरुक्मांगदजी ९७
१०- श्रीरुक्मांगदजीकी पुत्री ९९
११-राजा हरिश्चन्द्र आदि परोपकारी भक्त ९९
१२-राजर्षि भरत १००
१३- श्रीदधीचिजी १००
१४- भक्त सुधन्वा १००
१५- भक्त सुरथ १०२
१६-महाराज शिबि १०२

विषय	पृष्ठ-संख्या

१७-बलिपत्नी श्रीविन्ध्यावलीजी १०३
१८- श्रीनीलध्वजजी १०३
१९- भक्त मयूरध्वज एवं ताम्रध्वज १०४
२०- श्रीअलर्कजी १०६

२४-भगवान्की मायाको जीत लेनेवाले भक्त १०६

१- महर्षि ऋभु १०७
२- श्रीइक्ष्वाकुजी १०७
३- श्रीऐलजी (पुरूरवा) १०७
४- श्रीगाधिजी १०७
५-महाराज रघु १०८
६- श्रीरयजी १०९
७-राजर्षि गय १०९
८- श्रीशतधन्वाजी १०९
९- श्रीअमूर्तजी ११०
१०-महाराज रन्तिदेव ११०
११-गुरुभक्त उत्तंक १११
१२- श्रीभूरिश्रवाजी ११२
१३-महर्षि देवल ११२
१४- श्रीवैवस्वत मनुजी ११२
१५-राजर्षि नहुषजी ११३
१६-राजर्षि ययाति ११३
१७-महाराज दिलीप ११४
१८- श्रीपूरुजी ११४
१९- श्रीयदुजी ११४
२०- श्रीगुह निषादजी ११५
२१- श्रीमान्धाताजी ११६
२२- श्रीपिप्पलादजी ११६
२३- श्रीनिमिजी ११७
२४- श्रीभरद्वाजजी ११८
२५- श्रीदक्षजी ११८
२६-महर्षि श्रीशरभंगजी ११८
२७- श्रीसंजयजी ११९
२८- श्रीशमीकजी ११९
२९- श्रीउत्तानपादजी ११९
३०- श्रीयाज्ञवल्क्यजी ११९

२५-राजर्षि निमि और नौ योगीश्वर १२०

[१-कवि, २-हरि, ३-अन्तरिक्ष, ४-प्रबुद्ध, ५-पिप्पलायन, ६-आविर्होत्र, ७-द्रुमिल, ८-चमस और ९-करभाजन]

२६-नवधाभक्तिके आचार्य १२१

१- श्रीपरीक्षित्जी १२१
२- श्रीशुकदेवजी १२२
३- श्रीप्रह्लादजी १२२
४- भगवती श्रीलक्ष्मीजी १२३
५- श्रीपृथुजी १२४
६- श्रीअक्रूरजी १२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
७-श्रीहनुमान्जी	१२५
८-श्रीअर्जुनजी	१२५
९-श्रीबलिजी	१२६
२७-भगवत्प्रसादके तत्त्वको जाननेवाले श्रेष्ठ भक्त [शंकर, शुकदेव, सनकादिक, कपिल, नारद, हनुमान्, विष्वक्सेन, प्रह्लाद, बलि, भीष्म, अर्जुन, ध्रुव, अम्बरीष, विभीषण, अक्रूर और उद्धव]	१२७
२८-भक्ति तथा ज्ञानके प्रकाशक आचार्य	१२७
१-महर्षि पुलह	१२८
२-महर्षि अगस्त्य	१२८
३-महर्षि पुलस्त्य	१२९
४-महर्षि च्यवन	१२९
५-सौभरि	१३०
६-महर्षि वसिष्ठजी	१३१
७-श्रीकर्दमजी	१३१
८-श्रीअत्रिजी	१३२
९-श्रीऋचीकजी	१३२
१०-श्रीगर्गजी	१३२
११-श्रीगौतमजी	१३२
१२-व्यासशिष्यगण	१३२
१३-श्रीलोमशजी	१३३
१४-श्रीभृगुजी	१३३
१५-श्रीदाल्भ्यजी	१३४
१६-श्रीअंगिराजी	१३४
१७-श्रीशृंगी ऋषिजी	१३४
१८-श्रीमाण्डव्यजी	१३५
१९-श्रीविश्वामित्रजी	१३५
२०-श्रीदुर्वासाजी	१३६
२१-अट्ठासी हजार ऋषिगण	१३६
२२-श्रीजाबालिजी	१३६
२३-महर्षि जमदग्नि	१३६
२४-श्रीमायादर्शजी (मार्कण्डेयजी)	१३७
२५-श्रीकश्यपजी	१३८
२६-श्रीपर्वतजी	१३८
२७-श्रीपराशरजी	१३८
२९-अठारह पुराण [१-ब्रह्म, २-विष्णु, ३-शिव, ४-लिंग, ५-पद्म, ६-स्कन्द, ७-वामन, ८-मत्स्य, ९-वाराह, १०-अग्नि, ११-कूर्म, १२-गरुड, १३-नारद, १४-भविष्य, १५-ब्रह्मवैवर्त, १६-मार्कण्डेय, १७-ब्रह्माण्ड तथा १८-श्रीमद्भागवत]	१३८
३०-अठारह स्मृतियाँ और उनके रचयिता आचार्य	१३९
१-मनुस्मृति	१४०
२-अत्रिस्मृति	१४०
३-वैष्णवधर्मशास्त्र	१४०
४-हारीतस्मृति	१४०
५-यमस्मृति	१४०
६-याज्ञवल्क्यस्मृति	१४०
७-अंगिरास्मृति	१४०
८-शनैश्चरस्मृति	१४१
९-संवर्तस्मृति	१४१
१०-कात्यायनस्मृति	१४१
११-शाण्डिल्यस्मृति	१४१
१२-गौतमस्मृति	१४१
१३-वसिष्ठस्मृति	१४१
१४-दक्षस्मृति	१४१
१५-बृहस्पतिस्मृति	१४१
१६-शातातपस्मृति	१४२
१७-पराशरस्मृति	१४२
१८-क्रतुस्मृति	१४२
३१-श्रीरामसचिव (श्रीरामके मन्त्रिगण) [धृष्टि, विजय, जयन्त, राष्ट्रवर्धन, सुराष्ट्र, अशोक, धर्मपालक और सुमन्त्र]	१४२
३२-श्रीराम-सहचरवर्ग	१४४
१-सूर्यपुत्र सुग्रीव	१४४
२-बालिपुत्र अंगद	१४४
३-केशरीपुत्र हनुमान्जी	१४५
४-श्रीदधिमुखजी	१४५
५-श्रीजाम्बवान्जी	१४५
६-अन्य सहचर	१४५
३३-नौ नन्दजी [धरानन्द, ध्रुवनन्द, उपनन्द, अभिनन्द, नन्द, सुनन्द, कर्मानन्द, धर्मानन्द और बल्लभ]	१४५
३४-भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाके सहचर—व्रजवासीगण	१४६
१-नन्दपत्नी माता यशोदा	१४७
२-जगज्जननी श्रीराधा	१४८
३-अष्टसखी	१४९
४-श्रीकृष्णके व्रजसखा	१४९
३५-श्रीकृष्णके षोडश सखा [रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकण्ठ, मधुवर्त, रसाल, विशाल, प्रेमकन्द, मकरन्द, सदानन्द, चन्द्रहास, पयद, बकुल, रसदान, शारद और बुद्धिप्रकाश]	१५०
३६-सप्तद्वीपके भक्त [जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप, पुष्करद्वीप, लोकालोक पर्वत और कंचनधर टापू (सुवर्णमयी भूमि)]	१५०
३७-जम्बूद्वीपके भक्त	१५१
३८-श्वेतद्वीपके भक्त	१५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
३९-अष्टनाग	१५३
[इलापत्र, अनन्त, पद्म, शंकु, अंशुकम्बल, वासुकि, कर्कोटक और तक्षक]	
४०-चतुःसम्प्रदायाचार्य	१५४
१-श्रीरामानुजाचार्यजी	१५५
२-श्रीरामानन्दाचार्यजी	१५५
३-आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी	१५५
४-श्रीमध्वाचार्यजी	१५६
५-श्रीनिम्बार्काचार्यजी	१५६
४१-श्रीसम्प्रदायके आचार्य	१५७
१-श्रीविष्वक्सेनजी	१५८
२-श्रीशठकोपाचार्य	१५८
३-श्रीबोपदेवजी	१५८
४-श्रीनाथमुनिजी	१५९
५-श्रीपुण्डरीकाक्षजी	१५९
६-श्रीराममिश्रजी	१५९
७-श्रीयामुनाचार्यजी	१५९
४२-श्रीरामानुजाचार्यजी एवं श्रीकूरेशाचार्यजी	१६०
४३-चार महान् सन्त	१६२
१-श्रीश्रुतिप्रज्ञजी	१६३
२-श्रीश्रुतिदेवजी	१६३
३-श्रीश्रुतिधामजी	१६३
४-श्रीश्रुतिउदधिजी	१६३
४४-श्रीलालाचार्यजी	१६४
४५-श्रीपादपद्मजी	१६६
४६-श्रीरामानुजसिद्धान्तके मतावलम्बी अन्य आचार्यगण	१६७
१-श्रीदेवाचार्यजी	१६७
२-श्रीहर्यानन्दजी	१६७
३-श्रीराघवानन्दजी	१६७
४-श्रीरामानन्दाचार्यजी	१६८
४७-श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी और उनके द्वादश प्रधान शिष्य	१६८
[१-श्रीअनन्तानन्दजी, २-श्रीकबीरदासजी, ३-श्रीसुखानन्दजी, ४-श्रीसुरसुरानन्दजी, ५-श्रीपद्मावतीजी, ६-श्रीनरहरियानन्दजी, ७-श्रीपीपाजी, ८-श्रीभावानन्दजी, ९-श्रीरैदासजी, १०-श्रीधन्नाजी, ११-श्रीसेनजी तथा १२-श्रीसुरसुरानन्दजीकी पत्नी]	
१-श्रीरामानन्दाचार्यजी	१६८
२-श्रीपद्मावतीजी	१६९
३-श्रीभावानन्दजी	१६९
४८-श्रीअनन्तानन्दजी और उनकी शिष्यपरम्परा	१७०
१-श्रीअनन्तानन्दजी	१७०
२-श्रीयोगानन्दजी	१७१
३-श्रीगयेशजी	१७१
४-श्रीकर्मचन्दजी	१७२
५-श्रीसारीरामदासजी	१७३
६-श्रीरंगजी	१७३
४९-पयहारी श्रीकृष्णदासजी	१७४
५०-श्रीपयहारीजीके शिष्यगण	१७६
१-श्रीकील्हदेवजी	१७६
२-श्रीअग्रदेवजी (श्रीअग्रदासजी)	१७६
३-श्रीचरणदासजी	१७६
४-श्रीहठीनारायणदासजी	१७६
५-श्रीसूरजदासजी	१७७
६-श्रीटीलाजी	१७७
७-श्रीगंगादेवीजी	१७८
८-श्रीरंगदासजी (श्रीरंगारामजी)	१७८
५१-श्रीकील्हदेवजी	१७८
५२-श्रीअग्रदासजी	१८०
५३-श्रीशंकराचार्यजी	१८१
५४-श्रीनामदेवजी	१८४
५५-श्रीजयदेवजी	१९१
५६-श्रीश्रीधर स्वामीजी	१९८
५७-श्रीबिल्वमंगलजी	२००
५८-श्रीविष्णुपुरीजी (श्रीविष्णुस्वामीजी)	२०४
५९-श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके अनुयायी सन्तगण	२०५
१-श्रीज्ञानदेवजी	२०६
२-श्रीत्रिलोचनजी	२०६
३-श्रीमद्वल्लभाचार्यजी	२०८
६०-कलियुगमें प्रेमकी प्रधानता प्रकट करनेवाले भक्त	२१०
१-श्रीकुलशेखरजी	२११
२-श्रीलीलानुकरणजी एवं श्रीरतिवन्तीजी	२११
६१-भक्तिसे भगवान्‌को वशमें करनेवाले भक्त	२१२
१-भगवत्प्रसादनिष्ठ राजा	२१२
२-श्रीकर्माबाई	२१४
३-श्रीसिलपिल्लेकी भक्त—दो कन्याएँ	२१४
४-जमींदारकन्याकी कथा	२१५
५-राजा-कन्याकी कथा	२१५
६-अपने पुत्रको विष देनेवाली दो भक्तिमती नारियाँ	२१७
६२-सन्तवेशका आदर करनेवाले भक्त	२१९
१-सन्तवेशनिष्ठ हंसोंकी कथा	२२०
२-सदाव्रती महाजनकी कथा	२२०
६३-भगवान्‌द्वारा भक्तोंकी वाणीको सत्य करना	२२२
१-श्रीभुवनसिंहजीकी कथा	२२२
२-श्रीदेवाजी पण्डाकी कथा	२२४
३-श्रीकामध्वजजी	२२५
४-श्रीजयमलजी	२२५
५-श्रीग्वाल-भक्तजी	२२७
६-श्रीश्रीधर स्वामीजी	२२७
६४-भगवान्‌का भक्तप्रेम	२२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या

१-निष्किंचन भक्त श्रीहरिपालजी २२८
२-श्रीसाक्षीगोपालजीके भक्त २२९
३-श्रीरामदासजी २३१
६५-**भक्तके वश भगवान्** २३२
१-श्रीजसू स्वामीजी २३३
२-श्रीनन्ददासजी वैष्णवसेवी २३३
३-श्रीअल्हजी २३४
४-श्रीवारमुखीजी २३४
६६-**ब्राह्मण-दम्पतीका भगवद्विश्वास** २३५
६७-**वेषनिष्ठ एक राजा** २३६
६८-**अन्तर्निष्ठ नरपाल** २३७
६९-**गुरुनिष्ठ शिष्य** २३८
७०-**श्रीरैदासजी** २३८
७१-**श्रीकबीरदासजी** २४२
७२-**श्रीपीपाजी** २४७
७३-**श्रीधन्नाजी** २५८
७४-**श्रीसेनजी** २५९
७५-**श्रीसुखानन्दजी** २६१
७६-**श्रीसुरसुरानन्दजी** २६२
७७-**श्रीसुरसुरीजी** २६३
७८-**श्रीनरहरियानन्दजी** २६४
७९-**श्रीपद्मनाभजी** २६५
८०-**श्रीतत्त्वाजी, श्रीजीवाजी** २६६
८१-**श्रीमाधवदासजी** २६८
८२-**श्रीरघुनाथदास गोस्वामीजी** २७२
८३-**श्रीनित्यानन्दजी, श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी** २७३
८४-**श्रीसूरदासजी** २७५
८५-**श्रीपरमानन्ददासजी** २७६
८६-**श्रीकेशवभट्टजी** २७७
८७-**श्रीश्रीभट्टजी** २७९
८८-**श्रीहरिव्यासदेवजी** २८०
८९-**श्रीदिवाकरजी** २८१
९०-**गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी** २८२
९१-**श्रीत्रिपुरदासजी** २८३
९२-**गोस्वामी श्रीविट्ठलेशसुतजी** २८४
९३-**श्रीकृष्णदासजी** २८५
९४-**श्रीवर्धमानजी तथा श्रीगंगलजी** २८९
९५-**श्रीक्षेम गुसाईंजी** २९०
९६-**श्रीविट्ठलदासजी** २९०
९७-**श्रीहरिराम हठीलेजी** २९३
९८-**श्रीकमलाकरभट्टजी** २९४
९९-**श्रीनारायणभट्टजी** २९४
१००-**श्रीब्रजबल्लभभट्टजी** २९६
१०१-**श्रीरूपसनातनजी** २९६
१०२-**श्रीहितहरिवंशजी गोस्वामी** २९९
१०३-**श्रीस्वामी हरिदासजी** ३०१

विषय	पृष्ठ-संख्या

१०४-**श्रीहरिराम व्यासजी** ३०३
१०५-**श्रीजीवगोस्वामीजी** ३०६
१०६-**श्रीराधारमणके भक्त** ३०७
१-श्रीगोपालभट्टजी ३०७
२-श्रीअलिभगवान् ३०८
३-श्रीविट्ठलविपुलदेव ३०९
४-श्रीजगन्नाथ थानेश्वरीजी ३१०
५-श्रीलोकनाथजी ३१०
६-श्रीमधुगोस्वामीजी ३१०
७-श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजी ३११
८-श्रीकृष्णदास पण्डित ३११
९-श्रीभूगर्भगोसाईंजी ३१२
१०-श्रीहृषीकेश देवाचार्यजी ३१२
११-श्रीरंगजी ३१३
१२-श्रीघमण्डीजी ३१३
१०७-**श्रीरसिकमुरारिजी** ३१३
१०८-**भवसागरसे पार करानेवाले भगवद्भक्त** ३१८
१-सदन कसाई ३१८
२-श्रीगुसाईं काशीश्वरजी ३२०
३-श्रीसोझाजी ३२०
४-श्रीसींवाजी ३२०
५-श्रीअधारजी ३२१
६-श्रीहरिनाभजी ३२१
७-श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी ३२१
८-श्रीऊदारामजी ३२२
९-श्रीडूँगरजी ३२२
१०-श्रीपदारथजी ३२२
११-श्रीविमलानन्दजी ३२३
१०९-**सच्चे सन्त** ३२३
१-श्रीखोजीजी ३२३
२-श्रीराँका-बाँकाजी ३२४
३-श्रीयतीरामजी ३२५
४-श्रीरामरावलजी ३२६
५-श्रीसीहाजी ३२६
६-श्रीदलहासिंहजी ३२६
७-श्रीपद्मजी ३२६
८-श्रीमनोरथजी ३२७
९-श्रीद्यौगूजी ३२७
१०-श्रीचाचागुरु ३२७
११-श्रीसवाईसिंहजी ३२७
१२-श्रीचाँदाजी ३२८
१३-श्रीनापाजी ३२८
१४-श्रीकीताजी ३२९
११०-**परोपकारी भक्त** ३२९
१-श्रीलड्डूजी ३२९
२-श्रीसन्तजी ३३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
३-श्रीतिलोकजी सुनार	३३०
४-श्रीलक्ष्मणजी	३३१
५-श्रीलफराजी (श्रीलफरा गोपालदेवाचार्यजी)	३३१
६-श्रीकुम्भनदासजी	३३१
७-श्रीखेमदासजी	३३२
८-श्रीहरिदासजी	३३२
९-श्रीउद्धवजी	३३२
१११-अभिलाषा पूर्ण करनेवाले भक्त	३३३
१-श्रीसोमजी	३३३
२-श्रीभीमजी	३३३
३-श्रीध्यानदासजी	३३४
४-श्रीमुकुन्दजी	३३४
५-श्रीवृद्धव्यासजी	३३४
६-श्रीजगनजी	३३४
७-श्रीझाँझूदासजी	३३४
८-श्रीबाहुबलजी	३३५
९-श्रीकपूरजी	३३५
१०-श्रीघाटमजी	३३५
११२-भक्तोंके पालक महन्त	३३६
१-श्रीदेवानन्दजी	३३६
२-श्रीखेमजी	३३६
३-श्रीरूपाजी (श्रीरूपरसिकदेवाचार्यजी)	३३७
११३-भगवद्भजनपरायण सन्त	३३७
१-श्रीरुद्रप्रतापजी गजपति	३३८
२-श्रीहरिनाथजी	३३८
३-श्रीगोविन्द ब्रह्मचारीजी	३३९
११४-भक्त कविगण	३३९
१-श्रीगोविन्दस्वामीजी	३३९
२-श्रीविद्यापतिजी	३४१
३-श्रीब्रह्मदासजी	३४२
४-श्रीकेशवाचार्यजी	३४२
५-श्रीपूर्णसिंहजी	३४२
११५-श्रीमथुरामण्डलके भक्त	३४३
१-श्रीगुंजामालीजी और उनकी पुत्रवधू	३४३
२-श्रीकेशवजी दण्डौती	३४४
३-श्रीचतुर्भुजदासजी	३४४
४-श्रीबेनीजी	३४४
११६-कलियुगकी भक्त नारियाँ	३४५
१-रानी श्रीगणेशदेईजी	३४५
२-श्रीझालीरानीजी	३४६
३-श्रीशोभाजी	३४६
४-श्रीप्रभुताजी	३४६
५-श्रीउमा भटियानीजी	३४७
६-श्रीगौराबाईजी	३४७
७-श्रीकलाबाईजी	३४७
८-श्रीजीवाबाईजी	३४८
९-श्रीजेवासीजी	३४८
१०-श्रीकीकीजी	३४८
११७-श्रीहरिके सम्मत भक्त	३४८
१-श्रीनरवाहनजी	३४९
२-श्रीजापूजी	३४९
३-श्रीरूपाजी	३४९
४-श्रीअर्जुनजी	३४९
५-श्रीदामोदरजी	३५०
६-श्रीमयानन्दजी	३५०
११८-सन्तसेवाको भगवत्सेवासे बढ़कर माननेवाले भक्त	३५०
१-श्रीदासजी	३५१
२-बूँदी बनिया	३५१
३-भक्तवर श्रीलक्ष्मणजी	३५२
४-श्रीगोपालजी	३५२
११९-श्रीलाखाजी	३५३
१२०-श्रीनरसीजी	३५६
१२१-श्रीयशोधरजी	३६५
१२२-श्रीनन्ददासजी	३६६
१२३-श्रीजनगोपालजी	३६७
१२४-श्रीमाधवदासजी	३६७
१२५-श्रीअंगदजी	३६८
१२६-श्रीचतुर्भुजजी	३७१
१२७-भक्तिमती श्रीमीराजी	३७४
१२८-श्रीपृथ्वीराजजी	३७८
१२९-भक्त राजागण	३८०
१-श्रीजयमलजी	३८०
२-श्रीरामचन्द्रजी	३८१
३-श्रीरायमलजी	३८१
४-श्रीमधुकरशाहजी	३८१
१३०-श्रीखेमालरत्नजी राठौर	३८२
१३१-राजा श्रीरामरयनजी	३८२
१३२-श्रीरामरयनजीकी रानी	३८३
१३३-श्रीकिशोरसिंहजी	३८४
१३४-श्रीहरीदासजी	३८५
१३५-श्रीचतुर्भुजजी कीर्तननिष्ठ	३८५
१३६-श्रीकृष्णदासजी चालक	३८७
१३७-श्रीसन्तदासजी	३८८
१३८-श्रीसूरदास मदनमोहनजी	३८९
१३९-श्रीकात्यायनीजी	३९१
१४०-श्रीमुरारिदासजी	३९१
१४१-भक्तमालसुमेरु गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी	३९३
१४२-श्रीमानदासजी	३९८
१४३-श्रीगिरिधरजी	३९९
१४४-श्रीगोसाईं गोकुलनाथजी	३९९
१४५-श्रीबनवारीदासजी	४०१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
१४६-श्रीनारायणमिश्रजी	४०१
१४७-श्रीराघवदासजी	४०२
१४८-श्रीबावनजी	४०२
१४९-श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी	४०३
१५०-श्रीगदाधरभट्टजी	४०४
१५१-चारण भक्त	४०७
१-श्रीचौमुखजी	४०७
२-श्रीचण्डजी	४०७
३-श्रीईश्वरदासजी	४०७
४-श्रीकरमानन्दजी	४०८
५-श्रीकोल्हजी, श्रीअल्हजी	४०९
६-श्रीनारायणदासजी	४१०
१५२-श्रीपृथ्वीराजजी	४११
१५३-श्रीसींवाजी	४१२
१५४-श्रीमती रत्नावतीजी	४१३
१५५-श्रीजगन्नाथ पारीखजी	४१९
१५६-श्रीमथुरादासजी	४२०
१५७-श्रीनारायणदासजी नर्तक	४२१
१५८-श्रीभूरिदा भक्तगण	४२२
१-श्रीबोहितजी	४२३
२-श्रीहरिनाभमिश्र	४२३
३-श्रीवच्छपालजी	४२३
४-श्रीछीतस्वामीजी	४२४
५-श्रीबिहारीदासजी	४२५
१५९-संसारसे निवृत्त भक्त	४२६
१-श्रीउद्धवजी	४२६
२-श्रीविदुरजी	४२६
१६०-श्रीचतुरोनगनजी	४२७
१६१-भक्तसेवी मधुकरिया भक्त	४२८
१-श्रीगोमानन्दजी	४२९
२-श्रीपरमानन्दजी	४२९
३-श्रीभगवानजी	४२९
४-श्रीश्यामजी	४३०
५-कूबाजी (केवलदास)	४३०
६-पण्डा श्रीदेवादासजी	४३३
१६२-श्रीअग्रदेवजीके शिष्य	४३५
१-श्रीजंगीजी	४३५
२-श्रीविनोदीजी	४३५
१६३-श्रीटीलाजीका वंश	४३६
१-श्रीटीलाजी	४३६
२-श्रीलाहाजी	४३७
३-श्रीपरमानन्ददासजी	४३७
४-श्रीत्यौलाजी	४३७
१६४-श्रीकान्हरजी	४३८
१६५-श्रीनीवाजी	४३८
१६६-श्रीतूँवर भगवानजी	४३९

विषय	पृष्ठ-संख्या
१६७-श्रीजसवन्तजी	४४०
१६८-श्रीहरिदासजी	४४०
१६९-श्रीगोपालजी तथा श्रीविष्णुदासजी	४४२
१७०-श्रीकील्हदेवजीके शिष्यगण	४४३
१-श्रीचतुरदासजी	४४४
२-श्रीरायमलजी	४४४
३-श्रीखेमदासजी	४४४
४-श्रीरूपजी	४४४
१७१-श्रीनाथभट्टजी	४४५
१७२-श्रीकरमैतीजी	४४५
१७३-श्रीखड्गसेनजी कायस्थ	४४८
१७४-श्रीगंगग्वालजी	४४९
१७५-श्रीसोतीजी	४५०
१७६-श्रीलालदासजी	४५०
१७७-श्रीमाधवग्वालजी	४५१
१७८-श्रीप्रयागदासजी	४५१
१७९-श्रीप्रेमनिधिजी	४५२
१८०-श्रीराघवदास दूबलोजी	४५४
१८१-सन्तसेवी भक्त	४५५
१-श्रीहरिनारायणजी	४५५
२-श्रीऊधौजी	४५५
३-भेलाग्राम-निवासी श्रीतुलसीदासजी	४५६
१८२-भगवद्भक्त नारियाँ	४५६
१-श्रीदमाबाईजी	४५६
२-श्रीलालीजी	४५७
३-श्रीनीराजी	४५७
४-श्रीखीचनीजी	४५७
५-श्रीकेशीबाईजी	४५८
६-श्रीबाँदररानीजी	४५८
७-गंगा-जमुनाबाई	४५८
१८३-श्रीकान्हरदासजी	४५९
१८४-श्रीकेशवजी लटेरा और श्रीपरशुरामजी	४६०
१८५-श्रीकेवलरामजी	४६०
१८६-श्रीआसकरनजी	४६१
१८७-श्रीहरिवंशजी	४६३
१८८-श्रीकल्याणजी	४६३
१८९-श्रीबीठलदासजी	४६४
१९०-भगवद्भक्तोंके भक्त	४६४
१-श्रीसदानन्दजी	४६४
२-श्रीनारायणदासजी	४६५
३-श्रीशंकरजी	४६५
४-श्रीलाखाजी	४६५
१९१-श्रीहरीदासजी	४६६
१९२-श्रीकृष्णदासजी	४६९
१९३-परमधर्मपोषक संन्यासी भक्त	४७०
१-श्रीदामोदरतीर्थजी	४७०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ-संख्या
२-श्रीनृसिंहारण्यजी	४७१
३-श्रीरामभद्रजी	४७१
४-श्रीजगदानन्दजी	४७१
५-श्रीमधुसूदनसरस्वती	४७२
६-श्रीप्रबोधानन्दजी	४७२
१९४-श्रीद्वारकादासजी	४७३
१९५-श्रीपूर्णजी	४७३
१९६-श्रीलक्ष्मणभट्टजी	४७४
१९७-स्वामी श्रीकृष्णदासजी पयहारी	४७५
१९८-श्रीगदाधरदासजी	४७६
१९९-श्रीनारायणदासजी	४७८
२००-श्रीभगवानदासजी	४७९
२०१-श्रीकल्याणदासजी	४८०
२०२-श्रीसन्तदासजी तथा श्रीमाधवदासजी	४८१
२०३-श्रीकन्हरदासजी	४८२
२०४-श्रीगोविन्ददासजी भक्तमाली	४८३
२०५-श्रीजगतसिंहजी	४८३
२०६-श्रीगिरिधरग्वालजी	४८४
२०७-श्रीगोपालीजी	४८५
२०८-श्रीरामदासजी	४८६
२०९-श्रीरामरायजी	४८८
२१०-श्रीभगवन्तमुदितजी	४८९
२११-श्रीलालमतीजी	४९१
२१२-भक्त ही सर्वश्रेष्ठ	४९२
२१३-भक्तोंके सुयशकी महिमा	४९२
२१४-सन्तोंका उत्कर्ष	४९३
२१५-श्रीनाभादासजीकी भक्तोंसे विनय-प्रार्थना	४९३
२१६-भक्तोंकी महिमा	४९४
२१७-श्रीप्रियादासजीद्वारा गुरु-वन्दना	४९५
२१८-श्रीप्रियादासजीद्वारा श्रीनाभादासजीकी वन्दना	४९६
२१९-श्रीप्रियादासजीद्वारा भगवान्‌से निवेदन	४९६
२२०-नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना	४९७

चित्र-सूची

(रंगीन चित्र)

१- भक्त और भगवान् ...... आवरण-पृष्ठ
२- भक्तशिरोमणि श्रीतुलसीदासजीपर श्रीहनुमान्‌जीकी कृपा ३
३- [क] श्रीशुकदेवजी और राजा परीक्षित् ४
[ख] संकीर्तनके आचार्य देवर्षि नारद ४
[ग] भगवान् नृसिंहकी गोदमें भक्त प्रह्लाद ४
[घ] भक्त ध्रुवपर भगवान्‌का अनुग्रह ४
४- [क] श्रीमदाद्यशंकराचार्य ५
[ख] श्रीवल्लभाचार्य ५
[ग] श्रीमध्वाचार्य ५
[घ] श्रीरामानुजाचार्य ५
५- [क] श्रीनिम्बार्काचार्य ६
[ख] आचार्य श्रीविष्णुस्वामी ६
[ग] श्रीचैतन्यमहाप्रभुका प्रेमोन्माद ६
[घ] श्रीरामानन्दाचार्य ६
६- [क] भक्तिमती मीराका विषपान ७
[ख] भक्त श्रीसूरदास ७
[ग] संत ज्ञानेश्वर ७
[घ] संत कबीरदास ७
७- [क] भक्त सुदामाका ऐश्वर्य ८
[ख] श्रीहितहरिवंशजी गोस्वामी ८
[ग] स्वामी श्रीहरिदासजी ८
[घ] भक्त जयदेव ८
८- [क] भक्त बिल्वमंगल ९
[ख] श्रीशठकोपाचार्य ९
[ग] भक्त नरसीमेहता ९
[घ] संत नामदेव ९
९- व्रजमण्डलके संकीर्तनमें महाभागवत श्रीउद्धवजीका प्राकट्य १०

(रेखा-चित्र)

१-भक्त बालिका करमैती ३२
२-श्रीनाभादासजीके गुरुदेव श्रीअग्रदासजी महाराज ... ४१
३-भक्तमालके रचयिता श्रीनाभादासजी ४२
४-प्रलयकालमें भगवान् मत्स्यद्वारा सप्तर्षियों एवं राजर्षि सत्यव्रतकी रक्षा ४४
५-कंसके कारागारमें भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य ४६
६-वेनसे पृथुका प्रकट होना ४७
७-विष्णुपार्षदोंद्वारा यमदूतोंको नाममहिमा बताना ५७
८-विष्णुवल्लभा भगवती लक्ष्मी ५९
९-भक्तोंकी दिव्य झाँकी—एक [९ चित्र] ६९
१०-भक्तोंकी दिव्य झाँकी—दो [९ चित्र] ७०
११-भक्तोंकी दिव्य झाँकी—तीन [८ चित्र] २८७
१२-भक्तोंकी दिव्य झाँकी—चार [८ चित्र] २८८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवद्भक्तोंद्वारा की गयी प्रार्थना

मन्त्रद्रष्टा ऋषिकी प्रार्थना

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान् सन्दधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद् वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

'हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्! मेरी वाणी मनमें स्थित हो जाय और मन वाणीमें स्थित हो जाय अर्थात् मेरे मन-वाणी दोनों एक हो जायँ। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप मेरे लिये प्रकट हो जाइये। हे मन और वाणी! तुम दोनों मेरे लिये वेदविषयक ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाले बनो। मेरा गुरुमुखसे सुना हुआ और अनुभवमें आया हुआ ज्ञान मेरा त्याग न करे—मैं उसे कभी न भूलूँ। मेरी इच्छा है कि अपने अध्ययनद्वारा मैं दिन और रात एक कर दूँ। अर्थात् रात-दिन निरन्तर ब्रह्म-विद्याका पठन और चिन्तन ही करता रहूँ। मैं वाणीसे श्रेष्ठ शब्दोंका उच्चारण करूँगा, सर्वथा सत्य बोलूँगा। वे परब्रह्म परमात्मा मेरी रक्षा करें। वे मुझे ब्रह्मविद्या सिखानेवाले आचार्यकी रक्षा करें। वे मेरी रक्षा करें और मेरे आचार्यकी रक्षा करें, आचार्यकी रक्षा करें। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों तापोंकी शान्ति हो।'

ध्रुवकी प्रार्थना

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥

'हे अनन्त परमात्मन्! मुझे आप उन विशुद्ध-हृदय महात्मा भक्तोंका संग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है; उनके संगमें मैं आपके गुणों तथा लीलाओंकी कथा-सुधाका पान करके उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही विविध भाँतिके दुःखोंसे पूर्ण भयंकर संसार-सागरके उस पार पहुँच जाऊँगा।' (श्रीमद्भा० ४।९।११)

परमात्मप्रभुसे प्रार्थना

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥
भयानां भयं भीषणं भीषणानां
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ॥
वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो
वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥

'हे जगत्के कारण सत्स्वरूप परमात्मा! आपको नमस्कार है। हे सर्वलोकोंके आश्रय चित्स्वरूप! आपको नमस्कार है। हे मुक्ति प्रदान करनेवाले अद्वैततत्त्व! आपको नमस्कार है। शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म! आपको नमस्कार है। आप ही एक शरणमें जानेयोग्य अर्थात् आश्रय-स्थान हैं, आप ही एक पूजा करनेयोग्य हैं। आप ही एक जगत्के पालक और अपने प्रकाशसे प्रकाशित हैं। आप ही एक जगत्के कर्ता, पालक और संहारक हैं। आप ही एक निश्चल और निर्विकल्प हैं। आप भयोंको भय देनेवाले हैं, भयंकरोंमें भयकर हैं, प्राणियोंकी गति हैं और पावनोंको पावन करनेवाले हैं। अत्यन्त उच्च पदोंके आप ही नियन्त्रण करनेवाले हैं, आप परसे पर हैं, रक्षण करनेवालोंका भी रक्षण करनेवाले हैं। हम आपका स्मरण करते हैं, हम आपको भजते हैं। हम आपको जगत्के साक्षिरूपमें नमस्कार करते हैं। आप ही एकमात्र सत्यस्वरूप हैं, निधान हैं, अवलम्बनरहित हैं, इसलिये संसारसागरके नौकारूप आप ईश्वरकी हम शरण लेते हैं। (तन्त्रोक्तस्तवपंचक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लादकी प्रार्थना

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥

'वर देनेवालोंमें शिरोमणि मेरे स्वामी! यदि आप मुझे मुँहमाँगा वर देना ही चाहते हैं तो मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि मेरे हृदयमें कभी, किसी भी कामनाका—चाहका बीज ही अङ्कुरित न हो।' (श्रीमद्भा० ७।१०।७)

महर्षि आपस्तम्बकी प्रार्थना

को नु मे स्यादुपायो हि येनाहं दुःखितात्मनाम्।
अन्तः प्रविश्य भूतानां भवेयं सर्वदुःखभुक्॥
यन्ममास्ति शुभं किञ्चित्तद्दीनानुपगच्छतु।
यत् कृतं दुष्कृतं तैश्च तदशेषमुपैतु माम्॥
नरकं यदि पश्यामि वत्स्यामि स्वर्ग एव वा॥
यन्मया सुकृतं किञ्चिन्मनोवाक्कायकर्मभिः।
कृतं तेनापि दुःखार्तास्सर्वे यान्तु शुभां गतिम्॥

'मेरे लिये वह कौन-सा उपाय है, जिससे मैं दुःखित चित्तवाले सम्पूर्ण जीवोंके भीतर प्रवेश करके अकेला ही सबके दुःखोंको भोगता रहूँ। मेरे पास जो कुछ भी पुण्य है, वह सभी दीन-दुःखियोंके पास चला जाय और उन्होंने जो कुछ पाप किया हो, वह सब मेरे पास आ जाय। भले ही मैं नरकको देखूँ या स्वर्गमें निवास करूँ, किंतु मेरेद्वारा मन, वाणी, शरीर और क्रियासे जो कुछ पुण्यकर्म बना हो, उससे सभी दुःखार्त प्राणी शुभगतिको प्राप्त हों।' (स्कन्दपुराण, रेवाखण्ड)

रन्तिदेवकी प्रार्थना

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

'मैं भगवान्से आठों सिद्धियोंसे युक्त परमगति और अपुनर्भव—मोक्ष नहीं चाहता। मैं केवल यही चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर उन सबके सारे दुःख मैं ही भोगूँ, जिससे (फिर) किसी भी प्राणीको दुःख न हो—सभी दुःखसे सदाके लिये छूट जायँ।' (श्रीमद्भा० ९।२१।१२)

वृत्रासुरकी प्रार्थना

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

'हे हरे! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि अनन्यभावसे आपके चरणकमलोंके आश्रित सेवकोंकी सेवा करनेका अवसर मुझे अगले जन्ममें भी प्राप्त हो। हे प्राणनाथ! मेरा मन आपके मंगलमय गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी उन्हींका गान करे और शरीर आपकी ही सेवामें संलग्न रहे। हे सर्वसौभाग्यनिधे! मैं आपको छोड़कर न स्वर्ग चाहता हूँ, न ब्रह्माका पद, न सम्पूर्ण भूमण्डलका साम्राज्य, न रसातलका एकछत्र राज्य और न योगकी सिद्धियाँ ही—यहाँतक कि मैं अपुनर्भव—मोक्ष भी नहीं चाहता। जैसे पक्षियोंके बिना पाँख उगे बच्चे अपनी माँकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँ—गौका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये व्याकुल रहती है, वैसे ही हे कमलनयन! मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है। (श्रीमद्भा० ६।११।२४—२६)

भीष्मकी प्रार्थना

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥

'जिनका दिव्य देह त्रिभुवनसुन्दर एवं श्याम तमालके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान श्यामवर्ण है, जिसपर सूर्यकी रश्मियोंके समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता है और कमल-सदृश श्रीमुखपर घुँघराली अलकावली लटकती रहती है; उन अर्जुनके सखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्कपट रति—प्रीति हो।' (श्रीमद्भा० १।९।३३)

कुन्तीकी प्रार्थना

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥
जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥
नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः॥

'जगद्गुरो श्रीकृष्ण! हमलोगोंके जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन होनेपर फिर पुनर्जन्मका चक्र मिट जाता है। ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका मद बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता; क्योंकि आप तो उन लोगोंको दर्शन देते हैं, जो अकिंचन हैं। आप अकिंचनोंके (जिनके पास कुछ भी अपना नहीं है, उन निर्धनोंके) परम धन हैं। आप मायाके प्रपंचसे सर्वथा निवृत्त हैं, नित्य आत्माराम और परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्यमोक्षके अधिपति हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ।' (श्रीमद्भा० १।८।२५—२७)

बिल्वमंगलकी प्रार्थना

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो।
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे॥

हे देव! हे दयित! हे त्रिभुवनके अद्वितीय बन्धु! हे कृष्ण! हे लीलामय! हे करुणाके एकमात्र सिन्धु! हे नाथ! हे प्रियतम! हे नयनाभिराम! हाय, हाय, मैं तुम्हारे चिन्मय स्वरूपको कब देख पाऊँगा?

श्रीशंकराचार्यकी प्रार्थना

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥
दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे॥
सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥
उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः॥
मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम्।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम्॥
दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द।
भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे॥
नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु॥

'हे भगवान् विष्णु! मेरा अविनय दूर कीजिये, मेरे मनका दमन कीजिये और विषयोंकी मृगतृष्णाको शान्त कर दीजिये। जगत्में प्राणिमात्रके प्रति दयाभावनाका विस्तार कीजिये और इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये। मैं भगवान् श्रीपतिके उन चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ; जिनका मकरन्द गंगा और सौरभ सच्चिदानन्द है तथा जो संसार (जन्म-मरण)-के भयका तथा खेदका छेदन करनेवाले हैं। हे नाथ! (वस्तुतः मुझमें और आपमें) भेद नहीं है, तथापि मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं हैं; क्योंकि तरंग ही समुद्रकी होती है, समुद्र तरंगका कहीं नहीं होता। हे गोवर्द्धनगिरिको उठानेवाले! हे इन्द्रके अनुज (वामन)! हे दानवकुलके शत्रु! हे सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रवाले! आपके सदृश प्रभुके दर्शन हो जानेपर क्या भव (जन्म-मरण)-का लोप नहीं हो जाता? हे परमेश्वर! मत्स्यादि अवतारोंमें अवतरित होकर वसुधाकी सर्वदा रक्षा करनेवाले आपके द्वारा संसारके तापोंसे भयभीत क्या मैं रक्षाके योग्य नहीं हूँ? हे गुणोंके मन्दिर दामोदर! हे सुन्दर मुखारविन्दवाले गोविन्द! संसार-सागरका मन्थन करनेके लिये मन्दर (पर्वत)! मेरे महान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयको आप मिटाइये। हे करुणामय नारायण! मैं सब प्रकारसे आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करूँ। यह छः पदोंके रूपमें की गयी प्रार्थनारूप भ्रमरी सदा मेरे मुखकमलमें निवास करे।'

श्रीयामुनाचार्यकी प्रार्थना

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥
न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे॥
निमज्जतोऽनन्तभवार्णवान्त-
श्चिराय मे कूलमिवासि लब्धः।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानी-
मनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः॥

'मैं न धर्मनिष्ठ हूँ न आत्मज्ञानी हूँ और न आपके चरणारविन्दोंका भक्त ही हूँ। मैं तो अकिंचन हूँ, अनन्यगति हूँ और शरणागतरक्षक आपके चरणकमलोंकी शरण आया हूँ। संसारमें ऐसा कोई निन्दित कर्म नहीं है, जिसको हजारों बार मैंने न किया हो। ऐसा मैं अब फलभोगके समयपर विवश (अन्य-साधनहीन) होकर, हे मुकुन्द! आपके आगे बारम्बार रोता—क्रन्दन करता हूँ। अनन्त महासागरके भीतर डूबते हुए मुझको आज अति विलम्बसे आप तटरूप होकर मिले हैं और हे भगवन्! आपको भी आज यह दयाका अनुपम पात्र मिला है।' (श्रीआलवन्दारस्तोत्र)

श्रीनिम्बार्काचार्यकी प्रार्थना

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

'जो उन्हीं श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके वामांगमें प्रसन्नतापूर्वक विराजमान हो रही हैं, जिनका रूप-शील-सौभाग्य अपने प्रियतमके सर्वथा अनुरूप है, सहस्रों सखियाँ सदा जिनकी सेवाके लिये उद्यत रहती हैं, उन सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको देनेवाली देवी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका हम सदा स्मरण करें।'

श्रीचैतन्यदेवकी प्रार्थना

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥
नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति॥

'हे जगदीश! मुझे धन, जन, कामिनी, कविता—कुछ भी नहीं चाहिये (मुक्ति भी नहीं चाहिये)—बस, जन्म-जन्ममें मेरी आप ईश्वरमें अहैतुकी भक्ति हो। हे गोविन्द! वह दिन कब होगा, जब आपका नाम लेनेपर मेरी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होगी, मेरी वाणी प्रेमावेगसे गद्गद हो जायगी और मेरा शरीर पुलकित हो जायगा।' (शिक्षाष्टक)

श्रीसूरदासजीकी प्रार्थना

तुम तजि और कौन पै जाऊँ।
काके द्वार जाइ सिर नाऊँ, पर हथ कहाँ बिकाऊँ॥
ऐसो को दाता है समरथ, जाके दिये अघाऊँ।
अंतकाल तुमरो सुमिरन गति, अनत कहूँ नहिं पाऊँ॥
रंक अयाची कियो सुदामा, दियो अभय पद ठाऊँ।
कामधेनु चिंतामनि दीनो, कलप-बृच्छ तर छाऊँ॥
भवसमुद्र अति देखि भयानक, मनमें अधिक डराऊँ।
कीजै कृपा सुमिरि अपनो पन, सूरदास बलि जाऊँ॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी प्रार्थना

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥
मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त और भगवान्

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—दुर्वासाजी! मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। मेरे सीधे-सादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे।

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥

ब्रह्मन्! अपने भक्तोंका एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ। इसलिये अपने साधुस्वभाव भक्तोंको छोड़कर मैं न तो अपने-आपको चाहता हूँ और न अपनी अर्धांगिनी विनाशरहित लक्ष्मीको।

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक—सबको छोड़कर केवल मेरी शरणमें आ गये हैं, उन्हें छोड़नेका संकल्प भी मैं कैसे कर सकता हूँ।

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥

जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही मेरे साथ अपने हृदयको प्रेम-बन्धनसे बाँध रखनेवाले समदर्शी साधु भक्तिके द्वारा मुझे अपने वशमें कर लेते हैं।

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम्॥

मेरे अनन्यप्रेमी भक्त सेवासे ही अपनेको परिपूर्ण—कृतकृत्य मानते हैं। मेरी सेवाके फलस्वरूप जब उन्हें सालोक्य, सारूप्य आदि मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं, तब वे उन्हें भी स्वीकार करना नहीं चाहते, फिर समयके फेरसे नष्ट हो जानेवाली वस्तुओंकी तो बात ही क्या है।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

दुर्वासाजी! मैं आपसे और क्या कहूँ, मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तोंका हृदय स्वयं मैं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता।

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्यारे उद्धव! मेरा भक्त कृपाकी मूर्ति होता है। वह किसी भी प्राणीसे वैरभाव नहीं रखता और घोर-से-घोर दुःख भी प्रसन्नतापूर्वक सहता है। उसके जीवनका सार है सत्य, और उसके मनमें किसी प्रकारकी पापवासना कभी नहीं आती। वह समदर्शी और सबका भला करनेवाला होता है।

कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः॥

उसकी बुद्धि कामनाओंसे कलुषित नहीं होती। वह संयमी, मधुरस्वभाव और पवित्र होता है। संग्रह-परिग्रहसे सर्वथा दूर रहता है। किसी भी वस्तुके लिये वह कोई चेष्टा नहीं करता। परिमित भोजन करता है और शान्त रहता है। उसकी बुद्धि स्थिर होती है। उसे केवल मेरा ही भरोसा होता है और वह आत्मतत्त्वके चिन्तनमें सदा संलग्न रहता है।

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः॥

वह प्रमादरहित, गम्भीरस्वभाव और धैर्यवान् होता है। भूख-प्यास, शोक-मोह और जन्म-मृत्यु—ये छहों उसके वशमें रहते हैं। वह स्वयं तो कभी किसीसे किसी प्रकारका सम्मान नहीं चाहता, परंतु दूसरोंका सम्मान करता रहता है। मेरे सम्बन्धकी बातें दूसरोंको समझानेमें बड़ा निपुण होता है और सभीके साथ मित्रताका व्यवहार करता है। उसके हृदयमें करुणा भरी होती है। मेरे तत्त्वका उसे यथार्थ ज्ञान होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥

जिसने अपनेको मुझे सौंप दिया है, वह मुझे छोड़कर न तो ब्रह्माका पद चाहता है और न देवराज इन्द्रका, उसके मनमें न तो सार्वभौम सम्राट् बननेकी इच्छा होती है और न वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ रसातलका ही स्वामी होना चाहता है। वह योगकी बड़ी-बड़ी सिद्धियों और मोक्षतककी अभिलाषा नहीं करता।

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥

उद्धव! मुझे तुम्हारे-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शंकर, सगे भाई बलरामजी, स्वयं अर्धांगिनी लक्ष्मीजी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

जिसे किसीकी अपेक्षा नहीं, जो जगत्‌के चिन्तनसे सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन-चिन्तनमें तल्लीन रहता है और राग-द्वेष न रखकर सबके प्रति समान दृष्टि रखता है, उस महात्माके पीछे-पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूलि उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

जिसकी वाणी प्रेमसे गद्‌गद हो रही है, चित्त पिघलकर एक ओर बहता रहता है, एक क्षणके लिये भी रोनेका ताँता नहीं टूटता, परंतु जो कभी-कभी खिलखिलाकर हँसने भी लगता है, कहीं लाज छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने लगता है, तो कहीं नाचने लगता है, भैया उद्धव! मेरा वह भक्त न केवल अपनेको बल्कि सारे संसारको पवित्र कर देता है।

श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम्।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम॥

जो मेरी भक्ति प्राप्त करना चाहता हो, वह मेरी अमृतमयी कथामें श्रद्धा रखे, निरन्तर मेरे गुण-लीला और नामोंका संकीर्तन करे, मेरी पूजामें अत्यन्त निष्ठा रखे और स्तोत्रोंके द्वारा मेरी स्तुति करे।

आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम्।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः॥

मेरी सेवा-पूजामें प्रेम रखे और सामने साष्टांग लोटकर प्रणाम करे, मेरे भक्तोंकी पूजा मेरी पूजासे बढ़कर करे और समस्त प्राणियोंमें मुझे ही देखे।

कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन्।
मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः॥

उद्धवजी! मेरे भक्तको चाहिये कि अपने सारे कर्म मेरे लिये ही करे और धीरे-धीरे उनको करते समय मेरे स्मरणका अभ्यास बढ़ाये। कुछ ही दिनोंमें उसके मन और चित्त मुझमें समर्पित हो जायँगे। उसके मन और आत्मा मेरे ही धर्मोंमें रम जायँगे।

देशान् पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान्।
देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च॥

मेरे भक्त साधुजन जिन पवित्र स्थानोंमें निवास करते हों, उन्हींमें रहे और देवता, असुर अथवा मनुष्योंमें जो मेरे अनन्य भक्त हों, उनके आचरणोंका अनुसरण करे।

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः॥

मेरी प्राप्ति के जितने साधन हैं, उनमें मैं तो सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें मन, वाणी और शरीरकी समस्त वृत्तियोंसे मेरी ही भावना की जाय। [श्रीमद्भागवत]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय लेख

भक्तमाल—एक परिचय

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम्॥

भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी अविचल स्मृति सारे पाप-ताप तथा अमंगलोंको नष्ट कर देती है और परम शान्तिका विस्तार करती है। उसीके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, भगवान्‌की भक्ति प्राप्त होती है एवं परवैराग्यसे युक्त भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है।

परमात्मप्रभुका यह महान् अनुग्रह है कि इस वर्ष महान् सौभाग्यसे भक्तमालके आनन्दसागरमें अवगाहनका सुअवसर प्राप्त हुआ। **'भक्तमाल'** महाभागवत श्रीनाभादासजी महाराजकी रचना है। जैसा कि इसके भक्तमाल नामसे ही स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ भक्तोंके परम पवित्र चरित्ररूपी पुष्पोंकी एक परम रमणीय मालाके रूपमें गुम्फित है और इस सरस सौरभमयी तथा कभी भी म्लान न होनेवाली सुमनमालिकाको परमात्मप्रभु श्रीहरि नित्य-निरन्तर अपने श्रीकण्ठमें धारण किये रहते हैं। भक्तमालमें भक्तोंका गुणगान है, यशोगान है और उनकी सरस लालित्यमयी लीलाका विस्तार है। भगवान् और भक्तका कैसा सम्बन्ध होना चाहिये, इसका निदर्शन हमें भक्तमाल ग्रन्थके श्रवण-मनन और पठनसे भलीभाँति ज्ञात हो जाता है। भक्तमालके श्रवण-मननसे शुष्क हृदय सरस हो जाता है और सरस हृदयमें सदाके लिये भक्तिकी लहरें आन्दोलित होती रहती हैं। यही कारण है कि श्रीमद्भागवत तथा श्रीरामकथाके प्रवक्ता आचार्यगण भक्तमालके भक्तोंका दृष्टान्त देकर सांगोपांग भक्तिरसोंको संपुष्ट करते हैं।

भगवत्प्राप्तिके संसाधनोंमें भगवान्‌के मंगलमय पावन नामके कीर्तन, उनके दिव्यरूपके चिन्तन और उनकी ऐश्वर्यमयी-माधुर्यमयी मनोरम लीलाओंके गान तथा चरित्र-श्रवणकी जितनी महिमा है, उससे भी कहीं अधिक महिमा भगवान्‌के अनन्य प्रेमी भक्तोंकी पवित्र गाथाओंके पठन, श्रवण और मननकी है। भगवान् ही जब भक्तोंकी महिमाका मुक्तकण्ठसे गान करते हैं तो ऐसे सौभाग्यशाली भक्तोंकी महिमाकी क्या सीमा! इतना ही नहीं भगवान् स्वयं कहते हैं कि मैं भक्तजनोंके पीछे-पीछे यह सोचकर निरन्तर विचरण किया करता हूँ कि उनके चरणोंकी पवित्र धूलराशि उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ—**'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।'** (श्रीमद्भा० ११।१४।१६)

वास्तवमें भगवान् और उनके भक्तमें भेदका अभाव है—**'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्'** (ना०भ०सू० ४१)। इसीलिये भगवान्‌का कथन है कि मेरा भक्त सम्पूर्ण लोकको पावन बना देता है—**'मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति'** (श्रीमद्भा० ११।१४।२४)। भगवत्प्राप्तिके जितने भी मार्ग शास्त्रोंमें निरूपित हैं, उनमें भक्तिमार्गको सर्वोत्तम तथा सहज मार्ग बताया गया है। भगवान् कहते हैं कि सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है—**'श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥'** (गीता ६।४७) भक्तों और उनकी भक्तिका मार्ग सबके लिये कल्याणकारी है। भक्तोंकी क्या महिमा है, कैसा उनका स्वरूप है, उनका आचार-विचार-व्यवहार कैसा होता है, संसारमें उनकी रहनी-करनी कैसी होती है, भक्त कहते किसे हैं? ये प्रश्न तो इसलिये अनुत्तरित हैं कि भक्तका भगवान्‌से अनिर्वचनीय प्रेम होता है, इसीलिये उनकी प्रेमाभक्ति भी अनिर्वचनीय ही है, वह तो भक्तके लिये अनुभूतिपरक होनेसे स्वसंवेद्य रहती है तथापि प्रेमजगत्‌में भगवान्‌के साथ भक्तका जैसा बाह्य सम्बन्ध दिखायी देता है, वही संसारके लिये आदर्श बन जाता है और भक्तका वही बाह्य चरित्र श्रवणीय, मननीय और अनुकरणीय बन जाता है। भगवान्‌ने गीतामें यत्र-तत्र भक्तके स्वरूपको बताया है; वे बारहवें अध्यायमें बताते हैं कि मेरा भक्त किसी भी प्राणीसे द्वेष नहीं रखता, स्वार्थरहित सबका प्रेमी, मित्र और दयालु होता है, वह सभी प्रकारकी अहन्ता-ममता एवं अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम तथा क्षमावान् होता है, वह सदा सन्तुष्ट रहता है, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता है, मुझमें दृढ़ निश्चयवाला होता है तथा मुझमें ही अपने मन-बुद्धिको समर्पित किये रहता है। भक्तसे कोई भी उद्विग्न नहीं होता और न वह स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसीसे उद्विग्न होता है। भक्त आकांक्षासे रहित, बाहर-भीतरसे पवित्र तथा पक्षपातसे रहित होता है। वह न कभी हर्षित होता है, न किसीसे द्वेष करता है, न शोक करता है और न कोई कामना ही रखता है, वह शत्रु-मित्रमें, मान-अपमानमें तथा सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें समान रहता है, कभी विचलित नहीं होता और आसक्तिसे रहित होता है, उसे निन्दा-स्तुतिसे कोई प्रयोजन नहीं रहता, वह सदा सन्तुष्ट रहता है—ऐसा मेरा भक्त मुझे सदा ही प्रिय होता है—**'यो मद्भक्तः स मे प्रियः।'**

इन भुवनवन्द्य तथा भगवान्‌के प्रिय भक्तोंकी पुनीत गाथाएँ अनादिकालसे विश्वके इतिहासमें गायी जा रही हैं और अनन्त कालतक गायी जाती रहेंगी। ऐसे भक्तोंका नामस्मरण, उनके चरित्रोंका मनन, उनके उपदेशोंका पालन और उनकी भगवत्प्रेमविषयक रहनी-करनीका अनुसरण करनेसे अन्तःकरण पवित्र हो जाता है और भगवच्चरणारविन्दोंमें सहज ही अनुदिन वर्धमान अनुराग उत्पन्न हो जाता है। भक्तगाथाएँ सदा ही नवीन हैं, मंगलमय हैं, कल्याणमय हैं, सदा सेवनीय हैं और परम शान्ति प्रदान करनेवाली हैं। भगवान्‌में अनन्त गुण हैं और उनके प्रेमी भक्तोंमें भी अपार गुण हैं, उन गुणोंका जो चिन्तन और स्मरण करता है, उस व्यक्तिको स्वाभाविक रूपसे ये गुण प्राप्त हो जाते हैं। अपने जीवनको उज्ज्वल, सद्‌गुणोंसे युक्त तथा भक्तिमय बनानेके लिये भक्तोंके चरित्ररूपी सुधासिन्धुमें अवगाहन करना चाहिये। भगवत्प्राप्तिके लिये साधन करनेवालोंको भक्तोंके चरित्रोंके पठन, श्रवण और मनन करनेसे बहुत लाभ होता है। भक्तोंके चरित्र मनको आह्लादित करते हैं और संसारमें महान् कष्टसे मुक्ति दिलाते हैं।

जबसे भगवान् हैं, तभीसे उनके भक्त हैं और जबसे भगवान्‌की कथा है, तभीसे भक्तोंकी कथाका शुभारम्भ है। अकेले भगवान्‌की कोई लीला भी बन नहीं सकती। भक्त भगवान्‌के लीला-सहचर हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि जिस प्रकार भगवान् और उनकी कथा अनादि है, उसी प्रकार भक्त और उनकी कथा भी अनादि है। भक्त और भगवान्‌का नित्य साहचर्य है। यह बड़ी विलक्षण बात है कि स्वयं परमात्मप्रभु जब शिवरूप धारण करते हैं तो वे रामरूपके भक्त बन जाते हैं तो कभी रामरूपमें शिवकी उपासना करने लगते हैं। एक ही प्रभु भक्तकी भावनाके अनुसार अनेक रूपोंमें होकर उनके इष्टका रूप धारणकर परस्पर एक-दूसरेके भक्त बन जाते हैं और एक-दूसरेको वर भी प्रदान करते हैं। भगवान्‌की यह लीला भक्तको आह्लादित करनेके लिये होती रहती है।

यद्यपि वेदों, पुराणों आदि सत्-शास्त्रोंमें भक्त और भगवान्‌के चरित्र बड़े ही मनोरम रूपमें वर्णित हैं और अनेक भक्तकवियोंने स्वतन्त्र रूपसे भी संस्कृत आदि भाषाओंमें भक्तोंके मनोरम चरित्र प्रस्तुत किये हैं तथापि श्रीनाभादासजीके भक्तमालमें जिन-जिन भक्तोंकी कथा आयी है, वह बड़ी ही सरस, कल्याणकारिणी और मनको आनन्दित करनेवाली है। भक्तमाल सामान्य रचना नहीं है, अपितु यह एक आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है। तपस्वी, सिद्ध एवं महान् संतकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वादसे इस ग्रन्थका प्राकट्य हुआ है। इसीलिये इसकी इतनी महिमा है।

भक्तमालके प्राकट्यकी रोचक कथा

भक्तमाल भक्तिसाहित्यका अनूठा अनमोल रत्न है। इसकी यह विशेष बात है कि यह भक्तोंको अतिप्रिय होनेके साथ ही भगवान्‌को भी परम प्रिय है। सन्तोंकी तो यह भी धारणा है कि भगवान् अपने नित्य धाममें भक्तमालका सदा स्वाध्याय करते हैं। श्रीभक्तमालके प्रधान श्रोता भगवान् ही हैं। जैसे भक्तोंको भगवान्‌का चरित्र अतिप्रिय है, वैसे ही भगवान्‌को भी भक्तोंका चरित्र परम प्रिय है। सत्य तो यह है कि भगवान् अपनेसे अधिक भक्तोंको आदर देते हैं—***'मोते संत अधिक कर लेखा।'*** भावुक भक्तोंकी मान्यता है कि भगवान्‌से भी अधिक महिमा उनके भक्तोंकी है—***'मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥'***

भक्तमालके सबसे प्राचीन टीकाकार श्रीप्रियादासजी भक्तमाल ग्रन्थका प्राकट्य कैसे हुआ, इसे बताते हुए कहते हैं कि एक बारकी बात है श्रीनाभादासजीके पूज्य गुरुवर श्रीअग्रदासजी महाराज भगवान् श्रीसीतारामजीकी मानसी-उपासनामें लीन थे और उनके शिष्य श्रीनाभाजी धीरे-धीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको पंखा झल रहे थे। उसी समय अग्रदासजीका एक शिष्य जहाजद्वारा समुद्रकी यात्रा कर रहा था। उसका जहाज एकाएक संकट (भँवर)-में फँस गया और रुक गया। उस समय उस संकटसे मुक्त करनेके लिये शिष्यने अपने गुरुजी श्रीअग्रदासजीका स्मरण-ध्यान किया। उसका फल यह हुआ कि गुरुजीका ध्यान भी शिष्यकी ओर गया और उनकी मानसी-आराधनाका ध्यान टूट गया। विलक्षण बात यह हुई कि इस ध्यान-भंगकी बात नाभाजी भी समझ गये, तब उन्होंने अपने पंखेकी वायुके झोंकेसे रुके हुए जहाजको भँवर-संकटसे पार कर दिया, जहाज समुद्रमें यथावत् चल पड़ा, तब नाभाजी गुरुजीसे बोले—गुरुदेव, वह जहाज पुनः चल पड़ा है। अत: अब आप पहलेके ही समान भगवान्‌के ध्यानमें लग जाइये। यह सुनकर अग्रदेवजीने आँखें खोलीं और कहा—कौन बोला? नाभाजीने हाथ जोड़कर कहा—वही आपका दास, जिसे आपने अपना प्रसाद दे-देकर पाला है।

नाभाजीकी इस बातको सुनकर अग्रदासजीके आश्चर्यका ठिकाना न रहा और वे मन-ही-मन सोचने लगे कि ओह, इसकी ऐसी ऊँची स्थिति हो गयी कि यह मेरी मानसी-सेवातक पहुँच गया। आश्चर्य है कि इसने यहाँ बैठे-ही-बैठे दूरस्थित समुद्रमें होनेवाली घटनाका प्रत्यक्ष कर लिया और यहींसे जहाजकी रक्षा कर ली! फिर विचार करते ही उनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे यह जान गये कि सन्तोंकी सेवा तथा उनसे प्राप्त प्रसाद-भक्षणकी ही यह महिमा है, इसीसे इसे ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है, तब श्रीअग्रदासजीने नाभाजीको आज्ञा देते हुए कहा—***'यह भई तोपै साधु कृपा उनहीको रूप गुन कहो हिय भाव को'*** वत्स, तुम्हारे ऊपर यह साधुओंकी कृपा हुई है। अब तुम उन्हीं साधु-सन्तोंके गुण, स्वरूप तथा उनके हृदयके भावोंका गान करो।

गुरुदेवकी इस आज्ञाको सुनकर नाभाजीने हाथ जोड़कर कहा—प्रभो! मैं भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रोंको तो कुछ गा भी सकता हूँ, किंतु भक्तोंके चरित्रोंका आदि-अन्त पाना तो बड़ा कठिन है, भला मैं भक्तिके रहस्यको कैसे समझ सकता हूँ? तब अग्रदासजी बड़े प्रेमसे उन्हें समझाते हुए बोले—जिन्होंने तुम्हें मेरी मानसी-सेवामें प्रवेश कराया, जिन्होंने तुम्हें समुद्रमें जहाजको दिखाया, जिन्होंने यहींसे पंखेकी हवासे जहाजको आगे बढ़ा दिया, वे ही भगवान् तुम्हारे हृदयमें प्रविष्ट होकर भक्तोंके तथा अपने भी सब रहस्योंको खोलकर बता देंगे—***'कही समुझाइ वोइ हृदय आइ कहै सब जिन लै दिखाइ दई सागर में नाव को'*** (प्रियादासजी, भक्तरसबोधिनी टीका)।

गुरुदेवने नाभाजीकी आशंकाको दूर कर दिया। बस अब क्या था, उन्होंने गुरुदेवकी प्रेरणा प्राप्तकर उनके आशीर्वादसे भक्तमालकी उद्भावना कर डाली और इस घटनाका वर्णन उन्होंने अपने ग्रन्थके प्रारम्भमें इस प्रकारसे किया—

(श्रीगुरु) अग्रदेव आग्या दई भक्तन को जस गाउ।
भवसागर के तरन को नाहिन और उपाउ॥

(भक्तमाल दोहा ४)

अर्थात् स्वामी श्रीअग्रदेवजीने मुझ नारायणदास (नाभाजी)-को आज्ञा दी कि भक्तोंके चरित्रोंका वर्णन करो, भक्तोंका यशोगान करो, क्योंकि संसारसागरसे पार उतरनेका इससे सरल कोई दूसरा उपाय नहीं है।

इस पदमें श्रीनाभाजीने अपने श्रीगुरुदेवका नामनिर्देश किया है और ग्रन्थरचनाका हेतु बताया है। भक्त और भगवान्‌में श्रीअग्रदासजीने केवल भक्तोंके यशोगानकी आज्ञा दी, कारण कि भक्तमें भक्ति, भगवान् और गुरुदेव सबका भाव निहित रहता है।

श्रीनाभादासजीने भक्तमाल ग्रन्थका प्रारम्भ मंगलाचरणके रूपमें निम्न दोहेसे किया है—

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इनके पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥

(दोहा १)

अर्थात् भगवद्भक्त, भगवद्भक्ति, भगवान् और गुरु—कहनेको तो ये चार हैं, किंतु वास्तवमें इनका स्वरूप एक ही है। इनके चरणोंमें नमस्कार करनेसे समस्त विघ्नोंका नाश हो जाता है।

मंगलाचरणका यह दोहा ही भक्तमाल ग्रन्थका सर्वस्वसार है और इसी दोहेकी भित्तिपर भक्तमालरूपी ग्रन्थ स्थित है। जैसे गायके थन देखनेमें चार हैं, लेकिन चारोंके अन्दर एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही समान दूध भरा रहता है, वैसे ही भक्त, भक्ति, भगवान् और गुरु—ये चारों अलग-अलग दिखायी देनेपर भी सर्वदा सर्वथा अभिन्न हैं। चारोंमेंसे एकसे प्रेम हो जानेपर तीनों स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। इस दोहेमें भक्त शब्दका प्रारम्भमें प्रयोग होनेसे भक्तमालमें भक्तकी प्रधानता नाभादासजीने दिखायी है। जैसे मालामें चार वस्तुएँ मुख्य होती हैं—मणियाँ, सूत्र, सुमेरु और फुँदना (गुच्छा), वैसे ही भक्तमालमें भक्तजन मणि हैं, भक्ति है सूत्र (जिसमें मणियाँ पिरोयी जाती हैं), मालाके ऊपर जो सुमेरु होता है वे हैं गुरुदेव और सुमेरुका जो गाँठरूपी गुच्छा (फुँदना) है, वे हैं भगवान्। जिस प्रकार मालामें मणिकी विशेषतापर मालाका नामकरण होता है, यथा—रुद्राक्षमाला, तुलसीमाला आदि, वैसे ही भक्तोंकी माला होनेसे इस ग्रन्थका नाम पड़ा 'भक्तमाल'।

इस प्रकार प्रारम्भमें श्रीनाभादासजीने चार दोहोंमें मंगलाचरण करके आगे छप्पय छन्दोंमें भक्तोंके चरित्रोंकी सुन्दर महिमा गायी है। पूरा ग्रन्थ छप्पय और दोहेमें उपनिबद्ध है। इस प्रकार भक्तमालग्रन्थ भक्तिसाहित्यका एक विलक्षण काव्य है।

नाभादासजी कहते हैं कि भगवद्भक्तोंके गुण और चरित्रका वर्णन करनेसे इस संसारमें कीर्ति और सभी प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति होती है; आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—तीनों तापोंका नाश होता है तथा हृदयमें अटल रूपसे भगवान्का वास हो जाता है—

जग कीरति मंगल उदै तीनौं ताप नसायँ।
हरिजन को गुन बरनते हरि हृदि अटल बसायँ॥

(भक्तमाल दोहा २०८)

पुनः वे जीवोंको सावधान करते हुए कहते हैं—यदि भगवान्को प्राप्त करनेकी आशा है तो भक्तोंके गुणोंको गाइये, निस्सन्देह भगवत्प्राप्ति हो जायगी। नहीं तो जन्म-जन्मान्तरोंमें किये गये अनेक पुण्य भुने हुए बीजकी तरह बेकार हो जायँगे (भुने हुए बीज पुनः अंकुरित नहीं होते), उनसे कल्याण न होगा, फिर जन्म-जन्ममें पछताना पड़ेगा—

(जो) हरि प्रापति की आस है तौ हरिजन गुन गाव।
नतरु सुकृत भुंजे बीज ज्यौं जनम जनम पछिताय॥

(भक्तमाल दोहा २१०)

नाभादासजी बताते हैं कि जो भक्तोंके चरित्रको गाता है, श्रवण करता है तथा उनका अनुमोदन करता है, वह भगवान्को पुत्रके समान प्रिय है, उसे भगवान् अपनी गोदमें बैठा लेते हैं—*'सो प्रभु प्यारौ पुत्र ज्यों बैठै हरि की गोद'* (दोहा २११)।

इस प्रकार भक्तोंकी महिमाको समझाते हुए नाभादासजीने जब भक्तोंके चरित्रका वर्णन करना प्रारम्भ किया तो मंगलाचरणके बाद सर्वप्रथम पहले छप्पयमें भगवान्के चौबीस अवतारोंका इस प्रकार वर्णन किया—

जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि-बावन।
परसुराम रघुबीर कृष्ण कीरति जग पावन॥
बुद्ध कलक्की ब्यास पृथू हरि हंस मन्वंतर।
जग्य रिषभ हयग्रीव ध्रुरुव बरदैन धन्वंतर॥
बद्रीपति दत कपिलदेव सनकादिक करुना करौ।
चौबीस रूप लीला रुचिर (श्री) अग्रदास उर पद धरौ॥

(भक्तमाल छप्पय १)

इसी प्रकार अगले छप्पयमें उन्होंने भगवान्के श्रीचरणोंके चिह्नोंकी वन्दना की है और प्रार्थना की है कि रघुपतिके ये चरणचिह्न भक्तोंके लिये मंगलकारी और सदा सहायता करनेवाले हों—

अंकुस अंबर कुलिस कमल जव धुजा धेनुपद।
संख चक्र स्वस्तिक जंबूफल कलस सुधाहृद॥
अर्धचंद्र षटकोन मीन बिंदु ऊरधरेखा।
अष्टकोन त्रयकोन इंद्रधनु पुरुषविशेषा॥
सीतापति पद नित बसत एते मंगलदायका।
चरन चिह्न रघुबीर के संतन सदा सहायका॥

अगले छप्पयमें जिन द्वादश महाभागवत भक्तोंका स्मरण किया है, उनके नाम इस प्रकार हैं—श्रीब्रह्माजी, देवर्षि नारदजी, श्रीशंकरजी, श्रीसनकादिक, श्रीकपिलदेवजी, श्रीस्वायम्भुव मनुजी, श्रीप्रह्लादजी, श्रीविदेहराज जनकजी, श्रीभीष्मपितामहजी, श्रीबलिजी, श्रीशुकदेवजी तथा श्रीधर्मराजजी। इसके बादके छप्पयमें भगवान् नारायणके विष्वक्सेन, जय, विजय, प्रबल, बल, नन्द, सुनन्द, सुभद्र आदि सोलह पार्षदोंका उल्लेख हुआ है। तदनन्तर जिन भक्तोंका उल्लेख हुआ है, उन्हें नाभाजीने 'हरिवल्लभ' नाम दिया है और उसके अन्तर्गत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मी, गरुड, सुनन्द, हनुमान्, जामवन्त, सुग्रीव, विभीषण, जटायु, ध्रुव, अम्बरीष, विदुर, अक्रूर, सुदामा, चन्द्रहास, चित्रकेतु, गज-ग्राह, पाण्डव, कुन्ती तथा द्रौपदी आदिका स्मरण किया है।

आगेके छप्पय संख्या १० में नौ योगेश्वरों, श्रुतिदेव, मुचुकुन्द, प्रियव्रत, पृथु, परीक्षित्, सूत, शौनकादि ऋषि, मनुपत्नी शतरूपा, कर्दमपत्नी देवहूति, सुनीतिजी, दक्षकन्या सतीजी, देवी मदालसा, व्रजगोपियाँ आदिका उल्लेख है।

पुनः आगेके छप्पयोंमें २७ छप्पयतक प्राचीनबर्हि, सत्यव्रत, रहूगण, सगर, भगीरथ, महर्षि वाल्मीकि, रुक्मांगद, हरिश्चन्द्र, भरत, दधीचि, सुधन्वा, शिबि, बलिपत्नी विन्ध्यावली, मोरध्वज, अलर्क, इक्ष्वाकु, गाधि, रघु, शतधन्वा, रन्तिदेव, मान्धाता, निमि, भरद्वाज, ययाति, दिलीप, याज्ञवल्क्य, नवधाभक्तिके आचार्य, अठारहोंपुराण, स्मृतियोंके प्रवर्तक मनु, अत्रि, हारीत, याज्ञवल्क्य, गौतम, वसिष्ठ, दक्ष, क्रतु तथा पराशर आदि ऋषि-महर्षियों, भगवान् श्रीरामके सचिवों तथा श्रीरामके सहचरवर्ग, नन्द आदि नौ नन्दों, व्रजवासीगणों, भगवान् कृष्णके रक्तक, पत्रक, मधुकण्ठ आदि षोडश सखाओं, सप्तद्वीपके भक्तों, जम्बूद्वीपके भक्तों, भगवान्के द्वारपालके रूपमें प्रतिष्ठित रहनेवाले इलापत्र, शेषनाग, पद्म, शंकु, कम्बल, वासुकि, कर्कोटक तथा तक्षक नामवाले अष्टनागों आदिका वर्णन किया है।

इस प्रकार भक्तमालके प्रारम्भिक २७ छप्पयोंमें सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापरमें हुए भक्त-चरित्रोंका वर्णन हुआ है। आगे छप्पय २८ से अन्ततक पूरे भक्तमालमें कलियुगके भक्तोंका वर्णन है।[1] २८वें छप्पयमें नाभादासजी बताते हैं कि जिस प्रकार पहले तीन युगोंमें भगवान्ने चौबीस अवतार धारण किये, उसी प्रकार कलियुगमें भक्तिकी प्रतिष्ठा करनेवाले आचार्योंका चतुर्व्यूह प्रकट हुआ। यथा—श्रीसम्प्रदायके सम्वर्धक दक्षिण भारतमें श्रीरामानुजाचार्य, उत्तर भारतमें श्रीरामानन्दाचार्य, रुद्रसम्प्रदायके सम्वर्धक आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी, ब्रह्मसम्प्रदायके सम्वर्धक श्रीमध्वाचार्यजी तथा सनकादिक सम्प्रदायके सम्वर्धक श्रीनिम्बार्काचार्यजी हुए। इन आचार्योंने जन्म लेकर स्वयं सत्कर्मों एवं सदाचारपूर्ण आचरण करके भागवद्धर्मकी सुदृढ़ प्रतिष्ठा की और कलियुगी जीवोंको भक्तिका मार्ग दिखाकर उनपर अपार कृपादृष्टि की। मूल छप्पय इस प्रकार है—

(श्री) रामानुज ऊदार सुधानिधि अवनि कल्पतरु।
बिष्नुस्वामि बोहित्थ सिंधु संसार पार करु॥
मध्वाचारज मेघ भक्ति सर ऊसर भरिया।
निम्बादित्य अदित्य कुहर अग्यान जु हरिया॥
जनम करम भागवत धरम संप्रदाय थापी अघट।
चौबीस प्रथम हरि बपु धरे (त्यों) चतुर्ब्यूह कलिजुग प्रगट॥

(भक्तमाल छप्पय २८)

आगेके छप्पयोंमें इन सम्प्रदायोंके आचार्योंका तथा उनकी शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा और उनके द्वारा बताये गये उपदेशोंका वर्णन है। तदनन्तर श्रुतिप्रज्ञ, श्रुतिदेव, लालाचार्य, भावानन्द, अनन्तानन्द, रंगजी, पयहारी श्रीकृष्णदास, कील्हदेव, अग्रदास, शंकराचार्य[2], नामदेव, जयदेव, बिल्वमंगल, ज्ञानदेव, कुलशेखर, कर्माबाई, जयमल, श्रीधरस्वामी, साक्षीगोपालभक्त, रैदास, कबीरदास, पीपा, धन्ना, सुखानन्द, नरहरियानन्द,

---

१. इसी दृष्टिसे भक्तमालके कुछ संस्करणोंमें पूर्वार्ध और उत्तरार्ध रूपसे भी भक्तमालका विभाजन किया गया है। २७वें छप्पयतक पूर्वार्ध और उसके आगे उत्तरार्ध।

२. **उतसृंखल अग्यान जिते अनईस्वरबादी। बुद्ध कुतर्की जैन और पाखंडहि आदी॥**
बिमुखनि को दियो दंड ऐंचि सन्मारग आने। सदाचार की सींव बिस्व कीरतिहि बखाने॥
ईस्वरांस अवतार महि मरजादा माँड़ी अघट। कलिजुग धर्मपालक प्रगट आचारज संकर सुभट॥ (भक्तमाल छप्पय ४२)

अर्थात् अधर्मप्रधान कलियुगमें वैदिक धर्मके रक्षक श्रीशंकराचार्यजीका अवतार हुआ। आप विधर्मियोंको शास्त्रार्थमें परास्त करनेवाले वाक्-वीर थे। वैदिक मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले उद्दण्ड, ईश्वरको न माननेवाले बौद्ध, शास्त्रविरुद्ध तर्क करनेवाले जैनी और पाखण्डी आदि जो लोग भगवान्से विमुख थे, उन्हें आपने दण्ड दिया। भय दिखाकर शास्त्रार्थमें हराकर उन्हें बलात् खींचकर सनातन धर्मके मार्गपर ले आये। आप सदाचारकी सीमा अर्थात् बड़े सदाचारी थे। सारा संसार आपकी कीर्तिका वर्णन करता है। आप भगवान् शंकरके अंशावतार थे। पृथ्वीपर प्रकट होकर आपने वेदशास्त्रकी सम्पूर्ण मर्यादाओंका इस प्रकार समर्थन और स्थापन किया कि उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं रही। वह अचल हो गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्यानन्द, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास, केशवभट्ट, विट्ठलनाथ, नारायणभट्ट, रूपसनातन, हितहरिवंश गोस्वामी, स्वामी हरिदास, जीवगोस्वामी, सदन कसाई, राँका-बाँका, कुम्भनदास, विद्यापति, नन्ददास, मीराबाई, गोस्वामी तुलसीदास, नारायणदास, छीतस्वामी, मधुकरिया भक्त, करमैतीबाई, मधुसूदनसरस्वती, लक्ष्मणभट्ट, गोविन्ददास भक्तमाली, श्रीहरिदास तथा श्रीलालमती आदि अनेकों भक्तोंकी नामावली और उनके मंगलमय पावन चरितका स्मरण किया गया है।

भक्तमालके चरित अत्यन्त रोचक तथा भगवद्भक्तिसे भरे हुए हैं। उसमें वर्णित तथा प्रियादासजीद्वारा विवेचित एक भक्त **करमैतीबाई**का पावन चरित दृष्टान्तके रूपमें यहाँ प्रस्तुत है—

पण्डित परशुरामजी जयपुरके अन्तर्गत खण्डेलाके सेखावत सरदारके राजपुरोहित थे। इनकी पुत्री करमैतीका मन बचपनसे ही भगवान्‌में लग गया था। वह बालिका निरन्तर श्रीकृष्णका ध्यान तथा नाम-जप किया करती थी।

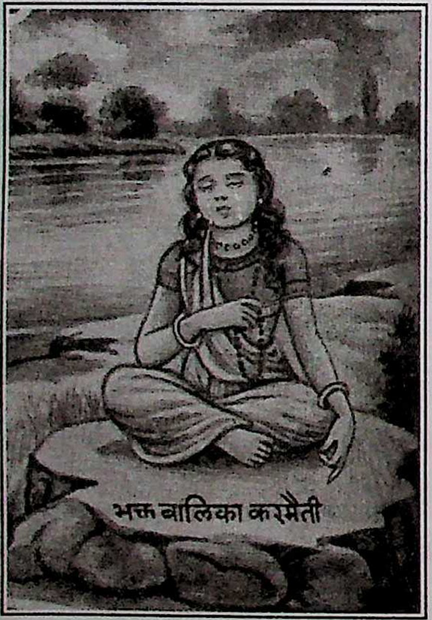

कभी वह 'हा नाथ! हा नाथ!' कहकर क्रन्दन करती, कभी कीर्तन करते हुए नाचने लगती और कभी हँसते-हँसते लोटपोट हो जाती। नन्ही-सी बच्चीके भगवत्प्रेमको देखकर घरके लोग प्रसन्न हुआ करते थे।

करमैतीकी इच्छा विवाह करनेकी नहीं थी; परंतु लज्जावश वह कुछ कह नहीं सकी। पिताने उसका विवाह कर दिया; लेकिन जब ससुरालवाले उसे लेने आये, तब वह व्याकुल हो उठी। जो शरीर श्यामसुन्दरका हो चुका, उसे दूसरेके अधिकारमें कैसे दिया जा सकता है! उसने अपने प्रभुसे प्रार्थना प्रारम्भ की और जो कातर होकर उन श्रीवृन्दावनचन्द्रको पुकारता है, उसे अवश्य मार्ग मिल जाता है। करमैतीको भी एक उपाय सूझ गया। आधी रातको जब कि सब लोग सो रहे थे, वह अकेली बालिका चुपचाप घरसे निकल पड़ी और वृन्दावनके लिये चल पड़ी।

सबेरे घरमें करमैतीके न मिलनेपर हलचल मच गयी। परशुराम पण्डित जानते थे कि उनकी पुत्री कितनी पवित्र है; किंतु लोकलाजके भयसे अपने यजमान राजाके पास गये। राजाने अपने पुरोहितकी सहायताके लिये चारों ओर घुड़सवार भेजे कि वे करमैतीको ढूँढ़ लावें। करमैती दौड़ी चली जा रही थी। रात्रिभरमें वह कितनी दूर निकल आयी, सो उसे पता ही नहीं। सबेरा होनेपर भी वह भागी ही जा रही थी कि उसने घोड़ोंकी टापका शब्द सुना। उसे डर लगा कि घुड़सवार उसे ही पकड़ने आ रहे हैं। आस-पास न कोई वृक्ष था और न कोई दूसरा छिपनेका स्थान; किंतु एक ऊँट मरा पड़ा था और रात्रिमें शृगालोंने उसके पेटका भाग खा लिया था। करमैतीकी दृष्टि ऊँटके पेटमें बनी कन्दरापर गयी। इस समय वह सांसारिक विषयोंकी भयंकर दुर्गन्धसे भाग रही थी। मरे ऊँटके शरीरसे निकलनेवाली गन्ध उसे विषयोंकी दुर्गन्धके सामने तुच्छ जान पड़ी। भागकर वह ऊँटके पेटमें छिप गयी। घुड़सवार पास आये तो दुर्गन्धके मारे उन्होंने उस ऊँटकी ओर देखातक नहीं। वहाँसे शीघ्रतापूर्वक वे आगे बढ़ गये और अन्तमें हताश होकर लौट गये। माता-पिता आदि भी पुत्रीके सम्बन्धमें निराश हो गये।

जिसकी कृपासे विष अमृत हो जाता है, अग्नि शीतल हो जाती है, उसीकी कृपावर्षा करमैतीपर हो रही थी। ऊँटके शरीरमें वह भूखी-प्यासी तीन दिन छिपी रही। उस सड़े ऊँटके शरीरकी गन्ध उसके लिये सुगन्धमें बदल गयी थी। चौथे दिन वह वहाँसे निकली। मार्ग उसका जाना हुआ नहीं था; किंतु जो सबका एकमात्र मार्गदर्शक है, उसकी ओर जानेवालेको मार्ग नहीं ढूँढ़ना पड़ता। मार्ग ही उसे ढूँढ़ लेता है। करमैतीको साथ मिल गया और वह वृन्दावन पहुँच गयी। वहाँ पहुँचकर मानो वह आनन्दके समुद्रमें मग्न हो गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब परशुराम पण्डितको अपनी पुत्रीका कहीं पता न लगा, तब वे वृन्दावन आये; लेकिन भला वृन्दावनमें करमैतीको जानता-पहचानता कौन था कि पता लगता। एक दिन वृक्षपर चढ़कर परशुराम पण्डित इधर-उधर देख रहे थे। ब्रह्मकुण्डपर उन्हें एक वैरागिनी दिखायी पड़ी। वहाँ जानेपर उन्होंने देखा कि साधुवेशमें करमैती ध्यानमग्न बैठी है। पुत्रीकी दीन-हीन बाहरी दशा देखकर पिताको शोक तो हुआ; परंतु उसके भगवत्प्रेमको देखकर वे अपनेको धन्य मानने लगे। कई घण्टे बैठे रहनेपर भी जब करमैतीका ध्यान भंग नहीं हुआ, तब पिताने उसे हिला-डुलाकर जगाया। वे उससे घर चलकर भजन करनेका आग्रह करने लगे। करमैतीने कहा—'पिताजी! यहाँ आकर भी कोई कभी लौटा है। मैं तो व्रजराजकुमारके प्रेममें डूबकर मर चुकी हूँ। अब मुर्दा यहाँसे उठे कैसे?'

अन्ततः परशुरामजी उसके भक्तिभावको देखकर वापस घर लौट गये। राजाने जब यह समाचार सुना, तब वह भी करमैतीके दर्शन करने वृन्दावन आया। राजाके बहुत आग्रह करनेपर करमैतीबाईने एक छोटी कुटिया बनवाना स्वीकार कर लिया। राजाने करमैतीबाईके लिये ब्रह्मकुण्डके पास एक मठिया बना दी। करमैतीबाईकी भक्तिने राजाको भी भक्त बना दिया।

इसी प्रकार भक्तमालमें अनेकानेक भक्तोंके पावन चरित्रोंका रोचक वर्णन हुआ है।

श्रीनाभादासजी कहते हैं कि संसारमें जितने भक्त हैं, उन सबका वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसमें है? यह तो वैसे ही असम्भव है, जैसे कोई चिड़िया सब समुद्रोंका जल पी लेनेका विचार करे तो उसके उदरमें समुद्रका जल कैसे अट सकता है?—

भक्त जिते भूलोक मैं कथे कौन पै जायँ।
समुँद पान श्रद्धा करै कहँ चिरि पेट समायँ॥

(दोहा २०४)

नाभादासजी कहते हैं—जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसकी शाखा-पत्ते—सब अंग-प्रत्यंग पुष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार इस भक्तमालमें वर्णित आचार्यों एवं भक्तोंके वर्णनसे दूसरे भक्तों, जिनका इसमें वर्णन नहीं है, की भक्ति एवं महिमाको भी समझकर सन्तोष करना चाहिये। भगवद्विग्रह (शालग्राम) या तुलसीदल छोटा हो अथवा बड़ा—सबकी महिमा एक-जैसी है, उसी प्रकार भगवद्भक्तजन छोटे हों या बड़े—सभी अनन्तगुणोंके कारण महान् महिमावाले हैं। भक्तमालमें यदि किसीका वर्णन पहले हो गया हो, किसीका बादमें तो यह अपराध क्षन्तव्य है—

श्रीमूरति सब बैष्नव लघु बड़ गुननि अगाध।
आगे पीछे बरनते जिनि मानौ अपराध॥

(दोहा २०५)

महाभागवत श्रीनाभादासजी भक्तचरितवर्णनके विषयमें अपना विनय प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि चारों युगोंमें जितने भी भक्त हुए हैं तथा जो आगे होंगे, उन सबके चरणकमलोंकी धूलि हमारे मस्तकपर सदा विराजमान रहे; क्योंकि वही मेरा सर्वस्व है। इस भक्तमालग्रन्थमें मैंने कुछ नया नहीं कहा है, पूर्वमें महर्षि वाल्मीकि, व्यासजी, श्रीशुकदेवजीप्रभृति जिन-जिन महानुभावोंने भक्तों तथा भगवच्चरित्रका वर्णन किया है, उन्हींका उच्छिष्ट पाकर मैंने अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार भक्तमालकी रचना की है। फसल कटनेके बाद खेतमें अनाजके जो दाने पड़े रह जाते हैं, जैसे उन्हें कोई बीनता हो, मेरा यह प्रयास भी वैसा ही है। इस भक्तमालकी रचनामें पूर्ववर्ती महानुभावोंका मैंने आश्रय लिया है, मेरा इसमें कुछ भी नहीं है।

ग्रन्थके उपसंहारमें श्रीनाभादासजी कहते हैं—किसीको योगका भरोसा है, किसीको यज्ञका, किसीको कुलका और किसीको अपने सत्कर्मोंका, किंतु मुझ नारायण (नाभादास)-की तो केवल यही अभिलाषा है कि गुरुदेवकी कृपासे भक्तोंकी यह माला मेरे हृदयदेशमें सदा विराजमान रहे—

काहू के बल जोग जग्य, कुल करनी की आस।
भक्त नाम माला अगर (उर) बसौ नारायनदास॥

(भक्तमाल दोहा २१४)

नाभादासजीकी यह दृढ़ धारणा है कि भक्तगुणगानके अतिरिक्त इस भवसागरसे उद्धारका अन्य कोई उपाय नहीं है—***'भवसागर के तरन को नाहिन और उपाउ।'***

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार आद्योपान्त सम्पूर्ण भक्तमालग्रन्थ भक्तोंकी महिमा, उनके पवित्र नामोंके स्मरण तथा उनकी मंगलमयी लीलाकथाओंके प्रतिपादनमें पर्यवसित है। यह किसी सम्प्रदाय-परम्पराका प्रवर्तक ग्रन्थ नहीं है। इसमें सभी सम्प्रदायोंके भक्तोंकी महिमाका प्रतिपादन हुआ है। भक्त शब्द अत्यन्त व्यापक है, राम, कृष्ण, शिव, सूर्य, दुर्गा, गणेश—सभीके उपासक भक्त ही कहलाते हैं।

भक्तमालकी शैली पद्यात्मक होनेसे बड़ी ही सुन्दर तथा गेय है। भक्तों तथा सन्तोंके समाजमें इसका बड़ा ही आदर है और वैष्णवसमाजका तो यह कण्ठहार ही है। अनेक सन्तोंको यह सम्पूर्ण भक्तमाल कण्ठ है तथा यत्र-तत्र इसकी कथाओंका गायन होता रहता है। भगवान् भी अपने प्रेमी भक्तोंकी कथा सुनकर बहुत आनन्दित होते हैं। भक्तमालकी कथा करनेवाले सन्त-आचार्य अपनेको '**भक्तमाली**' कहनेमें बड़े गौरवका अनुभव करते हैं, जिस प्रकार भागवत आदिका सत्संग होता है, वैसे ही भक्तमालकी कथाएँ भी बड़े समारोहपूर्वक गायी एवं सुनी जाती हैं। यह ग्रन्थ आबाल-वृद्ध, नर-नारी, विद्वानों तथा कम पढ़े-लिखे—सभीके लिये महान् उपयोगी है। जिस प्रकार कलियुगके जीवोंका निस्तार करनेके लिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने वाल्मीकीय रामायणको रामचरितमानसके रूपमें भाषामें रच दिया, उसी प्रकार श्रीनाभादासजीने भागवतपुराणको भक्तमालके रूपमें पद्योंके रूपमें प्रस्तुतकर सर्वसुलभ बना दिया, इतना ही नहीं उसमें कलियुगके भक्तोंको जोड़कर उसे और भी महनीय बना दिया। यह श्रीनाभादासजीका जगत्पर महान् उपकार है। सभी सम्प्रदायाचार्यों एवं सभी सम्प्रदायके सन्तोंका समान-भावसे श्रद्धापूर्वक स्मरण—यह भक्तमालकी सबसे बड़ी विशेषता है।

श्रीनाभादासजीका पावनस्मरण

किसी भी ग्रन्थकी महिमा, मान्यता उसके रचयिताके व्यक्तित्वसे सम्बन्धित होनेके कारण होती है, श्रीनाभादासजीका जन्म-कर्म दिव्य था, इसी कारण भक्तमाल भी दिव्य ग्रन्थके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ। आपकी सबसे बड़ी विशेषता थी कि आपने जन्म लेकर अपने नेत्र बन्द ही रखे। जगत्को देखा ही नहीं, सन्त गुरुदेवकी कृपा हो गयी, तब आपने नेत्र खोले। सर्वप्रथम गुरुगोविन्दके ही दर्शन किये। सन्तोंकी कृपासे दिव्य विलक्षण दृष्टि प्राप्त हुई और उन्हींकी कृपासे उनकी आज्ञाके पालनके लिये भक्तमालकी रचना की। श्रीनाभादासजीका दूसरा नाम था श्रीनारायणदास। श्रीनाभादासजी श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके महान् आचार्य रहे हैं। श्रीनाभादासजीने श्रीअग्रदासजीको[1] अपना गुरु और अपनेको उनका सहचर बताया है और उन्हींकी आज्ञासे उन्होंने भक्तमाल ग्रन्थकी रचना की। अग्रदासजीके गुरु थे पयहारी श्रीश्रीकृष्णदासजी[2] और कृष्णदासजी श्रीअनन्तानन्दजीके शिष्य थे, जो कि श्रीरामानन्दजीके साक्षात् शिष्योंमें प्रधान शिष्य थे।

इस प्रकार नाभादासजीकी गुरु-परम्परा इस प्रकार बनती है—

श्रीरामानन्दाचार्य
↓
श्रीअनन्तानन्द
↓
श्रीकृष्णदास पयहारी
↓ ↓
श्रीकील्हदासजी श्रीअग्रदासजी
↓
श्रीनाभादासजी

१. भक्तमालमें श्रीनाभादासजीने अपने गुरुदेव श्रीअग्रदासजीका स्मरण इस छप्पयमें इस प्रकार किया है—

सदाचार ज्यों संत प्रात जैसे करि आए। सेवा सुमिरन सावधान (चरन) राघव चित लाए॥
प्रसिध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरंतर। रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर॥
(श्री) कृष्णदास कृपा करि भक्ति दत मन बच क्रम करि अटल दयो।
(श्री) अग्रदास हरि भजन बिन काल बृथा नहिं बित्तयो॥ (भक्तमाल छप्पय ४१)

अर्थात् श्रीस्वामी अग्रदासजीने भगवद्भजनके बिना क्षणमात्र समयको भी व्यर्थ नहीं बिताया। आपका वैष्णव सदाचार पूर्ववर्ती (प्राचीन) आचार्योंके समान ही था। आप सदा मानसी सेवा एवं प्रकट विग्रहसेवामें तथा भगवन्नामस्मरणमें सावधान रहते थे। सदा राघवेन्द्र सरकारके श्रीचरणोंमें मनको लगाये रहते थे। (सीताराम विहार) प्रसिद्ध बागमें आपकी बड़ी प्रीति थी, उसे सींचने, बुहारने आदिकी सब सेवाएँ सदा अपने हाथसे ही करते थे। आपकी जिह्वासे परम पवित्र श्रीसीताराम नामकी ध्वनि इस प्रकार होती रहती थी, मानो मधुर गर्जनके साथ मन्द-मन्द वर्षा हो रही है। गुरुदेव पयहारी श्रीकृष्णदासजीने परमकृपा करके मन-वचन-कर्मसे सम्बन्धित अचल भक्तिका भाव आपको प्रदान किया था।

२. भक्तमालमें श्रीपयहारीजीका वर्णन इस रूपमें किया गया है—

जाके सिर कर धर्यो तासु कर तर नहिं अड्ड्यो। आप्यो पद निर्बान सोक निर्भय करि अड्ड्यो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनाभादासजीने अपनी जीवनीके विषयमें भक्तमालमें कोई उल्लेख नहीं किया तथापि श्रीप्रियादासजीने भक्तमालकी टीका भक्तिरसबोधिनीके कवित्त-संख्या १२-१३ में श्रीनाभादासजीकी प्रारम्भिक अवस्थाका वर्णन किया है, तदनुसार उनका जन्म प्रसिद्ध हनुमान-वंशमें हुआ था, वे जन्मान्ध थे। दुर्भिक्ष (अकाल)-के समयमें उनके माता-पिता उन्हें जंगलमें छोड़ गये थे। दैवयोगसे उसी जंगलमें श्रीकील्हजी और श्रीअग्रजी आ निकले। उस पाँच वर्षके अन्धे अनाथ बालकको एकान्त जंगलमें भटकता देखकर श्रीकील्हजीको दया आ गयी। उन्होंने अपने कमण्डलुसे थोड़ा-सा जल लेकर बालककी आँखोंपर छींटा दिया तो उनमें ज्योति आ गयी और बालकको दिखायी पड़ने लगा और कृतज्ञतावश उनकी आँखोंसे आँसू निकलने लगे। नाभाजी दोनों महात्माओंके पैरोंमें गिर पड़े। बालककी प्रतिभा तथा विनयसे वे दोनों महानुभाव बड़े प्रभावित हुए और उसे गलता (जयपुर) ले आये। कील्हजीकी अनुमतिसे श्रीअग्रदासजीने उन्हें मन्त्रोपदेश दिया। जब यह बालक कुछ बड़ा हुआ तो इसे स्थानकी सेवा-टहल करनेमें लगा दिया गया। श्रीनाभाजीकी प्रारम्भसे ही सन्त-सेवा और सन्तोंसे प्राप्त प्रसादके ग्रहण करनेमें विशेष रुचि थी। उसीके प्रभावसे उनकी बुद्धि दिव्य हो गयी, उन्हें भक्तिका आस्वाद मिल गया और उनका अन्तःकरण प्रभुप्रेमके रंगमें सराबोर हो गया। फिर उन्होंने गुरुदेवकी आज्ञासे भक्तिरससे आप्लावित भक्तमालकी रचना की।

नाभाजीके सम्बन्धमें कई दन्तकथाएँ भी प्रचलित हैं। एक किंवदन्तीके अनुसार नाभाजीको ब्रह्माजीका अवतार बताया गया है और कहा गया है कि एक बार ब्रह्माजीने व्रजके सब ग्वालबालों तथा गौओं और बछड़ोंका हरण कर लिया था। इसपर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी योगमायाके प्रभावसे वैसे ही अन्य ग्वाल-बालों, गौओं तथा बछड़ोंकी सृष्टि कर दी, व्रजके लोगोंको इस बातका पता ही नहीं लगा। बादमें ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णसे अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी तो भगवान्ने उन्हें इतना ही दण्ड दिया कि तुम कलियुगमें नेत्रहीन होकर जन्म ग्रहण करोगे, किंतु तुम्हारा यह अन्धापन केवल पाँच वर्षतक ही रहेगा। बादमें महात्माओंकी कृपासे तुम्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त होगी। इस किंवदन्तीके अनुसार ब्रह्माजी ही नाभादासजीके रूपमें अन्धे बालकके रूपमें उत्पन्न हुए और बादमें श्रीकील्हजी तथा श्रीअग्रदासकी कृपासे उन्हें दृष्टि प्राप्त हुई।

नाभादासजीके माता-पिता, कुल, ग्राम आदिका कोई प्रामाणिक वर्णन प्राप्त नहीं होता है। उनके दीक्षागुरु स्वामी श्रीअग्रदासजी थे और प्रायः सभी ऐसा मानते हैं कि श्रीनाभादासजीका सम्बन्ध जयपुर गलता गद्दीसे था और इनका समय विक्रम संवत् सत्रहवींके आसपासका है।

भक्तमालकी टीका

नाभादासजीके भक्तमालसे पूर्व भी भक्तमहिमा-सम्बन्धी कथाओंका प्रचार अत्यन्त प्राचीनकालसे संस्कृत तथा अन्य भाषाओंमें होता आया है तथा भक्तमालके बाद भी अनेक भक्तमाल रचे गये, किंतु नाभादासजीके भक्तमालकी जैसी प्रतिष्ठा हुई, वैसा स्थान किसी ग्रन्थको प्राप्त न हो सका। इसी कारण भक्तमालकी रचनाके बाद इसपर अनेक टीकाएँ तथा टिप्पणियाँ लिखी जाने लगीं। गद्यात्मक अथवा छन्दोबद्ध शैलीमें बहुत-सी टीकाएँ लिखी गयीं, किंतु उनमेंसे सं० १७६९ में लिखी गयी श्रीप्रियादासजीकी टीकाका सर्वाधिक प्रचार हुआ, श्रीप्रियादासजीने अपनी टीकाका नाम रखा—'**भक्तिरसबोधिनी।**' वास्तवमें यह एक ऐसी टीका है, जो

तेजपुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता। सेवत चरन सरोज राय राना भुवि जेता॥
दाहिमा बंस दिनकर उदय संत कमल हिय सुख दियो। निर्बेद अवधि कलि कृष्नदास अन परिहरि पय पान कियो॥

(भक्तमाल छप्पय ३८)

अर्थात् इस कराल कलिकालमें पयहारी श्रीकृष्णदासजी वैराग्यकी सीमा हुए। आपने अन्नका त्यागकर केवल दुग्धपान करके भजन किया। इसीलिये आप 'पयहारी' इस नामसे विशेष प्रसिद्ध हुए। आपने जिसके सिरपर अपना हाथ रखा अर्थात् शिष्य करके जिसे अपनाया, उसके हाथके नीचे अपना हाथ कभी नहीं फैलाया अर्थात् उससे याचना नहीं की, वरन् उसे भगवत्पद—मोक्षका अधिकारी बना दिया और सांसारिक शोक-मोहसे सदाके लिये छुड़ाकर अभय कर दिया। श्रीपयहारीजी भक्तिमय तेजके समूह थे और आपमें अपार भजनका बल था। बालब्रह्मचारी एवं योगी होनेके कारण आप ऊर्ध्वरेता हो गये थे। भारतवर्षके छोटे-बड़े जितने राजा-महाराजा थे, वे सभी आपके चरणोंकी सेवा करते थे। दधीचिवंशी ब्राह्मणोंके वंशमें उदय (उत्पन्न) होकर आपने भक्तिके प्रतापसे भक्तोंके हृदयकमलोंको सुख दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तमालके मूल भावों तथा कथाओंको विस्तारसे विवेचित करके अति सरस रूपमें भक्तकथा—चरित्रको प्रस्तुत करती है। श्रीनाभादासजीने अपने छप्पयोंमें किसी छप्पयमें एक भक्तका तथा किसी छप्पयमें बीसों भक्तोंका नाम-स्मरण करके उनकी कथाका संकेतमात्र कर दिया है, किंतु श्रीप्रियादासजीने उन भक्तोंका चरित्र विस्तारसे बड़ी ही सरस भाषामें प्रस्तुत किया है, उदाहरण के लिये गुजरातमें नरसी मेहता नामक महान् भक्त हुए हैं, जिनका वर्णन श्रीनाभाजीने केवल एक छप्पय (सं० १०८)-में किया है, किंतु इसी छप्पयकी पूरी कथा श्रीप्रियादासजीने २५ कवित्तोंमें बड़े रोचक ढंगसे प्रस्तुत की है।

भक्तमालके दोहे तथा छप्पयोंकी कुल संख्या २१४ है, जिसकी टीकामें प्रियादासजीने ६३४ कवित्त रचे हैं। बिना प्रियादासजीकी टीकाके भक्तमालका अर्थ लगाना तथा कथाका स्वारस्य प्राप्त होना बड़ा कठिन है। जैसे वेदमन्त्रोंके निगूढ़ अर्थोंको भाष्यकार श्रीसायणाचार्यने खोला है, वैसे ही भक्तमालकी कथाओंको बिना प्रियादासजीकी टीकाके समझना बड़ा ही दुरूह है। इससे श्रीनाभादासजीके हार्दिक अभिप्रायोंको समझनेमें बड़ी सहायता मिलती है, यही कारण है कि सन्त-समाजमें इसका मूल भक्तमालके समान ही आदर-मान है। भक्तमालकी संरचना छप्पय छन्दोंमें हुई है तो प्रियादासने उसकी टीका कवित्त छन्दोंमें की है।

इसका रहस्य बताते हुए श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि एक बार मैं महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यजी एवं अपने गुरुदेव श्रीमनोहरदासजीके श्रीचरणोंका अपने हृदयमें ध्यान कर रहा था तथा मुखसे नामसंकीर्तन कर रहा था, उसी समय श्रीनाभादासजीने मुझे आज्ञा दी कि श्रीभक्तमालकी विस्तारपूर्वक टीका करके मुझे सुनाइये, वह टीका कवित्त नामक छन्दोंमें हो; क्योंकि यह छन्द अत्यन्त प्रिय लगता है, जिससे यह भक्तमालकी टीका सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध हो जाय। इतना कहकर नाभाजीने अपनी वाणीको विराम दिया, तब मैंने उनसे कहा—प्रभो! मैं अपनी बुद्धिकी सीमाको भलीभाँति जानता हूँ तथापि मुझे विश्वास है कि मेरे हृदयमें प्रविष्ट होकर कृपा करके आप इसे पूरा करा देंगे। उपर्युक्त घटनाका वर्णन प्रियादासजीने अपनी टीकामें किया है।*

श्रीप्रियादासजीका विशेष वर्णन प्राप्त नहीं हो पाता। बताया जाता है कि इनका जन्म राजपुरा नामक ग्राम-सूरत (गुजरात)-में हुआ। ये नवीन अवस्थामें वृन्दावन आ गये और श्रीराधारमणजीके मन्दिरमें श्रीमनोहरदासजीके शिष्य हुए। गुरुदेवकी आज्ञासे तीर्थाटन किया। प्रयाग, अयोध्या, चित्रकूट आदि धामोंमें भगवद्दर्शनकर गलता गद्दी जयपुर पधारे और कुछ दिन वहाँ रहे। यहींपर मानसीसेवाके समय श्रीनाभादासजीने दर्शन देकर भक्तमालकी छन्दोबद्ध टीका लिखनेकी आज्ञा दी। उनकी टीका भक्तिरसबोधिनीके तीन कवित्तों (६३०-६३१, ६३३)-के आधारपर पता चलता है कि वे चैतन्यसम्प्रदायके अनुयायी थे और उनके गुरु महाराजका नाम था श्रीमनोहरदासजी। उन्होंने सं० १७६९ फाल्गुन कृष्णपक्ष सप्तमीको श्रीवृन्दावनधाममें भक्तमालकी टीका पूर्ण की।

श्रीप्रियादासजी प्रारम्भके सात कवित्तोंमें भक्तिका स्वरूप, सत्संगकी महिमा, नाभाजीका गुणानुवाद तथा भक्तमालकी महिमा और अपनी टीकाकी विशेषता बतानेके अनन्तर आठवें कवित्तमें यह सिद्धान्त निश्चित करते हैं कि भगवत्कृपाको प्राप्त करनेके लिये जिन गुणोंकी आवश्यकता है; वे गुण, वह योग्यता भक्तोंके चरित्रको सुननेसे ही आती है; क्योंकि अन्य साधनोंमें साधनाका अभिमान आनेकी सम्भावना रहती है, परंतु भक्त-चरित्र-श्रवणसे विनय, दैन्य एवं शरणागत होनेका भाव पैदा होता है, इसलिये भक्तिका सच्चा अधिकारी बननेके लिये भक्तोंके चरित्रोंका श्रवण करना आवश्यक है। जो उपासक भक्तोंके चरित्रोंकी अवहेलना करके अन्य साधनोंका आश्रय लेता है, वह भक्तिके सूक्ष्म स्वरूपको नहीं जान सकता, बिना भक्तमालके (श्रवण किये) भक्तिका स्वरूप बहुत ही दूर रहता है—

'ऐ पै बिना भक्तमाल भक्तिरूप अति दूर है॥' (कवित्त ८)

—राधेश्याम खेमका

---

* **महाप्रभु कृष्णचैतन्य मनहरनजू के चरण कौ ध्यान मेरे नाम मुख गाइये।**
ताहि समय नाभाजू ने आज्ञा दई लई धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइये॥
कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै जगै जग माहिं कहि वाणी विरमाइये।
जानों निजमति ऐ पै सुन्यौ भागवत शुक द्रुमनि प्रवेश कियो ऐसेई कहाइये॥ (भक्तिरसबोधिनी टीका कवित्त संख्या १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभक्तमाल

श्रीनाभादासजीकृत भक्तमालका मंगलाचरण

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इन के पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥ १॥
मंगल आदि बिचारि रहि बस्तु न और अनूप।
हरिजन को जस गावते हरिजन मंगलरूप॥ २॥
संतन निरनै कियो मथि श्रुति पुरान इतिहास।
भजिबे को दोई सुघर कै हरि कै हरिदास॥ ३॥
(श्रीगुरु) अग्रदेव आग्या दई भक्तन को जस गाउ।
भवसागर के तरन को नाहिन और उपाउ॥ ४॥

भगवान्‌के भक्त, भगवान्‌की भक्ति, भगवान् और भगवत्तत्त्वका बोध करानेवाले गुरुदेव—ये अलग-अलग चार नाम और चार वपु हैं, पर वास्तवमें इनका वपु (स्वरूप—तत्त्व) एक ही है। इनके श्रीचरणोंकी वन्दना करनेसे समस्त विघ्नोंका पूर्णरूपसे नाश हो जाता है॥ १॥ ग्रन्थके आरम्भमें मंगलाचरणके सम्बन्धमें विचार करनेपर यही समझमें आता है कि भक्त-चरित्रोंके समान दूसरी और कोई वस्तु सुन्दर नहीं है, जिससे मंगलाचरण किया जाय। भगवद्भक्तोंका चरित्रगान करनेमें भगवद्भक्त ही मंगलरूप हैं॥ २॥ वेद, पुराण, इतिहास आदि सभी शास्त्रोंने तथा सभी साधु-सन्तोंने यही निर्णय किया है कि भजन, आराधनाके लिये भगवान् या भगवान्‌के भक्त—दो ही सबसे सुन्दर हैं॥ ३॥ स्वामी श्रीअग्रदेवजी (श्रीअग्रदासजी)-ने मुझ नारायणदास (नाभादास)-को आज्ञा दी कि भक्तोंका यशोगान करो; क्योंकि संसार-सागरसे पार होनेका इससे सरल दूसरा कोई उपाय नहीं है॥ ४॥

श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीकाका मंगलाचरण

महाप्रभु कृष्णचैतन्य मनहरनजू के चरण कौ ध्यान मेरे नाम मुख गाइये।
ताही समय नाभाजू ने आज्ञा दई लई धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइये॥
कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै जगै जग माहिं कहि वाणी विरमाइये।
जानों निजमति ऐ पै सुन्यौ भागवत शुक द्रुमनि प्रवेश कियो ऐसेई कहाइये॥ १॥

श्रीप्रियादासजी भक्तमालकी भक्तिरसबोधिनी टीकाका मंगलाचरण एवं इस टीकाके लिखे जानेका हेतु बताते हुए कहते हैं कि एक बार मैं महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य एवं गुरुदेव श्रीमनोहरदासजीके श्रीचरणकमलका हृदयमें ध्यान और मुखसे नाम-संकीर्तन कर रहा था, उसी समय श्रीनाभाजीने मुझे आज्ञा दी, जिसे मैंने शिरोधार्य कर लिया। वह आज्ञा यह थी कि श्रीभक्तमालकी विस्तारपूर्वक टीका करके सुनाइये। टीका कवित्त छन्दोंमें कीजिये, जो कि अत्यन्त प्रिय लगे और सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध हो। इस प्रकार भक्तोंका चरित्र कहकर अपनी वाणीको विश्राम दीजिये अर्थात् भक्तोंका चरित्र कहनेमें वाणीको लगा दीजिये। ऐसा कहकर श्रीनाभाजीने वाणीको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्राम दिया, तब मैंने भावनामें ही निवेदन किया कि मैं तो अपनी बुद्धिको जानता हूँ कि वह टीका करनेमें सर्वथा असमर्थ है, परंतु मैंने श्रीमद्भागवतमें सुना है कि श्रीशुकदेवजी वृक्षोंमें प्रवेश करके स्वयं बोले थे, वैसे ही आप भी मेरी जड़मतिमें प्रवेश करके टीकाकी रचना करा लेंगे॥ १॥

भक्तिरसबोधिनी टीकाका नामस्वरूप-वर्णन

रची कविताई सुखदाई लागै निपट सुहाई औ सचाई पुनरुक्ति लै मिटाई है।
अक्षर मधुरताई अनुप्रास जमकाई अति छवि छाई मोद झरी सी लगाई है॥
काव्य की बड़ाई निज मुख न भलाई होति नाभाजू कहाई, याते प्रौढ़िकै सुनाई है।
हृदै सरसाई जो पै सुनिये सदाई, यह 'भक्तिरसबोधिनी' सुनाम टीका गाई है॥ २॥

इस कवित्तमें श्रीप्रियादासजी अपने काव्यकी विशेषताएँ एवं टीकाका नाम बताते हुए कहते हैं कि मैंने टीका-काव्यकी ऐसी रचना की है, जो पाठकों और श्रोताओंको सुख देनेवाली है और अत्यन्त सुहावनी लगती है। इसमें सचाई है अर्थात् सत्य-सत्य कहा गया है। पुनरुक्ति दोषको मिटा दिया गया है। अक्षरोंकी मधुरता, अनुप्रास और यमक आदि अलंकारोंसे अत्यन्त सुशोभित होकर इस टीका-काव्यने आनन्दकी झरी-सी लगा दी है। अपने काव्यकी अपने मुखसे प्रशंसा करना अच्छा नहीं होता, परंतु इसे तो श्रीनाभाजीने कहवाया है, इसीसे इसकी प्रशंसा निःशंक होकर दृढ़तापूर्वक सुनायी है। यदि नीरस हृदयवाला व्यक्ति भी सदा इसका श्रवण करे तो उसके हृदयमें सरसता होगी और सरस हृदयवालेके लिये बारम्बार सुननेपर भी यह टीका उत्तरोत्तर सरस प्रतीत होगी। ऐसी यह 'भक्तिरसबोधिनी' सुन्दर नामवाली टीका गायी है, जो भक्तिके सभी रसोंका बोध करानेवाली है॥ २॥

श्रीभक्तिदेवीका शृंगार

श्रद्धाई फुलेल औ उबटनौ श्रवण कथा मैल अभिमान अंग अंगनि छुड़ाइये।
मनन सुनीर अन्हवाइ अंगुछाइ दया नवनि वसन पन सोधो लै लगाइये॥
आभरन नाम हरि साधु सेवा कर्णफूल मानसी सुनथ संग अंजन बनाइये।
भक्ति महारानीकौ सिंगार चारु बीरी चाह रहै जो निहारि लहै लाल प्यारी गाइये॥ ३॥

शृंगारित रूप विशेष आकर्षक होता है, अतः इष्टदेवको प्रसन्न करनेके लिये टीकाकारने इस कवित्तमें श्रीभक्तिदेवीके शृंगारका वर्णन एक रूपकके द्वारा किया है। भक्तिदेवीके श्रीविग्रहकी निर्मलताके लिये श्रद्धारूपी फुलेलसे शुष्कता दूरकर कथाश्रवणरूपी उबटन लगाइये और अहंकाररूपी मैलको प्रत्येक अंगसे छुड़ाइये। फिर मननके सुन्दर जलसे स्नान कराकर दयाके अँगोछेसे पोंछिये। उसके बाद नम्रताके वस्त्र पहनाकर भक्तिमें प्रतिज्ञारूपी सुगन्धित द्रव्य लगाइये। फिर नाम-संकीर्तनरूप अनेक आभूषण, हरि और साधुसेवाके कर्णफूल तथा मानसी सेवाकी सुन्दर नथ पहनाइये। फिर सत्संगरूपी अंजन लगाइये। जो भक्तिमहारानीका इस प्रकार शृंगार करके फिर उन्हें अभिलाषारूपी बीड़ा (पान) अर्पण करके उनके सुन्दर स्वरूपका दर्शन करता रहे, वह श्रीप्रिया-प्रियतमको प्राप्त करता है। ऐसा सन्तों एवं शास्त्रोंने गाया है॥ ३॥

भक्तिरसबोधिनी टीकाकी महिमा

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, औ शृंगारु चारु, पाँचों रस सार विस्तार नीके गाये हैं।
टीका को चमत्कार जानौगे विचारि मन, इनके स्वरूप मैं अनूप लै दिखाये हैं॥
जिनके न अश्रुपात पुलकित गात कभू, तिनहूँ को भाव सिंधु बोरि सो छकाये हैं।
जौलौं रहैं दूर रहैं विमुखता पूर हियो, होय चूर चूर नेकु श्रवण लगाये हैं॥ ४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कवित्तमें टीकाकार टीकाकी विशेषता बताते हुए कहते हैं कि इस भक्तिरसबोधिनी-टीकामें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार—भक्तिके इन पाँचों रसोंका तत्त्व विस्तारसे अच्छी प्रकार वर्णन किया गया है। इनके सुन्दर स्वरूपोंको जैसा मैंने भलीभाँति उत्तम रीतिसे वर्णन करके दिखाया है, इस चमत्कारको पाठक एवं श्रोता अपने मनमें अच्छी तरहसे विचार करनेपर ही जानेंगे। श्रवण, कीर्तन आदि करके प्रेमवश जिनके नेत्रोंमें कभी भी आनन्दके आँसू नहीं आते हैं और शरीरमें रोमांच नहीं होता है, ऐसे नीरस, कठोर हृदयवाले लोगोंको भी भक्तिके भावरूपी समुद्रमें डुबाकर तृप्त कर दिया गया है। जबतक वे इससे दूर हैं, तभीतक भक्तिसे पूर्ण विमुख हैं, किंतु यदि कान लगाकर इसका थोड़ा भी श्रवण करेंगे तो उनका हृदय चूर-चूर होकर रससे परिपूर्ण हो जायगा॥ ४॥

भक्तमालकी महिमा

पंच रस सोई पंच रंग फूल थाके नीके, पीके पहिराइवे को रचिकै बनाई है।
वैजयन्ती दाम भाववती अलि 'नाभा', नाम लाई अभिराम श्याम मति ललचाई है॥
धारी उर प्यारी, किहूँ करत न न्यारी, अहो! देखौ गति न्यारी ढरियापनको आई है।
भक्ति छबिभार, ताते, नमितशृंगार होत, होत वश लखै जोई याते जानि पाई है॥ ५॥

प्रस्तुत कवित्तमें श्रीभक्तमालको पंचरंगी वैजयन्ती माला बताकर उसकी महिमा, सुन्दरता और भगवत्प्रियताका वर्णन किया गया है। पूर्व कवित्तमें कहे गये पाँच रस ही मानो फूलोंके सुन्दर गुच्छे हैं, भाववती नाभा नामकी सखीने अपने प्रियतमको पहनानेके लिये इसे अच्छी तरहसे बनाया है। यह वैजयन्ती माला इतनी सुन्दर है कि लोकाभिराम श्यामसुन्दर श्रीरामकी बुद्धि भी इसे देखकर ललचा गयी। उन्होंने इस प्यारी वनमालाको अपने वक्षःस्थलपर धारण किया, उन्हें यह इतनी प्रिय लगी कि इसे वे कभी भी अपने कण्ठसे अलग नहीं करते हैं। इस मालाकी विचित्र गति तो देखिये कि भगवान्ने इसे कण्ठमें धारण किया और यह लटककर श्रीचरणोंमें आ लगी है। इस मालामें भक्तिकी सुन्दरताका भार है, इसीसे झुकी है। पंचरंगी भक्तमाल पहने हुए श्यामसुन्दरका जो दर्शन करता है, वह उनके वशमें होकर उन्हें वशमें कर लेता है। यह रहस्यकी बात भक्तमालके द्वारा जानी गयी है॥ ५॥

संतसंगके प्रभावका वर्णन

भक्ति तरु पौधा ताहि विघ्न डर छेरीहू कौ, वारिदै बिचारि वारि सींच्यो सत्संग सों।
लाग्योई बढ़न, गोंदा चहुँदिशि कढ़न सो चढ़न अकाश, यश फैल्यो बहुरंग सों॥
संत उर आल बाल शोभित विशाल छाया, जिये जीव जाल, ताप गये यों प्रसंग सों।
देखौ बढ़वारि जाहि अजाहू की शंका हुती, ताहि पेड़ बाँधे झूमें हाथी जीते जंग सों॥ ६॥

भक्तिका वृक्ष जब साधकके हृदयमें छोटे-से पौधेके रूपमें होता है, तब उसे हानिका भय मायारूपी बकरीसे भी होता है, अतः पौधेकी रक्षाके लिये उसके चारों ओर विचाररूपी घेरा (थाला) लगाकर सत्संगरूपी जलसे सींचा जाता है, तब उसमें चारों ओरसे शाखा-प्रशाखाएँ निकलने लगती हैं और वह आकाशकी ओर चढ़ने-बढ़ने लगता है। सरल साधुहृदयरूप थालेमें सुशोभित इस विशाल भक्ति-वृक्षकी छाया अर्थात् सत्संग पाकर त्रिविध तापोंसे तपे जीवसमूह सन्तापरहित होकर परमानन्द प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सार-सम्भार करनेपर इस भक्तिका विचित्ररूपसे बढ़ना तो देखो कि जिसको पहले कभी छोटी-सी बकरीका भी डर था, उसीमें आज महासंग्रामविजयी काम, क्रोध आदि बड़े-बड़े हाथी बँधे हुए झूम रहे हैं, परंतु उस वृक्षको किसी भी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचा सकते हैं॥ ६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तमाल-स्वरूपवर्णन

जाको जो स्वरूप सो अनूप लै दिखाय दियो, कियो यों कवित्त पट मिहिं मध्य लाल है।
गुण पै अपार साधु कहैं आंक चारिही में, अर्थ विस्तार कविराज टकसाल है॥
सुनि संत सभा झूमि रही, अलि श्रेणी मानो, घूमि रही, कहैं यह कहा धौं रसाल है।
सुने हे अगर अब जाने मैं अगर सही, चोवा भये नाभा, सो सुगंध भक्तमाल है॥ ७॥

जिस भक्तका जैसा सुन्दरस्वरूप है, उसको श्रीनाभाजीने अति उत्तम प्रकारसे अपने काव्यमें स्पष्ट कर दिया है। कविता ऐसी की है कि जैसे महीन वस्त्रके अन्दर रखे हुए माणिक्य रत्नकी चमक बाहर प्रकाश करे, उसी प्रकार कविताकी शब्दावलीसे भक्तस्वरूप प्रकट होता है। साधु-भक्तोंके गुण और उनकी महिमा अपार है, किंतु नाभाजीने सन्तगुरुकृपासे थोड़े ही अक्षरोंमें भक्तोंके गुणोंका ऐसी विचित्रताके साथ वर्णन किया है कि उसके अनेक अर्थ होते हैं और गुणोंका अपार विस्तार हो जाता है। यही सच्चे टकसाली कविकी विशेषता है। सन्तोंकी सभा इसे सुनकर भक्तमाल काव्यका रसास्वादनकर आनन्दविभोर होकर झूम रही है, मानो सन्तरूपी भ्रमरसमूह चरित्ररूपी सुगन्धित पुष्पोंपर मँडरा रहा है। आश्चर्यचकित होकर वे कहते हैं कि यह कैसी विचित्र रसमयी कविता है! मैंने अगर अर्थात् स्वामी श्रीअग्रदेवजीका नाम तो सुना था, परंतु अब मैंने जाना और अनुभव किया कि अगर (श्रीअग्रदेवजी) वस्तुतः अगर (सुगन्धित वृक्ष ही) हैं, जिनसे नाभाजी-जैसा इत्र उत्पन्न हुआ है और जिसकी दिव्य सुगन्ध यह भक्तमाल है॥ ७॥

भक्तमाल-माहात्म्यवर्णन

बड़े भक्तिमान, निशिदिन गुणगान करैं हरैं जगपाप, जाप हियो परिपूर है।
जानि सुख मानि हरिसंत सनमान सचे बचेऊ जगतरीति, प्रीति जानी मूर है॥
तऊ दुराराध्य, कोऊ कैसे कै अराधिसकै, समझो न जात, मन कंप भयो चूर है।
शोभित तिलक भाल माल उर राजै, ऐ पै बिना भक्तमाल भक्तिरूप अति दूर है॥ ८॥

कोई बड़े साधक कैसे ही अच्छे भक्तिमान् हों, रात-दिन भगवान्‌के गुणोंका गान करते हों, संसारके पापोंको हरते हों, जप-ध्यान आदिसे उनका हृदय परिपूर्ण हो, श्रीहरि और सन्तोंके स्वरूपको जानकर सचाईसे उनकी सेवा और उनका आदर भी करते हों तथा उसमें सुख भी मानते हों—जगत्‌के मायिक प्रपंचोंसे बचे भी हों और प्रेमको ही मूलतत्त्व मानते हों—इतनेपर भी भक्तिकी आराधना कठिन है, उसकी आराधना कोई कैसे कर सकता है? विशुद्ध भक्तिका स्वरूप समझमें नहीं आता है, मन कम्पित होकर शिथिल हो जाता है। चाहे मस्तकपर सुन्दर तिलक और गलेमें कण्ठी माला सुशोभित हो, परंतु बिना भक्तमाल-पठन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन किये भक्तिका स्वरूप बहुत दूर है, उसका जानना असम्भव है॥ ८॥

भक्तमालके मंगलाचरणकी भक्तिरसबोधिनी टीका

हरि गुरु दासनि सों साँचो सोई भक्त सही गही एक टेक फेरि उर ते न टरी है।
भक्ति रस रूप कौ स्वरूप यहै छबिसार चारु हरिनाम लेत अँसुवन झरी है॥
वही भगवन्त सन्त प्रीति को विचार करै, धरै दूरि ईशता हू पांडुन सो करी है।
गुरु गुरुताई की सचाई लै दिखाई जहाँ गाई श्री पैहारी जू की रीति रंगभरी है॥ ९॥

भगवान्, गुरुदेव और भक्तोंके प्रति जो सच्चा निष्कपट व्यवहार करता है और भक्तिकी किसी एक प्रतिज्ञाको हृदयमें धारणकर फिर उससे कभी चलायमान नहीं होता है, वही सच्चा भक्त है। रसरूपा भक्तिका सुन्दर स्वरूप यही है कि भगवान्‌के सुन्दर नामोंको लेते ही आँखोंसे प्रेमके आँसुओंकी झरी लग जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरताको दूर रखकर जो भक्तोंकी प्रीतिको सदा ध्यानमें रखे, वही भगवान् है, जैसा कि श्रीकृष्णने राजसूययज्ञमें पाण्डवोंके साथ किया है। गुरुदेवकी गुरुताकी सच्चाई भक्तमालमें वहाँ दिखायी गयी है, जहाँ पयोहारी श्रीकृष्णदासजीकी आनन्दमयी अनोखी रीति गायी गयी है॥ ९॥

भक्तमालकी रचनाके लिये श्रीनाभाजीको आज्ञा प्राप्त होना

मानसी स्वरूप में लगे हैं अग्रदास जू वै करत बयार नाभा मधुर सँभार सों।
चढ़्यो हो जहाज पै जु शिष्य एक आपदा में कर्‌यौ ध्यान खिच्यो मन छूट्यो रूप सार सों॥
कहत समर्थ गयो बोहित बहुत दूरि आवो छबि पूरि फिर ढरो ताहि ढार सों।
लोचन उघारि कैं निहारि कह्यौ बोल्यौ कौन! वही जौन पाल्यो सीथ दै दै सुकुवार सों॥ १०॥

एक बारकी बात है, स्वामी श्रीअग्रदेवजी महाराज

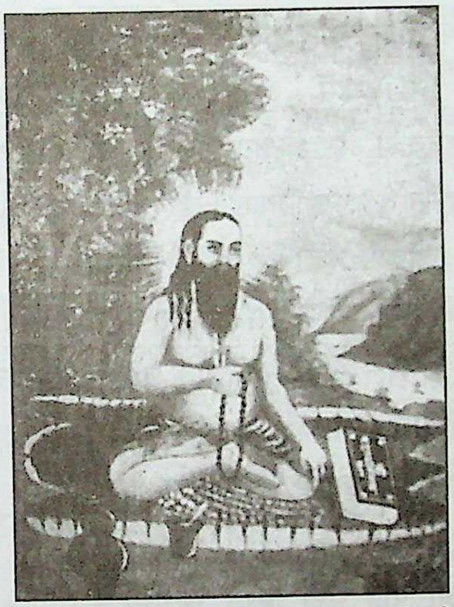

मानसी सेवामें संलग्न थे और श्रीनाभाजी अतिकोमल एवं मधुर संरक्षणके साथ धीरे-धीरे प्रेमसे पंखा कर रहे थे। उसी समय श्रीअग्रदासजीका एक शिष्य जहाजपर चढ़ा हुआ समुद्रकी यात्रा कर रहा था। उसका जहाज संकट (भँवर)-में फँस गया। चालक निरुपाय हो गये, तब उस शिष्यने श्रीअग्रदासजीका स्मरण किया। उससे श्रीअग्रदासजीका ध्यान अतिसुन्दरस्वरूप भगवान् श्रीसीतारामजीकी सेवासे हट गया। गुरुदेवकी मानसी सेवामें विघ्न समझकर श्रीनाभाजीने पंखेकी वायुसे जहाजको संकटसे पार कर दिया और श्रीगुरुदेवसे नम्र निवेदन किया कि प्रभो! जहाज तो बहुत दूर निकल गया, अब आप उसी शोभापूर्ण भगवान्‌की सेवामें लग जाइये। यह सुनकर श्रीअग्रदेवजीने आँखें खोलीं और नाभाजीकी ओर देखकर कहा कि अभी कौन बोला? श्रीनाभाजीने हाथ जोड़कर कहा—जिसे आपने बचपनसे सीथ-प्रसाद देकर पाला है, आपके उसी दासने प्रार्थना की है॥ १०॥

अचरज दयो नयो यहाँ लौं प्रवेश भयो, मन सुख छयो, जान्यो सन्तन प्रभाव को।
आज्ञा तब दई, 'यह भई तोपै साधु कृपा उनही को रूप गुन कहो हिये भाव को'॥
बोल्यो कर जोरि, 'याको पावत न ओर छोर, गाऊँ रामकृष्ण नहीं पाऊँ भक्ति दाव को।
कहि समुझाइ, 'वोई हृदय आइ कहैं सब, जिनलै दिखाय दई सागर में नाव को'॥ ११॥

(श्रीनाभाजीका उपर्युक्त कथन सुनकर श्रीअग्र-देवजीको) महान् तथा नवीन आश्चर्य हुआ। मनमें विचारने लगे कि इसका यहाँ मेरी मानसी-सेवातक प्रवेश कैसे हो गया और यहींसे जहाजकी रक्षा कैसे की? विचार करते ही उनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे जान गये कि यह सब सन्तोंकी सेवा तथा उनके सीथ-प्रसाद-ग्रहणका ही प्रभाव है, जिससे ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है। तब श्रीअग्रदेवजीने आज्ञा दी कि 'तुम्हारे ऊपर यह साधुओंकी कृपा हुई है। अब तुम उन्हीं साधु-सन्तोंके गुण, स्वरूप और हृदयके भावोंका वर्णन करो।' इस आज्ञाको सुनकर श्रीनाभाजीने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैं श्रीराम-कृष्णके चरित्रोंको तो कुछ गा भी सकता हूँ, परंतु सन्तोंके चरित्रोंका ओर-छोर नहीं पा सकता हूँ; क्योंकि उनके रहस्य अतिगम्भीर हैं, मैं भक्तोंकी भक्तिके रहस्यको नहीं पा सकता।' तब श्रीअग्रदेवजीने समझाकर कहा—'जिन्होंने तुम्हें मेरी मानसी सेवा और सागरमें नाव दिखा दी, वे ही भक्त भगवान् तुम्हारे हृदयमें आकर सब रहस्योंको कहेंगे और अपना स्वरूप दिखायेंगे'॥ ११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनाभाजीका चरित्र-वर्णन

हनूमान वंश ही में जनम प्रशंस जाको भयो दृगहीन सो नवीन बात धारिये।
उमरि वरष पाँच मानि कै अकाल आँच माता वन छोड़ि गयी विपति विचारिये॥
कील्ह और अगर ताहि डगर दरश दियो लियो यों अनाथ जानि पूछी सो उचारिये।
बड़े सिद्ध जल लै कमण्डलु सों सींचे नैन चैन भयो खुले चख जोरी को निहारिये॥ १२॥

श्रीनाभाजीका जन्म प्रशंसनीय हनुमान-वंशमें हुआ था। आश्चर्यजनक एक नयी बात यह जानिये कि ये जन्मसे ही नेत्रहीन थे। जब इनकी आयु पाँच वर्षकी हुई, उसी समय अकालके दुःखसे दुःखित माता इन्हें वनमें छोड़ गयी। माता और पुत्र दोनोंके लिये यह कितनी बड़ी विपत्ति थी। इसे आपलोग सोचिये। दैवयोगसे श्रीकील्हदेवजी और श्रीअग्रदेवजी—दोनों महापुरुष उसी मार्गसे दर्शन देते हुए निकले। बालक नाभाजीको अनाथ जानकर जो कुछ दोनोंने पूछा, उसका उन्होंने उत्तर दिया। वे बड़े भारी सिद्ध सन्त थे। उन्होंने अपने कमण्डलुसे जल लेकर नाभाजीके नेत्रोंपर छिड़क दिया। सन्तोंकी कृपासे नाभाजीके नेत्र खुल गये और सामने दोनों सन्तोंको उपस्थित देखकर इन्हें परम आनन्द हुआ॥ १२॥

पांय परि आंसू आये कृपा करि संग लाये कील्ह आज्ञा पाइ मन्त्र अगर सुनायो है।
गलते प्रगट साधु सेवा सो विराजमान जानि अनुमानि ताही टहल लगायो है॥
चरण प्रछाल सन्त, सीथ सों अनन्त प्रीति जानी रस रीति ताते हृदै रंग छायो है।
भई बढ़वारि ताकौ पावै कौन पारावार जैसो भक्तिरूप सो अनूप गिरा गायो है॥ १३॥

दोनों सिद्ध महापुरुषोंके दर्शनकर नाभाजी उनके चरणोंमें पड़ गये। उनके नेत्रोंमें आँसू आ गये। दोनों सन्त कृपा करके बालक नाभाजीको अपने साथ लाये। श्रीकील्हदेवजीकी आज्ञा पाकर श्रीअग्रदेवजीने इन्हें राममन्त्रका उपदेश दिया और 'नारायणदास' यह नाम रखा। गलता आश्रम (जयपुर)-में साधुसेवा प्रकट प्रसिद्ध थी। वहाँ सर्वदा सन्त-समूह विराजमान रहता था। श्रीअग्रदेवजीने सन्तसेवाके महत्त्वको जानकर और सन्तसेवासे ही यह समर्थ होकर जीवोंका कल्याण करनेवाला बनेगा—यह अनुमानकर नाभाजीको सन्तोंकी सेवामें लगा दिया। सन्तोंके चरणोदक तथा उनके सीथ-प्रसादका सेवन करनेसे श्रीनाभाजीका सन्तोंमें अपार प्रेम हो गया। इन्होंने भक्तिरसकी रीतियाँ जान लीं। इससे इनके हृदयमें अद्भुत प्रेमानन्द छा गया। हृदयमें भक्त-भगवान्के प्रेमकी ऐसी अभिवृद्धि हुई कि जिसका ओर-छोर भला कौन पा सकता है! इस प्रकार जैसे श्रीनाभाजी मूर्तिमान् भक्तिके स्वरूप हुए, वैसे ही सुन्दर वाणीसे इन्होंने भक्तमालमें भक्तोंके चरित्रोंको गाया है॥ १३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तमालका प्रारम्भ

चौबीस अवतारोंकी कथा

जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि-बावन।
परसुराम रघुबीर कृष्ण कीरति जग पावन॥
बुद्ध कलक्की ब्यास पृथू हरि हंस मन्वंतर।
जग्य रिषभ हयग्रीव धुरुव बरदैन धन्वंतर॥
बद्रीपति दत कपिलदेव सनकादिक करुना करौ।
चौबीस रूप लीला रुचिर (श्री) अग्रदास उर पद धरौ॥ ५॥*

मंगलमय मीन, वाराह, कच्छप, नरसिंह तथा वामन आदि भगवान्‌के चौबीस अवतारोंकी जय हो, जय हो, इनका मंगल हो, हम इन्हें नमस्कार करते हैं। परशुराम, रघुवीर श्रीराम एवं श्रीकृष्ण आदि सभी अवतारोंकी पवित्र कीर्ति संसारको पवित्र करनेवाली है। बुद्ध, कल्कि, व्यास, पृथु, हरि, हंस, मन्वन्तर, यज्ञ, ऋषभ, हयग्रीव, ध्रुववरदायी श्रीहरि, धन्वन्तरि, नर-नारायण, दत्तात्रेय, कपिलदेव तथा सनक-सनन्दन-सनातन और सनत्कुमार सभी मुझ दासपर कृपा करो। चौबीसों अवतारोंके रूप एवं उनकी लीलाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं। इन अवतारोंके समेत गुरुदेव श्रीअग्रदासजी महाराज मेरे हृदयमें अपने श्रीचरण स्थापित करें। (अथवा सभी अवतार मुझ अग्रदासके हृदयमें निज पदकमल रखें)॥ ५॥

श्रीप्रियादासकृत भक्तिरसबोधिनी टीका

जिते अवतार सुखसागर न पारावार करैं विस्तार लीला जीवन उधार कौं।
जाहि रूप मांझ मन लागै जाको, पागै तहीं, जागै हिय भाव वही, पावै कौन पार कौं॥
सब ही हैं नित्त ध्यान करत प्रकाशैं चित्त, जैसे रंक पावैं वित्त, जो पै जानै सार कौं।
केशनि कुटिलताई, ऐसे मीन सुखदाई, अगर सुरीति भाई, बसौ उर हार कौं॥ १४॥

भक्तवत्सल भगवान्‌के जितने भी अवतार हैं, सभी शाश्वत सुखके समुद्र हैं, उनके नाम, रूप, लीला आदिका ओर-छोर नहीं है। जीवोंका उद्धार करनेके लिये अवतार लेकर भगवान् लीलाओंका विस्तार करते हैं। जिस भक्तका मन भगवान्‌के जिस रूपमें लग जाता है, उसी रूपमें पग (रम) जाता है और उसी रूपसे सम्बन्धित प्रेम-भाव जग जाता है। भगवान्‌के सभी रूप अनन्त सुखके सागर हैं, अतः प्रेमभावकी तरंगोंका आर-पार भला कौन पा सकता है! सभी अवतार नित्य हैं और ध्यान करते ही हृदयको प्रेमानन्दसे प्रकाशित कर देते हैं। तब वह भक्त ऐसा सुखी हो जाता है, जैसे दरिद्र धन पा गया हो; पर इस प्रकारका दुर्लभ अनुभव तभी होता है, जब वह गम्भीर रहस्यको समझे। जिस प्रकार केशोंकी कुटिलता दूषण न होकर भूषण है, उसी प्रकार मीन, वाराह आदि भगवान्‌के अवतार भी भक्तोंको सुख देनेवाले हैं। सभी अवतार नित्य एवं पूर्ण हैं, श्रीअग्रदेवजीकी यह सुन्दर मान्यताकी रीति मुझे बहुत अच्छी लगी। चौबीस अवतारोंकी यह माला मेरे हृदयमें हारकी तरह बसे॥ १४॥

भक्तमालमें परिगणित चौबीस अवतारोंकी कथाका यहाँ क्रमशः संक्षिप्त निदर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है—

मत्स्यावतार

ब्राह्म नामक नैमित्तिक प्रलयके समय ब्रह्माजी प्रलय-पयोधिमें सोये हुए थे। उस समय उनके मुखोंसे श्रुतियाँ निकलीं, जिन्हें हयग्रीव नामक दैत्य

* मूलतः यह छप्पय श्रीनाभादासजीद्वारा रचित पहला छप्पय है। प्रारम्भमें मंगलाचरणके दोहोंमें एकसे चारतक संख्या दी गयी है, उस आधारपर यहाँ पाँचवीं संख्या दी गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुराकर पाताल चला गया। उस प्रलयकालमें समस्त औषधियोंके बीजों, प्राणियोंके सूक्ष्म शरीरों और सप्तर्षियोंकी रक्षाके लिये भगवान्ने एक विशाल मत्स्यका रूप धारण किया और चक्रवर्ती सम्राट् राजर्षि सत्यव्रतसे कहा कि वे इन सबको लेकर एक विशाल नौकापर आरूढ़ हो जायँ। राजा सत्यव्रतने ऐसा ही किया और भगवान् मत्स्यने उस नौकाका पूरे प्रलयकालतक संचालन

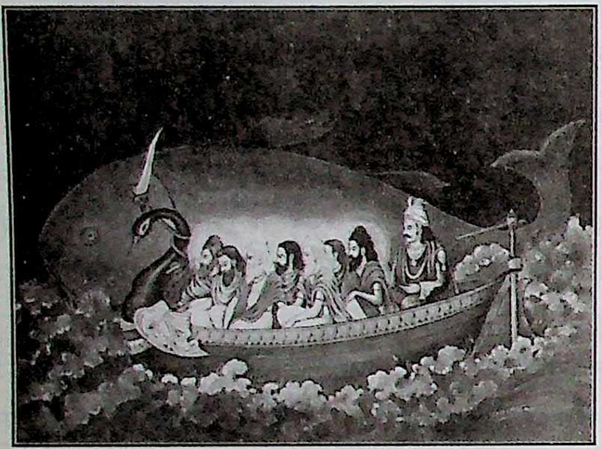

करते हुए राजा सत्यव्रत और सप्तर्षियोंको ब्रह्मतत्त्वका उपदेश दिया तथा सृष्टिके मूल तत्त्वोंकी रक्षा की। तत्पश्चात् उन्होंने प्रलयान्तमें हयग्रीवदैत्यका वधकर श्रुतियोंको लाकर पुनः ब्रह्माजीको सौंप दिया। भगवान्का मत्स्यरूपधारण ही मत्स्यावतार कहलाता है।

वराहावतार

श्वेतवाराहकल्पकी बात है, परम पराक्रमी दितिपुत्र हिरण्याक्ष पृथ्वीको लेकर रसातलमें चला गया; इससे चिन्तित होकर पितामह ब्रह्माजीने भगवान् श्रीहरिका मन-ही-मन स्मरण किया। स्मरण करते ही भगवान् उनके नासाछिद्रसे वराह-शिशुके रूपमें निकल पड़े और देखते-ही-देखते उन्होंने विशाल पर्वताकार श्वेतवराहका रूप धारणकर समुद्रके जलमें प्रवेश किया और रसातलसे पृथ्वीको लाने लगे। यह देखकर हिरण्याक्ष क्रुद्ध हो गदा लेकर उनसे युद्ध करने लगा, परंतु उन वराहरूपधारी श्रीहरिने उसे लीलापूर्वक कर-प्रहारसे ही मार डाला और पृथ्वीको पुनः प्रतिष्ठित किया।

कमठ (कच्छप)-अवतार

सम्पूर्ण सृष्टि प्रजापति कश्यपकी सन्तान है, देवता और दैत्य भी उन्हींके पुत्र हैं; परंतु तमोगुणी स्वभाव और बलपूर्वक स्वर्गप्राप्तिकी आकांक्षाके कारण दैत्य प्रायः देवताओंपर आक्रमण करते रहते थे। इन युद्धोंमें विजयश्री कभी देवताओंका तो कभी दैत्योंका वरण करती थी। बलिके दैत्याधिपति बननेपर मदोन्मत्त दैत्योंने स्वर्गपर अधिकार कर लिया। पराजित निरुपाय देवता पितामहकी शरणमें गये। पितामहने वेदवाणीद्वारा भगवान् श्रीहरिकी स्तुति की और उनसे देवताओंके कष्टोंका निवारण करनेकी प्रार्थना की। श्रीहरिने देवताओंको सलाह दी कि तुम लोग अपने बन्धुत्वका स्मरण कराकर दैत्योंसे सन्धि कर लो और अमृतका प्रलोभन देकर उनके साथ समुद्र-मन्थन करो, इससे तुम्हें अमृतकी प्राप्ति होगी, जिसे पीकर तुम अमर हो जाओगे।

श्रीहरिकी योजनाके अनुसार देवताओंने दैत्योंसे सन्धि कर ली। अमृतपानके लिये वे भी समुद्र-मन्थनहेतु तैयार हो गये। नागराज वासुकिने नेती और मन्दराचलने मथानी बनना स्वीकार कर लिया। जब समुद्र-मन्थन प्रारम्भ हुआ तो आधारहीन मन्दराचल समुद्रमें डूबने लगा। यह देखकर भगवान् श्रीहरिने एक लाख योजन विस्तृत पीठवाले कच्छपका रूप धारण किया और मन्दरगिरिको अपनी पीठपर धारणकर समुद्र-मन्थनका कार्य सुचारु रूपसे सम्पादित किया। इस प्रकार देवताओंके हितके लिये उन परम प्रभुने कच्छपावतार लिया।

श्रीनृसिंहावतार

वैकुण्ठलोकमें भगवान् श्रीहरिके जय-विजय नामके दो पार्षद थे। एक बार उन्होंने अभद्रतापूर्वक सनकादि मुनियोंको श्रीहरिके धाममें जानेसे रोक दिया। इससे क्रोधित होकर मुनियोंने उन्हें तीन जन्मतक दैत्ययोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। इसी कारणसे जय-विजय प्रथम जन्ममें दितिपुत्र हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके रूपमें उत्पन्न हुए। परम करुणामय प्रभु तो सदा अपने जनोंका हित ही करना चाहते हैं, अतः उन्होंने वाराह-अवतार लेकर हिरण्याक्षका वधकर उसका उद्धार कर दिया। अपने भाईकी मृत्युसे अत्यन्त क्रोधित हो हिरण्यकशिपु भगवान् श्रीहरिसे बदला लेनेके लिये कठोर तप करने लगा। उसके तपसे प्रसन्न हो ब्रह्माजी प्रकट हुए और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_3_1_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर माँगनेको कहा। हिरण्यकशिपुने कहा—'हे प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपने बनाये हुए सभी प्राणियोंसे मुझे अवध्य कर दीजिये; साथ ही मेरी मृत्यु न घरके अन्दर हो न बाहर, न पृथ्वीपर हो न आकाशमें, न जलमें हो न थलमें, न रात्रिमें हो न दिनमें और न ही अस्त्रसे हो न शस्त्रसे।' वर देनेके लिये वचनबद्ध ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कह दिया। फिर क्या था, हिरण्यकशिपुके अत्याचारोंसे त्रैलोक्य कम्पित हो उठा।

हिरण्यकशिपुका पुत्र प्रह्लाद अत्यन्त सात्त्विक और श्रीहरिका परम भक्त था। जब हिरण्यकशिपुको यह बात ज्ञात हुई तो वह क्रोधसे पागल हो उठा और प्रह्लादको मार डालनेके लिये उसने सभी सम्भव प्रयास किये, परंतु भगवद्भक्तिरूपी कवचमें सुरक्षित प्रह्लादका वह बाल भी बाँका न कर सका। अन्तमें उसने सभाभवनके ही एक अग्नितप्त लोहेके स्तम्भमें प्रह्लादको बँधवा दिया और तलवारसे उसका वध करनेको उद्यत हो बोला—बता, तेरा हरि कहाँ है? देखता हूँ, तुझे मरनेसे कौन बचाता है? प्रह्लादने विनम्र भावसे कहा—पिताजी! वे श्रीहरि तो सर्वत्र हैं, वे तो मुझमें भी हैं, आपमें भी; इस खड्गमें भी हैं और इस खम्भेमें भी।

प्रह्लादकी बातें सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोधसे पागल हो उठा और सिंहासनसे कूदकर उसने उस खम्भेपर घूँसेसे प्रहार किया। ठीक उसी समय उस खम्भेसे ब्रह्माण्ड फटने-जैसी भयंकर गर्जना हुई और ब्रह्माजी तथा अपने भक्त प्रह्लादकी वाणीको सत्य करने तथा जड़-चेतन—सर्वत्र अपनी व्यापकता सिद्ध करनेके लिये भगवान् श्रीहरि उस खम्भेसे नृसिंहरूपमें प्रकट हो गये। उनका आधा शरीर सिंह-जैसा और आधा शरीर मनुष्यसदृश था। उसी नृसिंहरूपसे उन्होंने हिरण्यकशिपुको पकड़ लिया और सभाभवनकी देहलीपर ले जाकर उसे अपनी जाँघोंपर गिरा लिया और सायंकाल अपने वज्रसदृश नखोंसे उसका हृदय फाड़कर मार डाला।

वामनावतार

पूर्वकालकी बात है, देवताओं और दैत्योंमें युद्ध हुआ, जिसमें देवगण पराजित हो गये और दैत्योंने स्वर्गपर अधिकार कर लिया। पुत्रोंकी इस दुर्दशाको देखकर देवमाता अदिति बहुत दुःखी हुईं। उन्होंने अपने पति महर्षि कश्यपसे परामर्श करके भगवान् विष्णुकी आराधना प्रारम्भ की। महर्षि कश्यप भी भगवान् विष्णुके प्रीत्यर्थ गहन तपस्यामें लीन हो गये। इन दम्पतीकी आराधनासे प्रसन्न हो भगवान् विष्णुने उन्हें दर्शन दिये और वर माँगनेको कहा। देवमाता अदितिने कहा—'प्रभो! मेरे पुत्रका राज्य और यज्ञभाग पुनः उसे प्राप्त हो जाय।' कश्यपजीने कहा—'हे प्रभो! आप इन्द्रके छोटे भाई (उपेन्द्र) बनकर शत्रुओंसे उसकी रक्षा करें।' भगवान्ने 'तथास्तु' कहकर दोनोंकी इच्छा पूरी करनेका वचन दिया।

कुछ समय बाद भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको अभिजित् मुहूर्तमें भगवान्का कश्यप-अदितिके यहाँ मंगलमय चतुर्भुजरूपमें प्राकट्य हुआ। तदनन्तर भगवान् बलिका उद्धार करनेके लिये वामन ब्रह्मचारीका रूप धारणकर बलिके यज्ञ-मण्डपमें पहुँचे। राजा बलिने महारानी विन्ध्यावलीके साथ भगवान् वामनका पूजन किया। वामनभगवान्ने कहा—'राजन्! अग्निहोत्रके लिये मुझे मेरे पगसे केवल तीन पग भूमि दे दीजिये और मुझे कुछ नहीं चाहिये।'

भगवान्की बात सुनकर बलिने हँसते हुए कहा—अच्छी बात है, जितनी तुम्हारी इच्छा हो, उतना ले लो। यह कहकर वे जैसे ही संकल्प करने चले, वैसे ही दैत्यगुरु शुक्राचार्यने उन्हें रोक दिया कि ये स्वयं भगवान् श्रीहरि हैं, तीन पगमें तो ये सारा ब्रह्माण्ड नाप लेंगे और तुम्हें राज्यश्रीसे हीन कर देंगे। इस पर बलिने कहा—जिनके लिये यज्ञ-यागादि किये जाते हैं, वे भगवान् विष्णु ही यदि स्वयं दान लेने उपस्थित हैं तो मैं अवश्य दूँगा। शुक्राचार्यने बलिको शाप दे दिया कि मेरी आज्ञाका उल्लंघन करनेके कारण तुम श्रीहीन हो जाओगे। इसपर भी सत्यप्रतिज्ञ बलिने संकल्पकर तीन पग भूमि वामनभगवान्को दान कर दी। फिर तो वही हुआ, जो शुक्राचार्यने कहा था; वामनभगवान्ने अपने एक पगसे सम्पूर्ण पृथ्वी और दूसरे पगसे ऊपरके सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक नाप लिये। तीसरे पगके लिये बलिने अपना सिर झुका दिया, भगवान्‌ने अपना चरणकमल उसके सिरपर रखकर उसे सुतललोकका स्वामी बना दिया। स्वर्गका राज्य और यज्ञभाग उन्होंने पुनः देवताओंको प्रदान कर दिया।

परशुरामावतार

भगवान् परशुराम महर्षि जमदग्नि और परम सती रेणुकाजीके पुत्र तथा महर्षि ऋचीकके पौत्र थे। जिस समय परशुरामजीका अवतार हुआ था, उस समय पृथ्वीपर तामसी प्रवृत्तिवाले राजाओंका बाहुल्य था। उन्हींमेंसे एक कार्तवीर्यार्जुनने इनके पिता जमदग्निका वध कर दिया था, जिससे क्रुद्ध होकर इन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रिय राजाओंसे रहितकर सम्पूर्ण पृथ्वी कश्यपजीको दान कर दी थी और स्वयं तपस्या करने महेन्द्राचलपर चले गये। भगवान् शिवके दिये अमोघ परशु (फरसे)-को धारण करनेके कारण इनका परशुराम नाम पड़ा।

श्रीरामावतार

श्रीभगवान्‌के प्रिय पार्षदों जय-विजयका सनकादि मुनियोंके शापसे तीन जन्म असुरकुलमें होना था और परम करुणामय प्रभुको उनका उद्धार करना था। अतः जब वे हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु हुए तो भगवान्‌ने वाराह और नृसिंह-अवतार लेकर उनका उद्धार किया। इसके बाद वे ही दोनों रावण-कुम्भकर्णके रूपमें उत्पन्न हुए, अतः प्रभुने श्रीरामरूपमें अवतार लेकर उनका उद्धार किया। इस अवतारकी एक अन्य पृष्ठभूमिके रूपमें भगवान्‌का मनु-शतरूपाको उनका पुत्र बननेका वरदान देना भी है। मनु-शतरूपा दूसरे जन्ममें अयोध्याके राजा दशरथ और महारानी कौसल्या हुए और परब्रह्म परमात्माने उनके यहाँ चतुर्व्यूहस्वरूपसे उनके चार पुत्रों—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके रूपमें अवतार लिया। परब्रह्म परमात्माकी लीलाशक्ति ही महाराज जनकके यहाँ उनकी पुत्री सीताके रूपमें अवतरित हुईं और श्रीरामकी अर्द्धांगिनी बनीं।

श्रीकृष्णावतार

परब्रह्म परमात्माने वसुदेव-देवकी जो पूर्वजन्ममें कश्यप और अदिति थे, के यहाँ लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णके

रूपमें अवतार लिया। भगवान् श्रीकृष्णके अवतारके समय वसुदेव-देवकी कंसके कारागारमें निरुद्ध थे, अतः उनका बचपन नन्द-यशोदाके यहाँ गोकुल और वृन्दावनमें बीता, जहाँ उन्होंने माखन-चोरी, वंशी-वादन, महारास, गोचारण आदि अनेक माधुर्यलीलाएँ करके व्रजजनोंको आनन्दित किया। साथ ही उन्होंने अपनी ऐश्वर्यलीलाका प्रदर्शन करते हुए उस समयके कंस, शिशुपाल, शाल्व, दन्तवक्त्र, पौण्ड्रकसदृश अनेक तामसी प्रवृत्तिके राजाओंका उनके सहायकों एवं सेनाओंसहित संहार किया तथा जरासंध, दुर्योधन, भगदत्त-जैसे अन्य अनेक आसुरी प्रवृत्तिवाले राजाओंका अपने भक्त पाण्डवोंद्वारा संहार कराकर पृथ्वीका भार उतारा और अर्जुनको गीता-ज्ञान दिया।

श्रीबुद्धावतार

बौद्धधर्मके प्रवर्तक और महाराज शुद्धोदनके यशस्वी पुत्र गौतम बुद्ध (सिद्धार्थ)-के रूपमें श्रीभगवान् ही अवतरित हुए थे, ऐसी प्रसिद्धि विश्रुत है; परंतु पुराणवर्णित भगवान् बुद्धदेवका प्राकट्य गयाके समीप कीकट देशमें हुआ था। उनके पुण्यात्मा पिताका नाम 'अजन' बताया गया है। जीवोंपर दया प्रकट करने तथा अहिंसाधर्मकी स्थापना करनेके लिये भगवान् बुद्धका अवतार हुआ था।

कल्कि-अवतार

कलियुगके अन्तमें जब सत्पुरुषोंके घर भी भगवान्‌की कथामें बाधा होगी, ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य पाखण्डी हो जायेंगे और शूद्र राजा होंगे, यहाँतक कि कहीं भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_3_2_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाहा, स्वधा और वषट्कारकी ध्वनि नहीं सुनायी पड़ेगी, राजा लोग प्रायः लुटेरे हो जायँगे, तब कलियुगका शासन करनेके लिये भगवान् बालकरूपमें शंभल ग्राममें विष्णुयशके घरमें अवतार ग्रहण करेंगे। परशुरामजी उनको वेद पढ़ायेंगे। शिवजी शस्त्रास्त्रोंका संधान सिखायेंगे, साथ ही एक घोड़ा और एक खड्ग देंगे। तब कल्किभगवान् ब्राह्मणोंकी सेना साथ लेकर संसारमें सर्वत्र फैले हुए म्लेच्छोंका नाश करके सत्ययुगके प्रवर्तक होंगे।

श्रीव्यासावतार

वाङ्मयावतार भगवान् वेदव्यास भगवान् श्रीहरिके कलावतार हैं। महाभागा सत्यवतीको उनकी माता और महर्षि पराशरको उनके पिता होनेका गौरव प्राप्त है। इसीलिये वे 'पाराशर्य' और 'सत्यवतीनन्दन' कहे जाते हैं। यमुनाजीके एक द्वीपमें जन्म होनेके कारण वे 'द्वैपायन' और कृष्ण वर्ण होनेके कारण 'कृष्णद्वैपायन' कहलाये। बदरीवनमें रहनेके कारण आपको 'बादरायण' कहा जाता है। वेदोंका विभाजन करनेके कारण आप 'वेदव्यास' कहे जाते हैं। आपने ब्रह्मसूत्र, व्यासस्मृति, अष्टादश महापुराण, उपपुराण और उपौपपुराणोंकी भी रचना की। इनके अतिरिक्त 'पंचमवेद' और 'कार्ष्णवेद' के नामसे विख्यात महान् ग्रन्थ 'महाभारत' भी आप ही की रचना है। परम भागवत शुकदेवजी आपके पुत्र थे, जिन्होंने परीक्षित्के माध्यमसे कलिके जीवोंके उद्धारके लिये भागवतरूपी सुधाधारा धराधामपर प्रवाहित की।

पृथु-अवतार

महाराज पृथु भगवान् विष्णुकी विश्वपालनी कलासे प्रकट हुए थे। प्रभुकी नित्य सहचरी भगवती लक्ष्मीके अंशसे उनकी महारानी अर्चिका धरापर अवतरण हुआ था। पृथुसे पूर्व पृथ्वीके समतल न होनेसे पुर और ग्राम आदिका कोई विभाग नहीं था; अन्न, गोरक्षा, कृषि और व्यापारका भी कोई क्रम न था। यह सब पृथुके ही शासनकालसे प्रारम्भ हुआ, इसलिये उन्हें आदिराज कहा जाता है। पृथुके पिता वेन नास्तिक, अधार्मिक और अत्याचारी राजा थे, महर्षियोंने उस पापात्माको मन्त्रपूत कुशोंसे मार डाला था, तत्पश्चात् उसकी दाहिनी भुजाका मन्थन किया, जिससे स्वयं श्रीहरिके अंशावतार पृथु प्रकट हुए। वेनके अत्याचारी और अधार्मिक

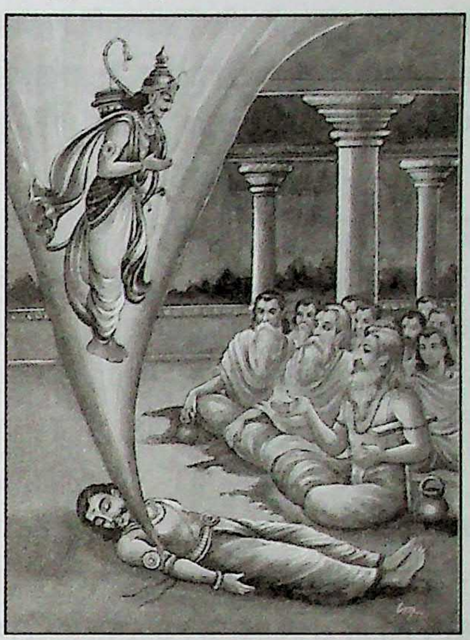

शासनसे पीड़ित हो धरतीने अन्न और औषधियोंको अपनेमें आत्मसात् कर लिया था, प्रजावत्सल राजा पृथुने गोरूपा धरित्रीका दोहन किया और प्रजाको हर प्रकारसे सुखी बनाया। उन्होंने धरित्रीको अपनी पुत्रीके रूपमें स्वीकार किया था, इसीलिये धरतीका एक नाम पृथ्वी भी हो गया।

श्रीहरि-अवतार

भगवान्‌का यह अवतार अपने आर्तभक्त गजेन्द्रकी ग्राहसे रक्षाके लिये हुआ था। महर्षि अगस्त्यके शापसे महाराज इन्द्रद्युम्न गजेन्द्र और महर्षि देवलके शापसे गन्धर्वश्रेष्ठ हूहू ग्राह हो गये थे। एक बार गजेन्द्र त्रिकूटपर्वतके एक गहन वनमें स्थित सुरम्य सरोवरमें हथिनियों एवं कलभोंके साथ जल-विहार कर रहे थे; सहसा एक ग्राहने आकर उनका पैर पकड़ लिया। गजेन्द्रने बहुत प्रयास किया, परंतु वे ग्राहकी पकड़से न छूट सके, ग्राह उन्हें सरोवरमें बहुत गहराईतक खींचता चला गया। अन्तमें गजेन्द्रकी शक्ति जवाब दे गयी, तब उन्होंने सरोवरसे एक कमल अपनी सूँड़में लेकर भगवान्से इस आसन्न मृत्युसंकटसे छुड़ानेकी प्रार्थना की। भगवान्ने तुरंत पहुँचकर अपने सुदर्शन चक्रसे ग्राहका वधकर उसका उद्धार कर दिया और गजेन्द्रको पार्षदरूपमें अपने दिव्य धामको लेकर चले गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अवतारमें परमात्मप्रभुने अपने भक्त गजेन्द्रके महान् संकटका हरण किया था, इसलिये उन्हें 'श्रीहरि' कहा गया। गजेन्द्रद्वारा की गयी श्रीहरिकी स्तुति 'गजेन्द्रमोक्ष' के नामसे प्रसिद्ध है, इसका पाठ समस्त अमंगलोंको दूर करके परम मंगलकी प्राप्ति करानेवाला है।*

श्रीहंसावतार

एक बारकी बात है, पितामह ब्रह्माजी अपनी दिव्य सभामें बैठे थे। उसी समय उनके सनकादि मानस पुत्रोंने वहाँ प्रवेश किया। ब्रह्माजीको प्रणामकर आसनादि ग्रहण करनेके बाद उन्होंने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी जिज्ञासा की। सनकादिका प्रश्न सुनकर ब्रह्माजीने परब्रह्म परमात्माका ध्यान किया। उनके ध्यान करते ही श्रीभगवान् एक तेजस्वी महाहंसके रूपमें प्रकट हो गये और उन्होंने सनकादिको तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया। इस प्रकार श्रीभगवान्ने सनकादि मुनियोंके सन्देह-निवारणके लिये हंसावतार लिया था।

मन्वन्तरावतार

चारों युग जब एक हजार बार व्यतीत हो जाते हैं तो उस कालको कल्प कहते हैं और यह ब्रह्माजीका एक दिन होता है। ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक कालतक अपना अधिकार भोगते हैं। इन मन्वन्तरोंमें भगवान् मनुके रूपमें प्रकट होकर इस विश्वका पालन करते हैं। इस कल्पमें अबतक सात मनु हो चुके हैं और आगे अभी सात मनु होंगे; उन सबके नाम इस प्रकार हैं—१. स्वायम्भुव मनु, २. स्वारोचिष मनु, ३. उत्तम मनु, ४. तामस मनु, ५. रैवत मनु, ६. चाक्षुष मनु, ७. वैवस्वत मनु, ८. सावर्णि मनु, ९. दक्षसावर्णि, १०. ब्रह्मसावर्णि, ११. धर्मसावर्णि, १२. रुद्रसावर्णि, १३. देवसावर्णि और १४. इन्द्र सावर्णि। वर्तमान समयमें सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है और विवस्वान् (सूर्य)-के पुत्र वैवस्वत (श्राद्धदेव) मनु हैं।

यज्ञावतार

स्वायम्भुव मनु और शतरूपासे महाभागा आकूतिका जन्म हुआ, जो रुचिप्रजापतिकी पत्नी हुईं। उन्हीं रुचि और आकूति-दम्पतीके यहाँ परम प्रभु परमात्माने 'यज्ञ' नामसे अवतार लिया और देवताओंकी शक्तिका प्रवर्धन करनेके लिये यज्ञोंका प्रवर्तन किया।

श्रीऋषभ-अवतार

महाराज नाभिके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये उन्होंने अपनी पत्नी मेरुदेवीके सहित पुत्रकी कामनासे भगवान् यज्ञपुरुषका यजन किया। भक्तवत्सल भगवान् उनके विशुद्ध भावसे सन्तुष्ट होकर यज्ञमें प्रकट हुए और उनके यहाँ पुत्ररूपमें अवतरित होनेका वरदान दिया। यथासमय परम प्रभु ही महाराज नाभिकी पत्नी मेरुदेवीके गर्भसे ऊर्ध्वरेता मुनियोंका धर्म प्रकट करनेके लिये शुद्ध सत्त्वमय विग्रहसे प्रकट हुए।

इन्द्रने अपनी कन्या जयन्तीका विवाह भगवान् ऋषभदेवसे कर दिया। आपने उसके गर्भसे अपने ही समान गुणवाले सौ पुत्र उत्पन्न किये। उनमें भरत सबसे बड़े थे और थे बड़े भगवद्भक्त। ऋषभदेवजीके ज्येष्ठ पुत्र राजर्षि भरतके नामपर ही इस देशका नाम भारतवर्ष पड़ा। इससे पूर्व इस देशका नाम अजनाभवर्ष था।

श्रीहयग्रीव-अवतार

सृष्टि-रचनामें अत्यन्त व्यस्त श्रीब्रह्माजीके देखते-देखते मधु और कैटभ नामके दैत्योंने वेदोंको हर लिया और वे रसातलमें जा पहुँचे। वेदोंका हरण हो जानेपर दु:खी ब्रह्माजी भगवान् श्रीहरिकी शरण गये और उन्होंने हाथ-जोड़कर भगवान्की स्तुति की। ब्रह्माजीकी स्तुतिको सुनकर भक्तवत्सल भगवान् वेदोंकी रक्षा करनेके लिये हयग्रीवरूप धारण करके रसातलमें जा पहुँचे और उन सम्पूर्ण वेदोंको ले लिया तथा ब्रह्माजीको पुन: वापस दे दिया और साथ ही उन दोनों दैत्योंको भी मार डाला।

ध्रुवको वर देनेवाले श्रीहरि

स्वायम्भुव मनुके पुत्र उत्तानपाद थे; जिनकी दो रानियाँ थीं—एक सुनीति, दूसरी सुरुचि। छोटी रानी सुरुचिपर राजाका बड़ा प्रेम था, उससे उत्तम नामक पुत्र हुआ और सुनीतिसे ध्रुवजी हुए। एक दिन राजा

* *यह स्तोत्र गीताप्रेससे पुस्तकरूपमें प्रकाशित है।*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तानपाद सुरुचिके पुत्र उत्तमको गोदमें बिठाकर प्यार कर रहे थे, उसी समय ध्रुवजी बालकोंके साथ खेलते-खेलते वहाँ पहुँच गये और उन्होंने पिताकी गोदमें बैठना चाहा, परंतु सुरुचिके भयसे राजाने इनकी ओर देखा भी नहीं। तब विमाता सुरुचिने अभिमानपूर्वक कहा—'वत्स! तू राजाकी गोदमें सिंहासनपर बैठनेकी इच्छा करता है, तू उसके योग्य नहीं है। तू यह इच्छा न कर, क्योंकि तू हमारे गर्भसे नहीं उत्पन्न हुआ। जा पहले तपके द्वारा भगवान्‌को सन्तुष्टकर उनसे वर माँग कि मेरा जन्म सुरुचिसे हो, तब हमारा पुत्र होकर राजाके आसनका अधिकारी हो सकता है। अभी तेरा या तेरी माँका इतना पुण्य नहीं है।'

राजा यह सब देखते-सुनते रहे, परंतु कुछ न बोले। बालक ध्रुव रोने लगे और अपनी माँके पास आये। माँने यह दशा देख तुरंत उन्हें गोदमें उठा लिया और कहा यदि तुझे भी राजसिंहासनपर बैठनेकी इच्छा है तो श्रीअधोक्षज भगवान्‌के चरण-कमलोंकी आराधना करो।

माताके ऐसे मोहतमनाशक वचन सुन बालक ध्रुव यही निश्चयकर, माताको प्रणामकर और आशीर्वाद लेकर चल दिये। देवर्षि नारदजीने कृपा करके उन्हें द्वादशाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-का उपदेश किया और मधुवनमें जाकर आराधना करनेका आदेश दिया।

ध्रुवने मधुवनमें पहुँचकर कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। भगवान् गरुड़पर आरूढ़ होकर मधुवनमें आ गये। प्रभुका दर्शन पाकर बालक ध्रुवको परम आनन्द हुआ। सर्वान्तर्यामी श्रीहरिने कृपा करके अपने वेदमय शंखको उनके कपोलसे छुआ दिया। ध्रुवको तत्काल दिव्य वाणी प्राप्त हो गयी और वे भगवान्‌की स्तुति करने लगे। इस प्रकार भगवान्‌ने ध्रुवको वर देनेके लिये यह श्रीहरि-अवतार लिया।

श्रीधन्वन्तरि

क्षीरसागरका मन्थन होनेपर आप अमृत-कलश लेकर प्रकट हुए। दैत्योंद्वारा छीना गया यज्ञभाग तथा अमृत देवताओंको आपकी ही कृपासे प्राप्त हुआ। आपने संसारको आयुर्वेद विद्या देकर रोगोंसे मुक्त किया।

लोक-कल्याणार्थ विविध व्याधियोंको नष्ट करनेके लिये स्वयं भगवान् विष्णु धन्वन्तरिके रूपमें कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको प्रकट हुए थे।

श्रीबदरीपति (नर-नारायण)

धर्मकी पत्नी मूर्तिके गर्भसे भगवान् नर-नारायणरूपमें प्रकट हुए। उन्होंने आत्मतत्त्वका साक्षात्कार करानेवाले उस भगवदाराधनरूप कर्मका उपदेश किया, जो वास्तवमें कर्म-बन्धनसे छुड़ानेवाला और नैष्कर्म्य स्थितिको प्राप्त करानेवाला है। उन्होंने स्वयं भी वैसे ही कर्मका अनुष्ठान किया। वे आज भी बदरिकाश्रममें उसी कर्मका आचरण करते हुए विराजमान हैं।

श्रीदत्तात्रेय-अवतार

महर्षि अत्रिकी तपस्यासे चित्रकूटमें माता अनसूयाके गर्भसे दत्तात्रेयभगवान् प्रकट हुए। वर देते समय भगवान्‌ने कहा था कि मैंने अपनेको तुम्हें (दत्त) दे दिया, अतः इनका दत्त नाम पड़ा। भगवान् दत्तात्रेयके चरणोंकी सेवासे राजा यदु, सहस्रार्जुन तथा अलर्क आदिने योग-भोग तथा मोक्षकी भी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं।

श्रीकपिलदेव-अवतार

महर्षि कर्दमकी धर्मपत्नी देवहूतिके गर्भसे विन्दुसरोवरके निकट भगवान् कपिलदेव प्रकट हुए। इन्होंने अपनी माताको आत्मज्ञानका उपदेश दिया, जिससे उन्होंने भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको समझकर स्वल्प समयमें ही मोक्षपदको प्राप्त कर लिया। आप सांख्ययोगके आचार्य हैं।

श्रीसनकादि-अवतार

सृष्टिके आरम्भमें श्रीब्रह्माजीने लोकोंको रचनेकी इच्छासे तप किया। ब्रह्माके अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने तप अर्थवाले 'सन्' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार-रूपसे अवतार ग्रहण किया। इस अवतारके द्वारा भगवान्‌ने पहले कल्पके भूले हुए आत्मज्ञानको ऋषियोंके प्रति यथावत् उपदेश किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टिके आरम्भमें उत्पन्न होनेसे ये बहुकालीन हैं, परंतु सदा पाँच वर्षके बालकके रूपमें ही रहते हैं, जिससे मायाका विकार न उत्पन्न हो सके। ये सदा मनसे अपने ब्रह्म-स्वरूपमें लीन रहते हैं और जीवन्मुक्त हैं। इनको उत्पन्न करके ब्रह्माजीने जब यह आज्ञा दी कि जाकर प्रजासृष्टिकी रचना करो। तब इन्होंने प्रपंच-विस्तारका अनौचित्य एवं वैराग्यपूर्वक भगवद्भजनका औचित्य दिखाकर ब्रह्माजीको निरुत्तरकर वनकी राह ली। आप अखण्ड ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हैं और अपने तपसे समस्त लोकोंका सदा कल्याण करते हैं।

श्रीरामजीके चरणचिह्न

अंकुस अंबर कुलिस कमल जव धुजा धेनुपद।
संख चक्र स्वस्तिक जंबूफल कलस सुधाह्रद॥
अर्धचंद्र षटकोन मीन बिंदु ऊरधरेखा।
अष्टकोन त्रयकोन इंद्रधनु पुरुषविशेषा॥
सीतापति पद नित बसत एते मंगलदायका।
चरन चिह्न रघुबीर के संतन सदा सहायका॥ ६॥

सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंमें अंकुश, अम्बर, वज्र, कमल, जव, ध्वजा, गोपद, शंख, चक्र, स्वस्तिक, जम्बूफल, कलश, अमृतकुण्ड, अर्धचन्द्र, षट्कोण, मीन, बिन्दु, ऊर्ध्वरेखा, अष्टकोण, त्रिकोण, इन्द्रधनुष और पुरुष-विशेष—ये बाईस चिह्न विराजते हैं। राघवेन्द्र सरकारके ये चरणचिह्न भक्तोंको मंगलदायक तथा सदा सहायक हैं॥ ६॥

श्रीप्रियादासजी चरणचिह्नोंकी महिमाका निम्न कवित्तोंमें वर्णन करते हुए कहते हैं—

सन्तनि सहाय काज धारे नृपराज राम चरण सरोजन में चिह्न सुखदाइये।
मन ही मतंग मतवारो हाथ आवै नाहिं ताके लिये अंकुश लै धार्‌यो हिये ध्याइये॥
सठता सतावै सीत ताही ते अम्बर धर्‌यो हर्‌यो जन शोक ध्यान कीन्हे सुख पाइये।
ऐसे ही कुलिश पाप पर्वत के फोरिबे को भक्ति निधि जोरिबे को कंज मन लाइये॥ १५॥

सन्तोंकी सहायताके लिये राजाधिराज भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरणकमलोंमें सुख देनेवाले इन चिह्नोंको धारण किया है। मनरूपी उन्मत्त हाथी किसी भी प्रकार वशमें नहीं आता है, इसलिये भगवान्‌ने अंकुशका चिह्न धारण किया है। मनोजयके लिये अंकुशका ध्यान करना चाहिये। जड़तारूपी जाड़ा भक्तोंको दुःख देता है, इसलिये वस्त्रचिह्न धारण करके प्रभुने उनका शोक दूर किया, भक्तजन ध्यान करके सुख प्राप्त करें। इसी प्रकार पापरूपी पहाड़ोंको फोड़नेके लिये वज्रका चिह्न और भक्तिरूपी नवनिधि जोड़नेके लिये कमलका चिह्न धारण किया, इनका ध्यान कीजिये॥ १५॥

जव हेतु सुनो सदा दाता सिद्धि विद्या ही को सुमति सुगति सुख सम्पत्ति निवास है।
छिनु में सभीत होत कलि की कुचाल देखि ध्वजा सो विशेष जानो अभैको विश्वास है॥
गोपद सो ह्वै हैं भवसागर नागरनर जो पै नैन हिय के लगावै मिटै त्रास है।
कपट कुचाल माया बल सबै जीतिबे को दर को दरस कर जीत्यो अनायास है॥ १६॥

जव चिह्नके धारणका कारण सुनिये। यह सर्वविद्या और सिद्धियोंका दाता है, इसमें सुमति, सुगति और सुख-सम्पत्तिका निवास है, ध्यान करनेवालोंको इनकी प्राप्ति होती है। कलियुगकी कुटिल गति देखकर भक्तलोग क्षणभरमें ही भयभीत हो जाते हैं, विशेष करके उनको निर्भयताका विश्वास दिलानेके लिये भगवान्‌ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने चरणोंमें ध्वजाका चिह्न धारण किया है। चतुर भक्तजन यदि हृदयके नेत्र गोपदचिह्नमें लगायें तो अपार भवसागर गायके खुरके समान छोटा (सहज पार करनेयोग्य) हो जाता है और सभी संसारी कष्ट मिट जाते हैं। मायाका कपट, मायाकी कुचाल और मायाके सम्पूर्ण बलको जीतनेके लिये प्रभुने शंखचिह्न धारण किया, इसका ध्यान करके भक्तोंने सहज ही मायाको जीत लिया॥ १६॥

कामहू निशाचर के मारिबे को 'चक्र' धर्‌यो मंगल कल्याण हेतु 'स्वस्तिक' हूँ मानिये।
मंगलीक 'जंबूफल' फल चारि हूँ कौ फल कामना अनेक विधि पूर्ण नित ध्यानिये॥
'कलश' 'सुधा को सर' भर्‌यो हरि भक्ति रस, नैन पुट पान कीजै जीजै मन आनिये।
भक्ति को बढ़ावै और घटावै तीन तापहूं को, 'अर्धचन्द्र' धारण ये कारण हैं जानिये॥ १७॥

भगवान्‌ने कामरूपी निशाचरको मारनेके लिये अपने चरणमें चक्रचिह्न धारण किया। ध्यान करनेवालेके मंगल और कल्याणके लिये स्वस्तिकरेखा धारण की, ऐसा मानिये। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारों फलोंका फल जम्बूफल मंगल करनेवाला और अनेक प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, इसका नित्य ध्यान कीजिये। अमृतका कलश और अमृतका कुण्ड—ये चिह्न इसलिये धारण किये कि ध्याताके हृदयमें भक्तिरस भरे। ध्याननेत्रके कटोरेसे पीकर सदा अमर रहें, भक्तजन मनमें ध्यान करें। अर्धचन्द्रके धारणका कारण यह जानिये कि वह ध्यान करनेवालेके तीनों तापोंको नष्ट करे और भक्तिको बढ़ाये॥ १७॥

विषया भुजंग बलमीक तनमाहिं बसै दास कौ न डसै याते यत्न अनुसर्‌यौ है।
'अष्टकोन' 'षटकोन' औ 'त्रिकोन' जंत्र किये जिये जोई जानि जाके ध्यान उर भर्‌यो है॥
'मीन' 'बिन्दु' रामचन्द्र कीन्ह्यो वशीकर्ण पाँय ताहि ते निकाय जन मन जात हर्‌यो है।
सागर संसार ताको पारावार पावें नाहिं 'ऊर्ध्वरेखा' दासन को सेतु बन्ध कर्‌यो है॥ १८॥

काम आदि विषयरूपी साँप शरीररूपी बाँबीमें बसते हैं, वे भक्तोंको न डँसें, इसलिये यह उपाय किया है कि अष्टकोण, षट्कोण और त्रिकोण यन्त्र चिह्नोंको धारण किया, ऐसा जानकर जिस-जिसने हृदयमें इनका ध्यान किया, वे विषयरूपी सर्पसे बचे और जीवित रहे अर्थात् उनका निरन्तर भगवान्‌में प्रेम बना रहा। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरणकमलमें मीन और बिन्दुचिह्नोंको वशीकरण यन्त्र बनाकर धारण किया, इसीसे बहुतसे भक्तोंके मन हरे जाते हैं। संसाररूप सागर अपार है, जिसका कोई पार नहीं पा सकता, इसलिये ऊर्ध्वरेखा धारणकर पुल बाँध दिया है। ध्यान करनेवाले सहजमें ही संसार-सागर पार कर जाते हैं॥ १८॥

'धनु' पद माहिं धर्‌यो हर्‌यौ शोक ध्यानिनको मानिनको मार्‌यो मान रावणादि साखिये।
'पुरुष विशेष' पदकमल बसायो राम, हेतु सुनो अभिराम श्याम अभिलाषिये॥
सूधो मन सूधी बैन सूधी करतूति सब ऐसो जन होय मेरो, याही के ज्यों राखिये।
जो पै बुधिवन्त रसवन्त रूप सम्पत्ति में, करि हिये ध्यान हरिनाम मुख भाषिये॥ १९॥

श्रीराघवेन्द्रसरकारने अपने श्रीचरणोंमें इन्द्रधनुषका चिह्न धारण करके ध्यान करनेवाले भक्तोंका दुःख दूर किया और रावण आदि अहंकारियोंके अहंकारका भी धनुषसे ही नाश किया, सो प्रसिद्ध है। पुरुषविशेष-चिह्न अपने पदकमलमें बसाया, उसका कारण सुनिये और श्यामसुन्दरको प्राप्त करनेकी अभिलाषा कीजिये। उनका कथन है कि हमारा भक्त यदि सरल मनवाला, सत्य, सरल वचनवाला और शुद्ध, सरल कर्मवाला हो तो इसी पुरुष चिह्नके समान मैं चरण-शरणमें रखूँगा। जो जन बुद्धिमान् हों, रूप-सम्पत्तिके रसिक हों, वे पूर्ववर्णित इन श्रीचरणचिह्नोंका हृदयमें ध्यान करके मुखसे भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करते रहें॥ १९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वादश प्रधान भक्त

बिधि नारद संकर सनकादिक कपिलदेव मनुभूप।
नरहरिदास जनक भीषम बलि सुकमुनि धर्मस्वरूप॥
अंतरंग अनुचर हरिजू के जो इन कौ जस गावै।
आदि अंत लौं मंगल तिन को श्रोता बक्ता पावै॥
अजामेल परसँग यह निरनै परम धर्म को जान।
इन की कृपा और पुनि समझै द्वादस भक्त प्रधान॥ ७॥

श्रीब्रह्माजी, श्रीनारदजी, श्रीशंकरजी, श्रीसनकादिक, श्रीकपिलदेवजी महाराज, श्रीमनुजी, श्रीप्रह्लादजी, श्रीजनकजी, श्रीभीष्मपितामहजी, श्रीबलिजी, महामुनि श्रीशुकदेवजी और श्रीधर्मराजजी—ये बारहों भगवान्के अन्तरंग सेवक हैं, जो इनके यशको सुनें और गायें, उन सभी श्रोता और वक्ताओंका आदिसे अन्ततक सर्वदा मंगल हो। अजामिलके प्रसंगमें धर्मराजका यह परमश्रेष्ठ निर्णय जानिये कि इन्हींकी कृपासे और दूसरे भक्त भक्तिके रहस्योंको समझते हैं, ये द्वादश प्रधान भक्त हैं॥ ७॥

यहाँ संक्षेपमें श्रीब्रह्माजी, श्रीनारदजी आदि इन भक्तोंका वर्णन प्रस्तुत है—

श्रीब्रह्माजी

सृष्टिके पूर्व यह सम्पूर्ण विश्व प्रलयार्णवके जलमें डूबा हुआ था। उस समय एकमात्र श्रीनारायणदेव शेषशय्यापर लेटे हुए थे। सृष्टिकाल आनेपर भगवान् नारायणकी नाभिसे एक परम प्रकाशमय कमल प्रकट हुआ और उसी कमलसे साक्षात् वेदमूर्ति श्रीब्रह्माजी प्रकट हुए। उस कमलकी कर्णिकामें बैठे हुए ब्रह्माजीको जब कोई लोक दिखायी नहीं दिया, तब वे आँखें फाड़कर आकाशमें चारों ओर गर्दन घुमाकर देखने लगे, इससे उनके चारों दिशाओंमें चार मुख हो गये। आश्चर्यचकित श्रीब्रह्माजी कुतूहलवश कमलके आधारका पता लगानेके लिये उस कमलकी नालके सूक्ष्म छिद्रोंमें होकर उस जलमें घुसे। परंतु दिव्य सहस्रों वर्षोंतक प्रयत्न करनेपर भी कुछ भी पता न मिलनेपर अन्तमें विफलमनोरथ हो वे पुनः कमलपर लौट आये। तदनन्तर अव्यक्त वाणीके द्वारा तप करनेकी आज्ञा पाकर श्रीब्रह्माजी एक सहस्र दिव्य वर्षपर्यन्त एकाग्रचित्तसे कठिन तप करते रहे। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उन्हें अपने लोकका एवं अपना दर्शन कराया। सफलमनोरथ श्रीब्रह्माजीने भगवान्की स्तुति की। भगवान्ने उन्हें भागवत-तत्त्वका चार श्लोकोंमें उपदेश दिया, जिसे चतुःश्लोकी भागवत कहते हैं। उपदेश देकर भगवान्ने कहा—ब्रह्माजी! आप अविचल समाधिके द्वारा मेरे इस सिद्धान्तमें पूर्ण निष्ठा कर लो। इससे तुम्हें कल्प-कल्पमें विविध प्रकारकी सृष्टि-रचना करते रहनेपर भी कभी मोह नहीं होगा। फिर भगवान्ने अपने संकल्पसे ही ब्रह्माजीके हृदयमें सम्पूर्ण वेद-ज्ञानका प्रकाश कर दिया।

देवर्षि नारद

देवर्षि नारद पहले उपबर्हण नामके गन्धर्व थे। एक बार ब्रह्माजीकी सभामें सभी देवता और गन्धर्व भगवन्नामका संकीर्तन करनेके लिये आये। नारदजी भी अपनी स्त्रियोंके साथ उस सभामें गये। भगवान्के संकीर्तनमें विनोद करते हुए देखकर ब्रह्माजीने इन्हें शूद्र होनेका शाप दे दिया। उस शापके प्रभावसे नारदजीका जन्म एक शूद्रकुलमें हुआ। जन्म लेनेके बाद ही इनके पिताकी मृत्यु हो गयी। इनकी माता दासीका कार्य करके इनका भरण-पोषण करने लगी। एक दिन इनके गाँवमें कुछ महात्मा आये और चातुर्मास्य बितानेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये वहीं ठहर गये। नारदजी बचपनसे ही अत्यन्त सुशील थे। वे खेलकूद छोड़कर उन साधुओंके पास ही बैठे रहते थे और उनकी छोटी-से-छोटी सेवा भी बड़े मनसे करते थे। सन्त-सभामें जब भगवत्कथा होती थी तो ये तन्मय होकर सुना करते थे। सन्तलोग इन्हें अपना सीथ-प्रसाद खानेके लिये दे देते थे। उसके प्रभावसे नारदजीका हृदय पवित्र हो गया और इनके समस्त पाप धुल गये। जाते समय महात्माओंने प्रसन्न होकर इन्हें भगवन्नामका जप एवं भगवान्के स्वरूपके ध्यानका उपदेश दिया। एक दिन साँपके काटनेसे इनकी माताजी भी इस संसारसे चल बसीं। माताके वियोगको भी भगवान्का परम अनुग्रह मानकर ये अनाथोंके नाथ दीनानाथका भजन करनेके लिये चल पड़े। एक दिन जब नारदजी पीपलवृक्षके नीचे बैठकर भगवान्के स्वरूपका ध्यान कर रहे थे, अचानक इनके हृदयमें भगवान् प्रकट हो गये और थोड़ी देरतक अपने दिव्यस्वरूपकी झलक दिखाकर अन्तर्धान हो गये। भगवान्का दुबारा दर्शन करनेके लिये नारदजीके मनमें परम व्याकुलता पैदा हो गयी। वे बार-बार अपने मनको समेटकर भगवान्के ध्यानका प्रयास करने लगे, किंतु सफल नहीं हुए। उसी समय आकाशवाणी हुई—'हे दासीपुत्र! अब इस जन्ममें फिर तुम्हें मेरा दर्शन नहीं होगा। अगले जन्ममें तुम मेरे पार्षदरूपमें मुझे पुनः प्राप्त करोगे।'

समय आनेपर नारदजीका पांचभौतिक शरीर छूट गया और कल्पके अन्तमें ये ब्रह्माजीके मानस पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। देवर्षि नारद भगवान्के भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। ये भगवान्की भक्ति और माहात्म्यके विस्तारके लिये अपनी वीणाकी मधुर तानपर भगवद्गुणोंका गान करते हुए निरन्तर विचरण किया करते हैं।

श्रीशंकरजी

श्रीप्रियादासजीने श्रीशिवजीके सम्बन्धमें निम्न तीन कवित्त कहे हैं—

द्वादश प्रसिद्ध भक्तराज कथा 'भागवत' अति सुखदाई, नाना विधि करि गाये हैं।
शिवजी की बात एक बहुधा न जानै कोऊ, सुनि रस सानै, हियौ भाव उरझाये हैं॥
'सीता' के वियोग 'राम' विकल विपिन देखि 'शंकर' निपुन 'सती' बचन सुनाये हैं।
'कैसे ये प्रवीन ईश कौतुक नवीन देखौ', मनेहूं करत, अङ्ग वैसे ही बनाये हैं॥ २०॥

प्रसिद्ध बारह भक्तराजोंकी सुख देनेवाली कथाएँ श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें अनेक प्रकारसे गायी गयी हैं, परंतु शिवजीकी एक बातको प्रायः लोग नहीं जानते हैं। उस सुन्दर कथाको सुनकर हृदय भक्तिरसमें मगन हो जाता है। ऐसे सुन्दर भावोंमें शंकरजीने अपने मनको उलझा रखा है। सीताके वियोगसे वनमें श्रीरामचन्द्रजीको व्याकुल देखकर सतीजीने भावप्रवीण शंकरजीसे कहा—यह कैसे सर्वज्ञ ईश्वर हैं? यह इनका नवीन कौतुक देखिये कि सीताजीके वियोगमें अति दुःखी हो रहे हैं। तब शंकरजीने खूब समझाया कि यह तो प्रभुकी नरलीला है। परंतु सतीजीकी समझमें नहीं आया। मना करनेपर भी परीक्षा लेनेके लिये उन्होंने सीताजीका-सा रूप बनाया॥ २०॥

सीता ही सो रूप वेष लेशहू न फेर फार रामजी निहारि नेकु मन में न आई है।
तब फिर आयकै सुनाय दई शंकर को अति दुखपाय बहु बिधि समझाई है॥
इष्टको स्वरूप धर्‍यौ ताते तनु परिहर्‍यो पर्‍यो बड़ो शोच मति अति भरमाई है।
ऐसे प्रभु भाव पगे पोथिन में जगमगे लगे मोको प्यारे यह बात रीझि गाई है॥ २१॥

सतीजीका रूप और वेश-भूषा सीताजीके समान था, उसमें थोड़ा भी अन्तर नहीं था। श्रीरामजीने उसे देखा, पर उनके मनमें नाममात्र भी यह बात नहीं आयी कि ये सीताजी हैं, उनको सती ही माना। तब सतीजीने यह बात आकर शंकरजीको सुना दी। शंकरजीने अति दुःख पाकर सतीजीको अनेक प्रकारसे समझाया कि तुमने इष्टदेवी श्रीसीताजीका रूप धारण किया। इसलिये तुम्हारे इस शरीरमें अब मेरा पत्नीभाव नहीं रहा। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनकर सतीजीको बड़ा शोक हुआ और उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। सतीजीने वह शरीर त्याग दिया, पुनः हिमालयके घरमें जन्म लेकर वे शंकरजीको प्राप्त कर सकीं। शिवजी श्रीरामजीकी भक्ति-भावनामें इस प्रकार मग्न रहते हैं कि इतिहास-पुराणोंमें उनकी कथा जगमगा रही है। प्रियादासजी कहते हैं कि मुझे शिवजी अत्यन्त प्यारे लगे, इसलिये रीझकर मैंने इस कथाका गान किया है॥ २१॥

चले जात मग उभै खेरे शिव दीठि परे, करे परनाम, हिय भक्ति लागी प्यारी है।
पार्वती पूछें, किये कौन को? जू! कहौ मोसौं, दीखत न जन कोऊ, तब सो उचारी है॥
वरष हजार दश बीते तहाँ भक्त भयो, नयो और ह्वै है दूजी ठौर बीते धारी है।
सुनिकै प्रभाव, हरिदासनि सों भाव बढ़्यो रढ़्यो कैसे जात चढ़्यो रङ्ग अति भारी है॥ २२॥

एक बार भगवान् शंकर देवी पार्वतीके साथ पृथ्वीपर विचर रहे थे, मार्गमें उजड़े ग्रामोंके दो टीले दिखायी पड़े। शंकरजीने नन्दीसे उतरकर दोनोंको प्रणाम किया; क्योंकि भक्ति आपको अत्यन्त प्यारी है। पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! आपने किसको प्रणाम किया, यहाँ कोई देवता या मुनि दिखायी नहीं पड़ रहे हैं, तब शिवजीने उत्तर दिया कि पहले टीलेपर दस हजार वर्षपूर्व एक प्रेमी भक्त निवास करते थे और यह जो दूसरा टीला है, इसपर दस हजार वर्ष बाद एक भक्त निवास करेंगे। इसीसे ये दोनों स्थान वन्दनीय हैं। भक्तोंका ऐसा प्रताप सुनकर पार्वतीजीके हृदयमें भक्तोंके प्रति अधिक अनुराग बढ़ गया, उसका ऐसा गहरा रंग चढ़ा कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है॥ २२॥

श्रीसनकादि शेष भगवद्भक्तोंका वर्णन आगे दिया जा रहा है—

श्रीसनकादि

श्रीसनकादि ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। अनेक कल्पोंकी आयु बीत जानेपर भी ये अवस्थामें पाँच वर्षके बालकके समान ही रहते हैं। ये सदैव श्रीहरिका गुणगान करते हुए लोकोंका कल्याण करनेकी इच्छासे अबाधगतिसे सर्वत्र विचरण करते रहते हैं। इनका विवरण छप्पय ५ पृ० ४९ में भी दिया गया है।

श्रीकपिलदेवजी

स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान्ने तत्त्वज्ञानका उपदेश देनेके लिये मुनि कपिलदेवके रूपमें अवतार लिया था। ये सांख्यशास्त्रके आचार्य हैं। इनका विवरण छप्पय ५ पृ० ४९ में दिया गया है।

श्रीमनुजी

स्वायम्भुव मनु ब्रह्मावर्तके राजा थे। सब प्रकारकी सम्पदाओंसे युक्त बर्हिष्मती नगरी उनकी राजधानी थी। उसी पुरीमें महारानी शतरूपाके साथ मनुजी निवास करते थे। प्रतिदिन प्रेमपूर्ण हृदयसे भगवान्की कथाएँ सुनना, उनका नित्यका नियम था। मनु और शतरूपाके दो पुत्र और तीन कन्याएँ हुईं। पुत्रोंके नाम उत्तानपाद एवं प्रियव्रत थे और कन्याएँ आकूति, प्रसूति तथा देवहूतिके नामसे प्रसिद्ध हुई थीं। प्रसिद्ध भगवद्भक्त ध्रुव राजा उत्तानपादके ही पुत्र थे। राजा प्रियव्रतने इस पृथ्वीको सात भागोंमें विभक्त किया था। कन्याओंमेंसे आकूति रुचि प्रजापतिको ब्याही गयी थी, प्रसूति प्रजापति दक्षकी पत्नी थी और देवहूतिका विवाह महर्षि कर्दमसे हुआ था। देवहूतिके ही गर्भसे सांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवत्स्वरूप महर्षि कपिलका अवतार हुआ था। महाराज मनुने बहुत समयतक राज्य किया और सब प्रकारसे प्रजा-पालन एवं शास्त्रमर्यादाकी रक्षारूप भगवान्की आज्ञाका पालन किया।

मनु-शतरूपाने अपनी अलौकिक भक्ति और तपस्यासे भगवान्को पुत्ररूपमें प्राप्त किया। वे दोनों दम्पति भगवान्की आज्ञाके अनुसार कुछ कालतक इन्द्रलोकमें रहे। उसके बाद मनु अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश दशरथ हुए और शतरूपा उनकी पत्नी कौसल्या हुईं। श्रीरघुनाथजीने इनके पुत्ररूपमें प्रकट होकर इन्हें अनुगृहीत किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनरहरिदास (प्रह्लाद)

प्रह्लाद दैत्यराज हिरण्यकशिपुके पुत्र होते हुए भी भगवान् श्रीहरिके परमभक्त थे। भगवान् श्रीहरिकी भक्ति इन्हें नारदजीद्वारा माता कयाधूके गर्भमें ही प्राप्त हो गयी थी। इनका विवरण छप्पय ५ पृ० ४४ में नृसिंहावतारके प्रसंगमें आया है।

योगिराज राजा जनक

विदेहराज भक्त श्रीजनकजीकी उत्पत्ति ऋषियोंद्वारा महाराज निमिके शरीर-मन्थनसे हुई है। मातासे उत्पन्न न होनेके कारण इनका नाम 'विदेह' पड़ा और मन्थनसे पैदा होनेके कारण ये 'मैथिल' पुकारे जाने लगे। इसीलिये इस वंशमें आगे होनेवाले राजा भी मैथिल और जनक कहलाये। भुवनवन्द्या भगवती सीताके पिता महाराज सीरध्वजको भी जनक नामसे पुकारनेका यही कारण है। उनकी पुत्री सीताका विवाह श्रीरामचन्द्रजीके साथ हुआ था।

श्रीजनकजी मात्र ब्रह्मज्ञानी ही नहीं, परम भागवत हैं; उनका मन श्रीराम-सीताके चरणकमलोंका सदैव भ्रमर बना रहा।

श्रीभीष्म पितामहजी

भक्तशिरोमणि पितामह भीष्म महाराज शान्तनुके औरस पुत्र थे और गंगादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। बालकका नाम देवव्रत रखा गया।

दासराजके द्वारा पालित सत्यवतीपर मोहित हुए धर्मशील राजा शान्तनुको विषादयुक्त देखकर युक्तिसे देवव्रतने मन्त्रियोंद्वारा पिताके दुःखका कारण जान लिया और पिताकी प्रसन्नताके लिये सत्यवतीके धर्मपिता दासराजके पास जाकर उसके इच्छानुसार 'राजसिंहासनपर न बैठने और आजीवन ब्रह्मचर्य पालनेकी' कठिन प्रतिज्ञा करके पिताका सत्यवतीके साथ विवाह करवा दिया। देवताओंने देवव्रतपर पुष्पवृष्टि करते हुए उनका नाम भीष्म रखा। पुत्रका ऐसा त्याग देखकर राजा शान्तनुने भीष्मको वरदान दिया कि 'तू जबतक जीना चाहेगा, तबतक मृत्यु तेरा बाल भी बाँका न कर सकेगी, तेरी इच्छामृत्यु होगी।'

वीरमूर्ति क्षत्रियकुलसंहारक परशुरामजीसे इन्होंने शस्त्रविद्या सीखी थी।

भीष्मजीने दुर्योधनकी अनीति देखकर उसे कई बार समझाया था, पर वह नहीं समझा और जब युद्धका समय आया, तब पाण्डवोंकी ओर मन होनेपर भी भीष्मने बुरे समयमें आश्रयदाताकी सहायता करना धर्म समझकर कौरवोंके सेनापति बनकर पाण्डवोंसे युद्ध किया। इतना होनेपर भी भीष्मजी पाण्डवोंके पक्षमें सत्य देखकर उनका मंगल चाहते थे और यह मानते थे कि अन्तमें जीत पाण्डवोंकी ही होगी।

भीष्मजी ज्ञानी, दृढ़प्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय और अप्रतिम योद्धा होनेके साथ ही भगवान्के अनन्य भक्त थे। महाभारत-युद्धमें शिखण्डीके सामने बाण न चलानेके कारण अर्जुनके बाणोंसे बिंधकर भीष्म शरशय्यापर गिर पड़े और उत्तरायणकी प्रतीक्षा करते हुए अन्ततक शरशय्यापर ही पड़े रहे।

युद्ध समाप्त हुआ। धर्मराजका राज्याभिषेक हुआ। एक दिन युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णके पास गये तो देखा कि भगवान् ध्यानमग्न हैं। यह देखकर आश्चर्यचकित धर्मराज बोले—'प्रभो! आप किसका ध्यान करते हैं?' भगवान्ने उत्तर दिया—'धर्मराज! शरशय्यापर सोते हुए नरशार्दूल भीष्म मेरा ध्यान कर रहे थे, उन्होंने मुझे स्मरण किया था, इसलिये मैं भी भीष्मका ध्यान कर रहा था।' फिर भगवान्ने कहा—'युधिष्ठिर! वेद और धर्मके सर्वोपरि ज्ञाता, कुरुकुलसूर्य पितामहके अस्त होते ही जगत्का ज्ञानसूर्य भी निस्तेज हो जायगा। अतएव वहाँ चलकर कुछ उपदेश ग्रहण करना हो तो कर लो।'

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण महाराजको साथ लेकर भीष्मके पास गये। बड़े-बड़े ब्रह्मवेत्ता ऋषि-मुनि वहाँ उपस्थित थे। भीष्मने भगवान्को देखकर प्रणाम और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तवन किया।

भगवत्प्रसादसे भीष्मके शरीरकी सारी वेदनाएँ उसी समय नष्ट हो गयीं, उनका अन्तःकरण सावधान और बुद्धि सर्वथा जाग्रत् हो गयी। उन्होंने युधिष्ठिरको धर्मके सब अंगोंका पूरी तरह उपदेश दिया और उनके शोकसन्तप्त हृदयको शान्त कर दिया।

राजा बलि

महादानी बलि भक्तप्रवर महाभागवत प्रह्लादके पौत्र और विरोचनके पुत्र थे। इनसे सम्बन्धित विवरण छप्पय ५ पृ० ४५ पर वामनावतारके प्रसंगमें दिया गया है।

महात्मा शुकदेव

महात्मा शुकदेव भगवान् वेदव्यासके पुत्र थे। इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ मिलती हैं। कहीं इन्हें व्यासकी पत्नी वटिकाके तपका परिणाम और कहीं व्यासजीकी तपस्याके परिणामस्वरूप भगवान् शंकरका अद्भुत वरदान बताया गया है। एक कथा ऐसी भी है कि जब इस धराधामपर भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीराधिकाजीका अवतरण हुआ, तब श्रीराधिकाजीका क्रीडाशुक भी इस धराधामपर आया। उसी समय भगवान् शिव पार्वतीजीको अमर-कथा सुना रहे थे। पार्वतीजी कथा सुनते-सुनते निद्राके वशीभूत हो गयीं और उनकी जगहपर शुकने हुंकारी भरना प्रारम्भ कर दिया। जब भगवान् शिवको यह बात ज्ञात हुई, तब उन्होंने शुकको मारनेके लिये उसका पीछा किया। शुक भागकर व्यासजीके आश्रममें आया और सूक्ष्म-रूप बनाकर उनकी पत्नीके मुखमें प्रविष्ट हो गया। भगवान् शंकर वापस लौट गये। यही शुक व्यासजीके अयोनिज पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। गर्भमें ही इन्हें वेद, उपनिषद्, दर्शन और पुराण आदिका सम्यक् ज्ञान हो गया था। ऐसा कहा जाता है कि ये बारह वर्षतक गर्भके बाहर ही नहीं निकले। जब भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं आकर इन्हें आश्वासन दिया कि बाहर निकलनेपर तुम्हारे ऊपर मायाका प्रभाव नहीं पड़ेगा, तभी ये गर्भसे बाहर निकले। जन्मते ही श्रीकृष्ण और अपने माता-पिताको प्रणाम करके इन्होंने तपस्याके लिये जंगलकी राह ली। व्यासजी इनके पीछे-पीछे 'हा पुत्र! हा पुत्र!' पुकारते रहे, किंतु इन्होंने उसपर कोई ध्यान न दिया।

श्रीशुकदेवजीका जीवन भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति और वैराग्यका अनुपम उदाहरण है। व्यासजीकी हार्दिक इच्छा थी कि शुकदेवजी श्रीमद्भागवत-जैसी परमहंस-संहिताका अध्ययन करें, किंतु ये मिलते ही नहीं थे। श्रीव्यासजीने श्रीमद्भागवतकी श्रीकृष्णलीलाका एक श्लोक* बनाकर अपने शिष्योंको रटा दिया। वे उसे गाते हुए जंगलमें समिधा लानेके लिये जाया करते थे। एक दिन शुकदेवजीने भी उस श्लोकको सुन लिया। श्रीकृष्णलीलाके अद्भुत आकर्षणसे बँधकर शुकदेवजी अपने पिता श्रीव्यासजीके पास लौट आये। फिर उन्होंने श्रीमद्भागवतमहापुराणके अठारह हजार श्लोकोंका विधिवत् अध्ययन किया। इन्होंने इस परमहंससंहिताका सप्ताह-पाठ महाराज परीक्षित्को सुनाया, जिसके दिव्य प्रभावसे परीक्षित्जी भगवान्के मंगलमय धामके सच्चे अधिकारी बने।

श्रीयमराजजी

भगवान् सूर्यकी पत्नी संज्ञासे आपका प्रादुर्भाव हुआ है। आपको भगवान् श्रीहरिने अपनी विभूति कहा है—'**यमः संयमतामहम्**' (गीता १०।२९)। आप कल्पान्ततक संयमनीपुरीमें रहकर जीवोंके कर्मानुसार शुभाशुभ फलका विधान करते रहते हैं। प्रजाका संयमन करनेके कारण आपको 'यमराज' भी कहा जाता है। पुण्यात्मा लोगोंको आप धर्मराजके रूपमें बड़े सौम्य और पापात्मा जीवोंको यमराजके रूपमें भयंकर दीखते हैं। कठोपनिषद्में नचिकेताको दिया गया इनका उपदेश बड़े ही महत्त्वका है।

---

* बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥ (श्रीमद्भा० १०।२१।५)

(गोपिकाएँ मन-ही-मन देखने लगीं कि) श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिरपर मयूरपिच्छ है और कानोंपर कनेरके पीले-पीले पुष्प; शरीरपर सुनहला पीताम्बर और गलेमें पाँच प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंकी बनी वैजयन्ती माला है। रंगमंचपर अभिनय करते हुए श्रेष्ठ नटका-सा क्या ही सुन्दर वेष है। बाँसुरीके छिद्रोंको वे अपने अधरामृतसे भर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोकपावन कीर्तिका गान कर रहे हैं। इस प्रकार वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ वह वृन्दावनधाम उनके चरणचिह्नोंसे और भी रमणीय बन गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजामिलकी कथा

श्रीप्रियादासजीने अजामिलकी कथा संक्षेपमें निम्न दो कवित्तोंमें वर्णित की है—

धर्‍यौ पितु मातु नाम अजामेल सांचो भयो भयौ अजामेल तिया छूटी शुभजातकी।
कियो मदपान सो सयान गहि दूरि डार्‍यो गार्‍यौ तनु वाहि सों जो कीन्हों लैकै पातकी॥
करि परिहास काहू दुष्ट ने पठाये साधु आये घर देखि बुद्धि आइ गई सातकी।
सेवा करि सावधान सन्तन रिझाय लियो नारायण नाम धरो गर्भ बाल बातकी॥ २३॥
आइ गयो काल मोह जाल में लपटि रह्यो महा विकराल यम दूत सो दिखाइये।
वोही सुत नारायण नाम जो कृपाके दियो लियो सो पुकारि सुर आरत सुनाइये॥
सुनत ही पार्षद आये वाही ठौर दौर तोरि डारे पास कह्यौ धर्म समुझाइये।
हारे लै बिडारे जाइ पति पै पुकारे कही सुनो बजमारे मति जावो हरि गाइये॥ २४॥

कवित्तोंमें वर्णित अजामिलकी कथाका भाव इस प्रकार है—

कन्नौजके आचारच्युत एवं जातिच्युत ब्राह्मण अजामिलने कुलटा दासीको पत्नी बना लिया था। न्याय-अन्यायसे जैसे भी धन मिले, वैसे प्राप्त करना और उस दासीको सन्तुष्ट करना ही उसका काम हो गया था। माता-पिताकी सेवा और अपनी विवाहिता साध्वी पत्नीका पालन भी कर्तव्य है, यह बात उसे सर्वथा भूल चुकी थी।

उस कुलटा दासीसे अजामिलके कई सन्तानें हुईं। पहलेका किया पुण्य सहायक हुआ, किसी सत्पुरुषका उपदेश काम कर गया। अपने सबसे छोटे पुत्रका नाम अजामिलने 'नारायण' रखा। बुढ़ापेकी अन्तिम संतानपर पिताका अपार मोह होता है। अजामिलके प्राण जैसे उस छोटे बालकमें ही बसते थे। इसी मोहग्रस्त दशामें मृत्युकी घड़ी आ गयी। यमराजके भयंकर दूत हाथोंमें पाश लिये आ धमके और अजामिलके सूक्ष्मशरीरको उन्होंने बाँध लिया। उन विकराल दूतोंको देखते ही भयसे व्याकुल अजामिलने पासमें खेलते हुए अपने पुत्रको कातर स्वरमें पुकारा—'नारायण! नारायण!'

'नारायण!' एक मरणासन्न प्राणीकी यह कातर पुकार सुनी भगवत्पार्षदोंने और वे दौड़ पड़े। यमदूतोंका पाश उन्होंने छिन्न-भिन्न कर दिया।

बेचारे यमदूत हक्के-बक्के देखते रह गये। उनका ऐसा अपमान कहीं नहीं हुआ था। साहस करके वे भगवत्पार्षदोंसे बोले—'आपलोग कौन हैं? हम तो धर्मराजके सेवक हैं। उनकी आज्ञासे पापीको उनके समक्ष ले जाते हैं। आप हमें अपने कर्तव्यपालनसे क्यों रोकते हैं?'

भगवत्पार्षदोंने फटकार दिया—'तुम धर्मराजके सेवक

सही हो, किंतु तुम्हें धर्मका ज्ञान ही नहीं है। जानकर या अनजानमें ही जिसने 'भगवान् नारायण' का नाम ले लिया, वह पापी रहा कहाँ! इस पुरुषने पुत्रके बहाने सही, नाम तो नारायण प्रभुका लिया है; फिर इसके पाप रहे कहाँ। तुम एक निष्पापको कष्ट देनेकी धृष्टता मत करो!'

यमदूत क्या करते, वे अजामिलको छोड़कर यमलोक आ गये और अपने स्वामीके सम्मुख हाथ जोड़कर सारा वृत्तान्त निवेदित किया।

दूतों की बात सुनकर यमराज बोले—'सेवको! तुमलोग केवल उसी पापी जीवको लेने जाया करो, जिसकी जीभसे कभी किसी प्रकार भगवन्नाम न निकला हो, जिसने कभी भगवत्कथा न सुनी हो, जिसके पैर कभी भगवान्‌के पावन लीलास्थलोंमें न गये हों अथवा जिसके हाथोंने कभी भगवान्‌के श्रीविग्रहकी पूजा न की हो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षोडश पार्षद

बिष्वकसेन जय बिजय प्रबल बल मंगलकारी।
नंद सुनंद सुभद्र भद्र जग आमयहारी॥
चंड प्रचंड बिनीत कुमुद कुमुदाच्छ करुनालय।
सील सुसील सुषेन भाव भक्तन प्रतिपालय॥
लक्ष्मीपति प्रीणन प्रबीन भजनानँद भक्तन सुहृद।
मो चितबृति नित तहँ रहौ जहँ नारायन (पद) पारषद॥ ८॥

विष्वक्सेन, जय, विजय, प्रबल और बल—ये भक्तोंका मंगल करनेवाले हैं। नन्द, सुनन्द, सुभद्र और भद्र—ये भवरोगोंको हरनेवाले हैं। चण्ड, प्रचण्ड, कुमुद और कुमुदाक्ष—ये परम विनीत तथा अति कृपालु हैं। शील, सुशील और सुषेण—ये भावुक भक्तोंके प्रतिपालक हैं। ये सोलह प्रधान पार्षद श्रीलक्ष्मीनारायणकी सेवा करके उन्हें प्रसन्न करनेमें परम चतुर हैं और भजनानन्दी भक्तोंके हितकारी हैं। मेरी चित्तवृत्ति सर्वदा वहाँ ही रहे, जहाँ नारायण भगवान्के पार्षद रहते हैं॥ ८॥

प्रियादासजीने एक कवित्तमें षोडश पार्षदोंकी महिमाका वर्णन इस प्रकार किया है—

पारषद मुख्य कहे सोरह सुभाव सिद्ध सेवा ही की ऋद्धि हिये राखि बहु जोरि कै।
श्रीपति नारायण के प्रीनन प्रबीन महा ध्यान करैं जन पालैं भाव दृग कोरि कै॥
सनकादि दियो शाप प्रेरि कै दिवायो आप प्रगट ह्वै कह्यौ पियौ सुधा जिमि घोरि कै।
गहि प्रतिकूलताई जो पै यही मन भाई याते रीति हद गाई धरी रंग बोरि कै॥ २५॥

श्रीनाभाजीने नारायण भगवान्के मुख्य सोलह पार्षद कहे। ये सहज स्वभावसे ही नित्य-सिद्ध एवं नित्य-मुक्त हैं। इन्होंने भगवत्सेवारूपी अनन्त सम्पत्तिको हृदयमें एकत्र कर रखा है। ये लक्ष्मीपति नारायणको प्रसन्न करनेमें परम चतुर हैं। सदा भगवान्के ध्यानमें मगन रहते हैं। प्रेमभावसे पूर्ण दृष्टिकोणसे भक्तोंका पालन करते हैं। स्वयं नारायण भगवान्ने प्रेरणा करके सनकादिकोंसे जय-विजयको तीन जन्मतक असुर होनेका शाप दिलाया। फिर वहाँ प्रकट होकर बोले कि यह शाप मेरी इच्छासे ही हुआ है। यह सुनकर जय-विजयने शापको अमृतपानके समान रुचिपूर्वक स्वीकार किया और कहा कि 'यदि आपको यही अच्छा लगता है तो अनुकूल सेवा-सुख त्यागकर प्रतिकूल शत्रुभाव भी स्वीकार है।' ऐसी रंगीली प्रीतिकी रीति धारण की, इससे इनकी उपासनाकी रीति अन्तिम सीमाकी कही गयी है॥ २५॥

हरिवल्लभ (भगवान्के प्रिय भक्त)

कमला गरुड़ सुनंद आदि षोडस प्रभु पद रति।
हनु जमवंत सुग्रीव बिभीषन सबरी खगपति॥
ध्रुव उद्धव अँबरीष बिदुर अक्रूर सुदामा।
चंद्रहास चित्रकेतु ग्राह गज पांडव नामा॥
कौषारव कुंती बधू पट ऐंचत लज्जा हरी।
हरि बल्लभ सब प्रारथौं (जिन) चरन रेनु आसा धरी॥ ९॥

श्रीलक्ष्मीजी, गरुड़जी, सुनन्द आदि सोलह पार्षद, हनुमान्जी, जाम्बवान्जी, सुग्रीवजी, विभीषणजी, श्रीशबरीजी, खगपति जटायुजी, ध्रुवजी, उद्धवजी, अम्बरीषजी, विदुरजी, अक्रूरजी, सुदामाजी, चन्द्रहासजी, चित्रकेतुजी, ग्राह,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गजेन्द्र, पाण्डव (युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव), श्रीमैत्रेयजी, कुन्तीजी और द्रौपदीजी, जिनकी लज्जा दुःशासनके वस्त्र खींचते समय भगवान्‌ने रखी। इन सबकी प्रभुके पादपद्मोंमें प्रीति है। इन हरिके प्यारे भक्तोंकी प्रार्थना करता हूँ। इनके चरणोंकी रजको प्राप्त करनेकी आशा मनमें धारण की है॥ ९॥

श्रीप्रियादासजीने भगवान्‌के प्रिय भक्तोंकी महिमा निम्न कवित्तमें वर्णित की है—

हरि के जे वल्लभ है दुर्लभ भुवन मांझ तिनहीं की पदरेणु आसा जिय करी है।
योगी यती तपी तासों मेरो कछु काज नाहिं प्रीति परतीत रीति मेरी मति हरी है॥
कमला गरुड़ जाम्बवान सुग्रीव आदि सबै स्वाद रूप कथा पोथिन में धरी है।
प्रभुसों सचाई जग कीरति चलाई अति मेरे मन भाई सुखदाई रस भरी है॥ २६॥

जो भगवान्‌के प्यारे भक्त हैं, वे चौदहों भुवनोंमें दुर्लभ हैं, मैंने उन्हींकी चरणरेणुको प्राप्त करनेकी आशा की है। भक्तिहीन जो कोरे योगी, संन्यासी और तपस्वी हैं, उन लोगोंसे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है। भक्तोंकी प्रीति, विश्वास और उपासनाकी रीतिने मेरी बुद्धिको अपनी ओर खींच लिया है। लक्ष्मी, गरुड़, जाम्बवान् और सुग्रीव आदिकी अति मधुर कथाएँ पुराण आदि ग्रन्थोंमें लिखी हैं। जिन भक्तोंने प्रभुसे निष्कपट सच्चा प्रेम किया तथा संसारमें अपनी और भगवान्‌की कीर्ति फैलायी, उनकी वह रसमयी मधुर गाथा मेरे मनको बहुत अच्छी लगी; क्योंकि वह सुनने-सुनानेमें हृदयको सुख देनेवाली है॥ २६॥

यहाँ संक्षेपमें भगवान्‌के प्रिय भक्तोंकी कथाएँ दी जा रही हैं—

श्रीकमला (श्रीलक्ष्मीजी)

भगवती लक्ष्मीजी विष्णुवल्लभा हैं, वे भगवान् विष्णुसे अभिन्न हैं। उनके विषयमें बताते हुए पराशरजी श्रीमैत्रेयजीसे कहते हैं—हे द्विजश्रेष्ठ! भगवान्‌का कभी संग न छोड़नेवाली

जगज्जननी लक्ष्मीजी नित्य हैं और जिस प्रकार श्रीविष्णुभगवान् सर्वव्यापक हैं, वैसे ही ये भी हैं। विष्णु अर्थ हैं तो लक्ष्मीजी वाणी हैं; हरि न्याय हैं तो ये नीति हैं; भगवान् विष्णु बोध हैं तो ये बुद्धि हैं; तथा वे धर्म हैं तो लक्ष्मीजी सत्क्रिया हैं। मैत्रेय! भगवान् जगत्‌के स्रष्टा हैं तो लक्ष्मीजी सृष्टि हैं। भगवान् विष्णु शंकर हैं तो श्रीलक्ष्मीजी गौरी हैं; हे मैत्रेय! पुरुषवाची तत्त्व भगवान् श्रीहरि हैं और स्त्रीवाची तत्त्व श्रीलक्ष्मीजी; इनके परे और कोई नहीं है।

श्रीगरुड़जी

श्रीगरुड़जी भगवान्‌के ज्ञानसम्पन्न नित्यमुक्त परिकर हैं। वेदोंके अधिष्ठातृ देवता एवं वेदात्मा होनेके कारण उनको शास्त्रोंमें सर्वज्ञ कहा गया है। श्रुतियोंमें भी इनका वर्णन 'सर्ववेदमय विग्रह' के रूपमें आया है। जब गरुड़जी उड़ते हैं तो इन्हीं पंखोंसे साम-गानकी ध्वनि निकलती है। भगवान्‌के नित्यमुक्त परिकर होनेपर भी इनका जन्म कश्यप और विनतासे माना गया है, इसीलिये इनका नाम 'वैनतेय' भी है।

ये भगवान् विष्णुके वाहन हैं, अतः इनकी पीठपर श्रीहरिके चरण-चिह्न अंकित हो गये हैं। स्वयं श्रीभगवान्‌ने उन्हें अपनी विभूति कहा है—**'वैनतेयश्च पक्षिणाम्'** (गीता १०।२९)। भगवान्‌की कृपा एवं प्रेरणासे इन्होंने एक पुराणका कथन श्रीकश्यपजीको किया था। यही पुराण श्रीवेदव्यासके द्वारा संकलित होकर अष्टादश पुराणोंमें गरुड़-पुराणके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

सुनन्द आदि

सुनन्द भगवान् विष्णुके सोलह प्रधान पार्षदोंमेंसे एक हैं। इनका स्वरूप भगवान् विष्णुके ही सदृश नवघनश्याम, चतुर्भुज और पीताम्बरालंकृत है। भगवान्‌के दिव्य वैकुण्ठ धाममें ये उनकी सेवामें सदा सन्नद्ध रहते हैं।

श्रीहनुमान्‌जी

श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामभक्तोंमें अग्रगण्य हैं, उनकी श्रीरामभक्ति अतुलनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजी महाराज हनुमान्‌जीकी भक्तिका वर्णन करते हुए एक प्रसंगमें कहते हैं—

रतन अपार क्षीरसागर उधार किये लिये हित चाय कै बनाय माला करी है।
सब सुख साज रघुनाथ महाराज जू को भक्तिसों विभीषणजू आनि भेंट धरी है॥
सभा ही की चाह अवगाह हनुमान गरे डारि दई सुधिभई मति अरबरी है।
राम बिन काम कौन फोरि मनि दीन्हे डारि खोलि त्वचा नामही दिखायो बुद्धिहरी है॥ २७॥

कवित्तका भाव इस प्रकार है—

रावणके कोषमें समुद्र-मन्थनके समय निकले सभी दिव्य रत्न संचित थे। उसके वधके बाद जब विभीषणका राज्याभिषेक हुआ तो उन्होंने उन दिव्य रत्नोंकी एक माला बनायी और कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए उसे श्रीराम प्रभुके चरणोंमें अत्यन्त भक्तिपूर्वक निवेदित किया। उस दिव्य रत्नमालाके लिये समस्त वानर-भालुओंका मन लालायित हो गया, वहाँ श्रीहनुमान्‌जी भी थे, परंतु उनका मन तो अपने आराध्य प्रभुके रूप-सुधाका पान करनेमें ही मग्न था। यह देखकर प्रभुने वह माला श्रीहनुमान्‌जीके गलेमें डाल दी। हनुमान्‌जीने उस मालाको उलट-पुलटकर देखा, फिर उसके एक-एक रत्नको निकालकर अपने वज्रसदृश दाँतोंसे तोड़-तोड़कर देखने लगे। उन्हें ऐसा करते देख विभीषणजीने पूछा—'हनुमान्‌जी! आप इन अमूल्य रत्नोंको क्यों नष्ट कर रहे हैं?' हनुमान्‌जीने अनमने भावसे उत्तर दिया—'इन रत्नोंमें प्रभु श्रीरामका नाम अंकित नहीं है, इसलिये ये मेरे लिये मूल्यहीन हैं।' इसपर विभीषणजीने कहा—'आपके शरीरपर भी तो कहीं राम-नाम अंकित नहीं है, फिर इसे आप क्यों धारण किये हैं?' इसपर श्रीहनुमान्‌जीने अपना हृदय चीरकर दिखलाया, तो उनके अन्तस्तलमें विराजमान श्रीराम-सीताके दर्शन सबको हुए।

श्रीजाम्बवान्‌जी

ऋक्षराज जाम्बवान् ब्रह्माके अंशावतार हैं। एक रूपसे सृष्टि करते-करते ही दूसरे रूपसे भगवान्‌की आराधना, सेवा एवं सहायता की जा सके, इसी भावसे वे जाम्बवान्‌के रूपमें अवतीर्ण हुए थे। ये भगवान्‌के प्रधानमन्त्री ही थे। सीताके अन्वेषणमें ये हनुमान्‌जीके साथ थे और जब समुद्रपार जानेकी किसीको हिम्मत न पड़ी, तब इन्होंने हनुमान्‌जीको उनकी शक्तिका स्मरण कराया। भगवान् रामके चरणोंमें इनका इतना प्रेम था कि उनके अयोध्या पहुँचनेपर इन्होंने वहाँसे अपने घर जाना अस्वीकार कर दिया और हठ किया कि मैं आपके चरणोंको छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। जबतक भगवान् रामने द्वापरमें आकर दर्शन देनेकी प्रतिज्ञा नहीं की, तबतक ये अपने हठपर अड़े ही रहे। अन्ततः उनकी आज्ञा मानकर अपने घर आये और नित्य भगवान्‌की प्रतीक्षामें उन्हींका चिन्तन-स्मरण करते हुए अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

लम्बी प्रतीक्षाके बाद द्वापरयुगके अन्तमें यदुवंशमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ। जाम्बवान्‌को दर्शन देने भगवान् श्रीकृष्ण जाम्बवान्‌के घर पहुँच गये। जाम्बवान्‌ने अपने इष्टदेवको पहचानकर साष्टांग नमस्कार करके स्तुति की, षोडशोपचार पूजा की और उपहारस्वरूप स्यमन्तक मणिके साथ अपनी कन्या जाम्बवती उन्हें समर्पित की। इस प्रकार अपने जीवनको भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ाकर जीवनका सच्चा लाभ लिया।

श्रीसुग्रीवजी

सुग्रीव भगवान्‌के सखाभक्त थे। सीताजीका हरण हो जानेपर जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणजीके साथ उन्हें खोजते-खोजते शबरीके बतानेपर ऋष्यमूक पर्वतपर आये तो सुग्रीवने दूरसे ही श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर हनुमान्‌जीको भेजा। हनुमान्‌जी उन्हें आदरपूर्वक ले आये। अग्निके साक्षित्वमें श्रीराम एवं सुग्रीवमें मित्रता हुई। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने सुग्रीवके बड़े भाई बालिका उसके अमर्यादित आचरणके लिये वध कर दिया और सुग्रीवको किष्किन्धाका राजा और बालिपुत्र अंगदको युवराज बना दिया। तदनन्तर सुग्रीवने वानरोंको इधर-उधर श्रीसीताजीकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोजके लिये भेजा और श्रीहनुमान्‌जीद्वारा सीताजीका समाचार पाकर अपनी असंख्य वानरी सेना लेकर लंकापर चढ़ गये।

लंका-विजय करके ये भी श्रीरामजीके साथ श्रीअवधपुरी आये। श्रीरामजीने थोड़े दिन इन्हें अवधपुरीमें रखकर बिदा कर दिया और ये भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण-कीर्तन करते हुए अपनी पुरीमें रहने लगे। अन्तमें जब भगवान् निजलोक पधारने लगे, तब ये भी आ गये और भगवान्‌के साथ ही साकेत गये।

श्रीविभीषणजी

श्रीविभीषणजी शरणागति भक्तिके आदर्श हैं। राक्षसवंशमें उत्पन्न होते हुए भी वे वैष्णवोंमें अग्रगण्य थे। वे मनुष्यमात्रमें अपने आराध्य प्रभु श्रीरामका दर्शन करते थे।

श्रीप्रियादासजी विभीषणजीकी भक्तिका वर्णन एक प्रसंगके माध्यमसे निम्न कवित्तोंमें करते हैं—

भक्ति जो विभीषण की कहै ऐसो कौन जन ऐ पै कछु कही जात सुनो चितलाय कै।
चलत जहाज परी अटक विचार कियौ कोऊ अङ्गहीन नर दियौ लै बहाय कै॥
जाय लग्यौ टापू ताहि राक्षसनि गोद लियौ मोद भरि राजा पास गये किलकाय कै।
देखत सिंहासन ते कूदि परे नैन भरे याहि के आकार राम देखे भाग पाय कै॥ २८॥
रचि कै सिंहासन पै लै बैठाये ताही छन राक्षसन रीझि देत मानि शुभ घरी है।
चाहत मुखारबिन्द अति ही आनन्द भरि ढरकत नैन नीर टेकि ठाड़ो छरी है॥
तऊ न प्रसन्न होत छन छन छीन ज्योति हूजिये कृपाल मति मेरी अति हरी है।
करो सिन्धु पार मेरे यही सुख सार दियो रतन अपार लाये वाही ठौर फेरी है॥ २९॥
रामनाम लिखि सीस मध्य धरि दियो याको यही जल पार करै भाव सांचो पायो है।
ताही ठौर बैठ्यौ मानो नयो और रूप भयो गयो जो जहाज सोई फिरि करि आयो है॥
लियो पहिचान पूछ्यो सब सौ बखान कियो हियो हुलसायो सुनि बिनै कै चढ़ायो है।
पर्‌यो नीर कूदि नेकु पांय न परस कर्‌यो हर्‌यो मन देखि रघुनाथ नाम भायो है॥ ३०॥

कवित्तोंमें बताया गया है कि एक बारकी बात है, समुद्रमें एक जहाज जा रहा था, वह किसी कारणसे अटक गया। अनेक उपाय करनेपर भी जब जहाज न चला, तब समुद्रने रोका है और भेंट चाहता है, ऐसा मानकर नाविकोंने एक दुर्बल पंगु-मनुष्यको बलिदानकी तरह समुद्रमें बहा दिया। वह मरा नहीं, तरंगोंमें बहते-बहते लंका टापूमें जा लगा। राक्षस उसे लेकर विभीषणजीके पास आये, उसे देखते ही विभीषणजी सिंहासनसे कूद पड़े, उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उन्होंने कहा—श्रीरामचन्द्रजी भी इसी आकारके थे, बड़े भाग्यसे आज इनका दर्शन हुआ है। विभीषणजीने उस मनुष्यको वस्त्र और अलंकारोंसे सजाकर सुसज्जित सिंहासनपर बैठाया और अनेक प्रकारसे उसका सम्मान किया। फिर भी वह मनुष्य प्रसन्न नहीं हो रहा था। क्षण-क्षणमें उसकी कान्ति क्षीण हो रही थी। तब विभीषणने प्रार्थना की कि प्रभो! कृपा कीजिये, सेवाके लिये मुझे आज्ञा दीजिये। यह सुनकर उस मनुष्यने कहा—मुझे समुद्रके उस पार पहुँचा दो, इसीमें मुझे बड़ा भारी सुख होगा। तब बहुमूल्य अपार रत्नराशि भेंटमें उसे देकर विभीषणजी समुद्रतटपर फिर ले आये। विभीषणजीने उस मनुष्यके सिरपर श्रीरामनाम लिखकर रख दिया और कहा कि यही रामनाम तुम्हें समुद्रसे पार कर देगा। विभीषणकी कृपासे उस मनुष्यमें भी सच्चा प्रेम और विश्वास उत्पन्न हो गया और वह उसी ठौर बैठ गया। संयोगवश वही जहाज फिर लौटकर आया, जिससे इसे गिराया गया था। जहाजपरके लोगोंने इसे पहचान लिया। पूछनेपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने उल्लासपूर्वक सब वृत्तान्त बताया। सुनकर लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन लोगोंने बड़ी अनुनय-विनय करके उस मनुष्यको जहाजपर चढ़ा लिया। लोभवश नाविकोंने उससे रत्नराशि छीननी चाही, तब वह जलमें कूद पड़ा और थलकी तरह जलमें चलने लगा। उसके पैरोंमें जल छूतक नहीं रहा था। यह देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये और उससे इसका कारण पूछा। उसने विभीषणद्वारा बतायी गयी श्रीरामनाम महिमा सबको बतायी। अब तो सब बहुत पछताये, क्षमा माँगी और नाममें सबका अपार प्रेम हो गया। ऐसे श्रीरामनिष्ठ भक्त थे विभीषणजी!

भक्तिमती शबरी

शबरी भगवद्भक्तिकी साक्षात् प्रतिमा थी। उसका जन्म भीलकुलमें हुआ था। वह भीलराजकी एकमात्र कन्या थी। उसका विवाह पशुस्वभावके एक क्रूर व्यक्तिसे होना निश्चित हुआ था। अपने विवाहके अवसरपर बलिहेतु लाये गये पशु-समुदायको देखकर उसका हृदय करुणाप्लावित हो उठा। उसके हृदयमें दया, अहिंसा और भगवद्भक्तिके संस्कार थे। उसने अपने पिताके अपयशकी परवाह किये बिना चुप-चाप जंगलकी राह ली।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज शबरीके भक्तिमय दिव्य चरित्रको रूपायित करते हुए निम्न कवित्तोंमें लिखते हैं—

**वन में रहति नाम शबरी कहत सब चाहत टहल साधु तन न्यूनताई है।
रजनी के शेष ऋषि आश्रम प्रवेश करि लकरीन बोझ धरि आवै मन भाई है॥
न्हाइबे को मग झारि कांकरनि बीनि डारि वेगि उठि जाइ नेकु देति न लखाई है।
उठत सबारे कहैं कौन धौं बुहारि गयो भयौ हिये सोच कोऊ बड़ो सुखदाई है॥ ३१॥
बड़ेई असङ्ग वे मतङ्ग रस रंग भरे धरे देखि बोझ कह्यो कौन चोर आयो है।
करै नित चोरी अहो गहो वाहि एक दिन बिना पाये प्रीति वाकी मन भरमायो है॥
बैठे निशि चौकी देत शिष्य सब सावधान आय गई गहि लई कांपै तनु नायो है।
देखत ही ऋषि जलधारा वही नैनन ते बैनन सों कह्यो जात कहा कछु पायो है॥ ३२॥
डीठि हू न सोहीं होत मानि तन गोत छोत परी जाय सोच सोत कैसे के निकारिये।
भक्ति को प्रताप ऋषि जानत निपट नीके कैऊ कोटि विप्रताई यापै वारि डारिये॥
दियो बास आश्रम में श्रवन में नाम दियो कियो सुनि रोष सबै कीनी पांति न्यारिये।
शबरी सों कह्यो तुम राम दरसन करो मैं तो परलोक जात आज्ञा प्रभु पारिये॥ ३३॥
गुरू को वियोग हिये दारुन लै शोक दियो जियो नहीं जात तऊ राम आसा लागी है।
न्हाइबे की बाट निशि जात ही बुहारि सब भई यौं अबार ऋषि देखि व्यथा पागी है॥
छुयो गयो नेकु कहूं खीझत अनेक भांति करिकै विवेक गयो न्हान यह भागी है।
जल सो रुधिर भयौ नाना कृमिभरि गयो नयो पायो सोच तौ हू जानै न अभागी है॥ ३४॥
लावै बन बेर लागी राम की अवसेर भल चाखै धरि राखै फिर मीठे उन जोग हैं।
मारग में जाइ रहै लोचन बिछाइ कभूं आवैं रघुराइ दृग पावैं निज भोग हैं॥
ऐसे ही बहुत दिन बीते मग जोहत ही आय गये औचक सो मिटे सब सोग हैं।
ऐ पै तनु नूनताई आई सुधि छिपी जाय पूछैं आप सबरी कहाँ ठाड़े सब लोग हैं॥ ३५॥
पूछि पूछि आये तहाँ शबरी स्थान जहाँ कहाँ वह भागवती देखौं दृग प्यासे हैं।
आय गई आश्रम में जानि कै पधारे आप दूर ही ते साष्टांग करी चख भासे हैं॥
रवकि उठाय लई विथा तनु दूर गई नई नीरझरी नैन परे प्रेम पासे हैं।
बैठे सुखपाइ फल खाइकै सराहे वेई कह्यो कहा कहौं मेरे मग दुख नासे हैं॥ ३६॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करत हैं सोच सब ऋषि बैठे आश्रम में जल को बिगार सो सुधार कैसे कीजिये।
आवत सुने हैं वन पथ रघुनाथ कहूं आवैं जब कहैं याको भेद कहि दीजिये॥
इतने ही मांझ सुनि सबरी के विराजे आनि गयो अभिमान चलो पग गहि लीजिये।
आय खुनसाय कही नीर कौ उपाय कहौ गहौ पग भीलिनी के छुये स्वच्छ भीजिये॥ ३७॥

इन कवित्तोंका भाव संक्षेपमें इस प्रकार है—

शबरी वनमें निवास करने लगीं, इनके मनमें साधु-सन्तोंकी टहल करनेकी बड़ी इच्छा थी, पर शरीर नीच जातिका है, साधु-सन्त सेवा स्वीकार नहीं करेंगे, इसलिये थोड़ी रात रहनेपर ही वे ऋषियोंके आश्रममें छिपकर जातीं और लकड़ियोंके बोझ रख आतीं। प्रातःकाल शीघ्र ही उठकर सरोवरपर जाने-आनेके मार्गको झाड़-बुहारकर उसकी कंकड़ियोंको बीनकर अलग डाल देती थीं। यह सेवा करते हुए इनको कोई भी नहीं देख पाता था। सबेरे उठकर ऋषिलोग आपसमें कहते कि मार्गको नित्य कौन झाड़ जाता है और लकड़ियोंके बोझ कौन रख जाता है?

वनवासी ऋषियोंमें एक मतंग नामक ऋषि थे। वे परम विरक्त और भक्तिरसके आनन्दसे परिपूर्ण थे। लकड़ियोंके बोझ रखे देखकर वे अपने शिष्योंसे कहने लगे कि इस तपोवनमें ऐसा कौन आ गया? जो नित्य चोरीसे सेवा करता है। उसे एक दिन पकड़ो, उस सन्त-सेवा-प्रेमीभक्तके प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहिये। आज्ञा पाकर मतंगजीके शिष्य सावधानीसे पहरा देने लगे। जैसे ही शबरीजीने लकड़ियोंका बोझ रखा, वैसे ही शिष्योंने उसे पकड़ लिया। वह बेचारी भय और संकोचवश काँपने लगी और उनके पैरोंपर गिर गयी। उस भक्तिमयी भीलनीको देखते ही मतंगजीके आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

मतंगजी भगवद्भक्तिके प्रभावको बहुत अच्छी तरह जानते थे। वे सोच-विचारकर शिष्योंसे बोले कि भक्तिके प्रतापसे यह इतनी पवित्र है कि इसके ऊपर कई कोटि ब्राह्मणता न्यौछावर कर देनी चाहिये। मतंगजीने शबरीको आश्रमकी एक पर्णकुटीमें रहनेका स्थान दिया और उसके कानमें **श्रीसीताराम** मन्त्र दिया और कहा मैं प्रभुकी आज्ञासे उनके धामको जा रहा हूँ, तुम इसी आश्रममें रहकर भजन करो। यहीं श्रीरामजीका दर्शन प्राप्त करोगी।

गुरुदेव श्रीमतंगजीके वियोगने शबरीजीके हृदयको बड़ा कठोर कष्ट दिया, उनसे जीवित नहीं रहा जाता था, पर श्रीरामजीके दर्शनोंकी आशा लगी थी, इसीलिये जीवित रहीं। मुनियोंके स्नानमार्गको थोड़ी रात रहे झाड़-बुहार आती थीं। एक दिन विलम्ब हो गया। स्नानके लिये ऋषि आने-जाने लगे, मार्ग सँकरा था, कोई ऋषि शबरीजीसे किंचित् छू गये। तब वे अनेक प्रकारसे शबरीजीको डाँटने-फटकारने लगे। शबरीजी भागकर अपनी कुटीमें चली आयीं। वे ऋषि सोच-विचार करके पुनः स्नान करनेके लिये गये। सरोवरमें प्रवेश करते ही उसका जल अनेक कीड़ोंसे भरे हुए रुधिरके समान हो गया। इससे ऋषिको एक नया दुःख उत्पन्न हो गया। भक्तस्पर्शसे अपनेको अपवित्र समझनेवाले मुनिके अपराधसे ही सरोवरका जल अपवित्र हुआ था, पर उस अभागेने यह रहस्य नहीं जाना। उलटे ऐसा समझा कि शबरीके स्पर्शजन्य दोषसे ही जल दूषित हो गया है।

शबरीजीको श्रीरामजीकी बड़ी भारी चिन्ता रहती, वे आगमनकी प्रतीक्षामें अति व्याकुल रहतीं। वनसे बेर बीन-बीनकर लातीं, चखकर देखतीं (जिस वृक्षके) जो फल मीठे होते, उन्हें श्रीरामके योग्य समझकर उनके लिये रखती थीं। उत्कण्ठावश अपने प्रभुके आगमनके मार्गमें जाकर उसे स्वच्छ एवं कोमल बनातीं एवं सोचा करतीं कि राघवेन्द्र सरकार कब आयेंगे? कब मेरे नेत्र उसके दर्शनरूपी अमृतका आस्वादन करेंगे? इसी प्रकार प्रभुके आगमनकी बाट देखते-देखते जब बहुत दिन बीत गये, तब एक दिन अचानक ही श्रीरामजी आ गये। उनके सभी शोक मिट गये। परंतु उसे अपने शरीरके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचकुलमें उत्पन्न होनेकी बात याद आ गयी, इसलिये वह संकोचवश भागकर कहीं छिप गयी।

भगवान् श्रीराम वनवासी लोगोंसे और ऋषियोंसे पूछते-पूछते वहाँ आये, जहाँ शबरीजीका स्थान था। वहाँ शबरीको न देखकर भगवान् कहने लगे कि भाग्यशालिनी हरिभक्ता कहाँ है? मेरे नेत्र उसके दर्शनरूपी सुधाके प्यासे हैं। स्वयं सरकार मेरे आश्रममें पधारे यह जानकर शबरीजी भी आश्रमकी ओर दौड़ीं। दूर जहाँसे प्रभुको देखा वहींसे सप्रेम साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। शबरीके नेत्र प्रफुल्लित हो गये। भगवान्ने समीप जाकर शीघ्रतासे ललककर उसे उठा लिया। कोमल करकमलके स्पर्शसे तन-मनकी सब व्यथा दूर हो गयी। नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी झड़ी लग गयी। भगवान् श्रीराम परम सुखी होकर आसनपर विराजे। शबरीजीने अर्घ्यपाद्यपूर्वक बेर आदि फल अर्पण किये। श्रीरामजीने उन्हें प्रेमसे खाकर उनके अद्भुत सुन्दर स्वादकी बार-बार प्रशंसा की।

उधर सभी ऋषि आश्रममें बैठकर सोच-विचार कर रहे थे कि सरोवरका जल बिगड़ गया है, उसे शुद्ध करनेके लिये यज्ञ-याग, सर्वतीर्थजलनिक्षेप आदि सब उपाय हमने कर लिये, पर वह शुद्ध नहीं हुआ, अब बताओ वह कैसे सुधरे? सबोंने परस्पर विचारकर निश्चय किया कि वनके मार्गसे श्रीरघुनाथजी आ रहे हैं, यह सुना है, जब वे आयें, तब हमलोग उनसे कहें कि आप इसका भेद बताइये। इतनेमें ही उन ऋषियोंने सुना कि श्रीरामजी तो शबरीके आश्रममें आकर विराजे हैं। तब सबका ब्राह्मणत्वका अहंकार दूर हो गया और वे कहने लगे कि चलो, वहीं चलकर उनके चरणोंमें प्रणाम करें। वे ऋषिगण शबरीके आश्रममें आकर बोले—प्रभो श्रीराम! आप सरोवरके जलको शुद्ध करनेका उपाय बताइये। भगवान्ने उत्तर दिया कि शबरीके चरणोंका स्पर्श करो, उसके बाद सरोवरके जलसे इसके चरणस्पर्श कराओ। जल तुरंत पवित्र हो जायगा? भगवान्की आज्ञासे ऋषियोंने ऐसा ही किया। सरोवरका जल अति निर्मल हो गया। भक्तिकी ऐसी महिमा देखकर ऋषियोंके हृदय प्रेमभावसे द्रवित हो गये।

महर्षि मतंगकी वाणी आज सत्य हो गयी थी। भगवान्ने उसे नवधा भक्तिका उपदेश दिया। शबरीने सीताजीके खोजके लिये प्रभुको सुग्रीवसे मित्रता करनेकी सलाह दी और स्वयंको योगाग्निमें भस्मकर सदाके लिये श्रीरामके पाद-पद्मोंमें लीन हो गयी।

श्रीजटायुजी

प्रजापति कश्यपजीकी पत्नी विनतासे दो पुत्र हुए—अरुण और गरुड़। इनमेंसे भगवान् सूर्यके सारथि अरुणजीके दो पुत्र हुए—सम्पाति और जटायु। बचपनमें सम्पाति और जटायु उड़ानकी होड़ लगाकर ऊँचे जाते हुए सूर्य-मण्डलके पासतक चले गये। असह्य तेज न सह सकनेके कारण जटायु तो लौट आये; किंतु सम्पाति ऊपर ही उड़ते गये। सूर्यके अधिक निकट जानेपर सम्पातिके पंख सूर्य-तापसे भस्म हो गये। वे समुद्रके पास पृथ्वीपर गिर पड़े। जटायु लौटकर पंचवटीमें आकर रहने लगे। महाराज दशरथसे आखेटके समय इनका परिचय हो गया और महाराजने इन्हें अपना मित्र बना लिया।

वनवासके समय जब श्रीरामजी पंचवटी पहुँचे, तब जटायुसे उनका परिचय हुआ। मर्यादापुरुषोत्तम अपने पिताके सखा गृध्रराजका पिताके समान ही सम्मान करते थे। जब श्रीराम छलसे स्वर्णमृग बने मारीचके पीछें वनमें चले गये और उसकी कपटपूर्ण पुकार सुनकर लक्ष्मणजी भी बड़े भाईको ढूँढ़ने चले गये, तब सूनी कुटियासे रावण सीताजीको उठा ले गया। बलपूर्वक रथमें बैठाकर वह उन्हें ले चला। श्रीविदेहराज-दुहिताका करुणक्रन्दन सुनकर जटायु क्रोधमें भर गये। वे ललकारते-धिक्कारते रावणपर टूट पड़े।

रावणसे उनका भयंकर संग्राम हुआ। अन्तमें रावणने उनके पंख तलवारसे काट दिये। वे भूमिपर गिर पड़े। जानकीजीको लेकर रावण भाग गया। श्रीराम विरह-व्याकुल होकर जानकीजीको ढूँढ़ते वहाँ आये। जटायु मरणासन्न थे। उनका चित्त श्रीरामके चरणोंमें लगा था। उन्होंने कहा—'राघव! राक्षसराज रावणने मेरी यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशा की है। वही दुष्ट सीताजीको लेकर दक्षिण दिशा की ओर चला गया है। मैंने तो तुम्हारे दर्शनके लिये ही अबतक प्राणोंको रोक रखा था। अब वे बिदा होना चाहते हैं। तुम आज्ञा दो।'

श्रीराघवके नेत्र भर आये। उन्होंने जटायुको गोदमें रख लिया। जटायुने श्रीरामके मुख-कमलका दर्शन करते हुए उनकी गोदमें ही शरीर छोड़ दिया—उन्हें भगवान्‌का सारूप्य प्राप्त हुआ। श्रीरामने जटायुके शरीरका सम्मानपूर्वक दाहकर्म किया और उन्हें जलांजलि देकर श्राद्ध किया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने जटायुकी इस अनुपम भक्तिका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

जानकी हरण कियो रावण मरण काज सुनि सीतावाणी खगराज दौर्‌यौ आयो है।
बड़ी ये लड़ाई लीन्ही देह वारि फेरि दीन्ही राखे प्राण राममुख देखिबो सुहायो है॥
आये आपु गोद शीश धारि दृग धार सींच्यो दई सुधि लई गति तनहू जरायो है।
दशरथ वत मान कियो जल दान यह अति सम्मान निज रूप धाम पायो है॥ ३८॥

भक्तराज ध्रुव

ध्रुवजी स्वायम्भुव मनुके पुत्र उत्तानपादके पुत्र थे। आप परम भागवत थे और आपने अपनी कठोर तपस्याद्वारा भगवान् श्रीहरिका दर्शन प्राप्त किया था। आपके सन्दर्भमें विशेष विवरण छप्पय ५ पृ० ४८ पर दिया गया है।

श्रीउद्धवजी

उद्धवजी भगवान्‌के सखा-भक्त थे। वे बृहस्पतिजीके शिष्य और तत्त्वज्ञानके प्रकाण्ड पण्डित थे। अक्रूरके साथ जब भगवान् व्रजसे मथुरा आ गये और कंसको मारकर सब यादवोंको सुखी बना दिया, तब भगवान्‌ने एकान्तमें अपने प्रिय सखा उद्धवको बुलाकर कहा—'उद्धव! व्रजकी गोपांगनाएँ मेरे वियोगमें व्याकुल होंगी, उन्हें जाकर तुम समझा आओ। उन्हें मेरा सन्देश सुना आओ कि मैं तुमसे अलग नहीं, सदा तुम्हारे ही साथ हूँ।' वस्तुतः भगवान्‌की इच्छा थी कि शुष्क ज्ञानके उपासक उद्धवजी प्रेमकी माधुरीका अनुभवकर अपने जीवनको सफल बना सकें।

उद्धवजी अपने स्वामीकी आज्ञा पाकर नन्द-व्रजमें गये। एकान्तमें जाकर उन्होंने गोपियोंको अपना ज्ञान-सन्देश सुनाया। उन्होंने कहा—'भगवान् वासुदेव किसी एक जगह नहीं हैं, वे तो सर्वत्र व्यापक हैं। उनमें भगवत्-बुद्धि करो, सर्वत्र उन्हें देखो।' गोपियोंने रोते-रोते कहा—'उद्धवजी! तुम ठीक कहते हो, किंतु हम गँवारी वनचरी इस गूढ़ ज्ञानको भला कैसे समझ सकती हैं। हम तो उन श्यामसुन्दरकी भोली-भाली सूरतपर ही अनुरक्त हैं।

उनके ऐसे अलौकिक प्रेमको देखकर उद्धवजी अपना समस्त ज्ञान भूल गये और अत्यन्त करुणाके स्वरमें कहने लगे—

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्‌गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

(श्रीमद्भा० १०।४७।६३)

'मैं इन व्रजांगनाओंकी चरणधूलिकी भक्तिभावसे वन्दना करता हूँ, जिनके द्वारा गायी हुई हरि-कथा तीनों भुवनोंको पावन करनेवाली है।' व्रजमें जाकर उद्धवजी ऐसे प्रभावित हुए कि वे सब ज्ञान-गाथा भूल गये।

जब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी लोक-लीलाका संवरण करने लगे तो भगवान्‌की अन्तिम लीलाको देखने श्रीउद्धवजी भी प्रभासमें पहुँचे। भगवान्‌की आज्ञा पाकर उद्धवजी बदरिकाश्रमको चले और भगवान् अपने परमधामको पधारे। उद्धवजी परम भागवत थे और भगवान्‌के अभिन्नविग्रह थे।

श्रीअम्बरीषजी

वैवस्वत मनुके प्रपौत्र तथा राजर्षि नाभागके पुत्र महाराज अम्बरीष सप्तद्वीपवती पृथ्वीके स्वामी थे और उनके ऐश्वर्यकी संसारमें कोई तुलना न थी, परंतु अम्बरीषको अपना ऐश्वर्य स्वप्नके समान असत् जान पड़ता था। भोगोंमें नितान्त अनासक्त अम्बरीषजीने अपना सारा जीवन परमात्माके पावन पाद-पद्मोंमें ही लगा दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीअम्बरीषजीके चरित्रका निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

अम्बरीष भक्त की जो रीस कोऊ करै और बड़ो मति बौर किहूं जान नहिं भाखिये।
दुरबासा रिषि सीष सुनी नहीं कहूँ साधु मानि अपराध सिर जटा खैंचि नाखिये॥
लई उपजाय काल कृत्या विकराल रूप भूप महाधीर रह्यो ठाढ़ो अभिलाखिये।
चक्र दुख मानि लै कृशानु तेज राख करी परी भीर ब्राह्मण को भागवत साखिये॥ ३९॥
भाज्यो दिशा दिशा सब लोक लोकपाल पास गयो नयो तेज चक्र चून किये डारे हैं।
ब्रह्मा शिव कही यह गही तुम टेव बुरी दासनि को भेद नहिं जान्यो वेद धारे हैं॥
पहुँचे बैकुण्ठ जाय कह्यौ दुःख अकुलाय हाय हाय राखौ प्रभु खरो तन जारे हैं।
मैं तो हौं अधीन तीनि गुन को न मान मेरे भक्तवात्सल्य गुण सबही को टारे हैं॥ ४०॥
मोको अति प्यारे साधु उनकी अगाधमति कर्‌यो अपराध तुम सह्यो कैसे जाते है।
धाम धन वाम सुत प्राण तनु त्याग करैं ढरैं मेरी ओर निशिभोर मोसों बात है॥
मेरेउ न सन्त बिनु और कछु सांची कहौं जाओ वाही ठौर जाते मिटै उत्पात है।
बड़ेई दयाल सदा दीन प्रतिपाल करैं न्यूनता न धरैं कहूँ भक्ति गात गात है॥ ४१॥
ह्वै करि निरास ऋषि आयो नृप पास चल्यो गर्व सों उदास पग गहे दीन भाष्यो है।
राजा लाज मानि मृदु कहि सनमान कर्‌यो ढर्‌यो चक्र ओर करजोरि अभिलाष्यो है॥
भक्त निष्काम कभूं कामना न चाहत हैं चाहत हैं विप्र दुख दूरि करो चाख्यो है।
देखि कै विकलताई सदा सन्त सुखदाई आई मान माँझ सब तेज ढाँकि राख्यो है॥ ४२॥

इन कवित्तोंका भाव संक्षेपमें इस प्रकार है—

(क) राजर्षि अम्बरीषके एकादशीव्रतनिष्ठाकी कथा

राजा अम्बरीषने एक बार अपनी पत्नीके साथ श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये वर्षकी सभी एकादशियोंके व्रतका नियम किया। वर्ष पूरा होनेपर पारणके दिन उन्होंने धूम-धामसे भगवान्‌की पूजा की। ब्राह्मणोंको गोदान किया। यह सब करके जब वे पारण करने जा रहे थे, तभी महर्षि दुर्वासा शिष्योंसहित पधारे। राजाने उनका सत्कार किया और उनसे भोजन करनेकी प्रार्थना की। दुर्वासाजीने राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और स्नान करने यमुना-तटपर चले गये। द्वादशी केवल एक घड़ी शेष थी। द्वादशीमें पारण न करनेसे व्रत भंग होता, उधर अतिथिसे पहले भोजन करना अनुचित था। ब्राह्मणोंसे व्यवस्था लेकर राजाने भगवान्‌के चरणोदकसे पारण कर लिया और भोजनके लिये ऋषिकी प्रतीक्षा करने लगे।

दुर्वासाजीने स्नान करके लौटते ही तपोबलसे राजाके पारण करनेकी बात जान ली। वे अत्यन्त क्रोधित होते हुए बोले—मेरे भोजनके पहले इसने पारण क्यों किया। उन्होंने मस्तकसे एक जटा उखाड़ ली और उसे जोरसे पृथ्वीपर पटक दिया। उससे कालाग्निके समान कृत्या नामकी भयानक एक राक्षसी निकली और तलवार लेकर राजाको मारने दौड़ी। राजा जहाँ-के-तहाँ स्थिर खड़े रहे। उन्हें तनिक भी भय नहीं लगा। वे तो सर्वत्र सब रूपोंमें भगवान्‌को ही देखते थे। उन्हें तो कृत्या भी भगवान् ही दीखती थी। परंतु भगवान्‌का सुदर्शन-चक्र जो भगवान्‌की आज्ञासे पहलेसे ही राजाकी रक्षामें नियुक्त था, उसने पलक मारते कृत्याको भस्म कर दिया और दुर्वासाकी ओर दौड़ा। अपनी कृत्याको इस प्रकार नष्ट होते और ज्वालामय कराल चक्रको अपनी ओर आते देख दुर्वासाजी प्राण लेकर भागे। इन्द्रादि लोकपाल तो उन्हें क्या शरण देते, स्वयं ब्रह्माजी और शंकरजीने भी आश्रय नहीं दिया। दया करके शिवजीने उनको भगवान्‌के ही पास जानेको कहा। अन्तमें वे वैकुण्ठ गये और भगवान् विष्णुके चरणोंपर गिर पड़े।

दुर्वासाने कहा—हे शरणागतवत्सल! हे ब्रह्मण्यदेव! हे आर्तजनरक्षक! मेरी रक्षा करो।

प्रभुने कहा—महर्षि! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं तो भक्तोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराधीन हूँ। अतएव ऋषिवर! आप उन महाभाग नाभागतनय अम्बरीषके ही पास जायँ। वहीं आपको शान्ति मिलेगी।

इधर राजा अम्बरीष बहुत ही चिन्तित थे। उन्हें लगता था कि मेरे ही कारण दुर्वासाजीको मृत्युभयसे ग्रस्त होकर भूखे ही भागना पड़ा—यह सोचकर वे केवल जल पीकर ऋषिके लौटनेकी पूरे एक वर्षतक प्रतीक्षा करते रहे। वर्षभरके बाद दुर्वासाजी जैसे भागे थे, वैसे ही भयभीत दौड़ते हुए आये और उन्होंने राजाका पैर पकड़ लिया। ब्राह्मणके द्वारा पैर पकड़े जानेसे राजाको बड़ा संकोच हुआ। उन्होंने स्तुति करके सुदर्शनको शान्त किया।

(ख) भक्त अम्बरीषकी छोटी रानीके विवाहकी कथा

भक्तवर अम्बरीषकी अपूर्व भगवद्भक्तिपर एक राजकुमारी लुब्ध हो गयी। उसने निश्चय किया कि मैं उन्हींको अपने पतिके रूपमें वरण करूँगी। अपना दृढ़ विचार उसने पिताके समक्ष उपस्थित कर दिया। पिताने पत्रमें सारी बातें लिखकर एक ब्राह्मणके द्वारा अम्बरीषके पास भेजा।

ब्राह्मणदेव नृपशिरोमणि अम्बरीषके पास पहुँचे और पत्र उन्हें दे दिया। पत्र पढ़कर नरेशने कहा, 'भगवद्भजन और राज्य-कार्यसे मुझे तनिक भी अवकाश नहीं मिलता कि किसी भी रानीकी सेवामें उपस्थित हो सकूँ। रानियाँ भी मेरे अधिक हैं। ऐसी स्थितिमें किसी अन्य राजकुमारीका परिणय मुझे प्रिय नहीं है।'

ब्राह्मणदेव लौट आये। श्रीअम्बरीषका सन्देश राजा और उनकी पुत्रीको उन्होंने सुना दिया। राजकुमारीके मनकी कली विकसित हो गयी। उसने सोचा—'ऐसे पुरुष जिन्हें विलास आदिसे पूरी विरक्ति और भगवान्‌के चरणोंमें अनुपम अनुरक्ति है, धन्य हैं। मैं उन्हें अवश्य ही पति बनाऊँगी। इस प्रकार अपना जीवन सफल कर लूँगी।'

ब्राह्मणदेवता पुनः अम्बरीषके पास पहुँचे और बोले—'राजकुमारीने अत्यन्त विनयसे कहा है कि आपके विचारोंको सुनकर मेरा हृदय गद्गद हो गया है। मनसे आपको मैंने पति बना लिया है। पत्नीके रूपमें यदि आपने मुझे स्वीकार नहीं किया तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। स्त्री-वधके महापापसे आप नहीं बच सकेंगे।'

धर्मप्राण नरेशने विवाह करना स्वीकार कर लिया। उन्होंने ब्राह्मणको अपना खड्ग देकर कहा, 'आप इससे राजकुमारीकी भाँवरी फिरा लें।'

प्रसन्नमन ब्राह्मण लौटे। राजकुमारी हर्षातिरेकसे नाच उठीं। खड्गसे भाँवरी फिराकर उसका विवाह-संस्कार पूर्ण हुआ। वे माता-पितासे विदा होकर पतिगृहमें आ गयीं। परम भगवद्-भक्त पतिकी शान्त मूर्तिके दर्शन कर उन्होंने अपना अहोभाग्य समझा।

(ग) छोटी रानीके भगवद्भावने सबको भगवद्भक्त बना दिया

अम्बरीषने देखा, उनके पूजाकी समस्त सामग्रियाँ धोकर यथास्थान रखी रहती हैं। पूजा-गृह धुला मिलता है। यह उन्हें अभीष्ट नहीं था; क्योंकि प्रभु-सेवाका सारा कार्य वे स्वयं अपने ही हाथों करना उचित समझते थे और इसीमें उन्हें प्रसन्नता मिलती थी। पता लगानेके लिये एक दिन रात्रिमें वे पूजागृहमें छिप गये। एक प्रहर रात रहते ही नयी रानीने वहाँ प्रवेश किया और पूजाके पात्र मलने लगीं। राजाका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने कहा, 'यदि ऐसा ही करना है तो भगवान् को अपने भवनमें पधरा लो, प्रिये!' रानीकी आकांक्षा पूरी हुई। उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी।

भगवान् उनके भवनमें ही पधारे। अब वे रात रहते ही स्नानादिसे निवृत्त होकर भगवान्‌की धूप-दीपादि षोडशोपचारसे अत्यन्त श्रद्धा और प्रेमसे पूजा करतीं और भजनमें बैठतीं तो दोपहर बीत जाता। उन्हें खान-पानकी कुछ सुधि ही नहीं रहती। दासियोंके बार-बारके आग्रहपर वे भजनसे उठ पातीं।

यह समाचार अम्बरीषने भी सुना। दूसरे दिन सूर्योदयके समय ही वे छोटी रानीके पूजा-गृहमें आये। उन्होंने देखा, रानीने भगवान्‌को अत्यन्त सुन्दर ढंगसे सजा रखा है। धूपकी मधुर सुगन्ध उड़ रही है। घृत-दीप जल रहा है। रानी पद्मासन लगाये भगवान्‌के सामने बैठी हैं। मधुर स्वरमें वीणाके तार झनझना रहे हैं और भजनकी मधुर स्वर-लहरियाँ वीणाके तारोंके स्वरोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलीन होती जा रही हैं।

रानीकी तन्मयता! स्वर्गीय भजन!! अद्वितीय प्रभु-प्रेम!!! अम्बरीष पीछे खड़े-खड़े देख रहे थे। भजन समाप्त हुआ। शरीरकी छाया देखकर रानीने पीछे सिर घुमाया तो पतिदेवको देखा। उनके स्वागतके लिये वे उठने ही वाली थीं कि अत्यन्त प्रेमसे अम्बरीषने कहा, 'प्रिये! मेरे स्वागतकी आवश्यकता नहीं है—वही भजन फिर सुनाओ।'

रानीके सौभाग्यका क्या कहना! पतिदेव रीझ चुके थे। परमपतिको रिझाना था। वीणा उठी। पतली अँगुलियाँ तारोंपर थिरकने लगीं। मधुर स्वर-लहरीमें थिरकता हुआ भजन अम्बरीषको बेसुध कर रहा था। वे समाधिस्थ-से हो गये थे। उनकी आँखें बरस रही थीं।

उस दिनसे प्रतिदिन नियमपूर्वक भक्तवर अम्बरीष अपनी छोटी रानीके पास प्रातःकाल ही आ जाते। भजन-पूजनमें कभी-कभी दिन-का-दिन निकल जाता। वे रानीको अत्यन्त प्यार करने लगे।

'भजन-पूजनसे राजा प्रसन्न होते हैं' यह सोचते ही अम्बरीषकी समस्त रानियाँ खूब विधि और प्रेमसे अपने-अपने भवनमें भगवान्‌का विग्रह पधराकर पूजन करने लगीं। समस्त रानियाँ प्रभुके भजनमें तल्लीन हो गयीं।

'राजाकी प्रसन्नता भगवद्भजनमें है' यह समाचार समस्त प्रजामें फैल गया। फिर क्या था। राज्यकी समस्त प्रजा भगवान्‌की भक्ति करने लगी। राजा-रानी और समस्त प्रजाके प्राण भगवान् बन गये। भगवान्‌की कृपा सबपर बरसने लगी। धन्य अम्बरीष और धन्य उनकी भक्ति!

राजर्षि अम्बरीषकी रानीकी इस भगवद्भक्तिका वर्णन श्रीप्रियादासजीने निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

एक नृप सुता सुनि अम्बरीष भक्ति भाव भयो हिय भाव ऐसो वर कर लीजिये।
पिता सों निशङ्क ह्वै कै कही पति कियो मैं ही विनय मानि मेरी वेगि चीठी लिख दीजिये॥
पाती लैके चल्यो विप्र छिप्र वही पुरी गयो नयो चाव जान्यो ऐ पै कैसे तिया धीजिये।
कहो तुम जाय रानी बैठी सत आय मोको बोल्यो न सुहाग प्रभु सेवा मांझ भीजिये॥ ४३॥
कह्यो नृप सुता सों जु कीजिये जतन कौन पौन जिमि गयो आयो काम नाहीं बिया को।
फेरिकै पठायो सुख पायो मैं तो जान्यो वह बड़े धर्मज्ञ वाके लोभ नाहीं तिया को॥
बोली अकुलाय मन भक्ति ही रिझाय लियो कियो पति मुख नहीं देखौं और पिया को।
जायके निशंक यह बात तुम मेरी कहो चेरी जो न करौ तौपै लेवो पाप जिया को॥ ४४॥
कही विप्र जाय सुनि चाय भहराय गयो दयो लै खड़ग यासों फेरी फेर लीजिये।
भयो जू विवाह उत्साह कहूं मात नाहिं आई घर अम्बरीष देखि छवि भीजिये॥
कह्यौ नव मन्दिर में झारिकै बसेरो देवो देवो सब भोग विभौ नाना सुख कीजिये।
पूरब जनम कोऊ मेरे भक्ति गन्ध हुती याते सम्बन्ध पायो यहै मानि धीजिये॥ ४५॥
रजनी के सेस पति भौन में प्रवेश कियो लियो प्रेम साथ ढिग मन्दिर के आइये।
बाहिरी टहल पात्र चौका करि रीझि रही गही कौन जाय जामे होत न लखाइये॥
आवत ही राजा देखि लगै न निमेष किहूँ कौन चोर आयो मेरी सेवा लै चुराइये।
देखि दिन तीनि फेर चीन्हिके प्रवीन कही ऐसो मन जौ पै प्रभुमाथे पधराइये॥ ४६॥
लई बात मानि मानो मन्त्र लै सुनायौ कान होत ही बिहान सेवा नीकी पधराई है।
करत सिंगार फिर आपु ही निहारि रहै लहै नहीं पार दृग झरी सी लगाई है॥
भई बढ़वार राग भोग सों अपार भाव भक्ति विस्तार रीति पुरी सब छाई है।
नृप हू सुनत अब लागि चोप देखिबे की आये ततकाल मति अति अकुलाई है॥ ४७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजर्षि अम्बरीषकी रानी [पृ० ६८]

चन्द्रहास और विषया [पृ० ७६]

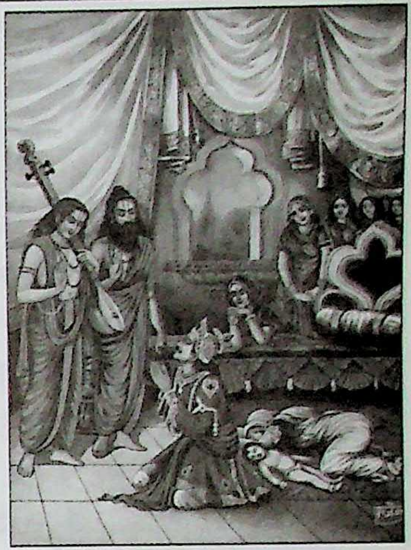

राजा चित्रकेतु [पृ० ७८]

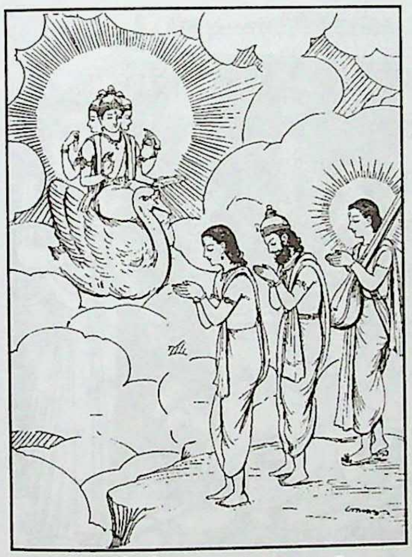

राजर्षि प्रियव्रत [पृ० ८५]

भगवती सती [पृ० ८८]

रानी मदालसा [पृ० ९०]

राजर्षि भगीरथ [पृ० ९४]

राजा शिबि [पृ० १०२]

अलर्क और दत्तात्रेय [पृ० १०६]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

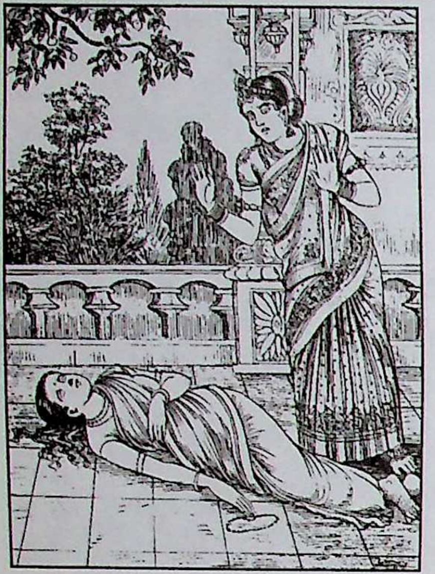

पतिप्राणा जयदेवपत्नी [पृ० १९६]

बिल्वमंगल और चिन्तामणि [पृ० २०१]

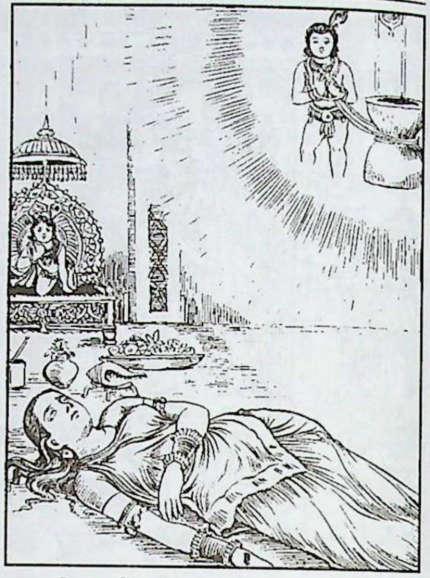

भक्तिमयी रतिवन्ती [पृ० २१२]

कर्माबाईका वात्सल्यभाव [पृ० २१४]

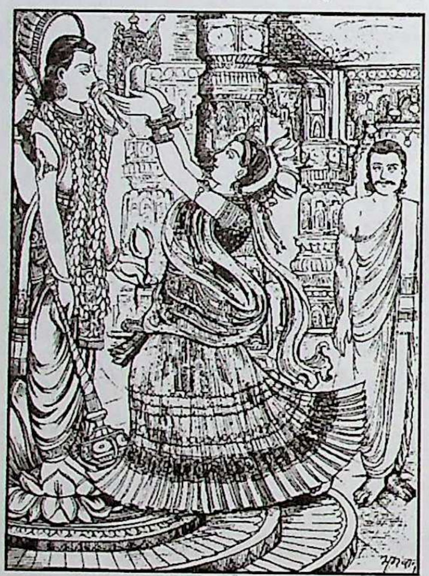

श्रीवारमुखीजी [पृ० २३५]

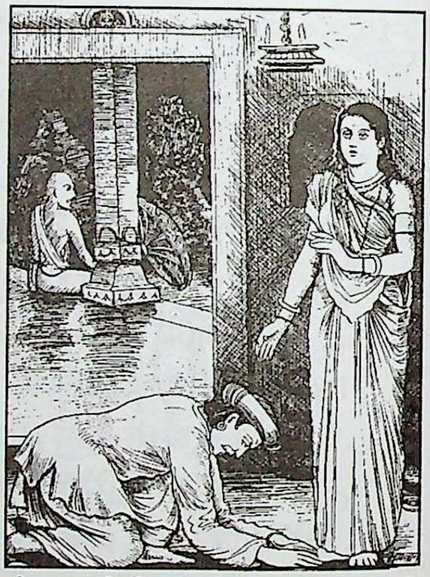

पीपादम्पतीकी सन्तनिष्ठा [पृ० २५४]

धन्नापर प्रभुकृपा [पृ० २५८]

सेना नाईके रूपमें भगवान् [पृ० २६०]

भक्तिमती सुरसुरी [पृ० २६४]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे हरे पांव धरै पौरियान मने करै खरे अरबरैं कब देखौं भागभरी को।
गये चलि मन्दिर लौं सुन्दरी न सुधि अङ्ग रङ्ग भीजि रही दृग लाइ रहे झरी को॥
बीन लै बजावै गावैं लालन रिझावै त्यों त्यों अति मनभावै कहैं धन्य यह घरी को।
द्वार पै रह्यो न जाय गये ढिग ललचाय भई उठि ठाढ़ि देखि राजा गुरु हरी को॥ ४८॥
वैसे ही बजाओ बीनताननि नवीन लैके झीन सुर कान परै जाति मति खोइये।
जैसे रंग भीजि रही कही सो न जात मोपै ऐपै मन नैन चैन कैसे करि गोइये॥
करिकै अलापचारी फेरिकै सँभारितान आइ गयो ध्यान रूप ताहि माँझ भोइये।
प्रीति रस रूप भई राति सब बीति गई नई कछु रीति अहो जामें नहिं सोइये॥ ४९॥
बात सुनी रानी और राजा गये नई ठौर भई सिरमौर अब कौन वाकी सर है।
हमहूँ लै सेवा करैं पति मति वशकरैं धरैं नित्य ध्यान विषय बुद्धि राखी धर है॥
सुनिकै प्रसन्न भये अति अम्बरीष ईस लागी चोप फैलि गई भक्ति घर घर है।
बढ़ैं दिन दिन चाव ऐसोई प्रभाव कोई पलटै सुभाव होत आनँद को भर है॥ ५०॥

विदुर-विदुरानी

श्रीविदुरजी धर्मराजजीके अवतार थे। माण्डव्य ऋषिके शापके कारण धर्मराजको विदुररूपमें दासीके गर्भसे अवतार लेकर धृतराष्ट्र तथा पाण्डुका भाई होना पड़ा था। भगवान् श्रीकृष्णके प्रति उनकी भक्ति-भावना अनन्य थी।

श्रीकृष्ण पाण्डवोंके दूत बनकर सन्धिका सन्देश लेकर कुरुराज दुर्योधनसे मिलने गये थे। दुर्योधन जानता था कि पाण्डवोंपर श्रीकृष्णका बड़ा प्रभाव है, अतः नीतिके अनुसार उसने श्रीकृष्णका स्वागत करनेके लिये सारे नगरको तरह-तरहसे सजवाया और भाँति-भाँतिके व्यंजन भोजनके लिये उनके सामने प्रस्तुत किये। श्रीकृष्णने उनकी ओर देखा भी नहीं और विदुरजीके यहाँ आतिथ्य ग्रहण किया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने श्रीविदुरजी और उनकी धर्मपत्नीके चरित्रका वर्णन इस प्रकार किया है—

न्हात ही विदुर नारि अंगन पखारि करि आइ गये द्वार कृष्ण बोलिकै सुनायो है।
सुनत ही स्वर सुधि डारी लै निदरि मानो राख्यो मद भरि दौरि आनिकै चितायो है॥
डारि दियो पीतपट कटि लपटाय लियो हियौ सकुचायो वेष वेगि ही बनायो है।
बैठी ढिग आइ केरा छीलि छीलिका खवाइ आयो पति खीझ्यो दुःख कोटि गुनो पायो है॥ ५१॥
प्रेम को बिचारि आपु लागे फलसार दैन चैन पायो हियो नारि बड़ी दुखदाई है।
बोले रीझि श्याम तुम कीनो बड़ोकाम ऐपै स्वाद अभिराम वैसी वस्तु में न पाई है॥
तिया सकुचाय कर काटि डारौं हाय प्राणप्यारे को खवाइ छीलि छीलिका न भाई है।
हित ही की बातें दोऊ पार पावैं नाहिं कोऊ नीकेकै लड़ावै सोई जानै यह गाई है॥ ५२॥

कवित्तोंका भाव इस प्रकार है—

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण विदुरजीके दरवाजेपर पहुँचे उस समय उनकी स्त्री स्नान कर रही थी। आते ही श्रीकृष्णने बाहरसे आवाज लगायी। विदुरानीने सुनते ही श्रीकृष्णकी आवाज पहचान ली और सुध-बुध भूल गयी, जैसे उस स्वरमें कोई आकर्षण हो। वस्त्र पहने बिना ही वह ज्यों-की-त्यों दौड़ आयी और किवाड़ खोलकर भगवान्‌के दर्शन किये। भगवान्‌ने जब उनका यह हाल देखा, तो झटसे कमरसे लिपटा हुआ पीताम्बर उनके शरीरपर डाल दिया। अब विदुरानीको होश आया। वह बड़ी लज्जित हुई और जल्दी ही अन्दर जाकर कपड़े पहन आयी। इसके अनन्तर वह श्रीकृष्णके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास आकर बैठ गयी और खिलानेके लिये लाये हुए केलोंको छील-छीलकर प्रेममें बेसुध होनेके कारण गूदेके स्थानपर छिलके खिलाने लगीं। इतनेमें पतिदेव श्रीविदुरजी भी आ गये। उन्होंने यह दृश्य देखा, तो अपनी पत्नीपर बहुत झल्लाये। विदुरानीको जब अपनी भूल मालूम हुई तो उन्हें बड़ा कष्ट हुआ।

प्रेमाधिक्यके कारण पत्नीसे हुई भूलको विचारकर श्रीविदुरजी भगवान्‌को केलेके गूदे खिलाने लगे। अब उनके हृदयको शान्ति मिली। फिर भी बार-बार यही सोचते रहे कि इस स्त्रीने छिलका खिलाकर भगवान्‌को बड़ा कष्ट दिया। इसपर भगवान्‌ने प्रसन्न होकर कहा—'विदुरजी! आपने यह काम ठीक किया कि मुझे केले खिलाये, पर सच बात तो यह है कि इतनेपर भी जैसा स्वाद उन छिलकोंमें मिला था, वैसा इन केलोंके गूदोंमें कहाँ!' उधर श्रीविदुरानी अपने मनमें कह रही थी—'हाय! इन हाथोंको मैं कैसे काट डालूँ, जिन्होंने गूदा तो फेंक दिया और छिलका खिला दिया। धन्य हैं विदुर-विदुरानी और धन्य है उनकी भक्ति!

श्रीअक्रूरजी

अक्रूरजी भगवान्‌की पद-वन्दनभक्तिके आचार्य हैं। इनका जन्म यदुवंशमें हुआ था और ये कुटुम्बके नातेसे वसुदेवजीके भाई लगते थे। इनके पिताका नाम श्वफल्क था। ये कंसके दरबारी थे।

जब अनेक उपाय करके भी कंस भगवान्‌को नहीं मरवा सका, तब उसने एक चाल चली। उसने एक धनुषयज्ञ रचा और उसमें मल्लयुद्धके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णको मरवा डालनेके लिये गोकुलसे गोप-ग्वालोंके सहित श्रीकृष्ण-बलरामको बुलवाया। उन्हें आदरपूर्वक लानेके लिये अक्रूरजीको भेजा गया। कंसकी आज्ञा पाकर अक्रूरजीकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा। वे भगवान्‌के दर्शनके लिये बड़े उत्कण्ठित थे और किसी-न-किसी प्रकार वे भगवान्‌के दर्शन करना चाहते थे।

प्रातःकाल मथुरासे रथ लेकर वे नन्दगाँव भगवान्‌को लेने चले। रास्तेमें वे अनेक प्रकारके मनोरथ करते जाते थे। सोचते थे—अहा, उन पीताम्बरधारी बनवारीको मैं इन्हीं चक्षुओंसे देखूँगा। उनके सुन्दर मुखारविन्दको तथा घुँघराली काली-काली अलकावलीसे युक्त सुकपोलोंको निहारूँगा। वे बार-बार प्रेमपूर्वक 'चाचा-चाचा' कहेंगे। मेरे लिये वह कितने सुखकी स्थिति होगी। इस प्रकार भाँति-भाँतिकी कल्पनाएँ करते हुए वे वृन्दावनके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने वज्र, अंकुश, यव, ध्वजा आदि चिह्नोंसे विभूषित श्यामसुन्दरके चरणचिह्नोंको देखा। बस, फिर क्या था। वे उन घनश्यामके चरणचिह्नोंको देखते ही रथसे कूद पड़े और उनकी वन्दना करके उस धूलिमें लोटने लगे। जैसे-तैसे व्रज पहुँचे। सर्वप्रथम बलदेवजीके साथ श्यामसुन्दर ही उन्हें मिले। उन्हें छातीसे लगाया, घर ले गये। कुशल पूछी, आतिथ्य किया और सब समाचार जाने।

दूसरे दिन रथपर चढ़कर अक्रूरजीके साथ श्यामसुन्दर और बलराम मथुरा चले। गोपियोंने उनका रथ घेर लिया, बड़ी कठिनतासे वे आगे बढ़ सके। थोड़ी दूर चलकर यमुना-किनारे अक्रूरजी नित्य-कर्म करने ठहरे। स्नान करनेके लिये ज्यों ही उन्होंने डुबकी लगायी कि भीतर चतुर्भुज श्रीश्यामसुन्दर दिखायी दिये। घबराकर ऊपर आये तो दोनों भाइयोंको रथपर बैठे देखा। फिर डुबकी लगायी तो फिर वही मूर्ति जलके भीतर दिखायी दी। अक्रूरजीको ज्ञान हो गया कि जलमें, स्थलमें, शून्यमें—कोई भी ऐसा स्थान नहीं, जहाँ श्यामसुन्दर विराजमान न हों। भगवान् उन्हें देखकर हँस पड़े। वे भी प्रणाम करके रथपर बैठ गये। मथुरा पहुँचकर भगवान् रथसे उतर पड़े और बोले—हम अकेले ही पैदल जायँगे। अक्रूरजीने बहुत प्रार्थना की—आप रथपर पहले मेरे घर पधारें, तब कहीं अन्यत्र जायँ। भगवान्‌ने कहा—आपके घर तो तभी जाऊँगा, जब कंसका अन्त हो जायगा।

कंसको मारकर भगवान् अक्रूरजीके घर गये। अब अक्रूरजीके आनन्दका क्या ठिकाना! जिनके दर्शनके लिये योगीन्द्र-मुनीन्द्र हजारों-लाखों वर्ष तपस्या करते हैं, वे स्वयं ही घरपर पधार गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसुदामाजी

श्रीसुदामाजी भगवान् श्रीकृष्णके सखा थे। वे ऐसे निष्काम भक्त थे कि उनके घरमें कभी सेरभर आटा एकत्र नहीं हो पाया। एक दिन उनकी ब्राह्मणीने समीप आकर स्मरण कराया कि आपकी तो द्वारकानाथ श्रीकृष्णसे बड़ी भारी मित्रता है। स्त्रीकी बात सुनकर उन्होंने कहा—हाँ, अवश्य हमारी और उनकी गहरी मित्रता है। तब सुदामाजीकी स्त्री सुशीलाने कहा—तो आप एक बार उनके समीप द्वारकापुरीको चले जाइये। उनके सुन्दर बदनका दर्शन कर आइये और जो कुछ भी मिले, उसे ले आइये। उनके द्वारा दी गयी वस्तु मुझे परम सुख देनेवाली होगी। सुदामाजीने कहा—तुमने बात तो अच्छी कही, परंतु इससे सातों लोकोंमें बड़ी बदनामी होगी। लोग यही कहेंगे कि मालूम पड़ गया कि सुदामाने इसीलिये मित्रता की थी।

यह सुनकर सुशीलाने कहा—श्रीकृष्णके मधुर रूपके दर्शन करनेका भी मन नहीं चाहता है क्या? आप केवल दर्शन कर आइये। कुछ भी याचना न कीजियेगा। उसने जब ये वचन सुनाये, तब प्यारे श्रीकृष्णके सुन्दर स्वरूपका स्मरण हो आया और वे अपने प्रिय मित्रसे मिलने चले। मार्गमें आनन्दसे पग-पगपर झूमते हुए वे द्वारकापुरीको आये। उनके नेत्र श्रीकृष्णचन्द्रकी रूपसुधाके प्यासे थे। कोई राजपुरुष महलोंमें जानेसे रोक न दे, इसलिये श्रीसुदामाजी मनमें डर रहे थे। किसी तरह मनको मजबूत करके सुदामाजीने राजद्वार लाँघकर राजभवनमें प्रवेश किया। मानो प्रभुदर्शनकी तीव्र अभिलाषाने ही हाथ पकड़कर उन्हें प्रभुके निकट पहुँचा दिया।

श्यामसुन्दर श्रीकृष्णभगवान्‌ने देखा कि परम प्रिय मित्र श्रीसुदामाजी पधारे हैं। इनके अचानक आ जानेसे वे प्रेमवश कुछ देरके लिये चित्रकी तरह स्तब्ध खड़े रहे। फिर सावधान होकर दौड़े और रोते हुए उनको गलेसे लगा लिया। कुछ देरतक वे दोनों मित्र परस्पर छाती-से-छाती लगाकर इस प्रकार मिले रहे कि मानो दोनोंका शरीर एक हो गया है। इतनेमें भगवान्‌को सुदामाजीकी दुर्बलताका स्मरण हो आया, सोचा कि मेरे गाढ़ालिंगनसे भी इन्हें पीड़ा हो रही होगी। इधर सुदामाजीको भी अपने देह-दौर्बल्यकी स्मृति हुई, इन्होंने सोचा कि मेरा अस्थिपंजर कोमल श्रीअंगमें चुभ रहा होगा। इन विचारोंसे दोनोंका मिलन छूटा। इतनेमें ही भगवान्‌के संकेतसे श्रीरुक्मिणीजी सोनेकी झारीमें जल ले आयीं। भगवान्‌ने अपने श्रीहस्तकमलसे सुदामाजीके चरण धोये और उन्हें शय्यापर पधराया। फिर उस समयकी चर्चा चलायी, जब दोनों उज्जैनमें सान्दीपनिमुनिके आश्रममें अध्ययन करते थे। भगवान्‌ने पुरानी चर्चा चलाकर उन्हें सुखके समुद्रमें डुबो दिया और स्वयं भी अत्यन्त प्रेममें मग्न हो गये।

सुदामाजी पुराने फटे-से वस्त्रमें बँधे चिउड़ाकी छोटी-सी पोटलीको बगलमें छिपाये हुए थे। भगवान्‌ने पोटली खींच ली और उसमेंसे एक मुट्ठी अपने मुखमें डाल ली। उसके बाद दूसरी और ली। उस प्रेमोपहारका स्वाद पाकर आप अति प्रसन्न हो गये और तीसरी मुट्ठी लेना चाहते ही थे कि श्रीरुक्मिणीजीने भगवान्‌का हाथ पकड़ लिया और कहने लगीं कि इसमेंसे थोड़ी-थोड़ी हम सबोंको भी बाँट दीजिये। तब शेष एक मुट्ठी चिउड़ा भगवान्‌ने श्रीरुक्मिणीजीको दे दिया। प्रभुने सुदामाकी धर्मपत्नीके भावोंको विचारकर अपार सम्पत्ति दे दी, पर सुदामाजीको इस तत्त्वका कुछ भी पता नहीं। वे सात दिनतक रहकर मित्रके सत्कारसे सन्तुष्ट होकर विदा हुए।

जब श्रीसुदामाजी द्वारकासे अपने ग्रामको आये तो उन्होंने देखा कि वह नया और अत्यन्त सुन्दर नगर हो गया है। उसकी रचना और उसका ऐश्वर्य द्वारकाके समान है, उसे देखकर वे विचारने लगे कि मेरी झोंपड़ी और ब्राह्मणी कहाँ गयी? क्या यहाँ किसी राजाने नगर बसा दिया? इतनेमें ही भगवत्कृपासे प्राप्त ऐश्वर्य और पतिदर्शनके आनन्दसे मग्न हुई सुदामाजीकी स्त्री सैकड़ों सखी-सहेलियोंको साथ लेकर आयीं। उसने सादर अपने पतिदेवका स्वागतकर उनकी अनुनय-विनय की। श्रीकृष्णकृपासे प्राप्त ऐश्वर्यका समाचार सुनाया, तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें विश्वास हुआ। अपार वैभवको पाकर सुदामाजी उसके मोह और भोगोंमें आसक्त नहीं हुए। उन्हें संसारी भोगोंकी चाह बिलकुल नहीं थी। अन्न, वस्त्र आदिका उतना ही प्रयोग करते थे कि जितनेसे शरीरका निर्वाह हो जाय। वे उसी अपनी पुरानी चालसे चलते थे, जो सात्त्विक सुख और प्रेमके रससे परिपूर्ण थी।

श्रीप्रियादासजीने सुदामाजीकी भक्तिप्रेममयी कथाका वर्णन इस प्रकार किया है—

बड़ो निष्काम सेर चूनहू न धाम ढिग आई निजभाम प्रीति हरिसों जनाई है।
सुनि सोचपर्‌यो हियोखरो अरबर्‌यो मन गाढ़ो लैकै कर्‌यो बोल्यो हाँजू सरसाई है॥
जावो एक बार वह वदन निहार आवो जोपै कछु पावो ल्यावो मोको सुखदाई है।
कही भली बात सात लोक में कलंक ह्वै है जानियत याही लिये कीन्ही मित्रताई है॥ ५३॥
तिया सुनि कहै कृष्ण रूप क्यों न चहै? जाय दहै दुख आप ही सो बचन सुनाये हैं।
आई सुधि प्यारे की विचारे मति टारे सब धारे पग मग झूमि द्वारावती आये हैं॥
देखि के विभूति सुख उपज्यो अभूत कोऊ चल्यो मुख माधुरी के लोचन तिसाये हैं।
डरपत हियो ड्योढ़ी लांघि मन गाढ़ो कियो लियो कर गहिचाह तहाँ पहुँचाये हैं॥ ५४॥
देख्यो श्याम आयो मित्र चित्रवत रहे नेकु हितको चरित्र दौरि रोइ गरे लागे हैं।
मानो एकतन भयो लयो ऐसे लाइ छाती नयो यह प्रेम छूटै नाहिं अङ्ग पागे हैं॥
आई दुबराई सुधि मिलन छुटाई ताने आने जल रानी पग धोये भाग जागे हैं।
सेज पधराइ गुरु चरचा चलाइ सुख सागर बुढ़ाइ आपु अति अनुरागे हैं॥ ५५॥
चिउड़ा छिपाये कांख पूछैं कहा ल्याये मोंको अति सकुचाये भूमि तकैं दृग भीजे हैं।
खैंचि लई गांठि मूठि एक मुखमांझ दई दूसरी हूं लेत स्वाद पाइ आपु रीझे हैं॥
गह्यो कर रानी सुख सानी प्यारी वस्तु यह पावो बांटि मानो श्रीसुदामा प्रेम धीजे हैं।
श्याम जू विचारि दीनी सम्पति अपार विदा भये पै न जानीं सार बिछुरनि छीजे हैं॥ ५६॥
आये निजग्राम वह अति अभिराम भयो नयो पुर द्वारका सों देखि मति गई है।
तिया रंग भीनी सङ्ग सतनि सहेली लीनी कीनी मनुहारि यों प्रतीति उर भई है॥
वहै हरि ध्यान रूप माधुरी को पान तासों राखैं निज प्रान जाके प्रीति रीति नई है।
भोग की न चाह ऐसे तनु निरबाह करैं ढरैं सोई चाल सुख जाल रसमई है॥ ५७॥

श्रीचन्द्रहासजी

(क) अनाथ चन्द्रहासपर भगवान् शालग्रामकी कृपा

केरलमें एक सुधार्मिक नामका राजा था, उसीके पुत्र भक्त चन्द्रहासजी हुए। जन्मके थोड़े दिन बाद ही इनके पिता संग्राममें वीरगतिको प्राप्त हो गये और माता सती हो गयी। शासन शत्रुओंके हाथमें चला गया। तब धाय माँ चन्द्रहासको लेकर कुन्तलपुर चली गयी और वहाँके मन्त्री धृष्टबुद्धिके यहाँ रहने लगी तथा चन्द्रहासको अपना बालक बताकर उसका पालन-पोषण करने लगी। चन्द्रहास अभी पाँच ही वर्षके हुए थे कि धाय माँका भी स्वर्गवास हो गया। अब वे अनाथ हो गये। चन्द्रहास अपने समान अवस्थावाले बालकोंके साथ भक्तिरसवर्धक खेल खेला करते थे। एक दिन कृपालु श्रीनारदजीने आकर दर्शन दिया और एक शालग्रामकी छोटी-सी मूर्ति समेत भगवन्नामका उपदेश दिया। चन्द्रहासजी नित्य उसकी पूजा करके उसे मुखमें रख लेते थे। एक दिन धृष्टबुद्धिके यहाँ ब्राह्मणभोज हुआ, संयोगवश चन्द्रहासजी वहीं खेल रहे थे, जहाँ ब्राह्मणोंमें प्रधान विद्वान् बैठे थे। उस समय धृष्टबुद्धिने वहाँ आकर पूछा कि मेरी कन्याका कैसा भाग्य है, इसे कैसा पति प्राप्त होगा? तब वे सब चन्द्रहासकी ओर संकेत करके बोल उठे कि यही तेरी कन्याका पति होना चाहिये। दासीपुत्र मेरी कन्याका पति होगा, यह जानकर वह लज्जासे घुल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धृष्टबुद्धि बड़े सोच-विचारमें पड़ गया कि यदि ऐसा हुआ तो मेरी बड़ी अपकीर्ति होगी। इसलिये अब यही विचार ठीक है कि इस लड़केको ही मरवा डाला जाय। ऐसा निश्चय करके उसने वधिकोंको बुलाकर कहा कि इसे मार डालो। धृष्टबुद्धिकी आज्ञासे वधिक लोग चन्द्रहासको दूर निर्जन वनमें ले गये और कहने लगे—हम तुम्हें मारेंगे बताओ, अब तुम्हारा रक्षक कौन है ? चन्द्रहासने कहा कि मैं तुमसे केवल एक बात माँगता हूँ कि तुमलोग थोड़ी देर रुको, जब मैं कहूँ, तब मुझपर हथियार चलाना।

वधिकोंने बात मान ली, चन्द्रहासने अपने मुखसे एक गोल शालग्रामकी मूर्तिको निकालकर वनके पत्र-पुष्पोंसे उसकी प्रेमपूर्वक सेवा की। मूर्तिको पुनः मुखमें रखकर ध्यानमें तल्लीन हो गये। प्रभुकी छविको हृदयमें धारणकर नेत्रोंके इशारेसे वधिकोंको मार डालनेकी आज्ञा दे दी। वधिक मूर्च्छित होकर गिर पड़े। थोड़ी देर बाद वे सावधान हुए, उनके हृदयमें दया आ गयी। चन्द्रहासके बाँयें पैरमें छः अँगुलियाँ थीं, जो एक दोष था। वधिकोंने छठी अँगुली धृष्टबुद्धिको दिखानेके लिये काट ली। जो अच्छा ही हुआ। वधिकोंने जाकर कटी अँगुली धृष्टबुद्धिको दिखाकर कहा कि हमने उसे मार डाला। उसने भी अँगुली पहचानकर उनकी बातको सत्य मान लिया।

कुन्तलपुरके राजाके राज्यमें एक छोटा राज्य और था, जिसकी राजधानी चन्दनावती नगरी थी। वहाँका राजा कुलिन्द कुन्तलपुरके राजाको प्रतिवर्ष कर देता था। वह सब प्रकारके सुखों और सम्पत्तियोंसे सम्पन्न था, पर उसके कोई पुत्र नहीं था। वह उसी जंगलसे होकर निकला और उस चन्द्रहासको देखकर अतिप्रसन्न हुआ; क्योंकि जिस पक्षीकी छाया पड़नेसे मनुष्य चक्रवर्ती सम्राट् हो जाता है, उसी पक्षीने अपने पक्षसे छाया कर रखी थी और हिरनियाँ चारों ओरसे उसे घेरे खड़ी थीं। चन्दनावतीके राजा कुलिन्दने निःसंकोच दौड़कर बालकको गोदमें उठा लिया और घर लाकर पुत्रजन्मके समान आनन्दमंगल मनाया। कुछ दिनोंके बीत जानेके बाद राजाने सोच-विचार करके चन्द्रहासको राजसिंहासनपर बैठाकर उसका राजतिलक कर दिया। चन्द्रहासने राज्य पाकर अपने राज्यमें भावभक्तिका बड़ा भारी प्रचार-प्रसार किया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीचन्द्रहासजीके बाल्यकालका वर्णन निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

हुतो एक नृप ताके सुत चन्द्रहास भयो परी यों विपत्ति धाई लाई और पुर है।
राजा कौ दीवान ताके रही घर आन बाल आपने समान संग खेलै रस ढुर है॥
भयो ब्रह्मभोज कोई ऐसोई संयोग बन्यो आये वै कुमार जहाँ विप्रन को सुर है।
बोलि उठे सबै तेरी सुता को जु पति यहै हुवो चाहै जानि सुनि गयो लाज घुर है॥ ५८॥
पर्‍यो सोच भारी कहा करौं यौं विचारी अहो सुता जो हमारी ताको पति ऐसो चाहिये।
डारौं याहि मार याको यहै है विचार तब बोलि नीच जन कह्यो मारो हिय दाहिये॥
लैके गये दूर देखि बाल छबि पूर हम योनि परै धूर दुःख ऐसो अवगाहिये।
बोले अकुलाय तोहिं मारेंगे सहाय कौन मागौं एक बात जब कहौं तब बाहिये॥ ५९॥
मानि लीन्हों बोल वे कपोल मध्य गोल एक गंडकी को सुत काढ़ि सेवा नीकी कीनी है।
भयो तदाकार यों निहार सुख भार भरि नैननि की कोर ही सों आज्ञा बध दीनी है॥
गिरे मुरझाइ दया आइ कछु भाय भरे ढरे प्रभु ओर मति आनन्द सों भीनी है।
हुती छटी आंगुरी सो काटि लई दूषन हो भूषन ही भयो जाइ कही सांच चीन्हीं है॥ ६०॥
वहै देश भूमि में रहत लघुभूप और और सुख सबै एक सुत चाह भारी है।
निकस्यो विपिन आनि देखि याहि मोदमानि कीन्हीं खगछांह घिरी मृगीपांति सारी है॥
दौरिकै निशंक लियो पाइ निधि रंक जियो कियो मनभायो सो बधायो श्रीहु वारी है।
कोऊ दिन बीते नृप भये चित चीते दियो राजको तिलक भावभक्ति बिसतारी है॥ ६१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) चन्द्रहासके साथ धृष्टबुद्धिका षड्यन्त्र

चन्द्रहासने कुन्तलपुरके राजाको कर देना बन्द कर दिया था, अतः उस राजाने कर वसूल करनेके लिये मन्त्री धृष्टबुद्धिके साथ सेना वहाँ भेजी। मन्त्रीको घर आया जानकर चन्दनावतीके राजाने उसका बड़ा सम्मान किया। मन्त्रीने चन्द्रहासको पहचान लिया कि यह वही बालक है। मनमें खीझकर निश्चय किया कि कपटका जाल फैलाकर अब इसे मारूँगा। कर लेनेकी बात पीछे पड़ गयी। धृष्टबुद्धिने एक चिट्ठी लिखकर चन्द्रहासको दी और कहा कि इसे मेरे लड़के मदनसेनके हाथमें दे देना और कहना कि इसमें जो लिखाकर लाया हूँ, उस कार्यको जल्दी ही कर दीजिये। चन्द्रहासजी पत्र लेकर कुन्तलपुरको चले। नगरके समीप एक बागमें सेवासमय जानकर रुके। आनन्दमग्न होकर शालग्राम-भगवान्‌की सेवा की, फिर विश्राम करने लगे और वहीं सो गये।

उसी बागमें मन्त्री धृष्टबुद्धिकी लड़की अपनी सहेलियोंके साथ खेलती हुई आयी। चन्द्रहासके सौन्दर्यको देखकर उसे बड़ा अनुराग हुआ, फिर निकटसे देखनेके लिये अपनी सहेलियोंसे अलग होकर चन्द्रहासके समीप आयी और इनकी रूपमाधुरीको देखकर उनमें प्रेमासक्त हो गयी। शोभा-सौन्दर्यके मदसे मतवाली उस लड़कीने चन्द्रहासकी पगड़ीमें रखी हुई चिट्ठीको झुककर धीरेसे खींच लिया। उसे बाँचा तो उसमें लिखा था कि पुत्र मदन! बिना कुछ सोच-विचार किये चिट्ठी लानेवाले इस बालकको शीघ्र विष दे दो। यह बाँचकर मन्त्रीकी लड़की अपने पितापर नाराज हुई कि मेरा नाम लिखते-लिखते ऐसी भूल की। उसका नाम विषया था। उसने आँखके काजलसे विषके आगे 'या' और बना दिया, फिर आनन्दकी उमंगमें मग्न अपनी सहेलियोंमें आ मिली और घर चली गयी।

चन्द्रहासजी उठे और मन्त्रीपुत्र मदनसेनके पास आये। चन्द्रहास उसे बहुत प्रिय लगे। उसने चन्द्रहासको प्रेमपूर्वक गलेसे लगा लिया। चन्द्रहासने उसके हाथमें पत्र दिया, जिसे पढ़कर उसने कहा कि इसमें तो मेरे मनकी अत्यन्त प्रिय लगनेवाली बात लिखी है। उसने जल्दीसे ब्राह्मणको बुलवाकर एक ही घड़ीमें चन्द्रहासके साथ अपनी बहन विषयाका विवाह कर दिया। कुछ समय बाद नीच धृष्टबुद्धि आया। विवाहकी बात सुनकर उसे ऐसा लगा मानो इधर-उधर घूम-घामकर मौत ही उसपर आ गयी हो। चन्द्रहासको दूलहके वेषमें देखकर उसके मनमें बड़ा भारी दुःख हुआ।

धृष्टबुद्धिने एकान्तमें बैठकर अपने लड़केसे पूछा कि तुमने यह भूल कैसे की ? मदनसेनने कहा कि मैंने बिलकुल वही सब काम किया जो कि आपने अपने हाथसे पत्रमें लिखा था। ऐसा कहकर उसने वह पत्र पिताजीको दिखा दिया। उसे पढ़कर उसके शरीरमें आग-सी लग गयी। वह मनमें विचारने लगा कि मैं तो बड़ा ही अभागा हूँ, अब भी मैं इसे मरवा डालूँगा। दासीपुत्रमें आसक्त बेटीका विधवा हो जाना ही अच्छा है। ऐसा विचारकर उस धृष्टबुद्धिने गुप-चुप तरीकेसे नीच वधिकोंको बुलाकर कहा कि आप देवीके मन्दिरमें जाकर बैठो, वहाँ जो कोई पूजा करने आये, उसे मार डालना। फिर वह चन्द्रहाससे बोला कि आप जाकर देवीका पूजन कर आइये। वे मेरी कुलपूज्या हैं। विवाहके बाद अकेले ही जाकर वरद्वारा देवीपूजनकी रीति मेरे वंशमें सदासे चली आ रही है।

धृष्टबुद्धिके कथनानुसार चन्द्रहासजी देवीका पूजन करने चले। इसी बीच कुन्तलपुरके राजाने सभामें कहा कि मेरे कोई लड़का नहीं है, इसलिये मन्त्रीके दामाद चन्द्रहासको ही राज्य दे दूँ। सर्वसम्मतिसे निश्चय करके राजाने मदनसेनसे कहा कि तुम शीघ्र ही चन्द्रहासजीको जाकर ले आओ। यह सुनकर मदनसेन सुख पाकर शीघ्र ही दौड़े। मार्गमें ही चन्द्रहासको पाकर प्रसन्न हुए और बोले कि आप शीघ्र ही राजसभामें चले जाइये। राजा आपको राज्य देना चाहते हैं। आप देवीके अपमानसे मत डरिये। उनका मानसिक ध्यान कर लीजिये। मैं आपके बदले जाकर देवीका पूजन करूँगा। यह कहकर मदनसेन देवीके मन्दिरमें गये। वहाँ जाते ही पहलेसे बैठे हुए वधिकोंने उन्हें मार डाला। इधर चन्द्रहासजीके राजसभामें पहुँचते ही राजाने उनका राज्याभिषेक कर दिया। सभी लोग सम्राट् चन्द्रहासकी जय-जयकार करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_4_1_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) चन्द्रहासकी भक्तिका प्रभाव

उधर किसीने आकर धृष्टबुद्धिसे कहा कि देवीके मन्दिरमें तुम्हारे पुत्रको वधिकोंने मार डाला। सुनते ही वह रोने लगा, उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। तुरंत ही वह देवीके मन्दिरमें गया, मृतपुत्रको देखते ही व्याकुल होकर गिर पड़ा और पत्थरपर सिर पटक-पटककर मर गया। किसीका क्या वश, वह ऐसा ही अभागा था। जब राजा चन्द्रहासने यह समाचार सुना तो वे भी देवीके मन्दिरमें आये। देवीके चरणोंका ध्यान करके स्वयं अपना सिर काटकर अर्पण करनेके लिये तैयार हो गये। तब देवीने कहा कि यह धृष्टबुद्धि तो तुम्हारा द्रोही है। इसे तो क्रोध करके मैंने ही मारा है। चन्द्रहासजीने कहा कि मृत्यु तो मेरी थी, मेरे बदले मदनसेन आये और मारे गये। पुत्रवध सुनकर पिताजी आये और मर गये। ये दोनों निरपराध हैं। इसलिये दोनों जीवित हो जायँ, कृपा करके ऐसा वरदान दीजिये। चन्द्रहासके प्रार्थना करते ही दोनों जीवित हो गये। धृष्टबुद्धिको सात्त्विकी बुद्धि आ गयी। भक्तमहिमा समझकर दोनों बड़भागी हो गये।

चन्द्रहासजीने ऐसा राज्य किया कि देशके सभी लोग भक्तराज हो गये। घर-घरमें जन-जनके मुखसे सुन्दर हरि-हरि नाम सुनायी देता था। प्रेमवश लोग राजा चन्द्रहासको सदा आँखोंके सामने ही रखना चाहते थे। राजा चन्द्रहासका चरित्र आदिसे अन्ततक हृदयको आनन्दित करनेवाला है। प्रातःकाल उठकर पठन-स्मरणसे हरिभक्ति प्राप्त होती है। यह जैमिनिसंहितामें व्यासजीने लिखा है।

श्रीप्रियादासजीने धृष्टबुद्धिकी दुष्टता और चन्द्रहासकी इस सज्जनताका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

रहै जाके देश सो नरेश कछु पावै नाहीं बाँह बल जोरि दियो सचिव पठाइकै।
आयो घर जानि कियो अति सनमान सो पिछान लियो वहै बाल मारो छलछाइ कै॥
दई लिखि चीठी जाओ मेरेसुत हाथ दीजै कीजै वहीबात जाको आयौ लै लिखाइकै।
गये पुर पास बाग सेवा मति पाग करि भरी दृग नींद नेकु सोयो सुख पाइकै॥ ६२॥
खेलति सहेलिन मों आई वाहि बाग मांझ करि अनुराग भई न्यारी देखि रीझी है।
पाग मधि पाती छबिमाती झुंकि खैंचि लई बांची खोलि लिख्यौ विषदैन पिता खीझी है॥
विषया सुनाम अभिराम दृग अञ्जन सों विषया बनाइ मन भाइ रस भीजी है।
आइ मिली आलिन में लालनको ध्यान हिये पिये मद मानो गृह आइ तब धीजी है॥ ६३॥
उठ्यो चन्द्रहास जिहि पास लिख्यो ल्यायो आयो देखि मन भायो गाढ़े गरे सों लगायो है।
देई कर पाती बात लिखी मो सुहाती बोलि विप्र घरी एक माँझ ब्याह उभरायो है॥
करी ऐसी रीति डारे बड़े नृप जीति श्री देत गई बीति चाव पार पै न पायो है।
आयो पिता नीच सुनि घूमि आई मीच मानों बानो लखि दूलह को शूल सरसायो है॥ ६४॥
बैठ्यो लै इकान्त सुत करी कहा भ्रान्त यह कह्यौ सो नितान्त कर पाती लै दिखाई है।
बाँचि आंच लागी मैं तो बड़ोई अभागी ऐ पै मारौं मति पागी बेटी रांड़ हू सुहाई है॥
बोलि नीच जाति बात कही तुम जावो मठ आवै यहाँ कोऊ मारि डारौ मोहि भाई है।
चन्द्रहास जू सों भाख्यौ देवी पूजि आवौ आप मेरी कुल पूज सदा रीति चलि आई है॥ ६५॥
चल्योई करन पूजा देशपति राजा कही मेरे सुत नाहीं राज वाही को लै दीजिये।
सचिव सुवन सों जु कह्यो तुम लावो जावो पावो नहिं फेरि समय अब काम कीजिये॥
दौर्‍यौ सुख पाइ जाइ मग ही में लियो जाय दियो सो पठाइ नृप रङ्गमाहि भीजिये।
देवी अपमान ते न डरौ सनमान करौं जात मारि डार्‍यौ यासों भाख्यो भूप लीजिये॥ ६६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काहू आनि कही सुत तेरो मार्‌यो नीचनि ने सींचन शरीर दृग नीर झरी लागी है।
चल्यो ततकाल देखि गिर्‌यो ह्वै बिहाल सिर पाथरसों फोरि मर्‌यौ ऐसो ही अभागी है॥
सुनि चन्द्रहास चलि वेगि मठ पास आये ध्याये पग देवता के काटे अङ्ग रागी है।
कह्यो तेरो द्वेषी याहि क्रोध करि मार्‌यो मैं ही उठैं दोऊ दीजै दान जिये बडभागी है॥ ६७॥
कर्‌यो ऐसो राज सब देश भक्तराज कर्‌यो ढिग को समाज ताकी बात कहा भाखिये।
हरि हरि नाम अभिराम धाम धाम सुनैं और काम कामना न सेवा अभिलाषिये॥
काम क्रोध लोभ मद आदि लै कै दूरि किये जिये नृप पाइ ऐसो नैननि में राखिये।
कही जिती बात आदि अन्त लौं सुहाति हिये पढ़ै उठि प्रात फल जैमिनि में साखिये॥ ६८॥

श्रीचित्रकेतुजी

शूरसेन देशमें प्राचीन समयमें चित्रकेतु नामके एक राजा थे। राजाकी बहुत-सी सुन्दरी रानियाँ थीं, परंतु उनकी किसी रानीके कोई सन्तान नहीं थी। वंश नष्ट हो जायगा, इस चिन्तासे राजाको ठीकसे निद्रातक नहीं आती थी। एक बार अंगिरा ऋषि उनके यहाँ पधारे। महर्षि तो कृपा करके उन्हें तत्त्वज्ञान देने आये थे, किंतु उन्होंने देखा कि मोहवश राजाको पुत्र पानेकी प्रबल इच्छा है।

ऋषिने सोच लिया कि जब यह पुत्रवियोगसे दुःखी होगा, तभी इसमें वैराग्य होगा और तभी कल्याणके सच्चे मार्गपर चलनेयोग्य होगा। अतः राजाकी प्रार्थनापर ऋषिने त्वष्टा देवताका यज्ञ किया और यज्ञसे बचा अन्न देकर यह कह दिया कि इसको तुम किसी रानीको दे देना। महर्षिने यह भी कहा कि इससे जो पुत्र होगा, वह तुम्हें हर्ष-शोक दोनों देगा।

उस अन्नको खाकर राजाकी एक रानी गर्भवती हुई। उसके पुत्र हुआ। राजा तथा प्रजा दोनोंको अपार हर्ष हुआ। अब पुत्रस्नेहवश राजा उसी रानीसे अनुराग करने लगे। राजाकी उपेक्षासे उनकी दूसरी रानियोंके मनमें डाह उत्पन्न हो गया। सबने मिलकर उस नवजात बालकको एक दिन विष दे दिया, जिसके कारण बच्चा मर गया। बालककी मृत्युसे शोकके मारे राजा पागल-से हो गये। राजाको ऐसी विपत्तिमें पड़ा देखकर उसी समय वहाँ देवर्षि नारदके साथ महर्षि अंगिरा आये। वे राजाको मृत बालकके पास पड़े देख समझाने लगे—राजन्! तुम जिसके लिये इतने दुःखी हो रहे हो, वह तुम्हारा कौन है? इस जन्मसे पहले वह तुम्हारा कौन था? अब आगे यह तुम्हारा कौन रहेगा? यह पिता-पुत्रका सम्बन्ध कल्पित है। ये शरीर न जन्मके पूर्व थे, न मृत्युके पश्चात् रहेंगे। अतः तुम इनके लिये शोक मत करो।'

राजाको बोध देनेके लिये देवर्षि नारदने जीवका आवाहन करके बालकको जीवितकर उससे कहा—'जीवात्मन्! देखो। ये तुम्हारे पिता-माता, बन्धु-बान्धव तुम्हारे लिये व्याकुल हो रहे हैं। तुम इनके पास क्यों नहीं रहते?'

जीवात्माने कहा—'ये किस-किस जन्ममें मेरे माता-पिता हुए थे? मैं तो अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियोंमें अनन्त कालसे जन्म लेता आ रहा हूँ। सभी जीव परस्पर कभी पिता, कभी पुत्र, कभी मित्र, कभी शत्रु बनते हैं। ये लोग मुझे अपना पुत्र मानकर रोते क्यों हैं? शत्रु मानकर प्रसन्न क्यों नहीं होते? आत्मा तो कभी मरता नहीं, वह नित्य है और शरीर नित्य है नहीं, फिर ये लोग क्यों व्यर्थ रो रहे हैं?'

राजपुत्रका जीवात्मा इतना कहकर चला गया। उसकी बातोंसे सबका मोह दूर हो गया। मृतकका अन्त्येष्टि संस्कार करके राजा शान्त हो गये। महर्षि अंगिरा और देवर्षि नारदजीसे भगवत्प्राप्तिका साधन प्राप्तकर भगवान्‌की आराधना करने लगे। कुछ ही समयमें वे विद्याधरोंके स्वामी हो गये। विद्याके बलसे मनोगतिके अनुसार भगवान् शेषके समीप पहुँच गये। यहाँ उन्होंने सनत्कुमारादि महर्षियोंसे सेवित संकर्षणभगवान्‌के दर्शन किये। दयामय भगवान्‌ने चित्रकेतुको परम तत्त्वका उपदेश दिया।

कालान्तरमें ये ही चित्रकेतु भगवती पार्वतीकी अवज्ञा करनेके कारण त्वष्टाके यज्ञमें दक्षिणाग्निसे वृत्रासुरके रूपमें प्रकट हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गज-ग्राह

महर्षि अगस्त्यके शापसे पाण्ड्यनरेश महाराज इन्द्रद्युम्नको गजयोनि तथा देवल ऋषिके शापसे गन्धर्व श्रेष्ठ हूहूको ग्राहकी योनिमें जन्म लेना पड़ा था। इनसे सम्बन्धित कथा छप्पय ५ पृ० ४७ में श्रीहरि-अवतारके प्रसंगमें आयी है।

भक्त पाण्डव

धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन
पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्तनेन।
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन
माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः॥*

जैसे शरीरमें पाँच प्राण होते हैं, वैसे ही महाराज पाण्डुके पाँच पुत्र हुए—कुन्तीदेवीके द्वारा धर्म, वायु तथा इन्द्रके अंशसे युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन और माद्रीके गर्भसे अश्विनीकुमारोंके अंशसे नकुल और सहदेव। ये पाँचों भाई जन्मसे ही धार्मिक, सत्यवादी और न्यायी थे। ये क्षमावान्, सरल, दयालु तथा भगवान्‌के परम भक्त थे। इनमें भी युधिष्ठिर तो साक्षात् धर्मके अवतार ही थे।

ये सब धर्मराज युधिष्ठिरके ही वशमें रहकर उन्हींके अनुकूल चलते थे। धर्मराज श्रीकृष्णचन्द्रको ही अपना सर्वस्व मानते थे। भगवान्‌में भक्ति होना, भगवान्‌के प्रति सम्पूर्ण रूपसे आत्मसमर्पण कर देना ही धर्मका लक्ष्य है। यही बात, यही आत्मनिवेदन पाण्डवोंमें था और इसीसे श्यामसुन्दर उन्हींके पक्षमें थे। पाण्डवोंकी विजय इसी धर्म तथा भक्तिसे हुई।

महर्षि मैत्रेयजी

श्रीप्रियादासजीने मैत्रेयजी तथा चित्रकेतु आदिके सम्बन्धमें एक कवित्त लिखा है, जो इस प्रकार है—

कौषारव नाम सो बखान कियो नाभ जू ने मैत्रेय अभिराम ऋषि जानि लीजै बात में।
आज्ञा प्रभु दई जाहु विदुर है भक्त मेरौ करौ उपदेश रूप गुण गात गात में॥
चित्रकेतु प्रेम केतु भागवत ख्यात जाते पलट्यो जनम प्रतिकूल फल घात में।
अक्रूर आदि ध्रुव भये सब भक्तभूप उद्धव से प्यारेन की ख्याति पात पात में॥ ६९॥

कवित्तमें बताया गया है कि श्रीनाभाजीने कौषारव नामसे जिनका वर्णन किया है, वे परम श्रेष्ठ ऋषि मैत्रेयजी हैं। परमधाम जानेसे पूर्व जब भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजीको उपदेश दे रहे थे, उस समय मैत्रेयजी भी वहीं उपस्थित थे। मैत्रेयजीको भगवान्‌ने आज्ञा दी कि तुम जाओ और मेरे भक्त विदुरजीको मेरे द्वारा कथित ज्ञान-भक्तिका उपदेश दो, जिससे मेरे रूप और गुण उनके रोम-रोममें व्याप्त हो जायँ। मैत्रेय और विदुरजीका संवाद श्रीमद्भागवतके तीसरे स्कन्धमें वर्णित है। प्रेमकी ध्वजा फहरानेवाले भक्त चित्रकेतुका चरित्र भी श्रीभागवतमें प्रसिद्ध है। शंकरजीका अपमान करनेपर उन्हें दैत्ययोनि प्राप्त हुई। फिर भी उनकी भक्ति ज्यों-की-त्यों रही। अक्रूरजी और ध्रुवजी—ये श्रेष्ठ भक्तराज हुए। उद्धव-सरीखे भगवान्‌के प्यारे भक्तोंकी कथा संसारमें सर्वत्र प्रसिद्ध है॥ ६९॥

श्रीकुन्तीजी

देवी कुन्तीजीके विषयमें श्रीप्रियादासजी एक कवित्तमें इस प्रकार कहते हैं—

कुन्ती करतूति ऐसी करै कौन भूत प्राणी मांगति विपति जासों भाजैं सब जन हैं।
देख्यो मुख चाहो लाल देखे बिन हिये शाल हूजिये कृपाल नहीं दीजै वास वन हैं॥
देखि विकलाई प्रभु आँखि भर आई फेरि घर ही को लाई कृष्ण प्राण तन धन हैं।
श्रवण वियोग सुनि तनक न रह्यो गयो भयो वपु न्यारो अहो यही साँचो पन हैं॥ ७०॥

* धर्मराज युधिष्ठिरका कीर्तन करनेसे धर्म बढ़ता है, वायुपुत्र भीमकी कथा कहनेसे पापोंका नाश होता है, धनुर्धर अर्जुनका कीर्तन करनेसे शत्रुओंका नाश होता है और अश्विनीकुमारोंके अंशसे उत्पन्न नकुल-सहदेवका कीर्तन करनेसे शरीर नीरोग रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् इस संसारमें ऐसा कौन प्राणी है, जो श्रीकुन्तीजीके समान भगवान्‌में प्रीति करे। जिस विपत्तिसे सभी लोग दूर भागते हैं, उसे कुन्तीजीने भगवान्‌से माँगा कि मुझपर सदा विपत्ति रहे, जिसमें आपका दर्शन होता है।* हे लालन! मैं सदा तुम्हारे मुखारविन्दका दर्शन करना चाहती हूँ, बिना दर्शनोंके हृदयमें शूल लगनेके समान दुःख होता है या तो आप निकट रहकर सदा दर्शन दीजिये, नहीं तो विपत्तिरूप वनवास दीजिये। ऐसी व्याकुलता देखकर भगवान्‌की आँखोंमें आँसू आ गये। द्वारकाको प्रस्थान करते हुए श्रीकृष्णको फिर घरको ही लौटा लायीं। श्रीकृष्ण कुन्तीके तन, धन और प्राण थे। भूमिका भार उतारकर भगवान् निजधामको चले गये—यह सुनते ही उनके वियोगमें कुन्तीजीसे थोड़ा भी नहीं रहा गया। तुरंत शरीर छूट गया। वे भगवद्धामको चली गयीं। धन्य है, यही सच्चा प्रेमप्रण है ॥ ७० ॥

देवी कुन्तीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

शास्त्रोंमें पाँच देवियाँ नित्य कन्याएँ मानी गयी हैं। उनमें महारानी कुन्ती भी हैं। ये वसुदेवजीकी बहन थीं और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी फूआ। महाराज कुन्तिभोजसे इनके पिताकी मित्रता थी, उनके कोई सन्तान नहीं थी, अतः ये कुन्तिभोजके यहाँ गोद आयीं और उन्हींकी पुत्री होनेके कारण इनका नाम कुन्ती पड़ा। महाराज पाण्डुके साथ इनका विवाह हुआ। महाराज पाण्डुका शरीरान्त होनेपर माद्री तो उनके साथ सती हो गयीं, किंतु ये पाण्डवोंकी रक्षाके लिये जीवित रह गयीं। महाभारतका युद्ध हुआ। अठारह अक्षौहिणी सेनाका संहार हुआ। धृतराष्ट्रके सौ पुत्र मारे गये। गान्धारी पुत्रहीना बन गयी, वह रोती हुई युद्धभूमिमें गयी, कुन्ती उसे पकड़कर ले गयीं और भाँति-भाँतिसे उसको धैर्य बँधाने लगीं। माता कुन्तीने सच्चे मनसे उस पतिव्रता गान्धारीकी सब प्रकारसे सेवा की।

माता कुन्तीने कभी शारीरिक सुख नहीं भोगा, जबसे वह विवाहित होकर आयीं, उन्हें विपत्तियोंका ही सामना करना पड़ा। पति रोगी थे, उनके साथ जंगलोंमें भटकती रहीं। वहीं पुत्र पैदा हुए, उनकी देख-रेख की, थोड़े दिन हस्तिनापुरमें पुत्रोंके साथ रहीं, वह भी दूसरेकी आश्रिता बनकर। फिर लाक्षागृहसे किसी प्रकार अपने पुत्रोंको लेकर भागीं और भिक्षाके अन्नपर जीवन बिताती रहीं। थोड़े दिन राज्य-सुख भोगनेका समय आया कि धर्मराज युधिष्ठिर कपटके जुएमें सर्वस्व हारकर वनवासी बने, तब विदुरके घरमें रहकर जैसे-तैसे जीवन बिताती रहीं। युद्ध हुआ, परिवारवालोंका संहार हुआ, इससे कुन्तीको क्या सुख! पाण्डवोंकी विजय होनेसे क्या हुआ। वह पाण्डवोंके साथ राज्यभोगमें सम्मिलित नहीं हुईं। उन्होंने तो अपना सम्पूर्ण जीवन अपने उन अन्धे जेठ धृतराष्ट्र और जिठानी गान्धारीकी सेवामें अर्पण कर दिया, जिन धृतराष्ट्र और गान्धारीके पुत्रोंने इन्हें और इनके पुत्रोंको इतने कष्ट दिये थे! गान्धारी और धृतराष्ट्र जब पुत्रवियोगसे दुःखी होकर जंगलोंमें चले तो उनके साथ हो लीं। इस प्रकार उनका जीवन सदा विपत्तिमें ही कटा। इस विपत्तिमें भी उन्हें सुख था। वे इस विपत्तिको भगवान्‌से चाहती थीं और हृदयसे इसे विपत्ति मानती भी नहीं थीं। उनके अनुसार भगवान्‌का विस्मरण होना ही विपत्ति है और उनका स्मरण बना रहे, यही सबसे बड़ी सम्पत्ति है—'**विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः** ॥'

श्रीद्रौपदीजी

श्रीप्रियादासजी देवी द्रौपदीका स्मरण करते हुए कहते हैं—

द्रौपदी सती की बात कहै कौन ऐसो पटु खैंचत ही पट पट कोटि गुने भये हैं।
द्वारका के नाथ जब बोली तब साथ हुते द्वारका सों फेरि आये भक्त वाणी नये हैं॥
गये दुर्वासा ऋषि वन में पठाये नीच धर्म पुत्र बोले विनय आवै पन लये हैं।
भोजन निवारि तिया आइ कही सोच पर्‌यो चाहै तनु त्याग्यौ कह्यो कृष्ण कहूं गये हैं॥ ७१ ॥

* विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो। भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

कुन्तीजी भगवान्‌से प्रार्थना करती हैं—'हे जगद्गुरो! हमपर सदा विपत्तियाँ ही आती रहें, क्योंकि आपके दर्शन विपत्तिमें ही होते हैं और आपके दर्शन होनेपर फिर इस संसारके दर्शन नहीं होते अर्थात् मनुष्य आवागमनसे रहित हो जाता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा कौन चतुर कवि है जो पतिव्रता श्रीद्रौपदीजीके चरित्रका वर्णन कर सके। श्रीकृष्णमें इनका अटल विश्वास और प्रेम था। दुर्योधनने कपटसे जुएमें युधिष्ठिरको हराकर सर्वस्वके साथ द्रौपदीजीको भी जीत लिया। दुष्ट दुर्योधनकी आज्ञासे दु:शासन भरी सभामें द्रौपदीको नग्न करनेके लिये उनके वस्त्र खींचने लगा। उसी समय उनके वस्त्र करोड़ों गुने बढ़ गये। अपनी लाज बचानेके लिये द्रौपदीजीने जब पुकारा कि हे द्वारकानाथ! दुष्टोंसे मेरी रक्षा करो। उस समय यद्यपि भगवान् द्रौपदीके समीप ही थे; क्योंकि वे सर्वव्यापी हैं, परंतु द्रौपदीने द्वारकाके नाथ—यह कहकर पुकारा था। इसलिये वे अपने भक्तकी वाणी सत्य करनेके लिये द्वारकासे ही अति शीघ्र दौड़कर आये। भगवान् भक्तकी वाणीमें नथे हैं।

जिस समय पाण्डव द्रौपदीसमेत वनवास कर रहे थे, उसी समय दुष्ट दुर्योधनने प्रार्थना करके दुर्वासाजीको भेजा कि आप अपने दस हजार शिष्योंसमेत वनमें जाकर उस समय युधिष्ठिरके अतिथि बनिये, जबकि द्रौपदीसमेत सभी पाण्डव भोजन कर चुके हों। इसी प्रकार वनमें दुर्वासाजीको देखते ही युधिष्ठिरजीने सविनय भोजनार्थ निमन्त्रित किया। उन्होंने कहा कि हम जिस नित्य नियमका प्रण लिये हैं, उसको करके अभी आते हैं। युधिष्ठिरजीने कहा—ऋषियोंके लिये भोजन तैयार करो। द्रौपदीजीने कहा—अब तो मैं स्वयं भोजन कर चुकी और सूर्यके द्वारा दिये हुए उस पात्रको धोकर साफ कर चुकी। यह सुनकर युधिष्ठिर आदि सभी भाइयोंको बड़ा शोक हुआ वे बोले—यदि उन्हें भोजन न मिला तो वे शापसे भस्म कर देंगे। अत: अच्छा यही है कि काष्ठ एकत्र करो, हम पहले ही जल जायँ, जिससे ब्राह्मणका अपमान तो न हो। तब द्रौपदीजीने कहा कि आप इतने चिन्तित क्यों होते हैं, क्या सदा सहायता करनेवाले श्रीकृष्ण कहीं चले गये हैं॥ ७१॥

सुन्यो भागवती को वचन भक्तिभाव भर्‌यो कर्‌यो मन आये श्याम पूजे हिये काम है।
आवत ही कही मोहि भूख लागी देवो कछु महासकुचाये मागैं प्यारो नहीं धाम है॥
विश्व के भरण हार धरे हैं आहार अजू हमसों दुरावो कही वाणी अभिराम है।
लग्यो शाक पत्र पात्र जल सङ्ग पाइ गये पूरण त्रिलोकी विप्र गिनै कौन नाम है॥ ७२॥

परमभक्ता द्रौपदीकी भक्तिभावभरी वाणी सुनकर धर्म-पुत्रने श्रीकृष्णका स्मरण किया। वे तुरंत आ गये, उनके दर्शनोंसे हृदयकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो गयीं। आते ही भगवान्‌ने कहा—मुझे बड़ी भूख लगी है, कुछ खानेके लिये दो। यह सुनकर सबको बड़ा संकोच हुआ कि प्राणप्यारे प्रभु भोजन माँग रहे हैं और यहाँ कुछ भी नहीं है। संकुचित तथा मौन देखकर भगवान्‌ने बड़ी मीठी वाणीसे कहा कि अजी! हमारी और शिष्योंसमेत दुर्वासाजीकी क्या चले, तुम्हारे यहाँ तो सम्पूर्ण विश्वको तृप्त कर देनेभरका आहार रखा है, पर हमसे तुम छिपा रहे हो। द्रौपदीने वह पात्र लाकर भगवान्‌के सामने रख दिया। उस पात्रमें कहीं शाकके पत्तेका कण लगा रह गया था, भगवान् उसे ही छुड़ाकर जलके साथ खा गये। इससे तीनों लोकोंके जीवोंका पेट भर गया। शिष्योंसमेत दुर्वासाजीकी तो गिनती ही क्या॥ ७२॥

श्रीद्रौपदीजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

महाराज द्रुपदके यहाँ यज्ञकुण्डसे द्रौपदीजीका प्रादुर्भाव हुआ। इनके धृष्टद्युम्न और शिखण्डी दो भाई थे। इनका शरीर कृष्णवर्णके कमलके समान सुकुमार और सुन्दर था। इसलिये इनका एक नाम 'कृष्णा' भी था। महाराज द्रुपदने इनका स्वयंवर रचा। अर्जुनने लक्ष्यभेद किया और द्रौपदी पाण्डवोंको मिलीं।

वे अपने शील, स्वभाव और प्रेममय बर्तावसे सबको प्रसन्न रखती थीं।

द्रौपदीजीको एकमात्र भगवान्‌का ही भरोसा था, वे भगवान्‌के भरोसे निश्चिन्त रहती थीं। उनपर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आयीं, बड़े-बड़े दु:ख पड़े, किंतु वे सब भगवान्‌की कृपासे क्षणभरमें नष्ट हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिध्याननिष्ठ भक्तगण

जोगेस्वर श्रुतदेव अंग मुचु (कुंद) प्रियब्रत जेता।
पृथू परीच्छित सेष सूत सौनक परचेता॥
सतरूपा त्रयसुता सुनीति सती (सबाह) मंदालस।
जग्यपत्नि ब्रजनारि किए केसव अपने बस॥
ऐसे नर नारी जिते तिनही के गाऊँ जसैं।
पद पंकज बांछौं सदा जिन के हरि नित उर बसैं॥ १०॥

जिन भक्तोंके हृदयमें भगवान् नित्य निवास करते हैं, मैं उनके चरणकमलोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ। नौ योगीश्वर, श्रुतदेव, राजा अंग, मुचुकुन्दजी, विश्वविजयी प्रियव्रतजी, पृथुजी, परीक्षित्‌जी, शेषजी, सूतजी, शौनकादि ऋषि, प्रचेतागण, शतरूपाजी, प्रसूतिजी, आकूतिजी, देवहूतिजी, सुनीतिजी, दक्षकन्या सतीजी, सम्पूर्ण सतीवर्ग, मन्दालसा, यज्ञपत्नियाँ और व्रजगोपियाँ जिन्होंने श्रीकृष्णको अपने वशमें कर लिया है, ऐसे जितने स्त्री या पुरुष हैं, मैं सदा उनके सुयशका गान करूँ॥ १०॥

यहाँ श्रीहरिध्याननिष्ठ इन भक्तजनोंके मंगलमय पावन चरित्रका किंचित् स्मरण प्रस्तुत है—

नौ योगीश्वर

महाराज स्वायम्भुव मनु और शतरूपासे इस सृष्टिका प्रारम्भ हुआ। स्वायम्भुव मनुके पुत्र हुए प्रियव्रत, प्रियव्रतके आग्नीध्र, आग्नीध्रके नाभि और नाभिके पुत्र हुए ऋषभ। ऋषभके सौ पुत्र थे, वे सब-के-सब वेदोंके पारदर्शी विद्वान् थे। उनमें सबसे बड़े थे राजर्षि भरत। उन्हींके नामसे यह भूमिखण्ड जो पहले 'अजनाभवर्ष' कहलाता था, 'भारतवर्ष' कहलाया। भगवान् ऋषभदेवके शेष निन्यानबे पुत्रोंमेंसे नौ पुत्र भारतवर्षके सब ओर स्थित नौ द्वीपोंके अधिपति, इक्यासी पुत्र कर्मकाण्डके रचयिता ब्राह्मण और बाकी नौ संन्यासी हो गये। **ऋषभदेवके जो नौ पुत्र संन्यासी हो गये, उन्हें ही नौ योगीश्वर कहा जाता है। उनके नाम हैं—कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन।**

ये नौ योगीश्वर भगवद्रूप जगत्‌को अपनी आत्मासे अभिन्न अनुभव करते हुए पृथ्वीपर स्वच्छन्द विचरण करते थे। ये सब-के-सब जीवन्मुक्त महात्मा थे। इन नौ योगीश्वरोंका विदेहराज महात्मा निमिसे एक बार संवाद हुआ था, जिसमें इन महात्मा योगीश्वरोंने भगवान्‌को प्राप्त करानेवाले धर्मों और साधनोंका वर्णन किया था। उस समय महाराज निमि बड़े-बड़े ऋषियोंद्वारा एक महान् यज्ञका सम्पादन करवा रहे थे। स्वच्छन्द भावसे विचरण करते हुए ये नौ योगीश्वर भी वहाँ पहुँच गये। महाराज निमिने इनका बहुत आदर-सत्कार किया और अधिकारी जानकर भगवच्चर्चा की। महाराज निमिके पूछनेपर उन योगीश्वरोंमें प्रथम योगीश्वर कविने उन्हें भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त करानेवाले भागवतधर्मोंका उपदेश दिया। दूसरे योगीश्वर हरिजीने भगवद्भक्तोंके धर्म, लक्षण और स्वभावका वर्णन किया। तीसरे योगीश्वर अन्तरिक्षजीने माया एवं उसके स्वरूपका वर्णन किया और चौथे योगीश्वर प्रबुद्धजीने मायाको पार करनेका उपाय बताया। पाँचवें योगीश्वर पिप्पलायनजीने 'नारायण' नामवाले परब्रह्म परमात्माका वर्णन किया। तत्पश्चात् राजा निमिने प्रार्थना की कि हे योगीश्वरो! अब आपलोग मुझे कर्मयोगका उपदेश कीजिये, जिसके द्वारा शुद्ध होकर मनुष्य शीघ्रातिशीघ्र अपने कर्मबन्धनको काट डालता है और जन्म-मृत्युके चक्रसे सर्वदाके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुटकारा पा जाता है। इस प्रश्नका उत्तर छठे योगीश्वर श्रीआविर्होत्रजीने दिया। सातवें योगीश्वर श्रीद्रुमिलजीने भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन किया।

इतना सब भगवच्चरित्र सुननेके बाद राजा निमिने पूछा—हे योगीश्वरो! कृपा करके यह बतलाइये कि जिनकी कामनाएँ शान्त नहीं हुई हैं, लौकिक-पारलौकिक भोगोंकी लालसा मिटी नहीं है और मन एवं इन्द्रियाँ भी वशमें नहीं हैं तथा प्राय: जो भगवान्‌का भजन नहीं करते—ऐसे लोगोंकी क्या गति होती है? इसका उत्तर देते हुए आठवें योगीश्वर श्रीचमसजीने बताया कि हे राजन्! जो लोग अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णसे पराङ्मुख हैं, वे अत्यन्त परिश्रम करके गृह, पुत्र, मित्र और धन-सम्पत्ति इकट्ठी करते हैं; परंतु उन्हें अन्तमें सब कुछ छोड़ देना पड़ता है और न चाहनेपर भी विवश होकर घोर नरकमें जाना पड़ता है। अब राजा निमिने पूछा—हे योगीश्वरो! भगवान् किस समय किस रंग और किस आकारको स्वीकार करते हैं एवं मनुष्य किन नामों और विधियोंसे उनकी उपासना करते हैं?

इसका उत्तर देते हुए नौवें योगीश्वर श्रीकरभाजनजीने कहा—राजन्! सत्ययुगमें भगवान्‌के श्रीविग्रहका रंग श्वेत होता है। उनके चार भुजाएँ और सिरपर जटा होती है तथा वे वल्कल वस्त्र पहनते हैं। वे काले मृगका चर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्षकी माला, दण्ड और कमण्डलु धारण करते हैं। सत्ययुगमें लोग तपस्याद्वारा सबके प्रकाशक परमात्माका ध्यान करते हैं। त्रेतायुगमें भगवान्‌के श्रीविग्रहका रंग लाल होता है। उनके चार भुजाएँ होती हैं और वे कटिभागमें तीन मेखला धारण करते हैं। उनके केश सुनहले होते हैं और वे स्रुक्, स्रुवा आदि यज्ञपात्रोंको धारण किया करते हैं। इस युगके मनुष्य अपने धर्ममें बड़ी निष्ठा रखनेवाले और वेदोंके अध्ययन-अध्यापनमें प्रवीण होते हैं। वे लोग ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदरूप वेदत्रयीके द्वारा सर्वदेवस्वरूप देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी आराधना करते हैं। द्वापरयुगमें भगवान्‌के श्रीविग्रहका रंग साँवला होता है। वे पीताम्बर तथा शंख, चक्र, गदा आदि अपने आयुध धारण करते हैं। वक्ष:स्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, भृगुलता, कौस्तुभमणि आदि लक्षणोंसे वे पहचाने जाते हैं। कलियुगमें श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न पुरुष ऐसे यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करते हैं; जिनमें नाम, गुण, लीला आदिके कीर्तनकी प्रधानता रहती है।

इस प्रकार राजा निमि तथा अन्य ऋत्विजों-आचार्योंको भागवत-धर्मका उपदेश देकर वे नौओं योगीश्वर अन्तर्धान हो गये।*

श्रीश्रुतदेवजी

श्रीश्रुतदेवजीके सम्बन्धमें श्रीप्रियादासजीने जो कवित्त लिखा है, वह इस प्रकार है—

जिनहीं के हरि नित उर बसैं तिनहीं की पद-रेनु चैन दैन आभरन कीजियै।
योगेश्वर आदि रस स्वाद में प्रवीन महा विप्र श्रुतिदेव ताकी बात कहि दीजियै॥
आये हरि घर देखि गयो प्रेम भरि हियो ऊँचो कर करि पट फेरि मति भीजियै।
जिते साधु सङ्ग तिन्हैं विनय न प्रसंग कियो कियो उपदेश मोसों बाढ़ पांव लीजियै॥ ७३॥

जिन भक्तोंके हृदयमें सदा श्रीहरि वास करते हैं, उनके चरणोंकी धूलि अखण्ड आनन्द देनेवाली है, उसीको भूषण मानकर मस्तकपर धारण कीजिये। नौ योगीश्वर आदि सभी भक्त प्रेम-रसके आस्वादनमें परम चतुर हैं। उनमेंसे श्रीश्रुतदेव ब्राह्मणकी बात कहता हूँ। भगवान्‌को घरमें आया देखकर इनका हृदय प्रेमसे भर गया। दोनों हाथोंको ऊँचे उठाकर वस्त्र फिरा-फिराकर नाचने लगे। प्रेममें ऐसे मग्न हो गये कि श्रीकृष्णके समेत आये हुए साधु-सन्तोंका स्वागत-सत्कार विनय-प्रणाम आदि भी न कर सके। तब भगवान्‌ने इन्हें सावधान करके उपदेश दिया कि ये सन्त मुझसे भी बढ़कर श्रेष्ठ हैं, इनके चरणोंका अर्चन-वन्दन करो॥ ७३॥

* श्रीमद्भागवतके ११वें स्कन्धमें अध्याय २ से ५ तक विस्तारसे नौ योगीश्वरोंका उपदेश दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीश्रुतदेवजीकी कथा इस प्रकार है—

मिथिलानरेश महाराज बहुलाश्व भगवान्‌के भक्त, अहंकारहीन तथा प्रजावत्सल थे। उसी नगरमें श्रुतदेव नामके भगवान्‌के परम भक्त अकिंचन ब्राह्मण भी रहते थे।

ब्राह्मण श्रुतदेव तथा राजा बहुलाश्वपर कृपा करके उन्हें दर्शन देनेके लिये श्रीद्वारकानाथ रथपर बैठकर ऋषि-मुनियोंके साथ मिथिला पधारे। भगवान्‌के आनेका समाचार पाकर सभी नगरवासी नाना प्रकारके उपहार लेकर नगरसे बाहर आये और उन्होंने भूमिपर लेटकर भगवान्‌को प्रणाम किया। राजा बहुलाश्व तथा ब्राह्मण श्रुतदेव दोनोंको ऐसा लगा कि भगवान् मुझपर ही कृपा करने पधारे हैं। अतएव दोनोंने एक साथ भगवान्‌को प्रणाम किया और फिर एक साथ हाथ जोड़कर अपने-अपने घर पधारनेकी प्रार्थना की। सर्वज्ञ भगवान्‌ने दोनोंका भाव समझकर ऋषि-मुनियोंसहित दो रूप धारण कर लिये। श्रुतदेव और बहुलाश्व दोनोंके साथ वे उनके-उनके घर गये। प्रत्येकने यही समझा कि भगवान् मेरे ही घर पधारे हैं।

श्रुतदेव भगवान्‌की कृपाका अनुभव करके प्रेममें इतने तन्मय हो गये कि सब सुधि-बुधि भूल गये। अपना दुपट्टा फहराते-उड़ाते हुए भगवान्‌के मंगलमय नामोंका कीर्तन करके नाचने लगे। श्रुतदेव भक्तिके आवेशमें आत्मविस्मृत हो गये थे। भगवान् चुपचाप भक्तके इस भावको देखकर प्रसन्न हो रहे थे। श्रुतदेव जब पूजा करके, स्तुति करके कुछ सावधान हुए, तब भगवान्‌ने उन्हें संतोंका माहात्म्य समझाया और कहा कि सन्तोंकी पूजा मुझसे भी अधिक करनी चाहिये। तब उन्होंने उसी श्रद्धा, उसी सम्मानसे प्रत्येक ऋषिका पूजन किया, जिस प्रकार भगवान्‌का पूजन किया था। बहुलाश्व तथा श्रुतदेव उन आनन्दकन्द मुकुन्दका चिन्तन करते हुए अन्तमें उनके धामको प्राप्त हुए।

श्रीअंगजी

महाभागवत श्रीध्रुवजीके वंशमें राजर्षि अंगका प्रादुर्भाव हुआ था। पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे आपने पुत्रेष्टि-यज्ञ किया। ऋत्विजोंके सत्प्रयत्नसे यज्ञ पूर्ण हुआ। आहुति डालते ही अग्निकुण्डसे एक दिव्य पुरुष स्वर्णपात्रमें सिद्ध खीर लिये प्रकट हुए। राजाने उस चरुको अंजलिमें लेकर स्वयं सूँघकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी पत्नीको दे दिया। रानीने वह पुत्रप्रदायिनी खीर खाकर गर्भ धारण किया और यथासमय बेन नामक एक पुत्रको जन्म दिया। राजा अंगकी पत्नी सुनीथा मृत्युकी कन्या थी। उससे जो बालक पैदा हुआ, वह अपने नाना मृत्युके गुण-स्वभाव-लक्षणोंवाला हुआ। बेनकी ऐसी दुष्ट प्रकृति देखकर महाराज अंगने उसे बहुत प्रकारसे समझाकर सुमार्गपर लानेकी चेष्टा की, परंतु सफल नहीं हुए। इससे उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। राजा अंगका चित्त संसारसे विरक्त हो गया और उनका मन भगवान्‌में लग गया। वे चुपचाप रात्रिमें घरसे निकल गये और भगवद्ध्यानमें निमग्न हो गये।

श्रीमुचुकुन्दजी

सूर्यवंशमें इक्ष्वाकु कुल बड़ा ही प्रसिद्ध है, जिसमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीरामरूपमें अवतीर्ण हुए। इसी वंशमें महाराज मान्धाता-जैसे महान् प्रतापशाली राजा हुए। महाराज मुचुकुन्द उन्हीं मान्धाताके पुत्र थे। ये सम्पूर्ण पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् थे। बल-पराक्रममें ये इतने बढ़े-चढ़े थे कि पृथ्वीके राजाओंकी तो बात ही क्या, देवराज इन्द्र भी इनकी सहायताके लिये लालायित रहते थे।

एक बार असुरोंने देवताओंको पराभूत कर दिया, देवता बड़े दुःखी हुए। उनके पास कोई योग्य सेनापति नहीं था, अतः उन्होंने महाराज मुचुकुन्दसे सहायताकी प्रार्थना की। महाराजने देवराजकी प्रार्थना स्वीकार की और वे बहुत समयतक देवताओंकी रक्षाके लिये असुरोंसे लड़ते रहे। बहुत कालके पश्चात् देवताओंको शिवजीके पुत्र स्वामिकार्तिकेयजी योग्य सेनापति मिल गये। तब देवराज इन्द्रने महाराज मुचुकुन्दसे कहा—'राजन्! आपने हमारी बड़ी सेवा की, अपने स्त्री-पुत्रोंको छोड़कर आप हमारी रक्षामें लग गये। यहाँ स्वर्गमें जिसे एक वर्ष कहते हैं, पृथ्वीमें उतने ही समयको तीन सौ साठ वर्ष कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। आप हमारे हजारों वर्षोंसे यहाँ हैं। अतः अब आपकी राजधानीका कहीं पता भी नहीं है; आपके परिवारवाले सब कालके गालमें चले गये। हम आपपर बड़े प्रसन्न हैं। मोक्षको छोड़कर आप जो कुछ भी वरदान माँगना चाहें, माँग लें; क्योंकि मोक्ष देना हमारी शक्तिके बाहरकी बात है।'

महाराजको मानवीय बुद्धिने दबा लिया। स्वर्गमें वे सोये नहीं थे। लड़ते-लड़ते बहुत थक भी गये थे। अतः उन्होंने कहा—'देवराज! मैं यही वरदान माँगता हूँ कि मैं पेटभर सो लूँ, कोई भी मेरी निद्रामें विघ्न न डाले। जो मेरी निद्रा भंग करे, वह तुरंत भस्म हो जाय।'

देवराजने कहा—'ऐसा ही होगा, आप पृथ्वीपर जाकर शयन कीजिये। जो आपको जगायेगा, वह तुरंत भस्म हो जायगा।' ऐसा वरदान पाकर महाराज मुचुकुन्द भारतवर्षमें आकर एक गुफामें सो गये। सोते-सोते उन्हें कई युग बीत गये। द्वापर आ गया, भगवान्ने यदुवंशमें अवतार लिया। उसी समय कालयवनने मथुराको घेर लिया। उसे अपने-आप ही मरवानेकी नीयतसे और महाराज मुचुकुन्दपर कृपा करनेकी इच्छासे भगवान् श्रीकृष्ण कालयवनके सामनेसे छिपकर भागे। कालयवनको अपने बलका बड़ा घमण्ड था, वह भी भगवान्को ललकारता हुआ उनके पीछे पैदल ही भागा। भागते-भागते भगवान् उस गुफामें घुसकर छिप गये, जहाँ महाराज मुचुकुन्द सो रहे थे। उन्हें सोते देखकर भगवान्ने अपना पीताम्बर धीरेसे उन्हें ओढ़ा दिया और आप छिपकर तमाशा देखने लगे।

कालयवन बलके अभिमानमें भरा हुआ गुफामें आया और महाराज मुचुकुन्दको ही भगवान् समझकर जोरसे दुपट्टा खींचकर जगाने लगा। महाराज जल्दीसे उठे। सामने कालयवन खड़ा था, दृष्टि पड़ते ही वह जलकर भस्म हो गया। अब तो महाराज इधर-उधर देखने लगे। भगवान्के तेजसे सम्पूर्ण गुफा जगमगा रही थी। उन्होंने नवजलधरश्याम पीतकौशेयवासा वनमालीको सामने मन्द-मन्द मुसकराते हुए देखा। देखते ही समझ गये कि ये साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं, वे भगवान्के चरणोंपर लोट-पोट हो गये।

भगवान्ने उन्हें उठाया, छातीसे चिपटाया, भाँति-भाँतिके वरोंका प्रलोभन दिया, किंतु वे संसारी पदार्थोंकी निःसारता समझ चुके थे। अतः उन्होंने कोई भी सांसारिक वर नहीं माँगा। उन्होंने यही कहा—'प्रभो! मुझे देना हो तो अपनी भक्ति दीजिये, जिससे मैं सच्ची लगनके साथ भलीभाँति आपकी उपासना कर सकूँ; मैं श्रीचरणोंकी भलीभाँति भक्ति कर सकूँ, ऐसा वरदान दीजिये।' भगवान्ने कहा—'अब तुम अगले जन्ममें ब्राह्मण होओगे, सर्व जीवोंमें समान दृष्टिवाले होओगे, तब मेरी जी खोलकर अनन्य उपासना करना।' वरदान देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और महाराज मुचुकुन्द ब्राह्मण-जन्ममें उपासना करके अन्तमें प्रभुके साथ अनन्य भावसे मिल गये।

श्रीप्रियव्रतजी

स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रतजी जन्मसे ही भगवान्के परम भक्त थे। उन्हें भगवान्के गुण-गान और मंगलचरित-श्रवणको छोड़कर कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। देवर्षि नारदकी कृपासे उन परमभागवतने परमार्थतत्त्वको जान लिया था। गन्धमादनपर्वतपर रहकर वे निरन्तर भगवान्का चिन्तन करते और नारदजीसे भगवान्की परम पावन लीलाका श्रवण करते। जब मनुजी ब्रह्मसत्रकी दीक्षा लेने लगे, तब उन्होंने प्रियव्रतको राज्य करनेके लिये बुलाया; किंतु उनका चित्त भगवान् वासुदेवमें ही सब ओरसे लगा था, अतएव उन्होंने राज्य-संचालन अस्वीकार कर दिया।

प्रियव्रतने जब राज्य करना अस्वीकार कर दिया, तब स्वयं भगवान् ब्रह्मा उन्हें समझानेके लिये ब्रह्मलोकसे वहाँ पधारे। उन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम करके उनका पूजन किया।

ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर प्रियव्रत राजधानीमें आये। उन्होंने राज्य और गृहस्थाश्रम स्वीकार किया। प्रजापति विश्वकर्माकी पुत्री बर्हिष्मतीसे उन्होंने विवाह किया। उनके दस पुत्र और एक कन्या हुई। प्रियव्रत सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके स्वामी थे। उन्हें यह अच्छा न लगा कि आधी पृथ्वीपर एक समय दिन और आधीपर रात्रि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे। 'मैं रात्रिको भी दिन बना दूँगा।' यह सोचकर अपने ज्योतिर्मय दिव्य रथपर बैठकर वे सूर्य-रथकी गतिके समान ही वेगसे रात्रिवाले भागमें यात्रा करने लगे। इस प्रकार सात दिन-रात्रि वे घूमते रहे और उतने काल उन्होंने पूरे भूमण्डलपर दिनके समान प्रकाश बनाये रखा। ब्रह्माजीने इस कार्यसे उन्हें रोका। उनके रथके पहियोंसे ही सात समुद्र बन गये। उन समुद्रोंसे घिरे एक-एक द्वीपका अधिपति उन्होंने अपने एक-एक पुत्रको बनाया। आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्र—ये उनके सात पुत्र क्रमशः जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप तथा पुष्करद्वीपके स्वामी हुए। कवि, महावीर और सवन—ये तीन पुत्र आजन्म ब्रह्मचारी और आत्मवेत्ता थे, ये परमहंस हो गये।

इतना बड़ा अखण्ड साम्राज्य, पूरे भूमण्डलका ऐश्वर्य, पुत्र-पुत्री, स्त्री आदि समस्त सुख और स्वर्गादि लोकोंके लोकपाल भी मित्र ही थे; किंतु भगवान्के परम भक्त प्रियव्रतको इन सबका तनिक भी मोह नहीं था। पुत्रोंको राज्य देकर वे सम्पूर्ण ऐश्वर्यका त्याग करके फिर गन्धमादनपर नारदजीके पास चले गये। भगवान्का निरन्तर चिन्तन करना उन्होंने अपना एकमात्र व्रत बना लिया। परमपुरुष भगवान्के अनन्त सुधा-सिन्धुमें जिनका चित्त निमग्न हो गया है, वे धन्यभाग्य भगवद्भक्त ही ऐसा त्याग कर सकते हैं!

श्रीपृथुजी

महाराज पृथु भगवान् विष्णुके अंशावतार थे। वे आदिराज कहे जाते हैं। उनकेद्वारा ही पृथ्वीपर ग्राम, नगर, कृषि भूमि आदिका निर्धारण हुआ। उन्हींके नामपर इस धरित्रीको पृथ्वी कहा जाने लगा। इनका चरित्र छप्पय ५ पृ० ४७ पर दिया गया है।

महाराज परीक्षित्

सुभद्राकुमार अभिमन्युकी पत्नी महाराज विराटकी पुत्री उत्तरा गर्भवती थीं। उनके उदरमें कौरव एवं पाण्डवोंका एकमात्र वंशधर था। अश्वत्थामाने उस गर्भस्थ बालकका विनाश करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। भयविह्वल उत्तरा भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गयी। भगवान्ने उसे अभयदान दिया और बालककी रक्षाके लिये वे सूक्ष्मरूपसे उत्तराके गर्भमें स्वयं पहुँच गये। गर्भस्थ शिशुने देखा कि एक प्रचण्ड तेज चारों ओरसे समुद्रकी भाँति उमड़ता हुआ उसे भस्म करने आ रहा है। इसी समय बालकने अँगूठेके बराबर ज्योतिर्मय भगवान्को अपने पास देखा। भगवान् अपने कमलनेत्रोंसे बालकको स्नेहपूर्वक देख रहे थे। उनके सुन्दर श्याम-वर्णपर पीताम्बरकी अद्भुत शोभा थी। उनकी चार भुजाएँ थीं और उनमें शंख, चक्र, गदा, पद्म थे। अपनी गदाको उल्काके समान चारों ओर शीघ्रतासे घुमाकर भगवान् उस उमड़ते आते अस्त्र-तेजको बराबर नष्ट करते जा रहे थे। बालक दस महीनेतक भगवान्को देखता रहा। वह सोचता ही रहा—'ये कौन हैं?' जन्मका समय आनेपर भगवान् वहाँसे अदृश्य हो गये। बालक मृत-सा उत्पन्न हुआ; क्योंकि जन्मके समय उसपर ब्रह्मास्त्रका प्रभाव पड़ गया था। तुरंत श्रीकृष्णचन्द्र प्रसूतिकागृहमें आये और उन्होंने उस शिशुको जीवित कर दिया। यही बालक परीक्षित्के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

जब परीक्षित् बड़े हुए, पाण्डवोंने इन्हें राज्य सौंप दिया और स्वयं हिमालयपर चले गये। प्रतापी एवं धर्मात्मा परीक्षित्ने राज्यमें पूरी सुव्यवस्था स्थापित की।

एक दिन आखेट करते हुए परीक्षित् वनमें भटक गये। भूख और प्याससे व्याकुल वे एक ऋषिके आश्रममें पहुँचे। ऋषि उस समय ध्यानस्थ थे। राजाने उनसे जल माँगा, पुकारा; पर ऋषिको कुछ पता नहीं लगा। राजाको लगा कि जान-बूझकर ये मुनि मेरा अपमान करते हैं। पासमें ही एक मरा सर्प पड़ा था। उन्होंने उसे धनुषसे उठाकर ऋषिके गलेमें डाला—यह परीक्षा करनेके लिये कि ऋषि ध्यानस्थ हैं या नहीं, और फिर वे राजधानी लौट गये। बालकोंके साथ खेलते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन ऋषिके तेजस्वी पुत्रने जब यह समाचार पाया, तब शाप दे दिया—'इस दुष्ट राजाको आजके सातवें दिन तक्षक काट लेगा।'

उस समय परीक्षित् भीमसेनद्वारा विजित मगधराज जरासंधका स्वर्णमुकुट सिरपर धारण किये थे। उसमें कलिका वास हो गया था, इसीलिये उनसे यह अकरणीय कृत्य हो गया था। घर पहुँचकर मुकुट उतारनेपर परीक्षित्को स्मरण आया कि 'मुझसे आज बहुत बड़ा अपराध हो गया।' वे पश्चात्ताप कर ही रहे थे, इतनेमें शापकी बातका उन्हें पता लगा। इससे राजाको तनिक भी दुःख नहीं हुआ। अपने पुत्र जनमेजयको राज्य देकर वे गंगातटपर जा बैठे। सात दिनोंतक उन्होंने निर्जल व्रतका निश्चय किया। उनके पास उस समय बहुत-से ऋषि-मुनि आये। परीक्षित्ने कहा—'ऋषिगण! मुझे शाप मिला, यह तो मुझपर भगवान्की कृपा ही हुई। मैं विषयभोगोंमें आसक्त हो रहा था, दयामय भगवान्ने शापके बहाने मुझे उनसे अलग कर दिया। अब आप मुझे भगवान्का पावन चरित सुनाइये।' उसी समय वहाँ घूमते हुए श्रीशुकदेवजी पहुँच गये। परीक्षित्ने उनका पूजन किया। उनके पूछनेपर शुकदेवजीने सात दिनोंमें उन्हें पूरे श्रीमद्भागवतका उपदेश किया। अन्तमें परीक्षित्ने अपना चित्त भगवान्में लगा दिया। तक्षकने आकर उन्हें काटा और उसके विषसे उनकी देह भस्म हो गयी; पर वे तो पहले ही शरीरसे ऊपर उठ चुके थे। उनको इस सबका पतातक नहीं चला।

श्रीशेषजी

श्रीशेषजी भगवान् आदिपुरुष नारायणके पर्यंक-रूपमें क्षीरसागरमें रहते हैं। ये अपने सहस्र मुखोंके द्वारा निरन्तर भगवान्का गुणानुवाद करते रहते हैं। ये सारे विश्वके आधारभूत भगवान् नारायणके श्रीविग्रहको धारण करनेके कारण सब लोकोंमें पूज्य और धन्यतम कहे जाते हैं। त्रेतायुगमें श्रीलक्ष्मणजीके रूपमें और द्वापरमें श्रीबलरामजीके रूपमें ये ही अवतीर्ण होकर भगवान्की लीलामें सहायक बनते हैं। ये भगवान्के नित्य परिकर हैं।

श्रीसूतजी

रोमहर्षणजी सूतजी भगवान् वेदव्यासजीके परमप्रिय शिष्य थे। भगवान् व्यासने इन्हें समस्त पुराणोंको पढ़ाया और आशीर्वाद दिया कि तुम समस्त पुराणोंके वक्ता होओगे। इसीलिये ये समस्त पुराणोंके वक्ता माने जाते हैं। ये सदा ऋषियोंके आश्रमोंमें घूमते रहते थे और सबको पुराणोंकी कथा सुनाया करते थे। नैमिषारण्यमें अठासी हजार ऋषि वास करते थे, सूतजी उनके यहाँ सदा कथा कहा करते थे। पुराणोंके वक्ता होनेके कारण समस्त ऋषि इनका आदर करते थे और उच्चासनपर बिठाकर इनकी पूजा करते थे। इनकी कथा इतनी अद्भुत होती थी कि आसपासके ऋषिगण जब सुन लेते थे कि अमुक जगह सूतजी आये हैं तो सभी दौड़-दौड़कर इनके पास आ जाते और चित्र-विचित्र कथाएँ सुननेके लिये इन्हें घेरकर चारों ओर बैठ जाते।

महाशाल श्रीशौनकजी

ये नैमिषारण्यके अठासी हजार ऊर्ध्वरेता ब्रह्मवादी ऋषियोंमें प्रधान ऋषि थे। भृगुवंशमें उत्पन्न होनेसे भार्गव और शुनकके अपत्य होनेके कारण इनका नाम शौनक पड़ा। समस्त पुराणोंको और महाभारतको इन्होंने सूतजीके मुखसे सुना था। पुराणोंको श्रवण करनेवाला ऐसा कौन-सा मनुष्य होगा, जो इनके नामको न जानता हो। समस्त पुराणोंमें **'शौनक उवाच'** पहले ही आता है। हमें पुराणोंमें व्रतोंका माहात्म्य तथा तीर्थोंकी महिमा—जो कुछ भी सुनायी पड़ती है, सब शौनकजीकी ही कृपाका फल है। इनका समस्त समय भगवत्कथाश्रवणमें ही व्यतीत होता था। ऋषियोंमें जैसा विशुद्ध और संयमयुक्त चरित्र महर्षि शौनकका मिलता है, वैसा अन्य किसी ऋषिका शायद ही हो। पुराणोंको कैसे सुनना चाहिये, इसकी शिक्षा देते हैं। भगवच्चरित्र सुनकर कैसे अनुमोदन करना चाहिये, कथामें किस प्रकार एकाग्रता रखनी चाहिये और समयका कैसे सदुपयोग करना चाहिये—इन समस्त बातोंकी शिक्षा हमें शौनकजीके चरित्रसे मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रचेतागण

महाराज पृथुके वंशमें बर्हिषद नामके एक राजा हुए। वे प्रजाका नीतिपूर्वक पालन करनेवाले, यज्ञादिके अनुष्ठानरूप कर्मकाण्डमें तथा प्राणायाम आदि योगाभ्यासमें पारंगत और परम पुण्यात्मा थे। इन्होंने इतने यज्ञ किये कि यह सारा भूमण्डल प्राङ्मुख दर्भोंसे आच्छादित यज्ञमण्डप-सा बन गया। इसीसे ये प्राचीनबर्हि नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने देवाधिदेव ब्रह्माजीके कहनेसे समुद्रकी शतद्रुति नामक कन्याके साथ विवाह किया और उसके द्वारा उन्होंने प्रचेता नामके दस पुत्र उत्पन्न किये। ये सब-के-सब भगवान्‌की आराधनारूप धर्ममें परिनिष्ठित थे। ब्रह्माजीकी आज्ञासे वृक्षोंकी दी हुई मारिषा नामक कन्याके साथ इन्होंने विवाह किया। उस मारिषाके गर्भसे ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने जन्म धारण किया। उन्हें जब ब्रह्माजीने प्रजाओंकी सृष्टि और रक्षाके कार्यमें नियुक्त कर दिया तो ये प्रचेतागण अपनी भार्याको अपने पुत्रके अधीन करके घर छोड़कर तपस्याहेतु वनको चल दिये। वहाँ नारदजीने इन्हें आत्मतत्त्वका उपदेश दिया। प्रचेतागण देवर्षि नारदके मुखसे भगवान्‌के मंगलमय यशको सुनकर उन्हींके चरणोंका ध्यान करते हुए देवदुर्लभ गतिको प्राप्त हुए।

श्रीशतरूपाजी

श्रीशतरूपाजी मानव-सर्गकी आदिमाता हैं। ये स्वायम्भुव मनुकी धर्मपत्नी थीं। इनके तप और भक्तिके प्रभावसे भगवान् श्रीहरिका श्रीराम-रूपमें अवतार हुआ और इन्हें कौसल्या-रूपमें उन जगत्पिताकी भी माता बननेका सौभाग्य मिला।

त्रयसुता

प्रसूति, आकूति और देवहूति—ये मनु-शतरूपाकी तीन पुत्रियाँ थीं। ये सभी परम भगवद्भक्त और पतिपरायणा थीं। इनमें प्रसूतिका विवाह प्रजापति दक्षसे, आकूतिका विवाह रुचिप्रजापतिसे और देवहूतिका विवाह कर्दममुनिसे हुआ था। आकूतिका वर्णन छप्पय ५ में यज्ञावतारके प्रसंगमें पृ० ४८ पर दिया गया है। प्रसूतिका वर्णन दक्षजीके प्रसंगमें छप्पय १२ में पृ० ११८ पर दिया है और देवहूतिका चरित्र छप्पय १६ में कर्दमजीके प्रसंगमें पृ० १३१ पर वर्णित है।

श्रीसुनीतिजी

भक्तिमती श्रीसुनीतिजी महाराज उत्तानपादकी धर्मपत्नी और परमभागवत ध्रुवकी माता थीं। इनका चरित्र छप्पय ५ में चौबीस अवतार (ध्रुवको वर देनेवाले श्रीहरि)-के प्रसंगमें पृ० ४८ पर आया है।

श्रीसतीजी

भगवान् शंकर स्वभावसे ही विरक्त एवं आत्माराम हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें ही उन्होंने स्त्री-परिग्रहकी इच्छा त्याग दी। ब्रह्माजीको उनके इस अखण्ड वैराग्यसे अपने सृष्टिकार्यमें बाधा पड़ती दिखायी दी। वे शंकरजीके वीर्यसे एक पराक्रमी पुत्र प्राप्त करना चाहते थे, जो विध्वंसकारी असुरोंका दमन करनेवाला तथा देवताओंका संरक्षक हो। उन्होंने अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये भगवती विष्णुमायाकी आराधना करना ही उचित समझा।

ब्रह्माजीके नौ मानस पुत्रोंमें प्रजापति दक्ष बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रजापति वीरणकी कन्या वीरिणी इनकी धर्मपत्नी थी। ब्रह्माजीके आदेशसे दक्षने आराधना करके अखिल ब्रह्माण्डजननी भगवती आद्याप्रकृतिको पुत्रीरूपमें प्राप्त किया। कन्याका भोलापन देखकर ही माता-पिताने उसका नाम 'सती' रख दिया था। सतीका हृदय बचपनसे ही भगवान् शंकरकी ओर आकृष्ट था।

उधर ब्रह्मा आदि देवता भगवान् शंकरके पास गये और उनसे विवाह करनेका अनुरोध करने लगे। शिवने विवाहकी अनुमति दे दी और यथासमय सतीका विवाह शिवजीके साथ सम्पन्न हुआ।

विवाहके पश्चात् सती माता-पितासे विदा हो पतिके साथ कैलासधाम चली गयीं। सतीको वहाँ भगवच्चर्चामें बड़ा सुख मिलता था। उस दिव्य वातावरणमें रहते हुए उन्हें कितने ही युग बीत गये। एक बार त्रेतायुग आनेपर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीहरिने रघुवंशमें अवतार लिया था और वे नर-लीला करते हुए साधारण मनुष्यकी भाँति विरहसे व्याकुल होकर लक्ष्मणजीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ वनमें सीताकी खोज कर रहे थे। ठीक इसी अवसरपर भगवान् शंकर सतीदेवीको साथ लिये अगस्त्यके आश्रमसे राम-कथाका आनन्द लेकर कैलासको लौट रहे थे। उन्होंने अपने आराध्यदेव श्रीरघुनाथजीको देखा, उनके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ; परंतु ठीक अवसर न होनेसे परिचय नहीं किया। उनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा—*'जय सच्चिदानंद जग पावन।'* आनन्दातिरेकसे उनके शरीरमें बारम्बार रोमांच हो आता था। सतीने जब उनकी इस अवस्थाको लक्ष्य किया तो उनके मनमें बड़ा सन्देह हुआ। वे सोचने लगीं—'शंकरजी तो सारे जगत्के वन्दनीय हैं; इन्होंने एक राजकुमारको 'सच्चिदानन्द जग पावन' कहकर प्रणाम कैसे किया? देवताओंके हितके लिये जो मनुष्य-शरीर धारण करनेवाले विष्णु हैं, वे भी तो शिवजीकी ही भाँति सर्वज्ञ हैं, भला वे कभी अज्ञानीकी भाँति स्त्रीको खोजते फिरेंगे?

अन्तर्यामी शिवजी तो सब जानते ही थे, उन्होंने सतीको समझाया कि 'परम ब्रह्मरूप मेरे इष्टदेव भगवान् श्रीरामने ही अपने भक्तोंके हितके लिये अपनी इच्छासे 'रघुकुल-रत्न' होकर अवतार लिया है।' पर सतीके मनमें उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेवजी बोले—'यदि तुम्हारे मनमें अधिक सन्देह है, तो जाकर परीक्षा ले लो।'

सती पतिकी आज्ञा पाकर सीताका रूप धारणकर परीक्षा लेने चलीं।

'सतीने सीताका वेष बना लिया,' यह जानकर शिवजीके मनमें बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने सोचा, 'अब यदि मैं सतीसे पत्नीकी भाँति प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्गका लोप हो जाता है। सती परम पवित्र हैं, अतः इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता।' महादेवजी प्रकटरूपसे कुछ नहीं कह सके; किंतु उनके हृदयमें बड़ा संताप था। तब उन्होंने श्रीरामजीको मन-ही-मन प्रणाम किया। भगवान्की याद आते ही उनके हृदयमें यह संकल्प उदित हुआ—*'एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं।'* सतीने भी अनुमान किया, कि 'शिवजी सर्वज्ञ हैं, वे सब कुछ जान गये। उन्होंने समझ लिया कि स्वामीने मेरा परित्याग कर दिया है।'

सतीको चिन्तामग्न देख शंकरजी उन्हें सुख देनेके लिये अनेक प्रकारके इतिहासका वर्णन करते हुए कैलासधाम पहुँचे।

इसी बीचमें सतीके पिता दक्ष 'प्रजापति' के पदपर अभिषिक्त हुए। यह महान् अधिकार पाकर दक्षके हृदयमें बड़ा भारी अभिमान पैदा हो गया। उन्होंने ब्रह्मनिष्ठ महात्माओंको जिनमें शंकरजी भी थे, उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना आरम्भ किया। प्रजापतियोंके नायक बन जानेपर उनको वैर-साधनका अच्छा अवसर मिला। उन्होंने बड़े समारोहके साथ एक यज्ञका आयोजन किया।

पिताके यज्ञकी बात जानकर सतीने भी वहाँ जानेका विचार किया, भगवान् शंकरके बार-बार मना करनेपर भी सतीने जानेकी जिद की। तब महादेवजीने अपने प्रधान-प्रधान पार्षदोंको साथ देकर सतीको विदा कर दिया। सती सेवकोंके साथ पिताकी यज्ञशालामें पहुँचीं। उस यज्ञमें शिवजीके लिये कोई भाग न देखकर सतीको महान् कष्ट हुआ। तब वे ध्यान लगाकर बैठ गयीं और योगाग्निमें उन्होंने अपना शरीर भस्म कर डाला। वे पुनः गिरिराज हिमालयके यहाँ पार्वतीके रूपमें प्रकट हुईं और उन्होंने भगवान् शंकरको ही पतिरूपमें प्राप्त किया।

श्रीमदालसाजी

आदर्श विदुषी, सती एवं आदर्श माता मदालसा गन्धर्वराज विश्वावसुकी पुत्री थीं। उनका विवाह राजा शत्रुजित्के पुत्र ऋतध्वजके साथ हुआ था। दोनोंका दाम्पत्य-जीवन बड़ा सुखमय था। सती मदालसा अपनी सेवासे सास-ससुर तथा पतिको सदा सन्तुष्ट रखती थीं। राजकुमार ऋतध्वजको भगवान् सूर्यका दिया हुआ एक दिव्य अश्व 'कुवलय' प्राप्त हुआ था। उसकी आकाश-पाताल सर्वत्र अबाध गति थी। राजकुमार ऋतध्वजका दूसरा नाम कुवलयाश्व था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिताके स्वर्ग सिधारनेपर ऋतध्वज राजा हुए। रानी मदालसाके प्रथम पुत्रका नाम राजाने 'विक्रान्त' रखा। नाम सुनकर मदालसा हँसने लगीं। कालक्रमसे दो पुत्र और उत्पन्न हुए, जिनका नाम राजाने सुबाहु और शत्रुमर्दन रखा। इन दोनोंके नामपर भी मदालसाको हँसी आयी। वे इन तीनों पुत्रोंको लोरियाँ गानेके व्याजसे विशुद्ध आत्मज्ञानका उपदेश देती थीं।

बड़े होनेपर वे तीनों ममताशून्य और विरक्त हो गये। तत्पश्चात् रानी मदालसाके गर्भसे चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ। जब राजा उसका नामकरण करने चले तो उनकी दृष्टि मदालसापर पड़ी। वह मन्द-मन्द मुसकरा रही थी। राजाने कहा—'मैं नाम रखता हूँ तो हँसती हो। अब इस पुत्रका नाम तुम्हीं रखो।' मदालसाने कहा—'जैसी आपकी आज्ञा। आपके चौथे पुत्रका नाम मैं अलर्क रखती हूँ।' 'अलर्क!' यह अद्भुत नाम सुनकर राजा ठठाकर हँस पड़े और बोले—'इसका क्या अर्थ है?' मदालसाने उत्तर दिया, 'सुनिये! नामसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है। संसारका व्यवहार चलानेके लिये कोई-सा नाम कल्पना करके रख लिया जाता है।'

मदालसाने उस बालकको भी ब्रह्मज्ञानका उपदेश सुनाना आरम्भ किया। राजाने रोककर कहा—'देवि! इसे भी ज्ञानका उपदेश देकर मेरी वंश-परम्पराका उच्छेद करनेपर क्यों तुली हो? इसे प्रवृत्तिमार्गमें लगाओ और उसके अनुकूल ही उपदेश दो।' मदालसाने पतिकी आज्ञा मान ली और अलर्कको बचपनमें ही व्यवहार-शास्त्रका पण्डित बना दिया। बड़े होनेपर माता-पिताने अलर्कको राजगद्दीपर बिठाया और स्वयं वनमें तपस्या करनेके लिये चले गये। जाते समय मदालसाने अलर्कको एक अँगूठी दी और कहा—'जब तुमपर कोई संकट पड़े तो इस अँगूठीके छिद्रसे उपदेशपत्र निकालकर पढ़ना और इसके अनुसार कार्य करना।' अलर्कने गंगा-यमुनाके संगमपर अपनी अलर्कपुरी नामकी राजधानी बनायी, जो आजकल अरैलके नामसे प्रसिद्ध है। कुछ कालके बाद अलर्कको भोगोंमें आसक्त देख उनके बड़े भाई सुबाहुने काशिराजकी सहायतासे उनपर आक्रमण किया। अलर्कने संकट जानकर माताका उपदेश पढ़ा। उसमें लिखा था—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम्॥

'संग (आसक्ति)-का सब प्रकारसे त्याग करना चाहिये; किंतु यदि उसका त्याग न किया जा सके तो सत्पुरुषोंका संग करना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंका संग ही उसकी ओषधि है। कामनाको सर्वथा छोड़ देना चाहिये; परंतु यदि वह छोड़ी न जा सके तो मुमुक्षा (मोक्षकी इच्छा)-के प्रति कामना करनी चाहिये; क्योंकि मुमुक्षा ही उस कामनाको मिटानेकी दवा है।'

इस उपदेशको अनेक बार पढ़कर अलर्कने महात्मा दत्तात्रेयजीकी शरण ली और वहाँ ममतारहित विशुद्ध आत्मज्ञानका उपदेश पाकर वे सदाके लिये कृतार्थ हो गये। इस प्रकार महासती मदालसाने अपने पुत्रोंका उद्धार करके स्वयं भी पतिके साथ परमात्मचिन्तनमें मन लगाया और थोड़े ही समयमें मोक्षस्वरूप परमपद प्राप्त कर लिया।

यज्ञपत्नियाँ

'श्यामसुन्दर! हमें बहुत भूख लगी है। कोई भी उपाय करो।' एक ही शिलापर एक वृक्षके नीचे श्रीकृष्ण और बलराम दोनों विराज रहे थे। सखाओंने पृथक् जाकर परस्पर कुछ कानाफूसी की और अन्तमें एक साथ ही सब दोनों भाइयोंके समीप आये। आज दोपहरका कलेऊ आया नहीं था। गायें चराते, खेलते सब लोग बहुत दूर मथुराकी दिशामें चले आये थे। कलेऊ लेकर आनेवाली गोपियाँ सम्भवतः बहुत ढूँढ़कर भी इन लोगोंतक नहीं पहुँच सकी थीं।

'वह देखो, थोड़ी दूरपर धुआँ उठ रहा है। मुझे बाबाने बताया है कि मथुराके ब्राह्मण वनमें आकर यज्ञ कर रहे हैं। उनसे जाकर कहो कि बलराम और श्रीकृष्णके लिये अन्न दो। ब्राह्मण अतिथियोंका सत्कार करनेवाले होते हैं।' श्रीकृष्णने एक ओर अँगुलीसे संकेत किया। सब-के-सब उधर ही दौड़ गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'द्विजोत्तमगण! आपको प्रणाम! हमें बलराम तथा श्यामने भेजा है। वे दोनों बहुत भूखे हैं और हमलोगोंको भी भूख लगी है। अतिथि-सत्कारसे आपके यज्ञमें कोई दोष नहीं आयेगा।' अनन्तर गोपबालकोंने प्रार्थना की। ब्राह्मणोंने उधर देखातक नहीं। यह उपेक्षा देखकर वे निराश होकर लौट आये।

'पुरुष तो निर्दय होते ही हैं। स्त्रियाँ दयालु होती हैं। अबकी बार यज्ञमण्डपमें न जाकर स्त्रियोंके लिये जो आवास बना हो, वहाँ जाकर विप्रपत्नियोंसे कहो। वे अवश्य तुम्हें तुष्ट करेंगी।' नन्दनन्दनने सब सुनकर कहा।

'री साध्वियो! हम आप सबको प्रणिपात करते हैं। नन्दनन्दन अपने अग्रजके साथ गायें चराते हुए समीपतक आ गये हैं। उन्होंने ही हमें आपके समीप भेजा है। वे बहुत भूखे हैं और हमारी सबकी भी यही दशा है। कृपा करके आप कुछ भोज्य पदार्थ प्रदान करें।'

'हमारे सौभाग्य!' सम्पूर्ण नारी-आवासमें हलचल मच गयी। हाथके कामोंको एक ओर फेंककर स्वर्णथालोंमें बड़ी शीघ्रतासे पक्वान्नोंको सजानेमें सब आतुरतासे व्यस्त हो गयीं। बड़ी शीघ्रतासे थाल सजाकर उन्होंने कहा—'चलो, हमें उन नन्दकुमारतक पहुँचा दो।' बहुत दिनोंसे उस मनमोहनके अपूर्व सौन्दर्य एवं गुणोंका वर्णन सुनते आ रही थीं। बड़ी उत्कण्ठा थी उस भुवनमोहनको एक बार देखनेकी। गोपकुमारोंको आगे करके वे निकल पड़ीं।

ब्राह्मणोंने देखा कि उनकी स्त्रियाँ स्वर्णथाल सजाये गोपबालकोंके साथ जा रही हैं तो उन्होंने विरोध किया, पर वे कहाँ माननेवाली थीं।

'आपलोगोंका स्वागत। आपने बड़ा कष्ट किया। मुझे देखने आप आयीं, यह ठीक ही हुआ। पर अब आप सब लौटें। आपलोगोंके पति आपकी प्रतीक्षामें होंगे, आपके बिना उनका यज्ञकार्य रुका रहेगा।' बड़े मधुर स्वरोंमें श्यामसुन्दरने उनसे अनुरोध किया।

'आप इस प्रकार निष्ठुरकी भाँति न बोलें। आपने शरणागतका परित्याग न करनेकी जो प्रतिज्ञा की है, उसे सत्य करें। अपने समस्त बन्धुओंका अनादर करके हम आपके श्रीचरणोंके शरण आयी हैं। हमारा परित्याग आपके लिये उचित नहीं। भला, हमारे पति, पिता, पुत्र और भाई हमें अपने घरोंमें अब क्यों रहने देंगे। हम आश्रयहीना हैं। हे सर्वाश्रय! हमें आश्रय दें।' रोते हुए उन सबने प्रार्थना की।

'आप व्यर्थ शोक कर रही हैं। आपके पति आपलोगोंका अनादर नहीं करेंगे। मेरे शरणागतोंका तो देवता भी स्वागत करते हैं। आप घरोंको लौटें, मर्यादाका पालन करें।' श्यामसुन्दरने विवश किया। इच्छा न होनेपर भी किसी प्रकार उन्हें लौटना ही पड़ा।

द्विजपत्नियाँ श्रीकृष्णके पाससे लौटी थीं। वे पतितपावन हो चुकी थीं। उनको देखते ही ब्राह्मणोंके हृदयका मल दूर हो गया। उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि उन्होंने सर्वेशकी याचनाकी उपेक्षा कर दी। ऐसी भगवद्भक्ता स्त्रियोंके पति होनेके कारण उन्होंने अपने भाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

महाभाग्यवती व्रजगोपियाँ

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥*

नारदजीने अपने भक्तिसूत्रोंमें गोपियोंको परमप्रेमका आदर्श बताया है—**'यथा व्रजगोपिकानाम्॥'** इसी प्रकार सूरदासजी कहते हैं ***'गोपी प्रेमकी धुजा।'*** वे हरिकी परमानन्दिनी परमाह्लादिनी शक्तियाँ ही हैं। भगवान्‌से भिन्न उनका कोई स्वरूप ही नहीं। उद्धव-जैसे ज्ञानी भी उनके अलौकिक प्रेमको देखकर कह उठे **'आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्'**—मैं यदि वृन्दावनकी कोई लता या गुल्म बन जाता तो कृतकृत्य हो जाता। क्यों? इसलिये कि इन महाभाग्यवती गोपियोंके पावन पाद-पद्मोंकी पराग उड़-उड़कर मेरे ऊपर पड़ती। अहा! जिनकी चरणरेणुको ब्रह्मा आदि देवता तरसते हों, उनके सम्बन्धमें कुछ लिखना बड़ी ही धृष्टता है।

धन्य हैं ऐसी गोपियाँ जिनके लिये प्रभुने रास-लीला की और जिनके छछियाभर छाछके लिये वे प्रभु नाचे जो बिधि हरि संभुके नचावनि हारे हैं।

* हम उन गोकुलकी व्रजांगनाओंकी चरणरेणुको बार-बार श्रद्धासहित सिरपर चढ़ाते हैं, जिनकी भगवत्सम्बन्धिनी कथाएँ तीनों लोकोंको पावन करनेवाली हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभुप्राप्तिके मार्गका अनुसरण करनेवाले भक्त

प्राचिनवर्हि सत्यब्रत रहुगन सगर भगीरथ।
बालमीक मिथिलेस गए जे जे गोबिंद पथ॥
रुकमांगद हरिचंद भरत्त दधीचि उदारा।
सुरथ सुधन्वा सिबिर सुमति अति बलि की दारा॥
नील मोरध्वज ताम्रध्वज अलरक कीरति राचिहौं।
अंघ्री अंबुज पांसु को जनम जनम हौं जाचिहौं॥ ११॥

प्राचीनबर्हिजी, सत्यव्रतजी, रहूगणजी, सगरजी, भगीरथजी, महर्षि वाल्मीकिजी, श्वपच वाल्मीकिजी और मिथिलापुरीके राजा आदि जो-जो गोविन्द भगवान्‌को प्राप्त करनेवाले मार्गपर चले। रुक्मांगदजी, हरिश्चन्द्रजी, भरतजी, परम उदार दधीचिजी, सुरथजी, सुधन्वाजी, शिविजी, अति शुद्ध बुद्धिवाली बलिकी पत्नी विन्ध्यावलीजी, नीलध्वजजी, मोरध्वजजी, ताम्रध्वजजी और अलर्कजी—इन सभी भक्तोंकी कीर्तिमें मेरा अनुराग हो, मैं उस रंगमें रँग जाऊँ। इनके चरणकमलोंकी धूलिको मैं प्रत्येक जन्ममें माँगता हूँ॥ ११॥

श्रीनाभादासजीद्वारा परिगणित भगवत्प्राप्तिके मार्गपर चलनेवाले इन भक्तजनोंका पावन चरित संक्षेपमें इस प्रकारसे वर्णित है—

श्रीप्राचीनबर्हिजी

आदिराज महाराज पृथुके विमल वंशमें श्रीहविर्धानकी पत्नी हविर्धानीसे बर्हिषद्, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत नामके छः पुत्र पैदा हुए। इनमें महाभाग बर्हिषद् यज्ञादि कर्मकाण्ड और योगादिमें कुशल थे। अपने परम प्रभावके कारण उन्होंने प्रजापतिका पद प्राप्त किया। राजा बर्हिषद्ने इतने यज्ञ किये कि यह सारी भूमि पूर्वकी ओर अग्रभाग करके फैलाये हुए कुशोंसे पट गयी थी। इसीसे आगे चलकर ये प्राचीनबर्हिके नामसे विख्यात हुए। राजा प्राचीनबर्हिने ब्रह्माजीके कहनेसे समुद्रकी कन्या शतद्रुतिसे विवाह किया था। जिससे प्रचेता नामके दस पुत्र हुए थे। राजा प्राचीनबर्हिका चित्त कर्मकाण्डमें बहुत रम गया था। इनकी अगाध कर्मनिष्ठाको देखकर देवर्षि नारदजीने विचार किया कि यदि यह निष्ठा भगवान्‌में लग जाती तो राजाका कल्याण हो जाता। दूसरी बात यह भी थी कि विविध धर्मानुष्ठानोंसे इनका हृदय शुद्ध भी हो गया था, अतः ये अब उपदेशके परम अधिकारी भी हो गये हैं, यह विचारकर श्रीनारदजीने आकर उन्हें तत्त्वोपदेश दिया।

इस उपदेशसे कृतकृत्य हो राजर्षि प्राचीनबर्हि प्रजापालनका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर तपस्या करनेके लिये कपिलाश्रमको चले गये। वहाँ उन्होंने समस्त विषयोंकी आसक्ति छोड़ एकाग्र मनसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिके चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए सारूप्य पद प्राप्त किया।

श्रीसत्यव्रतजी

श्रीसत्यव्रतजी द्रविड देशके राजा थे। ये अत्यन्त उदार और भगवत्परायण तपस्वी थे। इन्हींके समयमें भगवान्‌का मत्स्यावतार हुआ था। श्रीसत्यव्रतजीकी कथा छप्पय ५ मत्स्यावतारके प्रसंगमें पृ० ४३ पर आयी है।

राजा रहूगण और जड़भरतजी

प्राचीनकालमें भरत नामके एक महान् प्रतापी एवं भगवद्भक्त राजा हो गये हैं, जिनके नामसे यह देश 'भारतवर्ष' कहलाता है। अन्त समयमें उनकी एक मृगशावकमें आसक्ति हो जानेके कारण उन्हें मृत्युके बाद मृगका शरीर मिला और मृगशरीर त्यागनेपर वे उत्तम ब्राह्मणकुलमें जड़भरतके रूपमें अवतीर्ण हुए। भगवान्‌के अनुग्रहसे जड़भरतको अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी हुई थी। अतः वे फिर कहीं मोहजालमें न फँस जायँ, इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावसे बचपनसे ही निःसंग होकर रहने लगे। उन्होंने अपना स्वरूप जान-बूझकर उन्मत्त, जड, अन्धे और बहिरेके समान बना लिया और इसी छद्मवेषमें वे आत्मानन्दमें निमग्न होकर निर्द्वन्द्व हो विचरने लगे।

एक दिनकी बात है, सिन्धुसौवीर देशोंका राजा रहूगण तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे कपिलमुनिके आश्रमको जा रहा था। इक्षुमती नदीके तीरपर पालकी उठानेवालोंमें एक कहारकी कमी पड़ गयी। दैवयोगसे महात्मा जड़भरतजी आ पहुँचे। कहारोंने देखा कि 'यह मनुष्य हट्टा-कट्टा, नौजवान और गठीले शरीरका है, अतः यह पालकी ढोनेमें बहुत उपयुक्त होगा।' इसलिये उन्होंने इनको जबरदस्ती पकड़कर अपनेमें शामिल कर लिया। पालकी उठाकर चलनेमें हिंसा न हो जाय, इस भयसे बाणभर आगेकी पृथ्वीको देखकर वहाँ कोई कीड़ा, चींटी आदि तो नहीं है—यह निश्चय करके आगे बढ़ते थे। इस कारण इनकी गति दूसरे पालकी उठानेवालोंके साथ एक-सरीखी नहीं हुई और पालकी टेढ़ी होने लगी। तब राजाको उन पालकी उठानेवालोंपर बड़ा क्रोध आया और वह उन्हें डाँटने लगा। इसपर उन्होंने कहा कि 'हमलोग तो ठीक चल रहे हैं, यह नया आदमी ठीक तरहसे नहीं चल रहा है।' यह सुनकर राजा रहूगण जड़भरतजीके स्वरूपको न पहचान उन्हें बुरा-भला कहने लगे। जड़भरतजी उनकी बातोंको बड़ी शान्तिपूर्वक सुनते रहे और अन्तमें उन्होंने उनकी बातोंका बड़ा सुन्दर और ज्ञानपूर्ण उत्तर दिया। राजा रहूगण भी उत्तम श्रद्धाके कारण तत्त्वको जाननेके अधिकारी थे। जब उन्होंने इस प्रकारका सुन्दर उत्तर उस पालकी ढोनेवाले मनुष्यसे सुना, तब उनके मनमें यह निश्चय हो गया कि हो-न-हो ये कोई छद्मवेषधारी महात्मा हैं। अतः वे तुरंत पालकीसे नीचे उतर पड़े और लगे उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा माँगने। तब जड़भरतजीने राजाको अध्यात्मतत्त्वका बड़ा सुन्दर उपदेश दिया, जिसे सुनकर राजा कृतकृत्य हो गये और अपनेको धन्य मानने लगे।

श्रीसगरजी

इक्ष्वाकुवंशी महाराज सगर चक्रवर्ती सम्राट् तथा महान् भगवद्भक्त थे। राजा सगरने और्व ऋषिके उपदेशानुसार अश्वमेध यज्ञके द्वारा भगवान्‌की आराधना की। उनके यज्ञमें जो घोड़ा छोड़ा गया, उसे इन्द्रने चुरा लिया। उस समय महारानी सुमतिके गर्भसे उत्पन्न साठ हजार सगर-पुत्रोंने अपने पिताके आज्ञानुसार घोड़ेके लिये सारी पृथ्वी छान डाली। खोदते-खोदते उन्हें पूर्व और उत्तरके कोनेमें कपिलमुनिके पास अपना घोड़ा दिखायी दिया। घोड़ेको देखकर वे साठ हजार राजकुमार शस्त्र उठाकर यह कहते हुए उनकी ओर दौड़ पड़े कि 'यही हमारे घोड़ेको चुरानेवाला चोर है। देखो तो सही, इसने इस समय कैसे आँखें मूँद रखी हैं। यह पापी है। इसको मार डालो, मार डालो!' उन उद्दण्ड राजकुमारोंने कपिलमुनि-जैसे महापुरुषका तिरस्कार किया था, जिसके कारण उन सबके शरीरमें ही आग जल उठी और वे सब-के-सब क्षणभरमें भस्मीभूत हो गये।

महाराज सगरकी दूसरी पत्नीसे असमंजस नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। असमंजस पूर्वजन्मके योगी थे, अतः उन्होंने वनमें जाकर योगमार्गका अनुसरण किया। असमंजसके पुत्रका नाम था अंशुमान्। वह अपने पितामह महाराज सगरका आज्ञाकारी था। उनकी आज्ञासे अंशुमान् घोड़ेको ढूँढ़नेके लिये निकला। वह भी उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कपिलमुनिके आश्रमपर पहुँचा। वहाँ उसे अपने चाचाओंके शरीरकी भस्म, यज्ञीय अश्व और भगवान् कपिलमुनिके दर्शन हुए। अंशुमान्‌ने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और एकाग्र मनसे उनकी स्तुति की। अंशुमान्‌की विनम्रता और साधुभावसे भगवान् कपिल बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'वत्स अंशुमन्! यह घोड़ा तुम्हारे पितामहका यज्ञपशु है। इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे भस्मीभूत हुए चाचाओंका उद्धार केवल गंगाजलसे होगा और कोई उपाय नहीं है।' अंशुमान्‌ने बड़ी नम्रतासे उन्हें प्रसन्न किया और उनकी परिक्रमा करके वे घोड़ेको ले आये। राजा सगरने उस यज्ञपशुद्वारा यज्ञकी शेष क्रिया पूरी की और अंशुमान्‌को राज्यभार सौंप स्वयं विषयोंसे निःस्पृह और बन्धनमुक्त हो गये। उन्होंने महर्षि और्वके बतलाये मार्गसे परमपदकी प्राप्ति की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगीरथजी

इक्ष्वाकुवंशीय सम्राट् दिलीपके पुत्र भगीरथ नामसे विख्यात हुए। उनके पूर्वपुरुषोंने कपिलकी क्रोधाग्निसे भस्मीभूत सगरपुत्रोंका उद्धार करनेके लिये गंगाजीको लानेकी बड़ी चेष्टा की और तपस्या करते-करते प्राण त्याग दिये, परन्तु कृतकार्य न हुए। अब महाराज भगीरथ राज्यसिंहासनपर आरूढ़ हुए। ये बड़े प्रतापशाली राजा थे। इनके मनमें एक चिन्ता थी कि अबतक भूतलपर गंगाजी नहीं आयीं और मेरे पूर्वजोंका उद्धार नहीं हुआ। एक दिन उन्होंने राज्यभार मन्त्रियोंको सौंप दिया और स्वयं तपस्या करनेके लिये निकल पड़े। गोकर्ण नामक स्थानपर जाकर इन्होंने घोर तपस्या की। इनके तीव्र तपके प्रभावसे गंगा पृथ्वीपर आयीं और इन्हींके नामसे वे भागीरथी कहलाती हैं।

महर्षि वाल्मीकि

जन्म पुनि जन्म को न मेरे कछु सोच अहो, सन्तपदपंकज रेनु सीस पर धारिये।
पराचीनबर्हि आदि कथा परसिद्ध जग, उभै बालमीकि बात चित्त तैं न टारिये॥
भये भील सङ्ग भील ऋषि सङ्ग ऋषि भये, भये राम दरसन लीला विसतारिये।
जिन्हें जग गाय किहूं सकै न अघाय चाय, भाय भरि हियोभरि नैन भरि ढारिये॥ ७४॥

प्रियादासजी नाभाजीके हार्दिक भावको व्यक्त करते हुए कहते हैं कि अहो! यदि मुझे बार-बार जन्म लेकर संसारमें आना पड़े तो इसकी मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं है; क्योंकि इससे बड़ा भारी लाभ होगा कि सन्तोंके चरणकमलोंकी रज सिरपर धारण करनेका शुभ अवसर मिलेगा। प्राचीनबर्हि आदि भक्तोंकी कथाएँ पुराण-इतिहासमें वर्णित हैं, परंतु महर्षि वाल्मीकि और श्वपचभक्त वाल्मीकि—इन दोनोंकी कथाको चित्तसे कभी दूर नहीं करना चाहिये। महर्षि वाल्मीकि पहले भीलोंका साथ पाकर भीलोंका-सा आचरण करनेवाले हो गये। फिर ऋषियोंका संग पाकर ऋषि हो गये। उन्हें श्रीरघुनाथजीके दर्शन हुए। उन्होंने अपनी वाल्मीकिरामायणमें श्रीरामजीके चरित्रका विस्तारपूर्वक ऐसा उत्तम वर्णन किया है, जिन्हें गाते और सुनते हुए संसार तृप्त नहीं होता है। श्रोताओं और वक्ताओंके हृदय उत्कट प्रेमानुरागमय भावोंसे भर जाते हैं, फिर आनन्दवश नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगती है॥ ७४॥

श्रीरामकथाका गुणगान करनेवाले महर्षि वाल्मीकिजीका पावन चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

भगवन्नामके जपसे मनुष्य क्या-से-क्या हो सकता है, इसके ज्वलन्त उदाहरण भगवान् वाल्मीकि हैं! इनका जन्म तो अंगिरागोत्रके ब्राह्मणकुलमें हुआ था, किन्तु भीलोंके संसर्गमें रहकर ये लूट-मार और हत्याएँ करने लगे। जो भी आता उसीको लूटते और कोई कुछ कहता तो उसे जानसे मार देते। इस प्रकार बहुत वर्षोंतक ये इस लोकनिन्दित क्रूर कर्मको करते रहे।

एक दिन देवर्षि नारदजीके उपदेशसे वाल्मीकिजीके ज्ञाननेत्र खुल गये। नारदजीने उन्हें धैर्य बँधाया और कहा—'अबतक जो हुआ सो हुआ, अब यदि तुम हृदयसे पश्चात्ताप करते हो तो मेरे पास राम-नामरूप एक ऐसा मन्त्र है, जिसके निरन्तर जपसे तुम सभी पापोंसे छूट जाओगे। इस नामके जपमें ऐसी शक्ति है कि वह किसी प्रकार भी जपा जाय पापोंका नाश कर देता है।' अत्यन्त दीनताके साथ वाल्मीकिजीने कहा—'भगवन्! पापोंके कारण यह नाम तो मेरे ओठोंसे निकलता नहीं, अत: मुझे कोई ऐसा नाम बताइये, जिसे मैं सरलतासे ले सकूँ।' तब नारदजीने बहुत समझ-सोचकर रामनामको उलटा करके 'मरा-मरा' का उपदेश दिया। निरन्तर 'मरा-मरा' कहनेसे अपने-आप 'राम-राम' हो जाता है।

देवर्षिका उपदेश पाकर वे निरन्तर एकाग्रचित्तसे 'मरा-मरा' जपने लगे। हजारों वर्षोंतक एक ही जगह बैठकर वे नामकी रटनमें निमग्न हो गये। उनके सम्पूर्ण शरीरपर दीमकका पहाड़-सा जम गया। दीमकोंके घरको वल्मीक कहते हैं; उसमें रहनेके कारण ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका नाम वाल्मीकि पड़ा। पहले इनका नाम रत्नाकर था। ये ही संसारमें लौकिक छन्दोंके आदिकवि हुए, इन्होंने ही (श्रीवाल्मीकीय) रामायण नामक आदिकाव्यकी रचना की। इस प्रकार निरन्तर रामनामके जपके प्रभावसे वाल्मीकिजी व्याधकी वृत्तिसे हटकर ब्रह्मर्षि हो गये।

श्वपच भक्त वाल्मीकिजी

श्वपच वाल्मीकि नामक एक भगवान्के बड़े भारी भक्त थे, वे अपनी भक्तिको गुप्त ही रखते थे। एक बारकी बात है, धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने बड़ा भारी यज्ञ किया। उसमें इतने ऋषि-महर्षि पधारे कि सम्पूर्ण यज्ञस्थल भर गया। भगवान्ने शंख स्थापित किया और कहा कि यज्ञके सांगोपांग पूर्ण हो जानेपर यह शंख बिना बजाये ही बजेगा। यदि नहीं बजे तो समझिये कि यज्ञमें अभी कुछ त्रुटि है, यज्ञ पूरा नहीं हुआ। वही बात हुई। पूर्णाहुति, तर्पण, ब्राह्मणभोजन, दान-दक्षिणादि सभी कर्म विधिसमेत सम्पन्न हो गये, परंतु वह शंख नहीं बजा। तब सबको बड़ी चिन्ता हुई कि इतने श्रमके बाद भी यज्ञ पूर्ण नहीं हुआ। सभी लोगोंने भगवान् श्रीकृष्णके पास आकर कहा कि प्रभो! आप कृपा करके बताइये कि यज्ञमें कौन-सी कमी रह गयी है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—शंख न बजनेका रहस्य सुनिये। यद्यपि ऋषियोंके समूहसे चारों दिशाएँ, सम्पूर्ण भूमि भर गयी है और सभीने भोजन किया है, परंतु किसी रसिक वैष्णव सन्तने भोजन नहीं किया है, यदि आपलोग यह कहें कि इन ऋषियोंमें क्या कोई भक्त नहीं है तो मैं 'नहीं' कैसे कहूँ, अवश्य इन ऋषियोंमें बहुत उत्तम-उत्तम भक्त हैं, फिर भी मेरे हृदयकी एक गुप्त बात यह है कि मैं सर्वश्रेष्ठ रसिक वैष्णव भक्त उसे मानता हूँ, जिसे अपनी जाति, विद्या, ज्ञान आदिका अहंकार बिलकुल न हो और जो अपनेको दासोंका दास मानता हो, यदि यज्ञ पूर्ण करनेकी इच्छा है तो ऐसे भक्तको लाकर जिमाइये।

भगवान्की यह बात सुनकर युधिष्ठिरने कहा—प्रभो! सत्य है, पर ऐसा भगवद्भक्त हमारे नगरके आस-पास कहीं भी दिखायी नहीं देता है। जिसमें अहंकारकी गन्ध न हो—ऐसा भक्त तो किसी दूसरे लोकमें भले ही मिले। भगवान्ने कहा—नहीं, तुम्हारे नगरमें ही रहता है। दिन-रात, प्रातः-सायं तुम्हारे यहाँ आता-जाता भी है, पर उसे कोई जानता नहीं है और वह स्वयं अपनेको प्रकट भी नहीं करता है। यह सुनकर सभी आश्चर्यसे चौंक उठे और बोले—प्रभो! कृपया शीघ्र ही बताइये, उनका क्या नाम है और कहाँ स्थान है? जहाँ जाकर हम उनका दर्शन करके अपनेको सौभाग्यशाली बनायें।

भगवान्ने कहा—श्वपच भक्त वाल्मीकिके घरको चले जाओ, वे सर्वविकाररहित सच्चे साधु हैं।

अर्जुन और भीमसेन भक्त वाल्मीकिजीको निमन्त्रण देनेके लिये उनके घर जानेको तैयार हुए। तब भगवान्ने उन्हें सतर्क करते हुए हृदयकी बात खोलकर कही—जाते तो हो पर सावधान रहना, भक्तोंकी भक्तिका भाव अत्यन्त दुर्लभ और गम्भीर है, उनको देखकर मनमें किसी प्रकारका विकार न लाना, अन्यथा तुम्हारी भक्तिमें दोष आ जायगा। दोनोंने वाल्मीकिके घर पहुँचकर उसके चारों ओर घूमकर उसकी प्रदक्षिणा की। आनन्दसे झूमते हुए पृथ्वीपर पड़कर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। भीतर जाकर देखा तो उनका उपासनागृह बड़ा सुन्दर था। वाल्मीकिजीने जब दोनों राज-राजाओंको आया देखा तो उन्होंने सब काम छोड़ दिये। लज्जा एवं संकोचवश काँपने लगे, उनका मन विह्वल हो गया। अर्जुन और भीमसेनने सविनय निवेदन किया—भक्तवर! कल आप हमारे घरपर पधारिये और वहाँ अपनी जूठन गिराकर हमारे पापग्रहोंको दूर कीजिये। हम सबको परम भाग्यशाली बनाइये।

दोनोंको निमन्त्रण देते तथा अपनी बड़ाई करते हुए सुनकर वाल्मीकिजी कहने लगे—अजी! हम तो सदासे आपकी जूठन उठाते हैं और आपके द्वारपर झाड़ू लगाते हैं। मेरा निमन्त्रण कैसा? पहले आपलोग भोजन कीजियेगा, फिर पीछेसे हमें अपनी जूठन दीजियेगा। अर्जुन-भीमसेनने कहा—आप यह क्या कह रहे हैं? पहले आप भोजन कीजियेगा, फिर पीछेसे हमें कराइयेगा। बिना आपको खिलाये हमलोग नहीं खायेंगे। दूसरी बात भूलकर भी मनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न सोचिये। वाल्मीकिजीने कहा—बहुत अच्छी बात, यदि आपके मनमें ऐसा है तो ऐसा ही होगा।

अर्जुन और भीमसेनने लौटकर राजा युधिष्ठिरसे वाल्मीकिकी सब बात कही, सुनकर युधिष्ठिरको श्वपच भक्तके प्रति बड़ा प्रेम हुआ। भगवान् श्रीकृष्णने द्रौपदीको अच्छी प्रकारसे सिखाया कि तुम सभी प्रकारके षट्‌रस व्यंजनोंको अच्छी प्रकारसे बनाओ। तुम्हारे हाथोंकी सफलता आज इसीमें है कि भक्तके लिये सुन्दर रसोई तैयार करो। रसोई तैयार हो चुकनेपर राजा युधिष्ठिर जाकर वाल्मीकिको लिवा लाये। उन्होंने कहा कि हमें बाहर ही बैठाकर भोजन करा दो। श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा—हे युधिष्ठिर! ये तो तुम्हारे भाई हैं, इन्हें सादर गोदमें उठाकर स्वयं ले आओ। इस प्रकार उन्हें पाकशालामें लाकर बैठाया गया और उनके सामने सभी प्रकारके व्यंजन परोसे गये। रसमय प्रसादका कौर लेते ही शंख बज उठा, परंतु थोड़ी देर बजकर फिर बन्द हो गया, तब भगवान्ने शंखको एक छड़ी लगायी।

भगवान्ने शंखसे पूछा—तुम कण-कणके भोजन करनेपर ठीकसे क्यों नहीं बज रहे हो? घबड़ाकर शंख बोला—आप द्रौपदीके पास जाकर उनसे पूछिये, आप मनसे यह मान लीजिये कि मेरा कुछ भी दोष नहीं है। जब द्रौपदीसे पूछा गया तो उन्होंने कहा कि शंखका कथन सत्य है। भक्तजी खट्टे-मीठे आदि सभी रसोंके सभी व्यंजनोंको एकमें मिलाकर खा रहे हैं, इससे मेरी रसोई करनेकी चतुरता धूलमें मिल गयी। अपनी पाकविद्याका निरादर देखकर मेरे मनमें यह भाव आया कि आखिर हैं तो ये श्वपच जातिके ही, ये भला व्यंजनोंका स्वाद लेना क्या जानें। तब भगवान्ने सब पदार्थोंको एकमें मिलाकर खानेका कारण पूछा। वाल्मीकिने कहा कि इनका भोग तो आप पहले ही लगा चुके हैं, अतः पदार्थबुद्धिसे अलग-अलग स्वाद कैसे लूँ? पदार्थ तो एकके बाद दूसरे रुचिकर और अरुचिकर लगेंगे। फिर इसमें प्रसादबुद्धि कहाँ रहेगी? मैं तो प्रसादका सेवन कर रहा हूँ, व्यंजनोंको नहीं खा रहा हूँ। यह सुनकर भक्त वाल्मीकिमें द्रौपदीका अपार सद्भाव हुआ। शंख जोरोंसे बजने लगा। लोग भक्तकी जय-जयकार करने लगे। इस प्रकार यज्ञ पूर्ण हुआ और भक्त वाल्मीकिजीकी महिमाका सबको पता चल गया।

श्रीप्रियादासजीने श्वपच भक्त वाल्मीकिके इस चरितका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

हुतो वालमीकि एक सुपच सनाम ताको श्याम लै प्रकट कियो भारत में गाइयै।
पांडवन मध्य मुख्य धर्म पुत्र राजा आप कीनो यज्ञ भारी ऋषि आए भूमि छाइयै॥
ताको अनुंभाव शुभ शङ्ख सो प्रभाव कहै जो पै नहीं बाजै तो अपूरनता आइयै।
सोई बात भई वह बाज्यो नाहिं शोच पर्‌यौ पूछैं प्रभुपास याकी न्यूनता बताइयै॥ ७५॥
बोले कृष्णदेव याको सुनो सब भेव ऐ पै नीके मानि लेव बात दुरी समुझाइये।
भागवत संत रसवन्त कोऊ जेंयो नाहिं ऋषिन समूह भूमि चहूं दिशि छाइये॥
जौपै कहौ 'भक्तनाहीं' नाहीं कैसे कहौं गहौं गांस एक और कुलजाति सो बहाइये।
दासनि को दास अभिमान की न बास कहूं पूरणकी आस तोपै ऐसो लै जिमाइये॥ ७६॥
ऐसो हरिदास पुर आस पास दीसै नाहिं बास बिन कोऊ लोक लोकन में पाइये।
तेरेई नगर मांझ निशि दिन भोर सांझ आवै जाय ऐपै काहू बात न जनाइये॥
सुनि सब चौंकि परे भाव अचरज भरे हरे मन नैन अजू वेगि ही बताइये।
कहा नांव? कहां ठाव? जहाँ हम जाय देखैं लेखैं करि भाग धायपाय लपटाइये॥ ७७॥
जिते मेरे दास कभूं चाहैं न प्रकाश भयो करौं जो प्रकाश मानैं महादुखदाइये।
मोको पर्‌यो सोच यज्ञपूरन की लोच हिये लिये वाको नाम कहूँ ग्राम तजि जाइये॥
ऐसौ तुम कहौ जामें रहोन्यारे प्यारे सदा हमही लिवाइ ल्याइ नीकेकै जिमाइये।
जावो वालमीक घर बड़ो अवलीक साधु कियो अपराध हम दियो जो बताइये॥ ७८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन औ भीमसेन चलेई निमन्त्रण को अन्तर उघारि कही भक्तिभाव दूर है।
पहुँचे भवन जाइ चहुँ दिशि फिरि आई परे भूमि झूमि घर देख्यो छबिपूर है॥
आये नृप राजनिको देखि तजे काजनिको लाजनि सो कांपि कांपि भयो मनचूर है।
पायनि को धारिये जू जूठन को डारिये जू पाप ग्रह टारिये जू कीजै भागभूर है॥ ७९॥
जूठनि लै डारौं सदा द्वार को बुहारों नहीं और को निहारौं अजू यही साँचो पन है।
कहो कहा? जेंवो कछु पाछे लै जिंवावो हमें जानी गई रीति भक्तिभाव तुम तन है॥
तब तौ लजानौ हिये कृष्ण पै रिसानो नृप चाहौ सोई ठानौ मेरे संग कोऊ जन है।
भोर ही पधारौ अब यही उर धारौ और भूलि न विचारौ कहीभली जो पै मन है॥ ८०॥
कही सब रीति सुनि धर्म पुत्र प्रीति भई करी लै रसोई कृष्ण द्रौपदी सिखाई है।
जेतिक प्रकार सब व्यञ्जन सुधारि करो आजु तेरे हाथनि की होति सफलाई है॥
ल्याये जा लिवाय कहैं बाहिर जिमाय देवो कही प्रभु आपु ल्यावो अङ्कभरि भाई है।
आनिकै बैठायो पाकशाल में रसाल ग्रास लेत बाज्यो शङ्ख हरि दण्डकी लगाई है॥ ८१॥
सीत सीत प्रति क्यों न बाज्यो कछु लाज्यो कहा भक्ति को प्रभाव तै न जानत यों जानिये।
बोल्यो अकुलाय जाय पूछिये जू द्रौपदी को मेरो दोष नाहिं यह आपु मन आनिये॥
मानि सांच बात जाति बुद्धि आई देखि याहि सबही मिलाई मेरी चातुरी विहानिये।
पूंछेते कही है बालमीक मैं मिलायों यातें आदि प्रभु पायो पाऊँ स्वाद उनमानिये॥ ८२॥

श्रीमिथिलेशजी

मिथिलापुरीके सभी राजा मैथिल, विदेह और जनककी संज्ञासे अभिहित किये जाते हैं। यहाँके सभी राजा धर्मप्राण, योगी और भगवद्भक्त थे। इन सबका चरित परम पावन है। इनमें कतिपय राजाओं यथा सीरध्वजजनक, निमि और बहुलाश्वका चरित भक्तमालमें दिया गया है। यथा—राजा सीरध्वजजनकका चरित्र छप्पय ७ पृ० ५५ पर, निमिका चरित्र छप्पय १२ पृ० ११७ पर और बहुलाश्वका छप्पय १० पृ० ८४ पर।

श्रीरुक्मांगदजी

परमभागवत महाराज रुक्मांगद अयोध्याके महाराज ऋतध्वजके पुत्र थे। ये इक्ष्वाकुवंशमें बड़े ही प्रतापी और धर्मात्मा राजा हुए हैं। इनकी सन्ध्यावली नामकी पत्नी थी, उसके गर्भसे राजकुमार धर्मांगदका जन्म हुआ। कुमार धर्मांगद पिताके समान ही धर्मात्मा और पितृभक्त थे। महाराज रुक्मांगदको एकादशीव्रतका इष्ट था। उन्होंने अपने समस्त राज्यमें घोषणा करा दी थी कि जो एकादशीव्रत नहीं करेगा, उसे राज्यकी ओरसे दण्ड दिया जायगा। अत: उनके राज्यमें छोटे-छोटे बच्चों, अति वृद्धों और गर्भिणी स्त्रियोंको छोड़कर सभी एकादशीव्रत करते थे।

राजा रुक्मांगदको एकादशीव्रत क्यों इतना प्रिय था? इस विषयमें भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज निम्न दो कवित्तोंमें इस प्रसंगका वर्णन करते हुए कहते हैं—

रुक्मांगद बाग शुभ गन्ध फूल पागि रह्यो करि अनुराग देवबधू लेन आवहीं।
रहि गई एक कांटा चुभ्यो पग बैंगन को सुनि नृप माली पास आये सुख पावहीं॥
कहौ 'को उपाइ स्वर्ग लोक को पठाइ दीजै' करै एकादशी जल धरै कर जावहीं।
व्रतको तो नाम यही ग्राम कोउ जानै नाहिं कीनो हो अजान काल्हि लावो गुनगावहीं॥ ८३॥
फेरी नृप डौंड़ी सुनि बनिक की लौंड़ी भूखी रही ही कनौड़ी निशि जागी उन मारिये।
राजा ढिग आनि करि दियो व्रत दान गई तिया यों उड़ानि निज लोक को पधारिये॥
महिमा अपार देखि भूपने विचारी याको कोऊ अन्न खाय ताको बांधि मारि डारिये।
याही के प्रभाव भाव भक्ति विसतार भयो नयो चोज सुनो सब पुरी लै उधारिये॥ ८४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त राजा रुक्मांगदका बाग अनेक प्रकारके सुन्दर फूलोंकी उत्तम सुगन्धसे भरा हुआ था, इससे प्रभावित होकर स्वर्गकी अप्सराएँ भी यहाँ आती थीं। दैवयोगसे एक दिन एक अप्सराके पैरमें बैंगनका काँटा चुभ गया, इससे उसका पुण्य क्षीण हो गया। वह उड़कर स्वर्गको न जा सकी, बागमें ही रह गयी। प्रातःकाल बागके मालियोंसे यह समाचार सुनकर रुक्मांगदजी बागमें आये। अप्सराको चिन्तित देखकर राजाने पूछा—तुम्हें सुखी करनेका क्या उपाय किया जाय? तब उसने कहा कि कल जिसने एकादशीका व्रत किया हो, वह हाथमें जल लेकर अपने व्रतके फलका संकल्प करके मुझे दे दे। तब मैं अपने लोकको जा सकती हूँ। राजाने कहा—व्रत करना तो दूर रहा, मेरे नगरमें तो कोई इसका नाम भी नहीं जानता है। तब अप्सराने कहा कि बिना जाने ही कोई भूखा रह गया हो उसे ही लाकर संकल्प करा दो, उसीके फलसे चली जाऊँगी और कृतज्ञ होकर सदा आपका गुन गाऊँगी।

राजाने अपने नगरमें ढिंढोरा पिटवाया कि कल जिसने अन्न-जल ग्रहण न किया हो वह दरबारमें आये, उसे इनाम मिलेगा। इसे सुनकर एक बनियेकी दासी आयी, जिस बिचारीको बिना अपराधके ही बनियेने मारा था। इससे वह ग्लानिवश दिन-रात भूखी-प्यासी और जागती ही रह गयी थी। राजाने उसीसे व्रतका संकल्प करा दिया। अप्सरा उड़कर अपने लोकको चली गयी। एकादशीव्रतकी ऐसी अपार महिमाको देखकर राजाने विचार करके यह घोषणा की कि मेरे राज्यमें सभीको व्रत करना अनिवार्य है। यदि कोई अन्न खायेगा तो उसे बाँधकर मार डाला जायगा। इसके प्रभावसे राजा रुक्मांगदके राज्यमें भाव-भक्तिका बहुत विस्तार हुआ।

राजा रुक्मांगदकी व्रतनिष्ठाकी परीक्षा

एकादशीव्रतके प्रतापसे राजा रुक्मांगदके राज्यमें कोई भी यमपुरीको नहीं जाता था। यमराजको बड़ी चिन्ता हुई, वे प्रजापति भगवान् ब्रह्माके पास गये और यमपुरीके उजाड़ होनेका संवाद सुनाया। ब्रह्माजीने कुछ सोचकर उत्तर दिया कि अच्छा हम इसका प्रबन्ध करेंगे।

ब्रह्माजीने अपनी इच्छासे एक मोहिनी नामकी मायाकी स्त्री बनायी। उसने प्रतिज्ञा की कि मैं महाराजसे एकादशीका व्रत छुड़वा दूँगी। ऐसी प्रतिज्ञा करके वह हिमालयके रमणीक प्रदेशमें चली गयी। इधर महाराज राज्य करते-करते थक गये थे, वे अपने पुत्र धर्मांगदको राज्य देकर और अपनी रानीको साथ लेकर हिमालयकी ओर तप करने चले गये। महाराज जहाँ तपस्या करते थे, वहाँ मोहिनी गयी और उसने अपने हाव-भाव, कटाक्षोंद्वारा महाराजको अपने वशमें कर लिया तथा अपनेको ब्रह्माजीकी पुत्री बताकर अपनी कुलीनताका भी परिचय दिया। महाराजने उससे विवाह करनेका प्रस्ताव किया। उसने कहा आप अपने नगरमें चलकर मुझसे विवाह कर लें; किंतु शर्त यह है कि मैं जो कुछ कहूँगी, वही आपको मानना पड़ेगा। महाराजने मोहवश यह शर्त स्वीकार कर ली। वे मोहिनीको साथ लेकर अपनी राजधानीमें लौट आये। उनके धर्मात्मा पुत्रने विधिवत् उनका स्वागत किया।

महाराजको मोहिनीने वशमें कर लिया था। अतः उन्होंने उसकी सब बातें मानकर उससे विवाह कर लिया। इतना सब होनेपर भी महाराज एकादशीव्रतको सदा नियमपूर्वक करते थे।

एक दिन एकादशी आयी, महाराज व्रत रहे और विधिवत् रात्रिजागरण करनेको भी उद्यत हुए। मोहिनीने कहा—'महाराज! मेरी एक बात आपको माननी होगी।'

महाराजने कहा—'बताओ कौन-सी बात है?'

मोहिनीने कहा—'मेरी प्रार्थना यही है कि आप एकादशीका व्रत न करें, इसीमें मेरी प्रसन्नता है।'

महाराज यह सुनते ही अवाक् रह गये, उन्होंने बड़े कष्टसे कहा—मोहिनी! मैं तुम्हारी सभी बातें मान सकता हूँ, सब कुछ कर सकता हूँ; किंतु एकादशीव्रत छोड़नेके लिये मुझसे मत कह। एकादशीव्रतको छोड़ना मेरे लिये नितान्त असम्भव है। तुम इसके बदले और जो कुछ भी चाहो, माँग लो।

तब मोहिनीने कहा—'अच्छा अपने इकलौते पुत्रका सिर दीजिये।' महाराज बड़े दुःखी हुए। धर्मांगदको जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बात मालूम हुई तो उन्होंने अपने पिताको बहुत समझाया कि 'इससे बढ़कर सौभाग्य मेरे लिये क्या होगा? आप धर्मसंकटसे बच जायँगे और माताकी इच्छापूर्ति होगी।' सन्ध्यावली रानीने भी पुत्रकी बातोंका अनुमोदन किया।

पुत्रके कहनेपर महाराज ज्यों ही अपने इकलौते पुत्रका सिर काटनेवाले थे, त्यों ही भगवान् प्रकट हो गये और राजाका हाथ पकड़ लिया। भगवान् बोले—राजन्! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम सपरिवार मेरे वैकुण्ठधामको चलो। यह कहकर भगवान्ने राजा, रानी और राजकुमारको विमानपर बैठा लिया और अपने लोकको ले गये।

जिन्होंने सत्यकी रक्षाके लिये प्राणसे भी प्यारे अपने इकलौते पुत्रका सिर देनातक मंजूर कर लिया, किंतु एकादशीका व्रत नहीं छोड़ा, उनसे बढ़कर परमभागवत और कौन हो सकता है?

श्रीरुक्मांगदजीकी पुत्री

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने श्रीरुक्मांगदजीकी पुत्रीकी एकादशी-निष्ठाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

एकादशी ब्रत की सचाई लै दिखाई राजा सुता कि निकाई सुनौ नीके चित लाइकै।
पिता घर आयो पति भूख ने सतायो अति माँगे तिया पास नहिं दियो यह भाइकै॥
आजु हरिवासर सो तासर न पूजै कोऊ डर कहा मीच को यों मानी सुख पाइकै।
तजे उन प्रान पाये बेगि भगवान् वधू हिये सरसान भई कह्यों पन गाइकै॥ ८५॥

कवित्तमें बताया गया है कि राजा रुक्मांगदजीकी पुत्रीको भी अपने पिताकी भाँति एकादशी व्रतमें अगाध निष्ठा थी। एक बार जब वह अपने पिताके ही घर थी, तब एक दिन उसका पति आया। व्रतका दिन था, इसलिये किसीने भोजन-पानादिकी बात भी नहीं पूछी। उसे भूखने बहुत सताया, व्याकुल होकर उसने अपनी स्त्रीसे भोजन माँगा। एकादशीव्रत होनेके कारण उसने भी कुछ खानेको नहीं दिया। तब उसके पतिने कहा—मुझसे भूख-प्यास सही नहीं जा रही है, मैं थोड़ी देरमें मर जाऊँगा। राजपुत्रीने कहा—आज तो एकादशी है, इसके समान प्राण त्यागनेका उत्तम दिन कोई नहीं है। इसलिये मृत्युका क्या भय? यदि प्राण छूट भी जाय तो दुर्लभ वैकुण्ठकी प्राप्ति होगी। उधर भोजन न मिलनेसे उसके पतिने प्राण त्याग दिये और शीघ्र ही वैकुण्ठधामको पहुँचकर वे भगवान्को प्राप्त हो गये। यह देखकर उसकी स्त्रीका हृदय भक्तिसे भर गया। उसने भी शरीर त्यागकर पतिका अनुगमन किया॥ ८५॥

राजा हरिश्चन्द्र आदि परोपकारी भक्त

सुनो हरिश्चन्द कथा व्यथा बिन द्रव्य दियो तथा नहीं राखी बेचि सुततिया तन है।
सुरथ सुधन्वा जू सों दोष के करत मरे शङ्ख औ लिखित विप्र भयौ मैलो मन है॥
इन्द्रऔ अगिनि गये शिविपै परीक्षा लैन काटि दियो मांस रीझि सांचो जान्योपन है।
भरत दधीच आदि भागवत बीच गाए सबनि सुहाये जिन दियो तन धन है॥ ८६॥

श्रीप्रियादासजी कहते हैं—अब सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्रकी कथा सुनिये—उन्होंने मनमें बिना किसी कष्टका अनुभव किये प्रसन्नतापूर्वक विश्वामित्रमुनिको अपना राज्यवैभव दान कर दिया। कुछ भी शेष नहीं रखा। पहले संकल्पको पूरा किया, सत्यका पालन करनेमें अपने समान किसीको नहीं रखा। राज्य छोड़कर काशीपुरीको चले गये। वहाँ उन्होंने अपने शरीरके साथ ही स्त्री-पुत्रको बेच दिया। सत्यकी रक्षा करके भगवान्को प्रसन्न किया। [सूर्यवंशमें त्रिशंकु नामके एक प्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट् हो गये हैं, जिन्हें भगवान् विश्वामित्रने अपने योगबलसे सशरीर स्वर्ग भेजनेका प्रयत्न किया था। महाराज हरिश्चन्द्र उन्हीं त्रिशंकुके पुत्र थे। ये बड़े ही धर्मात्मा, सत्यपरायण तथा प्रसिद्ध दानी थे। इनके सत्यकी परीक्षाकी गाथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है। इनकी पत्नी शैब्या थीं तथा पुत्रका नाम रोहित था।] **सुरथ** और **सुधन्वा** दोनों बड़े भारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त थे। शंख और लिखित दोनों ब्राह्मणोंके मन मलिन थे, उन्होंने दोनों भक्तोंको मिथ्या दोष लगाया और वे अपने पापसे मर गये। शरणागतरक्षक राजा **शिबि**के पास परीक्षा लेनेके लिये इन्द्र और अग्निदेव बाज और कबूतर बनकर गये। शरणागत कबूतरकी रक्षा करते हुए प्रसन्न होकर उन्होंने बाजको अपने शरीरका मांस काटकर दे दिया, तब दोनोंको विश्वास हुआ कि राजा अपने प्रणका पालक और सच्चा धर्मात्मा है। छप्पयमें आये शेष **भरत** और **दधीचि** आदि भक्तोंकी कथाएँ श्रीमद्भागवतमें कही गयी हैं। जिन्होंने परोपकारमें अपना तन-मन और धन अर्पण किया, वे भक्त संसारमें सभीको प्रिय हुए॥ ८६॥

राजर्षि भरत

राजर्षि भरतजी भगवान् ऋषभदेवजीके पुत्र थे। इन्हींके नामसे इस देशका नाम भारतवर्ष पड़ा। इनका विस्तृत विवरण 'राजा रहूगण और जड़भरतजी' शीर्षकमें छप्पय ११ पृ० ९२ पर दिया गया है।

श्रीदधीचिजी

एक बारकी बात है, अपने पुत्र विश्वरूप त्रिशिराके इन्द्रद्वारा वधसे क्रुद्ध होकर त्वष्टा ऋषिने अपने तपके प्रभावसे इन्द्रको मारनेकी इच्छासे एक बड़े भारी बलशाली दैत्य वृत्रासुरको उत्पन्न किया। वृत्रासुरके पराक्रमसे सम्पूर्ण त्रैलोक्य भयभीत हो गया। उसके ऐसे पराक्रमको देखकर देवराज भी डर गये, वे दौड़े-दौड़े ब्रह्माजीके पास गये। सब हाल सुनाकर उन्होंने ब्रह्माजीसे वृत्रासुरके कोपसे बचनेका कोई उपाय पूछा। ब्रह्माजीने कहा—'देवराज! तुम किसी प्रकार वृत्रासुरसे बच नहीं सकते। वह बड़ा बली, तपस्वी और भगवद्भक्त है। उसे मारनेका एक ही उपाय है कि नैमिषारण्य (मिश्रित तीर्थ)-में एक महर्षि दधीचि तपस्या कर रहे हैं। उग्र तपके प्रभावसे उनकी हड्डियाँ वज्रसे भी अधिक मजबूत हो गयी हैं। यदि परोपकारकी इच्छासे वे अपनी हड्डियाँ दे दें और उनसे तुम अपना वज्र बनाओ तो वृत्रासुर मर सकता है।'

ब्रह्माजीकी सलाह मानकर देवराज समस्त देवताओंके साथ नैमिषारण्यमें पहुँचे। इन्द्रने हाथ जोड़कर कहा—'त्रैलोक्यकी मंगलकामनाके निमित्त आप अपनी हड्डियाँ हमें दे दीजिये।' परोपकारके लिये ही जीवन धारण करनेवाले महर्षि दधीचिने स्वीकृति दे दी। फिर उनकी तपःपूत हड्डियोंसे एक महान् शक्तिशाली तेजोमय दिव्य वज्र बनाया गया और उसी वज्रकी सहायतासे देवराज इन्द्रने वृत्रासुरको मारकर त्रिलोकीके संकटको दूर किया। इस प्रकार महर्षि दधीचिने अद्वितीय त्यागका उदाहरण प्रस्तुत किया।

भक्त सुधन्वा

चम्पकपुरीके राजा हंसध्वज बड़े ही धर्मात्मा, प्रजापालक, शूरवीर और भगवद्भक्त थे। उनके राज्यकी यह विशेषता थी कि राजकुल तथा प्रजाके सभी पुरुष 'एकपत्नीव्रत' का पालन करते थे। पाण्डवोंका अश्वमेध यज्ञका घोड़ा जब चम्पकपुरीके पास पहुँचा, तब महाराज हंसध्वजने सोचा—'मैं वृद्ध हो गया, पर अबतक मेरे नेत्र श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनसे सफल नहीं हुए। अब इस घोड़ेको रोकनेके बहाने मैं युद्धभूमिमें जाकर भगवान् पुरुषोत्तमके दर्शन करूँगा।'

घोड़ेकी रक्षाके लिये गाण्डीवधारी अर्जुन प्रद्युम्नादि महारथियोंके साथ उसके पीछे चल रहे थे, यह सबको पता था; किंतु राजाको पार्थसारथि श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करने थे। अश्व पकड़कर बाँध लिया गया। राजगुरु शंख तथा लिखितकी आज्ञासे यह घोषणा कर दी गयी कि 'अमुक समयतक सब योद्धा रणक्षेत्रमें उपस्थित हो जायँ। जो ठीक समयपर नहीं पहुँचेगा, उसे उबलते हुए तेलके कड़ाहेमें डाल दिया जायगा।'

राजा हंसध्वजके पाँच पुत्र थे—सुबल, सुरथ, सम, सुदर्शन तथा सुधन्वा। छोटे राजकुमार सुधन्वा अपनी माताके पास आज्ञा लेने पहुँचे। वीरमाताने पुत्रको हृदयसे लगाया और आदेश दिया—'बेटा! यदि तू अर्जुनको युद्धमें छका सके तो वे मयूरमुकुटी कृष्ण पार्थकी रक्षाके लिये अवश्य आयेंगे। देख, तू मेरे दूधको लज्जित मत करना। श्रीकृष्णको देखकर डरना मत। श्रीकृष्णके सामने युद्धमें मरनेवाला मरता नहीं, वह तो अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्कीस पीढ़ियाँ तार देता है। युद्धमें लड़ते हुए पुरुषोत्तमके सम्मुख तू यदि वीरगति प्राप्त करेगा तो मुझे सच्ची प्रसन्नता होगी।'

सुधन्वाने माताकी आज्ञा स्वीकार की। द्वारपर उनकी सती पत्नी प्रभावती पहलेसे पूजाका थाल सजाये पतिकी आरती उतारनेको खड़ी थी। उसने पतिकी पूजा करके प्रार्थना की—'नाथ! आप अर्जुनसे संग्राम करने जा रहे हैं। मैं चाहती हूँ कि आपके चले जानेपर एक अंजलि देनेवाला पुत्र रहे।' अनेक प्रकारसे सुधन्वाने पत्नीको समझाना चाहा; किंतु अन्तमें प्रभावतीकी विजय हुई। सती नारीकी धर्मसम्मत प्रार्थना वे अस्वीकार नहीं कर सके। वहाँसे फिर स्नान-प्राणायाम करके वे युद्धके लिये रथपर बैठे।

उधर युद्ध-भूमिमें महाराज हंसध्वज अपने चारों राजकुमारोंके साथ पहुँच गये। सभी शूर एकत्र हो गये; किंतु समय हो जानेपर भी जब सुधन्वा नहीं पहुँचे, तब राजाने उन्हें पकड़ लानेके लिये कुछ सैनिक भेजे। सैनिकोंको सुधन्वा मार्गमें ही मिल गये। पिताके पास पहुँचकर जब उन्होंने विलम्बका कारण बताया, तब क्रोधमें भरकर महाराज कहने लगे—'तू बड़ा मूर्ख है। यदि पुत्र होनेसे ही सद्गति होती हो तो सभी कूकर-शूकर स्वर्ग ही जायँ। तेरे धर्म तथा विचारको धिक्कार है। श्रीकृष्णचन्द्रका नाम सुनकर भी तेरा मन कामके वश हो गया! ऐसा कामी, भगवान्से विमुख कुपुत्रका तो तेलमें उबलकर ही मरना ठीक है।'

राजाने व्यवस्थाके लिये पुरोहितोंके पास दूत भेजा। उन्होंने दूतसे कहा—'जब सबके लिये एक ही आज्ञा थी, तब व्यवस्था पूछनेकी क्यों आवश्यकता हुई!'

दूतसे समाचार पाकर राजाने मन्त्रीको आदेश दिया—'सुधन्वाको उबलते तेलके कड़ाहेमें डाल दो।' सुधन्वाने तुलसीकी माला गलेमें डाली और हाथ जोड़कर भगवान्से प्रार्थना की—'प्रभो! गोविन्द, मुकुन्द! मुझे मरनेका कोई भय नहीं है। मैं तो आपके चरणोंमें देहत्याग करने ही आया था; परंतु मैं आपका प्रत्यक्ष दर्शन न कर सका, यही मुझे दुःख है।' इस प्रकार प्रार्थना करके 'हरे! गोविन्द! श्रीकृष्ण!' आदि भगवन्नामोंको पुकारते हुए सुधन्वा कड़ाहेके खौलते तेलमें कूद पड़े।

सुधन्वाको तो शरीरका भान ही नहीं था। वे तो अपने श्रीकृष्णको पुकारने, उनका नाम लेनेमें तल्लीन हो गये थे; किंतु देखनेवाले आश्चर्यमूढ़ हो रहे थे। खौलते तेलमें सुधन्वा जैसे तैर रहे हों। उनका एक रोमतक झुलस नहीं रहा था। यह बात सुनकर राजा हंसध्वज भी दोनों पुरोहितोंके साथ वहाँ आये। श्रद्धारहित तार्किक पुरोहित शंखको सन्देह हुआ—'अवश्य इसमें कोई चालाकी है। भला, तेल गरम होता तो उसमें सुधन्वा बचा कैसे रहता!' तेलकी परीक्षाके लिये उन्होंने एक नारियल कड़ाहेमें डाला। उबलते तेलमें पड़ते ही नारियल फूट गया। उसके दो टुकड़े हो गये और उछलकर वे बड़े जोरसे शंख तथा लिखितके सिरमें लगे। अब उनको भगवान्के भक्तके महत्त्वका ज्ञान हुआ और अपने अपराधका पता लगा। उन्होंने कहा—'मुझे धिक्कार है! मैंने भगवान्के एक सच्चे भक्तपर सन्देह किया। प्रायश्चित्त करके प्राण त्यागनेका निश्चयकर शंखमुनि उसी उबलते तेलके कड़ाहेमें कूद पड़े; किंतु सुधन्वाके प्रभावसे उनके लिये भी तेल शीतल हो गया। मुनिने सुधन्वाको हृदयसे लगा लिया। उन्होंने कहा—'कुमार! तुम्हें धन्य है। मैं तो ब्राह्मण होकर शास्त्र पढ़कर भी असाधु हूँ। मूर्ख हूँ मैं। बुद्धिमान् और विद्वान् तो वही है, जो भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करता है। तुम्हारे स्पर्शसे मेरा यह अधम देह भी आज पवित्र हो गया। राजकुमार! अब तुम इस तेलसे निकलो। अपने पिता, भाइयों और सेनाको पावन करके मेरा भी उद्धार करो! त्रिलोकीके स्वामी श्रीकृष्ण जिनके सारथि बनते हैं, उन धनुर्धर अर्जुनको संग्राममें तुम्हीं सन्तुष्ट कर सकते हो।'

मुनिके साथ सुधन्वा कड़ाहेसे बाहर आये और पिताकी आज्ञासे सेनानायक बने। अर्जुनकी सेनासे उनका संग्राम होने लगा। अर्जुन सामने आये। उन्होंने बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। परंतु हँसते हुए सुधन्वाने उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अर्जुनके दिव्यास्त्रोंको भी राजकुमारने व्यर्थ कर दिया। अन्तमें स्वयं भगवान् अर्जुनके बाणपर प्रतिष्ठित हो गये। अर्जुनने वह बाण भगवान्के आदेशसे धनुषपर चढ़ाया। सुधन्वाने कहा—'नाथ! आप मेरा वध करने स्वयं बाणमें स्थित होकर आ रहे हैं, यह मैं जान गया हूँ। मेरे स्वामी! आओ। रणभूमिमें मुझे अपने श्रीचरणोंका आश्रय देकर कृतार्थ करो।'

अर्जुनका बाण छूटा। सुधन्वाने पुकार की—'भक्तवत्सल गोविन्दकी जय!' उस बाणने सुधन्वाका मस्तक काट दिया। वह सिर भगवान्के चरणोंपर जाकर गिरा। 'गोविन्द, मुकुन्द, हरि' कहते उस मस्तकको श्रीकृष्णचन्द्रने अपने हाथोंमें उठा लिया। इसी समय परम भक्त सुधन्वाके मुखसे एक ज्योति निकली और सबके देखते-देखते वह श्रीकृष्णचन्द्रके मुखमें प्रविष्ट हो गयी।

भक्त सुरथ

सुरथ चम्पकपुरीके राजा हंसध्वजका पुत्र और सुधन्वाका भाई था। अनुज सुधन्वाके मारे जानेपर वह समरांगणमें आकर अर्जुनसे बोला—पार्थ! अब मेरे साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हो जाओ। तत्पश्चात् सुरथने श्रीकृष्णसे कहा—देवकीनन्दन! अब आप अर्जुनकी सम्यक् प्रकारसे रक्षा कीजिये। फिर सुरथने अर्जुनको ललकारा। सुरथके रणोत्साहको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको इस महान् भक्त तथा महावीरके सम्मुख जाना उचित नहीं समझा, अतः सेनाको आगे करके श्रीकृष्ण अर्जुनको रणक्षेत्रसे तीन योजन दूर हटा ले गये। परंतु धन्य सुरथ! अर्जुनकी विशालवाहिनीको क्षणमात्रमें तितर-बितरकर तत्काल उस स्थानपर पहुँचे गये, जहाँ श्रीहरि विराजमान थे। अर्जुन और सुरथके बीच घोर युद्ध होने लगा। अर्जुनने एक सर्वदेवमय बाणसे सुरथके बड़े-बड़े नेत्रोंवाले तथा कुण्डलोंसे सुशोभित विशाल सिरको काट गिराया। भक्तके वचनको सत्य करनेके लिये भगवान्ने ऐसी लीला की कि सुरथका कटा हुआ सिर उछलकर अर्जुनके ललाटमें जा लगा। जिसके आघातसे वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और वह सिर भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें गिर पड़ा। तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान्ने अर्जुनको पृथ्वीसे उठाकर रथपर बैठाया और सुरथके सिरको दोनों हाथोंसे उठाकर देखने लगे। अर्जुनने भी उस सिरको लेकर, यह कहते हुए कि 'इसके समान कोई योद्धा नहीं है' युद्ध-स्थलमें उसकी वन्दना की। इसके बाद श्रीकृष्णने गरुड़जीसे कहा—पक्षिराज! वीरवर सुरथके सिरको लेकर शीघ्र ही प्रयागमें डाल दो। इस सिरके स्पर्शसे मेरा वह प्रयाग भी पावन हो जायगा। प्रयाग मेरा कोश है, अतः इस वीरके रत्नरूपी सिरको उस कोशमें डाल दो। श्रीगरुड़जीने ऐसा ही किया। भगवान् शिवने सुरथके सिरको अपनी मुण्डमालामें पिरो लिया। धन्य है सुरथ और धन्य है उसकी वीरता एवं श्रीकृष्णभक्ति!

महाराज शिबि

उशीनरके पुत्र शरणागतवत्सल महाराज शिबि यज्ञ कर रहे थे। शिबिकी दयालुता तथा भगवद्भक्तिकी ख्याति पृथ्वीसे स्वर्गतक फैली थी। देवराज इन्द्रने राजाकी परीक्षा करनेका निश्चय किया। इन्द्रने बाज पक्षीका रूप धारण किया और अग्निदेव कबूतर बने। बाजके भयसे डरता, काँपता, घबराया कबूतर उड़ता आया और राजा शिबिकी गोदमें बैठकर उनके वस्त्रोंमें छिप गया। उसी समय वहाँ एक बड़ा भारी बाज भी आया। वह मनुष्यकी भाषामें राजासे कहने लगा—'राजन्! आप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं, फिर मुझसे मेरा आहार छीनकर अधर्म क्यों कर रहे हैं?'

कबूतरने राजासे बड़ी कातरतासे कहा—'महाराज! मैं इस बाजके भयसे प्राणरक्षाके लिये आपकी शरणमें आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें।'

राजाने बाजसे कहा—'पक्षी! जो मनुष्य समर्थ रहते भी शरणागतकी रक्षा नहीं करते या लोभ, द्वेष अथवा भयसे उसे त्याग देते हैं, उनको ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है, अतः मैं शरण आये हुए भयभीत कबूतरको तुम्हें नहीं दे सकता। तुम्हारा काम और किसी प्रकार हो सके तो बतलाओ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजने कहा—'राजन्! मैं मांसभक्षी प्राणी हूँ। मांस ही मेरा आहार है। कबूतरके बदले आप और किसी प्राणीको मारें या मरने दें, इससे कबूतरको मरने देनेमें मुझे तो कोई अन्तर नहीं जान पड़ता। हाँ, आप चाहें तो अपने शरीरसे इस कबूतरके बराबर मांस तौलकर मुझे दे सकते हैं। मुझे अधिक नहीं चाहिये।'

राजाको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने कहा—'बाज! तुमने मुझपर बड़ी कृपा की। यदि यह शरीर प्राणियोंके उपकारमें न आये तो प्रतिदिनका इसका पालन-पोषण व्यर्थ ही है। इस नाशवान् अनित्य शरीरसे नित्य, अविनाशी धर्म किया जाय, यही तो शरीरकी सफलता है।'

एक तराजू मँगाया गया। एक पलड़ेमें कबूतरको रखकर दूसरेमें राजा शिबि अपने हाथों अपने शरीरका मांस काट-काटकर रखने लगे। कबूतरके प्राण बचे और बाजको भी भूखका कष्ट न हो, इसलिये वे राजा बिना पीड़ा या खेद प्रकट किये अपना मांस काटकर पलड़ेपर रखते जाते थे; किंतु कबूतरका वजन बढ़ता ही जाता था। अन्तमें राजा स्वयं तराजूपर चढ़ गये। उनके ऐसा करते ही आकाशमें बाजे बजने लगे। ऊपरसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। उनके सामने अग्निदेव और इन्द्र अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो गये। देवराज इन्द्रने कहा—'राजन्! जो मनुष्य अपने प्राणोंको त्यागकर भी दूसरोंकी प्राणरक्षा करता है, वह परम धामको जाता है। तुम दिव्यरूप प्राप्त करो और चिरकालतक पृथ्वीका सुख भोगो। अन्तमें तुम्हें परमपद प्राप्त होगा।' यों कहकर इन्द्र और अग्नि स्वर्ग चले गये।

राजा शिबि भगवान्में मन लगाकर चिरकालतक पृथ्वीका शासन करते रहे और अन्तमें भगवद्धाम पधारे।

बलिपत्नी श्रीविन्ध्यावलीजी

श्रीप्रियादासजीने महाराज बलिकी पत्नी विन्ध्यावलीजीकी महिमा अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णित की है—

विन्ध्यावली तियासी न देखी कहूँ तिया नैन बाँध्यो प्रभु पिया देखि कियो मन चौगुनौ।
करि अभिमान दान देन बैठ्यो तुमहीं को कियो अपमान मैं तो मान्यों सुख सौगुनौ॥
त्रिभुवन छीनि लिये दिये बैरी देवतान प्रानमात्र रहे हरि आन्यो नहिं औगुनौ।
ऐसी भक्ति होइ जो पै जागौ रहौ सोइ अहो रहो भव मांझ ऐ पै लागै नहीं भौगुनौ॥ ८७॥

राजा बलिकी धर्मपत्नी विन्ध्यावलीजीके समान कोई भी स्त्री देखने-सुननेमें नहीं आयी। जिसने वामनभगवान्द्वारा अपने पतिको बाँधा गया देखकर मनको थोड़ा भी मलिन नहीं किया, बल्कि मनमें अति प्रसन्न हुई। उस समय भगवान्की प्रार्थना करते हुए विन्ध्यावलीजीने कहा—प्रभो! राजा आपका सेवक होकर 'मैं बड़ा दानी हूँ', इस अभिमानके वश अपनेको दानी और अनन्तकोटिब्रह्माण्डके स्वामी आपको तुच्छ भिक्षुक मानकर दान करने बैठ गया। इससे आपका बड़ा भारी अपमान हुआ। आपने जो कृपारूप दण्ड देकर इसके अभिमानको चूर किया, इससे मैंने सौगुना सुख पाया। अहो, देखिये, रानी विन्ध्यावलीकी कैसी अपूर्व निष्ठा है कि वामनभगवान्ने राजासे छलपूर्वक तीनों लोकोंको छीनकर राजा बलिके शत्रु देवताओंको दे दिया, पतिको अति अपमानित करके बँधवा दिया, नरक भेजनेकी धमकी दी। बलिके केवल प्राणमात्र शेष रहे, फिर भी विन्ध्यावलीजीने भगवान्में कोई दोष नहीं देखा, राजाकी ही भूल मानी। यदि भगवान्की दयासे किसीमें ऐसी भक्ति हो तो वह चाहे जागता [सावधान होकर सत्कर्म करता] रहे अथवा सोता (लोगोंकी दृष्टिमें निष्क्रिय) रहे—दोनों अवस्थाएँ समान हैं। वह संसारमें संसारीकी भाँति व्यवहार करता रहे, उसपर मायाके गुण नहीं लगेंगे। वह जीवन्मुक्त है॥ ८७॥

श्रीनीलध्वजजी

ये माहिष्मती नगरीके राजा थे। इनके प्रवीर नामका एक महापराक्रमी पुत्र था। महाराज युधिष्ठिरके यज्ञीय अश्वको प्रवीरने पकड़ लिया और अर्जुनके पास यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्देश भिजवा दिया कि मैंने यज्ञीय अश्वको पकड़कर माहिष्मती नगरीमें भेज दिया है, अब अर्जुन कोप करके इसे छुड़ा लें। प्रवीरकी इस चुनौतीको स्वीकार करते हुए घोर संग्राम हुआ। प्रवीर पाण्डव वीरोंके समक्ष नहीं टिक सका, तब इसके पिता महाराज नीलध्वज तीन अक्षौहिणी सेना लेकर युद्धभूमिमें आ डटे। इनका मुकाबला वीरवर अर्जुनसे हुआ। अग्निदेवने प्रकट होकर राजा नीलध्वजको समझाया कि भला जिन्होंने इन्द्रके खाण्डववनको सहज ही जलाकर भस्म कर दिया, जो श्रीकृष्णके अन्तरंग सखा हैं, उन्हें कौन हरा सकता है? अतः आप उनका यह यज्ञीय अश्व वापस करके उनसे मित्रता कर लें, जिससे आपका कल्याण हो। राजा नीलध्वजने ऐसा ही किया और अर्जुनसे बोले—महाबाहु पार्थ! मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? तब अर्जुनने कहा—भूपालशिरोमणे! आप श्रेष्ठ वीर हैं। इसलिये मेरे साथ रहकर मेरे इस यज्ञीय अश्वकी रक्षा कीजिये। राजा नीलध्वज 'तथास्तु' कहकर राज्य अपने पुत्र प्रवीरको सौंपकर अर्जुनके साथ हो लिये और अश्व-रक्षामें अपने अद्भुत पराक्रमका परिचय दिया। अर्जुनके द्वारा राजा नीलध्वजजीकी बड़ाई सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने बड़े प्रेमसे इनका गाढ़ आलिंगन किया।

भक्त मयूरध्वज एवं ताम्रध्वज

द्वापरके अन्तमें रत्नपुरके अधिपति महाराज मयूरध्वज एक बहुत बड़े धर्मात्मा तथा भगवद्भक्त सन्त हो गये हैं। इनकी धर्मशीलता, प्रजावत्सलता एवं भगवान्‌के प्रति स्वाभाविक अनुराग अतुलनीय ही था। इन्होंने भगवत्प्रीत्यर्थ अनेकों बड़े-बड़े यज्ञ किये थे।

एक बार इनका अश्वमेधका घोड़ा छूटा हुआ था और उसके साथ इनके वीर पुत्र ताम्रध्वज तथा प्रधान-मन्त्री सेनाके साथ रक्षा करते हुए घूम रहे थे। उधर उन्हीं दिनों धर्मराज युधिष्ठिरका भी अश्वमेध यज्ञ चल रहा था और उनके घोड़ेके रक्षकरूपमें अर्जुन और उनके सारथि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण साथ थे। मणिपुरमें दोनोंकी मुठभेड़ हो गयी।

उन दिनों भगवान्‌के सारथ्य और अनेकों वीरोंपर विजय प्राप्त करनेके कारण अर्जुनके मनमें कुछ अपनी भक्ति तथा वीरताका गर्व-सा हो आया था। सम्भव है इसीलिये अपने एक छिपे हुए भक्तकी महिमा प्रकट करनेके लिये भगवान्‌ने एक अद्भुत लीला रची। परिणामतः युद्धमें श्रीकृष्णके ही बलपर मयूरध्वजके पुत्र ताम्रध्वज़ने विजय प्राप्त की और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन दोनोंको मूर्च्छित करके वह दोनों घोड़ोंको अपने पिताके पास ले गया।

उधर जब अर्जुनकी मूर्च्छा टूटी, तब उन्होंने श्रीकृष्णसे घोड़ेके लिये बड़ी व्यग्रता प्रकट की। भगवान् अपने भक्तकी महिमा दिखानेके लिये स्वयं ब्राह्मण बने और अर्जुनको अपना शिष्य बनाया तथा दोनों मयूरध्वजकी यज्ञशालामें उपस्थित हुए। इनके तेज और प्रभावको देखकर मयूरध्वज अपने आसनसे उठकर नमस्कार करनेवाले ही थे कि इन्होंने पहले ही 'स्वस्ति' कहकर आशीर्वाद दिया। मयूरध्वजने इनके इस कर्मको अनुचित बतलाते हुए इन्हें नमस्कार किया और स्वागत-सत्कार करके अपने योग्य सेवा पूछी। ब्राह्मणवेशधारी भगवान्‌ने अपनी इच्छित वस्तु लेनेकी प्रतिज्ञा कराकर बतलाया—'मैं अपने पुत्रके साथ इधर आ रहा था कि मार्गमें एक सिंह मिला और उसने मेरे पुत्रको खाना चाहा। मैंने पुत्रके बदले अपनेको देना चाहा, पर उसने स्वीकार नहीं किया। बहुत अनुनय-विनय करनेपर उसने यह स्वीकार किया है कि राजा मयूरध्वज पूर्ण प्रसन्नताके साथ अपनी स्त्री और पुत्रके द्वारा अपने आधे शरीरको आरेसे चिरवाकर मुझे दे दें, तो मैं तुम्हारे पुत्रको छोड़ सकता हूँ।' राजाने बड़ी प्रसन्नतासे यह बात स्वीकार कर ली। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि इस वेशमें स्वयं भगवान् ही मेरे सामने उपस्थित हैं। यह बात सुनते ही सम्पूर्ण सदस्योंमें हलचल मच गयी। साध्वी रानीने अपनेको उनका आधा शरीर बताकर देना चाहा, पर भगवान्‌ने दाहिने अंशकी आवश्यकता बतलायी। पुत्रने भी अपनेको पिताकी प्रतिमूर्ति बताकर सिंहका ग्रास बननेकी इच्छा प्रकट की; पर भगवान्‌ने उसके द्वारा चीरे जानेकी बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहकर उसकी प्रार्थना भी अस्वीकार कर दी।

अन्तमें दो खम्भे गाड़कर उनके बीचमें हँसते हुए और उच्चस्वरसे भगवान्‌के 'गोविन्द', 'मुकुन्द', 'माधव' आदि मधुर नामोंका सस्वर उच्चारण करते हुए मयूरध्वज बैठ गये और उनके स्त्री-पुत्र आरा लेकर उनके सिरको चीरने लगे। जब उनका शरीर चीरा जाने लगा, तब उनकी बायीं आँखसे आँसूकी कुछ बूँदें निकल पड़ीं, जिन्हें देखते ही ब्राह्मणदेवता बिगड़ गये और यह कहकर चल पड़े कि 'दुःखसे दी हुई वस्तु मैं नहीं लेता।' मयूरध्वजने उन ब्राह्मणदेवताको समझाया कि 'भगवन्! बायीं आँखसे आँसू निकलनेका यह भाव है कि ब्राह्मणके काम आकर दाहिना अंग तो सफल हो रहा है, परंतु बायाँ अंग किसीके काम न आया। बायीं आँखके खेदका यही कारण है।'

अपने परम प्रिय भक्त मयूरध्वजका यह विशुद्ध भाव देखकर भगवान्‌ने अपने-आपको प्रकट कर दिया। शंख-चक्र-गदाधारी, चतुर्भुज, पीताम्बर पहने हुए, मयूरमुकुटी प्रभुने अभयदान देते हुए उनके शरीरका स्पर्श किया और स्पर्श पाते ही मयूरध्वजका शरीर पहलेकी अपेक्षा अधिक सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट एवं बलिष्ठ हो गया। वे भगवान्‌के चरणोंपर गिरकर स्तुति करने लगे। भगवान्‌ने उन्हें सान्त्वना दी और वर माँगनेको कहा। उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें अविचल प्रेम माँगा और आगे चलकर 'वे भक्तोंकी ऐसी परीक्षा न लें' इसका अनुरोध किया। भगवान्‌ने बड़े प्रेमसे उनकी अभिलाषा पूर्ण की और स्वयं अपने सिरपर कठोरताका लांछन लेकर भी अपने भक्तकी महिमा बढ़ायी। अर्जुन उनके साथ-ही-साथ सब लीला देख रहे थे। उन्होंने मयूरध्वजके चरणोंपर गिरकर अपने गर्वकी बात कही और भक्त-वत्सल भगवान्‌की इस लीलाका रहस्य अपने घमण्डको चूर करना बतलाया। अन्तमें तीन दिनोंतक उनका आतिथ्य स्वीकार करनेके पश्चात् घोड़ा लेकर वे दोनों चले गये और मयूरध्वज निरन्तर भगवान्‌के प्रेममें छके रहने लगे।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज उपर्युक्त घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

अर्जुन के गर्व भयो कृष्ण प्रभु जानि लियो दियो रस भारी याहि रोग यों मिटाइयै।
मेरो एक भक्त आहि तो को लै दिखाऊँ ताहि भये विप्र वृद्ध संग बाल चलि जाइयै॥
पहुँचत भाष्यो जाइ मोरध्वज राजा कहां वेगि सुधि देवो काहू बात जा जनाइयै।
सेवा प्रभु करौं नेकु रहौ पाउँ धरौं जाइ कहौ तुम बैठो कही आग सी लगाइयै॥ ८८॥
चले अनखाय पाँय गहि अटकाय जाय नृप को सुनाय ततकाल दौरे आये हैं।
बड़ी कृपा करी आज फरी चाह बेलि मेरी निपट नबेल फल पाँय याते पाये हैं॥
दीजै आज्ञा मोहिं सोई कीजै सुख लीजै यही, पीजै वाणी रस मेरे नैन लै सिराये हैं।
सुनि क्रोध गयो मोद भयो सो परीक्षाहिये लिये चित चाव ऐसे बचन सुनाये हैं॥ ८९॥
देबे की प्रतिज्ञा करो करी जू प्रतिज्ञा हम जाहि भाँति सुख तुम्हैं सोई मोको भाई है।
मिल्यो मग सिंह यहि बालक को खाये जात कही खावो मोहिं नहीं यही सुखदाई है॥
काहू भाँति छोड़ो नृप आधो जो शरीर आवै तौ ही याहि तजौं कहि बात मों जनाई है।
बोलि उठी तिया अरधङ्गी मोहि जाइ देवो पुत्र कहै मोको लेवो और सुधि आई है॥ ९०॥
सुनो एक बात सुत तिया लै करौंत गात चीरैं धीरैं भीरैं नाहिं पीछे उन भाखिये।
कीन्ह्यो वाही भाँति अहो नासा लगि आयो जब ढर्‌यो दृग नीर भीर बाकर न चाखिये॥
चले अनखाय गहि पांय सो सुनाये बैन नैन जल बांयो अङ्ग काम किहिं नाखिये।
सुनि भरि आयो हियो निज तनु श्याम कियो दियो सुखरूप व्यथा गई अभिलाषिये॥ ९१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोपै तौ दियौ न जाइ निकट रिझाइ लियो तऊ रीझि दिये बिना मेरे हिये साल है।
मांगौ बर कोटि चोट बदलो न चूकत है सूकत है मुख सुधि आये वही हाल है॥
बोल्यौ भक्तराज तुम बड़े महाराज कोऊ थोरोऊ करत काज मानो कृत जाल है।
एक मोको दीजै दान दीयो जू बखानो बेगि साधुपै परीक्षा जनि करो कलिकाल है॥ ९२॥

श्रीअलर्कजी

महाराज अलर्क महाराज ऋतध्वज और महारानी मदालसाके चार पुत्रोंमें सबसे छोटे थे। इनके अन्य ज्येष्ठ भाइयोंके नाम विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन थे। इनकी माता महारानी मदालसा अत्यन्त विदुषी और ब्रह्मज्ञानी थीं। उन्होंने अलर्कके ज्येष्ठ भाइयोंको बचपनसे ही ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा दी, जिससे वे लोग ब्रह्मज्ञानी होकर जीवन्मुक्त हो गये। राजाके कहनेपर उन्होंने अलर्कको ब्रह्मज्ञान न देकर क्षत्रियोचित कर्तव्यका ज्ञान कराया। उन्होंने बचपनमें ही अलर्कको लोरीके माध्यमसे राजाका कर्तव्य बता दिया। मातासे उपदेश ग्रहण करके अलर्कने युवावस्थामें विधिपूर्वक अपना विवाह किया। उससे अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। उसने यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया। तदनन्तर बहुत समय बाद वृद्धावस्थाको प्राप्त होनेपर धर्मपरायण महाराज ऋतध्वजने महारानी मदालसाके साथ तपस्याहेतु वन जानेका विचार किया और पुत्र अलर्कका राज्याभिषेक कर दिया। धर्मात्मा राजा अलर्क दत्तात्रेयसे ज्ञान प्राप्तकर संसारसे विरक्त हो गये और भगवान्‌के सच्चे भक्त बन गये। अलर्कजीका वर्णन छप्पय १० पृ० ९० पर भी हुआ है।

महाराज अलर्कसे सम्बद्ध कथाका सार श्रीप्रियादासजीने निम्न कवित्तमें इस प्रकार निरूपित किया है—

अलरक कीरति में राँचौं नित सांचो हिये किये उपदेश हू न छूटै विषै वासना।
माता मन्दालसा की बड़ी यह प्रतिज्ञा सुनौ आवै जो उदर मांझ फेरि गर्भ आसना॥
पतिको निहोरो ताते रह्यो छोटो कोरो ताको लै गये निकासि मिलि काशी नृप शासना।
मुद्रिका उघारि और निहारि दत्तात्रेयजूको भये भवपार करी प्रभु की उपासना॥ ९३॥

भगवान्‌की मायाको जीत लेनेवाले भक्त

रिभु इक्ष्वाकु रु ऐल गाधि रघु (रै) गै सतधन्वा।
अमुरत रंति उतंक भूरि देवल (बैबस्वत) मन्वा॥
नहुष जजाति दिलीप पूरु जदु गुह मांधाता।
पिप्पल निमि भरद्वाज दच्छ सरभंग सँघाता॥
संजय समीक उत्तानपद जाग्यबल्क जस जग भरे।
तिन चरन धूरि मो भूरि सिर जे जे हरिमाया तरे॥ १२॥

जो भक्त भगवान्‌की अपार मायासे तर गये, उसके जालमें नहीं फँसे, उनके श्रीचरणोंकी बहुत-सी रज सादर मेरे सिरपर है और सदा रहे। ऋभुजी, इक्ष्वाकुजी, ऐलजी, गाधिजी, रघुजी, रयजी, गयजी, शतधन्वाजी, अमूर्तिजी, रन्तिदेवजी, उत्तंकजी, भूरिश्रवाजी, देवलजी, वैवस्वतमनुजी, नहुषजी, ययातिजी, दिलीपजी, पूरुजी, यदुजी, गुहजी, मान्धाताजी, पिप्पलजी, निमिजी, भरद्वाजजी, दक्षजी, शरभंगजी, संजयजी, शमीकजी, उत्तानपादजी और याज्ञवल्क्यजी—इनके सुयश संसारमें भरे हुए हैं। ये भगवद्भक्तिके प्रतापसे मायाको जीतनेवाले हैं॥ १२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ इन भक्तोंका पावन चरित संक्षेपमें प्रस्तुत किया जा रहा है—

महर्षि ऋभु

महर्षि ऋभु ब्रह्माके मानस पुत्रोंमेंसे एक हैं। ये स्वभावसे ही ब्रह्मतत्त्वज्ञ तथा निवृत्तिपरायण भक्त हैं, तथापि सद्गुरु-मर्यादाकी रक्षाके लिये इन्होंने अपने बड़े भाई सनत्सुजातकी शरण ली थी। उनसे मन्त्र, योग और ज्ञान प्राप्त करके ये सहज स्थितिमें ही रहने लगे। शरीरके अतिरिक्त इनकी कोई कुटी नहीं थी।

यों ही विचरते हुए महर्षि ऋभु एक दिन पुलस्त्यऋषिके आश्रमके समीप जा पहुँचे। वहाँ पुलस्त्यका पुत्र निदाघ वेदाध्ययन कर रहा था। निदाघने आगे आकर नमस्कार किया। उसके अधिकारको देखकर महर्षि ऋभुको बड़ी दया आयी। उन्होंने कहा—'इस जीवनका वास्तविक लाभ आत्मज्ञान प्राप्त करना है। निदाघ! तुम आत्मज्ञानका सम्पादन करो। अनात्म वस्तुओंसे ऊपर उठकर अपने-आपमें स्थिर हो जाओ। ये सब संसारी लोग मायाके चक्करमें पड़कर अपने स्वरूपको भूले हुए हैं। तुम इस मायापर विजय प्राप्त करो।' महर्षि ऋभुके इन अमृतमय वचनोंको सुनकर निदाघ उनके चरणोंपर गिर पड़े। गुरुके उपदेशसे निदाघ कृतकृत्य हो गया।

श्रीइक्ष्वाकुजी

महाराज इक्ष्वाकु श्राद्धदेव मनुके पुत्र थे। महारानी श्रद्धा इनकी माता थी। श्रीइक्ष्वाकुजी अयोध्याके प्रथम राजा हुए। ये बड़े ही धर्मात्मा, भगवद्भक्त तथा प्रजावत्सल राजा थे। ये कर्मयोग एवं भक्तियोगके आचार्य थे। भगवान्‌ने गीतामें योगकी परम्परामें बताया है कि अपने पिता वैवस्वत मनुसे इन्हें योगज्ञान प्राप्त हुआ—'**मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।**' भगवान् श्रीराम इसी इक्ष्वाकुवंशमें आविर्भूत हुए। महाराज इक्ष्वाकु सूर्यवंशके प्रधान राजा हुए। इनके सौ पुत्र हुए, जिनसे अयोध्या तथा मिथिलाका राजवंश प्रवर्तित हुआ।

श्रीऐलजी (पुरूरवा)

महाराज पुरूरवा बुधके पुत्र हैं और माता इलाके गर्भसे उत्पन्न होनेसे ऐल कहे जाते हैं। स्वर्गकी सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी एक दिन इन्द्रकी सभामें देवर्षि नारदजीके मुखसे पुरूरवाके रूप, गुण, शील-स्वभाव, शौर्य-वीर्य, बल-पराक्रमको सुनकर मोहित होकर स्वर्गसे पुरूरवाके पास चली आयी। उर्वशीको मित्रावरुणका शाप भी था मर्त्यलोकमें जानेका। अत: उसने पुरूरवाके साथ विहार करते हुए शापकी अवधि बितानेका निश्चय किया। इधर देवांगना उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवा भी धैर्य खो बैठे। परिणामस्वरूप दोनोंमें स्नेह-सम्बन्ध हो गया। शापकी अवधिपर्यन्त पुरूरवाके साथ निवास करती हुई उर्वशी शापकी अवधि बीतनेपर बिना किसी शील-संकोचके इन्हें छोड़कर स्वर्ग चली गयी। उसके चले जानेपर पहले तो परम यशस्वी सम्राट् पुरूरवा विरहसे अत्यन्त व्याकुल हो गये, परंतु पीछे शोक हट जानेपर उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ और तब उनके हृदयसे जो उद्गार निकला है, वह परमार्थ-पथके पथिकोंके लिये बड़े ही महत्त्वका है। यथा—विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे ही मनमें विकार होता है, अन्यथा विकारका कोई अवसर ही नहीं है। जो वस्तु कभी देखी या सुनी नहीं गयी है, उसके लिये मनमें विकार नहीं होता। जो लोग विषयोंके साथ इन्द्रियोंका संयोग नहीं होने देते, उनका मन अपने आप निश्चल होकर शान्त हो जाता है; अत: मन, वाणी और श्रवण आदि इन्द्रियोंसे स्त्रियों और स्त्रीलम्पटोंका संग कभी नहीं करना चाहिये। मुझ-जैसे सांसारिक लोगोंकी तो बात ही क्या, बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी अपनी इन्द्रियाँ और मन विश्वसनीय नहीं हैं।

श्रीगाधिजी

श्रीब्रह्माजीके पुत्र थे राजर्षि कुश, कुशके पुत्र कुशनाभ हुए। राजा कुशनाभके कोई पुत्र नहीं था, अत: इन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञके अनुष्ठानकालमें परम उदार ब्रह्मकुमार महाराज कुशने इनकी देवता, पितरोंके प्रति अगाध श्रद्धा देखकर ब्रह्मलोकसे आकर आश्वासन दिया—बेटा कुशनाभ! तुम्हें अपने समान ही परम धर्मात्मा 'गाधि' नामक पुत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_5_1_Front

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होगा और उसके द्वारा तुम्हें संसारमें अक्षय कीर्ति उपलब्ध होगी। पृथ्वीपति कुशनाभसे ऐसा कहकर राजर्षि कुश आकाशमें प्रविष्ट हो सनातन ब्रह्मलोकको चले गये। कुछ कालके पश्चात् बुद्धिमान् राजा कुशनाभके यहाँ परम धर्मज्ञ 'गाधि' नामक पुत्र हुआ। कालान्तरमें महाराज गाधि कान्यकुब्ज देशके राजा हुए। ये दीर्घकालतक पुत्रहीन रह गये, तब संतानकी इच्छासे पुण्यकर्म करनेके लिये ये वनमें रहने लगे। वहाँ रहते समय सोमयाग करनेसे राजाके एक सुलक्षणा कन्या हुई, जिसका नाम सत्यवती था। परमतपमें संलग्न महर्षि ऋचीकने राजा गाधिसे उस कन्याको माँगा। ऋषिकी सामर्थ्यसे सुपरिचित राजा गाधिने यज्ञार्थ शुल्करूपमें एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े माँगे, जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् और वायुके समान वेगवान् हों तथा जिनका एक-एक कान श्याम रंगका हो। महर्षि ऋचीकने वरुणदेवतासे एक सहस्र अश्व लेकर राजा गाधिको दे दिये। तब राजा गाधिने अपनी कन्याको वस्त्राभूषणोंसे विभूषितकर भृगुनन्दन ऋचीकको दे दिया। इन्हीं महर्षि ऋचीककी कृपासे राजा गाधिके श्रीविश्वामित्रजी-सरीखे पुत्ररत्न हुए।

महाराज रघु

सूर्यवंशमें जैसे इक्ष्वाकु, अजमीढ आदि राजा बहुत प्रसिद्ध हुए हैं, उसी प्रकार महाराज रघु भी बड़े प्रसिद्ध पराक्रमी, धर्मात्मा, भगवद्भक्त और पवित्रजीवन हो गये हैं। इन्हींके नामसे 'रघुवंश' प्रसिद्ध हुआ। ये बड़े धर्मात्मा थे। इन्होंने अपने पराक्रमसे समस्त पृथ्वीको अपने अधीन कर लिया था। चारों दिशाओंमें दिग्विजय करके ये समस्त भूमिखण्डके एकच्छत्र सम्राट् हुए।

एक बार ये दरबारमें बैठे थे कि इनके पास कौत्स नामके एक स्नातक ऋषिकुमार आये। अपने यहाँ स्नातकको देखकर महाराजने उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया। पाद्य-अर्घ्यसे उनकी पूजा की। ऋषिकुमारने विधिवत् उनकी पूजा ग्रहण की और कुशल-प्रश्न पूछा। थोड़ी देरके अनन्तर ऋषिकुमार चलने लगे, तब महाराजने कहा—'ब्रह्मन्! आप कैसे पधारे और बिना कुछ अपना अभिप्राय बताये आप लौटे क्यों जा रहे हैं?'

ऋषिकुमारने कहा—'राजन्! मैंने आपके दानकी ख्याति सुनी है, आप अद्वितीय दानी हैं। मैं एक प्रयोजनसे आपके पास आया था; किंतु मैंने सुना है कि आपने यज्ञमें अपना समस्त वैभव दान कर दिया है। यहाँ आकर मैंने प्रत्यक्ष देखा कि आपके पास अर्घ्य देनेके लिये भी कोई धातुका पात्र नहीं है और आपने मुझे मिट्टीके पात्रसे अर्घ्य दिया है, अतः मैं आपसे कुछ नहीं कहता।'

राजाने कहा—'नहीं, ब्रह्मन्! आप मुझे अपना अभिप्राय बताइये; मैं यथासाध्य उसे पूरा करनेकी चेष्टा करूँगा।'

स्नातकने कहा—राजन्! मैंने अपने गुरुके यहाँ रहकर सांगोपांग वेदोंका अध्ययन किया। अध्ययनके अनन्तर मैंने गुरुजीसे गुरुदक्षिणाके लिये प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'हम तुम्हारी सेवासे ही सन्तुष्ट हैं, मुझे और कुछ भी दक्षिणा नहीं चाहिये।' गुरुजीके यों कहनेपर भी मैं बार-बार उनसे गुरुदक्षिणाके लिये आग्रह करता ही रहा। तब अन्तमें उन्होंने झल्लाकर कहा—'अच्छा तो चौदह लाख सुवर्णमुद्रा लाकर हमें दो।' मैं इसीलिये आपके पास आया था।

महाराजने कहा—'ब्रह्मन्! मेरे हाथोंमें धनुष-बाणके रहते हुए कोई विद्वान् ब्रह्मचारी ब्राह्मण मेरे यहाँसे विमुख जाय तो मेरे राज-पाट, धन-वैभवको धिक्कार है। आप बैठिये, मैं कुबेर-लोकपर चढ़ाई करके उनके यहाँसे धन लाकर आपको दूँगा।'

महाराजने सेनाको सुसज्जित होनेकी आज्ञा दी। बात-की-बातमें सेना सज गयी। निश्चय हुआ कि कल प्रस्थान होगा। प्रातःकाल कोषाध्यक्षने आकर महाराजसे निवेदन किया कि महाराज! रात्रिमें सुवर्णकी वृष्टि हुई और समस्त कोष सुवर्णमुद्राओंसे भर गया है। महाराजने जाकर देखा कि सर्वत्र सुवर्णमुद्राएँ भरी हैं। वहाँ जितनी सुवर्णमुद्राएँ थीं, उन सबको महाराजने ऊँटोंपर लदवाकर ऋषिकुमारके साथ भेजना चाहा। ऋषिकुमारने देखा, ये मुद्राएँ तो नियत संख्यासे बहुत अधिक हैं, तब उन्होंने राजासे कहा—'महाराज! मुझे तो केवल चौदह लाख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_5_1_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही चाहिये। इतनी मुद्राओंका मैं क्या करूँगा, मुझे तो केवल कामभरके लिये चाहिये।'

महाराजने कहा—'ब्रह्मन्! ये सब आपके ही निमित्त आयी हैं, आप ही इन सबके अधिकारी हैं, आपको ये सब मुद्राएँ लेनी ही होंगी। आपके निमित्त आये हुए द्रव्यको भला, मैं कैसे रख सकता हूँ?'

ऋषिकुमारने बहुत मना किया, किंतु महाराज मानते ही नहीं थे, अन्तमें ऋषिको जितनी आवश्यकता थी, वे उतना ही द्रव्य लेकर अपने गुरुके यहाँ चले गये। शेष जो धन बचा, वह सब ब्राह्मणोंको दे दिया गया। भला, ऐसा दाता पृथ्वीपर कौन होगा, जो इस प्रकार याचकोंके मनोरथ पूर्ण करे!

श्रीरयजी

ये महाराज पुरूरवाके पुत्र थे। इनकी माता उर्वशी नामकी अप्सरा थी। इनके जय, विजय, आयु, श्रुतायु एवं सत्यायु—ये पाँच भाई और थे। रय अपने सब भाइयोंमें प्रतापी और ज्ञानी थे। इनको भगवान्‌की विशेष कृपा प्राप्त थी। श्रीरयजी परम भागवत थे और भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंमें मन लगाकर मायासे पार हो गये।

राजर्षि गय

राजर्षि गय महाराज भरतके वंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम नक्त और माताका नाम द्रुति था। महाराज गयकी पत्नीका नाम गयन्ती था, जिससे उन्हें चित्ररथ, सुगति और अवरोधन नामक तीन पुत्र प्राप्त हुए। उदारकीर्ति राजर्षिप्रवर गय साक्षात् भगवान् विष्णुके अंश माने जाते थे। महाराज गय प्रजापालन, शासन और यज्ञानुष्ठानादि सभी कर्म निष्काम भावसे केवल भगवत्प्रीत्यर्थ करते थे। वे सदा ब्रह्मवेत्ता महापुरुषोंकी चरण-सेवा किया करते थे। इन सबके फलस्वरूप उन्हें भक्तियोगकी प्राप्ति हुई।

वायुपुराणमें गया-माहात्म्यके सन्दर्भमें एक अन्य विष्णुभक्त असुर गयकी कथा आती है, जो इस प्रकार है—

गय अद्भुत असुर था। असुरवंशमें उत्पन्न होनेपर भी उसमें आसुर-भावका लेश भी नहीं था। स्वभावसे अत्यन्त शान्त और भगवान् नारायणका परम भक्त था वह। एक पैरपर खड़े होकर कई सहस्र वर्षपर्यन्त गय निर्जल, निराहार, स्थिर रहकर भगवान् नारायणका ध्यान करता रहा। उसके तेजसे सभी देवता, सूर्य, चन्द्र, अग्नि भी श्रीहत हो गये। भगवान् ब्रह्माको सृष्टि-रक्षाकी चिन्ता हुई।

'महाभाग! तुम तो मुझसे वरदान माँगते नहीं, आज मैं तुमसे याचना करने आया हूँ। मुझे यज्ञ करना है और तुम्हारे शरीर-जैसा पवित्र स्थल उस यज्ञके लिये त्रिभुवनमें नहीं है।'

'मेरे देहपर मेरे आराध्यको सन्तुष्ट करनेके लिये आप यज्ञ करेंगे, इससे अधिक सौभाग्य मेरा क्या होगा?' ब्रह्माजीकी बात पूरी होनेसे पहले ही गय भूमिपर लेट गया और बोला—'आप इसपर यज्ञ करें।'

कुण्ड-वेदिकादि सभी बने और सैकड़ों वर्ष यज्ञ चला, किंतु गयका एक रोम भी नहीं जला। वह श्वास रोके स्थिर पड़ा रहा। यज्ञको समाप्त करना ही था। गय फिर उठ खड़ा होगा—इस भयसे ब्रह्माजीने भगवान् नारायणका स्मरण किया। भगवान्‌ने उसके विभिन्न अंगोंपर देवताओंको स्थापित किया और उसके हृदयदेशपर स्वयं गदा लेकर खड़े हुए।

'मेरे शरीरपर कहीं कोई कैसा भी पिण्डदान करे, उसके पितरोंको अक्षय तृप्ति प्राप्त हो!' यह वरदान गयने भगवान्‌से माँगा। पूरा गयाक्षेत्र उसके देहपर ही स्थित है।

श्रीशतधन्वाजी

श्रीशतधन्वाजी भगवान् श्रीकृष्णकी पटरानी सत्यभामाजीके पिता सत्राजित्‌के अनुज थे। यादवश्रेष्ठ सत्राजित्‌ने अपनी कन्या सत्यभामा और स्यमन्तक मणि दोनों ही भगवान्‌को अर्पण कर दी। श्रीकृष्णने मणिको सत्राजित्‌के पास ही रहने दिया। कृतवर्मा आदि यादव सत्राजित्‌से असन्तुष्ट थे कि इन्होंने हमारे माँगनेपर भी अपनी कन्याको हमें न देकर श्रीकृष्णसे व्याह दी। वे इसका बदला लेना चाहते थे। अतः इन लोगोंने सत्राजित्‌के भाई शतधन्वाको भड़काते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Kalyan Bhaktmal Ank_Section_5_2_Front

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—देखो, सत्राजित्की कपट चातुरी, उसने मणि तुम्हें न देकर श्रीकृष्णको दे दी। तुम तो उससे स्नेह करते हो, परंतु वह तुमसे कपट करता है। तुम सत्राजित्को मारकर मणि क्यों नहीं ले लेते। हम लोग तुम्हारी सहायता करेंगे। सरल हृदय शतधन्वा इनके बहकावेमें आ गया और लोभवश उसने एक दिन सोये हुए अपने भाई सत्राजित्को मार डाला और मणि लेकर वहाँसे चम्पत हो गया।

महारानी सत्यभामाजीको पिता-मरणका बड़ा शोक हुआ। ये रोती-बिलखती हुई हस्तिनापुर गयीं और बड़े दुःखसे भगवान् श्रीकृष्णको उन्होंने अपने पिताके वधका वृत्तान्त सुनाया। सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने सब सुनकर मनुष्योंकी-सी लीला करते हुए अपनी आँखोंमें आँसू भर लिये और विलाप करने लगे। इसके बाद द्वारका आकर शतधन्वाको मारने तथा उससे मणि छीननेका उद्योग करने लगे।

जब शतधन्वाको यह सब मालूम हुआ तो वह बहुत डरा और अपने प्राण बचानेके लिये उसने कृतवर्मासे सहायता माँगी, परंतु कृतवर्माने उसे एकदम टका-सा जवाब दे दिया कि हम सर्वसमर्थ श्रीकृष्णसे तुम्हें बचानेमें समर्थ नहीं है। तब शतधन्वाने अक्रूरजीसे सहायताके लिये प्रार्थना की, परंतु यहाँ भी वही उत्तर मिला। तब शतधन्वाने स्यमन्तकमणि उन्हींके पास रख दी और घोड़ेपर सवार होकर वहाँसे बड़ी फुर्तीसे भागा। श्रीकृष्ण-बलरामने रथपर आरूढ़ होकर उसका पीछा किया। मिथिलापुरीके निकट एक उपवनमें शतधन्वाका घोड़ा गिर पड़ा, अब वह उसे छोड़कर पैदल ही भागा। भगवान् भी पैदल ही उसके पीछे दौड़े और थोड़ी ही दूर जानेपर उसे पकड़कर अपने तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे उसका सिर उतार लिया, परंतु स्यमन्तक मणि उसके पास नहीं मिली। शतधन्वाकी आत्म-ज्योति प्रभुमें लीन हो गयी।

श्रीअमूर्तजी

श्रीअमूर्तजी परम निष्ठावान् भक्त थे। इनको हरिदासजी भी कहते हैं। ये रात-दिन भगवान्के ध्यानमें लीन रहा करते थे। इनकी बाल्यकालसे ही भगवान्में सहज प्रीति थी।

महाराज रन्तिदेव

चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्तके वंशमें संकृति नामके एक राजा थे। राजा संकृतिके दो पुत्र थे—गुरु और रन्तिदेव। इनमें रन्तिदेव बड़े ही न्यायशील, धर्मात्मा और दयालु थे। दूसरोंकी दरिद्रता देखना उनसे सहा ही नहीं जाता था। अपनी सारी सम्पत्ति उन्होंने दीन-दुःखियोंको बाँट दी थी और स्वयं बड़ी कठिनतासे निर्वाह करते थे। ऐसी दशामें भी उन्हें जो कुछ मिल जाता था, उसे दूसरोंको दे देते थे और स्वयं भूखे ही रह जाते थे।

एक बार रन्तिदेव तथा उनके पूरे परिवारको अड़तालिस दिनोंतक भोजनकी तो कौन कहे, पीनेको जल भी नहीं मिला। देशमें घोर अकाल पड़ जानेसे जल मिलना भी दुर्लभ हो गया था। भूख-प्याससे राजा तथा उनका परिवार—सब-के-सब मरणासन्न हो गये। उनचासवें दिन कहींसे उनको घी, खीर, हलवा और जल मिला। अड़तालीस दिनोंके निर्जल व्रती थे वे। उनका शरीर काँप रहा था। कण्ठ सूख गया था। शरीरमें उठनेकी शक्ति नहीं थी। ऐसी दशामें रन्तिदेव भोजन करने जा ही रहे थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आ गये। रन्तिदेवने बड़ी श्रद्धासे उन विप्रको उसी अन्नमेंसे भोजन कराया।

विप्रके भोजन कर लेनेपर बचे हुए अन्नको राजाने अपने परिवारके लोगोंमें बाँट दिया। वे सब भोजन करने जा ही रहे थे कि एक शूद्र अतिथि आ गया। उस दरिद्र शूद्रको भी राजाने आदरपूर्वक भोजन करा दिया। अब एक चाण्डाल कई कुत्तोंके साथ आया और कहने लगा—'राजन्! मेरे ये कुत्ते भूखे हैं और मैं भी बहुत भूखा हूँ।'

रन्तिदेवने उन सबका भी सत्कार किया। सभी प्राणियोंमें श्रीहरिको देखनेवाले उन महापुरुषने बचा हुआ सारा अन्न कुत्तों और चाण्डालके लिये दे दिया। अब केवल इतना जल बचा था, जो एक मनुष्यकी प्यास बुझा सके। राजा उससे अपना सूखा कण्ठ गीला करना चाहते थे कि एक और चाण्डाल आकर दीन स्वरसे कहने लगा—'महाराज! मैं बहुत थका हूँ। मुझ अपवित्र नीचको पीनेके लिये थोड़ा पानी दीजिये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाण्डाल थका था और बहुत प्यासा था। उसकी वाणी बड़े परिश्रमसे निकलती जान पड़ी थी। उसकी दशा देखकर राजाको बड़ी दया आयी। स्वयं प्यासके मारे मरणासन्न रहनेपर भी परम दयालु राजा रन्तिदेवने वह जल आदर एवं प्रसन्नताके साथ चाण्डालको पिला दिया।

भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले त्रिभुवनके स्वामी ब्रह्मा, विष्णु और महेश ही रन्तिदेवकी परीक्षाके लिये इन रूपोंमें आये थे। राजाका धैर्य देखकर वे प्रकट हो गये। राजाने उनको प्रणाम किया, उनका पूजन किया। बहुत कहनेपर भी रन्तिदेवने कोई वरदान नहीं माँगा। जैसे जगनेपर स्वप्न लीन हो जाता है, वैसे ही भगवान् वासुदेवमें चित्तको तन्मय कर देनेसे राजा रन्तिदेवके सामनेसे त्रिगुणमयी माया लीन हो गयी। रन्तिदेवके प्रभावसे उनके परिवारके सब लोग भी नारायणपरायण होकर योगियोंकी परम गतिको प्राप्त हुए।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज रन्तिदेवकी उपर्युक्त कथाका अपने निम्न कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

अहो रन्तिदेव नृप सन्त दुसकन्त वंश अति ही प्रशंस सो अकाश वृत्ति लई है।
भूखे को न देखि सकैं आवै सो उठाइ देत नेति नहिं करैं भूखे देइ छीन भई है॥
चालिस औ आठ दिन पीछे जल अन्न आयो दियो विप्र शूद्र नीच श्वान यह नई है।
हरि कों निहारैं उन माँझ तब आए प्रभु भाए जग दुःख जिते भोगौं भक्ति छई है॥ ९४॥

गुरुभक्त उत्तंक

गुरुभक्त उत्तंक आचार्य वेदके शिष्य थे। एक बार राजा जनमेजय और पौष्यने आचार्य वेदको पुरोहितके रूपमें वरण किया। वेद कभी पुरोहितीके कामसे बाहर जाते तो घरकी देखरेखके लिये अपने शिष्य उत्तंकको नियुक्त कर जाते थे। एक बार आचार्य वेदने बाहरसे लौटकर अपने शिष्य उत्तंकके सदाचार-पालनकी बड़ी प्रशंसा सुनी, तो उन्होंने कहा—'बेटा! तुमने धर्मपर दृढ़ रहकर मेरी बड़ी सेवा की है। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी। तुम्हारी शिक्षा पूरी हुई, तुम अब जाओ।' उत्तंकने प्रार्थना की, 'आचार्य! मैं आपको कौन-सी प्रिय वस्तु भेंटमें दूँ?' आचार्यने पहले तो अस्वीकार किया, पीछे कहा कि 'अपनी गुरुमातासे पूछ लो।' जब उत्तंकने गुरुमातासे पूछा तो उन्होंने कहा, 'तुम राजा पौष्यके पास जाओ और उनकी रानीके कानोंके कुण्डल माँग लाओ। मैं आजके चौथे दिन उन्हें पहनकर ब्राह्मणोंको भोजन परसना चाहती हूँ।'

उत्तंक बड़ी कठिनाईसे राजा पौष्यके पास पहुँचे और शुद्ध हृदय हो उनकी आज्ञा ले अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुए। रानीने उत्तंकको सत्पात्र समझकर अपने कुंडल दे दिये। साथ ही यह कहकर सावधान भी कर दिया कि नागराज तक्षक ये कुण्डल चाहता है। कहीं तुम्हारी असावधानीसे लाभ उठाकर वह ले न जाय!

मार्गमें चलते समय उत्तंकने देखा कि उसके पीछे-पीछे एक नग्न क्षपणक चल रहा है, वह कभी प्रकट होता है और कभी छिप जाता है। एक बार उत्तंकने कुण्डल रखकर जल लेनेकी चेष्टा की। इतनेमें ही वह क्षपणक कुण्डल लेकर अदृश्य हो गया। नागराज तक्षक ही उस वेषमें आया था। उत्तंकने इन्द्रके वज्रकी सहायतासे नागलोकतक उसका पीछा किया। अन्तमें भयभीत होकर तक्षकने उसे कुण्डल दे दिये। उत्तंक ठीक समयपर अपनी गुरुमाताके पास पहुँचा और उन्हें कुण्डल देकर आशीर्वाद प्राप्त किया। ऐसे आदर्श गुरुभक्त शिष्य थे उत्तंक!

× × ×

एक अन्य भक्त मुनि उत्तंकके विषयमें निम्नलिखित कथा भी प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है—

सौवीर नगरमें एक सुन्दर बगीचा था। उसमें एक बड़ा भव्य एवं विशाल विष्णुभगवान्‌का मन्दिर था। महात्मा उत्तंक उस बगीचेमें रहकर मन्दिरमें भगवान् विष्णुकी पूजा किया करते थे। वे भगवान्‌की सेवामें रात-दिन लगे रहनेवाले परम-शान्त, निःस्पृह, दयालु और महात्मा थे।

एक दिन कणिक नामका व्याध-डाकू मन्दिरके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामनेसे निकलकर जा रहा था। उसकी दृष्टि मन्दिरके ऊपर लगे हुए स्वर्ण-कलशपर पड़ी। उसे देखकर कणिकने अनुमान लगाया कि मन्दिरके अन्दर अपार धन-सम्पत्ति होगी। रातमें वह मन्दिरमें घुस गया। महात्मा उत्तंक उस समय भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न होकर उनका भजन कर रहे थे। डाकूने देखा कि जागते हुए व्यक्तिके सामनेसे धन ले जाना बड़ा मुश्किल है, अतः उसने एक हाथसे उनकी चोटी पकड़ी और दूसरे हाथमें तलवार लेकर उनका मस्तक काटनेको तैयार हो गया।

बड़े मीठे शब्दोंमें उत्तंकने डाकूसे कहा—भद्र! मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है, जो तुम मुझको मारनेको उद्यत हो? मुनि उत्तंककी अमृतमयी वाणीका प्रभाव डाकूपर ऐसा पड़ा कि उसका हृदय बिलकुल पलट गया। पहले किये पापोंका पश्चात्ताप करके वह क्षमा माँगते हुए रोने लगा। जब वह इस पश्चात्तापकी जलनको न सह सका तो उसने अपने प्राणोंको त्याग दिया। तब मुनिने भगवान्‌का चरणामृत उसके मृत शरीरपर डाला। उस दिव्य भगवच्चरणामृतके स्पर्शसे डाकूका उद्धार हो गया, मुनि पुनः भगवान्‌की भक्तिमें तल्लीन रहने लगे। समय आनेपर वे भी दिव्यरूप धारणकर भगवद्धाममें चले गये।

श्रीभूरिश्रवाजी

कुरुकुलकी कीर्तिको बढ़ानेवाले श्रीभूरिश्रवाजी महाराज शान्तनुके ज्येष्ठभ्राता बाह्लीकके पौत्र और सोमदत्तके पुत्र थे। नरश्रेष्ठ सोमदत्तकी दीर्घकालीन आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें पुत्र-प्राप्तिका वरदान दिया था, जिसके प्रभावसे इन्हें महान् तेजस्वी, महारथी और यज्ञोंमें प्रचुर दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवासदृश पुत्रकी प्राप्ति हुई थी। भूरिश्रवाने अनेक महान् यज्ञ किये थे और उनमें हजारों स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणा दी थी। यद्यपि भूरिश्रवा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और शल्यकी भाँति कौरव पक्षसे युद्ध कर रहे थे, परंतु ये इस विनाशकारी युद्धके पक्षमें नहीं थे, इन्होंने पाण्डवोंके बल-पराक्रमका वर्णनकर दुर्योधनको सन्धि करनेकी सलाह दी थी। शत्रुपक्षी होते हुए भी अर्जुन और श्रीकृष्णने इनके भगवद्भावकी बड़ी प्रशंसा की। परब्रह्म परमात्माका चिन्तन करते हुए इनकी मृत्यु हुई थी। भगवान् श्रीकृष्णने इनकी मृत्युका सम्मान करते हुए इन्हें इस प्रकार वर दिया—

निरन्तर अग्निहोत्रद्वारा यजन करनेवाले भूरिश्रवाजी! मेरे जो निरन्तर प्रकाशित होनेवाले निर्मल लोक हैं और ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी जहाँ जानेकी सदैव अभिलाषा रखते हैं, उन्हीं लोकोंमें आप शीघ्र पधारिये और मेरे ही समान गरुडकी पीठपर बैठकर विचरण करनेवाले होइये।

महर्षि देवल

महर्षि देवलकी गणना अत्यन्त प्राचीन धर्मशास्त्रकारोंमें की गयी है। ये महान् तपस्वी और योगाचार्य कहे गये हैं। इन्होंने भगवान् शिवकी आराधना करके सिद्धि प्राप्त की थी। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवत्तत्त्वके ज्ञाता महर्षियोंमें महर्षि असित एवं देवलका नाम बड़े ही आदरभावसे लिया गया है—**'असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥'** (गीता १०। १३)

श्रीवैवस्वत मनुजी

विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा भगवान् सूर्यकी पत्नी हैं। उनके गर्भसे वैवस्वत मनुका जन्म हुआ, जो परम विख्यात यशस्वी और अनेक विषयोंके परिज्ञानमें पारंगत थे। विवस्वान् (सूर्य)-के पुत्र होनेके कारण ही ये वैवस्वत कहलाये। पिता भगवान् सूर्यने इन्हें भगवान्‌से प्राप्त गुह्यतम ज्ञानकी शिक्षा दी थी, जिसका वर्णन गीताके चतुर्थ अध्यायमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने किया है। ये भगवान्‌के बड़े भक्त थे। इन्होंने बदरिकाश्रममें जाकर दोनों बाहें ऊपर उठाये एक पैरसे खड़े होकर दस हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। ये चौदह मनुओंमें सातवें मनु हैं। वर्तमान मन्वन्तराधिपति ये ही हैं। समस्त पुण्य कार्योंमें इनका पावन स्मरण **'सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे'** कहकर संकल्पमें किया जाता है। भागवतके अनुसार राजर्षि सत्यव्रत ही वैवस्वत मनु हुए हैं, जिन्हें ब्राह्म कल्पमें भगवान्‌ने मत्स्य अवतार लेकर मत्स्यपुराणके रूपमें भगवत्तत्त्वका ज्ञान दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजर्षि नहुषजी

महाराज नहुष महान् तेजस्वी, यशस्वी, धर्मिष्ठ और दानी थे। देवराज इन्द्र जब वृत्रासुरका वध करनेसे ब्रह्महत्याद्वारा पीड़ित होकर जलमें छिपे रहे तो चारों ओर अराजकता छा गयी, तब देवताओंने राजा नहुषको इन्द्र पदपर प्रतिष्ठित किया।

नहुषने एक दिन इन्द्राणीको देखा तो उनका चित्त दूषित हो गया और उन्होंने आज्ञा दी कि शची देवी आज मेरे महलमें शीघ्र पधारें।

इन्द्राणी भयभीत तथा चिन्तातुर हो गयी, वे अपने स्वामी तथा इन्द्रका पता लगाकर उनके पास गयीं और सब वृत्तान्त कह सुनाया तथा पातिव्रत्यकी रक्षा चाही। इन्द्रने यह उपाय बताया कि तुम एकान्तमें नहुषसे मिलकर कहो कि तुम मुझसे मिलनेके लिये ऋषीश्वरोंकी दिव्य सवारीपर चढ़कर आओ। तब मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे अधीन हो जाऊँगी। शचीने ऐसा ही किया। नहुष सहर्ष तैयार हो गये और देवर्षियों तथा महर्षियोंसे पालकी उठवाकर इन्द्राणीके पास चले। नहुष 'सर्प-सर्प' अर्थात् 'जल्दी चलो-जल्दी चलो' इस प्रकार कहकर ऋषियोंको शासित कर रहा था। परंतु पालकी ढोनेके अनभ्यस्त ऋषिगण धीरे-धीरे ही चल रहे थे। क्रोधान्ध हो नहुषने श्रीअगस्त्यजीके सिरपर लात चलायी। श्रीअगस्त्यजीने शाप दे दिया कि तूने अधर्मसे व्याप्त होकर मेरे सिरमें पैरकी ठोकर मारी, अतः तू हततेज होकर पृथ्वीपर गिर और दस हजार वर्षतक अजगर बना रहे। नहुषका कामका नशा उतर गया और अत्यन्त दीन होकर मुनिश्रेष्ठ श्रीअगस्त्यजीसे प्रार्थना की कि प्रभो! मेरे शापका अन्त नियत कर दीजिये। तब श्रीअगस्त्यजीने कहा कि जो तुम्हारे पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर दे दे, वही तुम्हें शापसे छुड़ा सकता है। राजन्! जिसे तुम पकड़ लोगे, वह बलवान्से भी बलवान् क्यों न हों, उसका भी धैर्य छूट जायगा। तत्पश्चात् राजा नहुष अजगर होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

जब पाण्डव जुएमें हारकर वनवास कर रहे थे। उस समय द्वैतवनमें एक दिन भीमसेन नहुष (अजगर)-की पकड़में आ गये। लाख प्रयत्न करनेपर भी महाबली भीम अपनेको छुड़ानेमें जब समर्थ नहीं हो सके, तब उनको खोजते-खोजते महाराज युधिष्ठिरजी वहाँ पहुँचे। श्रीधर्मराजने अजगरसे भीमको छोड़ देनेके लिये बहुत प्रार्थना की। अजगरने कहा—यदि तुम मेरे पूछे हुए कुछ प्रश्नोंका अभी उत्तर दे दोगे तो मैं तुम्हारे भाईको छोड़ दूँगा। श्रीयुधिष्ठिरजीकी अनुमति पाकर अजगरने पूछा—राजन्! यह बताओ कि ब्राह्मण कौन है? जाननेयोग्य तत्त्व क्या है? श्रीयुधिष्ठिरजीने कहा—नागराज! जिसमें सत्य, दान, क्षमा, सुशीलता, क्रौर्याभाव, तपस्या और दया—ये सद्गुण दिखायी देते हों, वही ब्राह्मण कहा गया है तथा जाननेयोग्य तत्त्व तो परब्रह्म ही कहा गया है। अजगरने कहा—'युधिष्ठिर! तुम जाननेयोग्य सभी बातें जानते हो। तुम्हारे शुभागमनसे मेरे लिये यह महान् पुण्यकाल उपस्थित हो गया है, अब इस घोर तमोमयी योनिसे मेरा उद्धार हो गया है।' यह कहते हुए राजा नहुषने अजगरका शरीर त्याग दिया और वे दिव्य शरीर धारण करके स्वर्गलोकको चले गये।

राजर्षि ययाति

राजा नहुषके यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियाति और कृति नामक छः महाबलविक्रमशाली पुत्र हुए। यतिने राज्यकी इच्छा नहीं की, इसलिये ययाति ही राजा हुए। ययातिने शुक्राचार्यजीकी पुत्री देवयानी और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठासे विवाह किया था। देवयानीने यदु और तुर्वसुको जन्म दिया तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरुको उत्पन्न किया।

ययातिको शुक्राचार्यजीके शापसे युवावस्थामें ही बुढ़ापाने घेर लिया था, किंतु उनकी विषय-कामना शान्त नहीं हुई थी, उन्होंने पुत्रोंसे वृद्धावस्था लेकर उनकी युवावस्थाको ग्रहण करना चाहा, किंतु प्रत्येकके अस्वीकार करनेपर उन्होंने उन सभीको शाप दे दिया। अन्तमें सबसे छोटे शर्मिष्ठाके पुत्र पूरुसे भी वही बात कही तो उसने अति नम्रता और आदरके साथ पिताको प्रणाम करके उदारतापूर्वक कहा—'यह तो हमारे ऊपर आपका महान् अनुग्रह है।' ऐसा कहकर पूरुने अपने पिताकी वृद्धावस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रहणकर उन्हें अपनी युवावस्था दे दी।

राजा ययातिने पूरुकी युवावस्था लेकर समयानुसार प्राप्त हुए यथेच्छ विषयोंको अपने उत्साहके अनुसार धर्मपूर्वक भोगा और अपनी प्रजाका भली प्रकार पालन किया। फिर शर्मिष्ठा और देवयानीके साथ विविध भोगोंको भोगते हुए 'मैं कामनाओंका अन्त कर दूँगा'— ऐसा सोचते-सोचते वे क्षुब्धचित्त हो गये, अन्तमें उन्होंने इस प्रकार अपना उद्‌गार प्रकट किया—

'भोगोंकी तृष्णा उनके भोगनेसे कभी शान्त नहीं होती, बल्कि घृताहुतिसे अग्निके समान वह बढ़ती ही जाती है। सम्पूर्ण पृथ्वीमें जितने भी धान्य, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नही हैं, इसलिये तृष्णाको सर्वथा त्याग देना चाहिये। जिस समय कोई पुरुष किसी भी प्राणीके लिये पापमयी भावना नहीं करता, उस समय उस समदर्शीके लिये सभी दिशाएँ सुखमयी हो जाती हैं। दुर्मतियोंके लिये जो अत्यन्त दुस्त्यज है तथा वृद्धावस्थामें भी जो शिथिल नहीं होती, बुद्धिमान् पुरुष उस तृष्णाको त्यागकर सुखसे परिपूर्ण हो जाता है। अवस्थाके जीर्ण होनेपर केश और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं; किंतु जीवन और धनकी आशाएँ उसके जीर्ण होनेपर भी जीर्ण नहीं होतीं*। बड़े दुःखका विषय है, विषयोंमें आसक्त रहते हुए मुझे एक सहस्र वर्ष बीत गया, फिर भी नित्य ही उनमें मेरी कामना होती है। अतः अब मैं इसे छोड़कर अपने चित्तको भगवान्‌में ही स्थिरकर निर्द्वन्द्व और निर्मम होकर वनमें विचरूँगा।'

ऐसा कहकर राजा ययातिने पूरुसे अपनी वृद्धावस्था वापस लेकर उसकी युवावस्था लौटा दी। स्वयं वनको चले गये।

महाराज दिलीप

इक्ष्वाकुवंशमें महाराज दिलीप बड़े ही प्रसिद्ध राजर्षि हो गये हैं। वे बड़े भक्त, धर्मात्मा और प्रजापालक राजा थे। चारों वर्ण उनके शासनसे सन्तुष्ट थे। महाराजको सभी प्रकारके सुख थे, किंतु उनके कोई संतान नहीं थी। एक बार ये इसके लिये अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठजीके आश्रमपर गये और अपने आनेका कारण बताकर उनसे उपाय पूछा।

महर्षि वसिष्ठने दिव्यदृष्टिसे सब बातें समझकर कहा—'राजन्! आप एक बार देवासुर-संग्राममें गये थे। वहाँसे लौटकर जब आप आ रहे थे, तब रास्तेमें आपको सुरनन्दिनी कामधेनु मिली। आपके सामने होनेपर भी आपकी दृष्टि उनपर नहीं पड़ी, इसलिये आपने उन्हें प्रणाम नहीं किया। कामधेनुने इसे अविनय समझकर आपको संतानहीनताका शाप दे दिया। अतः अब आप गो-सेवा करें। भगवान्‌ने चाहा तो आपका मनोरथ शीघ्र ही पूरा होगा।'

गुरुकी आज्ञा शिरोधार्यकर महाराज अपनी महारानीके सहित गौकी सेवामें लग गये।

अनन्य गोसेवाके प्रभावसे यथासमय उनके पुत्र उत्पन्न हुआ। यही बालक रघुकुलका प्रतिष्ठाता रघु नामसे विख्यात हुआ।

श्रीपूरुजी

श्रीपूरुजी पौरव वंशके प्रवर्तक आदिपुरुष थे। इनका गुरुजनोंके प्रति बड़ा आदर भाव था। जिस समय इनके पिता राजा ययाति अपनी वृद्धावस्थाके बदले पुत्रोंसे जवानी माँग रहे थे और सभी पुत्रोंने अस्वीकार कर दिया। तब राजाने अपने सबसे छोटे पुत्र पूरुसे कहा। उस समय पितृभक्त पूरुने सहर्ष अपनी युवावस्था पिताको देकर बदलेमें उनके बुढ़ापाको स्वीकार कर लिया, जिससे वे महान् यशके भागी हुए।

श्रीयदुजी

ये राजा ययातिके प्रथम पुत्र थे, जो देवयानीके

* न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत्॥
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्। समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वास्सुखमया दिशः॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः। तां तृष्णां सन्त्यजेत्प्राज्ञस्सुखेनैवाभिपूर्यते॥
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः। धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यतः॥ (वि० पु० ४। १०। २३—२७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ये यादववंशके प्रवर्तक राजा हुए। इन्हींके वंशमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव हुआ था। ये बड़े धर्मज्ञ तथा धर्मशील थे। भगवान् दत्तात्रेयजीसे ज्ञान प्राप्तकर ये जीवन्मुक्त हो गये थे।

श्रीगुह निषादजी

ये भगवान् श्रीरामजीके अत्यन्त प्रिय सखा हैं। जातिके निषाद एवं शृंगवेरपुरके राजा हैं।

निषादराज गुह और श्रीरामजीके प्रथम मिलनकी बड़ी मधुर कथा सन्त-महानुभाव इस प्रकार वर्णन करते हैं—निषादराजके पितासे और चक्रवर्ती महाराजाधिराज श्रीदशरथजीसे बड़ी मित्रता थी। वे समय-समयपर श्रीअयोध्या आया करते थे। जिस समय श्रीदशरथजीके यहाँ प्रभुका प्रादुर्भाव हुआ, उस समय वे अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे, फिर भी लालकी बधाई लेकर वे स्वयं आये थे और चारों कुमारोंका दर्शनकर उन्होंने परम सुख पाया था। परंतु एक तो स्वयं जराग्रस्त थे, दूसरे बालक गुह नित्य अयोध्याके लिये मचलता रहता था और जबसे उसने श्रीरामकी शोभाका वर्णन सुना था, तबसे तो वह विशेष उत्कण्ठित रहने लगा था, श्रीअयोध्या जाकर भ्राताओंसहित श्रीरामका दर्शन करनेके लिये। आज-कल करते-करते पाँच वर्ष बीत गये। गुह अब कुछ बड़ा भी हो गया था और उधर राजकुमार भी अवधकी गलियोंमें विविध विनोद करते हुए विहरने लगे, तब एक दिन वृद्ध पिताने गुहको श्रीअयोध्या जानेकी आज्ञा दी। गुहके हर्षका पारावार नहीं रहा। भेंटके लिये वन्य कन्द-मूल, फल तथा चारों राजकुमारोंके लिये चार जोड़ी रुरुनामक मृगके चर्मके बनी हुई सुन्दर पनहियाँ बगलमें दबाये हुए गुह श्रीअवधमें आ पहुँचा।

मनमें विचार आया प्रथम श्रीसरजू-स्नान कर लूँ फिर दरबारमें चलूँ। अतः श्रीसरजूतटपर उपहारकी पोटली रखकर स्नान करने लगा। तबतक क्या देखते हैं कि चार बालक उपहार-पोटली खोल रहे हैं। गुह मना करता ही रहा, पर बालकोंने पोटली खोल ली, पनहियाँ पहन लीं और केलेके फल लेकर खाते हुए सरजूतटपर विहरने लगे। गुह स्नानकर बाहर निकला। वस्त्र बदलकर बालकोंके समीप पहुँचा, कुछ रीझसे, कुछ खीझसे पूछा—आप लोग किसके बालक हैं? आप लोगोंको मालूम नहीं, मैं यह उपहार चक्रवर्ती महाराजकुमारोंके लिये लाया था। बालक मधुर मुसकानपूर्वक बोल पड़े—ओ हो! तब तो हमारे लिये ही था। गुहने पूछा—तो क्या महाराज श्रीदशरथजीके राजकुमार आप ही हैं?

वे बोले—सखा! महाराजकुमार हम ही हैं। गुहकी आँखें सजल हो गयीं, हाथ जुट गये, शीश झुक गया, चरणोंपर गिरनेके पूर्व ही राजकुमारोंने हाथोंसे थाम लिया और लिवा ले चले अपने मित्रको महलकी ओर। गुह गद्गद है कृपाका विचारकर। श्रीचक्रवर्तीजी चकित हैं, सख्यप्रेमको देखकर। राजकुमारोंने पिताजीको प्रणाम किया, गुहने भी साश्रुनयन, पुलकिततन, विह्वलवाणीसे हाथ जोड़कर अभिवादन किया। श्रीरामललाने अपने नये सखाका परिचय दिया, श्रीदशरथजीने जैसे अपने पुत्रोंको हृदयसे लगाया, वैसे ही गुहको भी हृदयसे लगा लिया। श्रीदशरथजीने देखा—राम बड़े प्रसन्न हैं अपने इस सखासे और सखाने भी तन-मन-प्राण न्यौछावर कर दिया है उनके ऊपर। महाराजने रोक लिया गुहको श्रीअयोध्यामें, बहाना यह बनाया कि तुम यहाँ रहकर मेरे पुत्रोंको धनुर्विद्याका अभ्यास कराते रहो। गुहके लिये तो मानो—***'जनम रंक जनु पारस पावा।'***

एक बार जब सब वन-विहारकर घर लौट आये। सबने देखा—श्रीरामके श्रीमुखसे गुहका गुणगान सुनकर श्रीचक्रवर्ती महाराजाधिराज श्रीदशरथजी अपने हाथका आभूषण गुहके हाथमें पहना रहे हैं, हृदयसे लगा रहे हैं तथा तुरंत ही शृंगवेरपुरके राजा होनेकी घोषणा कर देते हैं।

भगवान् श्रीराम जब वन जाते समय शृंगवेरपुर आये तो उस समय निषादराज गुह ही वहाँका राजा था। अपने मित्रको वनवासीके रूपमें देखकर उसे बहुत कष्ट हुआ और उसने हाथ जोड़कर विनय की कि आप इस शृंगवेरपुरका राज्य करें और यहीं रहें, परंतु श्रीरामने उसे माता-पिताकी आज्ञा बताकर अपने वनवासका निश्चय बताया। इस प्रकार निषादराज गुह भगवान् श्रीरामका सच्चा मित्र और भक्त था। श्रीरामके प्रति उसकी इतनी निष्ठा थी कि भरतको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनासहित आते देखकर वह उनसे युद्धके लिये तैयार हो गया, परंतु जब उसे भरतजीके आन्तरिक भावका पता चला तो उनका श्रीराम-जैसा ही स्वागत किया। धन्य है निषादराज गुह और धन्य है उसकी सख्यभक्ति!

श्रीप्रियादासजीने निषादराज गुहकी उपर्युक्त प्रेममयी भक्तिका निम्न कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भीलन को राजा गुह राम अभिराम प्रीति भयो वनवास मिल्यो मारग में आइकै।
करौ यह राज जू विराजि सुख दीजै मोको बोले चैन साज तज्यों आज्ञा पितु पाइकै॥
दारुण वियोग अकुलात दृग अश्रुपात पीछे लोहू जात वह सकै कौन गाइकै।
रहे नैन मूँदि रघुनाथ बिन देखौं कहा? अहा प्रेम रीति मेरे हिये रही छाइ कै॥ ९५॥

वनवासकी लीला समाप्त करके चौदह वर्षोंके बाद पुष्पक विमानपर बैठकर जब श्रीरघुनाथजी आये, तब आपके साथी भीलोंने कहा कि प्रभु पधारे हैं, उनका दर्शन कीजिये, पर श्रीनिषादराजको विश्वास नहीं हो रहा था। वे वियोगसे व्याकुल होते हुए बोले—मैं फिरसे श्रीरामको पाऊँ, ऐसा मेरा भाग्य कहाँ? इतनेमें श्रीरामचन्द्रजी आ गये और प्रेमसे मिलकर बोले कि मैं आ गया, मुझे देखिये। निषादराजने भगवान्के श्रीअंगको स्पर्श करके पहचाना और प्रभुसे लिपट गये। स्पर्श प्राप्तकर दिव्य सुखसागरमें डूब गये। उनके गये प्राण मानो पुनः आ गये। निषादराजने अपनेको परम सौभाग्यशाली माना।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

चौदह वरष पीछे आये रघुनाथ नाथ साथ के जे भील कहैं आए प्रभु देखिये।
बोल्यो 'अब पाऊँ कहाँ?' होति न प्रतीति क्यों हूं प्रीति करि मिले राम कहि मोको पेखिये॥
परसि पिछाने लपटाने सुख सागर समाने प्राण पाये मानो भाग भाल लेखिये।
प्रेम की जू बात क्यों हूँ बानी में समात नाहिं अति अकुलात कहौ कैसे कै विशेखिये॥ ९६॥

श्रीमान्धाताजी

महाराज इक्ष्वाकुके वंशमें युवनाश्व नामके एक परम प्रतापी राजा हुए। उनकी सौ रानियाँ थीं, परंतु संतान किसीके भी नहीं थी। इसलिये राजा युवनाश्व दुःखी होकर अपनी सभी रानियोंके साथ वनमें चले गये। वहाँ ऋषियोंने कृपा करके राजासे पुत्रप्राप्तिके लिये इन्द्रदेवताका यज्ञ कराया। एक दिन राजा युवनाश्वको रात्रिके समय बड़े जोरकी प्यास लगी। वे यज्ञशालामें गये, किंतु वहाँ देखा कि ऋषि लोग सो रहे हैं। तब जल मिलनेका कोई और उपाय न देखकर उन्होंने वह मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल ही पी लिया। जब प्रातःकाल ऋषियोंको मालूम हुआ तो उन लोगोंने भगवदिच्छाको ही प्रधान माना। इसके बाद प्रसवका समय आनेपर युवनाश्वकी दाहिनी कोख फाड़कर एक बालक उत्पन्न हुआ। उसे रोते देखकर ऋषियोंने कहा—यह बालक दूधके लिये रो रहा है। अतः किसका दूध पीयेगा? तब इन्द्रने कहा—मेरा पीयेगा—'**मां धाता**' बेटा! तू रो मत। यह कहकर इन्द्रने अपनी तर्जनी उँगली उसके मुँहमें डाल दी। अतः बालक मान्धाता नामसे जगत्में प्रसिद्ध हुआ। मान्धाताजी चक्रवर्ती राजा हुए। परमयोगी मुचुकुन्दजी इन्हींके पुत्र थे।

श्रीपिप्पलादजी

ये महर्षि दधीचिके पुत्र थे। जिस समय देवताओंकी याचनापर श्रीदधीचिजीने अपनी अस्थियाँ उनको प्रदान कीं, ऋषि-पत्नी सुवर्चा उस समय आश्रमसे कहीं बाहर गयी हुई थीं। जब वे आश्रममें आयीं और देवताओंकी स्वार्थपरतासे पतिकी मृत्युका समाचार उन्होंने सुना तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उस पतिव्रताने पतिलोक जानेका विचारकर पवित्र लकड़ियोंद्वारा एक चिता तैयार की। उसी समय श्रीशिवजीकी प्रेरणासे आकाशवाणी हुई कि—'प्राज्ञे! ऐसा साहस मत करो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे उदरमें मुनिका तेज वर्तमान है।' उसे सुनकर वह मुनिपत्नी क्षणभरके लिये विस्मयमें पड़ गयी। परंतु उस सती साध्वी सुवर्चाको तो पतिलोककी प्राप्ति ही अभीष्ट थी, अतः उसने अपने उदरको विदीर्णकर दिव्य स्वरूपधारी अपने पुत्रको पीपलके समीप रख दिया और स्वयं स्वामीमें चित्त लगाकर अग्निको प्रणामकर चितामें प्रवेश किया और पतिसहित दिव्यलोकको चली गयीं।

पीपलके वृक्षोंने उस बालकका पालन किया था। इसलिये आगे चलकर वह पिप्पलाद नामसे प्रसिद्ध हुआ। ये भगवान् शिवके अंशसे प्रादुर्भूत हुए थे और महान् भगवद्भक्त तथा ज्ञानी थे।

प्रश्नोपनिषद्‌में वर्णन आता है कि भरद्वाजपुत्र सुकेशा, शिविकुमार सत्यकाम, गर्गगोत्रोत्पन्न सौर्यायणी, कोसलदेशीय आश्वलायन, विदर्भनिवासी भार्गव और कत्यऋषिके प्रपौत्र कबन्धी—ये सबके सब परब्रह्मकी खोज करते हुए हाथमें समिधा लेकर भगवान् पिप्पलाद ऋषिके पास गये। पिप्पलाद ऋषिने इन्हें अध्यात्मज्ञान प्रदान किया। इन ऋषियोंको दिया गया उपदेश ही प्रश्नोपनिषद् नामसे विख्यात है।

श्रीनिमिजी

ये महाराज इक्ष्वाकुके पुत्र थे और महर्षि गौतमके आश्रमके समीप वैजयन्त नामक नगर बसाकर वहाँका राज्य करते थे। एक बार निमिने एक सहस्र वर्षमें समाप्त होनेवाले एक यज्ञका आरम्भ किया और उसमें श्रीवसिष्ठजीका ऋत्विजके रूपमें वरण किया। श्रीवसिष्ठजीने कहा कि पाँच सौ वर्षके यज्ञके लिये इन्द्रने मेरा पहले ही वरण कर लिया है, अतः इतने समयतक तुम ठहर जाओ। राजाने कुछ उत्तर नहीं दिया, इससे वसिष्ठजीने यह समझकर कि राजाने उनका कथन स्वीकार कर लिया है, इन्द्रका यज्ञ कराने चले गये। विचारवान् निमिने यह सोचकर कि शरीर तो क्षणभंगुर है, अतः बिलम्ब करना उचित नहीं है, उसी समय महर्षि गौतमादि अन्य होताओंद्वारा यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। इन्द्रका यज्ञ समाप्त होते ही, 'मुझे निमिका यज्ञ कराना है' इस विचारसे वसिष्ठजी तुरंत ही आ गये। राजा उस समय सो रहे थे। यज्ञमें अपने स्थानपर गौतमको होताका कर्म करते देखकर वसिष्ठजीने सोते हुए राजाको शाप दे दिया कि इसने मेरी अवज्ञा करके सम्पूर्ण कर्मका भार गौतमको सौंपा है, इसलिये यह देहहीन हो जाय।

वसिष्ठजीने शाप दिया है, यह जानकर राजा निमिने भी उनको शाप दे दिया कि गुरुने मुझसे बिना बातचीत किये अज्ञानतापूर्वक मुझ सोये हुएको शाप दिया है, इसलिये उनकी भी देह नष्ट हो जायगी। इस प्रकार शाप देकर राजाने शरीर छोड़ दिया। महर्षि गौतम आदिने निमिके शरीरको तैल आदिमें रखकर उसे यज्ञकी समाप्तितक सुरक्षित रखा।

यज्ञकी समाप्तिपर जब देवतालोग अपना भाग ग्रहण करनेके लिये आये, तब ऋत्विजोंने कहा कि यजमानको वर दीजिये। देवताओंके पूछनेपर कि क्या वर चाहते हो, निमिने सूक्ष्म शरीरके द्वारा कहा कि देह धारण करनेपर उससे वियोग होनेमें बहुत दुःख होता है। इसलिये मैं देह नहीं चाहता। समस्त प्राणियोंके नेत्रोंपर मेरा निवास हो।

देवताओंने आशीर्वाद दिया कि राजा निमि बिना शरीरके ही प्राणियोंके नेत्रोंपर अपनी इच्छाके अनुसार निवास करें। वे वहाँ रहकर सूक्ष्म शरीरसे भगवान्‌का चिन्तन करते रहें। पलक उठने और गिरनेसे उनके अस्तित्वका पता चलता रहेगा। इसके बाद महर्षियोंने यह सोचकर कि राजाके न रहनेपर लोगोंमें अराजकता फैल जायगी। निमिके शरीरका मन्थन किया, उस मन्थनसे एक कुमार उत्पन्न हुआ। जन्म लेनेके कारण उसका नाम 'जनक' हुआ—विदेहसे उत्पन्न होनेके कारण 'वैदेह' और मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण उसी बालकका नाम 'मिथिल' हुआ। उसीने मिथिलापुरी बसायी। इस वंशके सभी राजा आत्मविद्याश्रयी अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ होते आये हैं। मुनियोंके आशीर्वादसे यह वंश सदासे योगी, ज्ञानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भक्त रहा है। इसी कुलमें श्रीसीरध्वज जनकके यहाँ आदिशक्ति श्रीसीताजीने अवतार लिया था।

श्रीभरद्वाजजी

श्रीभरद्वाजजी श्रीरामचरणकमलानुरागी संत थे। इनकी भगवद्भक्ति लोकप्रसिद्ध है। श्रीरामायणजीकी कथाका प्रचार तो इनके ही द्वारा हुआ। ये श्रीगंगायमुनाजीके परम पावन संगमपर प्रयागराजमें रहते थे। प्रत्येक मकरमें समस्त ऋषि कल्पवास करने आते थे और इन्हींके आश्रममें आकर ठहरते थे। एक बार याज्ञवल्क्य ऋषिको इन्होंने आग्रहपूर्वक कुछ दिनके लिये और रख लिया। रखा था भगवत्कथा सुननेके लिये। तब याज्ञवल्क्यजीने समस्त रामकथा इन्हें सुनायी। वही रामसुरसरिधारा श्रीरामायण हुई, जो त्रैलोक्यको पावन करनेमें समर्थ हुई।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी वनवासके समय सर्वप्रथम इन्हींके आश्रमपर आये। इन्होंने प्रार्थना की कि १४ वर्षतक यहीं रहिये। भगवान्ने कहा—'यहाँसे अवध समीप है, रोज भीड़ लगी रहेगी।' इनकी आज्ञा लेकर भगवान् इनके बताये हुए स्थान चित्रकूटपर चले गये।

महामुनि भरद्वाज श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ऋषि थे। इनकी एक कन्या याज्ञवल्क्यजीको विवाही थी, दूसरी विश्रवामुनिको, जिनके पुत्र कुबेरजी हुए। ये अद्वितीय रामानुरागी थे।

श्रीदक्षजी

'दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयम्भुवः' (श्रीमद्भा०) अर्थात् दक्षजी ब्रह्माजीके अँगूठेसे उत्पन्न हुए। स्वायम्भुव मनुकी कन्या प्रसूति दक्षपत्नी हुईं। प्रजापति दक्षने क्षीरसागरके उत्तर तटपर स्थित होकर देवी जगदम्बिकाको पुत्रीरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा तथा उनके प्रत्यक्ष दर्शन की कामनासे उन्हें हृदयमन्दिरमें विराजमान करके कठिन तप किया। उनकी सात्त्विक आराधनासे सन्तुष्ट होकर पराम्बाने दर्शन देकर पुत्री होनेका वचन दिया और सती नामसे वे उनकी पुत्री बनीं।

प्रजाकी वृद्धिका कार्य जैसा दक्षद्वारा हुआ, ऐसा किसीसे नहीं हुआ। इसलिये ब्रह्माजीने इन्हें प्रजापतियोंका नायक बना दिया। प्रजापतियोंके भी अधिनायक बन जानेसे दक्ष उन्मत्तसे हो गये। एक बार उनके आगमनपर शिव अपने आसनपर ही बैठे रहे तो इसे दक्षने अपना अपमान समझा और देवसभामें ही उनको बहुत दुर्वचन कहे।

कालान्तरमें दक्षने रुद्रका अपमान करनेके लिये ही वृहस्पतिसव नामक यज्ञ किया। यज्ञमें शिवका अपमान देखकर सतीने शरीरत्याग कर दिया। सतीके तन-त्यागको सुनकर श्रीशिवके गणोंने दक्षका यज्ञ विध्वंस कर दिया। गणनायक वीरभद्रने दक्षके सिरको मरोड़कर धड़से अलगकर यज्ञकी दक्षिणाग्निमें डाल दिया। अन्तमें यज्ञशालाको जलाकर शम्भु-गण कैलासको लौट आये।

श्रीब्रह्माजीकी सलाहसे सभी देवताओंने ब्रह्माजीको भी साथ लेकर कैलासपर जाकर स्तुति-प्रार्थना करके भगवान् शिवको प्रसन्न किया। तत्पश्चात् शिवाज्ञानुसार दक्षके धड़से बकरेका सिर जोड़ दिया गया। श्रीशिवजीकी कृपासे दक्ष सोकर जागे हुए के समान जी उठे। दक्षका हृदय शुद्ध हो चुका था, उन्होंने शिवकी स्तुति की। इसके बाद यज्ञ सानन्द सम्पन्न हुआ।

मैंने इस शरीरसे शिवका अपमान किया है—यह विचारकर ग्लानिमें भरकर प्रजापति दक्षने अपना वह शरीर त्यागकर प्रचेतागणकी मारिषा नामकी पत्नीके गर्भसे पुनः जन्म लिया। इन्होंने जन्म लेते ही अपनी कान्तिसे समस्त तेजस्वियोंका तेज छीन लिया। श्रीब्रह्माजीने इन्हें पुनः प्रजापतियोंके नायक पदपर अभिषिक्त कर दिया। ये कर्म करनेमें बड़े दक्ष थे, इसीसे इनका नाम दक्ष हुआ।

महर्षि श्रीशरभंगजी

तपोभूमि दण्डकारण्य-क्षेत्रमें अनेकानेक ऊर्ध्वरेता ब्रह्मवादी ऋषियोंने घोर तपस्याएँ की हैं। इन ऋषियोंमेंसे शरभंगजी भी एक थे। अपनी उत्कट तपस्याद्वारा इन्होंने ब्रह्मलोकपर विजय प्राप्त कर ली थी। देवराज इन्द्र इन्हें सत्कारपूर्वक ब्रह्मलोकतक पहुँचानेके निमित्त आये। उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय इन्हें पता चला कि राजीवलोचन कोसलकिशोर श्रीराघवेन्द्र रामभद्र भ्राता लक्ष्मण एवं भगवती श्रीसीताजीसहित इनके आश्रमकी ओर पधार रहे हैं। ज्यों-ही भगवान् श्रीरामके आगमनका शुभ समाचार इनके कानोंमें पहुँचा, त्यों-ही वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अहो! लौकिक और वैदिक समस्त धर्मोंका पालन जिन भगवान्‌के चरण-कमलोंकी प्राप्तिके लिये ही किया जाता है—वे ही भगवान् स्वयं जब मेरे आश्रमकी ओर पधार रहे हैं, तब उन्हें छोड़कर ब्रह्मलोकको जाना निष्प्रयोजनीय ही है—ऐसा निश्चयकर इन्होंने देवराज इन्द्रको विदा कर दिया।

श्यामसुन्दर भगवान् श्रीराम इनके आश्रमपर पधारे। भगवान् श्रीरामको देखते ही प्रेमवश इनके लोचन भगवान्‌के रूप-सुधा-मकरन्दका साग्रह पान करने लगे और उसी सुधारसका पान करते हुए ये दिव्य धामको चले गये।

श्रीसंजयजी

श्रीमद्भगवद्गीतामें संजय प्रधान व्यक्ति हैं। श्रीव्यासजीकी कृपासे संजयको दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई और इनके मुखसे ही धृतराष्ट्रने श्रीमद्भगवद्गीता तथा महाभारत-युद्धके प्रत्येक अंशका यथार्थ वर्णन सुना था। संजय गावल्गण नामक सूतके पुत्र थे। ये बड़े शान्त, शिष्ट, ज्ञान-विज्ञानसम्पन्न, सदाचारी, निर्भय, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, स्पष्टभाषी और श्रीकृष्णके परम भक्त तथा उनको तत्त्वसे जाननेवाले थे।

श्रीशमीकजी

परम तपस्वी श्रीशमीकजी वनमें गौओंके रहनेके स्थानमें बैठते थे और गौओंका दूध पीते समय बछड़ोंके मुखसे जो फेन निकलता था, उसीको पीकर निरन्तर तपमें निरत रहते थे। ये परम शान्त, दान्त, तितिक्षु एवं क्षमाशील सन्त थे। वनमें शिकार खेलनेके लिये गये हुए राजा परीक्षित् भूख-प्याससे व्याकुल होकर इनके आश्रममें आये, परंतु मौन व्रत लेकर समाधिमें स्थित होनेके कारण ऋषिद्वारा राजाका समयोचित समुचित सत्कार न हुआ। क्षुधार्त, तृषार्त अतः हतविवेक राजा परीक्षित् मुनिकी स्थितिको बिना समझे ईर्ष्या और क्रोधके वशीभूत हो धनुषकी कोरसे ऋषिके गलेमें मृत सर्पको डालकर घर चले आये। जब ऋषिकुमार श्रृंगीको यह पता चला तो राजाके व्यवहारसे क्षुभित होकर उसने शाप दे दिया कि—'आजसे सातवें दिन राजा परीक्षित्‌को तक्षक नाग डँस लेगा।' जिस समय ब्रह्मर्षि शमीकको यह सब मालूम हुआ तो उन्होंने कहा—मूर्ख बालक! तूने थोड़ी-सी गलतीके लिये इतना बड़ा शाप देकर बहुत बड़ा अपराध किया। तुझे भगवत्-स्वरूप राजाको साधारण मनुष्योंके समान नहीं समझना चाहिये। राजा ईश्वरका अंश होता है।

सम्राट् परीक्षित् तो बड़े यशस्वी और धर्मधुरन्धर हैं, वे भगवान्‌के प्यारे भक्त हैं। वे ही राजर्षि भूख-प्याससे व्याकुल होकर हमारे आश्रमपर आये थे। वे शापके योग्य कदापि नहीं थे, इस नासमझ बालकने निष्पाप राजाका अपराध किया है, सर्वात्मा भगवान् कृपा करके इसे क्षमा करें। महामुनि शमीकको पुत्रके अपराधपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। राजा परीक्षित्‌ने जो उनका अपमान किया था, उसपर तो उनका ध्यान ही नहीं गया। यही साधु पुरुषोंके स्वभावकी विशेषता है। तत्पश्चात् महर्षि शमीकने अपने गौरमुख नामवाले परम संयमी शिष्यद्वारा राजाको शापकी सूचना भेजी तथा स्वयं राजाकी मंगलकामना की।

श्रीउत्तानपादजी

महाराज उत्तानपाद स्वायम्भुव मनुके ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी दो रानियाँ थीं—सुनीति और सुरुचि। परमभागवत ध्रुव इन्हीं महाराज उत्तानपादके पुत्र हैं। इनका विवरण छप्पय ९ में पृ० ६५ पर ध्रुवके प्रसंगमें आया है।

श्रीयाज्ञवल्क्यजी

ये ब्रह्माजीके अवतार हैं और वेद एवं अध्यात्मज्ञानके महान् आचार्य हैं। याज्ञवल्क्यजीने यजुर्वेदसंहिता अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु वैशम्पायनजीसे पढ़ी थी। एक बार इनसे गुरु वैशम्पायनजीकी अवज्ञा हो गयी थी, जिससे वैशम्पायनजी रुष्ट होकर बोले—तुमने अबतक मुझसे जो कुछ अध्ययन किया है, उसका शीघ्र-से-शीघ्र त्याग कर दो और यहाँसे शीघ्र चले जाओ। याज्ञवल्क्यजीने यजुःश्रुतियोंको वमन कर दिया और वहाँसे चल दिये। उन वमनरूपसे पड़े हुए यजुर्वेदके अत्यन्त सुरम्य मन्त्रोंको देखकर अन्यान्य मुनियोंने तीतरका रूप धरकर ग्रहण कर लिया। यही कारण है कि वह अत्यन्त मनोहर यजुःशाखा तैत्तिरीय शाखा कहलायी। तत्पश्चात् याज्ञवल्क्यने वैशम्पायन भी जिनको न जानते हों, ऐसी यजुःश्रुतियोंकी प्राप्तिके लिये सूर्यभगवान्‌की आराधना की। इनकी उपासनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने अश्वरूप धारणकर उनकी कामनानुसार उन्हें यजुःश्रुतियाँ प्रदान कीं, जो शुक्लयजुर्वेदकी वाजसनेय शाखाके नामसे प्रसिद्ध हैं। वाजसनेयी संहिताके आचार्य होनेसे इनका नाम वाजसनेय भी हुआ। ये शतपथ ब्राह्मण तथा बृहदारण्यक उपनिषद्के भी द्रष्टा ऋषि हैं। गार्गी, मैत्रेयी और कात्यायनीसे ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी जो इनका विचार विमर्श हुआ, वह बड़ा ही मार्मिक, कल्याणकारी तथा अपूर्व है। ये विदेहराज जनकजीके गुरु थे। इनके नामसे एक स्मृति भी उपलब्ध होती है।

इन्होंने श्रीकाकभुसुण्डिजीसे श्रीरामचरित श्रवण किया और महर्षि भरद्वाजको सुनाया था—***तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥***

इस प्रकार पृथ्वीपर श्रीरामकथाके प्रचारमें इनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है।

राजर्षि निमि और नौ योगीश्वर

कबि हरि करभाजन भक्ती रत्नाकर भारी।
अंतरिच्छ अरु चमस अननिता पधति उधारी॥
प्रबुध प्रेम की रासि भूरिदा आबिरहोता।
पिप्पल द्रुमिल प्रसिद्ध भवाब्धि पार के पोता॥
जयंति नंदन जगत के त्रिबिध ताप आमय हरन।
निमि अरु नव जोगेस्वरा पादत्रान की हौं सरन॥ १३॥

मैं राजा निमिजी और नौ योगीश्वरोंकी चरणपादुकाओंकी शरणमें हूँ। कवि, हरि और करभाजनजी भक्तिके अथाह समुद्र हैं। अन्तरिक्ष और चमसजी वैष्णव-उपासनामें अनन्यताकी परिपाटीको चलानेवाले हैं। प्रबुद्धजी प्रेमकी राशि हैं। आविर्होत्रजी ज्ञान और भक्तिके उदार दाता हैं। पिप्पलजी और द्रुमिलजी प्राणियोंको भवसागरसे पार करनेवाले प्रसिद्ध जहाज हैं। श्रीऋषभदेवजीकी पत्नी जयन्तीदेवीको आनन्दित करनेवाले उनके ये नौ पुत्र संसारके तीनों तापोंको तथा मानसिक रोगोंको हरनेवाले हैं॥ १३॥

कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन—ये नौ योगीश्वर हैं। ये भगवान् वासुदेवके अंशावतार श्रीऋषभदेवजीके पुत्र हैं। ये महाभागवत और भागवत धर्मके विज्ञाता हुए हैं। श्रीमद्भागवत-महापुराणके एकादश स्कन्धके दूसरेसे पाँचवें अध्यायमें इनका मिथिलाधिपति राजर्षि निमिसे संवाद वर्णित है, जिसमें इन योगीश्वरोंने महाराज निमिके पूछनेपर उनसे क्रमशः भागवत धर्म, भगवद्भक्तका लक्षण, मायाका स्वरूप, उससे पार होनेका उपाय, परब्रह्म परमात्मा नारायणका स्वरूप, कर्मयोग, भगवान्‌के अवतार और उनकी लीलाएँ, भक्तिहीन पुरुषोंकी गति और भगवान्‌की पूजा-विधिका वर्णन किया।

महाराज निमि और नौ योगीश्वरोंका यह पवित्र संवाद छप्पय १० में पृ० ८२ पर भी आया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवधाभक्तिके आचार्य

श्रवन परीच्छित सुमति ब्यास सावक संकीरतन।
सुठि सुमिरन प्रहलाद पृथु पूजा कमला चरनन मन॥
बंदन सुफलक सुवन दास्य दीपत्ति कपीस्वर।
सख्यत्वे पारत्थ समर्पन आतम बलि धर॥
उपजीवी इन नाम के एते त्राता अगति के।
पद पराग करुना करौ (जे) नेता नवधा भगति के॥ १४॥

श्रवण आदि नौ प्रकारकी भक्तिके जो मुख्य आचार्य हैं, वे अपने चरणकमलोंकी रज देते हुए हम दयनीय दासोंपर करुणा (दया) करें। बुद्धिमान् परीक्षित्जी श्रवणभक्तिके तथा व्यासपुत्र शुकदेवजी कीर्तनभक्तिके आचार्य हैं, सुन्दर रूपके स्मरण करनेवालोंमें प्रह्लादजी, अष्टयाम भगवच्चरणसेवनमें मन देनेवालोंमें लक्ष्मीजी और विधिसमेत पूजन-भक्तिमें पृथुजी प्रधान हैं। वन्दनभक्तिमें श्वफल्क-पुत्र अक्रूरजी और दास्यभक्तिको प्रकाशित करनेवालोंमें श्रीहनुमान्जी सर्वश्रेष्ठ हैं। सख्यरसके उपासकोंमें अर्जुन और सर्वस्वसमेत आत्मसमर्पण करनेवालोंमें राजा बलि अग्रगण्य हैं। मैं नवधा भक्तिके इन आचार्योंके नामके आश्रित हूँ अर्थात् इनका नाम लेकर जीविका चलाता हूँ, जीवन धारण करता हूँ। ये जीवोंको नरकगमन आदि दुर्गतियोंसे बचाते हैं। इन श्रेष्ठ भागवतोंकी कृपासे ही नवधा भक्तिका आचरण सम्भव है॥ १४॥

परमभागवत श्रीप्रह्लादजी भक्तिके नौ प्रकारों (नवधा भक्ति)-का निरूपण करते हुए श्रीमद्भागवत (७।५।२३)-में कहते हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

अर्थात् भगवान् विष्णुकी भक्तिके नौ भेद हैं— भगवान्‌के गुण, लीला, नाम आदिका श्रवण; उन्हींका कीर्तन; उनके रूप, नाम आदिका स्मरण; उनके चरणोंकी सेवा; पूजा-अर्चा; वन्दन, दास्य; सख्य और आत्मनिवेदन।

नवधा भक्तिके आचार्योंका वर्णन निम्न श्लोकमें इस प्रकार किया गया है—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्॥

श्रवण भक्तिमें राजर्षि परीक्षित्, कीर्तनमें व्यासजीके पुत्र श्रीशुकदेवजी, भगवत्स्मरणमें प्रह्लादजी, भगवान्‌के चरण-कमलोंकी सेवामें श्रीलक्ष्मीजी, पूजनमें आदिराज पृथु, चरण-कमलोंके वन्दनमें अक्रूरजी, दास्यभक्तिमें कपिराज श्रीहनुमान्जी, सख्यभक्तिमें नररूप श्रीअर्जुनजी और सर्वस्व-निवेदनमें श्रीबलिजी हुए हैं। इन सभीको भगवत्प्राप्ति हुई है।

नवधा भक्तिके इन आचार्योंका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीपरीक्षित्जी

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीपरीक्षित्जीकी श्रवण-भक्तिकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

श्रवण रसिक कहूं सुने न परीक्षित से पानहू करत लागी कोटि गुणी प्यास है।
मुनिमन मांझ क्यों हूँ आवत न ध्यावत हूँ वही गर्भमध्य देखि आयो रूप रास है॥
कही शुकदेव जू सों टेव मेरी लीजै जानि प्रान लागे कथा नहीं तक्षक को त्रास है।
कीजिये परीक्षा उर आनी मति सानी अहो बानी विरमानी जहाँ जीवन निरास है॥ ९७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भगवान्‌का गुणानुवाद सुनकर अपूर्व सुखका अनुभव करते हैं, ऐसे श्रवण-रसिक भक्त अनेकों हैं, पर परीक्षित्‌के समान श्रवण-रसिक भक्त सुननेमें नहीं आये। वे जैसे-जैसे कथारूपी अमृतका कर्णपुटोंसे पान करते थे, वैसे-ही-वैसे उनकी प्यास अर्थात् कथाश्रवणकी अभिलाषा करोड़ों गुनी बढ़ती जाती थी। समाधि लगाकर निरन्तर ध्यान करनेपर मुनियोंके हृदयमें जो भगवान् नहीं आते हैं, उन्हीं रूपके समूह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन परीक्षित्‌जीने अपनी माताके गर्भमें ही किया था। श्रीमद्भागवतका कथाश्रवण करते हुए उन्होंने श्रीशुकदेवजीसे कहा कि आप हमारी टेवको जान लीजिये, मेरे प्राण कथामें लीन हो रहे हैं, मुझे साँपके डँसनेका भय बिलकुल नहीं है। आप चाहें तो परीक्षा लेकर देख लें। श्रीशुकदेवजीने मनमें मान लिया कि राजाकी बुद्धि कथामें लीन हो गयी है, राजाकी श्रवण-निष्ठा अनुपम है। सातवें दिन कथा कहकर जैसे ही शुकदेवजीकी वाणीने विश्राम किया, वैसे ही राजाने शरीर त्याग दिया॥ ९७॥

श्रीपरीक्षित्‌जीसे सम्बन्धित विवरण छप्पय १० पृ० ८६ पर भी आया है।

श्रीशुकदेवजी

श्रीशुकदेवजी कीर्तन भक्तिके आचार्य हैं। श्रीप्रियादासजी महाराज उनके सम्बन्धमें निम्न कवित्तमें कहते हैं—

गर्भते निकसि चले बनहीं में कीयो बास व्याससे पिता नहिं उत्तरहु दियो है।
दशम श्लोक सुनि गुनि मति हरि गई लई नई रीति पढ़ि भागवत लियो है॥
रूप गुन भरि सह्यो जात कैसे करि आए सभा नृप ढरि भीज्यौ प्रेमरस हियो है।
पूछे भक्त भूप ठौर ठौर परे भौंर जाय गाय उठे जबै मानो रंगझर कियो है॥ ९८॥

परमहंस श्रीशुकदेवजी माताके गर्भसे जन्म लेते ही वनको चल दिये और वहीं रहकर भजन करने लगे। वात्सल्यप्रेमवश पुत्र! पुत्र!! पुकारनेपर भी वेदव्याससरीखे पिताको जिन्होंने उत्तर भी नहीं दिया था, वे ही शुकदेव व्यासशिष्योंद्वारा श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके श्लोकोंको सुनकर मोहित हो गये। श्लोकोंके अर्थका मनन करके उनकी बुद्धि भगवान्‌के गुणानुवादोंमें रम गयी। विचित्र बात तो यह हुई कि पुकारनेपर उत्तर न देकर जिनकी उपेक्षा की थी, उन्हींके समीप आकर उनकी शिष्यता स्वीकार की और श्रीमद्भागवतको पढ़ा। श्रीकृष्णके अद्भुत रूप और गुणोंसे शुकदेवजीका हृदय भर गया। प्रतिक्षण बढ़नेवाले भावोंका भार कैसे सहा जाय। फिर आप गंगातटपर आत्मोद्धारके निमित्त राजा परीक्षित्‌द्वारा आयोजित ऋषियोंकी सभामें पधारे। कृपावश उनका हृदय राजाका उद्धार करनेके लिये पसीज गया। भक्तभूप राजा परीक्षित्‌ने सात दिनोंमें ही अपने उद्धारका उपाय पूछा। जिसे सुनकर ऋषिलोग जहाँ-तहाँ विचारने लगे, पर वे दुविधाके चक्करमें पड़ गये। कुछ भी निर्णय न कर सके। तब शुकदेवजी भावविभोर होकर भगवद्‌गुणानुवाद गा उठे, उस समय ऐसा लगा मानो वे भक्तिरसके आनन्दकी निरन्तर वर्षा कर रहे हैं॥ ९८॥

श्रीशुकदेवजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण छप्पय ७ पृ० ५६ पर भी आया है।

श्रीप्रह्लादजी

श्रीप्रह्लादजी भगवान्‌के स्वरूप-स्मरणरूपी भक्तिके आचार्य हैं। श्रीप्रियादासजी महाराज उनकी भक्तिपर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

सुमिरन साँचो कियो लियो देखि सबहीं में एक भगवान् कैसे काटै तरवार है।
काटिबो खडग जल बोरिबो सकति जाकी ताहिको निहारै चहूँ ओर सो अपार है॥
पूछे ते बतायो खम्भ तहां ही दिखायो रूप प्रगट अनूप भक्तवाणी ही सों प्यार है।
दुष्ट डार्‌यौ मारि गरे आंतें लई डारि तऊ क्रोधको न पार कहा कियो यों बिचार है॥ ९९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तवर प्रह्लादजीने सच्चे हृदयसे भगवान्‌का सच्चा स्मरण किया। उन्होंने देख लिया कि एक ही भगवान् चराचरमें सर्वत्र विराजमान हैं, अब भला उन्हें तलवार कैसे काट सकती थी! जिसकी शक्तिसे तलवारमें काटनेकी और जलमें डुबानेकी शक्ति है, उसी भगवान्‌को वे तलवार तथा जलमें देखते थे। इसलिये उन्हें तलवार कैसे काटे और जल कैसे डुबाये, वे अपने तथा संसारमें चारों ओर अपार-अनन्त भगवन्तको ही देखते थे। जब हिरण्यकशिपुने पूछा—तेरा रक्षक भगवान् कहाँ है? प्रह्लादजीने कहा—वह सर्वत्र है। हिरण्यकशिपुने कहा—तो इस खम्भेमें क्यों नहीं दीखता है? प्रह्लादजीने कहा—मुझे तो इस खम्भेमें भी दिखायी पड़ता है। यह सुनकर उसने क्रोधवश खम्भेमें बड़े जोरसे घूँसा मारा। तब खम्भेसे प्रकट होकर भगवान्‌ने अपना अनुपम रूप दिखाया; क्योंकि भगवान्‌को तो भक्तवाणीसे ही प्यार है। फिर भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको मार डाला। उसके पेटको फाड़कर उसकी आँतें अपने गलेमें डाल लीं। फिर भी उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ। पता नहीं, अब और कौन-सा कार्य करनेका विचार है॥ ९९॥

डरे शिव अज आदि देख्यो नहीं क्रोध ऐसो आवत न ढिंग कोऊ लछिमी हूं त्रास है।
तब तो पठायो प्रह्लाद अहलाद महा अहो भक्ति भाव पग्यो आयो प्रभु पास है॥
गोद में उठाइ लियो शीस पर हाथ दियो हियो हुलसायो कही वाणी विनयरास है।
आई जग दया लगि पर्‌यो श्रीनृसिंहजू को अर्‌यो यों छुटावो कर्‌यो माया ज्ञान नास है॥ १००॥

नृसिंह भगवान्‌के अति भयंकर रूपको देखकर ब्रह्माजी आदि सभी देवगण भयभीत हो गये। उन्होंने आजतक ऐसा क्रोध नहीं देखा था। डरके मारे कोई भी समीप नहीं आता था। यहाँतक कि लक्ष्मीजीको भी उनके पास आनेमें भय लगता था। तब ब्रह्माजीने उनका क्रोध शान्त करनेके लिये प्रह्लादजीको उनके समीप भेजा। नृसिंहजीके दर्शनोंसे प्रह्लादजीको अति प्रसन्नता हुई, वे भक्तिभावमें निमग्न नृसिंहजीके पास पहुँचे। भगवान्‌ने प्रह्लादको गोदमें उठा लिया और उनके सिरपर हाथ फेरा। प्रभुके करकमलका कोमल स्पर्श पाकर उनका हृदय आनन्दित हो गया। वे विनम्रतापूर्वक प्रभुकी स्तुति करने लगे। फिर 'वर माँगो' ऐसा नृसिंहभगवान्‌के कहनेपर प्रह्लादजीको संसारी जीवोंपर दया आ गयी। उन्होंने भगवान्‌के श्रीचरणोंमें लगकर यह वर माँगा कि आप मायासे बँधे जीवोंको छुड़ाइये। मायाने ही लोगोंके ज्ञानका नाश कर दिया है। इस वरको पानेके लिये प्रह्लादजीने मचलकर हठ किया॥ १००॥

भक्त प्रह्लादजीके विषयमें विवरण छप्पय ५ में नृसिंहावतारके प्रकरणमें पृ० ४४ पर भी आया है।

भगवती श्रीलक्ष्मीजी

भगवती लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुकी नित्य शक्ति हैं। वे आठों याम भगवान्‌के श्रीचरणोंकी सेवामें लीन रहती हैं। भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब भगवती महालक्ष्मी भी अवतीर्ण होकर उनकी प्रत्येक लीलामें सहयोग देती हैं। इनके आविर्भावके अनेक आख्यान पुराणोंमें आते हैं। एक आख्यानके अनुसार महर्षि भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे एक त्रिलोकसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थी। इसलिये उसका नाम लक्ष्मी रखा गया। धीरे-धीरे बड़ी होनेपर लक्ष्मीने भगवान् नारायणके गुण-प्रभावका वर्णन सुना। इससे उनका हृदय भगवान्‌में अनुरक्त हो गया। वे भगवान् नारायणको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये समुद्रतटपर घोर तपस्या करने लगीं। उन्हें तपस्या करते-करते एक हजार वर्ष बीत गये। उनकी परीक्षा लेनेके लिये देवराज इन्द्र भगवान् विष्णुका रूप धारण करके लक्ष्मीदेवीके पास आये और उनसे वर माँगनेके लिये कहा—लक्ष्मीजीने उनसे विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये कहा। इन्द्र वहाँसे लज्जित होकर लौट गये। अन्तमें भगवती लक्ष्मीको कृतार्थ करनेके लिये स्वयं भगवान् विष्णु पधारे। भगवान्‌ने देवीसे वर माँगनेके लिये कहा। उनकी प्रार्थनापर भगवान्‌ने उन्हें विश्वरूपका दर्शन कराया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भगवान्‌का गुणानुवाद सुनकर अपूर्व सुखका अनुभव करते हैं, ऐसे श्रवण-रसिक भक्त अनेकों हैं, पर परीक्षित्‌के समान श्रवण-रसिक भक्त सुननेमें नहीं आये। वे जैसे-जैसे कथारूपी अमृतका कर्णपुटोंसे पान करते थे, वैसे-ही-वैसे उनकी प्यास अर्थात् कथाश्रवणकी अभिलाषा करोड़ों गुनी बढ़ती जाती थी। समाधि लगाकर निरन्तर ध्यान करनेपर मुनियोंके हृदयमें जो भगवान् नहीं आते हैं, उन्हीं रूपके समूह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन परीक्षित्‌जीने अपनी माताके गर्भमें ही किया था। श्रीमद्भागवतका कथाश्रवण करते हुए उन्होंने श्रीशुकदेवजीसे कहा कि आप हमारी टेवको जान लीजिये, मेरे प्राण कथामें लीन हो रहे हैं, मुझे साँपके डँसनेका भय बिलकुल नहीं है। आप चाहें तो परीक्षा लेकर देख लें। श्रीशुकदेवजीने मनमें मान लिया कि राजाकी बुद्धि कथामें लीन हो गयी है, राजाकी श्रवण-निष्ठा अनुपम है। सातवें दिन कथा कहकर जैसे ही शुकदेवजीकी वाणीने विश्राम किया, वैसे ही राजाने शरीर त्याग दिया॥ ९७॥

श्रीपरीक्षित्‌जीसे सम्बन्धित विवरण छप्पय १० पृ० ८६ पर भी आया है।

श्रीशुकदेवजी

श्रीशुकदेवजी कीर्तन भक्तिके आचार्य हैं। श्रीप्रियादासजी महाराज उनके सम्बन्धमें निम्न कवित्तमें कहते हैं—

गर्भते निकसि चले बनहीं में कीयो बास व्याससे पिता नहिं उत्तरहु दियो है।
दशम श्लोक सुनि गुनि मति हरि गई लई नई रीति पढ़ि भागवत लियो है॥
रूप गुन भरि सह्यो जात कैसे करि आए सभा नृप ढरि भीज्यौ प्रेमरस हियो है।
पूछे भक्त भूप ठौर ठौर परे भौंर जाय गाय उठे जबै मानो रंगझर कियो है॥ ९८॥

परमहंस श्रीशुकदेवजी माताके गर्भसे जन्म लेते ही वनको चल दिये और वहीं रहकर भजन करने लगे। वात्सल्यप्रेमवश पुत्र! पुत्र!! पुकारनेपर भी वेदव्याससरीखे पिताको जिन्होंने उत्तर भी नहीं दिया था, वे ही शुकदेव व्यासशिष्योंद्वारा श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके श्लोकोंको सुनकर मोहित हो गये। श्लोकोंके अर्थका मनन करके उनकी बुद्धि भगवान्‌के गुणानुवादोंमें रम गयी। विचित्र बात तो यह हुई कि पुकारनेपर उत्तर न देकर जिनकी उपेक्षा की थी, उन्हींके समीप आकर उनकी शिष्यता स्वीकार की और श्रीमद्भागवतको पढ़ा। श्रीकृष्णके अद्भुत रूप और गुणोंसे शुकदेवजीका हृदय भर गया। प्रतिक्षण बढ़नेवाले भावोंका भार कैसे सहा जाय। फिर आप गंगातटपर आत्मोद्धारके निमित्त राजा परीक्षित्‌द्वारा आयोजित ऋषियोंकी सभामें पधारे। कृपावश उनका हृदय राजाका उद्धार करनेके लिये पसीज गया। भक्तभूप राजा परीक्षित्‌ने सात दिनोंमें ही अपने उद्धारका उपाय पूछा। जिसे सुनकर ऋषिलोग जहाँ-तहाँ विचारने लगे, पर वे दुविधाके चक्करमें पड़ गये। कुछ भी निर्णय न कर सके। तब शुकदेवजी भावविभोर होकर भगवद्गुणानुवाद गा उठे, उस समय ऐसा लगा मानो वे भक्तिरसके आनन्दकी निरन्तर वर्षा कर रहे हैं॥ ९८॥

श्रीशुकदेवजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण छप्पय ७ पृ० ५६ पर भी आया है।

श्रीप्रह्लादजी

श्रीप्रह्लादजी भगवान्‌के स्वरूप-स्मरणरूपी भक्तिके आचार्य हैं। श्रीप्रियादासजी महाराज उनकी भक्तिपर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

सुमिरन साँचो कियो लियो देखि सबहीं में एक भगवान् कैसे काटै तरवार है।
काटिबो खडग जल बोरिबो सकति जाकी ताहिको निहारै चहूँ ओर सो अपार है॥
पूछे ते बतायो खम्भ तहां ही दिखायो रूप प्रगट अनूप भक्तवाणी ही सों प्यार है।
दुष्ट डार्‌यौ मारि गरे आंतैं लई डारि तऊ क्रोधको न पार कहा कियो यों बिचार है॥ ९९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तवर प्रह्लादजीने सच्चे हृदयसे भगवान्‌का सच्चा स्मरण किया। उन्होंने देख लिया कि एक ही भगवान् चराचरमें सर्वत्र विराजमान हैं, अब भला उन्हें तलवार कैसे काट सकती थी! जिसकी शक्तिसे तलवारमें काटनेकी और जलमें डुबानेकी शक्ति है, उसी भगवान्‌को वे तलवार तथा जलमें देखते थे। इसलिये उन्हें तलवार कैसे काटे और जल कैसे डुबाये, वे अपने तथा संसारमें चारों ओर अपार-अनन्त भगवन्तको ही देखते थे। जब हिरण्यकशिपुने पूछा—तेरा रक्षक भगवान् कहाँ है? प्रह्लादजीने कहा—वह सर्वत्र है। हिरण्यकशिपुने कहा—तो इस खम्भेमें क्यों नहीं दीखता है? प्रह्लादजीने कहा—मुझे तो इस खम्भेमें भी दिखायी पड़ता है। यह सुनकर उसने क्रोधवश खम्भेमें बड़े जोरसे घूँसा मारा। तब खम्भेसे प्रकट होकर भगवान्‌ने अपना अनुपम रूप दिखाया; क्योंकि भगवान्‌को तो भक्तवाणीसे ही प्यार है। फिर भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको मार डाला। उसके पेटको फाड़कर उसकी आँतें अपने गलेमें डाल लीं। फिर भी उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ। पता नहीं, अब और कौन-सा कार्य करनेका विचार है॥ ९९॥

डरे शिव अज आदि देख्यो नहीं क्रोध ऐसो आवत न ढिंग कोऊ लछिमी हूं त्रास है।
तब तो पठायो प्रह्लाद अहलाद महा अहो भक्ति भाव पग्यो आयो प्रभु पास है॥
गोद में उठाइ लियो शीस पर हाथ दियो हियो हुलसायो कही वाणी विनयरास है।
आई जग दया लगि पर्‌यो श्रीनृसिंहजू को अर्‌यो यों छुटावो कर्‌यो माया ज्ञान नास है॥ १००॥

नृसिंह भगवान्‌के अति भयंकर रूपको देखकर ब्रह्माजी आदि सभी देवगण भयभीत हो गये। उन्होंने आजतक ऐसा क्रोध नहीं देखा था। डरके मारे कोई भी समीप नहीं आता था। यहाँतक कि लक्ष्मीजीको भी उनके पास आनेमें भय लगता था। तब ब्रह्माजीने उनका क्रोध शान्त करनेके लिये प्रह्लादजीको उनके समीप भेजा। नृसिंहजीके दर्शनोंसे प्रह्लादजीको अति प्रसन्नता हुई, वे भक्तिभावमें निमग्न नृसिंहजीके पास पहुँचे। भगवान्‌ने प्रह्लादको गोदमें उठा लिया और उनके सिरपर हाथ फेरा। प्रभुके करकमलका कोमल स्पर्श पाकर उनका हृदय आनन्दित हो गया। वे विनम्रतापूर्वक प्रभुकी स्तुति करने लगे। फिर 'वर माँगो' ऐसा नृसिंहभगवान्‌के कहनेपर प्रह्लादजीको संसारी जीवोंपर दया आ गयी। उन्होंने भगवान्‌के श्रीचरणोंमें लगकर यह वर माँगा कि आप मायासे बँधे जीवोंको छुड़ाइये। मायाने ही लोगोंके ज्ञानका नाश कर दिया है। इस वरको पानेके लिये प्रह्लादजीने मचलकर हठ किया॥ १००॥

भक्त प्रह्लादजीके विषयमें विवरण छप्पय ५ में नृसिंहावतारके प्रकरणमें पृ० ४४ पर भी आया है।

भगवती श्रीलक्ष्मीजी

भगवती लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुकी नित्य शक्ति हैं। वे आठों याम भगवान्‌के श्रीचरणोंकी सेवामें लीन रहती हैं। भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब भगवती महालक्ष्मी भी अवतीर्ण होकर उनकी प्रत्येक लीलामें सहयोग देती हैं। इनके आविर्भावके अनेक आख्यान पुराणोंमें आते हैं। एक आख्यानके अनुसार महर्षि भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे एक त्रिलोकसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थी। इसलिये उसका नाम लक्ष्मी रखा गया। धीरे-धीरे बड़ी होनेपर लक्ष्मीने भगवान् नारायणके गुण-प्रभावका वर्णन सुना। इससे उनका हृदय भगवान्‌में अनुरक्त हो गया। वे भगवान् नारायणको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये समुद्रतटपर घोर तपस्या करने लगीं। उन्हें तपस्या करते-करते एक हजार वर्ष बीत गये। उनकी परीक्षा लेनेके लिये देवराज इन्द्र भगवान् विष्णुका रूप धारण करके लक्ष्मीदेवीके पास आये और उनसे वर माँगनेके लिये कहा—लक्ष्मीजीने उनसे विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये कहा। इन्द्र वहाँसे लज्जित होकर लौट गये। अन्तमें भगवती लक्ष्मीको कृतार्थ करनेके लिये स्वयं भगवान् विष्णु पधारे। भगवान्‌ने देवीसे वर माँगनेके लिये कहा। उनकी प्रार्थनापर भगवान्‌ने उन्हें विश्वरूपका दर्शन कराया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनन्तर लक्ष्मीजीके इच्छानुसार भगवान् विष्णुने उन्हें पत्नीरूपमें स्वीकार किया।

लक्ष्मीजीके प्रकट होनेका दूसरा इतिहास इस प्रकार है—देवगणोंने दैत्योंसे सन्धि करके अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र-मन्थनका कार्य आरम्भ किया। मन्दराचलकी मथानी और वासुकि नागकी रस्सी बनी। भगवान् विष्णु स्वयं कच्छपरूप धारण करके मन्दराचलके आधार बने। इस प्रकार मन्थन करनेपर क्षीरसागरसे क्रमशः कालकूट विष, कामधेनु, उच्चैःश्रवा नामक अश्व, ऐरावत हाथी, कौस्तुभमणि, कल्पवृक्ष, अप्सराएँ, लक्ष्मी, वारुणी, चन्द्रमा, शंख, शार्ङ्ग धनुष, धन्वन्तरि और अमृत प्रकट हुए। क्षीरसमुद्रसे जब भगवती लक्ष्मी देवी प्रकट हुईं, तब वे खिले हुए श्वेत कमलके आसनपर विराजमान थीं। उनके श्रीअंगोंसे दिव्य कान्ति निकल रही थी। उनके हाथमें कमल था। लक्ष्मीजीका दर्शन करके देवता और महर्षिगण प्रसन्न हो गये। उन्होंने वैदिक श्रीसूक्तका पाठ करके लक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। सबके देखते-देखते वे भगवान् विष्णुके पास चली गयीं।

श्रीलक्ष्मीजीका विवरण छप्पय १ पृ० ५१ पर भी आया है।

श्रीपृथुजी

श्रीपृथुजी पूजन-भक्तिके आचार्य हैं। आप भगवान् श्रीहरिके अंशावतार और आदि राजा हैं। आपने धरतीको अपनी पुत्रीके रूपमें स्वीकार किया था, इसीलिये धरतीका एक नाम पृथ्वी भी हो गया।

महाराज पृथुने निन्यानबे अश्वमेध यज्ञोंद्वारा भगवान् श्रीहरिका भलीभाँति पूजन किया था। इससे यज्ञभोक्ता यज्ञेश्वरभगवान् अत्यन्त सन्तुष्ट हुए थे। राजा पृथु जब सौवाँ अश्वमेधयज्ञ कर रहे थे तो ईर्ष्यावश इन्द्रने अश्वका हरण कर लिया था। इन्द्रकी इस कुचेष्टासे महाराज पृथु बहुत क्रोधित हुए और इन्द्रका वध करनेको उद्यत हो गये। यह देखकर स्वयं भगवान् विष्णु इन्द्रको लेकर उनकी यज्ञशालामें प्रकट हुए और इन्द्रको क्षमा कर देनेको कहा। महाराज पृथु तो भगवान्का दर्शनकर ही कृतकृत्य हो गये थे, उन्होंने इन्द्रको गले लगा लिया।

तदनन्तर भगवान् श्रीहरिने महाराज पृथुसे वरदान माँगनेको कहा। इसपर पृथुने कहा—हे प्रभो! मुझे मोक्ष आदि तुच्छ विषयोंकी प्राप्तिकी इच्छा नहीं है, मुझे तो आप दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आपके गुणानुवादको सुनता रहूँ।* ऐसी उत्कट भक्ति थी महाराज पृथुकी भगवान् श्रीहरिके पादारविन्दोंमें!

महाराज पृथुके विषयमें विवरण छप्पय ५ पृ० ४७ पर भी आया है।

श्रीअक्रूरजी

श्रीअक्रूरजी भगवान्‌की पद-वन्दन भक्तिके आचार्य हैं। भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी उनकी भक्तिका वर्णन करते हुए कहते हैं—

चले अकरूर मधुपुरी ते विसूर नैन चली जलधारा कब देखौं छबिपूर को।
सगुन मनावैं एक देखिबोई भावैं देह सुधि बिसरावै लोटै लखि पगधूर को॥
वन्दन प्रवीन चाह निपट नवीन भई दई शुकदेव कहि जीवन की मूर को।
मिले रामकृष्ण झिले पाइ के मनोरथको खिले दृगरूप कियो हियो चूर-चूर को॥ १०१॥

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको लिवा लानेके लिये जब कंसने अक्रूरको मथुरासे भेजा, तब ये प्रेमातुर होकर नन्दगोकुलको चले। प्रेमचिन्तित अक्रूरजीके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। मार्गमें जाते हुए सोच रहे थे कि कब मैं शीघ्र जाकर शोभाधाम श्यामसुन्दरको देखूँगा। वे मन-ही-मन यही मना रहे थे कि मुझे जो यह शुभ शकुन हो रहे हैं, इनका फल प्रभुदर्शन ही हो। उन्हें दर्शनोंके अतिरिक्त और कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उन्हें अपने शरीरकी सुध-बुध नहीं थी। गोकुलमें प्रविष्ट होते ही उन्हें धूलिमें वज्र-ध्वज-अंकुश-कमलयुक्त श्रीकृष्णके चरणचिह्न दिखायी पड़े, तब वे सहसा कूद पड़े और वहीं

* न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः। महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः॥ (श्रीमद्भा० ४। २०। २४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रजरजमें लोटने लगे। वन्दनभक्तिमें परमप्रवीण श्रीअक्रूरजीके हृदयमें बिलकुल नयी प्रेममयी एक अभिलाषा प्रकट हुई। श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतमें उस उत्कण्ठाका वर्णन किया है, जो भक्तोंके जीवनमें भक्तिरूपी प्राणोंके लिये संजीवनी बूटी है। बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाई बड़े प्रेमसे अक्रूरजीसे छाती लगाकर मिले। अक्रूरजीने मार्गमें जितने मनोरथ किये थे, वे सभी पूर्ण हो गये। प्रभुकी रूपमाधुरीसे उनके नेत्र आनन्दसे खिल उठे। अक्रूरजीने अपने हृदयको प्रेमार्द्र करके प्रभुमें लीन कर दिया॥ १०१॥

श्रीअक्रूरजीसे सम्बन्धित विवरण छप्पय ९ पृ० ७२ पर भी आया है।

श्रीहनुमान्‌जी

श्रीहनुमान्‌जी भगवान्‌की दास्यभक्तिके आचार्य हैं। वे स्वयं कहते हैं—'**दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य**' अर्थात् मैं कोसलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ।

श्रीहनुमान्‌जीके जन्मके सम्बन्धमें यह कथा प्रसिद्ध है कि अपने इष्टदेव प्रभु श्रीरामजीकी सेवा करनेके लिये स्वयं भगवान् शंकर ही रुद्ररूप छोड़कर वानररूपमें अवतरित हुए थे। गोस्वामीजी इस तथ्यको दोहावली (१४२-१४३)-में इस प्रकार निरूपित करते हैं—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्र देह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥
जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरुखा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥

अर्थात् सज्जन उसी शरीरका आदर करते हैं, जिससे श्रीरामसे प्रेम हो। इसी स्नेहवश रुद्रदेह त्यागकर हनुमान्‌जीने वानरका शरीर धारण किया।

इसी प्रकार श्रीरामजीकी सेवाका आनन्द अपने मनमें जानकर ही ब्रह्माजी जामवन्त और शंकरजी हनुमान्‌जीके रूपमें अवतरित हुए।

श्रीअर्जुनजी

साक्षात् श्रीहरि ही भक्तोंपर कृपा करनेके लिये, जगत्‌के कल्याण के लिये और संसारमें धर्मकी स्थापनाके लिये नाना अवतार धारण करते हैं। वे नर-नारायण—इन दो रूपोंमें बदरिकाश्रममें तप करते हैं लोकमंगलके लिये। श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुनके रूपमें वे ही द्वापरके अन्तमें पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। अर्जुन पाण्डवोंमें मझले भाई थे अर्थात् युधिष्ठिर तथा भीमसेनसे अर्जुन छोटे थे और नकुल तथा सहदेवसे बड़े। श्रीकृष्णचन्द्रके समान ही उनका वर्ण नवजलधरश्याम था। सभी पाण्डव धर्मात्मा, उदार, विनयी, ब्राह्मणोंके भक्त तथा भगवान्‌को परम प्रिय थे; किंतु अर्जुन तो श्रीकृष्णचन्द्रसे अभिन्न, उन श्यामसुन्दरके समवयस्क सखा और उनके प्राण ही थे। श्रीकृष्णचन्द्र क्यों अर्जुनको इतना चाहते थे, क्यों उनके प्राण धनंजयमें ही बसते थे—इस प्रसंगमें एक कथा इस प्रकार है—

एक बार कैलासके शिखरपर श्रीगौरीशंकर भगवद्भक्तोंके विषयमें कुछ वार्तालाप कर रहे थे। उसी प्रसंगमें जगज्जननी श्रीपार्वतीजीने आशुतोष श्रीभोलेबाबासे निवेदन किया—'भगवन्! जिन भक्तोंकी आप इतनी महिमा वर्णित करते हैं, उनमेंसे किसीके दर्शन करानेकी कृपा कीजिये। आपके श्रीमुखसे भक्तोंकी महिमा सुनकर मेरे चित्तमें बड़ा आह्लाद हुआ है।'

प्राणप्रिया उमाके ये वचन सुनकर श्रीभोलेनाथ उन्हें साथ लेकर इन्द्रप्रस्थको चले और वहाँ कृष्ण-सखा अर्जुनके महलके द्वारपर जाकर द्वारपालसे पूछा—'कहो, इस समय अर्जुन कहाँ हैं?' उसने कहा—'इस समय महाराज शयनागारमें पौढ़े हुए हैं।' यह सुनकर पार्वतीजीने उतावलीमें कहा, 'तो अब हमें उनके दर्शन कैसे हो सकेंगे?' प्रियाको अधीर देखकर श्रीमहादेवजीने कहा—'देवि! भक्तको उसके इष्टदेव भगवान्‌के द्वारा ही जगाना चाहिये, अतः मैं इसका प्रयत्न करता हूँ।' तदनन्तर उन्होंने समाधिस्थ होकर प्रेमाकर्षणद्वारा आनन्दकन्द श्रीव्रजचन्द्रको बुलाया और कहा, 'भगवन्! कृपया अपने भक्तको जगा दीजिये, देवी पार्वती उनका दर्शन करना चाहती हैं।' श्रीमहादेवजीके कहनेसे श्यामसुन्दर तुरंत ही मित्र उद्धव, देवी रुक्मिणी और सत्यभामासहित अर्जुनके शयनागारमें गये। भाई कृष्णको आया देखकर सुभद्रा हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुईं और उनकी जगह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसत्यभामाजी विराजमान होकर पंखा डुलाने लगीं। गरमी अधिक थी, इसलिये भगवान्‌का संकेत पाकर उद्धवजी भी पंखा हाँकने लगे। इतनेमें ही अकस्मात् सत्यभामा और उद्धव चकित-से होकर एक-दूसरेकी ओर ताकने लगे। भगवान्‌ने पूछा, तुमलोग किस विचारमें पड़े हो? उन्होंने कहा—'महाराज! आप अन्तर्यामी हैं, सब जानते हैं; हमसे क्या पूछते हैं?' भगवान् श्रीकृष्ण बोले, 'बताओ तो सही, क्या बात है?' तब उद्धवने कहा कि 'अर्जुनके प्रत्येक रोमसे 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' की आवाज आ रही है। रुक्मिणीजी पैर दबा रही थीं, वे बोलीं—'महाराज! पैरोंसे भी वही आवाज आती है!' भगवान्‌ने समीप जाकर सुना तो उन्हें भी स्पष्ट सुनायी दिया कि अर्जुनके शरीरके प्रत्येक रोमसे यही 'जय कृष्ण-कृष्ण, जय कृष्ण-कृष्ण' की ध्वनि निकल रही है। तब तो भगवान् उसे जगाना भूलकर स्वयं भी उसके प्रेम-पाशमें बँध गये और गद्‌गद होकर स्वयं उसके चरण दबाने लगे।

इधर महादेव और पार्वतीको प्रतीक्षा करते हुए जब बहुत देर हो गयी, तब उन्होंने ब्रह्माजीको बुलाकर अर्जुनको जगानेके लिये भेजा। किंतु अन्त:पुरमें पहुँचनेपर ब्रह्माजी भी अर्जुनके रोम-रोमसे 'कृष्ण-कृष्ण'की ध्वनि सुनकर और स्वयं भगवान्‌को अपने भक्तके पाँव पलोटते देखकर अपने प्रेमावेशको न रोक सके एवं अपने चारों मुखोंसे वेद-स्तुति करने लगे। जब ब्रह्माजीकी प्रतीक्षामें भी श्रीमहादेव और पार्वतीको बहुत समय हो गया, तब उन्होंने देवर्षि नारदजीका आवाहन किया। अबकी बार वे अर्जुनको जगानेका बीड़ा उठाकर चले। किंतु शयनागारका अद्भुत दृश्य देख-सुनकर उनसे भी न रहा गया। वे भी अपनी वीणाकी खूँटियाँ कसकर हरि-कीर्तनमें तल्लीन हो गये। जब उनके कीर्तनकी ध्वनि भगवान् शंकरके कानमें पड़ी तो उनसे और अधिक प्रतीक्षा न हो सकी; वे भी पार्वतीजीके साथ तुरंत ही अन्त:पुरमें पहुँच गये। वहाँ अर्जुनके रोम-रोमसे 'जय कृष्ण, जय कृष्ण' का मधुर नाद सुनकर उनसे भी न रहा गया। उन्होंने भी अपना त्रिभुवन-मोहन ताण्डव-नृत्य आरम्भ कर दिया; साथ ही श्रीपार्वतीजी भी स्वर और तालके साथ सुमधुर वाणीसे हरि-गुण गाने लगीं। इस प्रकार वह सम्पूर्ण समाज प्रेमोन्मत्त हो गया। भक्तराज अर्जुनके प्रेम-प्रवाहने सभीको सराबोर कर दिया। धन्य हैं अर्जुन और धन्य है उनकी सख्य भक्ति।

श्रीबलिजी

भगवान्‌के चरणकमलोंमें अपना सर्वस्व और स्वयंको भी समर्पित कर देनेवाले भक्तोंमें श्रीबलिजी अग्रगण्य हैं। भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने महाराज बलिके सर्वस्व-समर्पण और आत्मसमर्पणकी घटनाको अपने निम्न कवित्तमें इस प्रकार प्रकट किया है—

दियो सरबसु करि अति अनुराग बलि पागि गयो हियो प्रहलाद सुधि आई है।
गुरु भरमावैं नीति कहि समुझावैं बोलि उर में न आवैं केती भीति उपजाई है॥
कयो जोई कियो सांचो भाव पन लियो अहो दीयो डर हरिहूं ने मति न चलाई है।
रीझे प्रभु रहे द्वार भये बस हारि मानी श्रीशुक बखानी प्रीति रीति सोई गाई है॥ १०२॥

राजा बलिने बड़े प्रेमके साथ वामनभगवान्‌को अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। इनका हृदय भक्तिभावमें मग्न हो गया। इन्हें अपने पितामह भक्तवर प्रह्लादकी याद आ गयी कि इन्होंने कितने संकट सहे थे, अभी मेरे ऊपर वैसा एक भी संकट नहीं आया है। नीतिका उपदेश दे-देकर गुरु शुक्राचार्य भी बहकाने और समझाने लगे कि ये भिक्षुक ब्रह्मचारी नहीं हैं। ये तो साक्षात् विष्णु हैं, ये विराट् रूप धारण करेंगे और तुम्हारा सब ले लेंगे। जहाँ जीविका नष्ट हो रही हो, वहाँ झूठ बोलनेमें भी पाप नहीं होता है। ये बातें बलिकी समझमें नहीं आयीं। तब शुक्राचार्यजीने भय दिखाया कि ये तुम्हें पृथ्वीपर नहीं रहने देंगे। परंतु राजा बलिने जो तीन पग पृथ्वी दान करनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसीपर डटे रहे और उन्होंने पूर्ण भी किया। राजा बलिने प्रेमभावसे परिपूर्ण प्रणको धारण किया था। फिर पृथ्वी और स्वर्गको दो पगोंसे नापकर भगवान्‌ने कहा कि तीसरा पग कहाँ रखूँ? तुमने तीन पग भूमि देनेकी प्रतिज्ञा की थी, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी नहीं हुई। अतः असत्य-भाषणके पापसे अब तुम्हें नरकमें जाना पड़ेगा। इस प्रकार भगवान्‌के धमकानेपर भी राजाकी बुद्धि चलायमान नहीं हुई। राजाने कहा—भगवन्! तीसरा पैर मेरे सिरपर रखिये। राजाकी इस आत्मसमर्पण भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् इनके द्वारपाल बने। अपनी हार मानकर भगवान् बलिके अधीन हो गये। उनकी भक्तिकी रीतिका श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतमें वर्णन किया है॥ १०२॥

महाराज बलिसे सम्बन्धित विवरण छप्पय ५ पृ० ४५ पर वामनावतारके प्रसंगमें भी आया है।

भगवत्प्रसादके तत्त्वको जाननेवाले श्रेष्ठ भक्त

संकर सुक सनकादि कपिल नारद हनुमाना।
बिष्वकसेन प्रहलाद बलि रु भीषम जग जाना॥
अर्जुन ध्रुव अँबरीष बिभीषन महिमा भारी।
अनुरागी अक्रूर सदा उद्धव अधिकारी॥
भगवत भुक्त अवशिष्ट की कीरति कहन सुजान।
हरि प्रसाद रस स्वाद के भक्त इते परमान॥ १५॥

भगवान्‌को अर्पण करके प्रसादके रसका स्वाद लेनेवाले ये सोलह भक्त परमश्रेष्ठ हैं—शंकरजी, शुकदेवजी, सनकादिकजी, कपिलजी, नारदजी, हनुमान्‌जी, विष्वक्सेनजी, प्रह्लादजी, बलिजी, भीष्मजी, अर्जुनजी, ध्रुवजी, अम्बरीषजी, विभीषणजी, अक्रूरजी और उद्धवजी। इनको सम्पूर्ण जगत् जानता है, इनकी बड़ी भारी महिमा है। ये सभी सर्वदा प्रसादके अधिकारी हैं। ये भगवत्प्रसादकी महिमाको भलीभाँति जानते हैं, उसका वर्णन करते रहते हैं। भगवान्‌का भोग लगाकर प्रसाद इन्हें अवश्य अर्पण करना चाहिये॥ १५॥

उपर्युक्त छप्पयमें वर्णित भगवत्प्रसादके रसिक भक्तोंका विवरण क्रमशः पृ० ५३ (छप्पय ७), पृ० ५६ (छप्पय ७), पृ० ५४ (छप्पय ७), पृ० ५४ (छप्पय ७), पृ० ५२ (छप्पय ७), पृ० ५१ (छप्पय ९), पृ० १५८ (छप्पय ३०), पृ० १२२ (छप्पय १४), पृ० ५६ (छप्पय ७), पृ० ५५ (छप्पय ७), पृ० १२५ (छप्पय १४), पृ० ६५ (छप्पय ९), पृ० ६५ (छप्पय ९), पृ० ६१ (छप्पय ९), पृ० ७२ (छप्पय ९), पृ० ६५ (छप्पय ९)-में भी आया है।

भक्ति तथा ज्ञानके प्रकाशक आचार्य

पुलह अगस्त्य पुलस्त्य च्यवन सौभरि बसिष्ठ रिषि।
कर्दम अत्रि रिचीक गर्ग गौतम सुब्यास सिषि॥
लोमस भृगु दालभ्य अंगिरा सृंगि प्रकासी।
मांडब बिस्वामित्र दुबासा सहस अठासी॥
जाबालि जमदग्नि मायादर्श कस्यप परबत पारासर पद रज धरौं।
ध्यान चतुर्भुज चित धर्‍यो तिन्हें सरन हौं अनुसरौं॥ १६॥

जिन भक्तोंने भगवान्‌के चतुर्भुजरूपका ध्यान अपने हृदयमें धारण किया, मैं उनकी शरणमें हूँ। वे हमारे सब प्रकारसे रक्षक हैं। पुलहजी, अगस्त्यजी, पुलस्त्यजी, च्यवनजी, सौभरिजी, वसिष्ठजी, कर्दमजी, अत्रिजी, ऋचीकजी, गर्गजी, गौतमजी, व्यासजीके शिष्य, लोमशजी, भृगुजी, दाल्भ्यजी, अंगिराजी, ऋष्यशृंगजी, माण्डव्यजी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वामित्रजी, दुर्वासाजी, शौनकादि अट्ठासी हजार ऋषि, जाबालिजी, जमदग्निजी, मार्कण्डेयजी, कश्यपजी, पर्वतजी और पराशरजी इनके चरणोंकी रज मैं अपने सिरपर चढ़ाता हूँ। ये ऋषिगण बड़े तपस्वी हैं। मोहरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये सदा ज्ञान-भक्तिका प्रकाश करते रहते हैं॥ १६॥

यहाँ भक्ति तथा ज्ञानके प्रकाशक इन आचार्योंका संक्षेपमें वर्णन प्रस्तुत है—

महर्षि पुलह

महर्षि पुलह ब्रह्माजीके मानसपुत्र और षोडश प्रजापतियोंमें एक हैं। ये सदा जगत्के हितसाधनमें लगे रहते हैं। इन्होंने अपने पिता ब्रह्माजीकी आज्ञासे दक्षप्रजापति और महर्षि कर्दमकी कन्याओंको पत्नीरूपसे ग्रहण करके सृष्टिकी वृद्धि की। अनेकों योनि और जातियोंकी संतान इनसे हुई। इन्होंने महर्षि सनन्दनकी शरण ग्रहण करके सम्प्रदायकी रक्षा करते हुए तत्त्वज्ञानका सम्पादन किया और फिर अपने शरणागत जिज्ञासु गौतमको उसका दान करके जगत्में उसका विस्तार किया। जगत्की आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शान्तिके लिये ये निरन्तर तपस्यामें संलग्न रहते हैं। पुराणोंमें इनके भगवद्भावकी चर्चा स्थान-स्थानपर आयी है।

महर्षि अगस्त्य

महर्षि अगस्त्य वेदोंके मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारकी कथाएँ मिलती हैं। कहीं मित्रावरुणके द्वारा वसिष्ठके साथ घड़ेमें पैदा होनेकी बात आती है तो कहीं पुलस्त्यकी पत्नी हविर्भूके गर्भसे विश्रवाके साथ इनकी उत्पत्तिका वर्णन आता है। इनके विशाल जीवनकी समस्त घटनाओंका वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ संक्षेपतः दो-एक घटनाओंका उल्लेख किया जाता है।

एक बार विन्ध्याचल इतना ऊँचा हो गया कि सूर्यके आने-जानेका स्थान ही न रहा। सूर्य महर्षि अगस्त्यके शरणागत हुए। अगस्त्यने उन्हें आश्वासन दिया और स्वयं विन्ध्याचलके पास उपस्थित हुए। विन्ध्याचलने बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे उन्हें नमस्कार किया। महर्षि अगस्त्यने कहा—'भैया, मुझे तीर्थोंमें पर्यटन करनेके लिये दक्षिण दिशामें जाना आवश्यक है, परंतु तुम्हारी इतनी ऊँचाई लाँघकर जाना बड़ा कठिन प्रतीत होता है, इसलिये कैसे जाऊँ?' उनकी बात सुनते ही विन्ध्याचल उनके चरणोंमें लेट गया। बड़ी सुगमतासे महर्षि अगस्त्यने उसे पार करके कहा कि अब जबतक मैं न लौटूँ, तुम इसी प्रकार पड़े रहना। विन्ध्याचलने बड़ी नम्रता और प्रसन्नताके साथ उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। तबसे महर्षि अगस्त्य लौटे ही नहीं और विन्ध्याचल उसी प्रकार पड़ा हुआ है।

एक बार भ्रमण करते-करते महर्षि अगस्त्यने देखा कि कुछ लोग नीचे मुँह किये हुए कुएँमें लटक रहे हैं। पता लगानेपर मालूम हुआ कि ये उन्हींके पितर हैं और उनके उद्धारका उपाय यह कि वे संतान उत्पन्न करें। बिना ऐसा किये पितरोंका कष्ट मिटना असम्भव था। अतः उन्होंने विदर्भराजसे पैदा हुई अपूर्व सुन्दरी और परम पतिव्रता लोपामुद्राको पत्नीके रूपमें स्वीकार किया। उस समय इल्वल और वातापी नामके दो दैत्योंने बड़ा उपद्रव मचा रखा था। वे ऋषियोंको अपने यहाँ निमन्त्रित करते और वातापी स्वयं भोजन बन जाता और जब ऋषिलोग खा-पी चुकते, तब इल्वल बाहरसे उसे पुकारता और वातापी उनका पेट फाड़कर निकल आता। इस प्रकार महान् ब्राह्मणसंहार चल रहा था। भला, महर्षि अगस्त्य इसे कैसे सहन कर सकते थे? वे भी एक दिन उनके यहाँ अतिथिके रूपमें उपस्थित हुए और फिर तो सर्वदाके लिये उसे पचा ही गये।

भगवान् श्रीराम वनगमनके समय इनके आश्रमपर पधारे थे। प्रेमलक्षणा भक्तिके मूर्तिमान् स्वरूप भक्त सुतीक्ष्ण इन्हींके शिष्य थे। लंकापर विजय प्राप्त करके जब भगवान् श्रीराम अयोध्याको लौट आये और उनका राज्याभिषेक हुआ, तब महर्षि अगस्त्य वहाँ आये और उन्होंने भगवान् श्रीरामको अनेकों प्रकारकी कथाएँ सुनायीं। वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डकी अधिकांश कथाएँ इन्हींके द्वारा कही हुई हैं। इनके द्वारा रचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगस्त्यसंहिता नामका एक उपासना-सम्बन्धी बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है।

महर्षि पुलस्त्य

महर्षि पुलस्त्य ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। ये अपनी तपस्या, ज्ञान और दैवी सम्पत्तिके द्वारा जगत्के कल्याणसम्पादनमें लगे रहते हैं। इनका स्वभाव इतना दयालु है कि जब एक बार अपनी दुष्टताके कारण रावणको कार्तवीर्य सहस्रार्जुनके यहाँ बन्दी होना पड़ा था, तब इन्होंने दयापरवश होकर उससे कहा कि इस बेचारेको मुक्त कर दो। इनकी आज्ञा सुनते ही सहस्रार्जुनने रावणको अपने बन्दीगृहसे मुक्त करा दिया। पुलस्त्यकी सन्ध्या, प्रतीची आदि कई स्त्रियाँ थीं और दत्तोलि आदि कई पुत्र थे। ये ही दत्तोलि स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अगस्त्य नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्हींकी एक पत्नी हविर्भूसे विश्रवा हुए थे, जिनके पुत्र कुबेर, रावण आदि हुए। ये योगविद्याके आचार्य हैं। ऋषि पुलस्त्यने ही देवर्षि नारदको वामनपुराणकी कथा सुनायी है। ये अब भी जगत्की रक्षा-दीक्षामें तत्पर हैं महाभारत और पुराणोंमें इनकी पर्याप्त चर्चा है।

महर्षि च्यवन

लोकप्रजापति भगवान् ब्रह्माजीने वरुणके यज्ञमें एक पुत्र उत्पन्न किया, जिनका नाम भृगु था। महर्षि भृगुने पुलोमा नामवाली स्त्रीके साथ विधिवत् विवाह किया। पुलोमा जब गर्भवती थी, तभी उन्हें एक प्रलोमा नामवाला राक्षस सूकरका रूप बनाकर उठा ले गया। पुलोमा रोती जाती थी। तेज दौड़नेके कारण ऋषिपत्नीका गर्भ च्यवित हो गया, जिससे एक महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रको देखते ही वह राक्षस उसके तेजसे भस्म हो गया। वे ही महर्षि च्यवन हुए।

भृगुपुत्र च्यवन बड़े ही तपस्वी, तेजस्वी और ब्रह्मनिरत थे। वे सदा तपस्यामें ही लगे रहते थे। तपस्या करते-करते उनके ऊपर दीमक जम गयी थी और दीमकके एक टीलेके नीचे वे दब-से गये, केवल उनकी दो आँखें दिखायी देती थीं। एक दिन महाराज शर्याति अपनी सेनाके सहित वहाँ पहुँचे, उनकी पुत्री भी उनके साथ थी। महाराज शर्यातिकी पुत्री सुकन्याने घूमते-घूमते एक टीला देखा, उसे जुगनूकी तरह चमकती हुई दो आँखें उस दीमकके टीलेके नीचे दिखायी दीं। बाल्यकालकी चंचलताके कारण उसने उन दोनों आँखोंमें काँटा चुभो दिया। उनमेंसे रक्तकी धारा बह निकली। कन्या डर गयी और भागकर अपने डेरेमें आ गयी, उसने यह बात किसीसे नहीं कही।

इधर राजाकी समस्त सेनाका मल-मूत्र बन्द हो गया। राजा, मन्त्री, सेवक, सैनिक, घोड़े, हाथी, रानी, राजपुत्री सभी दु:खी हो गये। राजाको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सबसे पूछा—'यहाँपर भार्गव मुनि च्यवनका आश्रम है, तुमलोगोंने उनका कोई अनिष्ट तो नहीं किया है, किसीने उनके आश्रमपर जाकर अपवित्रता या अशिष्टता तो नहीं की है?' सभीने कहा—'महाराज! हम तो उधर गये भी नहीं।' तब डरते-डरते सुकन्याने कहा—'अज्ञानवश एक अपराध मुझसे हो गया है—दीमकके ढेरमें दो जुगनू-से चमक रहे थे; उनमें मैंने काँटा चुभो दिया, जिससे उनमेंसे रक्तकी धारा बह निकली।'

महाराज सब समझ गये। वे पुरोहित और मन्त्रीके साथ बड़ी दीनतासे महर्षि च्यवनके आश्रमपर पहुँचे। उनकी विधिवत् पूजा की और हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मेरी यह कन्या सरल है, सीधी है। इससे अनजानेमें यह अपराध बन गया, अब मुझे जो भी आज्ञा हो, मैं उसका सहर्ष पालन करूँ।'

च्यवनमुनि बोले—'राजन्! यह अपराध अज्ञानमें ही हुआ सही; किंतु मैं वृद्ध हूँ, आँखें भी मेरी फूट गयीं; अतः तुम इस कन्याको ही मेरी सेवाके लिये छोड़ जाओ।' महाराजने इसे सहर्ष स्वीकार किया। सुकन्याने भी बड़ी प्रसन्नतासे इसको स्वीकार किया। सुकन्याका विवाह विधिवत् च्यवनमुनिके साथ कर दिया गया। सुकन्या अपने पतिकी सेवामें रह गयी। साध्वी सुकन्या दिन-रात सेवा करके उन्हें सदा सन्तुष्ट रखती थी।

एक बार देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार च्यवनके आश्रमपर आये। च्यवनमुनिने उनका विधिवत् सत्कार किया। ऋषिके आतिथ्यको स्वीकारकर अश्विनीकुमारोंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—'ब्रह्मन्! हम आपका क्या उपकार करें?'

च्यवनमुनिने कहा—'देवताओ! तुम मेरी इस वृद्धावस्थाको मेट दो और मुझे युवावस्था प्रदान करो, इसके बदले मैं तुम्हें यज्ञमें भाग दिलाऊँगा।'

अश्विनीकुमारोंने एक सरोवरका निर्माण किया और बोले—'आप इसमें स्नान कीजिये।'

ऋषि उसमेंसे स्नान करके ज्योंही निकले, तब सुकन्याने क्या देखा कि बिलकुल एक ही आकार-प्रकारके तीन देवतुल्य युवा पुरुष उसमेंसे निकले हैं। असलमें अश्विनीकुमारोंने सुकन्याके पातिव्रत्यकी परीक्षा लेनेके लिये ही अपने भी वैसे ही रूप बना लिये थे। तब सुकन्याने अश्विनीकुमारोंकी बहुत प्रार्थना की कि मेरे पतिको अलग कर दीजिये। सुकन्याकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर अश्विनीकुमार अन्तर्धान हो गये और सुकन्या अपने परम सुन्दर रूपवान् पतिके साथ सुखपूर्वक रहने लगी।

च्यवनऋषिकी वृद्धावस्था जाती रही, वे परम सुन्दर रूपवान् युवा बन गये। एक दिन राजा अपनी कन्याको देखने आये। पहले तो वे ऋषिको न पहचानकर कन्यापर क्रुद्ध हुए। जब उन्होंने सब वृत्तान्त सुना तो कन्यापर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने ऋषिकी चरणवन्दना की।

सौभरि

सौभरि ऋषि वृन्दावनके निकट कालिन्दीके तटपर रमणक नामक द्वीपमें रहते थे। ये सदा जलके भीतर समाधि लगाकर तपस्या करते थे। एक बार जलके भीतर-ही-भीतर उनकी समाधि भंग हुई। वहाँ उन्होंने देखा एक मत्स्य अपनी स्त्रीके सहित बड़े सुखसे विहार कर रहा है। आँखोंके जरा-से कुसंगने अपना असर डाला, उसी समय ऋषिके मनमें संकल्प उठा कि 'देखो, ये जलचर जन्तु होकर कैसा सुखभोग कर रहे हैं, हम तो मनुष्यका शरीर पाकर भी इस सुखसे वंचित हैं।' यह विचार आते ही ऋषि समाधि, प्राणायाम सब भूल गये। जलसे बाहर निकले। उन दिनों महाराजा मान्धाता अयोध्यामें राज्य करते थे, ऋषि सीधे उन्हींके पास पहुँचे और बोले—'राजन्! मैं गृहस्थसुखका उपभोग करना चाहता हूँ; तुम्हारे पचास कन्याएँ हैं, इनमेंसे एक मुझे दे दो।'

महाराज सुनकर सन्न रह गये। फिर बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर उन्होंने कहा—'भगवन्! मेरी पचास कन्याएँ हैं, उनमेंसे जो कन्या आपको पसन्द करे, उसे ही आप प्रसन्नतापूर्वक ले जायँ।' महाराजने सोचा मेरी युवती कन्याएँ इन-जैसे अति बूढ़े ऋषिको क्यों पसन्द करने लगेंगी। जब वे पसन्द न करेंगी तो ये खुद ही लौट जायँगे। इस प्रकार मना भी नहीं करना पड़ेगा और ऋषि भी नाराज न होंगे।

महर्षि सर्वज्ञ थे। उनसे भला कोई क्या छिपा सकता है, वे महाराजके भावको ताड़ गये। तपस्याके बलसे वे नयी सृष्टि रच सकते थे, उन्होंने झटसे अपना रूप परम सुन्दर युवावस्थासम्पन्न बना लिया। रनवासमें जाते ही पचासों-की-पचासों कन्याएँ उनपर मुग्ध हो गयीं। राजाको अब क्या आपत्ति थी। पचासों कन्याएँ ऋषिको अर्पण कर दीं। उन सबको लेकर महर्षि अपने आश्रमपर आये। विश्वकर्माको आज्ञा दी, बात-ही-बातमें समस्त स्वर्गीय सुखोंसे युक्त पचास महल बन गये। उनमें सब प्रकारकी सुखोपभोगकी सामग्रियाँ थीं। योगबलसे पचास रूप बनाकर ऋषि उनके साथ गृहस्थसुखका उपभोग करने लगे। प्रत्येकके दस-दस पुत्र हुए। उन पुत्रोंके भी पुत्र हो गये। बड़ा परिवार होनेसे भाँति-भाँतिके झंझट, भाँति-भाँतिकी नित्य नयी उपाधियाँ होने लगीं। अब तो ऋषिको होश हुआ। अरे! यह मैंने क्या किया, तनिक देर विषयी मत्स्यका संसर्ग होनेसे मैं भी विषयी बन गया। विषयियोंके क्षणभरके संगका ऐसा दुष्परिणाम!! यह सोचते ही वे कहने लगे—

'दुःसंगसे योगमें आरूढ़ हुए योगीतक गिर जाते हैं, फिर अल्पसिद्धिवाले जीवोंकी तो बात ही क्या है'—

आरूढयोगीऽपि निपात्यतेऽधः
सङ्गेन योगी किमुताल्पसिद्धिः॥

ऐसा सोचकर वे वानप्रस्थधर्मका पालन करते हुए ब्रह्ममें लीन हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि वसिष्ठजी

महर्षि वसिष्ठकी उत्पत्तिका वर्णन पुराणोंमें विभिन्नरूपसे आता है। ये कहीं ब्रह्माके मानसपुत्र, कहीं आग्नेय-पुत्र और कहीं मित्रावरुणके पुत्र कहे गये हैं। इनकी सहधर्मिणी अरुन्धतीजी हैं, जो सप्तर्षिमण्डलके पास ही अपने पतिदेवकी सेवामें लगी रहती हैं। जब इनके पिता ब्रह्माजीने इन्हें सृष्टि करनेकी और भूमण्डलमें आकर सूर्यवंशी राजाओंका पौरोहित्य करनेकी आज्ञा की, तब इन्होंने उस कार्यसे बड़ी हिचकिचाहट प्रकट की। फिर ब्रह्माजीने समझाया कि इसी वंशमें आगे चलकर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका पूर्ण अवतार होनेवाला है, अतः इस निन्दित कर्मके द्वारा भी तुम्हें बड़ी ऊँची गति प्राप्त होगी। तब कहीं उन्होंने आना स्वीकार किया। यहाँ आकर इन्होंने सर्वदा अपनेको सर्वभूतहितमें लगाये रखा। जब अपने पूर्वजोंके असफल हो जानेके कारण गंगाको लानेसे भगीरथको निराशा हुई, तब इन्होंने उन्हें प्रोत्साहन देकर मन्त्र बतलाया और इन्हींके उपदेशके बलपर भगीरथने भगीरथप्रयत्न करके गंगा-जैसी लोककल्याणकारिणी महानदीको हमलोगोंके लिये सुलभ कर दिया। जब दिलीप संतानहीन होनेके कारण अत्यन्त दुःखी हो रहे थे, तब उन्हें अपनी गौ नन्दिनीकी सेवाविधि बताकर रघु-जैसे पुत्र-रत्नका दान किया। दशरथकी निराशामें आशाका संचार करनेवाले यही महर्षि वसिष्ठ थे। इन्हींकी सम्मतिसे पुत्रेष्टि यज्ञ हुआ और फलस्वरूप भगवान् श्रीरामने अवतार ग्रहण किया। भगवान् श्रीरामको शिष्यरूपमें पाकर वसिष्ठने अपना पुरोहितजीवन सफल किया और न केवल वेद-वेदांग ही बल्कि योगवासिष्ठ-जैसे अपूर्व ज्ञानमय ग्रन्थका उपदेश करके अपने ज्ञानको सफल किया।

महर्षि वसिष्ठ क्षमाकी तो मूर्ति ही थे। जब विश्वामित्रने इनके सौ पुत्रोंका संहार कर दिया, उस समय सामर्थ्य होनेपर भी इन्होंने विश्वामित्रके किसी प्रकारके अनिष्टका चिन्तनतक नहीं किया; बल्कि अन्तःकरणके क्षणिक शोकाकुल होनेपर भी ये अपनी निर्लेपता और असंगताको नहीं भूले।

एक बार बात-ही-बातमें विश्वामित्रसे इनका विवाद छिड़ गया कि तपस्या बड़ी है या सत्संग? वसिष्ठजीका कहना था कि सत्संग बड़ा है और विश्वामित्रजीका कहना था कि तपस्या बड़ी है। इसपर शेष भगवान्ने निर्णय दिया कि आधे क्षणके सत्संगकी बराबरी हजारों वर्षकी तपस्या भी नहीं कर सकती।

श्रीकर्दमजी

ब्रह्माजीकी छायासे श्रीकर्दमजी उत्पन्न हुए। जब ब्रह्माजीने प्रजापति कर्दमको सृष्टि-विस्तारकी आज्ञा दी तो उन्होंने सर्वप्रथम स्वरूपानुरूप धर्मपत्नीकी प्राप्तिके लिये सरस्वती नदीके तटपर बिन्दुसरोवर तीर्थमें दस हजार वर्षोंतक तपस्याके द्वारा श्रीहरिकी आराधना की। भगवान्ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया और कहा—जिसके लिये तुमने आत्मसंयमादिके द्वारा मेरी आराधना की है, तुम्हारे हृदयके उस भावको जानकर मैंने पहलेसे ही उसकी व्यवस्था कर दी है। परम यशस्वी सार्वभौम सम्राट् महामानव मनु परसों अपनी धर्मशीला भार्या शतरूपाके साथ अपनी सद्गुणसम्पन्ना कमललोचना कन्याको लेकर आयेंगे। प्रजापते! वह सर्वथा आपके स्वरूपानुरूप है। मनुजी वह कन्या आपको अर्पण करेंगे, उससे सृष्टिका विस्तार करनेवाली नौ कन्याएँ होंगी तथा सांख्यशास्त्रका प्रचार करनेके लिये मैं भी अपने अंश-कलासे आपकी पत्नी देवहूतिके गर्भसे अवतीर्ण होऊँगा। यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

इधर मनुजी भी महारानी शतरूपाके साथ कन्या देवहूतिको लेकर महर्षि कर्दमके आश्रमपर पहुँचे और बोले—मुने! यह मेरी कन्या है—जो प्रियव्रत और उत्तानपादकी बहन है, जबसे इसने नारदजीके मुखसे आपके शील, विद्या, रूप और गुणोंका वर्णन सुना है, तभीसे आपको अपना पति बनानेका निश्चय कर चुकी है। द्विजवर! मैं बड़ी श्रद्धासे आपको यह कन्या समर्पित करता हूँ, आप इसे स्वीकार कीजिये। तदनन्तर महाराज मनुजीने ब्राह्म विधिसे देवहूतिका विवाह कर्दमजीसे कर दिया तथा मुनिकी आज्ञा लेकर वहाँसे अपने स्थानको चले आये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत काल व्यतीत होनेपर सेवापरायणा देवहूतिके मनमें संतानकी अभिलाषा जाग्रत् हुई। देवहूतिको संतानप्राप्तिके लिये समुत्सुक देखकर श्रीकर्दमजीने अपने स्वरूपके नौ विभाग किये और नौओं स्वरूपोंसे उनके गर्भमें अपना तेज स्थापित किया। इससे देवहूतिके नौ कन्याएँ पैदा हुईं।

कर्दमजीने श्रीब्रह्माजीके आदेशानुसार अपनी कला नामकी कन्या मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अंगिराको, हविर्भू पुलस्त्यको, गति पुलहको, क्रिया क्रतुको, ख्याति भृगुको, अरुन्धती वसिष्ठको और शान्ति अथर्वाको समर्पित की। ये ऋषि लोग श्रीकर्दमजीकी आज्ञा लेकर अति आनन्दपूर्वक अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ अपने-अपने आश्रमको चले गये।

इधर परम मंगल मुहूर्त आनेपर साक्षात् देवाधिदेव भगवान् विष्णु देवहूतिके गर्भसे श्रीकपिलरूपमें प्रकट हुए।

श्रीअत्रिजी

ये भी महर्षि मरीचिकी भाँति ब्रह्माके मानसपुत्र और प्रजापति हैं। ये दक्षिण दिशामें रहते हैं, इनकी पत्नी अनसूया भगवदवतार कपिलकी भगिनी तथा कर्दमप्रजापतिकी पत्नी देवहूतिके गर्भसे पैदा हुई हैं। जैसे महर्षि अत्रि अपने नामके अनुसार त्रिगुणातीत थे, वैसे ही अनसूया भी असूयारहित थीं। इन दम्पतीको जब ब्रह्माने आज्ञा की कि सृष्टि करो, तब इन्होंने सृष्टि करनेके पहले तपस्या करनेका विचार किया और बड़ी घोर तपस्या की। इनके तपका लक्ष्य संतानोत्पादन नहीं था, बल्कि इन्हीं आँखोंसे भगवान्‌का दर्शन प्राप्त करना था। इनकी श्रद्धापूर्वक दीर्घकालकी निरन्तर साधना और प्रेमसे आकृष्ट होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों ही देवता प्रत्यक्ष उपस्थित हुए। तब इन्होंने और कोई दूसरा वरदान न माँगकर उन्हीं तीनोंको पुत्ररूपमें माँगा और भक्तिपरवश भगवान्‌ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके 'एवमस्तु' कह दिया। समयपर तीनोंने ही इनके पुत्ररूपसे अवतार ग्रहण किया। विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय, ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा और शंकरके अंशसे दुर्वासाका जन्म हुआ।

वनगमनके समय स्वयं भगवान् श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ इनके आश्रमपर पधारे और माता अनसूयाको जगज्जननी माँ सीताको उपदेश करनेका गौरव प्रदान किया।

श्रीऋचीकजी

श्रीऋचीकजीका वर्णन छप्पय ५ पृ० ४६ में परशुरामावतारके प्रसंगमें आया है।

श्रीगर्गजी

श्रीगर्गाचार्यजी यदुवंशियोंके पुरोहित थे और बड़े तपस्वी थे। श्रीवसुदेवजीने इन्हें अपने पुत्रोंका नामकरण संस्कार करनेके लिये गोकुल भेजा था। श्रीगर्गाचार्यजीका दर्शनकर श्रीनन्दबाबाके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। उनके चरणोंमें साष्टांग दण्डवत् प्रणामोपरान्त श्रीनन्दजीने विधिपूर्वक आचार्यचरणका पूजन किया और उनके शुभागमनसे अपना अहोभाग्य माना। तत्पश्चात् अपने दोनों बालकोंको मुनिके चरणोंमें प्रणाम कराकर इनका नामकरणादि संस्कार करनेकी प्रार्थना की। मुनि तो इसी निमित्त आये ही थे, परंतु कंसको कहीं यह आभास न हो जाय कि वसुदेवजीके पुरोहितने नन्दात्मजका समयोचित संस्कार कराया है, अतः हो न हो, ये वसुदेव-पुत्र ही हैं, वह दुष्ट इनके अनिष्टका उद्यम करने लगेगा, अतः श्रीगर्गजीने एकान्त गोशालामें स्वस्तिवाचनपूर्वक बालकोंका द्विजाति-समुचित संस्कार किया। श्रीगर्गाचार्यजीने स्वरचित 'गर्ग-संहिता' में भगवान् श्रीकृष्णकी अति मधुर रसमयी लीलाओंका बड़ी मधुरताके साथ वर्णन किया है।

श्रीगौतमजी

महर्षि गौतम सप्तर्षियोंमें एक ऋषि हैं। देवी अहल्या इनकी धर्मपत्नी हैं। इनके एक पुत्र भी हुए, जो महर्षि शतानन्दके नामसे विख्यात हैं और महाराज जनकके राजपुरोहित थे। महर्षि गौतमका चरित्र अलौकिक है। इनके जैसा त्याग, वैराग्य, तप और भगवद्भाव कहाँ देखनेको मिलेगा!

व्यासशिष्यगण

युगानुसार मनुष्योंकी आयु, शक्ति और बुद्धि क्षीण हो जाती है, इससे ब्रह्मवेत्ता ऋषिगण अपने हृदय-देशमें स्थित परमात्माकी प्रेरणासे वेदोंका विभाजन कर देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वैवस्वत मन्वन्तरमें भी ब्रह्मा-शंकर आदि देवाधिपतियोंकी प्रार्थनासे अखिल विश्वके जीवनदाता भगवान्ने धर्मकी रक्षाके लिये महर्षि पराशरद्वारा सत्यवतीके गर्भसे अपने अंशांश कलास्वरूप व्यासके रूपमें अवतार ग्रहण किया। उन्होंने ही वर्तमान युगमें वेदके चार विभाग किये हैं। भगवान् वेदव्यासने मन्त्र-समुदायोंमेंसे भिन्न-भिन्न प्रकरणोंके अनुसार मन्त्रोंका संग्रह करके उनसे ऋक्, यजु:, साम और अथर्व—ये चार संहिताएँ बनायीं और अपने चार शिष्योंको बुलाकर प्रत्येकको एक-एक संहिताकी शिक्षा दी। उन्होंने 'बह्वृच' नामकी पहली ऋक्-संहिताको पैलको, 'निगद' नामकी दूसरी यजु:संहिता वैशम्पायनको, सामश्रुतियोंकी 'छन्दोगसंहिता' जैमिनिको और सुमन्तुको 'अथर्वाङ्गिरस-संहिता' का अध्ययन कराया। समस्त पुराणोंका सूतजीको एवं श्रीमद्भागवतका श्रीशुकदेवजीको अध्ययन कराया। आगे चलकर इन शिष्योंके बहुतसे शिष्य-प्रशिष्य हुए। भगवान् व्यास तथा उनके शिष्य प्रशिष्योंका जीवोंपर महान् उपकार है। इन लोगोंने भक्तिका जो सहज मार्ग दिखाया, वह सभीके लिये कल्याणकारी है।

श्रीलोमशजी

ये चिरंजीवी महर्षि हैं। शरीरपर बहुतसे रोम होनेके कारण इनको लोमश कहते हैं। द्विपरार्ध व्यतीत होनेपर जब ब्रह्माकी आयु समाप्त होती है तो इनका एक रोम गिरता है।

श्रीलोमशजी इतने दीर्घायु होकर भी शरीरकी क्षणभंगुरताका निरन्तर अनुसन्धान करते हुए सर्वथा अपरिग्रहपूर्वक सदा-सर्वदा हरिचिन्तनमें तल्लीन रहते हैं। ये भगवान् श्रीरामका सदा यशोगान करते रहते हैं। इन्होंने श्रीरामजीका बहुत यश गाया; जो लोमशरामायणके नामसे प्रसिद्ध है।

श्रीभृगुजी

भृगुजी ब्रह्माके मानसपुत्रोंमेंसे एक हैं। ये एक प्रजापति भी हैं। चाक्षुष मन्वन्तरमें इनकी सप्तर्षियोंमें गणना होती है। इनकी तपस्याका अमित प्रभाव है। दक्षकी कन्या ख्यातिको इन्होंने पत्नीरूपसे स्वीकार किया था; उनसे धाता-विधाता नामके दो पुत्र और श्रीनामकी एक कन्या हुई। इन्हीं श्रीका पाणिग्रहण भगवान् नारायणने किया था। प्राय: सभी पुराणोंमें महर्षि भृगुकी चर्चा आयी है। यहाँ उनके जीवनका एक वृत्तान्त प्रस्तुत है—

एक बार सरस्वती नदीके तटपर ऋषियोंकी बहुत बड़ी परिषद् बैठी थी। उसमें यह विवाद छिड़ गया कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश, इन तीनोंमें कौन बड़ा है? इसका जब कोई सन्तोषजनक समाधान नहीं हुआ, तब इस बातका पता लगानेके लिये सर्वसम्मतिसे महर्षि भृगु ही चुने गये। ये पहले ब्रह्माकी सभामें गये और वहाँ अपने पिताको न तो नमस्कार किया और न स्तुति की। अपने पुत्रकी इस अवहेलनाको देखकर ब्रह्माके मनमें बड़ा क्रोध आया, परंतु उन्होंने अपना पुत्र समझकर इन्हें क्षमा कर दिया, अपने क्रोधको दबा लिया। इसके बाद ये कैलासपर्वतपर अपने बड़े भाई रुद्रदेवके पास पहुँचे। अपने छोटे भाई भृगुको आते देखकर आलिंगन करनेके लिये वे बड़े प्रेमसे आगे बढ़े, परंतु भृगुने यह कहकर कि तुम उन्मार्गगामी हो, उनसे मिलना अस्वीकार कर दिया। उन्हें बड़ा क्रोध आया और वे त्रिशूल उठाकर मारनेके लिये दौड़ पड़े। अन्तत: पार्वतीजीने उनके चरण पकड़कर प्रार्थना की और क्रोध शान्त किया। अब विष्णुभगवान्की बारी आयी। ये बेखटक वैकुण्ठमें पहुँच गये। वहाँ भक्तोंके लिये कोई रोक-टोक तो है नहीं। ये पहुँच गये भगवान्के शयनागारमें। उस समय भगवान् विष्णु सो रहे थे और भगवती लक्ष्मी उन्हें पंखा झल रही थीं, उनकी सेवामें लगी हुई थीं। इन्होंने वहाँ पहुँचकर उनके वक्ष:स्थलपर एक लात मारी। तुरंत भगवान् विष्णु अपनी शय्यापरसे उठ गये और इनके चरणोंपर अपना सिर रखकर नमस्कार किया और कहा—'भगवन्! आइये, आइये, विराजिये, आपके आनेका समाचार न जाननेके कारण ही आपके स्वागतसे वंचित रहा। क्षमा कीजिये! क्षमा कीजिये! कहाँ तो आपके कोमल चरण और कहाँ यह मेरी वज्रकर्कश छाती! आपको बड़ा कष्ट हुआ।' यह कहकर उनके चरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने हाथों दबाने लगे। उन्होंने कहा—'ब्राह्मण देवता! आज आपने मुझपर बड़ी कृपा की। आज मैं कृतार्थ हो गया। अब ये आपके चरणोंकी धूलि सर्वदा मेरे हृदयपर ही रहेगी।' कुछ समय बाद महर्षि भृगु वहाँसे लौटकर ऋषियोंकी मण्डलीमें आये और अपना अनुभव सुनाया। इनकी बात सुनकर ऋषियोंने एक स्वरसे यह निर्णय किया कि जो सात्त्विकताके प्रेमी हैं, उन्हें एकमात्र भगवान् विष्णुका ही भजन करना चाहिये। महर्षि भृगुका साक्षात् भगवान्से सम्बन्ध है, इनकी स्मृति हमें भगवान्की स्मृति प्रदान करती है।

श्रीदाल्भ्यजी

विप्रवर श्रीदाल्भ्यजीने भगवान् श्रीदत्तात्रेयजीसे भक्ति-योगकी शिक्षा पायी थी, इनकी साधनासे सन्तुष्ट होकर भगवान् श्रीहरिने दर्शन दिया था। इन्होंने धर्म-ज्ञान-वैराग्य-भक्ति-प्रतिपादक संहिता-ग्रन्थका प्रणयन किया था, जिसे 'दाल्भ्यसंहिता' कहते हैं। इनकी परमभागवतोंमें गणना की जाती है। दल्भ्य गोत्रके होनेके कारण इन्हें दाल्भ्य कहा जाता है। पुराणों तथा महाभारतमें इनका अनेक स्थलोंपर महान् भक्त, ज्ञानवान् और नीतिमान् ऋषिके रूपमें वर्णन हुआ है।

श्रीअंगिराजी

महर्षि अंगिरा भी ब्रह्माजीके मानसपुत्र और प्रजापति हैं। इनकी तपस्या और उपासना इतनी तीव्र थी कि इनका तेज और प्रभाव अग्निकी अपेक्षा भी अधिक बढ़ गया। उस समय अग्निदेव भी जलमें रहकर तपस्या करते थे। जब उन्होंने देखा कि अंगिराके तपोबलके सामने मेरी तपस्या और प्रतिष्ठा तुच्छ हो रही है, तब बड़े सन्ताप और ग्लानिके साथ वे महर्षि अंगिराके पास आये। महर्षि अंगिराने उनके विषादका अनुभव करके कहा—'आपके सन्तप्त होनेका कोई कारण नहीं है, आप बड़ी प्रसन्नताके साथ लोगोंका कल्याण करें।'

अग्निने कहा—'मेरी कीर्ति नष्ट हो रही है; अब मुझे कोई अग्नि कहकर मेरा सम्मान नहीं करेगा। आप प्रथम अग्नि हैं और मैं द्वितीय अग्नि हूँ।' उस समय महर्षि अंगिराने कहा—'आप अग्निके रूपमें देवताओंको भोजन पहुँचायें और स्वर्ग चाहनेवालोंको उनका मार्ग बतायें तथा अपनी दिव्य ज्योतिद्वारा मुमुक्षुओंका अन्तःकरण शुद्ध करें, मैं आपका पुत्रके रूपमें वरण करता हूँ।' अग्निदेवने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनकी बात स्वीकार की और बृहस्पति नामसे उनके पुत्रके रूपमें प्रसिद्ध हुए। कहीं-कहीं ऐसी कथा भी आती है कि अंगिरा अग्निके पुत्र हैं। इनकी पत्नी दक्षप्रजापतिकी पुत्री स्मृति थीं, जिनसे अनेकों पुत्र और कन्याएँ उत्पन्न हुईं।

महर्षि अंगिरा सप्तर्षिरूपमें जगत्को धारण करते हैं तथा ज्ञान, भक्ति और कर्मके विस्तारके द्वारा सुप्त जीवोंको जाग्रत् करके भगवान्की ओर अग्रसर करते हैं। पुराणोंमें इनका चरित्र विस्तारसे मिलता है।

श्रीशृंगी ऋषिजी

एक बार विभाण्डकमुनि एक कुण्डमें समाधि लगाये बैठे थे। उसी समय उर्वशी अप्सरा उधरसे आ निकली। उसे देखकर उनका वीर्य स्खलित हो गया, जिसे जलके साथ एक प्यासी मृगी पी गयी। उस मृगीसे इनका जन्म हुआ। माताके समान इनके सिरपर भी एक सींग था, अतः इनका नाम ऋष्यशृंग पड़ा। ये सदा वनमें अपने पिता विभाण्डकके पास रहनेके कारण किसी स्त्री या पुरुषको नहीं जानते थे। इस प्रकार इन्हें ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने, अग्नि और पिताकी सेवा करते बहुत काल बीत गया। उसी समय अंगदेशमें रोमपाद नामक प्रतापी राजा हुए। उनके राज्यमें बड़ा भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। प्रजा भूखों मरने लगी। राजाने सुविज्ञ वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे अपने कर्मोंका, जिसके कारण राज्यमें वर्षा नहीं हो रही है, प्रायश्चित्त पूछा। उन ब्राह्मणोंने राजाको यह उपाय बताया कि आप जैसे बने तैसे विभाण्डकमुनिके पुत्र ऋष्यशृंगको यहाँ ले आइये और उनका सत्कार करके यथाविधि उनके साथ अपनी कन्या शान्ताका विवाह कर दीजिये।

राजा चिन्तित हुए कि ऋषिको कैसे यहाँ लाया जाय? बहुत सोच-विचारकर उन्होंने अपने पुरोहित और मन्त्रियोंसे कहा कि आपलोग जाकर ऋषिकुमारको ले आयें। परंतु उनलोगोंने निवेदन किया कि हमलोग वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानेमें विभाण्डकऋषिके शापसे डरते हैं। अत: स्वयं न जाकर किसी अन्य उपायसे उनको यहाँ ले आयेंगे, जिससे हमको दोष न लगे। मन्त्री और पुरोहितोंने निर्विघ्न कृतकार्य होनेका यह उपाय बताया कि रूपवती वेश्याएँ सत्कारपूर्वक भेजी जायँ। वे अपने कौशलसे उन्हें ले आयेंगी। राजाने वैसा ही उपाय करनेको कहा। वेश्याएँ भेजी गयीं। आश्रमके निकट पहुँचकर वे धीर ऋषिपुत्रके दर्शनका प्रयत्न करने लगीं। ऋष्यशृंगने आजतक स्त्री, पुरुष, नगर वा राज्यके अन्य जीवोंको कभी नहीं देखा था। अत: उन्होंने उन वेश्याओंको भी ऋषि ही समझा और उनके साथ चलनेको राजी हो गये। वेश्याएँ उनको अपने साथ ले आयीं। उन महात्माके राज्यमें आते ही सहसा जलकी बहुत वर्षा हो गयी, जिससे प्रजा सुखी हुई। राजा रोमपादने अपनी पुत्री शान्ताका विवाह उनसे कर दिया। ऋष्यशृंग वहीं शान्ताके साथ रहने लगे।

अंगनरेश रोमपादजी श्रीअयोध्यानरेश महाराज दशरथजीके मित्र थे। श्रीवसिष्ठजीकी आज्ञाके अनुसार राजा दशरथ पुत्रेष्टियज्ञ करानेके लिये ऋष्यशृंगको लेने अंगदेश गये। श्रीरोमपादजीने मित्रभावसे उनका सत्कार किया और उनके अभिप्रायको जानकर ऋष्यशृंगसे शान्तासहित उनके साथ जानेका अनुरोध किया। वे राजी हो गये और उनके साथ श्रीअयोध्या आकर मंगलमुहूर्तमें पुत्रेष्टियज्ञका शुभारम्भ किया गया, जिसमें अग्निदेवने साक्षात् प्रकट होकर दिव्य चरु प्रदान किया, जिसको पाकर रानियोंने गर्भ धारण किया। यथा—***'सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥ भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥'***

श्रीमाण्डव्यजी

महात्मा माण्डव्यके शापसे साक्षात् धर्मराज ही विदुररूपमें उत्पन्न हुए थे। कथा इस प्रकार है—एक बार राजपुरुषोंद्वारा पीछा किये जानेपर बहुतसे चोर चोरीका माल महर्षि माण्डव्यजीके आश्रममें रखकर स्वयं भी वहीं छिप गये। मुनि ध्यानस्थ थे। उन्हें इस बातकी किंचित् जानकारी नहीं थी। अत: राजपुरुषोंके पूछनेपर उन्होंने कुछ नहीं कहा, तब उन राजपुरुषोंने आश्रममें खोज-बीन प्रारम्भ की तो चोर एवं चोरीका माल, दोनों ही बरामद हुए। फिर तो उनका मुनिपर भी सन्देह हो गया और चोरोंके साथ उन्हें भी राजाने शूलीपर चढ़ा देनेका हुक्म दे दिया। अन्य चोर तो तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गये, परंतु महामुनि माण्डव्य शूलीके अग्रभागपर बैठे हुए तप ही करते रहे। बहुत दिनोंतक इस प्रकार तपोधन मुनिको शूलीपर बैठे देखकर राजकर्मचारियोंने जाकर राजासे यह सब समाचार निवेदन किया। राजा तत्काल ही दौड़े आये और विविध प्रकारसे अनुनय-विनयकर अपराधके लिये क्षमा-याचना करते हुए मुनिको शूलीसे उतार दिया। शूलकी किंचित् अणी शरीरमें प्रविष्ट हो गयी थी, जो निकालनेका प्रयत्न करनेपर भी नहीं निकल सकी तो उसे उतना काट दिया गया। शूलकी अणीको शरीरमें धारण करनेसे आगे चलकर इनका नाम अणिमाण्डव्य पड़ गया।

एक बार महर्षिने धर्मराजके पास जाकर उन्हें उलाहना देते हुए कहा—मैंने अनजानेमें कौन-सा ऐसा पाप किया है, जिसके फलका भोग मुझे इस रूपमें प्राप्त हुआ? धर्मराजने कहा—आपने बाल्यावस्थामें एक पतिंगेके पुच्छभागमें सींक प्रविष्ठ करा दी थी, उसीका यह फल मिला। ऋषिने कहा—एक तो बाल्यावस्थामें धर्मशास्त्रका ज्ञान नहीं होता, दूसरे तुमने थोड़ेसे अपराधमें मुझे बहुत बड़ा दण्ड दिया है, अत: धर्म! तुम मनुष्य होकर जन्म लोगे। इसी कारण धर्मराज विदुररूपसे उत्पन्न हुए।

श्रीविश्वामित्रजी

महर्षि विश्वामित्रजीके समान सतत लगनके पुरुषार्थी ऋषि शायद ही कोई और हों, इन्होंने अपने पुरुषार्थसे क्षत्रियत्वसे ब्रह्मत्व प्राप्त किया। राजर्षिसे ब्रह्मर्षि बने, सप्तर्षियोंमें अग्रगण्य हुए और वेदमाता गायत्रीके द्रष्टा ऋषि हुए।

प्रजापतिके पुत्र कुश हुए। इन्हींके वंशमें महाराज गाधि हुए, उन्हींके पुत्र महाराज विश्वामित्र हैं। कुशवंशमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैदा होनेसे इन्हें कौशिक भी कहते हैं। पहले ये एक बड़े धर्मात्मा प्रजापालक राजा थे। एक बार सेना साथ लेकर ये जंगलमें शिकारके लिये गये। वहाँपर ये भगवान् वसिष्ठके आश्रमपर पहुँचे। भगवान् वसिष्ठने अपने योगबलसे कामधेनुकी सहायतासे समस्त सैनिकोंको भाँति-भाँतिके पदार्थोंसे खूब ही सन्तुष्ट किया। कामधेनुके ऐसे प्रभावको देखकर विश्वामित्रने महर्षि वसिष्ठके मना करनेपर भी कामधेनुको ले जाना चाहा, किंतु कामधेनुने अपने प्रभावसे लाखों सैनिक पैदा किये। विश्वामित्रजीकी सेना भाग गयी। वे पराजित हो गये। इससे उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। तब उन्होंने राज-पाट छोड़ दिया और घोर तपस्या करने लगे।

उनके घोर तपसे भगवान् ब्रह्माजी प्रसन्न हुए। वे इनके पास आये और वरदान माँगनेको कहा। इन्होंने कहा—'यदि आप मुझे योग्य समझें तो ब्रह्मर्षि बननेका आशीर्वाद दें और स्वयं भगवान् वसिष्ठ अपने मुँहसे मुझे ब्रह्मर्षि कह दें।'

इनकी तपस्यासे वसिष्ठजी पहले ही प्रसन्न हो चुके थे। इसलिये ब्रह्माजीके कहनेपर उन्होंने बड़े ही आदरसे विश्वामित्रजीको ब्रह्मर्षिकी उपाधि दी और सप्तर्षियोंमें उन्हें स्थान दिया। विश्वामित्रजी दशरथजीके यहाँसे भगवान् श्रीरामजीको ले आये, उन्हें सब प्रकारकी विद्याएँ दीं, मिथिला ले जाकर श्रीसीताजीसे विवाह कराया और अन्तमें त्रैलोक्यको कँपानेवाले रावणका वध कराया। महर्षि विश्वामित्रजीका समस्त जीवन तपस्या, भगवदाराधना और परोपकारमें ही व्यतीत हुआ।

श्रीदुर्वासाजी

महर्षि अत्रिजीके तपसे सन्तुष्ट होकर भगवान् शिव ही दुर्वासारूपसे उनके पुत्र बने थे। पुराणोंमें आपकी बड़ी विलक्षण कथाएँ मिलती हैं। यद्यपि आपमें क्रोधावेश अधिक था, किंतु वह था लोकोपकारके लिये ही। अन्दरसे आपमें पूर्ण सन्तत्व तथा भगवद्भाव भरा रहता था। आप श्रीविद्याके महान् आचार्य हैं और आपमें तपकी पूर्ण प्रतिष्ठा थी। देवी कुन्ती तथा भगवान् कृष्णद्वारा किये गये आतिथ्यसे प्रसन्न होकर आपके द्वारा दिये गये वरदानकी कथा पुराणों तथा महाभारतमें प्रसिद्ध ही है। क्रोधभट्टारक नामसे प्रसिद्ध महर्षि दुर्वासा जैसे महाक्रोधी थे, वैसे ही परम दयालु भी थे। राजर्षि अम्बरीषजीके एकादशीव्रतकी पारणामें महर्षि दुर्वासाजीका क्रोध शान्त करनेके लिये भगवान्ने कृत्या (राक्षसी) उत्पन्न की और भक्तोंका माहात्म्य उजागर किया तथा अपनेको भक्तोंके अधीन बताया। कहा जाता है कि दूर्वारसका पान करनेके कारण आपका नाम दुर्वासा पड़ गया। आप दीर्घजीवी महात्मा हैं।

अट्ठासी हजार ऋषिगण

ये ऋषिगण महाशाल श्रीशौनकजीके साथ रहते थे। ये सभी ऊर्ध्वरेता ब्रह्मवादी थे। सूतजीके मुखसे इन लोगोंने पुराणोंका श्रवण किया था। ये ऋषिगण हजारों वर्षोंका श्रवण-सत्र करते थे। कलियुगको आया देखकर इन ऋषियोंने श्रीशौनकजीको अपना प्रधान बनाकर नैमिषारण्यमें दीर्घकालीन सत्र किया और भगवान्की कथाओंका आनन्द लिया।

श्रीजाबालिजी

ब्रह्मर्षि श्रीजाबालिजी धर्म और नीतिमें बड़े ही निपुण थे, चक्रवर्ती महाराजाधिराज श्रीदशरथजी इनसे मन्त्रणा लिया करते थे। ये उनके यहाँ मन्त्रि-पदपर प्रतिष्ठित थे। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें वर्णन आता है कि जब श्रीभरतलालजी श्रीरामजीको मनाने चित्रकूट गये थे तो ये साथ थे। वहाँपर इन्होंने बड़े ही चातुर्यपूर्ण ढंगसे श्रीरामजीके श्रीमुखसे परमार्थका विवेचन सुननेकी लालसासे स्वार्थको प्राधान्य देते हुए श्रीरामसे घर लौटनेका आग्रह किया। श्रीरामजीने मुनिके भावको जानकर बड़े ही शास्त्रानुमोदित ढंगसे परमार्थका निरूपण किया।

महर्षि जमदग्नि

विश्वामित्रजीके पिताका नाम गाधि था। गाधि बड़े ही धर्मात्मा राजा थे। उनके सत्यवती नामकी एक कन्या थी। कन्या जब विवाहयोग्य हुई तो राजाने उसका विवाह ऋचीक महामुनिके साथ कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज गाधिके कोई पुत्र नहीं था। सत्यवतीकी माताने अपनी लड़कीसे कहा—'तेरे पति सर्वसमर्थ ऋषि हैं, उनसे ऐसा वरदान माँग कि तेरे भाई हो जाय।' सत्यवतीने अपनी माताकी प्रार्थना ऋचीकमुनिसे कही और अपने भी एक पुत्र हो, ऐसी इच्छा प्रकट की। ऋषिने दो चरु मन्त्रबलसे तैयार किये। एकमें तो क्षात्रधर्मवाली शक्ति स्थापित की और अपनी पत्नीके लिये ब्रह्मशक्ति। दोनों चरु वे अपनी पत्नीको देकर चले गये। माताने समझा कन्यावाला चरु अच्छा होगा, अतः उसने अपनी कन्यावाला चरु खा लिया और कन्याने मातावाला। ऋषिको जब मालूम हुआ तो उन्होंने कहा—'तेरी माताके ब्राह्मण तेजवाला पुत्र होगा और तेरे पुत्र होना चाहिये क्षत्रियकर्मवाला, किंतु पुत्र ऐसा न होकर पौत्र ऐसा होगा।' माताके गर्भसे जो पुत्र हुआ वह तो विश्वामित्र मुनि हुए, जो क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हुए और सत्यवतीके महर्षि जमदग्नि हुए, उनके पुत्र परशुरामजी ब्राह्मण होकर भी क्षत्रियकर्मवाले हुए।

महर्षि जमदग्नि सदा तपस्यामें ही लगे रहते थे। क्षमा, भगवद्भक्ति कार्यतत्परता और अतिथिसत्कार आदि ऐसे गुण हैं, जिनके कारण ये समस्त मानवजातिके लिये आदर्श हैं।

श्रीमायादर्शजी (मार्कण्डेयजी)

कल्पकल्पान्तजीवी मार्कण्डेयमुनि महर्षि मृकण्डुके पुत्र थे। ये भृगुकुलमें उत्पन्न हुए थे। मार्कण्डेयमुनिने श्रीहरिकी आराधना करके दुर्जेय कालको भी जीत लिया। उनके तपसे प्रसन्न होकर एक बार भगवान् श्रीहरि उनपर अनुग्रह करनेके निमित्त नर-नारायणके रूपमें उनके सामने प्रकट हुए और बोले—'हे ऋषिश्रेष्ठ! तुम्हारी भक्तिसे हम अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं, अतः तुम हमसे इच्छित वर माँगो।' ऋषि बोले—'भगवन्! आपने कृपा करके मुझे अपने सुर-मुनिदुर्लभ दर्शनसे कृतार्थ किया; इससे बढ़कर मैं कौन-सा वर आपसे माँगूँ? तथापि मेरी इच्छा है कि जिस आपकी मायासे यह सत् वस्तु भेदयुक्त प्रतीत होती है, उस मायाको मैं देखना चाहता हूँ।' नर-नारायण 'तथास्तु' कहकर बदरिकाश्रमको चले गये।

× × ×

एक दिन सायंकालके समय मुनि नदी-तटपर सन्ध्या कर रहे थे। इतनेमें वे क्या देखते हैं कि अकस्मात् वायु बड़े जोरसे चलने लगी। देखते-देखते मूसलाधार वृष्टि शुरू हो गयी और बात-की-बातमें सर्वत्र जल-ही-जल हो गया। दिशाओंसहित उस अनन्त महार्णवमें अकेले मार्कण्डेय ही रह गये। इस प्रकार विष्णुकी मायासे मोहित हुए मुनिको उस समुद्रमें भ्रमण करते हजारों वर्ष बीत गये। इसी बीच उस महान् जलराशिमें फलों और पत्तोंसे लदा हुआ वट (बरगद)-का एक छोटा-सा वृक्ष उन्हें दिखायी दिया। जिसकी शाखाके एक पर्णपुट (दोने)-में एक तेजस्वी बालक सोया हुआ दीख पड़ा। उसके प्रकाशसे सभी दिशाएँ आलोकित हो उठीं। वह अपने सुन्दर हाथोंसे अपना चरण पकड़कर उसे चूस रहा था।

उस मनोहरमूर्ति बालकको देखकर मुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे खिसककर उस बालकके समीप चले गये। ज्योंही वे उसके समीप गये, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो उस बालकके श्वासके साथ वे उसके उदरके भीतर खिंचे चले जा रहे हैं। थोड़ी ही देरमें उन्होंने अपनेको उस बालकके उदरके भीतर पाया। वहाँ उन्होंने सारे जगत्‌को उसी रूपमें पाया, जिस रूपमें उन्होंने प्रलयके पूर्व उसे बाहर देखा था। कुछ क्षणके अनन्तर वे उसी बालकके श्वासके द्वारा प्रेरित होकर बाहर निकल आये और पुनः उसी प्रलयसमुद्रमें जा पड़े। बाहर निकलकर उन्होंने उस बालकको उसी अवस्थामें अपनी ओर प्रेमपूर्ण कटाक्षोंसे देखते हुए पाया। उसकी मन्द मुसकानसे आकर्षित होकर वे उसके समीप जाकर उसे आलिंगन करना ही चाहते थे कि वे योगाधिपति बालवेशधारी भगवान् एकाएक अन्तर्धान हो गये, उनके अन्तर्धान होते ही वह वटवृक्ष और वह प्रलयसमुद्र सारा-का-सारा क्षणभरमें विलीन हो गया और मुनि अपने आश्रममें पूर्ववत् स्थित हो गये। उन्होंने मन-ही-मन भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारायणकी मायाको प्रणाम किया और हृदयसे उन मायेश्वरकी शरण हो गये।

श्रीकश्यपजी

समस्त लोकोंके पितामह भगवान् ब्रह्माने ही इस चराचर सृष्टिको उत्पन्न किया है। सृष्टिकी इच्छासे उन्होंने मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु आदि मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया। मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। दक्षप्रजापतिने अपनी तेरह कन्याओंका विवाह इनके साथ कर दिया। इन तेरह कन्याओंमें अदिति भगवान् कश्यपकी सबसे प्यारी पत्नी थी। उन्हींसे इन्द्रादि समस्त देवता हुए और भगवान् वामनने भी इन्हींके यहाँ अवतार लिया। इनका तप अनन्त है, इनकी भगवद्भक्ति अटूट है। ये दम्पती भगवान्के परमप्रिय हैं। तीन बार भगवान्ने इनके घरमें अवतार लिया। भगवान् जिनके पुत्र बने, उनके विषयमें अधिक क्या कहा जा सकता है?

श्रीपर्वतजी

इनकी देवर्षियोंमें गणना है। महाभारतमें इनका और श्रीनारदजीका अनेक स्थलोंपर साथ-साथ वर्णन पाया जाता है। श्रीनारदजीकी ही तरह ये भी विचरणशील स्वभावके तथा भगवद्गुणगानके रसिक हैं।

श्रीपराशरजी

ये ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीके पौत्र, महर्षि शक्तिके पुत्र एवं भगवान् वेदव्यासजीके पिता तथा महाज्ञानी शुकदेवजीके पितामह हैं। इनकी माताका नाम अदृश्यन्ती था। इन्होंने बारह वर्षोंतक माताके गर्भमें ही रहकर वेदाभ्यास किया था। राक्षसभावापन्न राजा कल्माषपादद्वारा इनके पिता शक्तिका वध कर दिया गया था। अपनी माताद्वारा इस बातको जानकर ये बहुत क्रुद्ध हुए और जगद्विनाशका संकल्प किया, परंतु पितामह वसिष्ठद्वारा समझानेपर इन्होंने ऐसा नहीं किया; परंतु राक्षसोंपर इनका क्रोध बना ही रहा। इन्होंने राक्षस-सत्रका अनुष्ठानकर राक्षसोंको उसमें भस्म करना प्रारम्भ कर दिया, परंतु महर्षि पुलस्त्यके कहनेपर उनका मान रखते हुए इन्होंने राक्षस-सत्रको रोक दिया। इससे प्रसन्न होकर पुलस्त्यजीने कहा कि तुमने मेरे कुलकी रक्षा की है, अतः तुम विष्णुपुराणके रचयिता होगे। इनके द्वारा रचित 'पराशरस्मृति' में धर्माधर्मका बड़ा विवेकपूर्ण निर्णय किया गया है। भगवत्स्मरणकी महिमाका वर्णन करते हुए ये कहते हैं कि प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रिमें अथवा मध्याह्नमें, किसी भी समय श्रीनारायणका स्मरण करनेसे पुरुषके समस्त पाप तत्काल क्षीण हो जाते हैं।

अठारह पुराण

ब्रह्म बिष्नु सिव लिंग पद्म अस्कँद बिस्तारा।
बामन मीन बराह अग्नि कूरम ऊदारा॥
गरुड़ नारदी भविष्य ब्रह्मबैबर्त श्रवन सुचि।
मार्कंडेय ब्रह्मंड कथा नाना उपजै रुचि॥
परम धर्म श्रीमुख कथित चातुश्लोकी निगम सत।
साधन साध्य सत्रह पुरान फलरूपी श्रीभागवत॥ १७॥

ब्रह्म, विष्णु, शिव, लिंग, पद्म, स्कन्द, वामन, मत्स्य, वाराह, अग्नि, कूर्म, गरुड, नारद, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड—इन सभी पुराणोंमें विशेषतया श्रीमद्भागवतमें स्वयं भगवान्के श्रीमुखसे परमधर्म कहा गया है। श्रीमद्भागवतमें चतुःश्लोकी सभी वेदोंका सार है। अठारहों पुराण विस्तृत हैं, उदार हैं। इनके सुननेसे अन्तःकरण पवित्र होता है, इनमें अनेक प्रकारकी कथाओंका वर्णन है, जिनसे इष्टदेवमें रुचि उत्पन्न होती है, ये ब्रह्मपुराण आदि सत्रह पुराण साधन हैं और श्रीमद्भागवत पुराण साध्य है, पुराणोंमें यह फलरूप है॥ १७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ पुराणोंके सम्बन्धमें कुछ बातें दी जा रही हैं—

संस्कृत-साहित्यमें पुराणों*का विशेष स्थान है। वेदोंके समान इनकी मान्यता है। महाभारतके साथ पुराणोंको पंचम वेद कहा गया—**'इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते॥'** पुराण प्राचीन भारतके धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक संस्कृतिके विश्वकोष हैं।

पुराणोंके श्रवणकी बहुत महिमा है। पुराणोंका प्रतिपादन आख्यानशैलीमें है। इसीलिये ये परम रोचक और शीघ्र प्रभाव डालते हैं। पुराणोंमें वेदोंके ही अर्थोंका उपबृंहण हुआ है। **'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्।'** वेदमें जहाँ **'सत्यं वद'** आदि उपदेश आये हैं, पुराणोंने इन उपदेशोंको राजा हरिश्चन्द्र आदिके आख्यानसे कथारूपमें प्रस्तुत किया है। पुराण हमें सच्चे मित्रकी भाँति कल्याणकारी परामर्श प्रदान करते हैं। पुराण श्रीवेदव्यासजीकी कृतियाँ हैं। यह व्यासजीका लोकपर महान् अनुग्रह है। आत्मकल्याण तथा भगवत्प्राप्तिके साधनोंका जैसा समावेश पुराणोंमें हुआ है, वैसा वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। मुख्य तथा अवान्तररूपसे भगवच्चर्चा ही पुराणोंका अन्यतम प्रतिपाद्य है। आख्यानों, उपाख्यानों तथा गाथाओंके द्वारा पुराणोंमें उसी परम प्रभुकी महिमाका गान हुआ है। इनमें लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञान-विज्ञानके सभी विषय भरे पड़े हैं।

श्रीमद्भागवतपुराण साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है, भगवान्‌की वाङ्मयी मूर्ति है। भागवतके श्रवण एवं पारायणकी अद्भुत महिमा है। शुकदेवजी इसकी अतुलनीय महिमाका बखान करते हुए कहते हैं—भागवत पुराणोंका तिलक और वैष्णवोंका धन है। इसमें परमहंसोंके प्राप्य विशुद्ध ज्ञानका ही वर्णन किया गया है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके सहित निवृत्तिमार्गको प्रकाशित किया गया है, जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसके श्रवण, पठन और मननमें तत्पर रहता है, वह मुक्त हो जाता है। यह भागवतशास्त्र भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला और नित्य प्रेमानन्दरूप फल प्रदान करनेवाला है—**'कृष्णप्राप्तिकरं शाश्वत् प्रेमानन्दफलप्रदम्॥'** ब्रह्म, पद्म आदि सत्रह पुराणोंको साधनरूप और भागवतको साध्य एवं फलरूप बताया गया है।

अठारह स्मृतियाँ और उनके रचयिता आचार्य

मनुस्मृति अत्रै बैष्नवीय हारीतक यामी।
जाग्यबल्क्य अंगिरा सनैश्चर सँवृतक नामी॥
कात्यायनि सांडिल्य गौतमी बसिठी दाषी।
सुरगुरु सातातप पारासर क्रतु मुनि भाषी॥
आसा पास उदार धी परलोक लोक साधन्न सो।
दस आठ सुमृति जिन उच्चरी तिन पद सरसिज भाल मो॥ १८॥

मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, यम, याज्ञवल्क्य, अंगिरा, शनि, संवर्तक, कात्यायन, शाण्डिल्य, गौतम, वसिष्ठ, दक्ष, बृहस्पति, शातातप, पराशर तथा महर्षि क्रतु नामवाले जिन अठारह ऋषियोंने स्मृतियोंकी रचना की, उनके चरण-कमलोंमें मैं अपना मस्तक रखता हूँ। आशा-तृष्णाके बन्धनसे छुड़ानेके लिये उदार बुद्धिवाले ऋषियोंने स्मृतियाँ बनायी हैं। वे इस लोकमें उन्नति तथा परलोकमें कल्याणका साधन हैं॥ १८॥

यहाँ संक्षेपमें इन स्मृतियों तथा स्मृतिकारोंके सन्दर्भमें विवरण प्रस्तुत है—

मनुष्य धर्मका मर्म समझ सके, शुद्ध आचरणका महत्त्व जान सके, पाप-पुण्य, नीति-अनीतिको पहचाननेकी सामर्थ्य प्राप्त कर सके तथा देव, पितृ, अतिथि, गुरु आदिके प्रति अपना कर्तव्य समझे एवं अपने कर्तव्य-

* गीताप्रेससे कुछ पुराण मूल एवं अनुवादके साथ तथा कुछ संक्षिप्तरूपसे हिन्दी-भाषामें प्रकाशित हैं। कल्याणके विशेषाङ्करूपमें 'पुराणकथाङ्क' भी प्रकाशित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथपर बढ़ता रहे—यही स्मृतिग्रन्थोंका प्रधान उद्देश्य है, स्मृतियाँ हमें अच्छे आचारवान् बननेकी शिक्षा देती हैं, सद्व्यवहार सिखाती हैं, सच्चा मानव बननेकी प्रेरणा देते हुए अपने कर्तव्योंका अवबोध कराती हैं और प्रभुप्राप्तिके मार्गको प्रशस्त करती हैं। इस दृष्टिसे धर्मशास्त्रकारों (स्मृतिकारों)-का जगत्पर महान् उपकार है।

स्मृतियाँ अनेक हैं, किंतु श्रीनाभादासजीने अपने भक्तमालमें जिन अठारह स्मृतियोंके प्रणयनकर्ता आचार्यों तथा उनकी स्मृतियोंका नाम प्रमुखरूपसे दिया है, यहाँ संक्षेपमें उन्हींके विषयमें कुछ विवरण प्रस्तुत है—

(१) मनुस्मृति—राजर्षि मनु और उनके धर्मशास्त्र मनुस्मृतिका भारतीय साहित्यमें विशेष स्थान है। धर्मशास्त्रकारोंमें मनुका अत्यन्त गौरव है, सभी स्मृतियोंमें मनुस्मृतिका प्राधान्य है **'प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्।'** मनुजीद्वारा निर्दिष्ट मानवधर्मशास्त्र (मनुस्मृति) विश्वके सच्चे संविधानके रूपमें और सभी धर्म-कर्मोंके निर्णयके लिये सर्वोपरि मान्य है। मनुस्मृति बारह अध्यायोंमें उपनिबद्ध है। इसके उपदेश तथा इसमें बताये गये विधि-विधान सभीके लिये अत्यन्त कल्याणकारी हैं।

(२) अत्रिस्मृति—अत्रिस्मृति एवं अत्रिसंहिताके प्रणेता महर्षि अत्रि वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ये ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं तथा सप्तर्षियोंमें परिगणित हैं। ये दिव्य ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न एवं भगवान्के अनन्य भक्त हैं। कर्दमप्रजापतिकी पुत्री देवी अनसूया इनकी धर्मपत्नी हैं, जो पतिव्रताओंका आदर्श हैं।

(३) वैष्णवधर्मशास्त्र—भगवान् विष्णुद्वारा धरा (पृथ्वी) देवीको दिया गया कल्याणकारी उपदेश वैष्णवधर्मशास्त्र कहलाता है। यह सूत्रों तथा श्लोकोंके रूपमें उपनिबद्ध है। गीताकी तरह इसे भी भगवद्वाणी कहा गया है। इस स्मृतिमें एक सौ अध्याय हैं।

(४) हारीतस्मृति—परम वैष्णव महर्षि हारीतके नामसे तीन स्मृतियाँ प्राप्त होती हैं—हारीतस्मृति, लघुहारीतस्मृति तथा वृद्धहारीत। महाभारतमें हारीतजीके नामसे हारीतगीता भी प्राप्त होती है। उसके उपदेश बड़े ही कल्याणकारी हैं। महर्षि हारीत भगवान् विष्णुके अनन्य उपासक थे। अपनी स्मृतियोंमें उन्होंने उनकी उपासनापद्धति तथा मन्त्रोंका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।

(५) यमस्मृति—धर्मराज यम भगवान् सूर्य और देवी संज्ञाके पुत्र हैं। ये जीवोंके कर्मोंके साक्षी, उनका नियमन करनेवाले होनेके कारण यम तथा धर्मरूप होनेके कारण धर्म या धर्मराज कहलाते हैं। जीवोंको उनके कर्मानुसार अच्छा-बुरा फल प्रदानकर उन्हें शुद्ध एवं पवित्र बनाना तथा भगवान्के मार्गमें प्रवृत्त कराना धर्मराज यमका मुख्य कार्य है। इन्होंने भगवन्नाम महिमाको कल्याणका अत्यन्त सुगम उपाय बताया है। इनकी तीन स्मृतियाँ प्राप्त होती हैं—यमस्मृति, लघुयमस्मृति और बृहद्यमस्मृति। प्रधानरूपसे तीनों स्मृतियोंमें प्रायश्चित्त-सम्बन्धी विधान निरूपित हैं।

(६) याज्ञवल्क्यस्मृति—रामकथाके प्रवक्ता महर्षि याज्ञवल्क्यजी महान् योगी, अध्यात्मवेत्ता तथा धर्मके निगूढ़ तत्त्वका ज्ञान रखनेवाले आचार्य हैं। ये उच्चकोटिके भगवद्भक्त हैं। स्मृतिकारोंमें याज्ञवल्क्यजीका स्थान बहुत ही विशिष्ट है। याज्ञवल्क्यस्मृति, योगियाज्ञवल्क्यस्मृति, बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति आदि स्मृतियाँ उनके नामसे विख्यात हैं। याज्ञवल्क्यस्मृतिमें आचार, व्यवहार तथा प्रायश्चित्त नामक तीन अध्याय हैं और अध्यायोंके अन्तर्गत अनेक प्रकरण हैं।

(७) अंगिरास्मृति—महर्षि अंगिरा ब्रह्माजीके पुत्र हैं। कर्दमऋषिकी पुत्री श्रद्धा इनकी धर्मपत्नी हैं। देवगुरु बृहस्पति, उतथ्य तथा संवर्त इनके पुत्र हैं और सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति—इनकी चार दिव्य कन्याएँ हैं। महर्षि अंगिरा अथर्ववेदके प्रवर्तक हैं। इसलिये ये अथर्वा भी कहलाते हैं। इनकी गणना सप्तर्षियोंमें भी है। इनके जीवन-दर्शनका सार यही है कि परात्पर पुरुषोत्तमको तत्त्वतः जान लेनेपर इस जीवात्माके हृदयकी गाँठ खुल जाती है, सम्पूर्ण संशय कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं, इसी बातको उन्होंने मुण्डकोपनिषद् (२। २। ८)-में महाशाल शौनकजीको बताया है—**'भिद्यते**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_6_1_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥' इनके नामसे दो स्मृतियाँ प्राप्त होती हैं। इनमें मुखरूपसे गृहस्थाश्रमके सदाचार, गोसेवा, पंचमहायज्ञ तथा प्रायश्चित्तविधानका वर्णन है।

(८) शनैश्चरस्मृति—शनि या शनैश्चर भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। श्रीनाभादासजीने इनका धर्मशास्त्रकारोंमें परिगणन किया है।

(९) संवर्तस्मृति—आध्यात्मिक शक्तिसम्पन्न तथा अध्यात्मवेत्ताओं और धर्माचरणके स्वरूपका प्रतिपादन करनेवालोंमें महात्मा संवर्त विशेष रूपसे परिगणनीय हैं। ये महर्षि अंगिराके पुत्र और देवगुरु बृहस्पतिके छोटे भाई हैं। इनका उदात्त चरित वेद, इतिहास, पुराण तथा महाभारतमें विस्तारसे आया है। भगवान्के भक्तों तथा भक्तिके आचार्योंमें इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। ये परम शिवभक्त, गायत्रीके महान् उपासक, भक्तोंके परम उपास्य तथा मन्त्रद्रष्टा वामदेव, मार्कण्डेय आदि ऋषियोंके परम गुरु हैं। पुराणेतिहास ग्रन्थोंमें वर्णित है कि ये अवधूत वेषमें गुप्तरीतिसे भगवत्-ध्यानमें निमग्न हो सर्वत्र विचरण किया करते हैं और भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशीपुरी इन्हें अत्यन्त प्रिय है। इनकी बनायी हुई संवर्तस्मृति यद्यपि संक्षिप्त है, किंतु इसके उपदेश बड़े ही उपादेय तथा कल्याणकारक हैं। इस स्मृतिमें वर्णाश्रमधर्म, प्रायश्चित्त, गायत्रीजप तथा दानकी महिमा विशेषरूपसे आयी है।

(१०) कात्यायनस्मृति—महर्षि कात्यायनका अत्यन्त प्राचीन धर्मशास्त्रकारोंमें परिगणन है। प्राचीन भारतीय व्यवहार एवं व्यवहार-विधिके नियमोंमें तथा स्त्रीधनकी मीमांसामें महर्षि कात्यायनके वचन अत्यन्त प्रामाणिक माने गये हैं। परवर्ती सभी निबन्धकारोंने इनके वचनोंको उद्धृत किया है।

(११) शाण्डिल्यस्मृति—परम भागवत ऋषि शाण्डिल्यजी भक्तिके आचार्य हैं। इनका भक्तिसूत्र अति प्रसिद्ध है। इनके अनुसार भगवान्में परम अनुराग ही भक्ति है—'**सा परानुरक्तिरीश्वरे।**' इन्होंने भगवद्भजनको ही सबसे बड़ा कल्याणकारक बताया है—'**क्षेममात्यन्तिकं विप्रा हरेर्भजनमेव हि।**' (शाण्डिल्यसंहिता १।९) आचार्यजी भगवान्का सर्वोपरि गुण बताते हुए कहते हैं कि '**मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्।**' (शाण्डिल्यसूत्र ४९) अर्थात् भगवान्का मुख्य गुण है कारुण्य या दयालुता। इनका धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ शाण्डिल्यस्मृति वैष्णवोंकी परम आचारसंहिता है।

(१२) गौतमस्मृति—महर्षि गौतम वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमें एक ऋषि हैं। ये ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। देवी अहल्या इनकी पत्नी हैं। महर्षि गौतमके नामसे एक धर्मसूत्र तथा एक स्मृति प्राप्त होती है। गौतमस्मृतिमें मुख्यरूपसे धर्माचरणकी महिमा, पंचयज्ञ, गोमहिमा, आपद्धर्म, भोजनविधि, तीर्थमहिमा तथा भगवद्भक्तिकी महिमा वर्णित है।

(१३) वसिष्ठस्मृति—क्षमाधर्म तथा आचार-निष्ठाके परमादर्श महर्षि वसिष्ठ वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। आप ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। आपकी पत्नी देवी अरुन्धती पतिव्रताओंकी आदर्श हैं। ये भगवान् श्रीरामके गुरु रहे हैं तथा उनके परम भक्त भी हैं। भगवद्भक्तोंमें आपकी प्रथम गणना होती है। आपकी गोसेवा और गोभक्ति प्रसिद्ध ही है। आपकी धर्मशास्त्रीय तथा आचारसम्बन्धी मर्यादाएँ वसिष्ठधर्मसूत्र तथा वसिष्ठस्मृतिमें उपनिबद्ध हैं। धर्माधर्म तथा कर्तव्याकर्तव्यके निर्णयमें वसिष्ठजीके वचनोंका विशेष गौरव है।

(१४) दक्षस्मृति—दक्षस्मृतिके निर्माता प्रजापति दक्ष ब्रह्माजीके पुत्र हैं। मनुपुत्री प्रसूति इनकी धर्मभार्या थीं। शंकरपत्नी भगवती सती इन्हीं दक्षकी पुत्री हैं। इसीलिये ये दाक्षायणी भी कहलाती हैं। प्रजापति दक्ष भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त और उनके कृपापात्र हैं। सात अध्यायोंमें उपनिबद्ध दक्षस्मृतिमें मुख्य रूपसे गृहस्थधर्म, सदाचार एवं अध्यात्मयोगज्ञान निरूपित है।

(१५) बृहस्पतिस्मृति—आचार्य बृहस्पति देवोंके भी गुरु हैं। ये वाणी-बुद्धि एवं ज्ञानके अधिष्ठाता तथा महान् परोपकारी हैं। ये महर्षि अंगिराके पुत्र हैं। इनकी बनायी स्मृति संक्षिप्त होनेपर भी बड़ी ही उपयोगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें मुख्यरूपसे भूमिदान एवं गोदानकी और भगवद्भक्तिकी महिमा आयी है।

(१६) शातातपस्मृति—महर्षि याज्ञवल्क्यजीने विशिष्ट धर्मशास्त्रकारोंमें महर्षि शातातपजीका उल्लेख किया है। ये महर्षि शरभंगके गुरु हैं। इन्होंने अनेक प्रकारके तपोंका अनुष्ठान किया और तप करते-करते ये अत्यन्त क्षीणकाय हो गये थे। इसीलिये ये शातातप कहलाते हैं। कर्मविपाक (अच्छे-बुरे कर्मोंका फल)-मीमांसाके लिये ये ही सर्वाधिक प्रमाण माने गये हैं। इनके नामसे तीन स्मृतियाँ प्राप्त होती हैं—लघुशातातप, वृद्धशातातप तथा शातातपीय कर्मविपाकसंहिता। मुख्य रूपसे इनमें पातक-उपपातक-महापातकोंका निरूपण तथा उनका प्रायश्चित्त वर्णित है।

(१७) पराशरस्मृति—'कलौ पाराशरः स्मृतः' इस वचनके अनुसार कलियुगमें महात्मा पराशरजीका कहा हुआ धर्म विशेष मान्यताप्राप्त है। पराशरजी कृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यासजीके पिता हैं। विष्णुपुराण इन्हींकी रचना है। पराशरस्मृतिमें बारह अध्याय हैं। इन्हींके नामसे एक बृहद्-पाराशरस्मृति भी प्राप्त होती है।

(१८) क्रतुस्मृति—महर्षि क्रतु ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। ये धर्मज्ञ, सत्यवादी और व्रतपरायण महात्मा हैं। बालखिल्य ऋषिगण इन्हीं महर्षिके पुत्र हैं। इन महात्माने धर्मकी व्यवस्थाके लिये जो शास्त्र बनाया, वह क्रतुस्मृतिके नामसे कहा जाता है। श्रीनाभादासजीने इनका स्मृतिकारोंमें परिगणन किया है।

श्रीरामसचिव (श्रीरामके मन्त्रिगण)

धृष्टी बिजय जयंत नीतिपर सुचिर बिनीता।
राष्टरबर्धन निपुन सुराष्टर परम पुनीता॥
असोक सदा आनंद धर्मपालक तत्ववेता।
मन्त्रीबर्य सुमंत्र चतुर्भुज मंत्री जेता॥
अनायास रघुपति प्रसन भवसागर दुस्तर तरैं।
पावैं भक्ति अनपाइनी (जे) राम सचिव सुमिरन करैं॥ १९॥

धृष्टिजी, विजयजी, जयन्तजी, राष्ट्रवर्धन, सुराष्ट्र, अशोक, धर्मपालक और सुमन्त्रजी—ये नीतिपरायण, पवित्र, सुशील, परम चतुर, आनन्दमय और रहस्यके ज्ञाता हैं। सुमन्त्रजी चारों युगोंके मन्त्रियोंमें विजयी और श्रेष्ठ हैं। जो लोग भगवान् श्रीरामके इन आठ मन्त्रियोंका स्मरण करते हैं, वे श्रीरामजीकी अचला भक्ति पाते हैं, उनपर प्रभु अपने-आप ही प्रसन्न हो जाते हैं और वे जन्म-मृत्युके कठिन चक्रसे छूट जाते हैं, संसार-सागरसे पार हो जाते हैं॥ १९॥

यहाँ भगवान् श्रीरामकी सभाके मन्त्रिगणोंके सम्बन्धमें कुछ बातें निरूपित हैं—

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें महाराज दशरथके मन्त्रिजनोचित गुणोंसे सम्पन्न आठ मन्त्रियोंका वर्णन मिलता है। ये सदा ही राजाके प्रिय एवं हितमें लगे रहते थे। ये सभी शुद्ध आचार-विचारसे युक्त थे और राजकीय कार्योंमें निरन्तर संलग्न रहते थे। इनके नाम इस प्रकार हैं—

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः।
अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्॥

(वा०रा० बाल० ७। ३)

अर्थात् धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप (अशोक), धर्मपाल और आठवें सुमन्त्र, जो अर्थशास्त्रके विशेषज्ञ थे।

कालान्तरमें महाराज दशरथके दिवंगत हो जानेके बाद, जबकि श्रीरामचन्द्रजी वनवासमें थे और भरतजी नन्दिग्राममें निवास कर रहे थे, इन मन्त्रियोंने ही अयोध्याकी सम्पूर्ण व्यवस्थाको सुचारुरूपसे सँभाले रखा और भगवान् श्रीरामके आनेपर पुनः अपने-अपने पदोंपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_6_2_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियुक्त हो गये। ये सभी उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तथा राजाके हितैषी थे। नीतिरूपी नेत्रोंसे देखते हुए ये सदा सजग रहते थे। अपने गुणोंके कारण ये सभी मन्त्री गुरुतुल्य समादरणीय थे। सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी कि इनमें भगवान् श्रीरामके प्रति अनन्य प्रेम था। इनमें भी सुमन्त्रजीका तो पिताके बालसखा होनेके कारण श्रीरामजी विशेषरूपसे पिताकी ही भाँति आदर करते थे। यहाँ संक्षेपमें श्रीसुमन्त्रजीका चरित्र दिया जा रहा है—

श्रीसुमन्त्रजी

सुमन्त्रजीका जन्म सूतकुलमें हुआ था, परंतु अपनी योग्यता, कर्तव्यपरायणता और राज्यके प्रति निष्ठासे उन्होंने अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्के महामन्त्री होनेका गौरव प्राप्त किया। अयोध्यासम्राट् महाराज दशरथके ये बालमित्र थे, सखा थे और महाराजके निजी सारथि भी थे। इनकी सम्मतिसे ही महाराज राज्यके सब कार्य करते थे और सभी राज्यसेवकोंके ये अध्यक्ष भी थे। श्रीरामचन्द्रजी पिताके इन सखा एवं मन्त्रीको पिताके समान ही आदर देते थे।

गुरु वसिष्ठजीसे आज्ञा लेकर महाराज दशरथने सुमन्त्रसे सम्मति ली और श्रीरामको दूसरे ही दिन युवराजपद देना निश्चित हो गया। सुमन्त्र उस महोत्सवका प्रबन्ध करनेमें लग गये; किंतु दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज बहुत देरतक राजभवनसे निकले ही नहीं। सुमन्त्र ही अन्तःपुरमें जाकर महाराजको जगा सकते थे। सुमन्त्र भीतर गये। उन्होंने कोपभवनमें भूमिपर मूर्च्छित पड़े हुए महाराजको और पास बैठी रोषकी मूर्ति कैकेयीको देखा। यहींसे उनकी व्यथाके अपार समुद्रका प्रारम्भ हो गया। कैकेयीके कहनेसे वे श्रीरामको वहाँ बुला लाये। कैकेयीके मुखसे उन्होंने श्रीरामको वनवास देनेकी बात सुनी और एक शब्दतक व्यथाके मारे उनके मुखसे नहीं निकल सका।

श्रीराम भाई लक्ष्मण और जानकीजीके साथ वनको चले। महाराजकी आज्ञासे सुमन्त्रने उन्हें रथपर बैठाया। शृंगवेरपुरतक रथ आया। शृंगवेरपुरमें गंगातटपर श्रीरामने अपनी घुँघराली काली अलकोंको वटके दूधसे चिपकाकर जटा बना लिया। सुमन्त्रका हृदय फटा जाता था। उन्होंने महाराज दशरथका सन्देश सुनाकर श्रीरामको लौटनेके लिये कहा; श्रीजनकराजकुमारीको वनके क्लेश बताकर अयोध्या चलनेकी प्रार्थना की; किंतु कोई फल न हुआ। श्रीराम और वैदेही तो सदासे उनको पिताकी भाँति मानते आये हैं। आज भी वही सम्मान, वही आदर, वही संकोचपूर्ण विनय; किंतु कोई भी लौटकर साथ नहीं चलना चाहता। सुमन्त्रने बहुत प्रयत्न किया कि 'उसे ही वनमें साथ चलनेकी अनुमति मिल जाय', पर ऐसा कब सम्भव था। सुमन्त्रकी दशा क्या हो गयी?

नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥

बहुत प्रकार समझा-बुझाकर श्रीरघुनाथजीने उन्हें लौटाया, पर सुमन्त्र लौट न सके। वे बार-बार लौट आते थे। केवटने नाव चला दी। अयोध्याके जीवनधन वन चले गये। जब निषादराज कुछ दूर श्रीराघवको पहुँचाकर लौटे, तब उन्होंने जलसे बाहर पड़ी मछलीकी भाँति तड़पते सुमन्त्रको देखा। साथमें चार सेवक देकर किसी प्रकार उन्हें अयोध्या लौटाया। सुमन्त्रकी अन्तर्वेदनाका पार नहीं है। वे क्या मुख लेकर अयोध्या जायँ। पुरवासियोंको, सेवकोंको, महारानी कौसल्याको और महाराजको कौन-सा संवाद सुनायें। किसी प्रकार अन्धकार होनेपर वे नगरमें गये। रथ राजद्वारपर छोड़कर भवनमें प्रवेश किया। किसी प्रकार महाराजके पास पहुँचे। रामका सन्देश—उन्होंने बहुत प्रयत्न किया महाराजको धैर्य देनेका; किंतु उन्हींका हृदय हाहाकार कर रहा था। उन्होंने सन्देशके अन्तमें कहा—

मैं आपन किमि कहौं कलेसू। जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू॥

महाराज दशरथने शरीर त्याग दिया। अयोध्या अनाथ हो गयी। सुमन्त्र धैर्य धारण न करें तो उनके हृदयधन श्रीरामका साम्राज्य व्यवस्थित कैसे रहे? ननिहालसे भरतजी लौटे और पिताकी अन्त्येष्टि करके वे चित्रकूट पहुँचे बड़े भाईको मनाने। वहाँसे वे श्रीरामकी चरणपादुका ले आये। सिंहासनपर वे पादुकाएँ प्रतिष्ठित हुईं। सुमन्त्रने धैर्यपूर्वक व्यवस्था सँभाल ली और वे चौदह वर्ष उसे सँभाले रहे। अन्तमें अयोध्याके स्वामी अयोध्या लौटे। श्रीरामने सुमन्त्रको सदा पिताकी भाँति ही आदर दिया और सुमन्त्र राम-राज्यमें भी उस साम्राज्यके महामन्त्रीपदपर प्रतिष्ठित रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराम-सहचरवर्ग

दिनकर सुत हरिराज बालिबछ केसरि औरस।
दधिमुख द्विबिद मयंद रिच्छपति सम को पौरस॥
उल्का सुभट सुषेन दरीमुख कुमुद नील नल।
सरभ रु गवै गवाच्छ पनस गँधमादन अतिबल॥
पद्म अठारह जूथपति रामकाज भट भीर के।
सुभ दृष्टि बृष्टि मो पर करौ जे सहचर रघुबीर के॥ २०॥

सूर्यके पुत्र वानरराज सुग्रीवजी, बालिपुत्र अंगदजी, केशरीके पुत्र हनुमान्‌जी, दधिमुखजी, द्विविदजी, मयन्दजी, जिनके समान कोई साहसी और बलवान् नहीं है ऐसे रीछोंके राजा जाम्बवान्‌जी, श्रेष्ठ योद्धा उल्कामुखजी, सुषेणजी, दरीमुख, कुमुद, नील, नल, शरभ, गवय, गवाक्ष, पनस और महाबलवान् गन्धमादन आदि अठारह पद्म जो सेनापति हैं—ये संकटके समय भक्तोंके तथा श्रीरामजीके कार्यको करनेवाले महान् वीर हैं। श्रीरामचन्द्रजीके ये जो सखागण हैं, वे हमारे ऊपर मंगलकारिणी कृपादृष्टिकी वर्षा करें॥ २०॥

यहाँ श्रीरामजीके इन सहचरोंका किंचित् वर्णन प्रस्तुत है—

सूर्यपुत्र सुग्रीव

वानरराज सुग्रीव भगवान् श्रीरामके सखा और भक्त थे। इनका वर्णन छप्पय ९ पृ० ६० में आया है।

बालिपुत्र अंगद

वनवासके समय भगवती जानकीका अन्वेषण करते हुए मर्यादापुरुषोत्तम ऋष्यमूकपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुग्रीवसे मित्रता की। सुग्रीवका पक्ष लेकर उन्होंने वानरराज बालिको मारा। मरते समय बालिने अपने पुत्र अंगदको उन सर्वेश्वरके चरणोंमें अर्पित किया। प्रभुने अंगदको स्वीकार किया। सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य मिला, किंतु युवराजपद बालिकुमार अंगदजीका ही रहा। अंगदने भगवान्‌की इस कृपाको हृदयसे ग्रहण किया। प्रभुने अंगदको दूत बनाकर रावणके पास भेजा।

रावणकी राजसभामें उनकी तेजस्विता, उनका शौर्य अद्वितीय रहा। श्रीराम सर्वेश्वर हैं। उनके सेवककी प्रतिज्ञा त्रिलोकीमें कोई भंग नहीं कर सकता—यह अविचल विश्वास अंगदमें था; इसीसे उन्होंने रावणकी सभामें प्रतिज्ञा की—

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥

(रा०च०मा० ६। ३४। ९)

जब रावण भगवान्‌की निन्दा करने लगा, तब युवराज उसे सह नहीं सके। क्रोध करके उन्होंने मुट्ठी बाँधकर दोनों भुजाएँ भूमिपर बड़े जोरसे दे मारीं। भूमि हिल गयी। रावण गिरते-गिरते बचा। उसके मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़े। उनमेंसे चार मुकुट अंगदने उठाकर भगवान्‌के पास उछाल दिये। इतना शौर्य दिखाकर तथा इतना पराक्रम प्रकट करके वे प्रभुके पास चले आये।

इसके पश्चात् युद्ध हुआ। रावण मारा गया। उस युद्धमें युवराज अंगदका पराक्रम वर्णनातीत है। लंका-विजय करके श्रीराम अयोध्या पधारे। राज्याभिषेक हुआ। अन्तमें कपिनायकोंको विदा करनेका अवसर आया। भगवान् एक-एकको वस्त्राभरण देकर विदा करने लगे। अंगदका हृदय धक्-धक् करने लगा। वे एक कोनेमें सबसे पीछे दुबककर बैठ गये। 'कहीं प्रभु मुझे भी जानेको न कह दें'—इस आशंकासे। श्रीरामके चरणोंसे पृथक् होना होगा, इस कल्पनासे ही वे व्याकुल हो गये। जब सभी वानर-यूथपतियों एवं रीछ-नायकोंको भगवान् उपहार दे चुके, जब सब आज्ञा पाकर उठ खड़े हुए, तब अन्तमें प्रभुने अंगदजीकी ओर देखा। अंगदका शरीर काँपने लगा। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी। वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और कहने लगे—

'नाथ! मेरे पिताने मरते समय मुझे आपके चरणोंमें डाला है, अब आप मेरा त्याग न करें। मुझे जिस किसी भी प्रकार अपने चरणोंमें ही पड़ा रहने दें!' यह कहकर अंगद श्रीरघुनाथजीके चरणोंपर गिर पड़े। करुणासागर प्रभुने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया।

केशरीपुत्र हनुमान्‌जी

श्रीहनुमान्‌जी वानरराज सुग्रीवके मन्त्री और भगवान् श्रीरामके दास्य भक्त थे। इनसे सम्बन्धित वर्णन छप्पय ९ पृ० ५९ में आया है।

श्रीदधिमुखजी

वानरश्रेष्ठ महावीर दधिमुख चन्द्रमाके अंशसे उत्पन्न हुए थे। ये वानरराज सुग्रीवके मामा थे। ये बड़े ही सौम्य, भगवद्भक्त और मधुरभाषी थे। सुग्रीवके मधुवन नामक मनोरम महावनके ये प्रधान रक्षक थे। राम-रावण-युद्धके समय इन्होंने अपने वानर सैनिकोंके साथ श्रीरामका साथ दिया था।

श्रीजाम्बवान्‌जी

श्रीजाम्बवान्‌जी भगवान् श्रीरामके प्रधानमन्त्री और ऋक्षोंके राजा थे। इनका विवरण छप्पय ९ पृ० ६० में आया है।

अन्य सहचर

द्विविद, मयन्द, सुषेण, कुमुद, नील, नल, शरभ, गवय, गवाक्ष, पनस और गन्धमादन—ये भी भगवान् श्रीरामके सहचर थे। ये सभी देवांशसे उत्पन्न थे। ब्रह्माजीके आदेशसे इन लोगोंने वानरका शरीर धारण किया था। इनमें अथाह बल था। लंकायुद्धमें इन्होंने अपना महान् पराक्रम दिखाया था। भगवान्‌ने इन सबको अपना सखा माना है। इनकी प्रशंसा करते हुए प्रभु श्रीराम गुरुदेव वसिष्ठजीसे कहते हैं—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥

(रामचरितमानस)

नौ नन्दजी

धरानंद ध्रुवनंद तृतिय उपनंद सु नागर।
चतुर्थ तहाँ अभिनंद नंद सुखसिंधु उजागर॥
सुठि सुनंद पसुपाल निर्मल निस्चै अभिनंदन।
कर्मा धर्मानंद अनुज बल्लभ जग बंदन॥
आस पास वा बगर के (जहँ) बिहरत पसुप सुछंद।
ब्रज बड़े गोप पर्जन्य के सुत नीके नव नंद॥ २१॥

व्रजमण्डलके सबसे बड़े माननीय गोप पर्जन्यजीके अति सुन्दर एवं सुशील नौ पुत्र थे, वे ही नौ नन्द हैं। धरानन्दजी, ध्रुवनन्दजी, तीसरे परम चतुर उपनन्दजी और चौथे अभिनन्दजी थे। प्रसिद्ध यशस्वी तथा सुखके सागर नन्दजी थे। पशुओंके पालक आनन्दप्रद निर्मल और निश्चल बुद्धिवाले सुनन्दजी थे। विश्ववन्दनीय कर्मानन्दजी और धर्मानन्दजी तथा उनके छोटे भाई बल्लभजी थे। जहाँ गायोंके चरनेका स्थान है, वहाँ उसीके आस-पास स्वच्छन्दतासे ये गोप विचरते रहते थे॥ २१॥

यहाँ श्रीपर्जन्यजी तथा उनके नन्द आदि नौ पुत्रोंके विषयमें संक्षेपमें कुछ विवरण प्रस्तुत है—

यदुवंशमें सर्वगुणसम्पन्न देवमीढ़ नामके एक राजा हुए। ये श्रीमथुराजीमें निवास करते थे। इनकी दो पत्नियाँ थीं, पहली क्षत्रियवर्णकी, दूसरी वैश्यवर्णकी। उन दोनों रानियोंके क्रमसे यथायोग्य दो पुत्र हुए, एकका नाम था शूरसेन, दूसरेका नाम था पर्जन्य। माता-पिता दोनों क्षत्रियवर्ण होनेसे श्रीशूरसेनजी क्षत्रिय रहे, परंतु पर्जन्यजीका जन्म वैश्यवर्णकी मातासे हुआ था, अतः वैश्यजातिको प्राप्त होकर इन्होंने गोपालन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्तिविशेषको अपनाया। ये बड़े ही भगवत्-भागवतसेवी थे। साधु-ब्राह्मणोंमें इनकी अपार श्रद्धा थी। ये अपने औदार्य गुणसे परम प्रशंसनीय थे। इनके समान ही इनकी परम भागवती पत्नीने भी सभी शुभलक्षणोंसे सम्पन्न होकर अपने 'वरीयसी' इस नामको सार्थक किया था। ये समस्त गोपोंके राजा थे। इनका वर्णन श्रीगोपालचम्पूमें भी प्राप्त होता है। पर्जन्यजीके परम भाग्यशाली नन्दादि नौ पुत्र थे।

गर्गसंहितामें वर्णन आता है कि गोलोकधाममें भगवान् श्रीकृष्णके निकुंजद्वारपर जो नौ गोप हाथमें बेंत लिये पहरा देते थे, वे ही श्याम अंगवाले नौ गोप भगवल्लीलामें सहयोग देनेके लिये व्रजमें 'नौ नन्द' के रूपमें अवतरित हुए थे। ये लोग बालकृष्णको अपने घर ले जाते और वहाँ बिठाकर उनकी रूप-माधुरीका आस्वादन करते। वे उन्हें खेलनेके लिये गेंद देते, उनका लालन-पालन करते और उनकी लीलाओंका गान करते थे। इसी प्रकार गोलोकधाम-निकुंजमें जो करोड़ों गौएँ हैं, उनके पालनमें रत रहनेवाले गोप उपनन्द कहलाते हैं। भगवान्‌की लीलामें सहयोग देनेके लिये वे भी यहाँ अवतरित हुए। नौ नन्दोंमें भी श्रीनन्दरायजीकी विशेष महिमा है, यहाँ संक्षेपमें उनका वर्णन प्रस्तुत है—

वैसे तो नन्दबाबा नित्य-गोलोकधाममें सदा ही विराजमान रहते हैं। ये भगवान् श्रीकृष्णके नित्यसिद्ध पिता हैं। जब श्यामसुन्दरको पृथ्वीपर आना होता है, तब गोप, गोपियाँ, गायें और पूरा व्रजमण्डल नन्दबाबाके साथ पहले ही पृथ्वीपर प्रकट हो जाता है। ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे वसु नामक द्रोण व्रजमें नन्द हुए और धरादेवी यशोदा हुईं। नन्दबाबा और यशोदा मैयाके धन्य भाग्य, जिनके यहाँ साक्षात् भगवान्‌ने अपना ऐश्वर्य छिपाकर अनेक बाललीलाएँ करके उन्हें आनन्दित किया।

पिता पर्जन्यजीके पश्चात् व्रजमण्डलके गोष्ठनायकों तथा भाइयोंकी सम्मतिसे श्रीनन्दरायजी ही व्रजेश्वर हुए। वसुदेवजी इनके भाई ही लगते थे और उनसे नन्दबाबाकी घनिष्ठ मित्रता थी। जब मथुरामें कंसका अत्याचार बढ़ने लगा, तब वसुदेवजीने अपनी पत्नी रोहिणीको नन्दजीके यहाँ भेज दिया। गोकुलमें ही रोहिणीजीकी गोदमें बलरामजी पधारे। श्रीकृष्णचन्द्रको भी वसुदेवजी चुपचाप नन्दगृहमें रख आये। राम-श्याम नन्दगृहमें लालित-पालित हुए। नन्दबाबा वात्सल्य-रसके अधिदेवता हैं। उनके प्राण श्रीकृष्णमें ही बसते हैं। अपने श्यामके लिये ही वे उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते, प्राण धारण करते तथा दान-धर्म, पूजा-पाठ आदि करते थे। कन्हैया प्रसन्न रहे, सकुशल रहे—बस, एकमात्र यही चिन्तन और यही इच्छा उनमें थी।

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाके सहचर—व्रजवासीगण

नंदगोप उपनंद ध्रुव धरानंद (महरि) जसोदा।
कीरतिदा बृषभानु कुँअरि सहचरि (बिहरति) मन मोदा॥
(मधु) मंगल सुबल सुबाहु भोज अर्जुन श्रीदामा।
मंडल ग्वाल अनेक स्याम संगी बहु नामा॥
घोष निवासिन की कृपा सुर नर बांछत आदि अज।
बाल बृद्ध नर नारि गोप हौं अर्थी उन पाद रज॥ २२॥

ब्रह्मा आदि सभी देव तथा ऋषि-मुनि जिन व्रजमण्डलके निवासियोंकी कृपाको चाहते हैं, उन बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी गोपी-ग्वालोंकी चरणरजको मैं अपने सिरपर चढ़ाना चाहता हूँ। नन्दगोप, उपनन्द, ध्रुवनन्द, धरानन्द, नन्दजीकी पत्नी यशोदाजी, कीर्ति देनेवाली वृषभानुकी पत्नी कीर्तिजी, बरसानेके राजा वृषभानुजी, वृषभानुकुमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराधिका, प्रसन्नचित्ता सखियाँ, मधुमंगल, सुबल, सुबाहु, भोज, अर्जुन, श्रीदामा और सम्पूर्ण ग्वाल-मण्डली जिनके अनेक नाम हैं, जो श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रके साथी हैं, मैं इन सबके पदकी धूरिका चाहनेवाला हूँ॥ २२॥

उपर्युक्त छप्पयमें वर्णित श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रके लीलासहचर व्रजवासीजनोंमेंसे कुछका वर्णन यहाँ संक्षेपमें प्रस्तुत है—

नन्दपत्नी माता यशोदा

वसुश्रेष्ठ द्रोणने पद्मयोनि ब्रह्मासे यह प्रार्थना की—'देव! जब मैं पृथ्वीपर जन्म धारण करूँ तो विश्वेश्वर स्वयं भगवान् श्रीहरि श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी परमा भक्ति हो।' इस प्रार्थनाके समय द्रोणपत्नी धरा भी वहीं खड़ी थीं। धराने मुखसे कुछ नहीं कहा; पर उनके अणु-अणुमें भी यही अभिलाषा थी, मन-ही-मन धरा भी पद्मयोनिसे यही माँग रही थीं। पद्मयोनिने कहा—'तथास्तु—ऐसा ही होगा।' इसी वरके प्रतापसे धराने व्रजमण्डलके एक सुमुख नामक गोप एवं उनकी पत्नी पाटलाकी कन्याके रूपमें भारतवर्षमें जन्म धारण किया—उस समय जब कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अवतरणका समय हो चला था, श्वेतवाराहकल्पकी अट्ठाईसवीं चतुर्युगीके द्वापरका अन्त हो रहा था। पाटलाने अपनी कन्याका नाम यशोदा रखा। यशोदाका विवाह व्रजराज नन्दसे हुआ। ये नन्द पूर्वजन्ममें वही द्रोण नामक वसु थे, जिन्हें ब्रह्माने वर दिया था।

इन्हीं यशोदाके पुत्रके रूपमें आनन्दकन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण हुए। यशोदाको पुत्र हुआ है, इस आनन्दमें सारा व्रजपुर निमग्न हो गया।

छठे दिन यशोदाने अपने पुत्रकी छठी पूजी। इसके दूसरे दिन कंसप्रेरित पूतना यशोदानन्दनको मारने आयी। अपना विषपूरित स्तन यशोदानन्दनके मुखमें दे दिया, किंतु यशोदानन्दन विषमय दूधके साथ ही पूतनाके प्राणोंको भी पी गये। शरीर छोड़ते समय श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर ही पूतना मधुपुरीकी ओर दौड़ी। आह! उस क्षण यशोदाके प्राण भी मानो पूतनाके पीछे-पीछे दौड़ चले। यशोदाके प्राण तभी लौटे, तभी उनमें जीवनका संचार हुआ, जब पुत्रको लाकर गोपसुन्दरियोंने उनके वक्षःस्थलपर रखा। यशोदाने स्नेहवश उस समय परमात्मा श्रीकृष्णपर गो-पुच्छ फिराकर उनकी मंगल-कामना की।

क्रमशः यशोदानन्दन बढ़ रहे थे एवं उसी क्रमसे मैयाका आनन्द भी प्रतिक्षण बढ़ रहा था। श्रीकृष्णचन्द्र आज इक्यासी दिनके हो गये, आज मैया अपने पुत्रको एक विशाल शकटके नीचे पलनेपर सुला आयी थीं। इसी समय कंसप्रेरित उत्कच नामक दैत्य आया, उस गाड़ीमें प्रविष्ट हो गया, शकटको यशोदानन्दनपर गिराकर वह उनको पीस डालना चाहता था। पर इससे पूर्व ही यशोदानन्दनने अपने पैरसे शकटको उलट दिया! इधर जब जननीने शकट-पतनका भयंकर शब्द सुना तो ये सोच बैठीं कि मेरा लाल तो अब जीवित रहा नहीं। बस, ढाढ़ मारकर एक बार चीत्कार कर उठीं और फिर सर्वथा प्राणशून्य-सी होकर गिर पड़ीं। बड़ी कठिनतासे गोपसुन्दरियाँ उनकी मूर्च्छा तोड़नेमें सफल हुईं।

जननीका मनोरथ पूर्ण करते हुए क्रमशः श्रीकृष्णचन्द्र बोलने भी लगे, घुटरूँ भी चलने लगे और फिर खड़े होकर भी चलने लगे। इतनेमें वर्ष पूरा हो गया, यशोदारानीने अपने पुत्रकी प्रथम वर्षगाँठ मनायी। इसी समय कंसने तृणावर्त दैत्यको भेजा। वह आया और यशोदाके नीलमणिको उड़ाकर आकाशमें चला गया। यशोदा मृतवत्सा गौकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं। इस बार जननीके जीवनकी आशा किसीको न थी, पर जब श्रीकृष्णचन्द्र तृणावर्तको चूर्ण-विचूर्णकर लौटे, गोपियाँ उन्हें दैत्यके छिन्न-भिन्न शरीरपरसे उठा लायीं तो तत्क्षण यशोदाके प्राण भी लौट आये।

देखते-देखते नीलमणि दो वर्ष दो महीनेके हो गये। पर अब नीलमणि इतने चंचल हो गये थे कि यशोदाको एक क्षण भी चैन नहीं। गोपियोंके घर जाकर तो न जाने कितने दहीके भाँड फोड़ ही आया करते थे, एक दिन मैयाका वह दहीभाँड भी फोड़ दिया, जो उनके कुलमें वर्षोंसे सुरक्षित चला आ रहा था। जननीने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डरानेके उद्देश्यसे श्रीकृष्णचन्द्रको ऊखलमें बाँधा। इस बन्धनको निमित्त बनाकर यशोदाके नीलमणिने दो अर्जुनवृक्षोंको जड़से उखाड़ दिया। फिर तो व्रजवासी यशोदानन्दनकी रक्षाके लिये अतिशय व्याकुल हो गये। पूतनासे, शकटसे, तृणावर्तसे, वृक्षसे—इतनी बार तो नारायणने नीलमणिको बचा लिया; अब आगे यहाँ इस गोकुलमें तो एक क्षण भी नहीं रहना चाहिये। गोपोंने परामर्श करके निश्चय कर लिया—बस, इसी क्षण वृन्दावन चले जाना है। यही हुआ, यशोदा अपने नीलमणिको लेकर वृन्दावन चली आयीं।

वृन्दावन आनेके पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्रकी अनेकों भुवनमोहिनी लीलाओंका प्रकाश हुआ। इन अवसरोंपर यशोदाके हृदयमें हर्ष अथवा दुःखकी जो धाराएँ फूट निकलती थीं, उनमें यशोदा स्वयं तो डूब ही जातीं, इस प्रकार ग्यारह वर्ष छः महीने यशोदारानीके भवनको श्रीकृष्णचन्द्र आलोकित करते रहे, किंतु अब यह आलोक मधुपुरी जानेवाला था। श्रीकृष्णचन्द्रको मधुपुरी ले जानेके लिये अक्रूरजी आ ही गये। फाल्गुन द्वादशीकी सन्ध्या थी, अक्रूरजीने आकर यशोदाके हृदयपर मानो अतिक्रूर वज्र गिरा दिया। विदा होते समय यशोदारानीकी जो करुण दशा थी, उसे देखकर कौन नहीं रो पड़ा। श्रीकृष्णचन्द्रके विरहमें जननी यशोदा विक्षिप्त-सी हो गयीं।

वे जड-चेतन, पशु-पक्षी, मनुष्य—जो कोई भी दृष्टिके सामने आ जाता, उसीसे वसुदेवपत्नी देवकीको अनेकों सन्देश भेजतीं। किसी पथिकने यशोदाका सन्देश श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर कह भी दिया। सान्त्वना देनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवको भेजा। उद्धव आये; पर जननीके आँसू पोंछ नहीं सके।

यशोदारानीका हृदय तो तब शीतल हुआ, जब वे कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलीं। राम-श्यामको हृदयसे लगाकर, गोदमें बैठाकर उन्होंने नव-जीवन पाया।

श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीला समेटनेवाले थे। इसीलिये अपनी जननी यशोदाको भी पहलेसे भेज दिया। जब भानुनन्दिनी गोलोकविहारिणी श्रीराधा-किशोरीको वे विदा करने लगे तो गोलोकके उसी दिव्यातिदिव्य विमानपर जननीको भी बिठाया तथा राधाकिशोरीके साथ ही यशोदा अन्तर्धान हो गयीं, गोलोकमें पधार गयीं।

जगज्जननी श्रीराधा

नृगपुत्र राजा सुचन्द्रका एवं पितरोंकी मानसी कन्या सुचन्द्रपत्नी कलावतीका पुनर्जन्म हुआ। सुचन्द्र तो वृषभानु गोपके रूपमें उत्पन्न हुए एवं कलावती कीर्तिदा गोपीके रूपमें। यथासमय दोनोंका विवाह होकर पुनर्मिलन हुआ। एक तो राजा सुचन्द्र हरिके अंशसे ही उत्पन्न हुए थे; उसपर उन्होंने पत्नीसहित दिव्य द्वादश वर्षोंतक तप करके ब्रह्माको सन्तुष्ट किया था। इसीलिये कमलयोनिने ही यह वर दिया था—'द्वापरके अन्तमें स्वयं श्रीराधा तुम दोनोंकी पुत्री बनेंगी।' उस वरकी सिद्धिके लिये ही सुचन्द्र वृषभानु गोप बने हैं। इन्हीं वृषभानुमें इनके जन्मके समय सूर्यका भी आवेश हो गया; क्योंकि सूर्यने तपस्याकर श्रीकृष्णचन्द्रसे एक कन्या-रत्नकी याचना की थी तथा श्रीकृष्णचन्द्रने सन्तुष्ट होकर 'तथास्तु' कहा था। इसके अतिरिक्त नित्यलीलाके वृषभानु एवं कीर्तिदा—ये दोनों भी इन्हीं वृषभानु गोप एवं कीर्तिदामें समाविष्ट हो गये; क्योंकि स्वयं गोलोकविहारिणी राधाका अवतरण होने जा रहा है। अस्तु, इस प्रकार योगमायाने द्वापरके अन्तमें रासेश्वरीके लिये उपयुक्त क्षेत्रकी रचना कर दी।

वह मुहूर्त आया। भाद्रपदकी शुक्ला अष्टमी है; चन्द्रवासर है, मध्याह्न है। सहसा प्रसूतिगृहमें एक ज्योति फैल जाती है—इतनी तीव्र ज्योति कि सबके नेत्र निमीलित हो गये। गोपसुन्दरियोंके नेत्र जब खुले, उन्होंने देखा—शत-सहस्र शरच्चन्द्रोंकी कान्ति लिये एक बालिका कीर्तिदाके सामने पड़ी है।

बालिकाका नाम रखा गया—'राधा'! 'राधिका।' इस प्रकार अयोनिसम्भवा श्रीराधा भूतलपर श्रीवृषभानु एवं कीर्तिदा रानीकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुईं।

देवर्षि नारदजीको अपनी आराध्या राधारानीके आविर्भावका समाचार मिला तो वे वीणाकी झनकारपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरि-गुण-गान करते हुए वृषभानु-प्रासादके सामने आकर खड़े हो गये। वृषभानुगोपकी दृष्टि उनपर पड़ी। वे दौड़कर नारदजीके चरणोंमें लोट गये और बोले—

मुनिश्रेष्ठ! श्रीचरणोंमें मेरी यह प्रार्थना है कि एक बार अपनी सुप्रसन्न दृष्टि मेरी बालिकापर भी डालकर उसे प्रकृतिस्थ कर दें।

आश्चर्यमें भरे नारद वृषभानुके पीछे-पीछे अन्त:पुरमें गये। जाकर देखा कि स्वर्णनिर्मित सजीव सुन्दरतम प्रतिमा-सी एक बालिका भूमिपर लोट रही है। देखते ही नारदका धैर्य जाता रहा, वे दौड़े तथा बालिकाको उठाकर उन्होंने अंकमें ले लिया। उनके प्राणोंमें अननुभूतपूर्व एक अद्भुत प्रेमका संचार हो गया। बस, बस, यही श्रीराधा हैं; निश्चय ही यही श्रीरासेश्वरी हैं। देवर्षिका अन्तर्हृदय आलोकित हो उठा। वे स्तुति करने लगे।

स्तुति करते-करते उनका कण्ठ रुद्ध होने लगा। प्राणोंमें श्रीराधाके तरुणरूपको देखनेकी प्रबल उत्कण्ठा भर गयी है।

नारदजीके सामने किशोरी श्रीराधाका आविर्भाव हो गया। इतना ही नहीं, दिव्य भूषण-वसनसे सज्जित अगणित सखियाँ भी वहाँ प्रकट हो गयीं।

क्षणभरमें श्रीराधाका वह कैशोररूप अन्तर्हित हो गया। बाल्यरूपसे रत्नपालनेपर वे पुन: प्रकट हो गयीं।

देवर्षि बोले—'वृषभानु! तुम्हारे भाग्यकी सीमा नहीं; जिस गृहमें तुम्हारी पुत्रीके चरणचिह्न अंकित हैं, वहाँ लक्ष्मीसहित नारायण, समस्त देव नित्य निवास करते हैं।' यह कहकर स्खलित गतिसे नारद चल पड़े।

एक दिनकी बात है, भाण्डीर वनमें एक वटके नीचे व्रजेश्वर नन्द श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लिये खड़े हैं। अचानक काली घटाएँ घिर आती हैं। नन्दबाबाको चिन्ता हो रही है कि श्रीकृष्णकी रक्षा कैसे हो? कोई भी उपाय न देखकर व्रजेश्वर एकान्त मनसे नारायणका स्मरण करने लगते हैं।

मानो कोटि सूर्य एक साथ उदय हुए हों, इस प्रकार दिशाएँ उद्भासित हो जाती हैं; तथा वह झंझावात तो न जाने कहाँ चला गया। नन्दराय आँखें खोलकर देखते हैं—सामने एक बालिका खड़ी है। 'हैं—हैं! वृषभानुकुमारी! तू यहाँ इस समय कैसे आयी, बेटी!' व्रजेश्वरने अचकचाकर कहा। किंतु दूसरे ही क्षण नन्दरायको गर्गजीकी वे बातें भी स्मरण हो आयीं; पुत्रके नामकरण-संस्कारसे पूर्व गर्गने एकान्तमें वृषभानुपुत्रीकी महिमा, श्रीराधातत्त्वकी बात बतलायी थी। अंजलि बाँधकर नन्दरायने श्रीराधाको प्रणाम किया और बोले—'देवि! मैं जान गया, पुरुषोत्तम श्रीहरिकी तुम प्राणेश्वरी हो एवं मेरी गोदमें तुम्हारे प्राणनाथ श्रीहरि ही विराजित हैं; लो, देवि! ले जाओ; अपने प्राणेश्वरको साथ ले जाओ। नन्दरायने श्रीकृष्णचन्द्रको श्रीराधाके हस्तकमलोंपर रख दिया। श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लिये गहन वनमें प्रविष्ट हो गयीं। वहाँ श्रीकृष्ण षोडशवर्षीय किशोररूपमें परिणत हो गये और ब्रह्माजीने प्रकट होकर उनका विवाह करा दिया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण पुन: बालरूप हो गये और राधाजी पुन: उन्हें गोदमें लेकर नन्दभवनमें यशोदा मैयाके पास पहुँचा आयीं। इस प्रकार श्रीराधा-कृष्ण नित्य दम्पती हैं, उनकी लीलाएँ अनन्त माधुर्यरससे सिक्त हैं।

अष्टसखी

श्रीराधाकिशोरीकी सखियाँ पाँच प्रकारकी मानी जाती हैं—सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी और परमप्रेष्ठसखी। कुसुमिका, विन्ध्या, धनिष्ठा आदि तो सखी कहलाती हैं। कस्तूरी, मणिमंजरिका आदि नित्यसखी कही जाती हैं। शशिमुखी, वासन्ती, लासिका आदि प्राणसखीकी गणनामें हैं। कुरंगाक्षी, मंजुकेशी, माधवी, मालती आदि प्रियसखी कही जाती हैं तथा श्रीललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रंगदेवी, तुंगविद्या, सुदेवी—ये आठ परमप्रेष्ठसखीकी गणनामें हैं। ये आठों सखियाँ ही अष्टसखीके नामसे विख्यात हैं।

श्रीकृष्णके व्रजसखा

व्रजभूमि प्रेमका दिव्य धाम है। वहाँ निवास करनेवाले गोप, गोपियाँ, गोपकुमार, गायें, वनके पशु-पक्षी—सभी प्रेमके मूर्तिमान् विग्रह हैं। व्रजके गोपकुमार तो सख्यभक्तिके अनुपम उदाहरण हैं। मधुमंगल, सुबल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबाहु, सुभद्र, भद्र, मणिभद्र, वरूथप, तोककृष्ण, भोज, अर्जुन और श्रीदामा आदि सहस्रों व्रजसखाओंके श्रीकृष्ण ही जीवन थे। उनके श्रीकृष्ण ही प्राण तथा सर्वस्व थे। वे सभी श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये उनके साथ दौड़ते, कूदते, गाते, नाचते और भाँति-भाँतिकी क्रीड़ाएँ करते थे। श्याम गाते तो वे तालियाँ बजाते, कन्हैया नाचते तो वे प्रशंसा करते। श्रीकृष्णकी नजरोंसे दूर होते ही उनके प्राण तड़पने लगते थे। श्रीकृष्णका वे विभिन्न वनपुष्पोंसे शृंगार करते। श्रीकृष्ण थक जाते तो वे उनके चरण दबाते। व्रजसखाओंका खेलना, झगड़ना तथा रूठना—सब कुछ मोहनकी प्रसन्नताके लिये ही होता था। श्रीकृष्णके चेहरेपर क्षोभकी हलकी-सी छाया गोपबालकोंसे सहन नहीं होती थी। वैसे तो श्रीकृष्ण अपने इन सभी बालसखाओंके लिये सदैव प्राणप्रिय, स्नेहमय सखा थे, परंतु मधुमंगल और श्रीदामाकी उनके साथ विशेष अन्तरंग प्रीति थी।

श्रीकृष्णके षोडश सखा

रक्तक पत्रक और पत्रि सबही मन भावैं।
मधुकंठौ मधुबर्त रसाल बिसाल सुहावैं॥
प्रेमकंद मकरंद सदा-आनँद चंद्रहासा।
पयद बकुल रसदान सारदा बुद्धिप्रकासा॥
सेवा समय बिचारि कै चारु चतुर चित की लहैं।
ब्रजराज सुवन सँग सदन बन अनुग सदा तत्पर रहैं॥ २३॥

व्रजमण्डलके राजा नन्दजीके पुत्र श्रीकृष्णके साथ घरमें तथा वनमें उनके ये सोलह सखा सदा सेवामें तत्पर रहते हैं। रक्तक, पत्रक और पत्री—ये सबके मनको प्रिय लगते हैं। मधुकण्ठ, मधुवर्त, रसाल, विशाल, प्रेमकन्द, मकरन्द, सदानन्द, चन्द्रहास, पयद, बकुल, रसदान, शारद और बुद्धिप्रकाश—ये सुन्दर, सुशील एवं परम चतुर सखागण भगवान्‌की इच्छाके अनुसार जिस सेवाका जो समय है एवं जब जो सेवा उचित है, उसको विचारकर करते हैं। ये उनके प्यारे सोलह सखा हैं। मैं इनकी चरण-रजका अर्थी हूँ॥ २३॥

सप्तद्वीपके भक्त

जंबू और पलच्छ सालमलि बहुत राजरिषि।
कुस पबित्र पुनि क्रौंच कौन महिमा जानै लिखि॥
साक बिपुल बिस्तार प्रसिध नामी अति पुहकर।
पर्बत लोकालोक ओक टापू कंचनधर॥
हरिभृत्य बसत जे जे जहाँ तिन सों नित प्रति काज।
सप्त दीप में दास जे ते मेरे सिरताज॥ २४॥

जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप और शाल्मलिद्वीपमें बहुत-से ऋषिराज भक्त हैं। कुशद्वीप और क्रौंचद्वीप—ये अति पवित्र हैं। यहाँके भक्तोंकी महिमा कौन जान सकता है। शाकद्वीप और पुष्करद्वीप इनका बहुत विस्तार है और इनके नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। लोकालोक पर्वत, सुवर्णमयी भूमि एवं अन्य द्वीपसमूहोंमें जो भगवान्‌के सेवक निवास करते हैं, उनसे हमारा नित्य ही प्रयोजन है। सातों द्वीपोंमें जो भगवान्‌के दास हैं, वे मेरे सिरके मुकुट हैं॥ २४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जम्बूद्वीपके भक्त

इलाबर्त अधिईस सँकर्षन अनुग सदासिव।
रमनक मछ मनु दास हिरन्य कूरम अर्यम इव॥
कुरु बराह भू भृत्य बर्ष हरि सिंह प्रहलादा।
किंपुरुष राम कपि भरत नरायन बीना नादा॥
भद्रासु ग्रीवहय भद्रस्त्रव केतु काम कमला अनूप।
मध्य दीप नव खंड में भक्त जिते मम भूप॥ २५॥

सब द्वीपोंके मध्यका जो जम्बूद्वीप है, उसके नौ खण्ड हैं। उनमें जो निवास करते हैं, वे हमारे राजा हैं, हम उनकी प्रजा हैं। इलावर्तखण्डके स्वामी भगवान् संकर्षण हैं और उनके मुख्य सेवक शंकरजी हैं। रमणकखण्डके अधीश्वर श्रीमत्स्यभगवान् हैं, उनके सेवक मनुजी हैं। हिरण्यखण्डमें भगवान् श्रीकूर्मजी आराध्य हैं और अर्यमा उनके पुजारी हैं। कुरुखण्डके अधीश श्रीवाराहभगवान् हैं और उनकी सेवा करनेवाली पृथ्वीदेवी हैं। हरिवर्षखण्डमें श्रीनृसिंहभगवान् विराजते हैं और उनके सेवक प्रह्लादजी हैं। किम्पुरुषखण्डके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी हैं और उनकी सेवामें हनुमान्जी तत्पर रहते हैं। भरतखण्डमें भगवान् श्रीनरनारायण आराध्यदेव हैं, उनकी पूजा करनेवाले नारदजी हैं। भद्राश्वखण्डमें हयग्रीवभगवान् आराध्य हैं और भद्रश्रवाजी उनके पुजारी हैं। केतुमालखण्डके अधिपति भगवान् कामदेव हैं और कमलादेवी उनकी सेविका हैं॥ २५॥

जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंमें भक्तिके स्वरूपके विषयमें यहाँ कुछ विवरण प्रस्तुत है—

सातों द्वीपोंके मध्यमें जम्बूद्वीप स्थित है। जम्बूद्वीपके अधिपति महाराज आग्नीध्रके नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल नामके नौ पुत्र हुए। राजा आग्नीध्रने जम्बूद्वीपका विभाग करके नौ-नौ हजार योजन विस्तारवाले नौ वर्ष (भूखण्ड) बनाये और एक-एक खण्ड एक-एक पुत्रको सौंप दिया। इन्हीं पुत्रोंके नामसे नौ वर्ष प्रसिद्ध हो गये। यथा—राजा नाभिके नामसे अजनाभवर्ष, किम्पुरुषके नामसे किम्पुरुषवर्ष इत्यादि।

अजनाभवर्षको ही भारतवर्ष कहा जाता है। आग्नीध्रनन्दन राजा नाभि एवं उनकी पत्नी मेरुदेवीके यहाँ स्वयं भगवान्ने ऋषभदेवके नामसे अवतार ग्रहण किया। ऋषभदेवजीके सौ पुत्रोंमें राजर्षि भरत सबसे बड़े, सर्वाधिक गुणवान् और महान् भगवद्भक्त थे। वे अत्यन्त प्रतापी एवं धर्मात्मा हुए। उन्हींके नामसे अजनाभखण्डका नाम भारतवर्ष पड़ा—‘**अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति**’ (श्रीमद्भा० ५।७।३)।

अजनाभवर्ष (भारतवर्ष)-में नारदजी भगवान् श्रीहरिके नर-नारायणरूपकी उपासना करते हैं।

भारतवर्ष अन्य वर्षोंमें श्रेष्ठ है। यह स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त करनेवालोंकी कर्मभूमि है। पृथिवीपर भारतवर्षके अतिरिक्त कहीं भी कर्मकी विधि नहीं है। अन्य वर्ष भोगभूमियाँ हैं—‘**यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः**’ (विष्णुपु० २।३।२२)। जन्म-जन्मान्तरके महान् पुण्योंका उदय होनेपर ही भारतवर्षमें जन्म होता है। सत्ययुग, त्रेता आदि चार युगों तथा वर्णाश्रमधर्मकी व्यवस्था भारतवर्षमें ही है, अन्यत्र कहीं नहीं। देवता भी भारतवर्षमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी महिमाका इस प्रकार गान करते हैं—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

(श्रीविष्णुपुराण २।३।२४)

अर्थात् देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि ‘जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक धन्य (बड़भागी) हैं।’

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वेतद्वीपके भक्त

श्रीनारायन (को) बदन निरंतर ताही देखैं।
पलक परै जो बीच कोटि जमजातन लेखैं॥
तिन के दरसन काज गए तहँ बीनाधारी।
स्याम दई कर सैन उलटि अब नहिं अधिकारी॥
नारायन आख्यान दृढ़ तहँ प्रसंग नाहिन तथा।
स्वेतद्वीप में दास जे श्रवन सुनौ तिन की कथा॥ २६॥

श्वेतद्वीप (भगवद्धाम)-में निवास करनेवाले भगवान्‌के भक्तोंकी गाथा कान लगाकर सुनिये। ये श्रीनारायणभगवान्‌के मुखारविन्दका निरन्तर दर्शन करते रहते हैं। यदि कभी पलक पड़नेभरका भी व्यवधान हो जाय तो उसे वे करोड़ों नारकीय कष्टोंके समान मानते हैं। किसी समय नारदजी इन भक्तोंका दर्शन करनेके लिये गये। नारदजी इन्हें ज्ञानोपदेश करना चाहते थे। श्रीनारायणभगवान्‌ने हाथसे संकेत किया कि यहाँसे लौट जाओ; क्योंकि ये रूपमाधुरीमें आसक्तजन तुम्हारे उपदेशोंके अधिकारी नहीं हैं अर्थात् इन्हें ज्ञानचर्चा सुननेकी इच्छा नहीं है। यहाँ भगवान्‌की प्रेमापरा भक्तिमें ही निष्ठा है, अतः दूसरे ज्ञानप्रसंगोंकी यहाँ चर्चा ही नहीं है॥ २६॥

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी श्वेतद्वीपमें निवास करनेवाले भक्तजनोंकी उपासनाके सम्बन्धमें तीन कवित्तोंमें इस प्रकार कहते हैं—

श्वेतद्वीप वासी सदा रूप के उपासी गये नारद विलासी उपदेश आशा लागी है।
दई प्रभु सैन जिनि आवो इहि ऐन दृग देखैं सदा चैन मति गति अनुरागी है॥
फिरे दुःख पाइ जाइ कही श्रीबैकुण्ठनाथ साथ लिये चले लखो भक्ति अङ्ग पागी है।
देख्यो एक सर खग रह्यो ध्यान धरि ऋषि पूछैं कहो हरि कह्यो बड़ो बड़भागी है॥ १०३॥

श्वेतद्वीपमें निवास करनेवाले भक्तजन सर्वदा भगवान्‌के रूपकी उपासना करते हैं। रूपमाधुरीका दर्शन ही उनका साधन और साध्य है। अपने उपदेशोंसे सभीको कृतार्थ करते हुए सर्वदा सर्वत्र विचरनेवाले कौतुकी श्रीनारदजी एक बार श्वेतद्वीपको गये। वहाँके भक्तोंको उपदेश देनेकी आशा लगी थी। भगवान्‌ने इशारा किया कि उपदेश देनेकी इच्छासे यहाँ मत आओ। यहाँके भक्तलोग सदा परमानन्ददायकरूपका दर्शन करते रहते हैं। उनकी बुद्धि मेरे रूपमें अत्यन्त आसक्त है। मन-ही-मन दुःखी होकर नारदजी लौट आये और वैकुण्ठधाममें जाकर वैकुण्ठनाथजीसे सब बात कही। तब भगवान्‌ने कहा—हम तुम्हें साथ लेकर चलें और देखें कि किस प्रकार उन भक्तोंके रोम-रोममें भक्ति रम रही है। दोनों श्वेतद्वीप पहुँचे तो वहाँ देखा कि एक सरोवरके तटपर एक पक्षी ध्यान लगाये बैठा है। नारदजीने पूछा—भगवन्! यह पक्षी इस प्रकार कैसे बैठा है? भगवान्‌ने कहा—यह बड़ा ही भाग्यशाली है; क्योंकि भक्तिमें पूर्णरूपसे लीन है॥ १०३॥

बरस हजार बीते भये नहीं चित चीते प्यासोई रहत ऐपै पानी नहीं पीजिये।
पावै जो प्रसाद जब जीभ सौ सवाद लेत लेत नहीं और याकी मति रस भीजिये॥
लीजै बात मानि जलपान करि डारि दियो लियो चोंच भरि दृग भरि बुधि धीजिये।
अचरज देखि चख लगै न निमेष किहूँ चहुँ दिशि फिर्‌यौ अब सेवा याकी कीजिये॥ १०४॥

इस भक्त पक्षीको इस प्रकार ध्यान करते हुए एक हजार वर्ष बीत गये हैं, परंतु अभी इसके मनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई है। पानीमें रहते हुए भी यह प्यासा रहता है, परंतु पानी नहीं पीता है। इसकी ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्ठा है कि इसे प्रसाद मिले तभी जीभसे उसका स्वाद लेता है। बिना प्रसादके कभी कुछ भी ग्रहण नहीं करता है। इस प्रकार इसकी बुद्धि प्रसाद-रसमें मग्न हो गयी है। मेरी इस बातको मान लीजिये। नारदजीको प्रकट दिखानेके लिये भगवान्‌ने जलपानकर शेष जल उसके सामने रख दिया। तुरंत उसने चोंच भरकर पी लिया। भगवत्प्रसादके स्वादसे उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू आ गये और बुद्धि भी विभोर हो गयी। इस आश्चर्यको देखकर नारदजी टकटकी लगाकर उस भक्त पक्षीका दर्शन करने लगे। फिर उसके चारों ओर फिरकर उसकी परिक्रमा की और कहने लगे कि अब तो हम यहीं रहकर कुछ काल इसकी सेवा करेंगे॥ १०४॥

चलो आगे देखौ कोऊ रहै न परेखौ भाव भक्ति करि लेखौ गए द्वीप हरि गाइये।
आयो एक जन धाय आरती समय विहाय खैंचि लिये प्राण फिरि बधू याकी आइये॥
वही इन कही, पति देख्यो नहीं मही पर्‍यो हर्‍यो याको जीव तन गिर्‍यो मन भाइये।
ऐसे पुत्र आदि आये सांचे हित में दिखाए फेरिकै जिंवाये ऋषि गाये चित लाइये॥ १०५॥

भगवान्‌ने कहा—अभी और आगे चलो, यहाँके भक्तोंकी भक्तिका विचित्र भाव देखो और फिर उसपर विचार करो। श्रीवैकुण्ठनाथ और नारदजी श्वेतद्वीपमें और आगे गये। वहाँ एक मन्दिरमें भगवान्‌के नाम और लीलाओंका गान हो रहा था। मन्दिरमें आरती हुई। थोड़ी देरबाद एक भक्त दौड़कर आये, जब उन्हें यह मालूम हुआ कि आरती हो गयी, मन्दिर बन्द हो गया, हम दर्शनोंसे वंचित रह गये। इस पश्चात्तापने उसके प्राण खींच लिये, वह निर्जीव होकर गिर पड़ा। पीछेसे उसकी स्त्री भी आयी और इसने भी वही पूछा कि क्या आरती हो गयी? तो उन लोगोंने फिर भी वही बात कही, जो उसके पतिसे कही थी कि हाँ, आरती हो गयी। तुम्हारा पति भी आरतीका दर्शन नहीं कर सका। देखती नहीं हो, वह निर्जीव होकर पृथ्वीपर पड़ा है। फिर तो आरती-अदर्शनजन्य दुःखने इसके भी प्राणोंको हर लिया। इसका भी शरीर निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। इसी प्रकार उसके पुत्र आदि भी आये। दर्शनोंके वियोगमें वे भी सभी निष्प्राण हो गये। रूपमाधुरी देखे बिना उनके मनको मरण ही अच्छा लगा, जीवन प्रिय नहीं लगा। उनका दर्शनोंका यह प्रेम नारदजीको अति प्रिय लगा। वे सभी भगवत्प्रेममें सच्चे दिखलायी पड़े। भगवान्‌ने नारदजीको सच्चे प्रेमका दर्शन कराया। कुछ समय बाद जब आरती होने लगी, तब सभी भगवत्कृपासे जीवित होकर दर्शनानन्दमें विभोर हो गये। व्यास आदि ऋषियोंने इन चरित्रोंका गान किया है, इनका चिन्तन कीजिये॥ १०५॥

अष्टनाग

इलापत्र मुख अनँत अनँत कीरति बिसतारत।
पद्म संकु पन प्रगट ध्यान उर ते नहिं टारत॥
अँसु कंबल बासुकी अजित आग्या अनुबरती।
करकोटक तच्छक सुभट्ट सेवा सिर धरती॥
आगमोक्त सिवसंहिता अगर एकरस भजन रति।
उरग अष्टकुल द्वारपति सावधान हरिधाम थिति॥ २७॥

सर्पभक्तोंके आठ वंश हैं। ये भगवान्‌के द्वारपाल हैं। प्रभुकी सेवामें सदा सावधान रहते हैं। भगवान्‌के धाममें इनकी स्थिति है। इलापत्रजी और अनन्त मुखवाले शेषजी अनन्तभगवान्‌की कीर्तिका विस्तार करते रहते हैं। पद्म और शंकु—इनका प्रण प्रसिद्ध है। ये हृदयसे भगवान्‌के रूपका ध्यान कभी नहीं टालते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंशुकम्बल और वासुकि—ये भगवान्‌के आज्ञाकारी हैं। कर्कोटक और तक्षक—ये बड़े वीर हैं, सेवारूपी भूमिको सदा अपने सिरपर धारण करते हैं। शिवसंहिता नामक आगममें इनका वर्णन है। श्रीअग्रदासजीका कथन है कि इन सर्पभक्तोंकी भजनमें सदा एकरस प्रीति रहती है॥ २७॥

यहाँ अष्टनागकुलके नागोंकी भक्ति संक्षेपमें दी जा रही है—

पुराणोंमें नागोंके आठ कुल प्रसिद्ध हैं; ये हैं—अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंखपाल और कुलिक। ये प्रजापति कश्यप और नागमाता कद्रूकी संतान हैं। ये आठ नाग क्रमशः पूर्वादि आठ दिशाओंके स्वामी हैं। पद्म, उत्पल, स्वस्तिक, त्रिशूल, महापद्म, शूल, क्षत्र और अर्धचन्द्र—ये क्रमशः इन आठ नागोंके आयुध हैं। अनन्त और कुलिक—ये दोनों ब्राह्मण नागजातियाँ हैं, शंख और वासुकि क्षत्रिय, महापद्म और तक्षक वैश्य तथा पद्म और कर्कोटक शूद्र नाग हैं। अनन्त और कुलिक नाग शुक्लवर्ण तथा ब्रह्माजीसे उत्पन्न हैं, वासुकि और शंखपाल रक्तवर्ण तथा अग्निसे उत्पन्न हैं, तक्षक और महापद्म स्वल्प पीतवर्ण तथा इन्द्रसे उत्पन्न हैं, पद्म और कर्कोटक कृष्ण वर्ण तथा यमराजसे उत्पन्न हैं।

भगवान् अनन्तका ही एक नाम 'शेष' भी है। भगवान् श्रीहरि उन्हीं शेषको शय्या बनाकर क्षीरसागरमें शयन करते हैं। वे शेषजी अपने एक हजार मुखों और दो हजार जिह्वाओंसे सदा भगवान् श्रीहरिका नामजप करते रहते हैं।

भगवान् शेष सेवाभक्तिके आदर्श उदाहरण हैं। उन्होंने स्वयंको अपने प्रभुका सेवोपकरण बना दिया है। वे ही प्रभुकी शय्या हैं, वे ही प्रभुके छत्र हैं और वे ही उनके सिंहासन। प्रभु जब लीलावतार लेते हैं, तो वे भी उनकी सेवाके लिये आ जाते हैं। श्रीरामावतारमें उन्होंने अनुज लक्ष्मण बनकर सेवाका आदर्श दिखाया तो श्रीकृष्णावतारमें अग्रज संकर्षण बलरामके रूपमें उनके संरक्षणका भार वहन करनेकी लीला की। वे ही पाताललोकमें नागराज शेषनागके रूपमें कर्कोटक, तक्षक आदि नागोंसे घिरे बैठे हुए मन-वचन-शरीरके कर्मोंद्वारा भगवान् वासुदेवका जप करते रहते हैं—

वृतं कर्कोटकाद्यैस्तैः शेषं तक्षकपन्नगैः।
जपन्तं वासुदेवेति वाङ्मनःकायकर्मभिः॥

(जैमिनीयाश्वमेधपर्व ३८। १८९)

चतुःसम्प्रदायाचार्य *

(श्री) रामानुज ऊदार सुधानिधि अवनि कल्पतरु।
बिष्णुस्वामि बोहित्थ सिंधु संसार पार करु॥
मध्वाचारज मेघ भक्ति सर ऊसर भरिया।
निम्बादित्य अदित्य कुहर अग्यान जु हरिया॥
जनम करम भागवत धरम संप्रदाय थापी अघट।
चौबीस प्रथम हरि बपु धरे (त्यों) चतुर्ब्यूह कलिजुग प्रगट॥ २८॥
रमा पधति रामानुज बिष्णुस्वामि त्रिपुरारि।
निंबादित्य सनकादिका मधुकर गुरु मुखचारि॥ २९॥

जिस प्रकार पहले तीन युगोंमें भगवान्‌ने चौबीस अवतार धारण किये, उसी प्रकार कलियुगमें आचार्योंका चतुर्व्यूह प्रकट हुआ। जैसे—श्रीसम्प्रदायके सम्वर्धक दक्षिण भारतमें श्रीरामानुजाचार्य, उत्तर भारतमें श्रीरामानन्दाचार्यजी हुए। ये महान् उदार थे, शरणागतोंको अपनानेमें इनका दृष्टिकोण संकुचित न था। ये प्रेमामृत और ज्ञानामृतके अगाध समुद्र थे और इस पृथ्वीपर भक्तोंकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिये साक्षात्

* श्रीनाभादासजीने छप्पय २७ तक सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापरयुगके भक्तोंका वर्णन करनेके अनन्तर २८वें छप्पयसे कलियुगके भक्तोंके पावन चरित्रोंका विवेचन प्रस्तुत किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पवृक्ष थे। रुद्रसम्प्रदायके सम्वर्धक आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी भवसागरमें डूबते हुए जीवोंको पार करनेके लिये जहाज थे। ब्रह्मसम्प्रदायके सम्वर्धक श्रीमध्वाचार्यजी सरोवर (सरस) और ऊसर (नीरस) हृदयवाले लोगोंके हृदयोंको भक्तिसे परिपूर्ण करनेके लिये भक्तिकी वर्षा करनेवाले मेघ थे। सनकादिक सम्प्रदायके सम्वर्धक श्रीनिम्बार्काचार्यजी अज्ञानरूपी कुहरको नष्ट करनेवाले और ज्ञानभक्तिका प्रकाश करनेवाले सूर्य थे। इन्होंने जन्म लेकर और सत्कर्मोका स्वयं आचरण करके वैष्णवधर्मके सम्प्रदायोंकी सर्वथा अक्षय एवं सुदृढ़ स्थापना की॥ २८॥

श्रीसम्प्रदायके श्रीरामानुजाचार्य एवं श्रीरामानन्दाचार्य, रुद्रसम्प्रदायके आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी, सनकादिक सम्प्रदायके श्रीनिम्बार्काचार्य और ब्रह्मसम्प्रदायके श्रीमध्वाचार्यजी सम्वर्धक तथा संस्थापक हुए॥ २९॥

यहाँ इन आचार्योंके विषयमें संक्षेपमें विवरण दिया जा रहा है—

श्रीरामानुजाचार्यजी

श्रीरामानुजाचार्यजी श्रीसम्प्रदायके प्रधान आचार्य हैं। भगवती महालक्ष्मी इस सम्प्रदायकी आद्यप्रवर्तिका हैं। श्रीरामानुजाचार्यजीका चरित्र छप्पय ३१ पृ० १६० पर दिया गया है।

श्रीरामानन्दाचार्यजी

श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज श्रीरामायत या श्रीरामानन्दी वैष्णव सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य हैं। कबीर, सेन, धन्ना, रैदास आदि इनके द्वादश प्रधान शिष्य हैं। छप्पय ३६ पृ० १६८ पर इनसे सम्बन्धित विवरण दिया गया है।

आचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी

आजसे लगभग छब्बीस सौ वर्षपूर्व दक्षिण भारतके प्राचीन तीर्थ मदुरा नगरीमें पाण्ड्यविजय नामक राजा राज्य करते थे। इन महाराज पाण्ड्यविजयके श्रद्धाभाजन कुलगुरु थे—ब्राह्मणश्रेष्ठ देवस्वामी और देवस्वामीकी धर्मपत्नी थीं श्रीमती यशोमती देवी। ब्राह्मणदम्पतीने भगवान्‌की बड़ी आराधना करके विष्णुस्वामीको पुत्रके रूपमें प्राप्त किया था। भगवद्विभूतिस्वरूप होनेके कारण बचपनमें ही इनमें अलौकिक गुण प्रकट हुए थे। भगवत्प्रेमावेशमें जब इन्होंने श्यामसुन्दरका दर्शन प्राप्त किया तो भगवान्‌से आग्रह किया कि 'भगवन्! अब आप अन्तर्धान न हों, सर्वदा मुझे दर्शन दिया करें या अपने साथ ले चलें।' भगवान्‌को तो इनसे भक्तिका प्रचार कराना था। अतः एक मूर्ति बनानेवालेको बुलाकर एक मूर्ति बनवाकर स्थापित करके अर्चा-सेवा करनेका आदेश दिया और स्वयं उस मूर्तिमें प्रवेश कर गये। विष्णुस्वामी उस विग्रहको साक्षात् भगवद्रूप मानकर अर्चा-पूजा करने लगे। ये '**श्रीकृष्ण तवास्मि**' इस शरणागति-मन्त्रका जप करते थे। भगवद्दर्शन और भगवदादेशके बाद विष्णुस्वामी भक्तिके प्रचार-प्रसारमें संलग्न हो गये।

एक बारकी बात है, अपने बहुत-से शिष्योंको साथ लेकर आप भक्तिका प्रचार करते हुए भगवान् जगन्नाथजीका दर्शन करने श्रीजगन्नाथपुरी आये। उस समय जगन्नाथस्वामीका फूल-डोल महोत्सव चल रहा था, भक्त दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ लगी थी। आप गरुडस्तम्भके पास खड़े होकर प्रभुकी मनोरम झाँकीके दर्शन करने लगे, परंतु दर्शनार्थियोंके बढ़ते जन-सैलाबमें आपको वहाँ खड़े रह पाना सम्भव न लगा तो मन्दिरके द्वारसे हटकर आप उसके पृष्ठ भागमें चले गये और वहाँ बैठकर प्रभुकी उसी मनोरम झाँकीका ध्यान करने लगे। भक्त विष्णुस्वामीका मुख्य द्वारसे हटकर मन्दिरके पीछेकी ओर बैठना भगवान् जगन्नाथजीके लिये असह्य हो गया और उन्होंने उनके लिये मन्दिरके पृष्ठभागमें भी द्वार बनाकर अपना दर्शन सुलभ कर दिया। भगवान्‌की अहैतुकी कृपाका दर्शनकर विष्णुस्वामीका भक्तहृदय भगवत्प्रेमसे गद्गद हो उठा। उधर दर्शनार्थियोंको जब यह ज्ञात हुआ कि मन्दिरके पृष्ठभागमें भी एक द्वार खुला है तो वहाँ भी सहस्रोंकी संख्यामें जनसमुदाय पहुँच गया। अब विष्णुस्वामी इधर भी अत्यन्त भीड़-भाड़ देख मन्दिरके दक्षिणकी ओर जाकर बैठ गये और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहीं अपने महाप्रभुका ध्यान करने लगे। फिर क्या था! मन्दिरके दक्षिण भागमें भी एक द्वार प्रकट हो गया! इसी प्रकार प्रभुने विष्णुस्वामीके स्नेहसे द्रवीभूत होकर मन्दिरके चारों ओर द्वार खोल दिये। तब वहाँका असंख्य जनसमुदाय इनके प्रति श्रद्धावनत हो उठा और इन्होंने भी उन सबको प्रभुकी भक्तिका उपदेश दे कृतकृत्य कर दिया।

शुद्धाद्वैतसिद्धान्तके मूल प्रवर्तकाचार्य श्रीविष्णुस्वामीजी हैं और इस सिद्धान्तके विशेष प्रचारक तथा प्रसारक श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभुजी हैं। यह भक्तिमार्ग पुष्टिमार्ग भी कहलाता है।

श्रीमध्वाचार्यजी

श्रीभगवान् नारायणकी आज्ञासे स्वयं वायुदेवने ही भक्ति-सिद्धान्तकी रक्षाके लिये मद्रास प्रान्तके मंगलूर जिलेके अन्तर्गत उडूपीक्षेत्रसे दो-तीन मील दूर वेललि ग्राममें भार्गवगोत्रीय नारायणभट्टके अंशसे तथा माता वेदवतीके गर्भसे विक्रम-संवत् १२९५ की माघ शुक्ला सप्तमीके दिन आचार्य मध्वके रूपमें अवतार ग्रहण किया था। बचपनसे ही इनमें अलौकिक प्रतिभा दीखती थी, थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने सम्पूर्ण विद्या अनायास ही प्राप्त कर ली और ग्यारह वर्षकी अवस्थामें अद्वैतमतके संन्यासी श्रीअच्युतपक्षाचार्यजीसे संन्यास ग्रहण किया। यहाँपर इनका संन्यासी नाम 'पूर्णप्रज्ञ' हुआ। संन्यासके पश्चात् इन्होंने वेदान्तका अध्ययन आरम्भ किया और थोड़े ही समयमें सारे दक्षिण देशमें इनकी विद्वत्ताकी धूम मच गयी।

एक दिन इन्होंने अपने गुरुजीसे गंगास्नान और दिग्विजय करनेके लिये आज्ञा माँगी। ऐसे सुयोग्य शिष्यके विरहकी सम्भावनासे गुरुदेव व्याकुल हो गये। उनकी व्याकुलता देखकर भगवान् अनन्तेश्वरजीने उनसे कहा कि भक्तोंके उद्धारार्थ गंगाजी स्वयं सामनेवाले सरोवरमें परसों आयेंगी, अतः पूर्णप्रज्ञको गंगास्नानहेतु कहीं जानेकी आवश्यकता ही नहीं होगी। सचमुच तीसरे दिन उस तालाबमें हरे पानीके स्थानपर सफेद पानी हो गया और तरंगें दीखने लगीं। अतएव इनकी यात्रा नहीं हो सकी।

कुछ दिनोंके बाद इन्होंने यात्रा की और स्थान-स्थानपर विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ किया। इनके शास्त्रार्थका उद्देश्य होता भगवद्भक्तिका प्रचार, वेदोंकी प्रामाणिकताका स्थापन, मायावादका खण्डन और मर्यादाका संरक्षण। अनेक विद्वानोंने पराजित होकर इनका मत स्वीकार किया। श्रीबदरीनारायणमें इन्हें व्यासजीके दर्शन हुए और इन्होंने उन्हें अपना गीताभाष्य दिखाया। व्यासजीने इन्हें ग्रन्थ-निर्माणकी आज्ञा और शालग्रामकी तीन मूर्तियाँ दीं, जो इन्होंने सुब्रह्मण्य, उडूपि और मध्यतलमें पधरायीं।

द्वैतवादके आचार्योंमें श्रीमन्मध्वाचार्यका विशिष्ट स्थान है। आपके अनुसार समस्त पदार्थोंका मूल कारण परमात्मा हैं। उन्हींसे सारा जगत् आविर्भूत हुआ है। परमात्मा और जीवात्मा दोनों अनादि हैं और इन दोनोंमें भेद है। परमात्मा स्वतन्त्र हैं और जीवात्मा परतन्त्र। आपके अनुसार श्रीहरि ही सर्वोत्तम हैं, उनकी महिमा जानते हुए भगवान्पर स्नेह रखना ही भक्ति है।

श्रीमदाचार्यजीके बनाये अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें गीताभाष्य, दशोपनिषद्भाष्य, ब्रह्मसूत्रतात्पर्य-बोधक अनुव्याख्यान, ब्रह्मसूत्र-अणुभाष्य, भागवत-भारत-गीतातात्पर्यनिर्णय, श्रीकृष्णामृतमहार्णव आदि मुख्य हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्यजी

वैष्णवोंके प्रमुख चार सम्प्रदायोंमेंसे एक सम्प्रदाय है द्वैताद्वैत या निम्बार्क-सम्प्रदाय। श्रीनिम्बार्काचार्यजीने परम्पराप्राप्त इस मतको अपनी प्रतिभासे उज्ज्वल करके लोक-प्रचलित किया, इसीसे इस द्वैताद्वैत मतकी निम्बार्क-सम्प्रदायके नामसे प्रसिद्धि हुई।

दक्षिण भारतमें वैदूर्यपत्तन परम पवित्र तीर्थ है। इसे दक्षिणकाशी भी कहते हैं। यहीं अरुणमुनिजीका अरुणाश्रम था। श्रीअरुणमुनिजीकी पत्नी जयन्तीदेवीकी गोदमें जिस दिव्य कुमारका आविर्भाव हुआ, उसका नाम पहले नियमानन्द हुआ और ये ही आगे श्रीनिम्बार्काचार्यजीके नामसे प्रख्यात हुए।

व्रजमें श्रीगिरिराज गोवर्धनके समीप ध्रुवक्षेत्रमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी साधना-भूमि है। एक दिन समीपके स्थानसे एक दण्डी महात्मा आचार्यके समीप पधारे। दो शास्त्रज्ञ महापुरुष परस्पर मिले तो शास्त्रचर्चा चलनी स्वाभाविक थी। समयका दोनोंमेंसे किसीको ध्यान नहीं रहा। सायंकालके पश्चात् आचार्यने अतिथि यतिसे प्रसाद ग्रहण करनेके लिये निवेदन किया। सूर्यास्त होनेके पश्चात् नियमतः यतिजी भिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते थे। उन्होंने असमर्थता प्रकट की। परंतु आचार्यजी नहीं चाहते थे कि उनके यहाँ आकर एक विद्वान् अतिथि उपोषित रहें। आश्रमके समीप एक नीमका वृक्ष था, सहसा उस वृक्षपरसे चारों ओर प्रकाश फैल गया। ऐसा लगा, जैसे नीमके वृक्षपर सूर्यनारायण प्रकट हो गये हैं। कोई नहीं कह सकता कि आचार्यके योगबलसे भगवान् सूर्य वहाँ प्रकट हो गये थे या श्रीकृष्णचन्द्रका कोटिसूर्यसमप्रभ सुदर्शन चक्र, जिसके आचार्य मूर्त अवतार थे, प्रकट हो गया था। अतिथिके प्रसाद ग्रहण कर लेनेपर सूर्यमण्डल अदृश्य हो गया। इस घटनासे आचार्य निम्बादित्य या निम्बार्क नामसे विख्यात हुए।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

निम्बादित्य नाम जाते भयो अभिराम कथा आयो एक दण्डी ग्राम न्यौतो करि आये हैं।
पाक को अबार भई सन्ध्या मानि लई जती रती हूं न पाऊँ वेद वचन सुनाये हैं॥
आँगन में नींब तापै आदित दिखायौ ताहि भोजन करायो पाछे निशि चिन्ह पाये हैं।
प्रगट प्रभाव देखि जान्यो भक्ति भाव जग दांव पाइ नांव पर्यो हर्यो मन गाये हैं॥ १०६॥

श्रीनिम्बार्काचार्यजीका वेदान्तसूत्रोंपर भाष्य 'वेदान्त-सौरभ' और 'वेदान्तकामधेनुदशश्लोक' ये दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त गीताभाष्य, कृष्णस्तवराज, गुरुपरम्परा, वेदान्त-तत्त्वबोध, वेदान्तसिद्धान्तप्रदीप, स्वधर्माविबोध, ऐतिह्य-तत्त्वसिद्धान्त, राधाष्टक आदि कई अन्य ग्रन्थ आचार्यने लिखे थे। श्रीनिम्बार्काचार्यजीने प्रस्थानत्रयीके स्थानपर प्रस्थानचतुष्टयको प्रमाण माना और उसमें भी चतुर्थ प्रस्थान श्रीमद्भागवतको परम प्रमाण स्वीकार किया।

श्रीसम्प्रदायके आचार्य

बिष्वकसेन मुनिबर्य सुपुनि सठकोप प्रनीता।
बोपदेव भागवत लुप्त उधर्यो नवनीता॥
मंगल मुनि श्रीनाथ पुंडरीकाच्छ परम जस।
राममिश्र रस रासि प्रगट परताप परांकुस॥
जामुन मुनि रामानुज तिमिर हरन उदय भान।
सँप्रदाय सिरोमनि सिंधुजा रच्यो भक्ति बित्तान॥ ३०॥

समुद्रसुता श्रीलक्ष्मीजीने सभी सम्प्रदायोंमें श्रेष्ठ श्रीसम्प्रदायको भक्तिके मण्डपके समान बनाया, जिसके नीचे (पास) आकर त्रयतापसे तपे प्राणियोंने शरण पायी। भगवान्के पार्षद श्रीविष्वक्सेनजी श्रीलक्ष्मीजीके अनुयायी हुए। पश्चात् मुनिश्रेष्ठ श्रीशठकोपजी, जिनके द्वारा पवित्र श्रीसम्प्रदाय परिवर्धित हुआ। फिर श्रीबोपदेवजी हुए, जिन्होंने श्रीमद्भागवतरूपी मक्खनको प्रकट किया। पश्चात् मंगलकारी श्रीनाथमुनि, उसके बाद परम यशस्वी श्रीपुण्डरीकाक्षजी, तदनन्तर भक्तिरसके समूह श्रीराममिश्रजी हुए। फिर परांकुशाचार्यजी जिनका प्रताप संसारमें प्रकट है। उनके बाद श्रीयामुनाचार्यजी और फिर अज्ञानरूपी अन्धकारको हरनेवाले सूर्यके समान श्रीरामानुजाचार्यजी हुए॥ ३०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसम्प्रदायके इन आचार्योंमेंसे कुछका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीविष्वक्सेनजी

श्रीविष्वक्सेनजी श्रीभगवान्‌के प्रधान पार्षद हैं तथा पंचरात्रादि आगमरूप भी कहे गये हैं—'**विष्वक्सेनस्तन्त्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ॥**' (श्रीमद्भा० १२। ११। २०) भगवान् विष्णुके पार्षदोंमें इनका वही स्थान है, जो शिवगणोंमें श्रीगणेशजीका। इस सम्प्रदायकी आद्यप्रवर्तिका भगवती लक्ष्मीने सर्वप्रथम इन्हींको श्रीनारायण-मन्त्रकी दीक्षा दी थी। विष्वक्सेनजी भगवान् विष्णुके निर्माल्यधारी कहे जाते हैं। वे चतुर्भुज हैं। उनके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म रहते हैं। वे श्वेत पद्मपर विराजमान रहते हैं। '**बँ**' बीजमन्त्रसे उनकी पूजा होती है। ये भगवान् विष्णुकी पूजा-सपर्यामें सदा संलग्न रहते हैं। भगवान् विष्णुके विशेष पूजनमें इनका भी साथमें पूजन होता है। भगवद्भक्तोंपर इनका बड़ा ही अनुग्रह रहता है।

श्रीशठकोपाचार्य

तमिल वैष्णव सन्तोंमें महात्मा शठकोपका स्थान बहुत ऊँचा और आदरके योग्य है। इनका तमिल नाम नम्मालवार है और तमिल इन्हें जन्मसिद्ध वैष्णव मानते हैं। ये भगवान् विष्णुके प्रमुख पार्षद विष्वक्सेनके अवतार माने जाते हैं। इनके सम्बन्धमें यह कथा प्रचलित है कि जन्मके बाद दस दिनतक इन्हें भूख-प्यास कुछ भी नहीं लगी। यह देखकर इनके माता-पिताको बड़ी चिन्ता हुई। वे इसका रहस्य कुछ भी नहीं समझ सके। अन्तमें यही उचित समझा गया कि इन्हें भगवान्‌के मन्दिरमें ले जाकर वहीं छोड़ दिया जाय। बस, इस निर्णयके अनुसार इन्हें स्थानीय मन्दिरमें एक इमलीके वृक्षके नीचे छोड़ दिया गया। तबसे लेकर सोलह वर्षकी अवस्थातक बालक नम्मालवार उसी इमलीके पेड़के कोटरमें योगकी प्रक्रियासे ध्यान और भगवान् श्रीहरिके साक्षात्कारमें लगे रहे।

जब नम्मालवारजी ध्यानमें मग्न थे, दयामय भगवान् नारायण उनके सामने प्रकट हुए और उन्हें '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षर मन्त्रकी दीक्षा दी। कहा जाता है कि इनके जीवनका अधिकांश भाग राधाभावमें बीता। वे सर्वत्र सब समय सारी परिस्थितियों और घटनाओंमें अपने इष्टदेवमें ही रमे रहते। इन्होंने कई भक्तिभावपूर्ण धार्मिक ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें तिरुविरुत्तम्, तिरुवाशिरियम्, पेरिय तिरुबन्त और तिरुवाय्मोलि हैं। महात्मा शठकोपके ये चार ग्रन्थ चार वेदोंके तुल्य माने जाते हैं। इन चारोंमें भगवान् श्रीहरिकी लीलाओंका वर्णन है और ये चारों-के-चारों भगवत्प्रेमसे ओतप्रोत हैं।

श्रीबोपदेवजी

श्रीनाभादासजीने श्रीसम्प्रदायके आचार्योंमें श्रीबोपदेवजीका नाम बड़े ही आदरभावसे लिया है और इन्हें लुप्त भागवतका उद्धारकर्ता बताया गया है। बोपदेवजी महान् भगवद्भक्त तथा परम वैष्णव सन्त थे। इनका समय तेरहवीं शती है। ये धर्मशास्त्रके महान् निबन्ध ग्रन्थ 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' के प्रणेता हेमाद्रिके सभासद् थे और हेमाद्रि देवगिरिके राजा रामचन्द्रके मन्त्री थे। मन्त्रीप्रवर हेमाद्रिकी प्रसन्नताके लिये श्रीबोपदेवने भागवत-धर्मप्रधान अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। भागवततत्त्वका वर्णन करनेके लिये उन्होंने जिन तीन ग्रन्थोंका निर्माण किया, उनके नाम हैं—'परमहंसप्रिया', 'हरिलीलामृत' और 'मुक्ताफल'। हरिलीलामृतका ही दूसरा नाम भागवतानुक्रमणिका है। इसमें सम्पूर्ण भागवतका सारांश आ गया है। परमहंसप्रिया—इनके द्वारा की गयी भागवतकी संस्कृत टीका है। इन्हीं ग्रन्थोंके आधारपर कुछ लोगोंने यह धारणा बना ली है कि श्रीमद्भागवत बोपदेवकी रचना है, व्यासदेवजीकी नहीं। वस्तुतः श्रीमद्भागवत अठारह पुराणोंके कर्ता भगवान् वेदव्यासजीकी ही रचना है।

श्रीबोपदेवजी भगवान्‌के परम भक्त थे। भगवान्‌के मंगलमय नाम तथा उनके गुणों एवं लीलाओंके चिन्तनमें ये सदा निमग्न रहते थे। इनका पाण्डित्य महान् था। उनकी रचना कवित्तकल्पद्रुमके वर्णनसे पता चलता है कि ये द्रविड़ ब्राह्मण थे और इनके पिताका नाम धनेश्वर था। बोपदेवजीने २६ ग्रन्थोंकी रचना की है। भागवतधर्मके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचार-प्रसार तथा भगवद्भक्तिकी प्रतिष्ठामें इनका महान् योगदान है। ये भगवत्प्रेमी सच्चे सन्त थे।

श्रीनाथमुनिजी

श्रीसम्प्रदायके आचार्योंमें परिगणित मुनित्रयमें श्रीनाथमुनिजीका अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। आप वेदशास्त्र-पुराणादिके प्रकाण्ड विद्वान्, सिद्ध और जीवन्मुक्त महात्मा थे। आपका जन्म द्रविड़ देशके चिदम्बरम् क्षेत्रके तिरुनारायणपुरम् (कारटुमन्नार, वर्तमान वीर-नारायणपुरम्)-में हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीईश्वरभट्टर था। आपका विवाह वंगीपुराचार्यकी पुत्री अरविन्दजासे हुआ, जिससे ईश्वरमुनिका जन्म हुआ। ईश्वरमुनिके पुत्र श्रीयामुनाचार्यजी हुए, जिन्हें श्रीसम्प्रदायके आचार्योंमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। श्रीनाथमुनिको ब्रजभूमि और यमुनातट विशेष प्रिय था, इसीलिये उन्होंने अपने पौत्रका नाम यामुन रखा।

श्रीनाथमुनिने उत्तर भारतके अनेक तीर्थोंकी यात्रा की और व्रजकी प्रेमलक्षणा नारदीय भक्तिका दक्षिणमें व्यापक प्रचार किया। आपने आलवारोंके प्रबन्धोंकी खोजके लिये भी अनेक यात्राएँ कीं। आप सिद्धयोगी थे, समाधि-अवस्थामें आपको श्रीशठकोपाचार्यजीका साक्षात्कार हुआ था और उनके कृपाप्रसादसे चार हजार दिव्य प्रबन्धोंकी आपको प्राप्ति हुई थी। समाधि-अवस्थामें ही आपने श्रीशठकोपजीसे वैष्णवी दीक्षा प्राप्त की और रहस्यार्थसहित मन्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। आपके ही प्रयत्नोंसे श्रीरंगम्‌में भगवान्‌के मन्दिरमें आलवार भक्तोंके पद्योंके संगीतमय गायनका प्रारम्भ हुआ।

श्रीपुण्डरीकाक्षजी

श्रीपुण्डरीकाक्षजी महाराज परम वैष्णव अमानी सन्त थे। आप श्रीनाथमुनिके प्रिय शिष्य थे। ***'गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा।'***—यह आपके जीवनका सिद्धान्त था। आप कहते थे कि दूसरोंके दोषोंको छिपाने और अपने दोषोंको प्रकट करनेसे मानसिक दुर्बलताएँ दूर होती हैं तथा निजधर्ममें दृढ़ता होती है। श्रीनाथमुनिके शिष्य और प्रकाण्ड विद्वान् श्रीश्रीराममिश्रजी आपके समकालीन ही थे और आपमें बड़ा आदरभाव रखते थे। जीवनकी अनेक समस्याओंका समाधान पानेके लिये श्रीमिश्रजी श्रीपुण्डरीकाक्षजीके पास आते थे और उनसे भक्तिपूर्ण सम्यक् समाधान प्राप्त करते थे।

श्रीराममिश्रजी

श्रीराममिश्रजी श्रीयामुनाचार्यजीके पितामह श्रीनाथमुनिजीके अत्यन्त प्रिय कृपापात्र एवं विश्वासपात्र शिष्य थे। यहाँतक कि श्रीनाथमुनिजीने अपने अन्तिम समयमें इन्हींको श्रीयामुनाचार्यजीकी जिम्मेदारी दी थी; क्योंकि यामुनाचार्यजीके पिता ईश्वरमुनिका पहले ही परमधामगमन हो चुका था। श्रीमिश्रजी बड़े ही विद्वान् और सदाचारी थे, वे सबमें सर्वव्यापी परमात्माका दर्शन करते थे।

श्रीयामुनाचार्यजी

श्रीयामुनाचार्य महान् भक्त, भगवान्‌के परम विश्वासी और विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तके प्रचारक थे। आपका जन्म संवत् १०१० वि० में मदुरामें हुआ था। श्रीवैष्णवसम्प्रदायके आचार्य नाथमुनिके पुत्र ईश्वरमुनि आपके पिता थे। आप बाल्यावस्थासे ही अद्भुत प्रतिभाशाली और विद्वान् थे। आपका स्वभाव बहुत मधुर, प्रेममय और उदार था। पाण्ड्यराजके महापण्डित कोलाहलको शास्त्रार्थमें परास्त करनेके उपलक्ष्यमें महारानीने आपको आधा राज्य सौंप दिया था, साथ ही 'आलवन्दार' की उपाधिसे विभूषित किया था।

श्रीरंगके मन्दिरमें श्रीरंगनाथजीके दर्शनके अनन्तर इनके हृदयमें सहसा भक्तिका स्रोत उमड़ आया। हृदयमें पूर्ण और अखण्ड वैराग्यका उदय हुआ, माया और राज्यभोगकी प्रवृत्तिका नाश हो गया और उन्होंने शुद्ध हृदयसे भगवान् श्रीरंगकी स्तुति की। वे भगवान् श्रीरंगके पूर्ण भक्त हो गये, उनके अधरोंपर भक्तिकी रसमयी वाणी विहार करने लगी।

श्रीयामुनाचार्यने भगवान्‌को पूर्ण पुरुषोत्तम माना है और बताया कि जीव स्वभावसे ही उनका दास है, भक्त है; भक्ति जीवका स्वधर्म है, आत्मधर्म है। भक्ति शरणागतिका पर्याय है। भगवान् अशरण-शरण हैं।

यामुनाचार्य श्रीरामानुजके परमगुरु थे। स्तोत्ररत्न,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धित्रय, आगमप्रामाण्य और गीतार्थसंग्रह उनके ग्रन्थरत्न हैं। उनका आलवंदारस्तोत्र बड़ा ही मधुर है। यामुनाचार्यने आजीवन भगवान्से अनन्य-भक्तिका ही वरदान माँगा। उनके लिये भगवान् ही परमाश्रय थे। उन्हींके चरणोंकी शरण लेनेमें उन्हें बन्धनमुक्ति दीख पड़ी। यामुनाचार्यने महाप्रयाणकालमें श्रीरामानुजाचार्यको याद किया, परंतु उनके पहुँचनेसे पहले ही वे दिव्यधामको पधार गये। उनकी तीन अंगुलियाँ उठी रह गयीं। वे ही उनके मनमें रही तीन कामनाएँ थीं, जिनको श्रीरामानुजाचार्यने पूर्ण किया।

श्रीरामानुजाचार्यजी एवं श्रीकूरेशाचार्यजी

गोपुर ह्वै आरूढ ऊँच स्वर मंत्र उचार्‌यो।
सूते नर परे जागि बहत्तरि श्रवननि धार्‌यो॥
तितनेई गुरुदेव पधति भइँ न्यारी न्यारी।
कुर तारक सिष्य प्रथम भक्ति बपु मंगलकारी॥
कृपनपाल करुना समुद्र रामानुज सम नहिं बियो।
सहस आस्य उपदेस करि जगत उद्धरन जतन कियो॥ ३१॥

सहस्र मुखवाले शेष भगवान्के अवतार श्रीरामानुजाचार्यजीने भक्तिपथका उपदेश देकर संसारके उद्धारका महान् प्रयत्न किया। गुरुदेवने मन्त्र देकर जिसे गुप्त रखनेके लिये कहा था, उसे श्रीरामानुजाचार्यजीने मन्दिर-द्वारके सबसे ऊँचे भागपर चढ़कर ऊँचे स्वरसे उच्चारण किया, ताकि सभी लोग श्रवण कर सकें। मन्त्रध्वनिको सुनकर सोये हुए लोग जग पड़े और बहत्तर भक्तोंने उसे सुनकर हृदयमें धारण कर लिया। इसलिये अलग-अलग बहत्तर पद्धतियाँ हुईं। इनके शिष्योंमें कुरुतारकजी प्रधान थे, जो जीवोंका मंगल करनेवाले और भक्तिके मूर्तिमान् स्वरूप थे। दीन एवं शरणागतोंका पालन करनेवाले करुणाके समुद्र श्रीरामानुजाचार्यके समान दूसरा कोई नहीं हुआ॥ ३१॥

श्रीरामानुजाचार्यजी एवं श्रीकुरुतारकजी (श्रीकूरेशाचार्यजी)-से सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीरामानुजाचार्यजी

श्रीरामानुजाचार्य बड़े ही विद्वान्, सदाचारी, धैर्यवान्, सरल एवं उदार थे। ये आचार्य आलवन्दार (यामुनाचार्य)-की परम्परामें थे। इनके पिताका नाम केशवभट्ट था। ये दक्षिणके तिरुकुदूर नामक क्षेत्रमें रहते थे। जब इनकी अवस्था बहुत छोटी थी, तभी इनके पिताका देहान्त हो गया और इन्होंने कांचीमें जाकर यादवप्रकाश नामक गुरुसे वेदाध्ययन किया। विद्या, चरित्रबल और भक्तिमें रामानुज अद्वितीय थे, जिनके बलसे इन्होंने कांचीनगरीकी राजकुमारीको प्रेतबाधासे मुक्त कर दिया।

जब महात्मा आलवन्दार (यामुनाचार्य) मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहे थे, उन्होंने अपने शिष्यके द्वारा रामानुजाचार्यको अपने पास बुलवा भेजा, परंतु रामानुजके श्रीरंगम् पहुँचनेके पहले ही आलवन्दार भगवान् नारायणके धाममें पहुँच चुके थे। रामानुजने देखा कि श्रीयामुनाचार्यके हाथकी तीन उँगलियाँ मुड़ी हुई हैं। इसका कारण कोई नहीं समझ सका। रामानुज तुरंत ताड़ गये कि यह संकेत मेरे लिये है। उन्होंने यह जान लिया कि श्रीयामुनाचार्य मेरेद्वारा ब्रह्मसूत्र, विष्णुसहस्रनाम और आलवन्दारोंके 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका करवाना चाहते हैं। उन्होंने आलवन्दारके मृत शरीरको प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं इन तीनों ग्रन्थोंकी टीका अवश्य लिखूँगा अथवा लिखवाऊँगा।' रामानुजके यह कहते ही आलवन्दारकी तीनों उँगलियाँ सीधी हो गयीं। इसके बाद श्रीरामानुजने आलवन्दारके प्रधान शिष्य पेरियनाम्बिसे विधिपूर्वक वैष्णव-दीक्षा ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वे भक्तिमार्गमें प्रवृत्त हो गये।

रामानुज गृहस्थ थे; परंतु जब उन्होंने देखा कि गृहस्थीमें रहकर अपने उद्देश्यको पूरा करना कठिन है, तब उन्होंने गृहस्थका परित्याग कर दिया और श्रीरंगम् जाकर यतिराज नामक संन्यासीसे संन्यासकी दीक्षा ले ली।

श्रीरामानुजने तिरुकोट्टियूरके महात्मा नाम्बिसे अष्टाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो नारायणाय**)-की दीक्षा ली थी। नाम्बिने मन्त्र देते समय इनसे कहा था कि 'तुम इस मन्त्रको गुप्त रखना।' परंतु रामानुजने सभी वर्णके लोगोंको एकत्रकर मन्दिरके शिखरपर खड़े होकर सब लोगोंको वह मन्त्र सुना दिया। गुरुने जब रामानुजकी इस धृष्टताका हाल सुना, तब वे इनपर बड़े रुष्ट हुए और कहने लगे—'तुम्हें इस अपराधके बदले नरक भोगना पड़ेगा।' श्रीरामानुजने इसपर बड़े विनयपूर्वक कहा कि 'भगवन्! यदि इस महामन्त्रका उच्चारण करके हजारों आदमी नरककी यन्त्रणासे बच सकते हैं तो मुझे नरक भोगनेमें आनन्द ही मिलेगा।' रामानुजके इस उत्तरसे गुरुका क्रोध जाता रहा, उन्होंने बड़े प्रेमसे इन्हें गले लगाया और आशीर्वाद दिया। इस प्रकार रामानुजने अपने समदर्शिता और उदारताका परिचय दिया।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका एक कवित्तमें वर्णन करते हुए कहते हैं—

आस्य सो बदन नाम सहस हजार मुख शेष अवतार जानो वही सुधि आई है।
गुरु उपदेशि मन्त्र कह्यो नीके राखो अन्त्र जपतहि श्यामजू ने मूरति दिखाई है॥
करुणानिधान कही सब भगवान पावैं चढ़ि दरवाजे सो पुकार्‍यौ धुनि छाई है।
सुनि सीखे लियो यों बहत्तर हि सिद्ध भये नये भक्ति चोज यह रीति लै कै गाई है॥ १०७॥

एक बार आप श्रीजगन्नाथस्वामीका दर्शन करने जगन्नाथपुरी गये। वहाँ उन्होंने देखा कि पण्डे-पुजारी आचारभ्रष्ट हैं। इससे उन्हें बहुत दुःख हुआ। इस समस्याके समाधानके लिये वे वहाँके राजासे मिले और उनका ध्यान पुजारियोंकी आचारहीनताकी ओर आकृष्ट कराया। राजाकी सहमतिसे उन्होंने सभी पण्डे-पुजारियोंको हटाकर अपने एक हजार शिष्योंको भगवान् श्रीजगन्नाथ-स्वामीकी सेवा-पूजा सौंप दी।

इधर पण्डे-पुजारी सेवा-पूजासे हटा दिये जानेके कारण वृत्तिहीन हो गये। वे बेचारे मन्दिरके पीछे बैठकर रोने-बिलखने और महाप्रभुसे क्षमा-प्रार्थना करने लगे। प्रभु तो परम करुणामय हैं ही, उनसे पण्डे-पुजारियोंका दुःख न देखा गया। उन्होंने स्वप्नमें रामानुजाचार्यजीसे कहा कि वे पण्डे-पुजारियोंको सेवा-पूजा करने दें। इसपर रामानुजजीने कहा कि वे मन्दिरमें वेद-विरुद्ध शूद्रवत् आचरण करते हैं, अतः मैं उन्हें मन्दिरमें प्रवेश ही नहीं करने दूँगा। भगवान्‌ने कहा कि वे लोग जब मेरे सम्मुख ताली बजाकर नृत्य करते हैं, तो वह मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, अतः मेरी सेवा-पूजाका कार्य तुम उन्हें ही दे दो। परंतु रामानुज उन पण्डोंको किसी भी शर्तपर सेवा-पूजाका कार्य नहीं सौंपना चाहते थे। करुणामय भगवान्‌को अपने भक्त रामानुजका हठ भी रखना था और अपने दीन सेवकोंपर भी करुणा करनी थी। अतः उन्होंने गरुड़जीको आज्ञा दी कि रामानुजको शिष्योंसमेत श्रीरंगनाथधाम पहुँचा दो। गरुड़जीने प्रभुके आज्ञानुसार रामानुजाचार्यजीको शिष्योंसहित रातमें सोते समय श्रीजगन्नाथधामसे श्रीरंगनाथधाम पहुँचा दिया। प्रातः जगनेपर इस आश्चर्यमयी घटनाको देख रामानुजजी प्रभुकी भक्तवत्सलताका अनुभव कर गद्गद हो गये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

गये नीलाचल जगन्नाथ जू के देखिबे कों देख्यो अनाचार सब पण्डा दूरि किये हैं।
सङ्ग लै हजार शिष्य रङ्ग भरि सेवा करैं धरैं हिये भाव गूढ़ दरसाय दिये हैं॥
बोले प्रभु वेई आवैं करे अङ्गीकार मैं तो प्यार ही को लेत कभूं औगुन न लिये हैं।
तऊ दृढ़ कीनी फिरि कही नहीं कान दीनी लीनी वेदवाणी विधि कैसे जात छिये हैं॥ १०८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोरावर भक्त सों बसाइ नहीं कही किती रती हूँ न लावैं मन चोज दरसायो है।
गरुड़ कौ आज्ञा दई सोई मानि लई उन शिष्यनि समेत निज देश छोड़ि आयो है॥
जागिकै निहारे ठौर और ही मगन भये दिये यों प्रकट करि गूढ़ भाव पायो है।
वेई सब सेवा करैं श्याम मन सदा हरैं धरैं सांचो प्रेम हिये प्रभुजू दिखायो है॥ १०९॥

रामानुजने आलवारोंके भक्तिमार्गका प्रचार करनेके लिये सारे भारतकी यात्रा की और गीता तथा ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखे। वेदान्तसूत्रोंपर इनका भाष्य 'श्रीभाष्य' के नामसे प्रसिद्ध है और इनका सम्प्रदाय भी 'श्रीसम्प्रदाय' कहलाता है; क्योंकि इस सम्प्रदायकी आद्यप्रवर्तिका श्रीश्रीमहालक्ष्मीजी मानी जाती हैं। इनके प्रधान शिष्यका नाम कूरत्तालवार (कूरेश) था। कूरत्तालवारके पराशर और पिल्लन् नामके दो पुत्र थे। रामानुजने पराशरके द्वारा विष्णुसहस्रनामकी और पिल्लन्से 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका लिखवायी। इस प्रकार उन्होंने आलवन्दार (यामुनाचार्य)-की तीनों इच्छाओंको पूर्ण किया।

श्रीकूरेशाचार्यजी

श्रीकूरेशजी लक्ष्मी एवं सरस्वतीके वरदपुत्र थे। श्रीमद्रामानुजाचार्यजीके शिष्योंमें श्रीकूरेशजीका अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। कांचीपुरसे दो कोस दूर कूरपुर नामका एक राज्य था, कूरेशजी वहाँके राजा थे। सन्तों-वैष्णवोंकी सेवा, दीनोंमें दीनदयालका दर्शन करना और अन्न-वस्त्रसे उनकी सेवा करना उनका जीवन-सिद्धान्त था। उनके राजद्वारपर प्रातःकालसे अर्धरात्रितक याचकोंको अन्न-वस्त्र वितरित होता और फाटक बन्द होनेसे पूर्व घण्टा-ध्वनि करके यह कहा जाता कि जो लोग अन्न-वस्त्र न प्राप्त कर सके हों, वे आकर प्राप्त कर लें।

कहते हैं कि घण्टा-ध्वनि जब एक दिन कांचीपुरीमें सुनायी पड़ी तो माता लक्ष्मीने वरदराजभगवान्से उस ध्वनिके विषयमें पूछा, इसपर भगवान् वरदराजने माता लक्ष्मीको कूरेशजीकी दान-गाथा सुनायी। माता लक्ष्मीको कूरेशजीके कार्यसे बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्होंने प्रभुसे ऐसे भक्तके दर्शन करनेकी इच्छा प्रकट की। भगवान् वरदराजने अपने पुजारी श्रीकांचीपूर्णजीको कूरेशजीको बुला लानेकी आज्ञा दी।

भगवान् वरदराजकी आज्ञा और माता लक्ष्मीकी इच्छा सुनकर कूरेशजी आनन्दमग्न हो गये, उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा कि यह हमलोगोंका धन्यभाग है कि माता लक्ष्मीने हमें याद किया है, परंतु यह शरीर तो अत्यन्त पतित है, अतः इसे पावन करनेके लिये हमें सबसे पहले भगवान् रामानुजाचार्यजीसे दीक्षा लेनी चाहिये। यह निश्चयकर वे सपत्नीक आचार्य श्रीरामानुजजीके दर्शनके लिये श्रीरंगम् चल दिये। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिका दान कर दिया और अंकिचन होकर आचार्य रामानुजकी शरणमें पहुँच गये, श्रीरामानुजजीने इन्हें नारायण-मन्त्रकी दीक्षा दी और वहीं रहनेकी व्यवस्था कर दी। आचार्य श्रीरामानुजने ब्रह्मसूत्रपर श्रीभाष्य लिखा है। उनके इस श्रीभाष्यलेखनमें श्रीकूरेशजीकी अद्भुत मेधाशक्तिकी दिग्दर्शना होती है।

चार महान् सन्त

श्रुतिप्रज्ञा श्रुतिदेव रिषभ पुहकर इभ ऐसे।
श्रुतिधामा श्रुति उदधि पराजित बामन जैसे॥
(श्री) रामानुज गुरुबंधु बिदित जग मंगलकारी।
सिवसंहिता प्रनीत ग्यान सनकादिक सारी॥
इँदिरा पधति उदारधी सभा साखि सारँग कहैं।
चतुर महँत दिग्गज चतुर भक्ति भूमि दाबे रहैं॥ ३२॥

श्रीश्रुतिप्रज्ञ, श्रीश्रुतिदेव, श्रीश्रुतिधाम तथा श्रीश्रुति-उदधि—ये चार महान् सन्त चार दिग्गजोंके समान थे। ये भक्तिरूपी भूमिको अपने प्रभावसे अचल रखते थे अर्थात् कोई भी विधर्मी भक्तिका थोड़ा भी विरोध अथवा खण्डन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेका साहस नहीं करता था। श्रीश्रुतिप्रज्ञजी और श्रीश्रुतिदेवजी—दोनों श्रीऋषभ और श्रीपुष्कर इन दो दिग्गजोंके समान थे, श्रीश्रुतिधामजी और श्रीश्रुतिउदधिजी—ये पराजित और वामन नामक दिग्गजोंके समान थे। ये चारों श्रीरामानुजाचार्यके गुरुभाई थे। ये अपनी भक्तिनिष्ठा और विद्वत्ताके कारण विश्वमें विख्यात थे एवं संसारका मंगल करनेवाले थे। शिवसंहितामें वर्णित ज्ञान-विज्ञानके तत्त्वको जाननेमें सनकादिकोंके समान थे। ये श्रीसम्प्रदायमें निष्ठावान् और उदार बुद्धिवाले थे। सन्तसभाके दर्शक-सत्संगी लोग इन्हें दिग्गज विद्वान् कहते थे॥ ३२॥

श्रीश्रुतिप्रज्ञ आदि इन महान् सन्तोंका विवरण संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीश्रुतिप्रज्ञजी

श्रीश्रुतिप्रज्ञजी परम भागवत समदर्शी सन्त थे। श्रुति-सिद्धान्तके विशेष ज्ञाता होनेके कारण इनका यह नाम पड़ा। सदा भगवन्नामका जप एवं उपदेश करनेवाले श्रीश्रुतिप्रज्ञजी महाराज भक्तिको ही सबसे बड़ा आचार मानते थे, इसीलिये उन्हें 'भक्ति-भूमि-दिग्गज' कहा गया है, अर्थात् जिस प्रकार दिग्गज लोग भूमिको धारणकर स्थिर रखते हैं, वैसे ही श्रुतिप्रज्ञजी भक्तिको अचल रखनेवाले थे।

श्रीश्रुतिप्रज्ञजी महाराजका जीवन गीताके श्लोक—**'विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥'** का साक्षात् स्वरूप था। आप श्वपचतकमें अपने आराध्य प्रभुके ही दर्शन करते थे।

श्रीश्रुतिदेवजी

श्रीश्रुतिदेवजी महाराज आचार्य श्रीरामानुजजीके गुरुभाई थे। भगवद्विमुख जीवोंको भगवत्सम्मुख करा देना इनका जीवन-लक्ष्य था और इसी लक्ष्यकी सिद्धिके लिये आप प्रायः देश-देशान्तरमें भ्रमण किया करते थे।

एक बारकी बात है, भक्तिका प्रचार करते हुए आप सन्तोंकी मण्डली लिये एक ऐसे राज्यमें पहुँच गये, जहाँका राजा ईश्वर और धर्मको न माननेवाला—नास्तिक था। वहाँकी प्रजा और राजकर्मचारी भी नास्तिक ही थे। श्रीश्रुतिदेवजी महाराज सन्तोंकी मण्डली लेकर राजाके उपवनमें रुक गये। वहाँ आस-पास स्नानार्थ कोई जलस्रोत—नदी, सरोवर आदि न होनेके कारण सन्तमण्डली उपवनके कुओंसे ही जब जल लेने लगी तो वहाँके मालियों और रखवालोंने इनका अपमान किया और जल लेनेसे मना कर दिया। अपने भक्तोंका इस प्रकार अपमान भक्तवत्सल भगवान्से सहन नहीं हुआ। सन्तोंके उपवनसे जाते ही नगरभरके कुओंका जल सूख गया। जलस्रोतोंके इस प्रकार अचानक सूख जाने तथा सन्तोंके साथ हुए दुर्व्यवहारकी सूचना जब राजाको मिली तो उन्हें अपनी भूलका ज्ञान हुआ। वे सन्तोंके चरणोंमें जा पड़े। श्रीश्रुतिदेवजी महाराजने उन्हें धीरज बँधाया और पुनः नगरमें आये। उनके नगरमें आते ही पुनः सभी जलस्रोत निर्मल जलसे परिपूर्ण हो गये, साथ ही वहाँके राजा और प्रजाके हृदय भी भक्तिभावसे परिपूर्ण हो गये। राजा-प्रजा सभीने श्रीश्रुतिदेवजीकी शिष्यता ग्रहण कर ली। इसी प्रकार अनेक भगवद्विमुखोंको सन्त श्रीश्रुतिदेवजीने भगवत्पथका पथिक बनाया।

श्रीश्रुतिधामजी

श्रीश्रुतिधामजी महाराज अविचल भक्ति एवं अखण्ड पाण्डित्यसे परिपूर्ण परम वैष्णव सन्त थे। आप आचार्य रामानुजजीके गुरुभाई थे और वेद-पुराण एवं इतिहासके मर्मज्ञ विद्वान् थे। भक्तिभावसमन्वित सरस कथा-प्रवचनोंके माध्यमसे जन-जनमें भक्ति-भावका प्रचार करना आपका जीवन-सिद्धान्त था। इसके लिये आप वैष्णव सन्तोंकी मण्डली लेकर सदैव विचरण किया करते थे।

श्रीश्रुतिउदधिजी

श्रीश्रुतिउदधिजी महाराज महान् त्यागी, विरक्त, वैष्णव सन्त थे। आप आचार्य श्रीरामानुजजी महाराजके गुरुभाई थे। भगवद्भजन-चिन्तन करते हुए एकाकी भ्रमण करना आपका स्वभाव और भगवद्विमुखोंको भक्तिपथका पथिक बनाना जीवन-लक्ष्य था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीलालाचार्यजी

(कोउ) मालाधारी मृतक बह्यो सरिता में आयो।
दाह कृत्य ज्यों बंधु न्योति सब कुटुँब बुलायो॥
नाम सकोचहिं बिप्र तबहिं हरिपुर जन आए।
जेंवत देखे सबनि जात काहू नहिं पाए॥
लालाचारज लच्छधा प्रचुर भई महिमा जगति।
(श्री) आचारज जामात की कथा सुनत हरि होइ रति॥ ३३॥

श्रीरामानुजाचार्यजीके दामाद श्रीलालाचार्यजीकी कथा सुनते ही भगवान्‌में विशेष प्रीति होती है। एक बार कोई तुलसीकण्ठी धारण किये हुए मृत शरीर नदीमें बहता हुआ आया। श्रीलालाचार्यजीने उसे निकालकर उसका अपने भाईके समान दाह-संस्कार किया। तेरहवें दिन भोजनके लिये ब्राह्मणोंको तथा कुटुम्बियोंको निमन्त्रण देकर बुलवाया। अज्ञात शवका भण्डारा जानकर ब्राह्मणलोग नाक-भौंह सिकोड़ने लगे और भोजन करने कोई नहीं आया। तब वैकुण्ठधामसे भगवान्‌के पार्षद आये, जिन्हें भोजन करते हुए तो सभी लोगोंने देखा, परंतु जाते समय वे आकाशमार्गसे चले गये। किसीको मिले नहीं, उन्हें कोई न देख पाया। इस चमत्कारसे लालाचार्यजीकी महिमा संसारमें लाखों गुनी बढ़ गयी॥ ३३॥

सन्त श्रीलालाचार्यजी महाराजका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

परम वैष्णव सन्त श्रीलालाचार्यजी महाराज आचार्य रामानुजजीके जामाता थे। वैष्णव-वेशके प्रति उनकी अनन्य निष्ठा थी। वे वैष्णव-वेशधारी प्रत्येक सन्तको अपना भाई मानते थे और उसका उसी प्रकार आदर-सत्कार करते थे। श्रीलालाचार्यजी महाराजके इस दिव्य भावको उनकी सहधर्मिणी तो जानती थी, परंतु साधारण लोग भला इसे क्या समझें!

एक दिन श्रीलालाचार्यजी महाराजकी पत्नी जल भरनेके लिये नदीतटपर गयी हुई थीं, उनके साथ उनकी कुछ सहेलियाँ भी थीं, जो श्रीलालाचार्यजीकी वैष्णवनिष्ठाके कारण उनका मजाक उड़ाया करती थीं। जिस समय वे लोग जल भर रही थीं, उसी समय किसी वैष्णव सन्तका शव बहता हुआ उधर आया, उसके शरीरपर वैष्णव चिह्न अंकित थे और वह कण्ठी-माला धारण किये हुए था। सहेलियोंने व्यंग्य करते हुए श्रीलालाचार्यजी महाराजकी पत्नीसे कहा—'इन्हें देखकर ठीकसे पहचान लो, तुम्हारे जेठ हैं या देवर!' यह कहकर खिलखिलाती हुई चल दीं। पत्नीने घर आकर श्रीलालाचार्यजीसे यह बात बतायी, सुनकर श्रीलालाचार्यजी करुण-क्रन्दन करने लगे। अन्तमें यह सोचकर अपने मनको शान्त किया कि मेरे ये भाई भगवद्भक्त थे—वैष्णव सन्त थे, अतः इन्हें भगवद्धामकी प्राप्ति हुई है। तत्पश्चात् उनका शव प्राप्तकर अन्तिम क्रिया करनेके उद्देश्यसे वे नदीके किनारे आये और विधि-विधानपूर्वक उनकी क्रिया की।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

आचारज को जामात बात ताकी सुनौ नीके पायो उपदेश सन्त बन्धु कर मानिये।
कीजै कोटि गुनी प्रीति ऐपै न बनति रीति तातें इति करौ याते घटती न आनिये॥
मालाधारी साधु तन सरिता में बह्यो आयो ल्यायो घर फेरिकै विमान शव जानिये।
गावत बजावत लै नीर तीर दाह कियो हियो दुख पायो सुख पायो समाधानिये॥ ११०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रयोदशाहके दिन श्रीलालाचार्यजीने उन वैष्णव सन्तके निमित्त ब्राह्मण-भोजनका आयोजन किया और उसके हेतु स्थानीय ब्राह्मणोंको आमन्त्रण दिया, परंतु कोई भी ब्राह्मण उनके यहाँ भोजन करने नहीं आया। उन ब्राह्मणोंने आपसमें तय किया कि यह लालाचार्य पता नहीं किस जातिका शव उठा लाया और उसके त्रयोदशाहमें हम लोगोंको खिलाकर भ्रष्ट करना चाहता है, अतः इसके यहाँ किसी भी ब्राह्मणको नहीं जाना चाहिये तथा जो ब्राह्मण परिचयके आयें, उन्हें भी सब बातें बताकर रोक देना चाहिये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी इस घटनाका इन शब्दोंमें वर्णन करते हैं—

किये सो महोच्छौ ज्ञाति विप्रनको न्योतो दियो लियो आये नाहिं कियो शंका दुखदाइये।
भये इक ठौरे माया कीने सब बोरे कछु कहैं बात औरे मरी देह बही आइये॥
याते नहीं खात वाकी जानत न जाति पाँति बड़ौ उतपात घर ल्याइ जाइ दाहिये।
मग अवलोकि उत पर्‌यो सुनि शोक हिये जिये आइ पूछैं गुरु कैसे कै निबाहिये॥ १११॥

ब्राह्मणोंकी इस दुरभिसन्धिका ज्ञान जब लालाचार्यजीको हुआ, तो वे बहुत ही दुःखी और चिन्तित हुए। उन्होंने ये सब बातें आचार्यश्री रामानुजजीसे निवेदन कीं। आचार्यश्रीने कहा कि तुम्हें इस विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वे ब्राह्मण अज्ञानी हैं और उन्हें वैष्णव-प्रसादके माहात्म्यका ज्ञान ही नहीं है। यह कहकर उन्होंने दिव्य वैष्णव पार्षदोंका आवाहन किया, वैष्णव-प्रसादकी महिमा जाननेवाले वे दिव्य पार्षद ब्राह्मण-वेशमें उपस्थित होकर श्रीलालाचार्यजीके घरकी ओर उन्मुख हुए। उन्हें देखकर वहाँके स्थानीय ब्राह्मणोंने उन्हें रोकना चाहा, परंतु उनके दिव्य तेजसे अभिभूत होकर खड़े-के-खड़े रह गये और आपसमें विचार किया कि अभी जब ये लोग भोजन करके बाहर आयेंगे तो हम लोग इनकी हँसी उड़ायेंगे कि कहो, किसके श्राद्धके ब्राह्मण-भोजनमें आप गये थे? क्या उसके कुल-गोत्रका भी आप सबको ज्ञान है?

श्रीप्रियादासजी महाराज इस प्रसंगका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

चले श्रीआचारज पै बारिज बदन देखि करि साष्टांग बात कहि सो जनाइयै।
जाओ निहशङ्क वे प्रसाद को न जानै रङ्क जानैं जे प्रभाव आवैं वेगि सुखदाइयै॥
देखे नभ भूमि द्वार ऐहैं निरधार जन वैकुण्ठ निवासी पांति ढिग ह्वै कै आइयै।
इन्हैं अब जान देवौ जनि कछु कहो अहो गहो करौ हाँसी जब घर जाय खाइयै॥ ११२॥

इधर ब्राह्मण लोग ऐसा सोच रहे थे, उधर ब्राह्मण वेशधारी दिव्य पार्षदोंने श्रीलालाचार्यजीके आँगनमें जाकर वैष्णव-प्रसाद पाया और पुनः आकाशमार्गसे वैकुण्ठधामके लिये प्रस्थान कर गये। ब्राह्मणोंने उन्हें जब आकाशमार्गसे जाते देखा तो उनकी आँखें खुल गयीं। उन्हें अपनी भूलका बहुत पछतावा हुआ। वे लोग आकर श्रीलालाचार्यजी महाराजके चरणोंमें गिर पड़े और क्षमा माँगते हुए रोने लगे। सन्त श्रीलालाचार्यजी महाराज तो परम वैष्णव थे, उन्हें उन लोगोंपर किंचित् रोष था ही नहीं। वे बोले—आप सब ब्राह्मण हैं, इस प्रकार कहकर मुझे लज्जित न करें। आप सबकी कृपासे मुझे आज दिव्य वैष्णव पार्षदोंके दर्शन हुए, अतः मैं तो स्वयं आपका कृतज्ञ हूँ।

ब्राह्मणोंको अब श्रीलालाचार्यजीके साधुत्व और सिद्धत्वमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं रह गया। उन सबने श्रीलालाचार्यजीके यहाँ जाकर भगवत्प्रसादके रूपमें पृथ्वीपर गिरे हुए अन्नकणोंको बीन-बीनकर खाया और आनन्दमग्न हो गये। उन सबने आचार्यश्रीका शिष्यत्व ग्रहण किया और वैष्णव दीक्षा प्राप्त की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीलालाचार्यजीकी इस वैष्णवनिष्ठाका निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

आये देखि पारषद गयो गिरि भूमि सद हद करी कृपा यह जानि निज जन को।
पायो लै प्रसाद स्वाद कहि अहलाद भयो नयो लयो मोद जान्यो सांचो सन्त पन को॥
विदा ह्वै पधारे नभ मग में सिधारे विप्र देखत विचारे द्वार व्यथा भई मन को।
गयो अभिमान आनि मन्दिर मगन भये नये दृग लाज बीनि-बीनि लेत कन को॥ ११३॥
पाँइ लपटाइ अंग धूरि में लुटाय कहैं करो मनभायो और दीन बहु भाख्यो है।
कही भक्तराज तुम कृपा मैं समाज पायो गायौ जो पुराणन में रूप नैन चाख्यो है॥
छाड़ो उपहास अब करो निजदास हमैं पूजै हिये आस मन अति अभिलाख्यो है।
किये परशंस मानो हंस ये परम कोऊ ऐसे जस लाख भांति घर घर राख्यो है॥ ११४॥

श्रीपादपद्मजी

गुरू गमन (कियो) परदेस सिष्य सुरधुनी दृढ़ाई।
एक मंजन एक पान हृदय बंदना कराई॥
गुरु गंगा में प्रबिसि सिष्य को बेगि बुलायो।
बिष्णुपदी भय जानि कमलपत्रन पर धायो॥
पाद पद्म ता दिन प्रगट, सब प्रसन्न मन परम रुचि।
श्रीमारग उपदेस कृत श्रवन सुनौ आख्यान सुचि॥ ३४॥

श्रीसम्प्रदायके अनुयायी गुरुदेवके उपदेश करनेसे गंगाजीमें उत्पन्न निष्ठाका पवित्र इतिहास सुनिये। गुरुदेव अपनी अनुपस्थितिमें अपने समान गंगाजीको माननेका उपदेश देकर चले गये। ये गुरुवत् गंगाजीकी उपासना करने लगे। अन्य कोई शिष्य श्रद्धापूर्वक स्नान करते थे, कोई गंगाजलपान करते थे, परंतु पादपद्मजी हृदयसे ही गंगाजीकी वन्दना-पूजा करते थे। कभी भी गंगाजीमें स्नान, आचमन नहीं करते थे। इनके हृदयके भावको न जानकर दूसरे लोग आलोचना करते थे। बादमें गुरुदेव लौटकर आये और इनकी निष्ठाका परिचय प्रकट करनेके लिये एक दिन स्नानार्थ गंगाजीमें घुसे और पादपद्मजीको वहीं शीघ्र वस्त्र लेकर आनेको कहा। गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन और गंगामें चरणस्पर्श इन दोनों अपराधोंसे ये भयभीत हुए। भाव जानकर गंगाजीने तटसे लेकर गुरुजीके समीपतक कमलपत्र प्रकट कर दिये। उन्हींपर पैर रखते हुए ये गुरुदेवके समीप दौड़कर गये। पादपद्मजीका जो प्रभाव गुप्त था, वह उस दिन प्रकट हो गया, इस दिव्य चमत्कारको देखकर सभीके मनमें गंगाजी और पादपद्मजीमें अपार श्रद्धा हो गयी। उसी दिनसे उनका पादपद्माचार्य यह नाम पड़ गया॥ ३४॥

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने निम्न दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

देवधुनी तीर सो कुटीर बहु साधु रहैं रहै गुरुभक्त एक न्यारो नहिं ह्वै सकै।
चले प्रभु गांव जिनि तजो बलि जांव करौ कही दाससेवा गंगा में ही कैसे छ्वै सकै॥
क्रिया सब कूप करै 'बिष्णुपदी' ध्यान धरै रोष भरै सन्त श्रेणी भाव नहीं भ्वै सकै।
आये ईश जानि दुख मानि सो बखान कियो आनि मन जानि बात अंग कैसे ध्वै सकै॥ ११५॥
चले लैके न्हान संग गंग में प्रवेश कियो रंगभरि बोले सो अँगोछा वेगि ल्याइये।
करत विचार शोच सागर न वारापार गंगा जू प्रगट कह्यो कंजन पै आइये॥
चलेई अधर पग धरैं सो मधुर जाइ प्रभु हाथ दियो लियो तीर भीर छाइये।
निकसत धाय चाय पग लपटाय गये बड़ौ परताप यह निशिदिन गाइये॥ ११६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामानुजसिद्धान्तके मतावलम्बी अन्य आचार्यगण

देवाचारज दुतिय महामहिमा हरियानँद।
तस्य राघवानंद भए भक्तन को मानद॥
पृथ्वी पत्रावलँब करी कासी अस्थाई।
चारि बरन आश्रम सबहीको भक्ति दृढ़ाई॥
तिन के रामानँद प्रगट बिश्वमँगल जिन्ह बपु धस्यो।
(श्री) रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसस्यो॥ ३५॥

श्रीदेवाचार्यजीद्वारा श्रीरामानुजाचार्यकी पद्धति अर्थात् विशिष्टाद्वैतसम्मत श्रीसम्प्रदायका प्रताप संसारी जीवोंको भक्तिरूप जीवन देनेके लिये अमृतके समान कल्याणकारी होकर पृथ्वीपर फैला। देवगुरु बृहस्पतिके समान महामहिमावाले दूसरे आचार्य श्रीहर्यानन्दजी हुए। उनके शिष्य श्रीराघवानन्दजी हुए, जो भक्तोंको आदर देनेवाले थे, जिन्होंने भारतभूमिको अपने विजयपत्रके आश्रित कर लिया था। ये काशीमें स्थायीरूपसे निवास करते थे। इन्होंने चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके लोगोंमें भगवान्‌की भक्तिको सुदृढ़रूपसे स्थापित किया। उनके शिष्यरूपमें भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी प्रकट हुए, जिन्होंने संसारका कल्याण करनेके लिये ही शरीर धारण किया था॥ ३५॥

श्रीसम्प्रदायके इन सन्तोंका पावन चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीदेवाचार्यजी

श्रीदेवाचार्यजी महाराज भगवत्प्राप्त परम वैष्णव सिद्ध सन्त थे। श्रीमद्भागवतग्रन्थपर आपकी अगाध श्रद्धा थी। आपके कथावाचनके समय जड़-चेतन सभी मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। वैष्णव धर्मका प्रचार करना आपका जीवन-लक्ष्य था और इसकी सम्पूर्तिके लिये आप सदैव विचरण किया करते थे।

श्रीहर्यानन्दजी

परम वैष्णव सन्त श्रीहर्यानन्दजी महाराज श्रीश्रियानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य थे। आप सदा भगवान् श्रीहरिकी भक्तिमें लवलीन रहा करते थे, इसलिये आपके गुरुदेवने आपका 'हर्यानन्द'—यह नाम रख दिया था।

एक बार आप महाप्रभु भगवान् जगन्नाथजीका दर्शन करने भगवद्धाम श्रीजगन्नाथपुरीकी यात्रापर जा रहे थे, आपके साथ और भी बहुतसे वैष्णव भक्त थे। उस समय जगन्नाथपुरीमें भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्राका महोत्सव चल रहा था। भगवान्‌को रथपर बैठाकर गुण्डिचा मन्दिर ले जाया जा रहा था। भगवान् जगन्नाथमहाप्रभुका विशाल गगनचुम्बी रथ भक्तोंद्वारा खींचा जा रहा था। अचानक रथ चलते-चलते रुक गया। लोगोंने बहुत प्रयास किया, परंतु रथ टस-से-मस न हुआ। तभी श्रीहर्यानन्दजी भीड़से निकलकर आगे आये और सबको सुनाकर कहा कि आपलोग रथको छोड़कर दूर हट जायँ, यह रथ स्वयं चलेगा।

श्रीहर्यानन्दजी महाराजकी बात सुनकर उपस्थित जनसमुदाय रथ छोड़कर अलग हट गया। आश्चर्य! रथ अपने-आप चलने लगा और सौ कदमतक अपने-आप चलता रहा। उपस्थित जनसमुदायमें महाप्रभु जगन्नाथस्वामीके साथ-साथ श्रीहर्यानन्दजी महाराजकी भी जय-जयकार होने लगी।

श्रीराघवानन्दजी

श्रीसम्प्रदायमें श्रीराघवानन्दजी महाराजको गुरुदेव वसिष्ठका अवतार माना जाता है। आप श्रीहर्यानन्दजी महाराजके कृपापात्र थे। वेद-शास्त्र-पुराणादिके प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी आप अत्यन्त अमानी थे, किसी प्रकारका अहंकार आपको छू नहीं गया था। आपने चारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णोंके लोगोंको भक्तिका उपदेश दिया। आप एक सिद्ध सन्त थे, परंतु आपकी सिद्धियाँ चमत्कार-प्रदर्शनके लिये नहीं, अपितु लोगोंको भगवद्भक्तिकी ओर प्रवृत्त करनेके लिये थीं। आपने बहुत समयतक काशीमें निवास किया। आपको श्रीरामानन्दाचार्यजीका गुरु होनेका गौरव प्राप्त है।

श्रीरामानन्दाचार्यजी

श्रीरामानन्दजी श्रीरामायत या श्रीरामानन्दी वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य हैं। कबीर, सेन, धन्ना, रैदास आदि इनके शिष्य थे। इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण आगे छप्पय ३६ पृ० १६८ पर दिया गया है।

श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी और उनके द्वादश प्रधान शिष्य

अनँतानंद कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि।
पीपा भावानँद रैदास धना सेन सुरसुर की घरहरि॥
औरौ सिष्य प्रसिष्य एक ते एक उजागर।
बिस्वमँगल आधार सर्वानँद दसधा आगर॥
बहुत काल बपु धारि कै प्रनत जनन कौं पार दियो।
(श्री) रामानँद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो॥ ३६॥

जिस प्रकार श्रीरघुनाथजीने वानरोंकी सेनाको पार करनेके लिये समुद्रपर पुल बनवाया था, उसी प्रकार श्रीरामानन्दाचार्यजीने संसारी जीवोंको भवसागरसे पार करनेके लिये अपनी शिष्य-प्रशिष्य-परम्परासे सेतु-निर्माण कराया। श्रीअनन्तानन्दजी, श्रीकबीरदासजी, श्रीसुखानन्दजी, श्रीसुरसुरानन्दजी, श्रीपद्मावतीजी, श्रीनर-हरियानन्दजी, श्रीपीपाजी, श्रीभावानन्दजी, श्रीरैदासजी, श्रीधन्नाजी, श्रीसेनजी और श्रीसुरसुरानन्दजीकी पत्नी—ये श्रीरामानन्दाचार्यजीके सर्वप्रधान द्वादश शिष्य थे। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से शिष्य-प्रशिष्य एक-से-एक प्रसिद्ध एवं प्रतापी हुए। ये संसारका कल्याण करनेवाले, भक्तोंके आधार और प्रेमाभक्तिके खजाने थे। श्रीरामानन्दाचार्यजीने बहुत कालतक शरीरको धारणकर शरणागत जीवोंको संसार-सागरसे पार किया॥ ३६॥

श्रीरामानन्दजी एवं उनके द्वादश प्रधान शिष्योंके चरित इस प्रकार हैं—

श्रीरामानन्दाचार्यजी

श्रीरामायत या श्रीरामानन्दी वैष्णव-सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य श्रीरामानन्दजी एक उच्चकोटिके आध्यात्मिक महापुरुष थे। इनका जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मणकुलमें माघकृष्ण सप्तमी, भृगुवार, संवत् १३२४ को प्रयागमें त्रिवेणीतटपर हुआ था। इनके पिताका नाम पुण्यसदन और माताका नाम श्रीमती सुशीला था।

आठवें वर्ष इनका उपनयन-संस्कार किया गया। उपनीत ब्रह्मचारी जब पलाशदण्ड धारणकर काशी विद्याध्ययन करने चला, तब आचार्य एवं सम्बन्धियोंके आग्रह करनेपर भी नहीं लौटा। विवश हो माता-पिता भी साथ हो लिये और बालक अपनी माताके साथ अपने मामा ओंकारेश्वरके यहाँ काशीमें ठहरकर विद्याध्ययन करता रहा। बारह वर्षकी अवस्थातक बालक ब्रह्मचारीने समस्त शास्त्रोंका अध्ययन पूर्ण कर लिया।

विवाहकी चर्चा चली। बालकने इनकार कर दिया। इसके पश्चात् स्वामी राघवानन्दजीसे दीक्षा लेकर पंचगंगा घाटपर जाकर एक घाटवालेकी झोंपड़ीमें ठहरकर तप करना आरम्भ कर दिया। लोगोंने ऊँचे स्थानपर एक कुटी बनाकर तपस्वी बालकसे उसमें रहनेकी विनय की। उनकी विनय सुनकर वे उस कुटियामें आ गये और उसीमें ज्ञानार्जन और तपस्या करते रहे। उनके अलौकिक प्रभावके कारण उनकी बड़ी ख्याति हुई। बड़े-बड़े साधु और विद्वान् आपके दर्शनार्थ आश्रममें आने लगे।

स्वामीजीने देश और धर्मका महान् कल्याण किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका दिव्य तेज राजनीतिक क्षेत्रमें उसी प्रकार चमकता था, जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्रमें। उस महाभयंकर कालमें आर्य-जाति और आर्य-धर्मके त्राणके साथ ही विश्वकल्याण एवं भगवद्धर्मके अभ्युत्थानके लिये जैसे शक्तिशाली और प्रभावशाली आचार्यकी आवश्यकता थी, स्वामी रामानन्दजी वैसे ही जगद्गुरु थे।

कहते हैं कि इनके सम्प्रदायकी प्रवर्तिका जगज्जननी श्रीसीताजी हैं। उन्होंने पहले हनुमान्‌जीको उपदेश दिया था और फिर उनसे संसारमें इस रहस्यका प्रकाश हुआ। इस कारण इस सम्प्रदायका नाम 'श्रीसम्प्रदाय' है और इसके मुख्य मन्त्रको रामतारक कहते हैं।

अपने परमधाम-गमनके पूर्व श्रीस्वामीजीने अपनी शिष्यमण्डलीको सम्बोधित करके कहा कि 'सब शास्त्रोंका सार भगवत्स्मरण है, जो सच्चे सन्तोंका जीवनाधार है। कल श्रीरामनवमी है। मैं अयोध्याजी जाऊँगा। परंतु मैं अकेला जाऊँगा। सब लोग यहीं रहकर उत्सव मनायें। कदाचित् मैं लौट न सकूँ, आपलोग मेरी त्रुटियों एवं अविनय आदिको क्षमा कीजियेगा। यह सुनकर सबके नेत्र सजल हो गये। दूसरे दिन स्वामीजी संवत् १५१५ में अपनी कुटीमें अन्तर्धान हो गये।

यहाँ संक्षेपमें इनकी शिष्यपरम्पराका वर्णन प्रस्तुत है—

श्रीरामानन्दजीके द्वादश शिष्य बहुत प्रसिद्ध हैं। इन द्वादश भक्तोंमेंसे श्रीअनन्तानन्दजीका वर्णन छप्पय ३७ पृ० १७० पर, श्रीकबीरदासजीका छप्पय ६० पृ० २४२ पर, श्रीसुखानन्दजीका छप्पय ६४ पृ० २६१ पर, श्रीसुरसुरानन्दजीका छप्पय ६५ पृ० २६२ पर, श्रीनरहरियानन्दजीका छप्पय ६७ पृ० २६४ पर, श्रीपीपाजीका छप्पय ६१ पृ० २४७ पर, श्रीरैदासजीका छप्पय ५९ पृ० २३८ पर, श्रीधन्नाजीका छप्पय ६२ पृ० २५८ पर, श्रीसेनजीका छप्पय ६३ पृ० २५१ पर तथा श्रीसुरसुरीजीका छप्पय ६६ पृ० २६३ पर आया है।

अन्य शिष्योंका वर्णन आगे इस प्रकार किया गया है—

श्रीपद्मावतीजी

श्रीपद्मावतीजी साक्षात् भगवती लक्ष्मीजीकी अंशस्वरूपा ही थीं, पद्मसदृश कान्ति होनेके कारण उनके माता-पिताने उनका पद्मावती यह नाम रखा था। पद्मावतीजीका जन्म त्रिपुरा नामक नगरमें एक ब्राह्मणदम्पतीके घर हुआ था। आपके पिता पण्डित श्रीप्रभाकरजी महाराज भगवती लक्ष्मीके अनन्य आराधक थे। उनकी आराधनाके फलस्वरूप साक्षात् भगवती लक्ष्मीजी ही उनकी कन्याके रूपमें अवतरित हुई थीं। बालिका पद्मावती जब पाँच वर्षकी हुईं तो उन्होंने अपने पितासे काशी ले चलनेका आग्रह किया। उन्होंने यह भी बताया कि वे काशीमें श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजका दर्शन करना चाहती हैं। माता-पिता अपनी लाडली पुत्रीका आग्रह स्वीकारकर उसे लेकर काशीपुरी आये। पद्मावतीने श्रीस्वामीजीके दर्शनकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और आचार्यश्रीसे दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। पद्मावतीकी विनती मानकर आचार्यश्रीने उन्हें मन्त्र-दीक्षा दी और उपासना-रहस्यका बोध कराया। पद्मावतीके कहनेपर उनके माता-पिताने भी श्रीस्वामीजीसे दीक्षा ले ली। इस प्रकार पद्मावती अपने माता-पिताके साथ काशीमें ही रहकर भगवदाराधन करने लगीं।

श्रीभावानन्दजी

श्रीसम्प्रदायमें श्रीभावानन्दजी महाराजको जनकजीका अवतार माना जाता है। इनके गृहस्थाश्रमका नाम श्रीविट्ठलपन्त था। इनके पूर्वज मिथिलाके निवासी थे, परंतु इनके पितामह भगवान् पुण्डरीकनाथजीके बड़े भक्त थे, अतः वे पण्ढरपुरके पास ही आलन्दी नामक ग्राममें बस गये। वहीं श्रीविट्ठलपन्तजीका जन्म हुआ, जो बादमें स्वामी रामानन्दाचार्यजीसे दीक्षा लेकर भावानन्दके नामसे विख्यात हुए। आपका विवाह सिद्धोपन्त नामक एक कुलीन ब्राह्मणकी परम सुशीला कन्या रुक्मिणीसे हो गया। श्रीरुक्मिणीबाईजी परम पतिव्रता थीं, वे पतिके कार्यों, अतिथि-अभ्यागतोंके सत्कार और गृहस्थ-धर्मका सम्यक् रूपसे निर्वाह करती थीं।

एक दिन आपके यहाँ एक सन्त आये, सत्संगके दौरान उन्होंने बताया कि काशीमें श्रीरामानन्दाचार्य नामके एक परम भागवत वैष्णव सन्त हैं, मैं उन्हींके दर्शन करने जा रहा हूँ। यह सुनकर आप भी काशी जानेके लिये तैयार हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये। पत्नीको घर-गृहस्थी और अतिथि-सेवाका कार्य सौंपकर स्वयं उन सन्तके साथ काशीके लिये प्रस्थान कर गये। मार्गमें उन्हें अनुभूति हुई कि मेरे साथ चल रहे सन्त साक्षात् विश्वामित्रजी हैं और इनके साथ सुकुमार अवस्थाके श्याम-गौर दो किशोर श्रीराम-लक्ष्मण हैं। फिर क्या था! वहीं इनकी भावसमाधि लग गयी। समाधिसे जाग्रत् होनेपर उन्होंने देखा कि वहाँ न तो वे सन्त हैं और न ही दोनों किशोर। फिर तो वे प्रभु-दर्शनके लिये व्याकुल हो गये और 'हा राम'-'हा रघुनाथ' कहते हुए करुण क्रन्दन करने लगे। कहते हैं कि इनकी इस प्रकारकी दशा देखकर दो बालक इनके पास आये और इन्हें खानेके लिये भगवत्प्रसाद दिया और फिर इन्हें मार्ग दिखाते हुए काशीके पंचगंगाघाटपर पहुँचा दिया, जहाँ स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजीका आश्रम था। उन बालकोंके प्रति आपका श्रीराम-लक्ष्मणका भाव था, अतः उनके चले जानेपर पुनः आप विरह-व्याकुल हो गये। उसी समय श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके शंखकी दिव्य ध्वनि आपके कानोंमें पड़ी, जिसे श्रवणकर आपके अन्तःकरणमें ज्ञानका उदय हुआ और आपने स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरण ग्रहण की। स्वामीजीने आपको राम-मन्त्रकी दीक्षा देकर आपका नाम भावानन्द रख दिया।

गुरुकी आज्ञासे आपने पुनः गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया। कालान्तरमें निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव और सोपानदेव नामक उनके तीन पुत्र हुए, जो आगे चलकर महान् सन्त हुए। एक कन्या हुई, जिसका नाम मुक्ताबाई हुआ, वह भी सिद्धयोगिनी थी।

श्रीअनन्तानन्दजी और उनकी शिष्यपरम्परा

जोगानंद गयेस करमचँद अल्ह पैहारी।
(सारी) रामदास श्रीरंग अवधि गुन महिमा भारी॥
तिन के नरहरि उदित मुदित मेहा मंगलतन।
रघुबर जदुबर गाइ बिमल कीरति संच्यो धन॥
हरिभक्ति सिंधु बेला रचे पानि पद्मजा सिर दए।
अनँतानँद पद परसि कै लोकपाल से ते भए॥ ३७॥

योगानन्दजी, गयेशजी, कर्मचन्दजी, अल्हजी, पयहारीजी, (सारी) रामदासजी और श्रीरंगजी उत्तम-गुणोंकी सीमा तथा महाप्रतापी हुए। श्रीरंगजीके शिष्यके रूपमें परमप्रसन्न श्रीनरहरिजीका उदय हुआ। ये सभी निरन्तर भक्तिकी वर्षा करनेवाले मेघके समान मंगलमय शरीर धारण करनेवाले हुए। श्रीअनन्तानन्दजी एवं उनके शिष्यगणोंने श्रीरामचन्द्रजी तथा श्रीकृष्णचन्द्रजीका निर्मल यशोगान करके पवित्र कीर्तिरूपी धनका संग्रह किया। श्रीअनन्तानन्दजी भगवद्भक्तिरूपी समुद्रकी मर्यादा थे। पद्मजा श्रीजानकीजीने आपके सिरपर अपना वरदहस्तकमल रखकर आशीर्वाद दिया। श्रीस्वामी अनन्तानन्दाचार्यजीके पूज्य श्रीचरण-कमलोंका स्पर्श करके उनके ये शिष्यगण लोकपालोंके समान भक्तजनोंका पालन करनेवाले हुए॥ ३७॥

यहाँ श्रीअनन्तानन्दजी तथा उनके शिष्योंका चरित संक्षेपमें दिया जा रहा है—

श्रीअनन्तानन्दजी

श्रीअनन्तानन्दजी महाराज स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके द्वादश प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। आपके गृहस्थाश्रमका नाम पं० छन्नूलाल था। आपका जन्म श्रीअयोध्याजीके समीप रामरेखा नदीके तटपर स्थित महेशपुर नामक ग्राममें हुआ था, आपके पिता पं० श्रीविश्वनाथमणित्रिपाठी सनाढ्य ब्राह्मण थे, भगवान् श्रीराम और अयोध्याधामके प्रति विशेष निष्ठा होनेके कारण ये 'अवधू पण्डित' के नामसे विख्यात थे।

अवधू पण्डित भगवती सरस्वतीके बड़े भक्त थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं कि माता सरस्वतीजीके ही आशीर्वादसे कार्तिकपूर्णिमा, सं० १३६३ वि० को श्रीअनन्तानन्दजीका जन्म हुआ था। महापुरुषोंका जीवन बहुत ही विषम होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी ही भाँति आपकी भी माताका परमधामगमन आपके जन्मके ठीक बाद ही हो गया था। उसके कुछ समय बाद पिताकी भी छत्रच्छाया सिरसे उठ गयी। अब तो बालक छन्नू अनाथ ही हो गये, ऐसे समयमें अवधू पण्डितके यजमान ग्वालोंकी दृष्टि आपपर पड़ी। उन लोगोंने आपका लालन-पालन किया। थोड़ा बड़े होनेपर आप भी ग्वाल-बालोंके साथ वनमें गाय चराने लगे।

इधर भगवान्‌ने पं० श्रीश्यामकिशोर नामक एक भगवद्भक्त ब्राह्मणको ध्यानावस्थामें आज्ञा दी कि वह आपको अपने घर लाये और लालन-पालन करे। पं० श्रीश्यामकिशोरजीको भी कोई सन्तान नहीं थी, प्रभुकी आज्ञा मानकर उन्होंने आपका पुत्रवत् पालन-पोषण किया और विद्याध्ययनके लिये काशी ले आये और फिर यहीं बस गये। आप भगवती सरस्वतीके वरद पुत्र थे, थोड़े ही समयमें आप सर्वशास्त्रनिष्णात होकर काशीके प्रतिष्ठित विद्वान् हो गये।

एक बारकी बात है, महाशिवरात्रिको आप भगवान् विश्वनाथजीके मन्दिरमें जागरण कर रहे थे। उसी समय आपको स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी दिव्य शंख-ध्वनि सुनायी दी। उस शंख-ध्वनिसे आकृष्ट होकर आप पंचगंगाघाटस्थित स्वामी रामानन्दजीके आश्रममें आये और वहीं उसी समय उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया, फिर लौटकर घर नहीं गये। श्रीमदाचार्यचरणने आपको श्रीराममन्त्रकी दीक्षा देकर 'श्रीअनन्तानन्द' नाम रख दिया।

श्रीयोगानन्दजी

श्रीअनन्तानन्दजीके शिष्य परम वैष्णव सन्त और श्रीरामभक्त श्रीयोगानन्दजीके गृहस्थाश्रमका नाम श्रीयज्ञेशदत्त था। आपके पिता श्रीमणिशंकरजी परम यशस्वी वैदिक ब्राह्मण और भगवान् सूर्यके भक्त थे। भगवान् सूर्यदेवके वरदानसे गुजरात-प्रान्तके सिद्धपुरमें आपका जन्म वैशाख कृष्ण ७, सं० १४५७ वि० को हुआ। बालक यज्ञेश बचपनसे ही दीपककी लौको टकटकी लगाकर देखा करते थे, जो इनके आगे चलकर सिद्धयोगी बननेका संकेत था। नौ वर्षकी अवस्थामें बालक यज्ञेशका यज्ञोपवीत हुआ और वे पण्डित श्रीनाथजी महाराजकी पाठशालामें विद्याध्ययन करने लगे। बालक यज्ञेश विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे, उनकी अद्‌भुत प्रतिभाको देखकर श्रीनाथजीने उन्हें काशी जाकर विद्याध्ययन करनेका परामर्श दिया। बालक यज्ञेशने गुरूपदेशको स्वीकारकर काशीमें पं० श्रीनारायणभट्टजीकी पाठशालामें न्याय-वेदान्तका अध्ययन करना शुरू किया। थोड़े ही दिनोंमें आपकी गणना काशीके प्रतिष्ठित पण्डितोंमें होने लगी। इसके बाद आप योगका अभ्यास करने लगे। इस क्षेत्रमें भी आपको अद्भुत सफलता मिली और आप लम्बी अवधिकी समाधियाँ लगाने लगे।

काशीमें ही आपका विवाह एक सुशीला ब्राह्मण-कन्यासे हो गया, परंतु आपका गृहस्थ-जीवन अधिक समयतक न चल सका और अर्धांगिनीका परलोकगमन हो गया। इस घटनाने आपमें संसारके प्रति वैराग्यभावको जन्म दिया और आपने सब धन-सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान कर दी। अकिंचनरूपमें आप भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन करने गये और वहीं आपको प्रेरणा हुई कि इसे विधिका विधान मानकर स्वीकार करो और स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरण ग्रहण करो। श्रीयोगेशजी मन्दिरसे सीधे श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी शरणमें आये और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। श्रीस्वामीजीने कृपापूर्वक आपको श्रीराम-मन्त्रका उपदेश दिया और यज्ञेशदत्तके स्थानपर आपका नाम 'योगानन्द' रख दिया। श्रीयोगानन्दजी महाराज कहा करते थे कि भक्तको पतिव्रता स्त्री और चातककी तरह भगवान् श्रीरामके प्रति अनन्य भक्ति रखनी चाहिये।

श्रीगयेशजी

श्रीगयेशजी स्वामी रामानन्दाचार्यजीके द्वादश प्रधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्योंमें एक श्रीअनन्ताचार्यजी महाराजके शिष्य थे। भगवद्भक्तिके प्रचारार्थ आप भगवान्‌के नाम-गुणका कीर्तन करते हुए विचरण करते रहते थे। एक बारकी बात है, आप भ्रमण करते हुए एक गाँवके निकट पहुँचे और इमलीके एक सूखे वृक्षके नीचे स्वच्छ-समतल स्थानपर बैठ गये। वहीं भगवान्‌का ध्यान करते हुए आपको समाधि लग गयी। उस गाँवमें एक वैष्णवद्वेषी व्यक्ति निवास करता था। उसने जब आपको देखा तो आपका उपहास करने लगा। वह उधरसे जानेवाले लोगोंसे कहता—'भाइयो! देखो, ये एक सिद्ध महात्मा बैठे हैं; ये तबतक यहाँसे नहीं उठेंगे, जबतक यह सूखा पेड़ हरा नहीं हो जायगा।'

इस प्रकार वह वैष्णवद्वेषी व्यक्ति श्रीगयेशजीकी हँसी उड़ा रहा था, परंतु गयेशजीको क्या! वे तो निर्विकार भावसे अपने इष्टदेवके स्वरूपचिन्तनमें मग्न थे, उन्हें बाह्य जगत्‌का ज्ञान ही कहाँ था! परंतु सर्वज्ञ परमात्मासे अपने भक्तका अपमान न देखा गया, उन्होंने श्रीगयेशजीकी महिमाका ख्यापन करनेके लिये उस सूखे इमलीके वृक्षको हरा-भरा कर दिया। फिर क्या था? अभीतक जो जन-समुदाय उनकी हँसी उड़ानेके लिये एकत्र हुआ था, वही अब उनकी जय-जयकार करने लगा।

श्रीकर्मचन्दजी

श्रीकर्मचन्दजी अनन्तानन्दजीके शिष्य थे। आपके पिताका नाम धनचन्द था। राजस्थानमें देवासा नामका एक ग्राम है, वहाँके धनी श्रेष्ठियोंमें आपकी गणना थी। आपकी धर्मपत्नी परमभगवद्भक्ता, उदार-हृदया और सन्तसेविका थीं; परंतु धनचन्द पत्नीके इतने धार्मिक होनेके बाद भी सन्तान-सुखसे वंचित ही थे, अतः वे धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, सन्त-सेवा और दान आदिको ढकोसला ही मानते थे। एक बार जब धनचन्दजीकी पत्नी गर्भवती थीं तो वे किसी नास्तिकके प्रभावमें आकर पत्नीसे कहने लगे कि यदि तुम्हारी संतान इस बार भी जीवित नहीं रही तो मैं तुम्हें ही मार डालूँगा, अन्यथा यह सन्त-सेवा करना छोड़ दो।

धनचन्दजीकी पत्नीको पतिके इस दुर्भावसे बहुत दुःख हुआ, परंतु उनकी सन्त-सेवामें निष्ठा और विश्वास दृढ़ ही रहा। इस अवधिमें वे भगवान्‌से बराबर प्रार्थना करती रहीं कि प्रभो! मेरे सुखके लिये नहीं, अपितु सन्त-महिमाकी प्रतिष्ठा संसारमें बनी रहे—इस हेतु मुझे एक भक्त पुत्र प्रदान कीजिये। भगवान्‌की लीला! और बार तो पुत्र जन्म लेकर कुछ दिन जीवित रहता था, इस बार तो उसकी छठी भी न हो सकी और वह चल बसा।

धनचन्दजीकी पत्नीको पुत्र-वियोगका दुःख तो कम, पर सन्त-महिमापर प्रश्न-चिह्न लगनेका बहुत दुःख था। धनचन्द तो आगबबूला ही हो गये और पत्नीका केश पकड़कर घरसे निकालने लगे। इतनेमें ही किसी व्यक्तिने आकर कहा कि गाँवमें स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके पट्टशिष्य श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी आये हैं; वे सिद्ध सन्त हैं, उनकी कृपासे यह बालक पुनः जीवित हो सकता है, अतः आप लोगोंको इस बालकको लेकर उनकी शरणमें चलना चाहिये। इतना सुनना था कि धनचन्दकी पत्नी तत्काल श्रीअनन्तानन्दजी महाराजके दर्शन करने चल दी, उसे अब भी सन्त-भगवन्तकी कृपापर पूर्ण विश्वास था। श्रीअनन्तानन्दजीके पास पहुँचकर उसने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और सन्त-महिमाकी प्रत्यक्ष अनुभूति कराकर पतिको सद्बुद्धि प्रदान करनेका आग्रह किया।

श्रीअनन्तानन्दजी धनचन्दके घर आये और बालकके मुखमें चरणोदक डाला। सन्तकृपाका चमत्कार! निश्चेष्ट पड़े बालकके शरीरमें श्वास-प्रश्वासके स्पन्दन होने लगे! फिर क्या था, हर्षसे सन्त-भगवन्तका जयघोष होने लगा। धनचन्द तो इस सुखद आश्चर्यको देखकर किंकर्तव्यविमूढ़से रह गये, फिर पश्चात्तापके आँसुओंसे श्रीअनन्तानन्दजीके चरणोंका प्रक्षालन करने लगे। अनन्तानन्दजीने उन्हें उठाया और भगवद्भक्तिका उपदेश दिया। तत्पश्चात् उन्होंने बालकके गलेमें कण्ठी बाँधकर उसे भी श्रीरामनामका उपदेश दिया और उसका नाम रख दिया कर्मचन्द। बड़े होनेपर श्रीकर्मचन्दजीने अपना शेष जीवन भगवत्सेवा और भगवद्भक्तिके प्रचारमें बिताया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसारीरामदासजी

श्रीसारीरामदासजी महाराज श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य थे। आप परम वैष्णव सन्त थे और भगवद्धर्मके प्रचारार्थ तथा भगवद् विमुखोंको भक्तिमार्गपर लानेके उद्देश्यसे निरन्तर विचरण करते रहते थे।

श्रीरंगजी

श्रीरंगजी श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी महाराजके प्रधान शिष्योंमें एक थे। गृहस्थाश्रमके समय आपका निवास द्यौसा नामक ग्राममें था, जो तत्कालीन जयपुर राज्यमें आता था। आप वैश्यकुलमें उत्पन्न हुए थे। आपके यहाँ सेवाकार्य करनेके लिये एक नौकर रखा गया था, परंतु वह स्वभावसे बड़ा ही दुष्ट था। कालवश मृत्युको प्राप्तकर वह यमलोक गया। वहाँ उस पापीको यमराजने दूतकार्यमें नियुक्त किया और मृत प्राणियोंके प्राणोंको लानेका कार्य सौंपा। एक बार यमराजने उसे एक बनजारेके प्राणोंका हरण करके लानेको कहा, जो कि उसी द्यौसा ग्रामका रहनेवाला था, जहाँ वह मरनेसे पहले श्रीरंगजीके यहाँ नौकरी करता था। वहाँ आनेपर वह सबसे पहले श्रीरंगजीसे मिलने गया। वे उसे देखते ही चौंक पड़े और बोले—अरे! मैंने सुना कि तू मर गया है, फिर तू यहाँ कैसे आ गया? यमदूतने कहा—मालिक! आपने ठीक ही सुना था, मैं मर चुका हूँ और अब यमदूत बन गया हूँ। यहाँ मैं बनजारेको ले जाने आया हूँ। श्रीरंगजीने कहा—अभी तो वह पूर्ण स्वस्थ है और थोड़ी देर पहले ही मेरे यहाँसे कुछ माल लादकर ले गया है, उसे तुम कैसे ले जाओगे? उसने कहा—मैं उसके बैलकी सींगपर बैठ जाऊँगा, जिससे कालप्रेरित वह बैल सींग मारकर उसका पेट फाड़ देगा। श्रीरंगजीने पूछा—क्या तुमलोग सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करते हो? यमदूत बोला—नहीं, हमलोग केवल पापियोंके साथ ही ऐसा व्यवहार करते हैं, भगवान्‌के भक्तोंकी ओर तो हम देख भी नहीं सकते, अतः मैं आपको भी यह सलाह देने आया हूँ कि जीवनके शेष भागमें आप भगवद्भक्ति कर लें। मैंने आपका नमक खाया है, अतः आपको कष्टमें पड़ते नहीं देखना चाहता हूँ। आपको यदि मेरी बातोंपर विश्वास न हो तो आप मेरे साथ बनजारेके घर चलिये। मैं केवल आपको ही दिखायी दूँगा, दूसरा कोई मुझे नहीं देख सकेगा।

यह कहकर यमदूत बनजारेका प्राण-हरण करनेके उद्देश्यसे उसके घरकी ओर चल दिया। श्रीरंगजी भी उसके पीछे-पीछे चल दिये, वहाँ जाकर श्रीरंगजीने देखा कि बनजारा अपने बैलको खली-भूसा चला रहा है। बैल बार-बार सिर हिला रहा था, जिससे बनजारेको खली-भूसा चलानेमें असुविधा हो रही थी; अतः उसने एक हाथसे बैलको जोरसे हटाया। ठीक उसी समय यमदूत जाकर बैलकी सींगोंपर बैठ गया, फिर तो कालप्रेरित बैलने क्रोधमें भरकर सींगोंसे ऐसा प्रहार किया कि बनजारेका पेट फट गया, उसकी आँतें बाहर निकल आयीं और वह वहीं तुरंत मर गया।

श्रीरंगजीकी आँखोंके सामने घटी इस आश्चर्यमयी घटनाने उनकी आँखें खोल दीं, उन्होंने श्रीअनन्तानन्दजी महाराजके चरण पकड़े और उनके उपदेशानुसार भगवद्भक्ति करने लगे।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

द्यौसा एक गाँव तहाँ श्रीरंग सुनाम हुतो बनिक सरावगी की कथा लै बखानिये।
रहतो गुलाम गयो धर्मराज धाम उहां भयो बड़ो दूत कही सुनु अरे बानिये॥
आये बनिजारे लैन देख तू दिखावै चैन बैल शृङ्ग मध्य पैठि मारे पहिचानिये।
बिनु हरि भक्ति सब जगत की यही रीति भयो हरि भक्त श्रीअनन्त पद ध्यानिये॥ ११७॥

श्रीरंगजीके पुत्रको रातमें भूत दिखायी देता था उसके भयसे वह नित्य सूखता ही चला जाता था। श्रीरंगजीने बालकसे इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि रातमें भयंकर प्रेतके देखनेसे मैं दिन-रात चिन्तित रहता हूँ। तब श्रीरंगजी पुत्रके सोनेके स्थानपर स्वयं सोये। रात होते ही वह प्रेत आया। श्रीरंगजी क्रोध करके उसे मारनेके लिये दौड़े। प्रेतने दैन्यतापूर्वक कहा कि आप कृपा करके मुझे इस पापयोनिसे मुक्त करके सद्गति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदान कीजिये। मैं जातिका सुनार हूँ, परायी स्त्रीसे पाप-सम्बन्धके कारण मैं प्रेत हो गया हूँ। अपने उद्धारका उपाय संसारमें खोजनेके बाद अब आपकी शरण ली है। प्रेतकी आर्तवाणी सुनकर श्रीरंगजीने उसे चरणामृत दिया और उसका अत्यन्त सुन्दर दिव्यरूप कर दिया। इस प्रकार श्रीरंगजीके भक्तिभावका गान किया गया है।

श्रीरंगजीकी महिमा-सम्बन्धी इस घटनाका भक्तमालके टीकाकारने इस प्रकार वर्णन किया है—

सुत को दिखाई देत भूत नित सूख्यो जात पूछें कही बात जाइ वाके ठौर सोयो है।
आयो निशि मारिबेको धायो यह रोष भर्‌यो देवोगति मोकों उन बोलिकै सुनायो है॥
जाति को सोनार परनारि लगि प्रेत भयों लयों तेरी शरण मैं ढूढ़ि जग पायो है।
दियो चरणामृत लै कियो दिव्यरूप वाको अति ही अनूप सुनो भक्तिभाव गायो है॥ ११८॥

पयहारी श्रीकृष्णदासजी

जाके सिर कर धर्‌यो तासु कर तर नहिं अड्ड्यो।
आप्यो पद निर्बान सोक निर्भय करि अड्ड्यो॥
तेजपुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता।
सेवत चरन सरोज राय राना भुवि जेता॥
दाहिमा बंस दिनकर उदय संत कमल हिय सुख दियो।
निर्बेद अवधि कलि कृष्नदास अन परिहरि पय पान कियो॥ ३८॥

इस कराल कलिकालमें पयहारी श्रीकृष्णदासजी वैराग्यकी सीमा हुए। आपने अन्नको त्यागकर केवल दुग्धपान करके भजन किया। इसीलिये आप 'पयहारी' इस नामसे विशेष प्रसिद्ध हुए। आपने शिष्य बनाकर जिसे अपनाया, उससे याचना नहीं की, वरन् उसे भगवत्पद—मोक्षका अधिकारी बना दिया और सांसारिक शोक-मोहसे सदाके लिये छुड़ाकर अभय कर दिया। श्रीपयहारीजी भक्तिमय तेजके समूह थे और आपमें अपार भजनका बल था। बालब्रह्मचारी एवं योगी होनेके कारण आप ऊर्ध्वरेता हो गये थे। भारतवर्षके छोटे-बड़े जितने राजा-महाराजा थे, वे सभी आपके चरणोंकी सेवा करते थे। दधीचिवंशी ब्राह्मणोंके वंशमें उदय (उत्पन्न) होकर आपने भक्तिके प्रतापसे भक्तोंके हृदयकमलोंको सुख दिया॥ ३८॥

यहाँ पयहारी श्रीकृष्णदासजीका जीवन-चरित संक्षेपमें दिया जा रहा है—

जयपुरमें गलता नामक एक प्रसिद्ध स्थान है, जो गालवऋषिका आश्रम माना जाता है। वहाँ वैष्णव सन्तोंकी गद्दी है, जो 'गालता गादी' नामसे प्रसिद्ध है। एक समय वहाँ स्वामी श्रीकृष्णदासजी नामके प्रसिद्ध सन्त थे। इन्होंने आजीवन अन्नके स्थानपर दुग्धका ही आहार किया, जिसके कारण इनकी प्रसिद्धि पयहारी बाबाके नामसे रही।

श्रीपयहारीजी महाराज सिद्ध सन्त थे। एक बार आप विचरण करते हुए कुल्हूकी पहाड़ियोंकी ओर चले गये और वहाँ एक गुफामें बैठकर भगवद्भजन करने लगे। अब उस निर्जन पहाड़ी गुफामें दूध कहाँसे प्राप्त होता? परंतु प्रभु-प्रेरणासे पहाड़ियोंपर चरती हुई एक ग्वालेकी गाय झुंडसे निकलकर उस पहाड़ी गुफाके पास चली आयी और उसके स्तनोंसे पयःस्रवण होने लगा। पयहारी बाबाने इसे ईश्वरकृपा मानकर अपने कमण्डलुमें दूध एकत्र कर लिया और वस्त्रपूतकर पी गये। गाय फिरसे जाकर झुंडमें शामिल हो गयी। अब तो यह नित्यप्रतिका क्रम हो गया। एक दिन ग्वालेने गायको गुफाकी ओर जाते देख लिया तो वह उसके पीछे-पीछे वहाँतक चला गया। वहाँका अद्भुत दृश्य देखकर वह जड़वत् खड़ा रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया, फिर पयहारी बाबाको सिद्ध सन्त समझ उनके चरणोंमें गिर पड़ा और बोला—बाबा! गोमाताकी कृपासे आज मुझे आपके दर्शन हो गये; आप मुझे कोई और सेवा बताइये। श्रीपयहारी बाबा उसकी साधुता और सेवाभावसे बहुत प्रसन्न हुए और बोले—तुम कोई वर माँग लो। ग्वाला बोला—प्रभो! आपकी कृपासे मुझे दूध-पूत सब प्राप्त है; मुझे अब किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं। हाँ, अगर आप कुछ देना ही चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये कि मेरे देशके राजाका राज्य फिरसे उन्हें मिल जाय। बाबा उसकी निःस्पृहता, स्वामिभक्ति और परोपकारिता देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले कि तुम अपने राजाको यहाँ बुला लाना। उन दिनों वहाँके राजा शत्रुओंद्वारा राज्य छीन लिये जाने और प्राण-संकटके कारण एक गुफामें छिपकर रह रहे थे। ग्वालेने वहाँ जाकर उनसे पयहारी बाबाके विषयमें बताया और उन्हें लिवा लाया। राजाने बाबाके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया और अपनी करुणकथा सुनायी। बाबाने राजाको **'विजयी भव'** का आशीर्वाद दिया और कहा कि इस पहाड़ीपर चढ़कर चारों ओर देखो, जहाँतक तुम्हारी दृष्टि जायगी, वहाँतकका राज्य तुम्हारा हो जायगा। राजाने बाबाकी आज्ञाका पालन किया और थोड़े ही दिनोंमें बिना किसी विशेष प्रयासके उनका खोया राज्य पुनः उन्हें प्राप्त हो गया। राज्य-प्राप्तिके बाद राजाने अपने सम्पूर्ण राज्यमें सन्त-सेवा और भगवद्भजनका आदेश लागू कर दिया। इस प्रकार श्रीपयहारी बाबाकी कृपासे कुल्हू राज्यके लोग भगवद्भक्त हो गये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने श्रीपयहारीजीके सम्बन्धमें कई रोचक घटनाओंका वर्णन इस प्रकार किया है—

जाके सिर कर धर्‌यो तातर न ओड्यो हाथ दीनो बड़ोबर राजा कुल्हू को जु साखिये।
परबत कन्दरामें दरशन दीयो आनि दियो भाव साधु हरि सेवा अभिलाखिये॥
गिरी जो जिलेबी थार मांझते उठाई बाल भयो हिये शाल बिन अरपित चाखिये।
लै करि खड़ग ताहि मारन उपाय कियो जियो सन्त ओट फिर मोल करि राखिये॥ ११९॥
नृप सुत भक्त बड़ो अब लौं विराजमान साधु सनमान में न दूसरो बखानिये।
संत बधू गर्भ देखि उभै पनवारे दिये कही अर्भ इष्ट मेरो ऐसी उर आनिये॥
कोऊ भेषधारी सो व्योपारी पग दासिनको कही कृपा करो कहा जानैं और प्रानिये।
ऐपै तजि देवो क्रिया देखि जग बुरो होत जोति बहु दई दाम राम मति सानिये॥ १२०॥

पयहारी श्रीकृष्णदासजीने जिस किसीके सिरपर हाथ रखा, उसके हाथके नीचे अपना हाथ नहीं फैलाया, अपितु उसे बड़ा भारी-भक्तिका वरदान अवश्य दिया। कुल्हू देशका राजा इस बातका प्रमाण है। इसको आपने पर्वतकी कन्दरामें जाकर दर्शन दिया और आपकी कृपासे उसे राज्य भी प्राप्त हुआ। राजाको आपने ऐसा प्रेमभाव दिया कि उसे सन्त-भगवन्तकी सेवा करनेकी अभिलाषा बनी रहती थी। एक बार पुजारी मन्दिरमें भगवान्‌का भोग लगानेके लिये जलेबियोंके थाल ले जा रहे थे, उसमेंसे एक जलेबी गिर गयी। राजाका छोटा-सा बालक उसे उठाकर खा गया। यह देखकर राजाके मनमें बड़ा भारी दुःख हुआ कि बिना भोग लगे ही इसने खा लिया, तुरंत हाथमें तलवार लेकर उसे मार डालनेके लिये उठा, परंतु समीपमें उपस्थित सन्तोंने उसे बचा लिया और राजासे कहा कि अब तो यह बालक हमारा हो गया। यदि आपको लेना है तो मूल्य देकर आप इसे रख लीजिये॥ ११९॥

श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि कुल्हूके राजाका यह पुत्र मेरे इस टीकाके लिखनेके समयतक विराजमान है, वह बड़ा भारी भगवद्भक्त है, साधुओंकी सेवा तथा उनका सम्मान करनेमें उसके समान दूसरा कोई नहीं है। एक बार अपने भण्डारेकी पंक्तिमें एक सन्तकी पत्नीको गर्भवती देखकर राजपुत्रने दो पत्तलें दीं और कहा कि गर्भस्थ बालक भक्त है और वह मेरा इष्टदेव है, मैं ऐसा मनमें मानता हूँ। इसीलिये दूसरा पत्तल दे रहा हूँ। कोई वैष्णव वेषधारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य जूतियोंको बेचता और गाँठता था, उसे देखकर राजपुत्रको बड़ी दया आयी और उसने उससे कहा— भगवन्! आप दूसरे लोगोंको सन्त मानकर उनकी जूतियोंकी सेवा करते हैं, पर आपके इस गुप्त भावको तुच्छ प्राणी क्या जानें। इसलिये आप इस जूती-सेवा-कार्यको छोड़ दीजिये। इस वेषको धारणकर और इस कार्यको देखकर लोगोंके मनमें कुभाव होता है। ऐसा कहकर उसे वैष्णव-सेवा एवं स्वनिर्वाहके लिये बहुत-सी खेती करनेयोग्य भूमि और धन दिया, साथ ही उसे ज्ञान-प्रकाश भी दिया, उसकी बुद्धि राममें रम गयी॥ १२०॥

श्रीपयहारीजीके शिष्यगण

कील्ह अगर केवल्ल चरन ब्रत हठी नरायन।
सूरज पुरुषा पृथू तिपुर हरि भक्ति परायन॥
पद्मनाभ गोपाल टेक टीला गदाधारी।
देवा हेम कल्यान गंग गंगासम नारी॥
बिष्णुदास कन्हर रँगा चाँदन सबिरि गोबिंद पर।
पैहारी परसाद तें सिष्य सबै भए पार कर॥ ३९॥

पयहारी श्रीकृष्णदासजीकी कृपासे उनके सभी शिष्य जीवोंको भवसागरसे पार करनेवाले हुए— श्रीकील्हदेवजी, स्वामी श्रीअग्रदेवजी, केवलदासजी, चरणदासजी, हठीनारायणजी, सूरजदासजी, पुरुषाजी (पुरुषोत्तमदास), पृथुदासजी, त्रिपुरदासजी—ये हरिभक्तिमें रत थे। पद्मनाथजी, गोपालदासजी, टेकरामजी, टीलाजी, गदाधारी (गदाधरदासजी), देवापण्डाजी, हेमदासजी, कल्याणदासजी, गंगाजीके समान गंगाबाई, विष्णुदासजी, कान्हरदासजी, रंगारामजी, चाँदनजी और सबीरीजी ये सभी भक्त गोविन्दपरायण थे॥ ३९॥

श्रीपयहारीजी महाराजके इन शिष्योंमेंसे कुछका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीकील्हदेवजी

परम भागवत सिद्ध सन्त श्रीकील्हदेवजी श्रीपयहारीजी महाराजके प्रधान शिष्य और भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारके अनन्य भक्त थे। आपका पावन चरित आगे छप्पय ४० पृ० १७८ पर दिया गया है।

श्रीअग्रदेवजी (श्रीअग्रदासजी)

श्रीअग्रदासजी श्रीरामोपासनामें शृंगाररसके आचार्य माने गये हैं। रसिक-महानुभावोंने आपको श्रीजानकीजीकी प्रिय सखी श्रीचन्द्रकलाजीका अवतार कहा है। इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण आगे छप्पय ४१ पृ० १८० पर दिया गया है।

श्रीचरणदासजी

श्रीचरणदासजी महाराज बड़े ही सन्तसेवी थे। बिना किसी भेद-भावके सन्तमात्रका धूप-दीप-नैवेद्यादिसे विधिवत् पूजन करते थे तथा सन्तोंकी सीथ-प्रसादी पाते थे। एक बार एक पंगु-सन्त आश्रममें आये। इनको पूजा करनेके लिये प्रस्तुत देखकर वे पंगु-सन्त बहुत संकुचित हुए और इन्हें निषेध किया, परंतु अपनी निष्ठाके पक्के श्रीचरणदासजीने अपने नित्यके नियमानुसार विधिपूर्वक उनका पादप्रक्षालनादि करके पूजन किया। सन्तके सद्भाव, भगवत्कृपा और श्रीचरणदासजीके स्पर्श करते ही उन पंगु-सन्तका पंगुपन दूर हो गया। फिर तो उन्होंने पैदल चलकर सभी तीर्थोंकी यात्रा की। सन्त-समाजमें इनका बड़ा सुयश था।

श्रीहठीनारायणदासजी

सन्त श्रीहठीनारायणदासजीका बचपनका नाम नारायण था, इन्होंने अपने गुरुदेव पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके दर्शनके लिये हठ किया था, इसीलिये इनकी निष्ठा देखकर श्रीगुरुदेवने इनका नाम हठीनारायणदास रख दिया। श्रीहठीनारायणदासजीका जन्म माघ मासकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौनी अमावस्याको सं० १६०४ वि० में ग्राम ईंगरी जिला इटावा (उ०प्र०)-में हुआ था। आपके पिताका नाम पं० श्रीजयनारायण चतुर्वेदी और माताका नाम गंगादेवी था। कहते हैं कि आपके माता-पिताको कोई संतान नहीं थी, तब उन्होंने बदरिकाश्रम जाकर कठोर तप किया, जिसके फलस्वरूप साक्षात् भगवान् बदरीनारायणकी कृपासे आपका जन्म हुआ।

श्रीसूरजदासजी

श्रीसूरजदासजी परम वैष्णव और सिद्ध सन्त थे, आपकी श्रीसीतारामजीमें अखण्ड निष्ठा थी। आपका यह दृढ़ नियम था कि सूर्यमण्डलमध्यस्थ श्रीसीतारामजीका बिना दर्शन किये आप अन्न-जलका ग्रहण नहीं करते थे। एक बारकी बात है, भादोंका महीना था; आकाशमें काले-काले बादल चारों ओर छाये हुए थे, भगवान् सूर्यदेवका कहीं अता-पता नहीं था। सूरजदासजी सन्तोंकी टोली लिये हुए तीर्थयात्रापर निकले थे। आज उनके सामने अद्भुत धर्मसंकट खड़ा हो गया था—एक तरफ अपने आश्रित सन्तमण्डलीका आतिथ्य करना था, दूसरी ओर अपनी नियम-निष्ठा निबाहना था। आखिर वे स्वयं तो भूखे रह सकते थे, पर सन्तोंको तो भूखा रख नहीं सकते थे।

सेवकका बल तो स्वामी ही होते हैं, भक्तके योग-क्षेमका निर्वहण तो उसके आराध्यको ही करना होता है, फिर जब श्रीसीतारामजी-जैसे आराध्य, स्वामी और इष्टदेव हों तो सूरजदासजीको सूरजके दर्शनके लिये कैसी चिन्ता! श्रीसूरजदासजीने भक्तिभावपूर्वक पूजनका थाल तैयार किया। लोगोंको आश्चर्य था कि सूर्य-भगवान्‌का तो कहीं अता-पता नहीं है, फिर ये किसके पूजनके लिये थाल तैयार कर रहे हैं; पर उन्हें क्या मालूम कि सूरजदासजी-जैसे अनन्य प्रभुभक्त सन्तकी नियम-निष्ठाकी अवहेलना करनेकी सामर्थ्य साक्षात् सूर्यदेवमें भी नहीं होती।

समस्त सामग्री यथास्थान रखकर श्रीसूरजदासजीने पूजा प्रारम्भ की, फिर सूर्यदेवका दर्शन करनेके लिये जैसे ही दृष्टि ऊपर गगनमण्डलकी ओर उठायी कि मेघाच्छन्न आकाश अनन्तप्रकाशराशिसे परिपूरित हो उठा, भगवान् भास्कर कुहरावरणका विदारण करते हुए प्रकट हो गये। अनन्य श्रद्धाभावसे सूरजदासजीने उस सूर्यमण्डलके मध्यमें अपने आराध्य श्रीसीतारामजीके दर्शन किये। सन्त-मण्डली भक्त और भगवान्‌की जय-जयकार करने लगी। भक्तका प्रेम और भगवान्‌की कृपा देख सबलोग धन्य हो गये।

श्रीटीलाजी

श्रीटीलाजी महाराजका जन्म ज्येष्ठ शुक्ल १०, सं० १५१५ वि० को राजस्थानके किशनगढ़ राज्यान्तर्गत सलेमाबादमें हुआ था। आपके पिता श्रीहरिरामजी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पण्डित और माता श्रीमती शीलादेवी साधु-सन्तसेवी सद्गृहिणी थीं। कहते हैं कि आपके माता-पिताको बहुत समयतक कोई संतान नहीं थी, बादमें आबूराजनिवासी एक सिद्ध सन्तके आशीर्वादसे आपका जन्म हुआ था। सन्तकृपा, तीर्थक्षेत्रका प्रभाव, पूर्वजन्मके संस्कारों और माता-पिताकी भगवद्भक्तिके सम्मिलित प्रभावसे बालक टीलाजीमें बचपनसे ही भक्तिके दिव्य संस्कार उत्पन्न हो गये थे, जो आयु और शास्त्रानुशीलनके साथ-साथ बढ़ते ही रहे। बचपनमें ही आप किसी ऊँचे टीलेपर चढ़कर बैठ जाते और किसी सिद्ध सन्तकी भाँति समाधिस्थ हो जाते, आपकी इस प्रवृत्तिको देखकर ही लोगोंने आपका टीलाजी नाम रख दिया।

एक बारकी बात है, आपके पिताजीने आपको बालक ध्रुवकी कथा सुनायी; फिर क्या था, बालक टीलाने भी तपस्या करके भगवान्‌का दर्शन करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। बालक टीलाकी भक्ति और दृढ़ता देखकर माता-पिताने भी तपस्याकी अनुमति दे दी। कहते हैं कि आपको तपके लिये उद्यत देखकर श्रीहनुमान्‌जीने मथुरास्थित श्रीध्रुवटीलापर तपस्या करनेका सुझाव दिया। उस सिद्ध स्थानपर तपस्या करनेसे बालक टीलाको शीघ्र ही श्रीभगवान्‌के दर्शन प्राप्त हो गये।

श्रीपयहारीजी महाराजने उन्हें उपासनाका रहस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझाया और वैष्णव-मन्त्रकी दीक्षा देकर उनका नाम श्रीसाकेतनिवासाचार्य रख दिया। श्रीसाकेतनिवासाचार्यजीने बहुत दिनोंतक गलतागादी (जयपुर)-में रहते हुए श्रीपयहारीजी महाराजकी सेवा की, फिर उनकी आज्ञा लेकर भारतके सम्पूर्ण तीर्थोंका परिभ्रमण एवं भगवद्भक्तिका प्रचार किया।

श्रीगंगादेवीजी

स्वामी रामानन्दजी महाराजने कलिमलग्रसित जीवोंके कल्याणके लिये जो सम्प्रदाय चलाया, उसमें दीक्षित होनेका सबको अधिकार था। उनके सम्प्रदायमें वर्ण-लिंगसम्बन्धी कोई भेद नहीं था। इस सम्प्रदायमें जहाँ चारों वर्णोंको दीक्षा प्राप्त हुई, वहीं पुरुषोंके साथ-साथ स्त्रियाँ भी दीक्षित हुईं। जैसे श्रीपद्मावतीजी श्रीरामानन्दाचार्यजीकी शिष्या थीं, उसी प्रकार श्रीपयहारी श्रीकृष्णदासजीकी शिष्या थीं गंगादेवी। श्रीगंगादेवी परम भगवद्भक्ता थीं, भगवत्प्रसाद और चरणामृतमें इनकी बड़ी निष्ठा थी।

श्रीरंगदासजी (श्रीरंगारामजी)

श्रीरंगदासजी महाराज श्रीपयहारीजीके प्रधान शिष्य थे। आपकी श्रीगुरुचरणकमलोंमें बड़ी ही निष्ठा थी। यहाँतक कि आप सिंहासनपर गुरुपादुका रखकर उसका ही पूजन करते थे। आप परम वैष्णव सन्त थे और अकिंचनवृत्तिसे रहते थे।

श्रीकील्हदेवजी

राम चरन चिंतवनि रहति निसि दिन लौ लागी।
सर्ब भूत सिर नमित सूर भजनानँद भागी॥
सांख्य जोग मत सुदृढ़ किए अनुभव हस्तामल।
ब्रह्मरंध्र करि गौन गए हरि तन करनी बल॥
सुमेरदेव सुत जग बिदित भू बिस्तार्‌यो बिमल जस।
गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं त्यों कील्ह करन नहिं काल बस॥ ४०॥

जिस प्रकार गंगाजीके पुत्र श्रीभीष्म पितामहजीको मृत्युने नष्ट नहीं किया, उसी प्रकार स्वामी श्रीकील्हदेवजी भी साधारण जीवोंकी तरह मृत्युके वशमें नहीं हुए, बल्कि उन्होंने अपनी इच्छासे प्राणोंका त्याग किया। कारण कि आपकी चित्तवृत्ति दिन-रात श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंका ध्यान करनेमें लगी रहती थी। आप मायाके षड्विकारोंपर विजय प्राप्त करनेवाले महान् शूरवीर थे। सदा भगवद्भजनके आनन्दमें मग्न रहते थे। सभी प्राणी आपको देखते ही नतमस्तक हो जाते थे और आप सभी प्राणियोंमें अपने इष्टदेवको देखकर उन्हें सिर झुकाते थे। सांख्यशास्त्र तथा योगका आपको सुदृढ़ ज्ञान था और योगकी क्रियाओंका आपको इतना सुन्दर अनुभव था कि जैसे हाथमें रखे आँवलेका होता है। ब्रह्मरन्ध्रके मार्गसे प्राणोंको निकालकर आपने शरीरका त्याग किया और अपने योगाभ्यासके बलसे भगवद्रूप पार्षदत्व प्राप्त किया। इस प्रकार श्रीसुमेरुदेवजीके सुपुत्र श्रीकील्हदेवजीने अपने पवित्र यशको पृथ्वीपर फैलाया, आप विश्वविख्यात सन्त हुए॥ ४०॥

श्रीकील्हदेवजी महाराजका जीवन-चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीकील्हदेवजी महाराज श्रीपयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। श्रीपयहारीजीके परमधामगमनके बाद गलतागादी (जयपुर)-के महन्त आप ही हुए। आप दिव्यदृष्टिसम्पन्न परम वैष्णव सिद्ध सन्त थे। कहते हैं कि भक्तमाल ग्रन्थके रचनाकार श्रीनाभादासजी महाराजके नेत्र क्या, नेत्रके चिह्न भी नहीं थे, श्रीकील्हदेवजीने अपने कमण्डलुके जलसे उनके नेत्र-स्थानको धुला, जिससे उनके बाह्य चक्षु प्रकट हो गये।

कहते हैं कि एक बार श्रीकील्हदेवजी मथुरापुरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये हुए थे और श्रीयमुनाजीमें स्नानकर एकान्तमें समाधिस्थ हो भगवद्ध्यान करने लगे। उसी समय बादशाहके दिल्लीसे मथुरा-आगमनकी सूचना मिली। सेना तुरंत व्यवस्थामें लग गयी, रास्ता साफ किया जाने लगा, सब लोग तो हट गये, परंतु ध्यानावस्थित होनेके कारण श्रीकील्हदेवजी महाराजको बाह्य जगत्की कुछ खबर ही नहीं थी; वे समाधिमें स्थिर होकर बैठे थे। किसी सिपाहीने जाकर बादशाहको बताया कि हुजूर! एक हिन्दू फकीर रास्तेमें बैठा है और हमारे शोर मचानेपर भी नहीं उठ रहा है। उसने फौरन हुक्म दिया कि उस काफिरके माथेमें लोहेकी कील ठोंक दो। हुक्म मिलते ही दुष्ट सिपाहियोंने लोहेकी एक कील लेकर कील्हजीके माथेमें ठोंकना शुरू किया। परंतु आश्चर्य! कील्हदेवजी तो वैसे ही शान्त, निर्विकार बने रहे, परंतु उनके माथेका स्पर्श करते ही वह लोहेकी कील गलकर पानी हो गयी! यह आश्चर्य देख सिपाही भागकर बादशाहके पास गये। बादशाहको भी यह विचित्र घटना सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उसे लगा कि मैंने बादशाहतके नशेमें चूर होकर किसी सिद्ध सन्तका अपमान कर दिया है और इसका दण्ड भी भोगना पड़ सकता है, अतः भागता हुआ जाकर श्रीकील्हदेवजी महाराजके चरणोंमें गिर पड़ा और बार-बार क्षमा माँगने लगा। थोड़ी देर बाद जब कील्हदेवजीकी समाधि टूटी और वे अन्तःजगत्से बाह्य जगत्में आये तो उन्हें इस घटनाका ज्ञान हुआ। श्रीकील्हदेवजी महाराज तो परम सन्त थे, उनके मनमें क्रोधके लिये कहीं स्थान ही नहीं था, उन्होंने बादशाहको तुरंत क्षमा कर दिया।

बादशाह यद्यपि श्रीकील्हदेवजी महाराजसे प्रभावित तो बहुत हुआ, परंतु मुसलमान मुल्ला-मौलवियोंके निरन्तर सम्पर्कमें रहनेसे उसने हिन्दुओंका धर्म परिवर्तनकर उन्हें मुसलमान बनानेका अभियान चला रखा था। अब हिन्दुओंने मिलकर श्रीकील्हजीकी शरण ली और धर्मरक्षा करनेकी प्रार्थना की। श्रीकील्हदेवजीने सबको आश्वासन दिया और स्वयं बादशाहके दरबारमें गये। बादशाहने श्रीकील्हदेवजीके चरणोंमें प्रणाम किया और आगेसे ऐसा न करनेकी शपथ ली।

श्रीकील्हदेवजी महाराज दिव्यदृष्टिसम्पन्न थे, जिस समय आपके पिता श्रीसुमेरुदेवजीका भगवद्धामगमन हुआ, उस समय आप श्रीमथुराजीमें विराजमान थे और आपके समीप ही राजा मानसिंह बैठे थे। आपने जब आकाशमार्गसे विमानस्थ पिताजीको भगवद्धाम जाते देखा तो उठकर प्रणाम किया और पिताने भी इन्हें आशीर्वाद दिया। इनके अतिरिक्त अन्य किसीको इनके पिता नहीं दिखायी दिये, इसीलिये राजा मानसिंहको बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने श्रीकील्हजीसे पूछा कि प्रभो! आप क्यों उठे और हाथ जोड़कर किसे प्रणाम किया? श्रीकील्हजीने उन्हें पिताजीके परमधामगमनकी बात बतायी। मानसिंहको बहुत आश्चर्य हुआ; क्योंकि श्रीकील्हदेवजीके पिताजीका शरीर छूटा था गुजरातमें और श्रीकील्हदेवजी थे मथुरामें—ऐसेमें श्रीकील्हदेवजीको पिताका दर्शन कैसे हुआ, यह मानसिंहके लिये आश्चर्यकी बात थी। उन्होंने तुरंत ही अपने दूतोंको गुजरात भेजकर सत्यताकी जानकारी की। श्रीकील्हदेवजीकी बात अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई, इससे राजा मानसिंहकी इनपर बहुत ही श्रद्धा हो गयी।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीसुमेर देव पिता सूबे गुजरात हुते भयो तनुपात सो विमान चढ़ि चले हैं।
बैठे मधुपुरी कील्ह मानसिंह राजा ढिंग देखे नभ जात उठि कही भले भले हैं॥
पूछे नृप बोले कासों? कैसे कै प्रकासों, कहौ, कह्यौ हठ परे सुनि अचरज रले हैं।
मानुस पठाये सुधि ल्याए सांच आंच लागी कारी साष्टाङ्ग बात मानी भाग फले हैं॥ १२१॥

उनके संतत्वकी एक दूसरी घटना इस प्रकार है— एक बारकी बात है, आप अपने आराध्य प्रभु श्रीसीतारामजी महाराजकी सेवा कर रहे थे। आपने माला निकालनेके लिये पिटारीमें जैसे ही हाथ डाला, वैसे ही उसमें बैठे एक विषधर सर्पने आपके हाथमें काट लिया। करुणाविग्रह आपने उस अपकारी सर्पपर भी दया की और उसे भूखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानकर पुनः अपना हाथ पिटारीमें डाल दिया। इस प्रकार आपने तीन बार पिटारीमें हाथ डाला और सर्पने तीन बार काटा, चौथी बार वह स्वयं पिटारीसे बाहर चला गया। इस प्रकार आपने सर्पको भी अतिथि मानकर उसका सत्कार किया और उसकी क्षुधापूर्ति की। श्रीरामकृपासे उस विषधरके विषका आपपर कोई प्रभाव भी नहीं हुआ। सत्य है, जब भजनके प्रभावसे काल-व्यालका विष नहीं व्यापता तो लौकिक व्यालका विष क्या व्यापेगा!

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

ऐसे प्रभु लीन नहिं कालके अधीन बात सुनिये नवीन चाहैं रामसेवा कीजिये।
धरी ही पिटारी फूलमाला हाथ डार्‌यो तहाँ व्यालकर काट्यो कह्यो फेरि काटि लीजिये॥
ऐसे ही कटायो बार तीनि हुलसायो हियो कियो न प्रभाव नेकु सदा रस पीजिये।
करिकैं समाज साधु मध्य यौं विराज प्रान तजे दशैं द्वार योगी थके सुनि जीजिये॥ १२२॥

श्रीकील्हदेवजी महाराज सिद्ध सन्त थे, भविष्यकी बातें जान लेनेकी उनमें सामर्थ्य थी। जब उन्हें भगवद्धाम जाना हुआ तो पहलेसे ही सन्तोंके पास इस आशयका सन्देश भेज दिया और सन्तोंसे संकीर्तन करनेको कहा। संकीर्तन सुनते हुए ही आपने ब्रह्मरन्ध्रसे अपने प्राणोंका उत्क्रमण किया।

श्रीअग्रदासजी

सदाचार ज्यों संत प्रात जैसे करि आए।
सेवा सुमिरन सावधान (चरन) राघव चित लाए॥
प्रसिध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरंतर।
रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर॥
(श्री) कृष्णदास कृपा करि भक्ति दत मन बच क्रम करि अटल दयो।
(श्री) अग्रदास हरि भजन बिन काल बृथा नहिं बित्तयो॥ ४१॥

श्रीस्वामी अग्रदासजीने भगवद्भजनके बिना क्षणमात्र भी समयको व्यर्थ नहीं बिताया। आपका वैष्णव सदाचार पूर्ववर्ती आचार्योंके समान ही था। आप सदा मानसी सेवा एवं प्रकट विग्रहसेवामें तथा भगवन्नामस्मरणमें सावधान रहते थे। सदा राघवेन्द्रसरकारके श्रीचरणोंमें मनको लगाये रहते थे। (सीताराम-विहार) प्रसिद्ध बागमें आपकी बड़ी प्रीति थी, उसे सींचने, बुहारने आदिकी सब सेवाएँ सदा अपने हाथसे ही करते थे। आपकी जिह्वासे परम पवित्र श्रीसीताराम नामकी ध्वनि इस प्रकार होती रहती थी, मानो मधुर गर्जनके साथ मन्द-मन्द वर्षा हो रही है। गुरुदेव पयहारी श्रीकृष्णदासजीने परमकृपा करके मन-वचन-कर्मसे सम्बन्धित अचल भक्तिका भाव आपको प्रदान किया था॥ ४१॥

श्रीनाभादासजीके गुरुमहाराज श्रीअग्रदासजीका चरित संक्षेपमें यहाँ प्रस्तुत है—

महात्मा श्रीअग्रदासजी श्रीकृष्णदास पयहारीजी महाराजके शिष्य थे, श्रीगुरुदेवके परमधामगमनके बाद अग्रदासजीने जयपुरके पास ही लगभग ३० मील दूर गोरयाँ स्टेशनके निकट रैवासा नामक स्थानपर गद्दी स्थापित की।

श्रीअग्रदासजीका प्रादुर्भाव फाल्गुन शु० २, सं० १५५३ वि० को राजस्थानके एक गाँवमें ब्राह्मणकुलमें हुआ था। इनमें भक्तिके संस्कार बचपनसे ही विद्यमान थे, अतः अत्यन्त अल्पवयमें ही आपने घर छोड़कर श्रीपयहारीजी महाराजकी शरण ग्रहण कर ली। श्रीपयहारीजीने इन्हें योग्य जानकर श्रीराम-मन्त्रकी दीक्षा दी और उपासना-रहस्य एवं शरणागति-माहात्म्यका उपदेश दिया।

भक्तमालके रचनाकार परमभागवत श्रीनाभादासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज श्रीअग्रदासजीके कृपापात्र थे और श्रीकील्हदेवजी महाराजके प्रति आपका अग्रजका भाव था। भगवती जगज्जननी जनकलली जानकीजीकी प्रिय सखी चन्द्रकलाके आप अवतार माने जाते हैं, अग्रअलीके नामसे आपने मधुररसोपासना और मधुर भावकी भक्ति की। अपने रेवासा आश्रमके पास ही आपने श्रीरामबाग और श्रीसियमनरंजिनीवाटिकाका निर्माण किया। रेवासा गाँवके लोगोंको पीनेके लिये जलकी समस्या थी, आपने अपना चिमटा गाड़कर पृथ्वीसे जलस्रोत प्रकट कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने आपकी महिमा निम्न कवित्तमें प्रकट की है—

दरशन काज महाराज मानसिंह आयो छायो बाग मांझ बैठे द्वार द्वारपाल हैं।
झारि कै पतौवा गये बाहिर लै डारिबे को देखी भीर भार रहे बैठि ये रसाल हैं॥
आये देखि नाभाजू ने उठि साष्टांग करी ठाढ़े भरी जल आँखें चली अँसुवनि जाल हैं।
राजा मग चाहि हारि आनिकै निहारि नैन जानी आप जानी भये दासनि दयाल हैं॥ १२३॥

एक बारकी बात है—जयपुरके राजा मानसिंह स्वामी श्रीअग्रदेवजीके दर्शन करनेके लिये आये। उस समय स्वामीजी बागमें ही थे। बागके द्वारपर राजाके द्वारपाल बैठ गये। अन्य कुछ व्यक्तियोंके साथ राजा बागके भीतर गये। इसी बीच स्वामीजी बागके सूखे पत्तोंको झाड़कर बाहर फेंकने गये। राजाके साथ आयी हुई भीड़भाड़को देखकर स्वामीजी लौटकर नहीं आये। बाहर ही बैठ गये और माधुर्यरसरूप श्रीस्वामीजी मधुर ध्यान-रसमें लीन हो गये। स्वामीजीको आया देखकर श्रीनाभाजी स्वामीजीके निकट आये और उन्होंने उनके प्रेममग्न स्वरूपका दर्शन करके उनको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीनाभाजीकी आँखें तर हो आयीं और नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। राजाने बागमें देरतक बाट देखी, फिर उससे न रहा गया, हारकर वह भी वहीं आ गया और उसने स्वामीजीके दर्शन करके यह जाना कि श्रीरामचन्द्रजीने ही दासोंपर दया की है, वे ही श्रीअग्रदेवजीके रूपमें सामने विराजमान हैं॥ १२३॥

श्रीशंकराचार्यजी

उतसृंखल अग्यान जिते अनईस्वरबादी।
बुद्ध कुतर्की जैन और पाखंडहि आदी॥
बिमुखनि को दियो दंड ऐंचि सन्मारग आने।
सदाचार की सींव बिस्व कीरतिहि बखाने॥
ईस्वरांस अवतार महि मरजादा माँड़ी अघट।
कलिजुग धर्मपालक प्रगट आचारज संकर सुभट॥ ४२॥

अधर्मप्रधान कलियुगमें वैदिक धर्मके रक्षक श्रीशंकराचार्यजीका अवतार हुआ। आप विधर्मियोंको शास्त्रार्थमें परास्त करनेवाले वाक्-वीर थे। वैदिक मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले उद्दण्ड, ईश्वरको न माननेवाले बौद्ध, शास्त्रविरुद्ध तर्क करनेवाले जैनी और पाखण्डी आदि जो लोग भगवान्से विमुख थे, उन्हें आपने दण्ड दिया। भय दिखाकर शास्त्रार्थमें हराकर उन्हें बलात् खींचकर सनातन धर्मके मार्गपर ले आये। आप सदाचारकी सीमा अर्थात् बड़े सदाचारी थे। सारा संसार आपकी कीर्तिका वर्णन करता है। आप भगवान् शंकरके अंशावतार थे। पृथ्वीपर प्रकट होकर आपने वेदशास्त्रकी सम्पूर्ण मर्यादाओंका इस प्रकार समर्थन और स्थापन किया कि उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं रही। वह अचल हो गयी॥ ४२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ श्रीशंकराचार्यजीका महिमामय चरित संक्षेपमें वर्णित है—

केरल प्रदेशके पूर्णा नदीके तटवर्ती कलान्दी नामक गाँवमें बड़े विद्वान् और धर्मनिष्ठ ब्राह्मण श्रीशिवगुरुकी धर्मपत्नी श्रीसुभद्रा माताके गर्भसे वैशाख शुक्ल पंचमीके दिन शंकरावतार भगवान् श्रीशंकराचार्यने जन्म ग्रहण किया था। मठोंकी परम्पराके अनुसार इनका जन्मसमय ईसासे ४०० वर्ष पूर्वका है।

दिव्य प्रतिभासम्पन्न आपने केवल सात वर्षकी अवस्थामें ही वेद, वेदान्त और वेदांगोंका पूर्ण अध्ययन कर लिया। आपकी असाधारण प्रतिभा देखकर गुरुजन आश्चर्यचकित रह गये।

गुरुकुलनिवासकालकी बात है, बालक शंकर भिक्षाटन करते हुए एक निर्धन ब्राह्मणीके घर गये। उस बेचारीके घर अन्नका एक दाना भी नहीं था। कहींसे उसे एक आँवलेका फल मिला था, उसीको उसने ब्रह्मचारी शंकरको दिया और घरमें कुछ न होनेके कारण अन्न देनेमें अपनी असमर्थता व्यक्त की। उस ब्राह्मणीकी दशा देखकर बालक शंकरका मन करुणासे भर गया और इन्होंने 'कनकधारास्तोत्र' का प्रणयनकर उसीसे भगवती महालक्ष्मीकी स्तुति की। भगवती महालक्ष्मीने प्रसन्न होकर ब्राह्मणीके घरको सोनेके आँवलोंसे भर दिया।

विद्याध्ययन समाप्तकर शंकरने संन्यास लेना चाहा; परंतु जब उन्होंने मातासे आज्ञा माँगी, तब उन्होंने मना कर दिया। शंकर माताके बड़े भक्त थे, उन्हें कष्ट देकर संन्यास लेना नहीं चाहते थे। एक दिन माताके साथ वे नदीमें स्नान करने गये। उन्हें एक मगरने पकड़ लिया। इस प्रकार पुत्रको संकटमें देखकर माताके होश उड़ गये। वह बेचैन होकर हाहाकार मचाने लगी। शंकरने मातासे कहा—'मुझे संन्यास लेनेकी आज्ञा दे दो तो मगर मुझे छोड़ देगा।' माताने तुरंत आज्ञा दे दी और मगरने शंकरको छोड़ दिया। इस तरह माताकी आज्ञा प्राप्तकर वे आठ वर्षकी उम्रमें ही घरसे निकल पड़े। जाते समय माताकी इच्छाके अनुसार यह वचन देते गये कि 'तुम्हारी मृत्युके समय मैं घरपर उपस्थित रहूँगा।'

घरसे चलकर शंकर नर्मदा-तटपर आये और वहाँ स्वामी गोविन्द भगवत्पादसे दीक्षा ली। गुरुने इनका नाम भगवत्पूज्यपादाचार्य रखा। इन्होंने गुरूपदिष्ट मार्गसे साधना आरम्भ कर दी और अल्पकालमें ही बहुत बड़े योगसिद्ध महात्मा हो गये। इनकी सिद्धिसे प्रसन्न होकर गुरुने इन्हें काशी जाकर वेदान्तसूत्रका भाष्य लिखनेकी आज्ञा दी और तदनुसार ये काशी चले गये। काशीमें वासके समय आपको भगवान् विश्वनाथने चाण्डालरूपमें दर्शन दिये और अद्वैततत्त्वका बोध कराया तथा ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखनेकी प्रेरणा की। उसके पूरा होनेपर श्रीव्यासजीने प्रकट होकर आपको दर्शन दिया और आपके वेदान्तभाष्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इसके बाद आपने काशी, कुरुक्षेत्र, बदरिकाश्रम आदिकी यात्रा की, विभिन्न मतवादियोंको परास्त किया और बहुत-से ग्रन्थ लिखे। प्रयाग आकर कुमारिलभट्टसे उनके अन्तिम समयमें भेंट की और उनकी सलाहसे माहिष्मतीमें मण्डनमिश्रके पास जाकर शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थमें मण्डनकी पत्नी भारती मध्यस्था थीं। शास्त्रार्थमें शंकराचार्यजीने मिश्रजीको हरा दिया, तब भारतीने कहा मुझ अर्धांगिनीको हराये बिना आप विजयी नहीं हो सकते। तब आपने भारतीसे शास्त्रार्थ किया। उसने रतिशास्त्र-सम्बन्धी प्रश्न किये, उनके उत्तरके लिये इन्होंने छः मासका समय माँगा और अपने शिष्योंसे कहा कि मैं मृत राजा अमरुकके शरीरमें प्रवेशकर शृंगार रसका अध्ययन करूँगा। तबतक मेरे भौतिक शरीरकी रक्षा करना। यदि वहाँसे वापस लौटनेमें मुझे विलम्ब हो जाय तो मेरे पास आकर मुझे मोहमुद्गरके श्लोक सुनाना। उस राजा अमरुकके मृत शरीरमें प्रवेशकर शंकराचार्यजीने रतिशास्त्रका अध्ययन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। तत्पश्चात् उनके शिष्योंने मोहमुद्गरके श्लोक उन्हें सुनाये और वे राजा अमरुकका शरीर छोड़कर पुनः अपने शरीरमें आ गये तथा भारतीके प्रश्नोंका उत्तर दे उसे निरुत्तर किया। अन्तमें मण्डनमिश्रने शंकराचार्यका शिष्यत्व ग्रहण किया और उनका नाम सुरेश्वराचार्य पड़ा। इससे आपकी ख्याति बहुत फैल गयी।

एक बारकी बात है शास्त्रार्थमें आपने सेवड़ों (प्रतिपक्षियों)-को परास्त किया, पराजित सेवड़ा लोग अपने राजाके पास पहुँचे। राजाने सेवड़ोंकी बात नहीं मानी, तब सेवड़ोंको यह भय सताने लगा कि कहीं हमारा राजा शंकराचार्यका शिष्य न बन जाय, अतः उन्होंने राजा तथा शंकराचार्यको मार डालनेका एक षड्यन्त्र रचा। सेवड़ोंका गुरु राजा एवं शंकराचार्यको लेकर एक ऊँची छतपर चढ़ गया और उसने तन्त्र बलसे ऐसी माया रची कि चारों ओर जल ही जल हो गया। धीर-धीरे जल बढ़ता हुआ छततक आ गया। सेवड़ोंके गुरुने मायाकी नाव भी बना दी और राजासे कहा कि इसपर चढ़ जाओ, नहीं तो जलमें डूब जाओगे। राजा जैसे ही नावपर चढ़ने लगे शंकराचार्यजीने उन्हें नावपर बैठनेसे मना कर दिया और पहले सेवड़ोंको चढ़ानेको कहा। सेवड़े जैसे ही नावपर चढ़े, मायाकी नाव और जल गायब हो गया और वे लोग छतसे नीचे गिर गये। उन सेवड़ोंके शरीर भग्न हो गये। राजा उनकी चाल और शंकराचार्यजीका प्रभाव समझ गये और उनके चरणोंपर गिर पड़े।

श्रीप्रियादासजी महाराज इन घटनाओंका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

बिमुख समूह लैके किये सनमुख स्याम अति अभिराम लीला जग बिसतारी है।
सेवरा प्रबल वास केबरा ज्यौं फैलि रहे, गहे नहीं जाहिं बादी सुचि बात धारी है॥
तजिकै शरीर काहू नृपमें प्रवेश कियो, दियौ करि ग्रन्थ मोह मुद्गर सुभारी है।
शिष्यनिसों कह्यौ कभूं देहमें आवेश जानो तब ही बखानो आप सुनि कीजै न्यारी है॥ १२४॥
जानिकै आवेश तन शिष्यने प्रवेश कियो रावलेमें देखि सो श्लोक लै उचार्‌यौ है।
सुनत ही तज्यौ तन निज तन आय लियौ कियो यों प्रनाम दास पन पूरो पार्‌यौ है॥
सेवरा हराये बादी आये नृप पास ऊँचे छातपर बैठि एक माया फन्द डार्‌यौ है।
जल चढ़ि आयो नाव भाव लै दिखायौ कहैं चढ़ौ नहीं बूड़ौ आप कौतुक सो धार्‌यौ है॥ १२५॥
आचारज कही यों चढ़ाओ इन सेवरानि राजाने चढ़ाये गिरे टूक उड़ि गये हैं।
तब तौ प्रसन्न नृप पाँव पर्‌यौ भाव भर्‌यौ कह्यौ जोई कर्‌यो धर्म भागवत लये हैं॥
भक्ति ही प्रचार पाछै मायावाद डारि दीनों कीनों प्रभु कह्यौ किते विमुख हू भये हैं।
ऐसे सो गँभीर सन्त धीर वह रीति जानें प्रीति ही में साने हरिरूप गुन नये हैं॥ १२६॥

तत्पश्चात् आचार्यने विभिन्न मठोंकी स्थापना की और उनके द्वारा औपनिषद सिद्धान्तकी शिक्षा-दीक्षा होने लगी। आपने भारतवर्षके चारों कोनोंपर चार मठोंकी स्थापना की और वहाँ अपने शिष्योंको नियुक्त किया। पूर्वमें श्रीजगन्नाथपुरी उड़ीसामें गोवर्धन मठ, दक्षिणमें शृंगेरी मठ, पश्चिममें द्वारकापुरीमें शारदामठ और उत्तरमें ज्योतिर्मठकी आपने स्थापना की। इन मठोंके मठाधीश आज भी श्रीमद् आद्य शंकराचार्यके नामपर शंकराचार्य कहे जाते हैं।

यद्यपि आपका लौकिक जीवनकाल अत्यन्त अल्प मात्र ३२ वर्ष ही रहा, परंतु इतने कम समयमें ही आपने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें प्रस्थानत्रय (ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और गीता)-पर भाष्य ही आपके यशको अमर रखनेमें पर्याप्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनामदेवजी

बालदसा बीठल्ल पानि जाके पय पीयौ।
मृतक गऊ जीवाय परचौ असुरन कौं दीयौ॥
सेज सलिल तें काढ़ि पहिल जैसी ही होती।
देवल उलट्यो देखि सकुचि रहे सबही सोती॥
पँडुरनाथ कृत अनुग ज्यों छानि स्वकर छइ घास की।
नाम देव प्रतिग्या निर्बही (ज्यों) त्रेता नरहरिदास की॥ ४३॥

जल-थल और अग्नि आदिमें सर्वत्र अपने इष्टका ही दर्शन करूँगा—यह प्रतिज्ञा श्रीनामदेवजीकी उसी प्रकार निभी, जैसे कि त्रेतायुगमें नरसिंहभगवान्‌के दास श्रीप्रह्लादजीकी निभी थी। बचपनमें ही उनके हाथसे विट्ठलनाथभगवान्‌ने दूध पिया। एक मरी हुई गायको आपने जीवित करके असुर-यवनोंको अपने भजनबलका परिचय दिया। फिर उस यवन राजाके द्वारा दी गयी शय्याको नदीके अथाह जलमें डाल दिया। उसके आग्रहपर उसी तरहकी अनेक शय्याएँ निकालकर दिखा दीं। पण्ढरपुरमें पण्ढरीनाथभगवान्‌के मन्दिरका द्वार उलटकर आपकी ओर हो गया, इस चमत्कारको देखकर मन्दिरके पुजारी सभी श्रोत्रिय ब्राह्मणलोग संकुचित और लज्जित हो गये। प्रेमके प्रभावसे पण्डरनाथभगवान् आपके पीछे-पीछे चलनेवाले सेवककी तरह कार्य करते थे। आगसे जल जानेपर अपने हाथोंसे भगवान्‌ने आपका छप्पर छाया॥ ४३॥

(क) नामदेवजीके जन्मकी दिव्य घटना

छीपा जातिके श्रीवामदेवजी भगवान् हरिदेवजीके बड़े भारी भक्त थे। उनकी एक लड़की (गौणाई) थोड़ी ही आयुमें विधवा हो गयी। जब वह बारह सालकी हो गयी, तब वामदेवजीने उससे कहा—तुम घरमें विराजमान श्रीठाकुरजीकी सेवा सावधान मनसे अच्छी प्रकार किया करो। इससे शीघ्र ही तेरे सब मनोरथ पूर्ण होंगे। इस प्रकार पिताजीकी आज्ञा पाकर वह भगवान्‌की सेवा करने लगी, उसपर भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और उसे प्रत्यक्ष अपना दर्शन दिया। भगवान्‌की सुन्दर छविका दर्शन करके वामदेवकी पुत्रीके मनमें एक भक्तपुत्र प्राप्त करनेकी इच्छा हुई। भगवान्‌के आशीर्वादसे उसके गर्भ हो गया। उसके गर्भकी चर्चा स्थान-स्थानपर चलने लगी। चलते-चलते यह बात वामदेवजीके कानमें पड़ी। तब आपने लड़कीसे पूछा और उसका उत्तर सुनकर यह निश्चय किया कि भगवान्‌ने ही पुत्रीको अपनाया है। समय पूर्ण होनेपर बालकका जन्म हुआ और वामदेवजीने उसका नाम 'नामदेव' रखा। पुत्रजन्मके उत्सवमें ब्राह्मणों और निर्धनोंको जी-भरकर आपने अपनी सम्पत्ति लुटायी। बालक नामदेव दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। उसके ऊपर कुछ और ही अलौकिक रंग चढ़ने लगा। उसके अंग-अंगमें भगवद्भक्तिके भाव व्याप्त हो गये। अत्यन्त सुन्दर, सबको सुख देनेवाला उसका दिव्य स्वरूप प्रकट हुआ।

इस कथानकका श्रीप्रियादासजी निम्नरूपसे वर्णन करते हैं—

छीपा वामदेव हरिदेव जु को भक्त बड़ो ताकी एक बेटी पतिहीन भई जानिये।
द्वादश वरष मांझ भयो तब कही पिता सेवा सावधान मन नीके करि आनिये॥
तेरे जे मनोरथ हैं पूरन करन एई जो पै दत्तचित्त ह्वै कै मेरी बात मानिये।
करत टहल प्रभु बेगि ही प्रसन्न भये कीनी काम वासना सु पेखि उनमानिये॥ १२७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवा को गर्भ ताकी बात चली ठौर ठौर दुष्ट शिरमौरनि की भई मन भाइयै।
चलत चलत वामदेव जू के कान परी करि निराधार प्रभू आप अपनाइयै॥
भये जू प्रगट बाल नाम नामदेव धर्‌यौ कर्‌यौ मन भायो सब सम्पति लुटाइयै।
दिन दिन बढ़्यो कछू और रंग चढ़्यो भक्तिभाव अंग मढ़्यो कढ़्यो रूप सुखदाइयै॥ १२८॥

(ख) श्रीनामदेवजीके बचपनके भक्तिमय चरित

श्रीनामदेवजी बचपनमें खिलौनोंसे खेलते थे, आप खेलमें ही भगवान्‌की सेवा-पूजा करते थे, वे किसी काष्ठ या पाषाणकी मूर्ति बना लेते और फिर उसे बड़े प्रेमसे वस्त्र पहनाते, भोग लगाते, घण्टा बजाते तथा नेत्र बन्द करके मनमें अच्छी तरह भगवान्‌का ध्यान करते। वे जैसे-जैसे इन कार्योंको करते थे, वैसे-वैसे वे अत्यन्त सुख पाते थे। प्रेमवश उनके नेत्रोंमें जल भर जाता। नामदेवजी अपने नाना वामदेवजीसे बार-बार कहते कि भगवान्‌की सेवा मुझे दे दीजिये। सेवा मुझे बहुत प्यारी लगती है। इस प्रकार नामदेवजीने बार-बार कहा। कुछ समय बाद वामदेवजीने नामदेवसे कहा कि मैं एक गाँवको जाऊँगा और तीन दिनमें लौट आऊँगा, तबतक तुम भगवान्‌की सेवा करना और भगवान्‌को दूध पिलाना, स्वयं मत पी जाना। यदि अच्छी प्रकारसे तीन दिन सेवा करोगे तो तुम्हें ही सेवा सौंप दी जायगी।

श्रीनामदेवजीके हृदयमें सेवा प्राप्त करनेकी लालसा बढ़ी, वे नानाजीसे बार-बार पूछते कि अभी आप गये नहीं? एक दिन नानाजीके बाहर गाँव जानेका समय आ गया, वे चले गये। नामदेवजीने अच्छी तरह देखभालकर कड़ाहीमें दो सेर दूध डाला और मनमें निश्चय किया कि दूधको औटाकर अति उत्तम बनाऊँ, जिससे प्रसन्न होकर प्रभु पी लें। श्रीनामदेवजीके हृदयमें प्रेमकी बड़ी भारी उमंग थी, उन्हें चिन्ता भी थी कि सेवामें कोई त्रुटि न हो जाय।

बालक नामदेवजी दूध औटाकर उसे एक सुन्दर कटोरेमें भरकर भगवान्‌के समीप ले आये। दूधमें इलायची और मिश्री मिलायी। दूध पिलानेकी आशासे परदा कर दिया। कुछ देर प्रेमकी लम्बी श्वासें भरते रहे फिर परदा हटाकर देखा तो दूधभरा कटोरा ज्यों-का-त्यों रखा था। इससे इनके मनमें बड़ी निराशा हुई और भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे कि प्रभो! आप दूध पीकर तृप्त हो जायँ।

श्रीनामदेवजी भगवान्‌को दूध-भोग लगाते और यह देखते कि भगवान्‌ने दूध नहीं पिया है, इस प्रकार दो दिन बीत गये। स्वयं भी उन्होंने अन्न-जल आदि कुछ भी ग्रहण नहीं किया और इस बातको अपने मनमें ही छिपाकर रखा। माताजीको भी नहीं बताया और भूखे-प्यासे ही रातको सो गये, पर चिन्ताके कारण निद्रा नहीं आयी। तीसरे दिनका सबेरा हुआ, फिर उसी प्रकार सावधानीसे दूधको औटाया इलायची, मिश्री मिलायी और आज प्रभु अवश्य ही दूध पी लेंगे—इस भावसे मनको मजबूत करके भगवान्‌के सामने दूध रखा और कहा—प्रभो! (नानाजी दूध पिलानेको कह गये थे) आप दूधको पीजिये, तभी मैं प्रसन्न होऊँगा। इतनेपर भी जब भगवान्‌ने दूध नहीं पिया, तब श्रीनामदेवजी बोले—मैं बारम्बार आपसे दूधकी विनती करता हूँ, परंतु आप दूध नहीं पीते हैं। कल प्रातःकाल नानाजी आ जायँगे और वे हमपर रुष्ट होंगे, फिर कभी सेवा मुझे नहीं देंगे। इसलिये ऐसे जीनेसे तो मरना ही अच्छा है। ऐसा कहकर छुरी निकाली और भगवान्‌को दिखाकर अपना गला काटनेके लिये गलेपर छुरी चलाना ही चाहते थे कि भगवान्‌ने हाथ पकड़ लिया और कहा कि अरे! ऐसा मत करो, मैं अभी दूध पीता हूँ। यह कहकर भगवान् दूध पीने लगे। श्रीनामदेवजीने देखा कि ये तो सब दूध पी जायँगे, तब बोले कि थोड़ा-सा प्रसाद मेरे लिये भी रहने दीजियेगा; क्योंकि नानाजीके भोग लगानेपर मैं सदा दूध-प्रसाद पीता था।

चौथे दिन वामदेवजी गाँवसे लौटकर आये और नामदेवजीसे 'अच्छी प्रकार सेवा की या नहीं' यह पूछा तो इन्होंने अत्यन्त प्रेमरंगमें भरकर दुग्धपानलीलाका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा वर्णन किया। यह सुनकर वामदेवजीने कहा कि मेरे सामने फिर पिलाओ, तब हम जानें। तब श्रीनामदेवजीने उसी प्रकार दूध तैयार करके भगवान्के सामने रखा, पर भगवान्ने नहीं पिया, तब अड़ गये उसी प्रकार छुरी निकालकर गला काटनेको तैयार हो गये कि कल पीकर आज नानाजीके सामने मुझे झूठा बनाना चाहते हो। आपको दूध पीना ही पड़ेगा। बालकके प्रेमहठसे प्रसन्न होकर भगवान्ने वामदेवजीके देखते-देखते दूध पिया और प्रसाद नामदेवको पिलाया। वामदेवजीने सोचा कि मैंने जीवनभर सेवा की, पर दर्शन नहीं हुए। आज बालकके प्रभावसे दर्शन हुए। इस प्रसंगके द्वारा भगवान्ने यह दिखला दिया कि मैं भक्तके वशमें होकर उनके प्रेमके कारण अर्पित भोगको ग्रहण करता हूँ।

श्रीप्रियादासजीने नामदेवजीके इस प्रेमभावका वर्णन निम्न कवित्तोंमें किया है—

खेलत खिलौना प्रीति रीति सब सेवा ही की पट पहिरावैं पुनि भोगको लगावहीं।
घंटा लै बजावैं नीके ध्यान मन लावैं त्यों-त्यों अति सुख पावैं नैन नीर भरि आवहीं॥
बार-बार कहैं नामदेव वामदेव जू सों देवो मोहिं सेवा मांझ अति ही सुहावहीं।
जाऊँ एकगाँव फिरि आऊँ दिन तीन मध्य दूधको पिवावौ मत पीवो मोहि भावहीं॥ १२९॥
कौन वह बेर जेहिं बेर दिन फेर होय फेर फेर कहैं वह बेर नहीं आइये।
आई वह बेर लै कराहीं मांझ हेरि दूध डार्‌यो युग सेर मन नीके कै बनाइये॥
चोपनिके ढेर लागि निपट औसेर दृग आयो नीर घेरि जिनि गिरैं घूंटि जाइये।
माता कहै टेरि करी बड़ी तैं अबेर अब करो मति झेरि अजू चित दै औटाइये॥ १३०॥
चल्यो प्रभु पास लै कटोरा छबिरास तामें दूध सो सुबास मध्य मिसरी मिलाइयै।
हिये में हुलास निज अज्ञताको त्रास ऐपै करैं जो पै दास मोहि महासुख दाइयै॥
देख्यो मृदुहांस कोटि चांदनी को भास कियो भावको प्रकास मति अति सरसाइयै।
प्याइबेकी आस करि ओट कछु भर्‌यो स्वास देखिकै निरास कह्यो पीवोजू अघाइयै॥ १३१॥
ऐसे दिन बीते दोय राखी हिये बात गोय रह्यो निशि सोय ऐपै नींद नहीं आवहीं।
भयो जू सबारो फिरि वैसे ही सुधार लियौ हियौ कियौ गाढ़ौ जाय धर्‌यो पियो भावहीं॥
बार बार पीवो कहूं अब तुम पीवो नाहिं आवैं भोर नाना गरे छूरी दै दिखावहीं।
गहि लीनो कर जिनि करें ऐसो पीवौं मैं तो पीवे कों लगेई नेकु राखो सदा पावहीं॥ १३२॥
आये वामदेव पाछै पूछैं नामदेव जू सों दूधको प्रसंग अति रंग भरि भाखियै।
मोसौं न पिछानि दिनदोय हानि भई तब मानि डर प्रान तज्यो चाहौं अभिलाषियै॥
पीयौ सुख दीयो जब नेकु राखि लीयो मैं तो जीयो सुनि बातें कही प्यायो कौन साखियै।
धर्‌यौ पै पीयैं अर्‌यौ प्यायौ सुख पायौ नाना यामें लै दिखायौ भक्तबस रस चाखियै॥ १३३॥

(ग) श्रीनामदेवजीकी भगवद्भक्ति और गोभक्ति

एक बार मुसलमानोंके राजा सिकन्दर लोदीने श्रीनामदेवजीको बुलवाकर कहा कि आप साहबसे मिले हैं, उनका दर्शन करते रहते हैं—ऐसा मैंने सुना है तो हमें भी साहबसे मिला दीजिये और कुछ विचित्र चमत्कार दिखलाइये। श्रीनामदेवजीने कहा कि यदि हममें कोई शक्ति या चमत्कार होता तो फिर खानेके लिये दिनभर धंधा ही क्यों करते ? किसी प्रकार दिनभर धंधा (सिलाई-छपाई) करनेसे जो भी कुछ मिल जाता है, उसे सन्तोंके साथ बाँटकर खाता हूँ। उन्हीं संतोंकी सेवाके प्रतापसे लोग मुझे भक्त कहते हैं और दूर-दूरतक मेरा नाम फैल गया है, तभी आपने भी हमें यहाँ अपने दरबारमें बुलाया है। यह सुनकर बादशाहने कहा—आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मरी हुई गायको जीवित कर दीजिये और अपने घरको जाइये, नहीं तो कारागारमें रहना पड़ेगा; क्योंकि तुम झूठे भगत बनकर लोगोंको ठगते हो। तब आपने सहज स्वभावसे एक प्रार्थनाका पद गाकर गायको जीवित कर दिया और प्रभुकृपाका अनुभव करके सुखी हुए। यह देखकर बादशाह अति प्रसन्न हुआ और श्रीनामदेवजीके चरणोंमें पड़ गया।

यह विचित्र चमत्कार देखकर बादशाहने श्रीनामदेवजीसे कहा कि आप कृपा करके कोई देश या गाँव ले लीजिये, जिससे मेरा भी कुछ नाम हो जाय। आपने उत्तर दिया कि हमें कुछ भी नहीं चाहिये। फिर बादशाहने एक मणिजटित शय्या आपको दी। श्रीनामदेवजी उसे अपने सिरपर रखकर चलने लगे। तब उसने कहा कि दस-बीस आदमी मैं आपके साथ भेजता हूँ, वे इस पलंगको ले जायँगे और आपके निवासस्थानतक पहुँचा देंगे। आपने बिलकुल मना कर दिया और कहा कि यह भगवान्‌के शयनका पलंग है, मैं उनका सेवक हूँ, अतः मुझे ही अपने सिरपर रखकर ले जाना चाहिये। फिर भी बादशाहने कुछ रक्षक भेजे। आगे आपने विचारा कि यह मूल्यवान् वस्तु है, इससे अनेक संकट आ सकते हैं। भजनमें बाधा हो सकती है। इस कारण मार्गमें श्रीयमुना नदीके अथाह जलमें उस पलंगको डाल दिया। राजाको इसकी सूचना मिली तो वह चौंककर आश्चर्यमें पड़ गया। सिपाहियोंसे कहा—उन्हें शीघ्र बुलाकर लाओ। श्रीनामदेवजी फिर आये और बोले कि अब क्यों बुलाया? तब बादशाहने कहा कि जो पलंग मैंने आपको दे दिया है, जरा उसे यहाँ लाकर कारीगरोंको दिखा दीजिये। उसी प्रकारका नया दूसरा बनवाना है। श्रीनामदेवजी बादशाहको लेकर नदीपर आये और जलमें प्रवेश करके अनेक पलंग वैसे और उससे भी मूल्यवान् निकाल-निकालकर डाल दिये और बादशाहसे बोले—आप अपना पलंग पहचान लो। यह देखकर उसकी सुधि-बुधि जाती रही।

इस वृत्तान्तका वर्णन प्रियादासजी इन कवित्तोंमें करते हैं—

नृप सो मलेच्छ बोलि कही मिले साहिब को दीजिये मिलाय करामात दिखराइयै।
होय करामात तो पै काहे को कसब करैं? भरैं दिन एपैं बांटि सन्तन सों खाइयै॥
ताहीके प्रताप आप इहां लौं बुलायो हमें दीजिये जिवाय गाय घर चलि जाइयै।
दईलै जिवाय गाय सहज सुभाय ही में अति सुख पाय पांय पर्‌यो मन भाइयै॥ १३४॥
लेवो देश गांव जाते मेरो कछु नांव होय चाहिये न कछु दई सेज मनि मई है।
धरि लई सीस देऊँ संग दस बीस नर नाहीं करि आये जल मांझ डारि दई है॥
भूप सुनि चौंकि पर्‌यौ ल्यावो फेरि आये कहौ कही नेकु आनिके दिखावो कीजै नई है।
जलतैं निकसि बहुभांति गहि डारी तट लीजिये पिछानि देखि सुधि बुधि गई है॥ १३५॥

(घ) नामदेवजीकी भक्तिका माहात्म्य

श्रीनामदेवजीकी करामात देखकर बादशाह भयवश उनके चरणोंमें आ गिरा और प्रार्थना करने लगा कि मुझे ईश्वरके दण्डसे बचा लीजिये। श्रीनामदेवजीने कहा—यदि क्षमा चाहते हो तो एक बात करो कि पुनः इस प्रकार कभी किसी साधुको दुःख मत देना। इसे बादशाहने स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने कहा कि फिर अब कभी मुझे मत बुलाना। ऐसा कहकर श्रीनामदेवजी वहाँसे चल दिये। उनकी इच्छा हुई कि पहले पण्ढरीनाथजीके मन्दिरमें चलूँ। प्रभुके नामगुण-कीर्तनका नित्य-नेम पूरा कर लूँ। मन्दिरपर गये तो द्वारपर बहुत भीड़-भाड़ दिखायी पड़ी। (जूतोंकी चोरीकी शंकासे शायद मन एकाग्र न हो, इसलिये कपड़ेमें लपेटकर) जूतोंको कमरमें बाँध लिया। हाथोंसे भीड़को हटाकर भीतर गये। दर्शन करके पदगान आरम्भ करना ही चाहते थे कि किसीने जूतोंको देख लिया और रुष्ट होकर पाँच-सात चोटें लगायीं। फिर धक्का देकर मन्दिरसे बाहर निकाल दिया। परंतु श्रीनामदेवजीके मनमें पण्डोंके इस व्यवहारसे थोड़ा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोध नहीं आया।

अब श्रीनामदेवजी मन्दिरके पिछवाड़े जाकर बैठ गये और भगवान्से कहने लगे कि प्रभो! आपने यह बहुत ही अच्छा किया जो मुझमें मार लगायी। मेरे अपराधका दण्ड तुरंत ही दे दिया। अब नित्य-नियमके अनुसार पद गाता हूँ, सुनो। यह कहकर नामदेवजी पद गाने लगे, जिसे सुनते ही भगवान्का हृदय करुणासे भर गया। भक्तको विरह-व्यथित एवं दीन देखकर प्रभु व्याकुल हो गये। सम्पूर्ण मन्दिरको घुमाकर श्रीनामदेवकी ओर द्वार कर दिया। यह देखकर जितने भी वेदपाठी पण्डा-पुजारी थे, सबके मुखकी कान्ति क्षीण हो गयी, सब फीके पड़ गये, जैसे पानी उतरनेसे मोती फीका हो जाता है। अब उनके हृदयमें श्रीनामदेवजीके प्रति बड़ी भारी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो गयी। सबोंने श्रीनामदेवजीके सुख देनेवाले चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना की। उन्हें प्रसन्न देखकर सबको शान्ति प्राप्त हुई।

इस घटनाका वर्णन प्रियादासजी इस प्रकार करते हैं—

आनि पर्‌यो पांय प्रभु पास तें बचाय लीजै कीजै एक बात कभू साधु न दुखाइयै।
लई यही मानि फेरि कीजिये न सुधि मेरी लीजिये गुननि गाय मन्दिर लौं जाइयै॥
देखि द्वार भीर पग दासी कटि बांधी धर कर सों उछीर करि चाहैं पद गाइयै।
देखि लीनी वेई काहू दीनी पांच सात चोट कीनी धका धकी रिस मनमें न आइयै॥ १३६॥
बैठे पिछवारे जाइ कीनी जू उचित यह लीनी जो लगाइ चोट मेरे मन भाइयै।
कान दैकें सुनो अब चाहत न और कछु ठौर मोकों यहीं नित नेम पद गाइयै॥
सुनत ही आनि करि करुना विकल भये फेर्‌यो द्वार इतै गहि मन्दिर फिराइयै।
जेतिक वे सोती मोती आब सी उतरि गई भई हिये प्रीति गहे पाँव सुखदाइयै॥ १३७॥

(ङ) सर्वत्र भगवद्दर्शन

एक बार अकस्मात् ही सायंकालमें श्रीनामदेवजीके घरमें आग लग गयी। पर आप तो जल, थल और अग्निमें सर्वत्र अपने प्यारे प्रभुको ही देखते थे। अतः अपने घरमें जो दूसरे सुन्दर पदार्थ घी, गुड़ आदि जलनेसे रह गये थे, उन्हें भी उठा-उठाकर जलती हुई आगमें डालते हुए प्रार्थना करने लगे—हे नाथ! इन सब वस्तुओंको भी स्वीकार कीजिये। भक्तकी ऐसी सुन्दर भावना देखकर भगवान्ने प्रकट होकर दर्शन दिया और हँसकर बोले कि अत्यन्त कोमल मुझ श्यामसुन्दरको तीक्ष्ण, असह्य अग्निकी ज्वालामें भी देखते हो। श्रीनामदेवजीने कहा—प्रभो! यह आपका भवन है, आपके अतिरिक्त दूसरा कौन यहाँ आ सकता है! यह सुनकर प्रसन्न होकर प्रभु अन्तर्धान हो गये अग्नि शीतल हो गयी।

इस घटनाके सम्बन्धमें श्रीप्रियादासजी निम्न कवित्तमें इस प्रकार कहते हैं—

औचक ही घर माँझ सांझ ही अगिनि लागी बड़ो अनुरागी रहि गई सोऊ डारियै।
कहैं अहो नाथ सब कीजिये जु अंगीकार हँसे सुकुमार हरि मोहीको निहारियै॥
तुम्हरो भवन और सकै कौन आइ इहाँ भये यों प्रसन्न छानि छाई आप सारियै।
पूछे आनि लोग कौन छाई हो छवाइ दीजै लीजै जोई भावै तनमन प्राण वारियै॥ १३८॥

(च) श्रीनामदेवजीद्वारा तुलसीदल और रामनामकी महिमाका प्राकट्य

पण्ढरपुरमें एक बहुत बड़ा धनी सेठ रहता था। उसके यहाँ तुलादानका उत्सव हुआ। उसने अपनेको सोनेसे तौलकर नगरके सभी लोगोंको सोना दिया। सेठने लोगोंसे पूछा कि कोई रह तो नहीं गया? तब लोगोंने कहा—श्रीनामदेवजी भगवान्के बड़े प्रेमी सन्त हैं, वे रह गये हैं। सेठने कहा—उन्हें बुलाकर लाओ। सेठके नौकर, मुनीम बुलाने गये। दान ब्राह्मणोंको दो, हमें कुछ भी नहीं चाहिये, यह कहकर बड़भागी श्रीनामदेवजीने पहली और फिर दूसरी बार लोगोंको वापस लौटा दिया, जानेसे मना कर दिया। पर तीसरी बार अति आग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर आप सेठके घरपर आये और सेठसे बोले—तुम बड़े भाग्यशाली हो। कहो—हमसे क्या कहते हो? सेठजीने कहा—आप मेरे द्वारा दिये गये कुछ धनको स्वीकार कीजिये, जिससे मेरा कल्याण हो। नामदेवजीने कहा—तुम्हारा कल्याण तो हो गया, अब मुझे कुछ देनेकी आपकी प्रबल इच्छा है तो दीजिये।

श्रीनामदेवजीका एकमात्र प्रिय सर्वस्व जो श्रीगोविन्दचरणप्रिय श्रीतुलसी हैं, ऐसे श्रीतुलसीके पत्तेमें आधा राम-नाम अर्थात् केवल 'रा' लिखकर उसे दिया और कहा कि इसके बराबर तौलकर दे दीजिये। सेठने अभिमानपूर्वक कहा—महाराज! क्यों हँसी करते हो, इतने थोड़ेसे सोनेसे क्या होगा? कृपा करके कुछ अधिक लीजिये। जिससे मुझ दाताकी हँसी न हो। नामदेवजीने कहा—इसके बराबर सोना तौलकर देखो तो सही, फिर देखो कि क्या विचित्र खेल होता है। यदि तुम इसके बराबर पूरा करके सोना दे दोगे तो मैं तुमपर प्रसन्न होऊँगा। यह सुनकर सेठजी एक तौलनेका काँटा ले आये और एक ओर तुलसीपत्र तथा दूसरी ओर सोना चढ़ाया। उस समय बड़ा विचित्र आश्चर्य हुआ, सोनेका ढेला तुलसीपत्रसे बराबर नहीं हुआ। सेठजी उदास हो गये, जिससे पाँच-सात मन तौला जा सके—ऐसा बड़ा तराजू मँगवाया। उसपर एक ओर तुलसीपत्र दूसरी ओर घरभरका सम्पूर्ण सोना-चाँदी आदि रखा। पूरा न पड़नेपर जाति-कुटुम्बवालोंके घरोंसे ला-लाकर बहुत-सा धन रखा, परंतु वह सब तुलसीपत्रके बराबर नहीं हुआ।

श्रीरामनामलिखित तुलसीपत्रके महत्त्वको देखकर घरके सभी स्त्री-पुरुषोंके समेत सेठजीको बड़ा शोक तथा दुःख हुआ। श्रीनामदेवजीने विचारा कि अभी इन्हें तुलसीपत्र एवं श्रीरामनामकी महिमाका पूरा अनुभव नहीं हुआ है, इसलिये वे बोले—आपलोगोंने जितने व्रत-दान और तीर्थस्नान आदि पुण्यकर्म किये हों, उनका संकल्प करके जल डाल दीजिये। सभी लोगोंने पुण्योंका स्मरण कर-करके संकल्प पढ़कर जल डाला, पर इस उपायके करनेसे भी काम न चला। जिधर तुलसीपत्र रखा था, वह पलड़ा अपने पैर भूमिमें गाड़ रहा था। यह देखकर सभी लोग लज्जित हो गये और प्रार्थना करने लगे कि इतना ही ले लीजिये। श्रीनामदेवजीने कहा—हम इस तुच्छ धनको लेकर क्या करें? हमारे पास तो रामनाम-धन है, यह धन उसकी बराबरी नहीं कर सकता है। इस धनसे कल्याण होना सम्भव नहीं है। नामकी और तुलसीकी महिमा देखकर आजसे इस धनको तुच्छ समझो और रामनामरूपी धनसे प्रेम करो, गलेमें तुलसी धारण करो, रामनाम जपो। यह कहकर श्रीनामदेवजीने सबके हृदयमें भक्तिका भाव भर दिया। सबकी बुद्धि प्रेमरसमें भीग गयी।

इस भक्तिभावका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

सुना और परचै जे आये न कवित्त मांझ बांझ भई माता क्यों न जौ न मति पागी है।
हुतो एक साह तुलादान को उछाह भयो दयो पुर सबै रह्यौ नामदेव रागी है॥
ल्यावो जु बुलाइ एक दोइ तौ फिराइ दिये तीसरे सों आये कहा कहो बड़भागी है।
कीजिये जु कछु अङ्गीकार मेरो भलो होय भयो भलो तेरो दीजै जो पै आस लागी है॥ १३९॥
जाके तुलसी है ऐसे तुलसी के पत्र मांझ लिख्यो आधो राम नाम यासों तोल दीजियै।
कहा परिहास करो ढरो ह्वै दयाल देखि होत कैसो ख्याल याकों पूरो करो रीझियै॥
ल्यायो एक कांटो लै चढ़ायो पात सोना संग भयो बड़ो रंग सम होत नाहिं छीजियै।
लई सो तराजू तासों तुलै मन पांच सात जाति पांतिहू को धन धर्‌यो पै न धीजियै॥ १४०॥
पर्‌यो शोच भारी दुःख पावैं नर-नारी नामदेवजू विचारी एक और काम कीजिये।
जिते व्रतदान औ स्नान किये तीरथमें करियै संकल्प यापै जल डारि दीजिये॥
करेऊ उपाइ पात पला भूमि गाड़े पांय रहे वे खिसाय कह्यौ इतनोई लीजिये।
लैकै कहा करैं सरवरहू न करै भक्तिभावसों लैं भरै हिये मति अति भीजिये॥ १४१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(छ) श्रीनामदेवजीकी एकादशी-व्रतके प्रति निष्ठा

एक बार भगवान्‌के मनमें यह उमंग उठी कि श्रीनामदेवजीकी एकादशीव्रत-निष्ठाका परिचय लिया जाय। यह विचारकर उन्होंने एक अत्यन्त दुर्बल ब्राह्मणका रूप धारण किया। एकादशीव्रतके दिन श्रीनामदेवजीके पास पहुँचकर बड़ी दीनता करके अन्न माँगने लगे कि मैं बहुत भूखा हूँ, कई दिनसे भोजन प्राप्त नहीं हुआ है, कुछ अन्न दो। श्रीनामदेवजीने कहा—आज तो एकादशी है, (दूध-फलाहारादि कर लीजिये) अन्न न दूँगा। प्रातःकाल जितनी इच्छा हो उतना अन्न लीजियेगा। दोनों अपनी-अपनी बातपर बड़ा भारी हठ कर बैठे। इस बातका शोर चारों ओर फैल गया। लोग इकट्ठे हो गये और श्रीनामदेवजीको समझाने लगे कि इस भूखे ब्राह्मणपर क्रोध क्यों करते हो, तुम्हीं मान जाओ, इसे कुछ अन्न दे दो। श्रीनामदेवजी नहीं माने, दिनके चौथे पहरके बीतनेपर उस भूखे ब्राह्मणदेवने इस प्रकार पैर फैला दिये कि मानो मर गये। गाँवके लोग श्रीनामदेवजीके भावको नहीं जानते थे। अतः उन लोगोंने नामदेवजीके सिर ब्राह्मण-हत्या लगा दी और उनका समाजसे बहिष्कार कर दिया। पर नामदेवजी बिलकुल चिन्तित नहीं हुए।

अपने नियमके अनुसार जागरण और कीर्तन करते हुए श्रीनामदेवजीने रात बितायी, प्रातःकाल चिता बनाकर उस ब्राह्मणके मृतक-शरीरको गोदमें लेकर उसपर बैठ गये कि हत्यारे शरीरको न रखकर प्रायश्चित्तस्वरूप उसे भस्म कर देना ही उत्तम है। उसी समय भगवान् प्रकट हो गये और मुसकुराकर कहने लगे कि मैंने तो तुम्हारी परीक्षा ली थी, तुम्हारी एकादशीव्रतकी सच्ची निष्ठा मैंने देख ली, वह मेरे मनको बहुत ही प्यारी लगी, मुझे बड़ा सुख हुआ। इस प्रकार दर्शन देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। लोगोंने जब यह लीला देखी तो श्रीनामदेवजीके चरणोंमें आकर गिरे और प्रीतिमय चरित्र देखकर सभी भक्त हो गये।

एक बार एकादशीकी रात्रिको जागरण-कीर्तन हो रहा था। भगवद्भक्तोंको बड़ी प्यास लगी। तब श्रीनामदेवजी जल लानेके लिये नदीपर गये, प्रेतभयसे दूसरोंको जानेका साहस न था। श्रीनामदेवजीको आया देखकर महाविकरालरूपधारी प्रेतराज अपने साथियों-समेत आकर चारों ओर फेरी लगाने लगा। उसका स्वरूप एवं उसकी माया देखकर श्रीनामदेवजी थोड़ा भी भयभीत न हुए, उसे अपने इष्टका ही स्वरूप माना और उन्होंने फेंटसे झाँझ निकालकर तत्काल एक पद गाया और प्रणाम किया। भगवान् तो बड़े ही दयालु हैं, प्रेतरूप न जाने कहाँ गया! शोभाधाम श्यामसुन्दर प्रकट हो गये, जिनका दर्शन करके श्रीनामदेवजी परम प्रसन्न हुए और जल लाकर भक्तोंको पिलाया।

श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका वर्णन इस प्रकार किया है—

कियौ रूप ब्राह्मण को दूबरो निपट अंग भयो हिये रंग व्रत परिचैको लीजिये।
भई एकादशी अन्न मांगत बहुत भूखो आजु तौ न दैहौं भोर चाहौ जितौ दीजिये॥
कर्‌यो हठभारी मिलि दोऊ ताको शोर पर्‌यो समझावै नामदेव याको कहा खीझिये।
बीते जाम चरि मरि रहे यों पसारि पांव भाव पै न जानै दई हत्या नहीं छीजिये॥ १४२॥
रचिकै चिताकों विप्र गोद लैकै बैठे जाइ दियो मुसुकाइ मैं परीक्षा लीनी तेरी है।
देखि सो सचाई सुखदाई मन भाई मेरे भये अन्तर्धान परे पाँय प्रीति हेरी है॥
जागरन मांझ हरि भक्तनको प्यास लगी गये लैन जल प्रेत आनि कीनी फेरी है।
फेंट ते निकासि ताल गायो पद ततकाल बड़ेई कृपाल रूप धर्‌यो छबिढेरी है॥ १४३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीजयदेवजी

प्रचुर भयो तिहुँ लोक गीतगोबिंद उजागर।
कोक काब्य नव रस्स सरस सिंगार को सागर॥
अष्टपदी अभ्यास करैं तेहि बुद्धि बढ़ावैं।
राधारमन प्रसन्न सुनन निश्चै तहँ आवैं॥
संत सरोरुह षंड कों पद्मापति सुखजनक रबि।
जयदेव कबी नृप चक्कवै खँडमँडलेस्वर आन कबि॥ ४४॥

एक महाकवि श्रीजयदेवजी संस्कृतके कविराजोंके राजा चक्रवर्ती-सम्राट् थे। शेष दूसरे सभी कवि आपके सामने छोटे-बड़े राजाओंके समान थे। आपके द्वारा रचित 'गीतगोविन्द' महाकाव्य तीनों लोंकोंमें बहुत अधिक प्रसिद्ध एवं उत्तम सिद्ध हुआ। यह गीतगोविन्द कोकशास्त्रका, साहित्यके नवरसोंका और विशेषकर उज्ज्वल एवं सरस शृंगाररसका सागर है। इसकी अष्टपदियोंका जो कोई नित्य अध्ययन एवं गान करे, उसकी बुद्धि पवित्र एवं प्रखर होकर दिन-प्रतिदिन बढ़ेगी। जहाँ अष्टपदियोंका प्रेमपूर्वक गान होता है, वहाँ उन्हें सुननेके लिये भगवान् श्रीराधारमणजी अवश्य आते हैं और सुनकर प्रसन्न होते हैं। श्रीपद्मावतीजीके पति श्रीजयदेवजी सन्तरूपी कमलवनको आनन्दित करनेवाले सूर्यके समान इस पृथ्वीपर अवतरित हुए॥ ४४॥

(क) जयदेवजी श्रीजगन्नाथजीके स्वरूप

कविसम्राट् श्रीजयदेवजी बंगालप्रान्तके वीरभूमि जिलेके अन्तर्गत किन्दुबिल्व नामक ग्राममें उत्पन्न हुए थे। आपका वैराग्य ऐसा प्रखर था कि एक वृक्षके नीचे एक ही दिन निवास करते थे, दूसरे दिन दूसरे वृक्षके नीचे आसक्तिरहित रहते थे। जीवन-निर्वाह करनेकी अनेक सामग्रियोंमेंसे आप केवल एक गूदरी और एक कमण्डलु ही अपने पास रखते थे और कुछ भी नहीं। सुदेव नामके एक ब्राह्मणके कोई सन्तान न थी, उसने श्रीजगन्नाथजीसे प्रार्थना की कि यदि मेरे सन्तान होगी तो पहली सन्तान आपको अर्पण कर दूँगा। कुछ समयके बाद उसके एक कन्या हुई और जब द्वादश वर्षकी विवाहके योग्य हो गयी तो उस ब्राह्मणने श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें उस कन्या (पद्मावती)-को लाकर प्रार्थना की कि हे प्रभो! मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार आपको भेंट करनेके लिये यह कन्या लाया हूँ। उसी समय श्रीजगन्नाथजीने आज्ञा दी कि परमरसिक जयदेव नामके जो भक्त हैं, वे मेरे ही स्वरूप हैं, अतः इसे अभी ले जाकर उन्हें अर्पण कर दो और उनसे कह देना कि जगन्नाथजीकी ऐसी ही आज्ञा हुई है।

भगवान्की आज्ञा पाकर वह ब्राह्मण वनमें वहाँ गया, जहाँ कविराजराज भक्त श्रीजयदेवजी बैठे थे और उनसे बोला—हे महाराज! आप मेरी इस कन्याको पत्नीरूपसे अपनी सेवामें लीजिये, जगन्नाथजीकी ऐसी आज्ञा है। जयदेवजीने कहा—जगन्नाथजीकी बात जाने दीजिये, वे यदि हजारों स्त्रियाँ सेवामें रखें तो उनकी शोभा है, परंतु हमको तो एक ही पहाड़के समान भारवाली हो जायगी। अतः अब तुम कन्याके साथ यहाँसे लौट जाओ। ये भगवान्की आज्ञाको भी नहीं मान रहे हैं—यह देखकर ब्राह्मण खीज गया और अपनी लड़कीसे बोला—मुझे तो जगन्नाथजीकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं उसे कदापि टाल नहीं सकता हूँ। तुम इनके ही समीप स्थिर होकर रहो। श्रीजयदेवजी अनेक प्रकारकी बातोंसे समझाकर हार गये, पर वह ब्राह्मण नहीं माना और अप्रसन्न होकर चला गया। तब वे बड़े भारी सोचमें पड़ गये। फिर वे उस ब्राह्मणकी कन्यासे बोले—तुम अच्छी प्रकारसे मनमें विचार करो कि तुम्हारा अपना क्या कर्तव्य है? तुम्हारे योग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसा पति होना चाहिये? यह सुनकर उस कन्याने हाथ जोड़कर कहा—मेरा वश तो कुछ भी नहीं चलता है। चाहे सुख हो या दुःख, यह शरीर तो मैंने आपपर न्यौछावर कर दिया है।

श्रीपद्मावतीजीका भावपूर्ण निश्चय सुनकर श्रीजयदेवजीने निर्वाहके लिये झोंपड़ी बनाकर छाया कर ली। अब छाया हो गयी तो उसमें भगवान् श्यामसुन्दरकी एक मूर्ति सेवा करनेके लिये पधरा ली। पश्चात् मनमें आया कि परम प्रभुकी ललित लीलाएँ जिसमें वर्णित हों, ऐसा एक ग्रन्थ बनाऊँ। उनके इस निश्चयके अनुसार अति सरस 'गीतगोविन्द' महाकाव्य प्रकट हुआ। गीतगोविन्द लिखते समय एक बार श्रीकिशोरी राधिकाजीके मानका प्रसंग आया। उसमें भगवान् श्यामसुन्दरने अपनी प्रियाके चरणकमलोंको अपने मस्तकका भूषण बताकर प्रार्थना की कि इसे मेरे मस्तकपर रख दीजिये। इस आशयका पद आपके हृदयमें आया, पर उसे मुखसे कहते तथा पद्मावतीद्वारा ग्रन्थमें लिखाते समय सोच-विचारमें पड़ गये कि इस गुप्त रहस्यको कैसे प्रकट किया जाय? आप स्नान करने चले गये, लौटकर आये तो देखा कि वह पद पोथीमें श्यामसुन्दरने लिख दिया है। इससे जयदेवजी अति प्रसन्न हुए और संकोच त्यागकर माधुर्यरसकी लीलाओंका गान करने लगे।

इस घटनाका वर्णन प्रियादासजीने निम्न कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

किन्दु बिल्लु ग्राम तामे भये कविराज राज भर्‌यो रसराज हिये मन मन चाखियै।
दिन दिन प्रति रूख रूख तर जाइ रहैं गहैं एक गूदरी कमण्डल कों राखियै॥
कही देवै विप्र सुता जगन्नाथदेव जू कों भयो जब समै चल्यो दैन प्रभु भाखिये।
रसिक जैदेव नाम मेरोई सरूप ताहि देवो ततकाल अहो मेरी कहि साखिये॥ १४४॥
चल्यो द्विज तहां जहां बैठे कविराजराज अहो महाराज मेरी सुता यह लीजियै।
कीजिये विचार अधिकार विस्तार जाके ताहीको निहारि सुकुमारि यह दीजियै॥
जगन्नाथदेव जू की आज्ञा प्रतिपाल करौ ढरो मति धरो हिये ना तो दोष भीजियै।
उनको हजार सोहैं हमको पहार एक ताते फिरि जावो तुम्हैं कहा कहि खीजियै॥ १४५॥
सुता सों कहत तुम बैठि रहौ याही ठौर आज्ञा सिरमौर मौपै नाहीं जाति टारी है।
चल्यौ अनखाइ समझाइ हारे बातनि सों मन तूं समझ कहा कीजै सोच भारी है॥
बोलि द्विज बालकी सों आपही विचार करो धरो हिये ज्ञान मोपै जाले न सँभारी है।
बोली करजोरि मेरो जोर न चलत कछू चाहौ सोई होहु यह वारि फेरि डारी है॥ १४६॥
जानी जब भई तिया कियो प्रभु जोर मोपै तो पै एक झोंपड़ी की छाया कर लीजिये।
भई तब छाया श्याम सेवा पधारइ लई नई एक पोथी मैं बनाऊँ मन कीजिये॥
भयो जू प्रगट गीत सरस गोविन्दजू को मान में प्रसंग सीसमण्डन सो दीजिये।
वही एक पद मुख निकसत सोच पर्‌यो धर्‌यो कैसे जात लाल लिख्यो मति रीझिये॥ १४७॥

(ख) गीतगोविन्दकी महिमा

(१)

जगन्नाथधाममें एक राजा पण्डित था। उसने भी एक पुस्तक बनायी और उसका गीतगोविन्द नाम रखा। उसमें भी श्रीकृष्णचरित्रोंका वर्णन था। राजाने ब्राह्मणोंको बुलाकर कहा कि यही गीतगोविन्द है। इसकी प्रतिलिपियाँ करके पढ़िये और देश-देशान्तरोंमें प्रचार करिये। इस बातको सुनकर विद्वान् ब्राह्मणोंने असली गीतगोविन्दको खोलकर दिखा दिया और मुसकराकर बोले कि यह तो कोई नयी दूसरी पुस्तक है, गीतगोविन्द नहीं है। राजाका तथा राजभक्त विद्वानोंका आग्रह था कि यही गीतगोविन्द है, इससे लोगोंकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। कौन-सी पुस्तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असली है, यह निर्णय करनेके लिये दोनों पुस्तकें श्रीजगन्नाथदेवजीके मन्दिरमें रखी गयीं। बादमें जब पट खोले गये तो देखा गया कि जगन्नाथजीने राजाकी पुस्तकको दूर फेंक दिया है और श्रीजयदेवकविकृत गीतगोविन्दको अपनी छातीसे लगा लिया है।

इस दृश्यको देखकर राजा अत्यन्त लज्जित हुआ। अपनी पुस्तकका अपमान जानकर बड़े भारी शोकमें पड़ गया और निश्चय किया कि अब मैं समुद्रमें डूबकर मर जाऊँगा। जब राजा डूबने जा रहा था तो उस समय प्रभुने दर्शन देकर आज्ञा दी कि तू समुद्रमें मत डूब। श्रीजयदेवकविकृत गीतगोविन्द-जैसा दूसरा ग्रन्थ नहीं हो सकता है। इसलिये तुम्हारा शरीर त्याग करना वृथा है। अब तुम ऐसा करो कि गीतगोविन्दके बारह सर्गोंमें अपने बारह श्लोक मिलाकर लिख दो। इस प्रकार तुम्हारे बारह श्लोक उसके साथ प्रचलित हो जायँगे, जिसकी प्रसिद्धि तीनों लोकोंमें फैल जायगी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

नीलाचल धाम तामै पण्डित नृपति एक करी यही नाम धरि पोथी सुखदाइयै।
द्विजन बुलाइ कही यही है प्रसिद्ध करो लिखि लिखि पढ़ो देश देशनि चलाइयै॥
बोले मुसकाइ विप्र छिप्रसों दिखाइ दई नई यह कोऊ मति अति भरमाइयै।
धरी दोऊ मन्दिर में जगन्नाथ देवजू के दीनी यह डारि वह हार लपटाइयै॥ १४८॥
पर्‍यो सोच भारी नृप निपट खिसानों भयो गयो उठि सागर मैं बूड़ों वही बात है।
अति अपमान कियो, कियो मैं बखान सोई गोई जात कैसे? आंच लागी गात गात है॥
आज्ञा प्रभु दई मत बूड़ै तूं समुद्र मांझ दूसरो न ग्रंथ ऐसो वृथा तनुपात है।
द्वादश सुश्लोक लिखि दीजै सर्ग द्वादश में ताहि संग चलै जाकी ख्याति पात पात है॥ १४९॥

(२)

एक बार एक मालीकी लड़की बैंगनके खेतमें बैंगन तोड़ते समय गीतगोविन्दके पाँचवें सर्गकी ***'धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली'*** इस अष्टपदीको गा रही थी। उस मधुर गानको सुननेके लिये श्रीजगन्नाथजी जो उस समय अपने श्रीअंगपर महीन एवं ढीली पोशाक धारण किये हुए थे, उसके पीछे-पीछे डोलने लगे। प्रेमवश बेसुध होकर लड़कीके पीछे-पीछे घूमनेसे काँटोंमें उलझकर श्रीजगन्नाथजीके वस्त्र फट गये। उस लड़कीके गान बन्द करनेपर आप मन्दिरमें पधारे। फटे वस्त्रोंको देखकर पुरीके राजाने आश्चर्यचकित होकर पुजारियोंसे पूछा—अरे! यह क्या हुआ, ठाकुरजीके वस्त्र कैसे फट गये? पुजारियोंने कहा कि हमें तो कुछ भी मालूम नहीं है। तब स्वयं ठाकुरजीने ही सब बात बता दी। राजाने प्रभुकी रुचि जानकर पालकी भेजी, उसमें बिठाकर उस लड़कीको बुलाया। उसने आकर ठाकुरजीके सामने नृत्य करते हुए उसी अष्टपदीको गाकर सुनाया। प्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। तबसे राजाने मन्दिरमें नित्य गीतगोविन्दगानकी व्यवस्था की।

उक्त घटनासे गीतगोविन्दके गायनको अति गम्भीर रहस्य जानकर पुरीके राजाने सर्वत्र यह ढिंढोरा पिटवाया कि कोई राजा हो या निर्धन प्रजा हो, सभीको उचित है कि इस गीतगोविन्दका मधुर स्वरोंसे गान करें। उस समय ऐसी भावना रखें कि प्रियाप्रियतम श्रीराधाश्यामसुन्दर समीप विराजकर श्रवण कर रहे हैं।

गीतगोविन्दके महत्त्वको मुलतानके एक मुगलसरदारने एक ब्राह्मणसे सुन लिया। उसने घोषित रीतिके अनुसार गान करनेका निश्चय करके अष्टपदियोंको कण्ठस्थ कर लिया। जब वह घोड़ेपर चढ़कर चलता था तो उस समय घोड़ेपर आगे भगवान् विराजे हैं ऐसा ध्यान कर लेता था, फिर गान करता था। एक दिन उसने घोड़ेपर प्रभुको आसन नहीं दिया और गान करने लगा, फिर क्या देखा कि मार्गमें घोड़ेके आगे-आगे मेरी ओर मुख किये हुए श्यामसुन्दर पीछेको चलते हैं और गान सुन रहे हैं। घोड़ेसे उतरकर उसने प्रभुके चरणस्पर्श किये तथा नौकरी छोड़कर विरक्त वेश धारण कर लिया। गीतगोविन्दका अनन्त प्रताप है, इसकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जिसपर स्वयं रीझकर भगवान्‌ने उसमें अपने हाथसे पद लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

सुता एक मालीकी जू बैंगनकी वारी मांझ तोरै वनमाली गावै कथा सर्ग पांच की।
डोलैं जगन्नाथ पांछे काछें अंग मिहींझँगा आछे कहि घूमैं सुधि आवै विरहांच की॥
फट्यो पट देखि नृप पूछी अहो भयो कहा? जानत न हम अब कहो बात सांच की।
प्रभु ही जनाई मनभाई मेरे वही गाथा ल्याये वही बालकी कौं पालकी में नाच की॥ १५०॥
फेरी नृप डौंड़ी यह औंड़ी बात जानि महा कही राजा रंक पढ़ैं नीकी ठौर जानिकैं।
अक्षर मधुर और मधुर स्वरनि ही सों गावै जब लाल प्यारी ढिग हिलैं आनिकैं॥
सुनि यह रीति एक मुगल ने धारि लई पढ़ै चढ़ै घोड़े आगे श्यामरूप ठानि कैं।
पोथी को प्रताप स्वर्ग गावत हैं देव बधू आप ही जू रीझि लिख्यो निजकर आनि कैं॥ १५१॥

(ग) श्रीजयदेवजीकी साधुता

श्रीजयदेवजीको एक बार एक सेवकने अपने घर बुलाया। दक्षिणामें आग्रह करके कुछ मुहरें देने लगा, आपके मना करनेपर भी उसने आपकी चद्दरमें मुहरें बाँध दीं। आप अपने आश्रमको चले, तब मार्गमें उन्हें ठग मिल गये। आपने उनसे पूछा कि तुमलोग कहाँ जाओगे? ठगोंने उत्तर दिया—जहाँ तुम जा रहे हो, वहीं हम भी जायँगे। श्रीजयदेवजी समझ गये कि ये ठग हैं। आपने गाँठ खोलकर सब मुहरें उन्हें दे दीं और कहा कि इनमेंसे जितनी मोहर आप लेना चाहें ले लें। उन दुष्टोंने अपने मनमें सोच-समझकर कहा कि इन्होंने मेरे साथ चालाकी की है। अभी तो भयवश सब धन बिना माँगे ही हमें सौंप दिया है। परंतु इनके मनमें यही है कि यहाँसे तो चलने दो, आगे जब नगर आयेगा तो शीघ्र ही इन सबोंको पकड़वा दूँगा।

यह सोचकर उन ठगोंने श्रीजयदेवजीके हाथ-पैर काटकर बड़े गड्ढेमें डाल दिये और अपने-अपने घरोंको चले गये। थोड़े समय बाद ही वहाँ एक राजा (लक्ष्मणसेन) आया। उसने देखा कि श्रीजयदेवजी संकीर्तन कर रहे हैं और गड्ढेमें दिव्य प्रकाश छाया है तथा हाथ-पैर कटे होनेपर भी वे परम प्रसन्न हैं। तब उन्हें गड्ढेसे बाहर निकालकर राजाने हाथ-पैर कटनेका प्रसंग पूछा। जयदेवजीने उत्तर दिया कि मुझे इस प्रकारका ही शरीर प्राप्त हुआ है।

श्रीजयदेवजीके दिव्य दर्शन एवं मधुर वचनामृतको सुनकर राजाने मनमें विचारा कि मेरा बड़ा भारी सौभाग्य है कि ऐसे सन्तके दर्शन प्राप्त हुए। राजा उन्हें पालकीमें बिठाकर घर ले आया। चिकित्साके द्वारा कटे हुए हाथ-पैरोंके घाव ठीक करवाये, फिर श्रीजयदेवजीसे प्रार्थना की कि अब आप मुझे आज्ञा दीजिये कि कौन-सी सेवा करूँ? श्रीजयदेवजीने कहा कि राजन्! भगवान् और भक्तोंकी सेवा कीजिये। ऐसी आज्ञा पाकर राजा साधु-सेवा करने लगा। इसकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। एक दिन वे ही चारों ठग सुन्दर कण्ठी-माला धारणकर राजाके यहाँ आये। उन्हें देखते ही श्रीजयदेवजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—देखो, आज तो मेरे बड़े गुरु भाई लोग आये हैं। ऐसा कहकर उन्होंने सबका बड़ा ही स्वागत किया।

श्रीजयदेवजीने शीघ्र राजाको बुलवाकर कहा कि इनकी प्रेमसे यथोचित सेवा करके संत-सेवाका फल प्राप्त कर लो। आज्ञा पाकर राजा उन्हें भीतर महलमें ले गया और अनेक सेवकोंको उनकी सेवामें लगा दिया, परंतु उन चारोंके मन अपने पापसे व्याकुल थे, उन्हें भय था कि यह हमें पहचान गया है, राजासे कहकर मरवा देगा। वे राजासे बार-बार विदा माँगते थे, पर राजा उन्हें जाने नहीं देता था। तब श्रीजयदेवजीके कहनेपर राजाने अनेक प्रकारके वस्त्र-रत्न-आभूषण आदि देकर उन्हें विदा किया। सामानको ढोनेके लिये साथमें कई मनुष्योंको भी भेजा।

राजाके सिपाही गठरियोंको लेकर उन ठग-सन्तोंको पहुँचानेके लिये उनके साथ-साथ चले, कुछ दूर जानेपर राजपुरुषोंने उन सन्तोंसे पूछा कि भगवन्! राजाके यहाँ नित्य संत-महात्मा आते-जाते रहते हैं, परंतु स्वामीजीने जितना सत्कार आपका किया और राजासे करवाया है, ऐसा किसी दूसरे साधु-सन्तका सेवा-सत्कार आजतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हुआ। इसलिये हम प्रार्थना करते हैं कि आप बताइये कि स्वामीजीसे आपका क्या सम्बन्ध है? उन्होंने कहा—यह बात अत्यन्त गोपनीय है, मैं तुम्हें बताता हूँ, पर तुम किसीसे मत कहना। पहले तुम्हारे स्वामीजी और हम सब एक राजाके यहाँ नौकरी करते थे। वहाँ इन्होंने बड़ा भारी अपराध किया। राजाने इन्हें मार डालनेकी आज्ञा दी। परंतु हमने अपना प्रेमी जानकर इनको मारा नहीं। केवल हाथ-पैर काटकर राजाको दिखा दिया और कह दिया कि हमने मार डाला। उसी उपकारके बदलेमें हमारा सत्कार विशेषरूपसे कराया गया है।

उन कृतघ्नी साधु-वेषधारियोंके इस प्रकार झूठ बोलते ही पृथ्वी फट गयी और वे सब उसमें समा गये। इस दुर्घटनासे राजपुरुष लोग आश्चर्यचकित हो गये। वे सब-के-सब दौड़कर स्वामीजीके पास आये और जैसा हाल था, कह सुनाया। उसके सुनते ही श्रीजयदेवजी दुःखी होकर हाथ-पैर मलने लगे। उसी क्षण उनके हाथ-पैर बड़े सुन्दर जैसे थे, वैसे ही फिर हो गये। राजपुरुषोंने दोनों आश्चर्यजनक घटनाओंको राजासे कह सुनाया। हाथ-पैर पूरे हो जानेकी घटना सुनकर राजा अति प्रसन्न हुआ। उसी समय वह दौड़कर स्वामीजीके समीप आया और चरणोंमें सिर रखकर पूछने लगा—प्रभो! कृपा करके इन दोनों चरित्रोंका रहस्य खोलकर कहिये कि क्यों धरती फटी और उसमें सब साधु कैसे समाये? आपके ये हाथ-पैर कैसे निकल आये?

राजाने स्वामीजीसे जब अत्यन्त हठ किया। तब उन्होंने सब बात खोलकर कह दी, फिर बोले कि देखो राजन्! यह सन्तोंका वेष अत्यन्त अमूल्य है, इसकी बड़ी भारी महिमा है। सन्तोंके साथ कोई चाहे जैसी और चाहे जितनी बुराई करे तो भी वे उस बुराई करनेवालेका बुरा न सोचकर बदलेमें उसके साथ भलाई ही करते हैं। साधुताका त्याग न करनेपर सन्त, महापुरुष एवं भगवान् श्रीश्यामसुन्दर मिल जाते हैं। राजाने श्रीजयदेवजीका नाम तो सुना था, पर उसने कभी दर्शन नहीं किया था। आज जब उसने श्रीजयदेवजीके नाम-गाँवको जाना तो प्रसन्न होकर कहने लगा कि आप कृपाकर यहाँ विराजिये। आपके यहाँ विराजनेसे मेरे पूरे देशमें प्रेमभक्ति फैल गयी है।

श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका वर्णन इन कवित्तोंमें किया है—

पोथी की तो बात सब कही मैं सुहात हिये सुनो और बात जामें अति अधिकाइये।
गाँठि में मुहर मग चलत में ठग मिले कहो कहाँ जात जहाँ तुम चलि जाइये॥
जानि लई बात खोलि द्रव्य पकराय दियो, लियो चाहो जोई-जोई सोइ मोकों ल्याइये।
दुष्टनि समुझि कही कीनी इन विद्या अहो आवै जो नगर इन्हें बेगि पकराइये॥ १५२॥
एक कहै डारो मार भलो है विचार यही एक कहै मारौ मत धन हाथ आयो है।
जो पै ले पिछान कहूँ, कीजिये निदान कहा? हाथ पाँव काटि बड़े गाढ़ पधरायो है॥
आयो तहाँ राजा एक देखिकै विवेक भयो छायो उजियारो औ प्रसन्न दरसायो है।
बाहर निकासि मानो चन्द्रमा प्रकास राशि पूछ्यो इतिहास कह्यो ऐसो तनु पायो है॥ १५३॥
बड़ेई प्रभाववान सकै को बखान अहो मेरे कोऊ भूरि भाग दरशन कीजियै।
पालकी बिठाय लिये किये सब ठूठ नीके जीके भाये भये कछु आज्ञा मोहिं दीजियै॥
करौ हरि साधु सेवा नाना पकवान मेवा आवैं जोई सन्त तिन्हैं देखि देखि भीजियै।
आये वेई ठग माला तिलक चिलक किये किलकि के कही बड़े बन्धु लखि लीजियै॥ १५४॥
नृपति बुलाय कही हिये हरि भाय भरि ढरे तेरे भाग अब सेवा फल लीजियै।
गयो लै महल माँझ टहल लगाये लोग लागे होन भोग जिय शंका तन छीजियै॥
माँगैं बार बार विदा राजा नहीं जान देत अति अकुलाये कही स्वामी धन दीजियै।
दैकै बहु भाँति सो पठाये संग मानुष हूँ आवौ पहुँचाय तब तुम पर रीझियै॥ १५५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछैं नृप नर कोऊ तुम्हरी न सरवर जिते आये साधु ऐसी सेवा नहीं भई है।
स्वामीजू सौं नातौ कहा? कहौ हम खांइ हा हा राखियो दुराइ यह बात अति नई है॥
हूते एक ठौर नृप चाकरीमें तहा इन कियोई बिगार 'मारि डारो' आज्ञा दई है।
राखे हम हितू जानि लै निदान हाथ-पाव वाही के इसान अब हम भरि लई है॥ १५६॥
फाटि गई भूमि सब ठग वे समाइ गये भये ये चकित दौरि स्वामी जू पै आये हैं।
कही जिती बात सुनि गात गात कांपि उठे हाथ-पांव मीड़ैं भये ज्योंके त्यों सुहाये हैं॥
अचरज दोऊ नृप पास जा प्रकाश किये जिये एक सुनि आये वाही ठौर धाये हैं।
पूछैं बार-बार सीस पांयनि पै धारि रहे कहिये उघारि कैसे मेरे मन भाये हैं॥ १५७॥
राजा अति आरि गही कही सब बात खोलि निपट अमोल यह सन्तन को वेस है।
कैसो अपकार करै तऊ उपकार करै ढरैं रीति आपनी ही सरस सुदेस है॥
साधुता न तजैं कभूं, जैसे दुष्ट दुष्टता न यही जानि लीजै मिले रसिक नरेस है।
जान्यो जब नांव ठांव रहो इहा बलि जांव भयो मैं सनाथ प्रेम भक्ति भई देस है॥ १५८॥

(घ) जयदेवजीकी पत्नी पद्मावतीजीका पतिप्रेम

श्रीजयदेवजीकी आज्ञासे राजा किन्दुबिल्व आश्रमसे उनकी पत्नी श्रीपद्मावतीजीको लिवा लाये। श्रीपद्मावतीजी रानीके निकट रनिवासमें रहने लगीं। एक दिन जब रानी पद्मावतीके निकट बैठी थी। उसी समय किसीने आकर रानीको सूचित किया कि तुम्हारा भाई शरीर छोड़कर देवलोकवासी हुआ और तुम्हारी भावजोंमेंसे एक सती हो गयी। यह सुनकर रानीको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि हमारी भाभी कितनी बड़ी सती साध्वी थीं। श्रीपद्मावतीजीको इससे कुछ भी आश्चर्य न हुआ। उन्होंने रानीको समझाया कि पतिके स्वर्गवासी होनेपर उनके मृत शरीरके साथ जल जाना उत्तम पातिव्रत-सूचक है, परंतु अनन्य प्रीतिकी यह रीति है कि प्रियतमके प्राण छूट जायँ तो अपने प्राण भी उसी समय शरीरको छोड़कर साथ चले जायँ।

पद्मावतीजीने रानीकी भाभीकी प्रशंसा नहीं की, इससे रानीने व्यंग्य करते हुए कहा कि आपने जैसी पतिव्रता बतायी ऐसी तो केवल आप ही हो। समय पाकर सब बात रानीने राजासे कहकर फिर यों कहा—आप स्वामीजी (श्रीजयदेवजी)-को थोड़ी देरके लिये बागमें ले जाओ, तब मैं यह देखूँगी कि इनकी पतिमें कैसी प्रीति है। राजाने रानीका विचार सुनकर कहा कि यह उचित नहीं है। जब रानीने बड़ा हठ किया, तब राजाने उसकी बात मानकर वैसा ही किया, राजाके साथ स्वामीजीके बागमें चले जानेपर रानीकी सिखायी हुई एक दासीने आकर पद्मावतीजीको सुनाया कि स्वामीजी भगवान्‌के धामको चले गये। यह सुनते ही रानी और समीप बैठी हुई स्त्रियाँ दुःख प्रकट करनेके ढोंगको रचकर धरतीपर लोटने और रोने लगीं। ध्यानद्वारा जानकर थोड़ी देर बाद भक्तवधू श्रीपद्मावतीजी बोलीं—अजी रानीजी! मेरे स्वामीजी तो बहुत अच्छी तरहसे हैं, तुम अचानक ही इस प्रकार क्यों धोखेमें आकर डर रही हो?

रानीकी मायाका श्रीपद्मावतीजीपर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ, भेद खुल गया, इससे रानीको बड़ी लज्जा हुई। जब कुछ दिन बीत गये तो फिर दूसरी रानीने उसी प्रकारकी तैयारी करके माया-जाल रचा। श्रीपद्मावतीजी अपने मनमें समझ गयीं कि रानी परीक्षा लेना चाहती है तो परीक्षा दे ही देना चाहिये। इस बार जैसे ही किसी दासीने आकर कहा अजी! स्वामीजी तो प्रभुको प्राप्त हो गये। वैसे ही झट पतिप्रेमसे परिपूर्ण होकर श्रीपद्मावतीजीने अपना शरीर छोड़ दिया। इनके मृतक शरीरको देखकर रानीका मुख कान्तिहीन सफेद हो गया। राजा आये और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने जब यह सब जाना तो कहने लगे कि इस स्त्रीके चक्करमें आकर मेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गयी, अब इस पापका यही प्रायश्चित्त है कि मैं भी जल मरूँ। श्रीजयदेवजीको जब यह समाचार मिला तो वे दौड़कर वहाँपर आये और मरी हुई पद्मावतीको तथा मरनेके लिये तैयार राजाको देखा। राजाने कहा कि इनको मृत्यु मैंने दी है। जयदेवजीने कहा—तो अब तुम्हारे जलनेसे ये जीवित नहीं हो सकती हैं। अत: तुम मत जलो।

राजाने कहा—महाराज! अब तो मुझे जल ही जाना चाहिये; क्योंकि मैंने आपके सभी उपदेशोंको धूलमें मिला दिया। श्रीजयदेवजीने राजाको अनेक प्रकारसे समझाया, परंतु उसके मनको कुछ भी शान्ति नहीं मिली, तब आपने गीतगोविन्दकी एक अष्टपदीका गान आरम्भ किया। संगीत-विधिसे अलाप करते ही पद्मावतीजी जीवित हो गयीं। इतनेपर भी राजा लज्जाके मारे मरा जा रहा था और आत्महत्या कर लेना चाहता था। वह बार-बार मनमें सोचता था कि ऐसे महापुरुषका संग पाकर भी मेरे मनमें भक्तिका लेशमात्र भी नहीं आया। श्रीजयदेवजीने समझा-बुझाकर राजाको शान्त किया और किन्दुबिल्व ग्रामको चले आये।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

गये जा लिवाय ल्याय कविराज राजतिया किया लै मिलाप आप रानी ढिग आई हैं।
मर्‍यो एकभाई वाकी भई यों भौजाई सती कोऊ अंग काटि कोऊ कूदि परी धाई हैं॥
सुनत ही नृप बधू निपट अचम्भो भयो इनकैं न भयो फिरि कही समुझाई हैं।
प्रीति की न रीति यह बड़ी विपरीत अहो छुटै तन जबै प्रिया प्रान छूटि जाई हैं॥ १५९॥
'ऐसी एक आप' कहि राजा सूं यूं बात कही लैके जाओ बाग स्वामी नेकु देखौं प्रीतिकों।
निपट बिचारी बुरी देत मेरे गरे छुरी तिया हठ मानि करी वैसे ही प्रतीति कों॥
आनि कहैं आपु पाये कही यही भांति आय बैठी ढिग तिया देखि लोटि गई रीति कों।
बोलीं भक्तबधू अजू वे तो हैं बहुत नीके तुम कहा औचक ही पावति हो भीति कों॥ १६०॥
भई लाज भारी पुनि फेरि कै सँवारी दिन बीति गये कोऊ जब तब वही कीनी है।
जानि गई भक्त बधू चाहति परीछा लियो कही अजू पाये सुनि तजी देह भीनी है॥
भयो मुखस्वेत रानी राजा आये जानी यह रची चिता जरौं मति भई मेरी हीनी है।
भई सुधि आपकौं सु आये बेगि दौरि इहाँ देखि मृत्यु प्राय नृप कह्यो मेरी दीनी है॥ १६१॥
बोल्यो नृप अजू मोहिं जरेई बनत अब सब उपदेश लैकै धूरिमें मिलायौ है।
कह्यौ बहु भांति ऐपै आवति न शांति किहूँ गाई अष्टपदी सुर दियौ तन ज्यायौ है॥
लाजनिको मार्‌यो राजा चहै अपघात कियौ जियो नहिं जाति भक्ति लेसहूं न आयौ है।
करि समाधान निज ग्राम आये किंदुबिल्लु जैसो कछु सुन्यौ यह परचै लै गायौ है॥ १६२॥

(ङ) श्रीजयदेवजीकी गंगाजीके प्रति निष्ठा

श्रीजयदेवजीका जहाँ आश्रम था, वहाँसे गंगाजीकी धारा अठारह कोस दूर थी। परंतु आप नित्य गंगा-स्नान करते थे। जब आपका शरीर अत्यन्त वृद्ध हो गया, तब भी आप अपने गंगा-स्नानके नित्य-नियमको कभी नहीं छोड़ते थे। इनके बड़े भारी प्रेमको देखकर इन्हें सुख देनेके लिये रातको स्वप्नमें श्रीगंगाजीने कहा—अब तुम स्नानार्थ इतनी दूर मत आया करो, केवल ध्यानमें ही स्नान कर लिया करो। धारामें जाकर स्नान करनेका हठ मत करो। श्रीजयदेवजीने इस आज्ञाको स्वीकार नहीं किया। तब फिर गंगाजीने स्वप्नमें कहा—तुम नहीं मानते हो तो मैं ही तुम्हारे आश्रमके निकट सरोवरमें आ जाऊँगी। तब आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—मैं कैसे विश्वास करूँगा कि आप आ गयी हैं। गंगाजीने कहा—जब आश्रमके समीप जलाशयमें कमल खिले देखना, तब विश्वास करना कि गंगाजी आ गयीं। ऐसा ही हुआ, खिले हुए कमलोंको देखकर श्रीजयदेवजीने वहीं स्नान करना आरम्भ कर दिया। आपने अन्तकालमें श्रीवृन्दावनधामको प्राप्त किया।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

देवधुनी सोत हो अठारै कोस आश्रम तैं सदाई स्नान करैं धरैं जोग्यताई कौं।
भयो तन वृद्ध तऊँ छोड़ें नहीं नित्य नेम प्रेम देखि भारी निशि कही सुखदाई कौं॥
आवौ जिनि ध्यान करौ, करौ मत हठ ऐसो मानी नहीं आऊँ मैं ही जानौं कैसे आई कौं।
फूले देखौ कंज तब कीजियो प्रतीति मेरी भई वही भांति सेवैं अबलौं सुहाई कौं॥ १६३॥

श्रीश्रीधरस्वामीजी

तीनि कांड एकत्व सानि कोउ अग्य बखानत।
कर्मठ ग्यानी ऐंचि अर्थ कौ अनरथ बानत॥
परमहंस संहिता बिदित टीका बिसतार्‍यो।
षट सास्त्रनि अबिरुद्ध बेद संमतहि बिचार्‍यो॥
परमानंद प्रसाद तें माधौ सुकर सुधार दियो।
श्रीधर श्रीभागवत में परम धरम निरनय कियो॥ ४५॥

श्रीश्रीधरस्वामीने श्रीमद्भागवतमें परमधर्मका निर्णय किया। श्रीभागवतधर्मके रहस्योंको ठीक प्रकारसे न जाननेके कारण कुछ विद्वानोंने तीनों (कर्म, ज्ञान, उपासना) काण्डोंको एकमें मिश्रित करके श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की। कर्मकाण्डी और शुष्क ज्ञानी लोग खींचातानी एवं कठिन कल्पनाएँ करके अर्थका विपरीत अर्थ (अनर्थ) करते थे। जिज्ञासु भक्तगण शंकित हो जाते थे, वास्तविक तात्पर्य ओझल हो जाता था। ऐसी स्थितिमें विश्वविख्यात 'परमहंससंहिता' की विद्वानोंमें प्रसिद्ध टीका 'भावार्थ-दीपिका' की रचना स्वामी श्रीधराचार्यजीने की। उसमें षट्शास्त्र एवं षड्-दर्शनोंके सर्वथा अनुकूल तथा वेदोपनिषद्-सम्मत सिद्धान्तका समर्थन किया। श्रीधरस्वामीके गुरुदेव श्रीपरमानन्द-सरस्वतीपादजीकी कृपासे भगवान् विन्दुमाधवने श्रीधरकृतटीकाको अपने हस्तकमलसे सुधार दिया, हस्ताक्षरित करके सर्वोत्तम सिद्ध किया॥ ४५॥

यहाँ श्रीश्रीधरस्वामीजीके विषयमें संक्षेपमें कुछ विवरण प्रस्तुत है—

दक्षिण भारतके किसी नगरमें वहाँके राजा और मन्त्रीमें मार्ग चलते समय भगवान्‌की कृपा तथा प्रभावके सम्बन्धमें बात हो रही थी। मन्त्री कह रहे थे—'भगवान्‌की उपासनासे उनकी कृपा प्राप्त करके मूर्ख भी विद्वान् हो जाता है।' संयोगकी बात या दयामय भगवान्‌की इच्छा—राजाने देखा कि एक बालक फूटे पात्रमें तेल लिये जा रहा है। राजाने मन्त्रीसे पूछा—'क्या यह बालक भी बुद्धिमान् हो सकता है?' मन्त्रीने बड़े विश्वासके साथ कहा—'भगवान्‌की कृपासे अवश्य हो सकता है।' बालक बुलाया गया। पता लगा कि वह ब्राह्मणका बालक है। उसके माता-पिता उसे बचपनमें ही छोड़कर परलोक चले गये थे। परीक्षाके लिये नृसिंहमन्त्रकी दीक्षा दिलाकर उसे आराधनामें लगा दिया गया। बालक भी सब प्रकारसे भगवान्‌के भजनमें लग गया। उस अनाथ बालककी भक्ति देखकर नृसिंहरूपमें दर्शन देकर भगवान्‌ने बालकको वरदान दिया—'तुम्हें वेद, वेदांग, दर्शनशास्त्र आदिका सम्पूर्ण ज्ञान होगा और मेरी भक्ति तुम्हारे हृदयमें निवास करेगी।' बालक और कोई नहीं श्रीधर स्वामी ही थे।

अब इस बालककी विद्वत्ताका क्या पूछना! भगवान्‌की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी हुई विद्याकी लोकमें भला, कौन बराबरी कर सकता था! बड़े-बड़े विद्वान् इनका सम्मान करने लगे। राजा इन्हें आदर देने लगे। धनका अभाव नहीं रहा। विवाह हुआ और पत्नी आयी। परंतु गृहस्थ होकर भी इनका चित्त घरमें लगता नहीं था। सब कुछ छोड़कर केवल प्रभुका भजन किया जाय, इसके लिये इनके प्राण तड़पते रहते थे। इनकी स्त्री गर्भवती हुई, प्रथम सन्तानको जन्म देकर वह परलोक चली गयी। स्त्रीकी मृत्युसे इन्हें दुःख नहीं हुआ। इन्होंने इसे प्रभुकी कृपा ही माना। परंतु अब नवजात बालकके पालन-पोषणमें ही व्यस्त रहना इन्हें अखरने लगा। एक दिन लीलामय प्रभुकी लीलासे इनके सामने घरकी छतसे एक पक्षीका अण्डा भूमिपर गिर पड़ा और फूट गया। अण्डा पक चुका था। उससे लाल-लाल बच्चा निकलकर अपना मुख हिलाने लगा। इनको ऐसा लगा कि इस बच्चेको भूख लगी है; यदि अभी कुछ न मिला तो यह मर जायगा। उसी समय एक छोटा कीड़ा उड़कर फूटे अण्डेके रसपर आ बैठा और उसमें चिपक गया। पक्षीके बच्चेने उसे खा लिया। भगवान्की यह लीला देखकर श्रीधर स्वामीके हृदयमें बल आ गया। यह सोचकर कि सबका भरण-पोषण भगवान् स्वयं करते हैं। ये वहाँसे काशी चले आये। विश्वनाथपुरीमें आकर ये भगवान्के भजनमें तल्लीन हो गये।

श्रीश्रीधरस्वामीजी श्रीबिन्दुमाधवजीके बड़े ही भक्त थे। काशीवास करते समय एक विद्यार्थी आपकी सेवामें रहा करता था, संयोगसे उसका भी नाम माधव ही था। एक बारकी बात है, आप बीमार पड़ गये, उस समय माधव आपकी सेवामें था। उसी बीच माधवके पिताजी भी बीमार पड़ गये। परदुःखकातर श्रीस्वामीजीने स्वयं अस्वस्थ रहते हुए भी माधवको उसके पिताकी सेवामें आग्रहपूर्वक भेज दिया। माधव गुरुकी आज्ञा मानकर चला गया, इधर स्वामीजी ज्वरकी अधिकतासे अचेतावस्थामें हो गये और माधव! माधव! कहकर उसे बुलाने लगे। भक्तवत्सल भगवान्ने अपने भक्तकी पुकार सुनकर विद्यार्थी माधवका रूप बनाया और आ गये सेवा करने। अब विद्यार्थी बने भगवान् बिन्दुमाधव श्रीधर स्वामीकी समस्त परिचर्या करते। इस प्रकार कई दिन बीत गये। श्रीस्वामीजी स्वस्थ हो गये, उधर विद्यार्थी माधवके पिता भी स्वस्थ हो गये थे, अतः वह गुरुजीके पास लौट आया। उसे आया देख भगवान् अन्तर्धान हो गये। आनेपर माधवने देखा कि चूल्हा जल रहा है और उसपर खिचड़ी बन रही है, पर कोई बनानेवाला न दिखायी दिया। श्रीस्वामीजी विश्राम कर रहे थे। बालक माधवने गुरुजीको अपने पिताके स्वस्थ हो जानेकी सूचना दी और पूछा—गुरुदेव! यह खिचड़ी कौन पका रहा है? श्रीस्वामीजी आश्चर्यचकित हो बोले—बेटा माधव! अभी-अभी तूने ही तो चूल्हा जलाकर खिचड़ी चढ़ायी है, फिर मुझसे क्यों पूछ रहा है? माधवने कहा—गुरुजी! मैं तो आपकी आज्ञासे ही अपने अस्वस्थ पिताकी सेवामें गाँव गया था, फिर मैंने कैसे आपकी सेवा की? अब श्रीश्रीधर स्वामीजीके समक्ष सारी बात स्पष्ट हो गयी कि मेरे 'माधव-माधव' पुकारनेपर आकर मेरी सेवा करनेवाले स्वयं भक्तवत्सल भगवान् बिन्दुमाधवजी ही थे। कुछ कालतक काशीवास करनेके बाद आप श्रीधाम श्रीवृन्दावन चले आये।

गीता, भागवत, विष्णुपुराणपर श्रीधर स्वामीकी टीकाएँ मिलती हैं। इनकी टीकाओंमें भक्ति तथा प्रेमका अखण्ड प्रवाह है। एकमात्र श्रीधर स्वामी ही ऐसे हैं कि जिनकी टीकाका सभी सम्प्रदायके लोग आदर करते हैं। कुछ लोगोंने इनकी भागवतकी टीकापर आपत्ति की, उस समय इन्होंने वेणीमाधवजीके मन्दिरमें भगवान्के पास ग्रन्थ रख दिया। कहते हैं कि स्वयं भगवान्ने अनेक साधु-महात्माओंके सम्मुख वह ग्रन्थ उठाकर हृदयसे लगा लिया। भगवान्के ऐसे लाड़ले भक्त ही पृथ्वीको पवित्र करते हैं।

इस घटनाका वर्णन भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

पंडित समाज बड़े बड़े भक्तराज जिते भागवत टीका करि आपसमें रीझिये।
भयो जू विचार काशीपुरी अविनाशी मांझ सभा अनुसार जोई सोई लिखि दीजिये॥
ताको तो प्रमान भगवान बिन्दुमाधौजी हैं साधौ यही बात धरि मन्दिर में लीजिये।
धरे सब जाय प्रभु सुकर बनाय दियो कियो सर्व ऊपर लै चल्यो मति धीजिये॥ १६४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीबिल्वमंगलजी

करुनामृत सुकबित्त जुक्ति अनुचिष्ट उचारी।
रसिक जनन जीवन जु हृदय हारावलि धारी॥
हरि पकरायो हाथ बहुरि तहँ लियो छुटाई।
कहा भयो कर छुटैं बदौं जौ हिय तें जाई॥
चिंतामनि सँग पाय कें ब्रजबधू केलि बरनी अनुप।
कृष्न कृपा कां पर प्रगट बिल्वमँगल मंगलस्वरुप॥ ४६॥

भगवान् श्रीकृष्णके परम कृपापात्र श्रीबिल्वमंगलजी इस संसारमें प्रत्यक्ष मंगल-कल्याणके स्वरूप थे। विश्वका मंगल ही बिल्वमंगलके रूपमें प्रकट हुआ। आपने 'श्रीकृष्णकर्णामृत' नामक सुन्दर काव्यका निर्माण किया, जिसकी उक्तियाँ सर्वथा नयी हैं, दूसरे कवियोंकी जूठी नहीं हैं। प्रेमाभक्तिसे प्रकट सहज एवं दिव्य उद्‌गार हैं। श्रीकृष्णकर्णामृत रसिकभक्तोंका जीवन-प्राण है, उन्होंने इसे कई लड़ियोंके हारके समान अपने हृदयमें धारण किया है। एक बार भगवान् श्यामसुन्दरने (अन्धा होनेपर वृन्दावनका) मार्ग दिखाते हुए अपना हाथ पकड़ाया और फिर उसे छुड़ा लिया। उस समय आपने उनसे कहा—हाथ छुड़ाकर चले जानेसे क्या हुआ, मैं तुम्हें वीर पुरुष तब समझूँ, जब मेरे हृदयके बन्धनसे छूटकर चले जाओ। आपने चिन्तामणिका संग पाकर व्रजगोपियोंके साथ हुई श्रीकृष्णकी लीलाओंका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। उसके द्वारा सभी भक्तोंका मंगल हुआ, अतः आप मंगलकी मूर्ति ही थे॥ ४६॥

(क) भक्त बिल्वमंगलका प्रारम्भिक जीवन

दक्षिण प्रदेशमें कृष्णवेणा नदीके तटपर एक ग्राममें रामदास नामक एक भगवद्भक्त ब्राह्मण निवास करते थे। उन्हींके पुत्रका नाम था बिल्वमंगल। पिताने यथासाध्य पुत्रको धर्मशास्त्रोंकी शिक्षा दी थी। परंतु पिता-माताके देहावसानके बाद संगदोषसे बिल्वमंगलके अन्तःकरणमें अनेक दोषोंने अपना घर कर लिया। यहाँतक कि वह चिन्तामणि नामक एक वेश्याके रूपपर आसक्त हो गया।

आज बिल्वमंगलके पिताका श्राद्ध है, विद्वान् कुलपुरोहित बिल्वमंगलसे श्राद्धके मन्त्रोंकी आवृत्ति करवा रहे हैं, परंतु उसका मन 'चिन्तामणि' की चिन्तामें निमग्न है। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। किसी प्रकार श्राद्ध समाप्तकर जैसे-तैसे ब्राह्मणोंको झटपट भोजन करवाकर बिल्वमंगल चिन्तामणिके घर जानेको तैयार हुआ। सन्ध्या हो चुकी थी, लोगोंने समझाया कि 'भाई! आज तुम्हारे पिताका श्राद्ध है, वेश्याके घर नहीं जाना चाहिये।' परंतु कौन सुनता था। उसका हृदय तो कभीका धर्म-कर्मसे शून्य हो चुका था। बिल्वमंगल दौड़कर नदीके किनारे पहुँचा। अकस्मात् प्रबल वेगसे तूफान आया और उसीके साथ मूसलधार वर्षा होने लगी, रात-दिन नदीमें रहनेवाले केवटोंने भी नावोंको किनारे बाँधकर वृक्षोंका आश्रय लिया, परंतु बिल्वमंगलपर इन सबका कोई असर नहीं पड़ा। उसने केवटोंसे उस पार ले चलनेको कहा, उतराईका भी गहरा लालच दिया; परंतु मृत्युका सामना करनेको कौन तैयार होता। अन्तमें वह अधीर हो उठा और कुछ भी आगा-पीछा न सोचकर तैरकर पार जानेके लिये सहसा नदीमें कूद पड़ा। संयोगवश नदीमें एक मुर्दा बहा जा रहा था। बिल्वमंगल तो बेहोश था, उसने उसे काठ समझा और उसीके सहारे नदीके उस पार चला गया। कुछ ही दूरपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तामणिका घर था। श्राद्धके कारण आज बिल्वमंगलके आनेकी बात नहीं थी, अतएव चिन्तामणि घरके सब दरवाजोंको बन्द करके निश्चिन्त होकर सो चुकी थी। बिल्वमंगलने बाहरसे बहुत पुकारा; परंतु तूफानके कारण अन्दर कुछ भी नहीं सुनायी पड़ा। बिल्वमंगलने इधर-उधर ताकते हुए बिजलीके प्रकाशमें दीवालपर एक रस्सा-सा लटकता देखा, तुरंत उसने उसे पकड़ा और उसीके सहारे दीवाल फाँदकर अन्दर चला गया। चिन्तामणिको जगाया। वह तो इसे देखते ही स्तम्भित-सी रह गयी! नंगा बदन, सारा शरीर पानीसे भीगा हुआ, भयानक दुर्गन्ध आ रही है। उसने कहा—'तुम इस भयावनी रातमें नदी पार करके बन्द घरमें कैसे आये?' बिल्वमंगलने काठपर चढ़कर नदी पार होने और रस्सेकी सहायतासे दीवालपर चढ़नेकी कथा सुनायी! वृष्टि थम चुकी थी। चिन्ता दीपक हाथमें लेकर बाहर आयी, देखती है तो दीवालपर भयानक काला नाग लटक रहा है और नदीके तीर सड़ा मुर्दा पड़ा है। बिल्वमंगलने भी देखा और देखते ही काँप उठा। चिन्तामणिने भर्त्सना करके कहा—'तू ब्राह्मण है? अरे, आज तेरे पिताका श्राद्ध था, परंतु एक हाड़-मांसकी पुतलीपर तू इतना आसक्त हो गया कि अपने सारे धर्म-कर्मको तिलांजलि देकर इस डरावनी रातमें मुर्दे और साँपकी सहायतासे यहाँ दौड़ा आया! तू आज जिसे परम सुन्दर समझकर इस तरह पागल हो रहा है, उसका भी एक दिन तो वही परिणाम होनेवाला है, जो इस सड़े मुर्देका है! अरे! यदि तू इसी प्रकार उस मनमोहन श्यामसुन्दरसे मिलनेके लिये यों छटपटाकर दौड़ता तो अबतक उनको पाकर तू अवश्य ही कृतार्थ हो चुका होता!'

वेश्याकी वाणीने बड़ा काम किया! बाल्यकालकी स्मृति उसके मनमें जाग उठी। पिताजीकी भक्ति और उनकी धर्मप्राणताके दृश्य उसकी आँखोंके सामने मूर्तिमान् होकर नाचने लगे। बिल्वमंगलने चिन्तामणिके चरण पकड़ लिये और कहा—'माता! तूने आज मुझको दिव्यदृष्टि देकर कृतार्थ कर दिया।' मन-ही-मन चिन्तामणिको गुरु मानकर प्रणाम किया और उसी क्षण बिल्वमंगलके जीवन-नाटककी यवनिकाका परिवर्तन हो गया।

इस घटनाका वर्णन प्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

कृष्ण वेना तीर एक द्विज मतिधीर रहै ह्वै गयो अधीर संग चिन्तामनि पाइकै।
तजी लोकलाज हिये वाहीको जु राज भयौ निशि दिन काज वहै रहै घर जाइकै॥
पिताको सराध नेकु रह्यौ मन साधि दिन शेषमें आवेश चल्यौ अति अकुलाइकै।
नदी चढ़ी रही भारी पैये न अवारी नाव भाव भर्‍यो हियौ जियौ जात न धिजाइकै॥ १६५॥
करत विचार वारिधार में न रहै प्राण ताते भली धार मित्र सनमुख जाइयै।
परे कूदि नीर कछु सुधि न शरीर की है वही एक पीर कब दरसन पाइयै॥
पैयत न पार तन हारि भयो बूड़िबे कों मृतक निहारि मानी नाव मन भाइयै।
लगेई किनारे जाय चले पग धाय चाय आये पट लागे निशि आधी सो विहाइयै॥ १६६॥
अजगर घूमि झूमि भूमिको परस कियो लियोई सहारो चढ्यो छात पर जायकै।
ऊपर किवार लगे पर्‍यो कूदि आंगन में गिर्‍यो यों गरत रागी जागी सोर पायकै॥
दीपक बराइ जो पै देखै विल्वमंगल है बड़ोई अमंगल तूं कियो कहा आय कै।
जल अन्हवाय सूखे पट पहराय हाय! कैसें करि आयो जल पार द्वार धाय कै॥ १६७॥
नौका पठवाई द्वार लाव लटकाई देखि मेरे मन भाई मैं तो तबैं लई जानि कै।
चलो देखौं अहो, यह कहा धौं प्रलाप करै देख्यो विषधर महा खीजी अपमानि कै॥
जैसो मन मेरे हाड़ चाम सौं लगायो तैसो स्याम सों लगावो तौ पै जानिये सयानिकै।
मैं तो भये भोर भजौं युगल किशोर अब तेरी तुही जानै चाहौ करौ मन मानिकै॥ १६८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) सात्त्विक परिवर्तन

दोनोंने उस पूरी रात भगवान्‌का भजन किया और प्रातः होते ही चिन्तामणिने हरिद्वारकी और बिल्वमंगलने सन्त श्रीसोमगिरिजी महाराजके आश्रमकी राह ली। वहाँ गुरुदेवसे दीक्षा लेकर एक वर्षतक आश्रममें ही रहकर भजन-पूजन किया, फिर वृन्दावन धामके लिये चल पड़ा। एक दिन अकस्मात् उसे रास्तेमें एक परम रूपवती युवती दीख पड़ी, पूर्व-संस्कार अभी सर्वथा नहीं मिटे थे। युवतीका सुन्दर रूप देखते ही नेत्र चंचल हो उठे।

बिल्वमंगलको फिर मोह हुआ। वह युवतीके पीछे-पीछे उसके मकानतक गया। युवती अपने घरके अन्दर चली गयी, बिल्वमंगल उदास होकर घरके दरवाजेपर बैठ गया। घरके मालिकने बाहर आकर देखा कि एक मलिनमुख अतिथि ब्राह्मण बाहर बैठा है। उसने कारण पूछा। बिल्वमंगलने कपट छोड़कर सारी घटना सुना दी और कहा कि 'मैं एक बार फिर उस युवतीको प्राण भरकर देख लेना चाहता हूँ, तुम उसे यहाँ बुलवा दो।' युवती उसी गृहस्थकी धर्मपत्नी थी, अतिथिवत्सल गृहस्थ अपनी पत्नीको बुलानेके लिये अन्दर गया। इधर बिल्वमंगलको अपनी अवस्थाका यथार्थ ज्ञान हुआ, हृदय शोकसे भर गया और न मालूम क्या सोचकर उसने पासके बेलके पेड़से दो काँटे तोड़ लिये। इतनेमें ही गृहस्थकी धर्मपत्नी वहाँ आ पहुँची, बिल्वमंगलने उसे फिर देखा और मन-ही-मन अपनेको धिक्कार देकर कहने लगा कि 'अभागी आँखें! यदि तुम न होतीं तो आज मेरा इतना पतन क्यों होता?' इतना कहकर बिल्वमंगलने उन दोनों काँटोंको दोनों आँखोंमें भोंक लिया! आँखोंसे रुधिरकी अजस्र धारा बहने लगी! गृहस्थ और उसकी पत्नीको बड़ा दुःख हुआ, परंतु वे बेचारे निरुपाय थे। बिल्वमंगलका बचा-खुचा चित्त-मल भी आज सारा नष्ट हो गया और अब तो वह उस अनाथके नाथको अतिशीघ्र पानेके लिये बड़ा ही व्याकुल हो उठा। उसके जीवन-नाटकका यह तीसरा पट-परिवर्तन हुआ।

इस घटनाका वर्णन प्रियादासजीने निम्न कवित्तोंमें किया है—

खुलि गईं आँखैं अभिलाषैं रूप माधुरी कौं चाखैं रसरंग औ उमंग अंग न्यारियै।
बीन लै बजाई गाई विपिन निकुंज क्रीड़ा भयो सुख पुंज जापै कोटि विषै वारियै॥
बीति गई राति प्रात चले आप आप कों जू हिये वही जाप दृग नीरि भरि डारियै।
सोमगिरि नाम अभिराम गुरु कियो आनि सकै को बखानि लाल भुवन निहारियै॥ १६९॥
रहे सो बरस रस सागर मगन भये नये नये चोजके श्लोक पढ़ि जीजिये।
चले वृन्दावन मन कहै कब देखौं जाय आय मग मांझ एक ठौर मति भीजिये॥
पर्‍यो बड़ो सोर दृगकोर कै न चाहैं काहू तहां सर तिया न्हाति देखि आंखैं रीझिये।
लगे वाके पाछे कांछे कांछकी न सुधि कछू गई घर आछे रहे द्वार तन छीजिये॥ १७०॥
आयो वाको पति द्वार देखै भागवत ठाढ़े बड़े भागवत पूछी वधू सों जनाइयें।
कही जू पधारौ पाँव धारो गृह पावनकों पांवन पखारौं जल ढारौं सीस भाइयें॥
चले भौन मांझ मन आरति मिटायबेकौं गायवेकौं जोई रीति सोई कें बताइयें।
नारिसे कह्यौ है तू सिंगार करि सेवा कीजै लीजैयौं सुहाग जामें बेगि प्रभु पाइयें॥ १७१॥
चलीये सिंगार करि थार मैं प्रसाद लैके ऊँची चित्रसारी जहाँ बैठे अनुरागी हैं।
झनक मनक जाइ जोरि कर ठाढ़ी रही गही मति देखि-देखि नून वृत्ति भागी हैं॥
कही युगसूई ल्यावो, ल्याई, दई, लई, हाथ, फोरि डारी आंखैं अहो बड़ी ये अभागी हैं।
गई पति स्वास भरत न बोलि आवै बोली दुखपाय आय पांय परे रागी हैं॥ १७२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये अपराध हम साधु कौं दुखायौं अहो बड़े तुम साधु हम नाम साधु धर्‍यो है।
रहौ अजू सेवा करौं करी तुम सेवा ऐसी जैसी नहीं काहू मांझ मेरौ मन भर्‍यो है॥
चले सुख पाय दृगभूतसे छुटाइ दिये हिये ही की आंखिन सों अबै काम पर्‍यो है।
बैठे बन मध्य जाइ भूखे जानि आप आइ भोजन कराइ चलौ छाया दिन ढर्‍यो है॥ १७३॥

(ग) बिल्वमंगलपर भगवान्‌की कृपा

परम प्रियतम श्रीकृष्णके वियोगकी दारुण व्यथासे उसकी फूटी आँखोंने चौबीसों घण्टे आँसुओंकी झड़ी लगा दी। न भूखका पता है न प्यासका, न सोनेका ज्ञान है और न जगनेका। 'कृष्ण-कृष्ण' की पुकारसे दिशाओंको गुँजाता हुआ बिल्वमंगल जंगल-जंगल और गाँव-गाँवमें घूम रहा है! ऐसी दशामें प्रेममय श्रीकृष्ण कैसे निश्चिन्त रह सकते हैं। एक छोटे-से गोप-बालकके वेषमें भगवान् बिल्वमंगलके पास आकर अपनी मुनि-मनमोहिनी मधुर वाणीसे बोले,—'सूरदासजी! आपको बड़ी भूख लगी होगी, मैं कुछ मिठाई लाया हूँ, जल भी लाया हूँ; आप इसे ग्रहण कीजिये।' बिल्वमंगलके प्राण तो बालकके उस मधुर स्वरसे ही मोहे जा चुके थे, उसके हाथका दुर्लभ प्रसाद पाकर तो उसका हृदय हर्षके हिलोरोंसे उछल उठा! बिल्वमंगलने बालकसे पूछा, 'भैया! तुम्हारा घर कहाँ है, तुम्हारा नाम क्या है? तुम क्या करते हो?'

बालकने कहा, 'मेरा घर पास ही है, मेरा कोई खास नाम नहीं; जो मुझे जिस नामसे पुकारता है, मैं उसीसे बोलता हूँ, गौएँ चराया करता हूँ। मुझसे जो प्रेम करते हैं, मैं भी उनसे प्रेम करता हूँ।' बिल्वमंगल बालककी वीणा-विनिन्दित वाणी सुनकर विमुग्ध हो गया! बालक जाते-जाते कह गया कि 'मैं रोज आकर आपको भोजन करवा जाया करूँगा।' बिल्वमंगलने कहा, 'बड़ी अच्छी बात है; तुम रोज आया करो।'

एक दिन बालकबने उन नटवरनागरने अपनी दीवाना बना देनेवाली वाणीमें कहा, 'बाबाजी! चुपचाप क्या सोचते हो? वृन्दावन चलोगे?' वृन्दावनका नाम सुनते ही बिल्वमंगलका हृदय हरा हो गया, परंतु अपनी असमर्थता प्रकट करता हुआ बोला—'भैया! मैं अन्धा वृन्दावन कैसे जाऊँ?' बालकने कहा—'यह लो मेरी लाठी, मैं इसे पकड़े-पकड़े तुम्हारे साथ चलता हूँ!' बिल्वमंगलका मुख खिल उठा, लाठी पकड़कर भगवान् भक्तके आगे-आगे चलने लगे। थोड़ी-सी दूर जाकर बालकने कहा, 'लो! वृन्दावन आ गया, अब मैं जाता हूँ।' बिल्वमंगलने बालकका हाथ पकड़ लिया, हाथका स्पर्श होते ही सारे शरीरमें बिजली-सी दौड़ गयी, सात्त्विक प्रकाशसे सारे द्वार प्रकाशित हो उठे, बिल्वमंगलने दिव्य दृष्टि पायी और उसने देखा कि बालकके रूपमें साक्षात् मेरे श्यामसुन्दर ही हैं। बिल्वमंगलका शरीर रोमांचित हो गया, आँखोंसे प्रेमाश्रुओंकी अनवरत धारा बहने लगी भगवान्‌का हाथ उसने और भी जोरसे पकड़ लिया और कहा—'अब पहचान लिया है, बहुत दिनोंके बाद पकड़ सका हूँ। प्रभु! अब नहीं छोड़नेका!' भगवान्‌ने कहा, 'छोड़ते हो कि नहीं?' बिल्वमंगलने कहा, 'नहीं, कभी नहीं, त्रिकालमें भी नहीं।'

भगवान्‌ने जोरसे झटका देकर हाथ छुड़ा लिया। हाथ छुड़ाते ही बिल्वमंगलने कहा—जाते हो? पर स्मरण रखो—

हाथ छुड़ाये जात हौ, निबल जानि कै मोहि।
हिरदै तें जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि॥

भगवान्‌ने बिल्वमंगलकी आँखोंपर अपना कोमल करकमल फिराया, उसकी आँखें खुल गयीं। नेत्रोंसे प्रत्यक्ष भगवान्‌को देखकर—उनकी भुवनमोहिनी अनूप रूपराशिके दर्शन पाकर बिल्वमंगल अपने आपको सँभाल नहीं सका। वह चरणोंमें गिर पड़ा और प्रेमाश्रुओंसे प्रभुके पावन चरणकमलोंको धोने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस भावको प्रियादासजी इस प्रकार कहते हैं—

चले लै गहाइ कर छाया घन तरुतर चाहत छुड़ायो हाथ छोड़ैं कैसे? नीको है।
ज्यों ज्यों बल करैं त्यों त्यों तजत न एऊ अरे लियोई छुटाइ गह्यो गाढ़ो रूपहीको है॥
ऐसे ही करत वृन्दावन घन आइ लियो पियो चाहैं रस सब जग लाग्यो फीको है।
भई उतकण्ठा भारी आये श्रीबिहारीलाल मुरली बजाइकै सुकियो भायो जीको है॥ १७४॥

(घ) बिल्वमंगल और चिन्तामणिका सौभाग्य

भगवान्‌ने उठाकर उसे अपनी छातीसे लगा लिया। भक्त और भगवान्‌के मधुर मिलनसे समस्त जगत्‌में मधुरता छा गयी। देवता पुष्पवृष्टि करने लगे। सन्त—भक्तोंके दल नाचने लगे। हरिनामकी पवित्र ध्वनिसे आकाश परिपूर्ण हो गया। भक्त और भगवान् दोनों धन्य हुए। वेश्या चिन्तामणि, गृहस्थ और उनकी पत्नी भी वहाँ आ गयीं, भक्तके प्रभावसे भगवान्‌ने उन सबको अपना दिव्य दर्शन और दूध-भातका प्रसाद देकर कृतार्थ किया। धन्य बिल्वमंगल! धन्य चिन्तामणि! बिल्वमंगलने चिन्तामणिको अपना गुरु ही माना और अपने ग्रन्थ 'कृष्ण-कर्णामृत' का मंगलाचरण 'चिन्तामणिर्जयति'से किया।

बिल्वमंगल जीवनभर भक्तिका प्रचार करके भगवान्‌की महिमा बढ़ाते रहे और अन्तमें गोलोकधाम पधारे।

इस वृत्तान्तका प्रियादासजीने अपने दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

खुलि गये नैंन ज्यौं कमल रवि उदै भये देखि रूपराशि बाढ़ी कोटि गुनी प्यास है।
मुरली मधुरसुर राख्यो मदभरि मनो ढरि आयो कानन मैं आनन मैं भास है॥
मानिकै प्रताप चिन्तामनि मन मांझ भई 'चिन्तामनि जैति' आदि बोले रसरास है।
'करनामृत' ग्रन्थ हृदय ग्रन्थिको विदारि डारै बांधै रस ग्रन्थ पन्थ युगल प्रकास है॥ १७५॥
चिन्तामनि सुनी वनमांझ रूप देख्यौ लाल ह्वै गई निहाल आई नेह नातो जानिकै।
उठि बहु मान कियौ दियौ दूध भात दोना दै पठावैं नित हरि हितू जन मानिकै॥
लियौ कैसे जाय तुम्हें भायसों दियो जो प्रभु लैहौं नाथ हाथसौं जो देहैं सनमानिकै।
बैठे दोऊ जन कोऊ पावैं नहीं एक कन रीझे श्याम घन दीनो दूसरो हू आनिकै॥ १७६॥

श्रीविष्णुपुरीजी

भगवत धर्म उतंग आन धर्म आन न देखा।
पीतर पटतर बिगत निकष ज्यों कुंदन रेखा॥
कृष्न कृपा कहि बेलि फलित सतसंग दिखायो।
कोटि ग्रंथ को अर्थ तेरह बिरचन में गायो॥
महा समुद्र भागवत तें भक्ति रतन राजी रची।
कलि जीव जँजाली कारने बिष्णुपुरी बड़ि निधि सँची॥ ४७॥

श्रीविष्णुपुरीजीने कलियुगके प्रपंची जीवोंके कल्याणके लिये बड़े भारी खजानेको (भक्तिको) इकट्ठा किया। उन्होंने वैष्णवधर्मको ही सर्वश्रेष्ठ माना। अन्य अवैदिक धर्मोंकी ओर देखा भी नहीं। जिस प्रकार कसौटीपर सोनेकी रेखाके सामने पीतलकी रेखा चमकती ही नहीं है, उसी प्रकार उन्होंने अपनी बुद्धिकी कसौटीपर वैष्णवधर्मको कसकर सच्चा-खरा पाया और अन्य धर्मोंको तुच्छ देखा। आपने संतसंगको श्रीकृष्णकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_8_1_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपारूपी लताका फल बताया। करोड़ों ग्रन्थोंका तात्पर्य (भक्ति) केवल तेरह विरचनों (अध्यायों)-में गाया। श्रीमद्भागवतरूपी महासमुद्रसे रत्नरूपी श्लोकोंको निकालकर 'भक्तिरत्नावली' की रचना की॥ ४७॥

श्रीविष्णुपुरी (स्वामी)-जीका चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीविष्णुपुरीजी परमहंसकोटिके संन्यासी थे और तिरहुतके रहनेवाले थे। ये बड़े ही प्रेमी भक्त तथा विद्वान् थे। इन्होंने भगवद्भक्तिरत्नावली, भागवतामृत, हरिभक्ति-कल्पलता और वाक्यविवरण—ये चार ग्रन्थ लिखे थे।

कहा जाता है कि महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव और विष्णुपुरीजी एक बार काशीमें मिले थे। जब चैतन्य महाप्रभु वृन्दावनसे पुरीको जा रहे थे, उस समय दोनों ही एक-दूसरेके प्रति बड़े आकर्षित हुए। एक बार विष्णुपुरीके एक शिष्य काशीसे जगन्नाथपुरी गये और वहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभुसे मिलकर पूछा कि 'आपको विष्णुपुरीके लिये कोई सन्देशा भेजना हो अथवा उनसे कोई प्रार्थना करनी हो तो कृपाकर बताइये।' तब श्रीचैतन्यदेवने सभी वैष्णवोंके सामने उस शिष्यके द्वारा विष्णुपुरीको यह कहला भेजा कि 'आप हमारे लिये एक सुन्दर रत्नावली भेजिये।'

श्रीचैतन्य महाप्रभु-जैसे महान् त्यागीके मुँहसे इस प्रकारके शब्द सुनकर उनके साथियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ, परंतु उन्हें डरके मारे कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ। कुछ दिन बीत जानेपर विष्णुपुरीका वही शिष्य फिर जगन्नाथपुरी आया और महाप्रभुके हाथमें एक पुस्तक देकर बोला कि 'गुरुदेवने आपके आदेशानुसार यह रत्नावली आपकी सेवामें भेजी है।' यह सुनकर महाप्रभुके साथियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने महाप्रभुके आशयको न समझ सकनेपर बड़ा पश्चात्ताप किया। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने उस रत्नावलीको भगवान् श्रीनीलाचलनाथके चरणोंमें रख दिया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

जगन्नाथ क्षेत्र मांझ बैठे महा प्रभूजू वै चहूँ ओर भक्त भूप भीर अति छाई है।
बोले विष्णुपुरी पुरीकाशी मध्य रहैं जाते जानियत मोक्ष चाह नीकी मन आई है॥
लिखी प्रभु चीठी 'आपु मणिगण माला' एक दीजिये पठाइ मोहिं लागती सुहाई है।
जानि लई बात निधि भागवत रत्नदाम दई पठै आदि मुक्ति खोदिकै बहाई है॥ १७७॥

श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके अनुयायी सन्तगण

नाम तिलोचन सिष्य सूर ससि सदृस उजागर।
गिरा गंग उनहारि काब्य रचना प्रेमाकर॥
आचारज हरिदास अतुल बल आनँद दायन।
तेहिं मारग बल्लभ्भ बिदित पृथु पधति परायन॥
नवधा प्रधान सेवा सुदृढ़ मन बच क्रम हरि चरन रति।
बिष्णुस्वामि सँप्रदाइ दृढ़ ग्यानदेव गंभीर मति॥ ४८॥

श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदायके अनुयायी सुदृढ़ विचार एवं गम्भीर मतिवाले श्रीज्ञानदेवजी हुए। श्रीनामदेवजी और श्रीत्रिलोचनजी उनके शिष्य थे, जो सूर्य और चन्द्रके समान भक्तजगत्को प्रकाशित करनेवाले थे। श्रीज्ञानदेवजीकी वाणी गंगाजीके समान पवित्र थी। उनकी काव्यरचना (गीताकी टीका ज्ञानेश्वरी एवं अभंगादि) तो मानो भगवत्प्रेमकी खानि थी। आचार्यों तथा हरिभक्तोंका आपमें अपार बल था। आप सभीको आनन्दित करनेवाले थे। श्रीपृथुजीकी अर्चन-पद्धतिके अनुसार उपासना करनेवाले परम प्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीवल्लभाचार्यजी इसी सम्प्रदायमें हुए। वे नवधाभक्तिको प्रधान मानकर सुदृढ़ भावसे भगवत्सेवा करते थे। उन्हें मन, वाणी और कर्मसे भगवान्‌के चरणोंमें प्रीति थी॥ ४८॥

श्रीविष्णुस्वामी-सम्प्रदायके इन सन्तोंका पावन चरित इस प्रकार है—

श्रीज्ञानदेवजी

श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदायके अनुयायी अति ही गम्भीर बुद्धिवाले श्रीज्ञानदेवजी नामक सन्त थे। इनके पिताजीने गृहस्थाश्रमको त्यागकर संन्यास ले लिया और श्रीगुरुदेवसे झूठ बोल दिया कि मेरे स्त्री नहीं है, मैं गुरु करना चाहता हूँ। बादमें स्त्रीने संन्यासी होनेकी बात सुनी, तब वह आयी और उसने उनके गुरुसे सब बात कही। तब गुरुजीने जाना कि इसने मिथ्या बोलकर मुझसे संन्यास लिया है। स्त्रीने कहा कि प्रभो! आप इनका हाथ पकड़कर मेरे साथ कर दीजिये। इस प्रकार वह उन्हें घर ले आयी। इससे कुटुम्बी लोग अत्यन्त रुष्ट हुए और इन्हें उन लोगोंने जाति-पाँतिसे बाहर निकाल दिया। अब ये समाजसे अलग रहने लगे, परंतु इनके मनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं था; क्योंकि इन्होंने गुरुकी आज्ञासे पुनः गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया था।

श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीज्ञानदेवजीके माता-पिताका परिचय देते हुए एक कवित्तमें कहते हैं—

विष्णु स्वामि सम्प्रदाई बड़ोई गम्भीर मति ज्ञानदेव नाम ताकी बात सुनि लीजियै।
पिता गृह त्यागि आइ ग्रहण संन्यास कियो दियो बोलि झूठ तिया नहीं गुरु कीजियै॥
आई सुनि बधू पांछें कह्यो जान्यो मिथ्यावाद भुजनि पकरि मेरे संग करि दीजियै।
ल्याई सो लिवाइ जाति अति ही रिसाइ दियो पंक्ति मैं ते डारि रहैं दूरि नहीं छीजियै॥ १७८॥

संन्यास-आश्रम त्यागकर घरमें रहनेपर उनके तीन पुत्र हुए, जिनमें बड़े ज्ञानदेवजी थे। इनकी श्रीकृष्ण भगवान्‌में सच्ची प्रीति थी। जब वे पढ़नेके लिये गुरुकुलमें गये तो उनको किसीने वेद नहीं पढ़ाया। सब यही कहने लगे कि तुम संन्यासीके पुत्र हो, तुम्हारी जाति नष्ट हो गयी। फिर ब्राह्मण विद्वानोंकी एक सभा हुई। उसमें ज्ञानदेवजीने प्रश्न किया कि आपके मनमें क्या विचार है, मैं वेद पढ़ सकता हूँ या नहीं? पण्डितोंने कहा—तुम्हारा ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है। अतः तुम्हें वेद पढ़नेका अधिकार नहीं है। यह सुनकर ज्ञानदेवजीने समीपके एक भैंसेको देखकर कहा कि वेद तो यह भैंसा भी बिना किसीके पढ़ाये पढ़ सकता है। ज्ञानदेवजीने आज्ञा दी और भैंसा वेदपाठ करने लगा। ज्ञानदेवजीने यह भक्तिका प्रताप दिखाया, जिससे उन पण्डितोंमें भी भक्ति प्राप्त करनेकी रुचि जाग गयी। उनका अहंकार दूर हो गया। उन्होंने आकर श्रीज्ञानदेवजीके चरण पकड़ लिये। भक्तोंका-सा सरल-स्वभाव अपनाकर उन्होंने दीनता ग्रहण की।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

भये पुत्र तीन तामें मुख्य बड़ो ज्ञानदेव जाकी कृष्णदेव जूसों हिये की सचाई है।
वेद न पढ़ावे कोऊ कहैं सब जाति गई लई करि सभा अहो कहा मन आई है॥
बिनस्यो ब्रह्मत्व कही श्रुति अधिकार नाहिं बोल्यों यों निहारि पढ़ै भैंसा लै दिखाई है।
देखि भक्ति भाव चाव भयो आनि गहैं पांव कियोई सुभाव वही गही दीनताई है॥ १७९॥

श्रीत्रिलोचनजी

भक्तवर श्रीत्रिलोचनजी वैश्यकुलमें उत्पन्न हुए। ये बड़े ही वैष्णव भक्त थे, परंतु वे जैसी सेवा करना चाहते थे, वैसी बन नहीं पाती थी; क्योंकि उनकी पत्नीके अतिरिक्त घरमें और कोई सेवामें सहयोग देनेवाला न था। उनके मनमें एक यह बड़ी अभिलाषा थी कि कोई एक ऐसा नौकर मिल जाय जो साधुओंके मनकी बात जानकर अच्छी प्रकारसे उनकी सेवा किया करे।

अपने भक्तका मनोरथ पूरा करनेके लिये एक दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_8_2_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं भगवान्ने ही नौकरका रूप धारण किया और श्रीत्रिलोचनजीके द्वारपर आये। श्रीत्रिलोचनजीने घरसे निकलते ही उन्हें देखा और इनसे पूछा—अजी! आप कहाँसे पधारे हैं, मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि आपके घरमें माता-पिता आदि कोई भी नहीं हैं। नौकररूपधारी भगवान्ने कहा—आप सच कहते हैं मेरे पिता-माता आदि कोई भी नहीं है। त्रिलोचनजीने कहा—क्या नौकरी करोगे, मुझे सन्तोंकी सेवाके लिये एक नौकर चाहिये। तब आपने कहा कि यदि मेरे स्वभावसे स्वामीका स्वभाव मिल जाय तो मैं सेवा-टहल कर सकता हूँ। श्रीत्रिलोचनजीने पूछा—आपके स्वभावसे औरोंका मेल क्यों नहीं हो पाता है? तब आपने कहा कि मैं पाँच सात सेर अन्न नित्य खाता हूँ, इसीसे लोग नाराज हो जाते हैं और मुझे रख नहीं पाते हैं।

उस नौकरने फिर कहा—चार वर्णोंकी रीतियोंका मुझे ज्ञान है। सभी कार्योंको मैं अच्छी तरहसे मन लगाकर करता हूँ। उनमें किसीसे सहायता भी नहीं लेना चाहता हूँ। रही भक्तोंकी सेवा-टहल—उसे तो करते-करते मेरा सब जीवन ही बीता है। 'अन्तर्यामी' मेरा नाम है। मैं तो अब आपका दास हो गया। भक्त त्रिलोचनने कहा—इच्छानुसार खूब भर-पेट खाओ, किसी प्रकारका संकोच मत करो।

इसके बाद भक्त त्रिलोचनजीने अपनी स्त्रीसे कहा—तुम इस अन्तर्यामीको भोजन देते समय थोड़ी-सी भी खिन्नता मनमें मत लाना। नहीं तो यह कहीं भाग जायगा। फिर ऐसा नौकर कभी न मिलेगा। जो कुछ यह खाये, वही इसे खिलाओ। यह नित्यप्रति सन्तसेवा करेगा। श्रीत्रिलोचनजीके यहाँ अनेक साधु-सन्त नित्यप्रति आते ही रहते थे। सन्तसेवा अन्तर्यामीको हृदयसे प्रिय थी। सन्तोंकी इच्छाके अनुसार रुचिपूर्वक अन्तर्यामी उनके पैर दबाते और सब प्रकारकी सेवा करते। इस प्रकार सेवा करते-करते तेरह महीने बीत गये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीत्रिलोचनजीकी सन्त-सेवाके प्रति इस अनन्य निष्ठाका वर्णन अपने कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—

भये उभै शिष्य नामदेव श्रीतिलोचन जू सूर शशि नाईं कियो जग में प्रकाश है।
नामा की तो बात कहि आये सुनो दूसरे की सुनेई बनत भक्त कथा रसरास है॥
उपजे बनिक कुल सेवैं कुल अच्युत कों ऐपैं नहिं बनै एक तिया रहै पास है।
टहलू न कोई साधु मनही की जानि लेत ये ही अभिलाष सदा दासनिको दास है॥ १८०॥
आये प्रभु टहलुवा रूपधरि द्वारपर फटी एक कामरी पन्हैंया टूटी पांय है।
निकसत पूछे अहो! कहां ते पधारे आप, बाप महतारी और देखिये न गाय है॥
बाप महतारी मेरे कोऊ नाहिं सांची कहौं, गहौं मैं टहल जो पै मिलत सुभाय हैं।
अनमिल बात कौन? दीजियै जनाय बहू, पाऊँ पांच सात सेर उठत रिसाय हैं॥ १८१॥
चारि हू बरन की जु रीति सब मेरे हाथ साथ हू न चाहौं करौं नीके मन लाइ कै।
भक्तनकी सेवा सो तो करत जनम गयो नयौ कछु नाहिं डारे बरस बिताइ कै॥
अंत्रजामी नाम मेरो चेरो भयो तेरो हौं तो बोल्यो भक्त भावै खावो निशंक अघाइ कै।
कामरी पन्हैयां सब नई करि दई और मीड़ि कै न्हवायो तन मैल कौं छुटाइ कै॥ १८२॥
बोल्यो घर दासी सों तू रहै याकी दासी होइ देखियो उदासी देत ऐसो नहीं पावनौ।
खाय सो खववावो सुखपावो नित नित कियै जियै जग माहिं जौलौं मिलि गुन गावनौ॥
आवत अनेक साधु भावत टहल हिये लिये चाव दाबैं पांव सबनि लड़ावनौ।
ऐसे ही करत मास तेरह बितीत भये गये उठि आपु नेकु बात कौ चलावनौ॥ १८३॥

श्रीत्रिलोचनजीकी स्त्री एक दिन पड़ोसिनके घर गयी, तब उसने पूछा कि तुम इतनी कमजोर एवं उदास क्यों हो गयी हो? भक्तजीकी स्त्रीने उत्तर दिया कि क्या कहूँ? मेरे पतिदेव कहींसे एक नौकर लिवाकर लाये हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह ऐसा खोटा है कि बहुत-सा भोजन करनेपर भी उसका पेट नहीं भरता है। इसलिये मुझे अधिक आटा पीसना पड़ता है, उसीसे मेरा शरीर अति दुर्बल हो गया है। देखो, बहन! मैंने जो यह बात तुमसे कही है, उसे तुम किसी दूसरेसे मत कहना। इसे अपने मनमें ही रखना। यदि कहीं उसने सुन लिया तो सबेरे ही चला जायगा। वे तो अन्तर्यामी थे, उन्होंने सुन लिया और तुरंत उठकर चले गये।

अन्तर्यामीके चले जानेके बाद तीन दिन बीत जानेपर भी श्रीत्रिलोचनजीने अन्न-जल नहीं लिया। वे दुःखी होकर स्त्रीसे कहने लगे—हाय! अब ऐसा चतुर सेवक मुझे कहाँ मिलेगा? तू तो बड़ी अभागिनी है, ऐसी बात क्यों कही? वह सन्त-सेवाका बड़ा प्रेमी था। किस उपायसे अब उसे लाऊँ? जब श्रीत्रिलोचनजी इस प्रकार अपने मनमें पछताने लगे। तब आकाशवाणी हुई कि तुम अन्न-प्रसाद पाओ और जल पियो। सन्तोंके प्रति जो तुम्हारी प्रीतिकी रीति है, वह मुझे अति प्रिय लगी; इसीसे तुम्हारा सेवक बनकर सन्तसेवा की। मैं तुम्हारे अधीन तुम्हारा दास हूँ और सदा तुम्हारे घरमें ही लीन रहता हूँ। यदि तुम कहो तो पहलेकी तरह मैं तुम्हारे यहाँ आकर रहूँ और सदा सेवा करूँ।

आकाशवाणी सुनकर श्रीत्रिलोचनजीने जब रहस्य जाना तो उन्हें और अधिक कष्ट हुआ, मैंने भगवान्‌को अपना दास करके माना। प्रभु मेरे घरमें आये, इतने दिन रहे, पर मैं ऐसा मूढ़ था कि उनको नहीं जान सका। अब वे किसी प्रकार आ जायँ तो मैं दौड़कर उनके पैरोंमें लिपट जाऊँ। इस प्रकार त्रिलोचनजी अन्तर्यामीके ध्यानमें सदा मग्न रहने लगे।

श्रीप्रियादासजीने इस वृत्तान्तका वर्णन निम्न कवित्तोंमें किया है—

एक दिन गई ही परोसिनके भक्तबधू पूछि लई बात अहो काहेको मलीन है।
बोली मुसुकाय वे टहलुवा लिवाय ल्याये क्योंहू न अघाय खोट पीसि तनछीन है॥
काहू सौं न कहो यह गहौ मन मांझ एरी तेरी सौं सुनैगो जोपै जात रहे भीन है।
सुनि लई यही नेकु गये उठि हुती टेक दुखहूं अनेक जैसे जल बिन मीन है॥ १८४॥
बीते दिन तीन अन्नजल करि हीन भये ऐसो सो प्रवीन अहो फेरि कहाँ पाइये।
बड़ी तू अभागी बात काहे को कहन लागी रागी साधु सेवा मैं जु कैसे करि ल्याइये॥
भई नभबानी तुम खावो पीवो पानी यह मैं ही मति ठानी मोकौं प्रीति रीति भाइये।
मैं तौ हौं अधीन तेरे घर ही में रहौं लीन जो पै कहौ सदा सेवा करिबे को आइये॥ १८५॥
कीने हरिदास मैं तो दास हू न भयौं नेकु बड़ो उपहास मुख जग में दिखाइयै।
कहैं जन भक्त कहा भक्ति हम करी कहौ, अहो अज्ञताई रीति मन में न आइयै॥
उनकी तो बात बनि आवै सब उनही सों गुन ही कौं लेत मेरे औगुन छिपाइयै।
आये घर मांझ तऊ मूढ़ मैं न जानि सक्यों आवैं अब क्यों हूं धाय पांय लपटाइयै॥ १८६॥

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी

लगभग पाँच सौ साल पहलेकी बात है, संवत् १५३५ वि० में दक्षिण भारतसे एक तैलंग ब्राह्मण लक्ष्मणभट्ट तीर्थयात्राके लिये उत्तर भारतका भ्रमण कर रहे थे। वैशाख मास था, वे उस समय अपनी पत्नी इल्लम्मागारुके सहित काशीमें थे। अचानक सुना गया कि काशीपर यवनोंका आक्रमण होनेवाला है; अतः वे दक्षिणकी ओर चल पड़े। रास्तेमें चम्पारण्य नामक वनमें इल्लम्माने पुत्र-रत्नको जन्म दिया। वैशाख कृष्ण एकादशी थी, माताने महानदीके निर्जन तटपर नवजात बालकको छोड़ दिया। पर माताकी ममताने करवट ली। लक्ष्मण और इल्लम्मा बालकको लेकर काशी लौट आये, हनुमानघाटपर रहने लगे। बालक अद्भुत प्रतिभा और सौन्दर्यसे सम्पन्न होनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण सबका प्रियपात्र था। बाल्यावस्थामें लोगोंने उसे 'बालसरस्वती वाक्पति' कहना आरम्भ किया। विष्णुचित्, तिरुम्मल और माधव यतीन्द्रकी शिक्षासे बाल्यावस्थामें ही वल्लभ समस्त वैष्णव-शास्त्रोंमें पारंगत हो गये, उनमें भगवद्भक्तिका उदय होने लगा; तुलसीमाला, एकादशी, विष्णुव्रत और भगवदाराधनमें उनका समय बीतने लगा; तेरह सालकी ही अवस्थामें वे वेद, वेदांग, पुराण, धर्मशास्त्र आदिमें पूर्ण निष्णात हो गये।

धीरे-धीरे उनकी कीर्ति फैलने लगी, लोग उनकी भगवद्भक्तिकी सराहना करने लगे। श्रीवल्लभाचार्यके चरित्र-विकासपर विष्णुस्वामी-सम्प्रदायके भक्ति-सिद्धान्तोंका अधिक मात्रामें प्रभाव पड़ा था। उन्होंने पुष्टिमार्गकी संस्थापना की तथा प्रेमलक्षणा भक्तिपर विशेष जोर दिया। पुष्टि भगवदनुग्रह या कृपाका प्रतीक है। उन्होंने वात्सल्यरससे ओतप्रोत भक्ति-पद्धतिकी सीख दी। भगवान्‌के यश-लीला-गानको वे अपने पुष्टिमार्गका श्रेय मानते थे।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस पुष्टिमार्गका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—

हिये में स्वरूप सेवा करि अनुराग भरे ढरे और जीवनि की जीवनि को दीजिये।
सोई लै प्रकास घर-घर में विलास कियो अति ही हुलास फल नैननि को लीजिये॥
चातुरी अवधि नेकु आतुरी न होत किहूँ चहूँ दिसि नाना राग भोग सुख कीजिये।
बल्लभजू नाम लियो पृथु अभिराम रीति गोकुल में धाम जानि सुन मन रीझिये॥ १८७॥

श्रीवल्लभके जीवनका अधिकांश समय व्रजमें बीता, वे अड़ैलसे व्रज आये। अड़ैलसे व्रज आते समय उन्होंने गऊघाटपर महाकवि सूरदासको दीक्षित किया, दो या तीन दिनों बाद उसी यात्रामें विश्रामघाटपर कृष्णदास अधिकारीको पुष्टिमार्गमें सम्मिलितकर ब्रह्म-सम्बन्ध दिया। कुम्भनदास भी उनके शिष्य हुए। गोवर्धनमें एक मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीनाथजीकी मूर्ति प्रतिष्ठित की। उनके चौरासी शिष्योंमें प्रमुख सूर, कुम्भन, कृष्णदास और परमानन्द श्रीनाथजीकी विधिवत् सेवा और कीर्तन आदि करने लगे। उन्होंने वैष्णवोंको गुरुतत्त्व सुनाया, लीला-भेद बताया।

एक बार एक सीधे-साधे सन्त दर्शन करनेके लिये गोकुलको गये। वहाँ जाकर गोष्ठमें गायोंके झुण्डका, गोपालका तथा मन्दिरोंमें बालकृष्णकी सेवा-पूजा और उत्सवोंका दर्शन करके प्रेममें मग्न हो गये। फिर उन सन्तने एक छोंकरके पेड़पर अपना ठाकुर-बटुवा लटका दिया और जाकर श्रीवल्लभाचार्यजीके दर्शन किये जिससे उन्हें बड़ा भारी सुख हुआ। फिर आकर देखा तो ठाकुर-बटुवा नहीं था। तब वे सन्त फिर श्रीवल्लभाचार्यजीके निकट गये और बटुवा न मिलनेकी बात सुनायी। सन्तको चिन्तित एवं उदास देखकर आचार्यने कहा कि वहीं जाकर देखिये। सन्तने आकर देखा तो छोंकरके पेड़पर अनेकों बटुवे लटके हैं। उनका होश-हवास उड़ गया, फिर आचार्यके पास आकर बोले—प्रभो! वहाँ तो अनेक बटुवे हैं। इन्होंने कहा—आप अपना बटुवा पहचान लीजिये, आप तो नित्य सेवा-पूजा करते हैं, फिर भी अपने ठाकुरजीको नहीं पहचान सकते हैं।

इस घटनासे वे सन्त समझ गये कि यह सब श्रीवल्लभाचार्यजीका ही प्रभाव है, उनकी आँखें खुल गयीं। अपने ठाकुरको पहचाननेकी अभिलाषा करने लगे। उन्होंने आचार्यसे प्रार्थना की कि मुझे वह उपाय बता दीजिये, जिससे मैं अपने सेव्य प्रभुके रूपको प्राप्त कर सकूँ। आचार्यने कहा कि हृदयसे प्रेम करो, भाव-भक्तिपूर्वक सेवा किया करो; क्योंकि यह प्रेममार्ग अतिविचित्र और सुन्दर है। आप वहीं छोंकरके वृक्षपर जाकर देखो। इस बार आकर उन्होंने देखा तो केवल अपने ही ठाकुरजी दिखायी पड़े, तब तो ये अति आनन्दित हुए। उन्होंने ठाकुरजीको हृदयसे लगा लिया। उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। आचार्यकी कृपासे उन्होंने भक्तिके स्वरूपको जान लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें करते हुए कहते हैं—

गोकुलके देखिबे कौं गयौ एक साधु सूधो गोकुल मगन भयो रीति कछु न्यारिये।
छोंकरके वृक्षपर बटुवा झुलाय दियो कियो जाय दरशन सुख भयो भारिये॥
देखै आइ नाहीं प्रभु फेरि आप पास आयो चिंता सो मलीन देखि कही जा निहारिये।
वैसेई सरूप कई गई सुधि बोल्यो आनि लीजिये पिछानि कह्यो सेवा नित धारिये॥ १८८॥
खुलि गईं आंखैं अभिलाखैं पहिचानि कीजै दीजै जू बताइ मोहिं पाउँ निजरूप है।
कही जावो वाही ठौर देखो प्रेम लेखौ हिये लिये भाव सेवा करौ मारग अनूप है॥
देखिकै मगन भयो लयो उर धारि हरि नैन भरि आये जान्यो भक्तिको स्वरूप है।
निसि दिन लग्यौ पग्यौ जग्यौ भाग पूरन हो पूरन चमत्कार कृपा अनुरूप है॥ १८९॥

श्रीवल्लभाचार्य महान् भक्त होनेके साथ ही दर्शनशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्रपर बड़ा सुन्दर 'अणुभाष्य' लिखा है और श्रीभागवतके दशम स्कन्ध तथा कुछ अन्य स्कन्धोंपर सुबोधिनी टीका लिखी है। श्रीमद्भागवतको वे प्रस्थानत्रयीके अन्तर्गत मानते थे। उनके परमधाम पधारनेके विषयमें एक घटना प्रसिद्ध है। ये अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें अड़ैलसे लौटकर प्रयाग होते हुए काशी आ गये थे। एक दिन हनुमानघाटपर गंगास्नान करने गये। जहाँपर खड़े होकर आप स्नान कर रहे थे, वहाँसे एक उज्ज्वल ज्योति-शिखा उठी और आप सदेह ऊपर उठने लगे और लोगोंके देखते-ही-देखते आकाशमें लीन हो गये। इस प्रकार वि० सं० १५८७ आषाढ़ शुक्ला ३ को ५२ वर्षकी अवस्थामें आपने अलौकिक रीतिसे इहलीला संवरण करके गोलोकको प्रयाण किया।

कलियुगमें प्रेमकी प्रधानता प्रकट करनेवाले भक्त

भक्तदास इक भूप श्रवन सीता हर कीनो।
मार मार करि खड़्ग बाजि सागर मैं दीनो॥
नरसिंह को अनुकरन होइ हिरनाकुस मार्‌यो।
वहै भयो दसरत्थ राम बिछुरत तन छार्‌यो॥
कृष्नदास बाँधे सुने तिहि छन दीयो प्रान।
संत साखि जानैं सबै प्रगट प्रेम कलिजुग प्रधान॥ ४९॥

सभी लोग जानते हैं और सन्तजन इस बातके साक्षी हैं कि कलियुगमें केवल प्रेमसे ही भगवान् प्रकट होते हैं, अतः प्रेम ही प्रधान है। भक्तोंका दास कुलशेखर नामका एक राजा था। उसने रामायणकी कथामें रावणद्वारा श्रीसीताजीका हरण सुना। सुनते ही उसे आवेश आ गया और वह तुरन्त हाथमें तलवार लेकर घोड़ेपर चढ़कर 'मारो-मारो' चिल्लाता हुआ दौड़ा और घोड़ेको समुद्रमें कुदा दिया। दूसरे एक प्रेमी भक्तने नृसिंहलीलाके अनुकरणमें नृसिंह बनकर हिरण्यकशिपु बने हुए व्यक्तिको सचमुच मार डाला। पुनः रामलीलामें उसी भक्तने दशरथ बनकर श्रीरामजीके वियोगमें अपने शरीरका त्याग कर दिया। श्रीरतिवन्तीबाईने श्रीभागवतकी कथामें सुना कि माता यशोदाने रस्सीसे श्रीकृष्णको बाँध दिया। सुनते ही अपने प्राण त्याग दिये। इन भक्तिचरित्रोंसे कलियुगमें प्रेमकी प्रधानता प्रकट एवं सिद्ध हुई॥ ४९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन भगवत्प्रेमी भक्तोंका पावन चरित्र संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीकुलशेखरजी

श्रीकुलशेखरजी कोल्लिनगर (केरल)-के राजा थे। ये भगवान्‌की कौस्तुभमणिके अवतार माने जाते हैं। राजा होनेपर भी उनकी विषयोंमें तनिक भी प्रीति नहीं थी। वे सदा भगवद्भावमें लीन रहने लगे। उनका सारा समय सत्संग, कीर्तन, भजन, ध्यान और भगवान्‌के अलौकिक चरित्रोंके श्रवणमें ही व्यतीत होता। उनके इष्टदेव श्रीराम थे और वे दास्यभावसे उनकी उपासना करते थे।

एक दिन वे बड़े प्रेमके साथ श्रीरामायणकी कथा सुन रहे थे। प्रसंग यह था कि भगवान् श्रीराम सीताजीकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको नियुक्तकर स्वयं अकेले खर-दूषणकी विपुल सेनासे युद्ध करनेके लिये उनके सामने जा रहे हैं। पण्डितजी कह रहे थे—

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धो भविष्यति॥

अर्थात् धर्मात्मा श्रीराम अकेले चौदह हजार राक्षसोंसे युद्ध करने जा रहे हैं, इस युद्धका परिणाम क्या होगा?

कुलशेखरजी कथा सुननेमें इतने तन्मय हो रहे थे कि उन्हें यह बात भूल गयी कि यहाँ रामायणकी कथा हो रही है। उन्होंने समझा कि 'भगवान् वास्तवमें खर-दूषणकी सेनाके साथ अकेले युद्ध करने जा रहे हैं।' यह बात उन्हें कैसे सह्य होती, वे तुरंत कथामेंसे उठ खड़े हुए। उन्होंने उसी समय शंख बजाकर अपनी सारी सेना एकत्र कर ली और सेनानायकको आज्ञा दी कि 'चलो, हमलोग श्रीरामकी सहायताके लिये राक्षसोंसे युद्ध करने चलें।' ज्यों ही वे वहाँसे जानेके लिये तैयार हुए, उन्होंने पण्डितजीके मुँहसे सुना कि 'श्रीरामने अकेले ही खर-दूषणसहित सारी राक्षससेनाका संहार कर दिया।' तब कुलशेखरको शान्ति मिली और उन्होंने सेनाको लौट जानेका आदेश दिया।

श्रीप्रियादासजी कुलशेखरके इस भक्तिभावका अपने दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

सन्त साखि जानै कलिकाल में प्रगट प्रेम बड़ोई असन्त जाके भक्ति में अभाव है।
हुतो एक भूप राम रूप ततपर महा राम ही की लीला गुन सुनै करि भाव है॥
विप्र सो सुनावै सीता चोरी को न गावै हियो खरो भरि आवै वह जानत सुभाव है।
पर्‍यो द्विज दुखी निज सुवन पठाइ दियो जानै न सुनायौ भरमायौ कियो घाव है॥ १९०॥
मार-मार करि खड्ग निकासि लियौ दियौ घोरौ सागर मैं सो आवेस आयो है।
मारौं याहि काल दुष्ट रावन बिहाल करौं पांवन को देखौं सीता भाव दृग छायो है॥
जानकी रवन दोऊ दरशन दियो आनि बोले बिन प्रान कियौ नीच फल पायो है।
सुनि सुख भयौ गयौ शोक हृदै दारुन जो रूप को निहारि नयो फेरिकै जिवायो है॥ १९१॥

श्रीकुलशेखरजी कई वर्षोंतक श्रीरंगक्षेत्रमें रहे। उन्होंने वहाँ रहकर 'मुकुन्दमाला' नामक संस्कृतका एक बहुत सुन्दर स्तोत्र-ग्रन्थ रचा। इसके बाद ये तिरुपतिमें रहने लगे और वहाँ रहकर इन्होंने बड़े सुन्दर भक्तिरससे भरे हुए पदोंकी रचना की। इन्होंने मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या आदि कई उत्तरके तीर्थोंकी भी यात्रा की थी और श्रीकृष्ण तथा श्रीरामकी लीलाओंपर भी अनेक पद रचे।

श्रीलीलानुकरणजी एवं श्रीरतिवन्तीजी

एक बार जगन्नाथधाममें नृसिंहलीला हुई, उसमें एक प्रेमी भक्तने नृसिंहका वेश धारणकर लीलाका अनुकरण किया और आवेशमें आकर उन्होंने हिरण्यकशिपुको सचमुच ही मार डाला। कुछ लोग कहने लगे कि इसने द्वेषवश मारकर बदला चुकाया है तो कुछ लोग कहते थे कि इसने आवेशमें आकर मारा है। अन्तमें परीक्षा करनेके लिये लोगोंने कहा कि इन्हें रामलीलामें दशरथ बनाओ, तब पता लग जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामलीलाकी तैयारी हुई। इन्हें दशरथ बनाया गया। श्रीरामजीके वन चले जानेपर उनके वियोगमें व्याकुल होकर विलाप करते-करते इन्होंने अपना शरीर त्यागकर भावको पूरा कर दिया।

श्रीरतिवन्ती नामकी एक बाई थी। वह बड़ी भक्ता थी। उसने बालकृष्णके स्वरूपमें अपनी बुद्धि लगा दी। नित्यप्रति वात्सल्यभावसे उपासना करती और कथा श्रवण करती थी। किसी कारणवश एक दिन वह कथामें नहीं गयी। अपने पुत्रको कथा सुननेके लिये भेज दिया। कथा सुनकर आनेपर पुत्रसे पूछा कि आज कौन-सी कथा हुई? पुत्रने कहा—आज तो माता यशोदाने बालकृष्णकी कमरमें रस्सी बाँधकर उसे ऊखलसे बाँध दिया, यह कथा हुई है। नवनीतसे भी कोमल कलेवरमें कड़ी रस्सी अति कष्टदायक हुई होगी, अतः बन्धन-प्रसंग सुनते ही बाईजीकी और ही दशा हो गयी। बालकृष्णके कष्टका अनुभव करके उन्होंने अपनी प्रीतिको सच्ची करके दिखा दिया और अपने शरीरको मानो न्यौछावर कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीरतिवन्तीजीके इस भगवत्प्रेमका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

नीलाचन धाम तहाँ लीला अनुकर्न भयो नरसिंह रूप धरि साँचे मारि डार्‍यो है।
कोऊ कहैं द्वेष कोउ कहत आवेस तो पै करो दशरथ कियो भाव पूरो पार्‍यो है॥
हुती एक बाई कृष्णरूप सों लगाई मति कथा में न आई सुत सुनी कह्यो धार्‍यो है।
बाँधे जसुमति सुनि औरै भई गति करि दई साँची रति तन तज्यो मन वार्‍यो है॥ १९२॥

भक्तिसे भगवान्‌को वशमें करनेवाले भक्त

हौं कहा कहौं बनाइ बात सबही जग जानै।
करतैं दौना भयो स्याम सौरभ मन मानै॥
छपन भोग तैं पहिल खीच करमा कौ भावै।
सिलपिल्ले के कहत कुँअरि पै हरि चलि आवै॥
भक्तन हित सुत बिष दियो भूपनारि प्रभु राखि पति।
परसाद अवग्या जानि के पानि तज्यो एकै नृपति॥ ५०॥

श्रीनाभाजी कहते हैं कि जगन्नाथपुरीके एक राजाने अपने दाहिने हाथसे प्रसादका अपमान हुआ जानकर उसे त्याग दिया अर्थात् कटवा डाला। इस बातको मैं अपनी ओरसे बनाकर क्या कहूँ? इसे तो सारा संसार जानता है कि उस भक्त राजाके कटे हुए हाथसे दौनाका वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसके पुष्प एवं पत्रोंकी सुगन्ध श्यामसुन्दरको अत्यन्त प्रिय लगती है। श्रीजगन्नाथजीको छप्पन राजभोगसे पहले श्रीकर्माबाईकी खिचड़ी अति ही स्वादिष्ट लगती है, अतः अबतक नित्य उसका भोग लगता है। 'हे सिलपिल्ले प्रभो!'—ऐसा कहते ही दोनों कन्याओंके पास भगवान् चले आये। दो राजरानियोंने भक्तोंके लिये अपने-अपने पुत्रोंको विष दिया। प्रभुने उन रानियोंकी लज्जा रखी, उनके पुत्रोंको जीवित किया॥ ५०॥

इन भगवन्निष्ठ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

भगवत्प्रसादनिष्ठ राजा

श्रीजगन्नाथपुरीके राजाकी भगवत्प्रसादमें बड़ी ही निष्ठा थी, परंतु एक दिन राजा चौपड़ खेल रहा था, इसी बीच श्रीजगन्नाथजीके पण्डाजी प्रसाद लेकर आये। राजाके दाहिने हाथमें पासा था। अतः उसने बायें हाथसे प्रसादको छूकर उसे स्वीकार किया। इस प्रकार प्रसादका अपमान जानकर पण्डाजी रुष्ट हो गये। प्रसादको राजमहलमें न पहुँचाकर उसे वापस ले गये। चौपड़ खेलकर राजा उठे और अपने महलमें गये। वहाँ उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी बात सुनी कि मेरे अपराधके कारण अब मेरे पास प्रसाद कभी नहीं आयेगा। राजाने अपना अपराध स्वीकारकर अन्न-जल त्याग दिया। उसने मनमें विचारा कि जिस दाहिने हाथने प्रसादका अपमान किया है, उसे मैं अभी काट डालूँगा, यह मेरी सच्ची प्रतिज्ञा है। ब्राह्मणोंकी सम्मति लेना उचित समझकर राजाने उन्हें बुलाकर पूछा कि यदि कोई भगवान्‌के प्रसादका अपमान करे तो चाहे वह कोई अपना प्रिय अंग ही क्यों न हो, उसका त्याग करना उचित है या नहीं। ब्राह्मणोंने उत्तर दिया कि राजन्! अपराधीका तो सर्वथा त्याग ही उचित है।

राजाने अपने मनमें हाथ कटाना निश्चित कर लिया, परंतु मेरे हाथको अब कौन काटे? यह सोचकर मौन और अत्यन्त खिन्न हो गया। राजाको उदास देखकर मन्त्रीने उदासीका कारण पूछा। राजाने कहा—नित्य रातके समय एक प्रेत आता है और वह मुझे दिखायी भी देता है। कमरेकी खिड़कीमें हाथ डालकर वह बड़ा शोर करता है। उसीके भयसे मैं दुःखी हूँ। मन्त्रीने कहा—आज मैं आपके पलँगके पास सोऊँगा और आप अपनेको दूसरी जगह छिपाकर रखिये, जब वह प्रेत झरोखेमें हाथ डालकर शोर मचायेगा, तभी मैं उसका हाथ काट दूँगा। सुनकर राजाने कहा—बहुत अच्छा! ऐसा ही करो। रात होनेपर मन्त्रीजीके पहरा देते समय राजाने अपने पलँगसे उठकर झरोखेमें हाथ डालकर शोर मचाया। मन्त्रीने उसे प्रेतका हाथ जानकर तलवारसे काट डाला।

राजाका हाथ कटा देखकर मन्त्रीजी अति लज्जित हुए और पछताते हुए कहने लगे कि मैं बड़ा मूर्ख हूँ, मैंने यह क्या कर डाला? राजाने कहा—तुम निर्दोष हो, मैं ही प्रेत था; क्योंकि मैंने प्रभुसे बिगाड़ किया था। राजाकी ऐसी प्रसादनिष्ठा देखकर अपने पण्डोंसे श्रीजगन्नाथजीने कहा कि अभी-अभी मेरा प्रसाद ले जाकर राजाको दो और उसके कटे हुए हाथको मेरे बागमें लगा दो। भगवान्‌के आज्ञानुसार पण्डे लोग प्रसादको लेकर दौड़े, उन्हें आते देखकर राजा आगे आकर मिले। दोनों हाथोंको फैलाकर प्रसाद लेते समय राजाका कटा हुआ हाथ पूरा निकल आया। जैसा था, वैसा ही हो गया। राजाने प्रसादको मस्तक और हृदयसे लगाया। भगवत्कृपाका अनुभव करके बड़ा भारी सुख हुआ। पण्डे लोग राजाका कटा हुआ वह हाथ ले आये। उसे बागमें लगा दिया गया। उससे दौनाके वृक्ष हो गये। उसके पत्र-पुष्प नित्य ही जगन्नाथजीके श्रीअंगपर चढ़ते हैं। उनकी सुगन्ध भगवान्‌को बहुत प्रिय लगती है।

श्रीप्रियादासजी पुरीनरेशकी इस प्रसादनिष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

प्रसादकी अवज्ञा तै तज्यो नृप कर एक करिकै विवेक सुनौं जैसे बात भई है।
खेलै भूप चौपरि कौं आयौ प्रभु भुक्त शेष दाहिने मैं पासे बाएँ छुयौ मति गई है॥
लै गये रिसायकैं फिराय महा दुखपाय उठ्यो नरदेव गृह गयो सुनी नई है।
लियो अनसन हाथ तजौं याही छन तब सांचौ मेरो पन बोलि विप्र पूछि लई है॥ १९३॥
काटै हाथ कौन मेरो? रह्यो गहि मौन यातें पूछत सचिव कथा विथा सो विचारियै।
आवै एक प्रेत मो दिखाई नित देत निशि डारिकैं झरोखा कर शोर करै भारियै॥
सोऊँ ढिग आइ रहौं आपुकौं छिपाइ जब डारै पानि आनि तबही सुकाटि डारियै।
कही नृप भलै चौकी देत मैं घुमायो भूप डार्‌यो उठि आइ छेद न्यारो कियो वारियै॥ १९४॥
देखिकैं लजानौ कहा कियौं मैं अजानौ नृप कही प्रेत मानौं यही हरि सों बिगारियै।
कही जगन्नाथदेव लै प्रसाद जावौं उहाँ ल्यावो हाथ बोवो बाग सोई उर धारियै॥
चले तहाँ धाइ भूप आगे मिल्यो आइ हाथ निकस्यो लगाइ हियैं भयो सुख भारियै।
ल्याये कर फूल ताके भये फूल दौना के जु नितहीं चढ़त अंग गन्ध हरि प्यारियै॥ १९५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकर्माबाई

श्रीकर्माजी नामकी एक भगवद्भक्त देवी श्रीपुरुषोत्तमपुरीमें रहती थीं। इन्हें वात्सल्यभक्ति अत्यन्त प्रिय थी। ये प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रातःकाल स्नानादि किये बिना ही खिचड़ी तैयार करतीं और भगवान्को अर्पित करतीं। प्रेमके वशमें रहनेवाले श्रीजगन्नाथजी भी प्रतिदिन सुघर-सलोने बालकके वेशमें आकर श्रीकर्माजीकी गोदमें बैठकर खिचड़ी खा जाते। श्रीकर्माजी सदैव चिन्तित रहा करती थीं कि बच्चेके भोजनमें कभी भी विलम्ब न हो जाय। इसी कारण वे किसी भी विधि-विधानके पचड़ेमें न पड़कर अत्यन्त प्रेमसे सबेरे ही खिचड़ी तैयार कर लेतीं।

एक दिनकी बात है। श्रीकर्माजीके पास एक साधु आये। उन्होंने अपवित्रताके साथ खिचड़ी तैयार करके भगवान्को अर्पण करते देखा। घबराकर उन्होंने श्रीकर्माजीको पवित्रताके लिये स्नानादिकी विधियाँ बता दीं। भक्तिमती श्रीकर्माजीने दूसरे दिन वैसा ही किया। पर इस प्रकार खिचड़ी तैयार करते उन्हें देर हो गयी। उस समय उनका हृदय रो उठा कि मेरा प्यारा श्यामसुन्दर भूखसे छटपटा रहा होगा।

श्रीकर्माजीने दुःखी मनसे श्यामसुन्दरको खिचड़ी खिलायी। इसी समय मन्दिरमें अनेकानेक घृतमय पक्वान्न निवेदित करनेके लिये पुजारीने प्रभुका आवाहन किया। प्रभु जूँठे मुँह ही वहाँ चले गये।

पुजारी चकित हो गया। उसने देखा उस दिन भगवान्के मुखारविन्दमें खिचड़ी लगी है। पुजारी भी भक्त था। उसका हृदय क्रन्दन करने लगा। उसने अत्यन्त कातर होकर प्रभुसे असली बात जाननेकी प्रार्थना की। भगवान्ने कहा, 'नित्यप्रति प्रातःकाल मैं कर्माबाईके पास खिचड़ी खाने जाता हूँ। उनकी खिचड़ी मुझे बड़ी मधुर और प्रिय लगती है। पर आज एक साधुने जाकर उन्हें स्नानादिकी विधियाँ बता दीं; इसलिये खिचड़ी बननेमें देर हो गयी, जिससे मुझे क्षुधाका कष्ट तो हुआ ही, शीघ्रतामें जूँठे मुँह आ जाना पड़ा।'

भगवान्के आज्ञानुसार पुजारीने उस साधुको प्रभुकी सारी बातें सुना दीं। साधु घबराया हुआ श्रीकर्माजीके पास जाकर बोला—'आप पूर्वकी ही तरह प्रतिदिन सबेरे ही खिचड़ी बनाकर प्रभुको निवेदन कर दिया करें। आपके लिये किसी नियमकी आवश्यकता नहीं है।'

श्रीकर्माजी पुनः उसी तरह प्रतिदिन सबेरे भगवान्को खिचड़ी खिलाने लगीं।

श्रीकर्माजी परमात्माके पवित्र और आनन्दमय धाममें चली गयीं, पर उनके प्रेमकी गाथा आज भी विद्यमान है। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें आज भी प्रतिदिन प्रातःकाल खिचड़ीका भोग लगाया जाता है।

श्रीप्रियादासजी श्रीकर्माबाईकी इस प्रेममयी भक्तिका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

हुती एक बाई ताको 'करमा' सुनाम जानि बिना रीति भाँति भोग खिचरी लगावहीं।
जगन्नाथ देव आपु भोजन करत नीकैं जिते लगै भोग तामैं यह अति भावहीं॥
गयो तहाँ साधु मानि बड़ो अपराध करै भरै बहु स्वांस सदाचार लै सिखावहीं।
भई यों अबार देखैं खोलि कैं किवार जोपै जूठन लगी है मुख धोये बिनु आवहीं॥ १९६॥
पूछी प्रभु भयो कहा कहिये प्रगट खोलि बोलिहू न आवै हमें देखि नयी रीति है।
करमा सुनाम एक खिचरी खवावै मोहिं मैं हूँ नित पाऊँ जाइ जानि साँची प्रीति है॥
गयौ मेरो सन्त रीति भाँतिसों सिखाइ आयो मत मो अनन्त बिनु जाने यों अनीति है।
कही वही साधुसों जु साधि आवौ वही बात जाइकै सिखाई हिय आई बड़ी भीति है॥ १९७॥

श्रीसिलपिल्लेकी भक्त—दो कन्याएँ

ठाकुर श्रीसिलपिल्लेजीकी दो भक्त थीं—इनमें एक तो राजाकी कन्या थी और दूसरी एक जमींदारकी। एक दिन इनके घरमें श्रीगुरुजी महाराज पधारे और जब वे शालग्रामभगवान्की सेवा करने लगे, तब उसे देखकर ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों उनके समीप जाकर बैठ गयीं। सेवादर्शन और प्रसाद ग्रहणकर इनके मनमें भी सेवा करनेकी उत्कण्ठा हुई। इन्होंने ललचाकर कहा कि हम भी सुकुमार श्यामसुन्दरकी पूजा किया करेंगी, हमें आप ठाकुरजीकी मूर्ति दे दीजिये। श्रीगुरुजीने इन्हें बच्चा, परंतु सच्चा प्रेमी जानकर दोनोंको एक-एक पत्थरका टुकड़ा दे दिया। जब इन्होंने ठाकुरजीका नाम पूछा तो कह दिया कि इनका नाम 'सिलपिल्ले' है और तुम अपना मन लगाकर नित्य इनकी सेवा किया करना। गुरुदेवके आज्ञानुसार दोनों प्रेमसे पूजा करने लगीं। सेवा करते-करते उनके हृदयमें बड़ा भारी अनुराग बढ़ गया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी अपने एक कवित्तमें इस घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

सिलपिल्ले भक्ता उभैबाई सोई कथा सुनौ एक नृप सुता एक सुता जिमींदार की।
आये गुरु घर देखि सेवा ढिंग बैठी जाइ कही ललचाइ पूजा कीजै सुकुमार की॥
दियो सिलाटूक लैकै नाम कहि दियो वही कीजिये लगाइ मन मति भव पार की।
करत करत अनुराग बढ़ि गयो भारी बड़ी ये विचित्र रीति यही सोभा सार की॥ १९८॥

जमींदारकन्याकी कथा

सिलपिल्लेभक्त जमींदारकन्याके दो भाई थे, दोनोंमें वैर था। एक बार दूसरे भाईने जिसके पास यह रहती थी, उस भाईपर आक्रमण किया। उसके साथियोंने इस भाईका सारा सामान लूट लिया, उसमें लड़कीका ठाकुर-बटुवा भी चला गया। इससे उस भक्ताको महान् कष्ट हुआ। तब लोगोंने कहा कि तेरे लिये तो दोनों भाई एकसे हैं, शत्रुता भाईसे है, परंतु तुमसे उसका प्रेम ही है, तू वहाँ जाकर अपने ठाकुरजीको ले आ।

तब वह लड़की उस गाँवमें गयी, जहाँ दूसरा भाई रहता था। उस समय वह द्वारपर बैठकमें बैठा था। उस लड़कीने अपने कष्टकी सब बात कही और अपने ठाकुरजीको माँगा। तब उस भाईने कहा—तुम घरमें जाओ, वहाँ एक स्थानपर सभी ठाकुर विराजमान हैं, उनमेंसे अपने ठाकुरको पहचानकर ले जाओ। इसपर वहाँ बैठा हुआ कोई मनुष्य बोल उठा कि यदि तुम्हारेमें ऐसी भक्ति है तो यहींसे बुला लो, घरमें जाने और पहचाननेकी क्या आवश्यकता है? यह सुनते ही उस लड़कीकी आँखें अनुरागयुक्त लाल हो गयीं, प्रीतिपर किये गये व्यंग्यसे उसे भारी कष्ट हुआ। उसने ऐसे दुःखित स्वरसे अपने भगवान्‌को पुकारा कि मानो शरीर छूट रहा है। उसकी प्रेमपुकार सुनकर उसके भगवान् वहीं आकर हृदयसे लग गये। यह अद्भुत दृश्य देखकर उसके भाई एवं अन्य सज्जनोंने कहा कि हमारे बड़े भाग्य हैं, जो भक्ता बहन घरपर आयीं और उनके दुर्लभ प्रेमके दर्शन हमें हुए (उन सबोंके मनमें भक्ति जग गयी)। वे फूले नहीं समा रहे थे। इधर वह अपने ठाकुरसमेत घर आयी और उनकी सेवा करके फूली नहीं समा रही थी।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाको अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

पाछिले कवित्त मांझ दुहुँन की एक रीति अब सुनौ न्यारी न्यारी नीके मन दीजियै।
जिमींदार सुता ताके भए उभै भाई रहै आपुस में बैर गांव मार्‍यो सब छीजियै॥
तामैं गई सेवा इन बड़ोई कलेश कियौ जियौ नाहिं जात खान पान कैसैं कीजियै।
रहे समुझाय याहि कछु न सुहाय तब कही जाय ल्वावौ तेरे दोऊ सम धीजियै॥ १९९॥
गई वाही गांव जहां दूसरो जू भाई रहै बैठ्यौ हो अथाई मांझ कही वही बात है।
लेवो जू पिछानि तहां बैठे एकठौर प्रभु बोलि उठ्यौ कोऊ बालि लीजै प्रीति गात है॥
भई आंखि राती लागी फाटिबेकौं छातीसो पुकारी सुर आरत सौं मानो तन पात है।
हिये आई लागे सब दुख दूर भागे कोऊ बड़े भाग जागे घर आई न समात है॥ २००॥

राजा-कन्याकी कथा

सिलपिल्लेकी भक्त राजकन्याको विषय-सुखोंसे पूर्ण वैराग्य हो गया था। उसके चित्तकी वृत्तियाँ भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसिलपिल्लेजीकी सेवामें ही लगी रहती थीं। दैवयोगसे उसका विवाह जिससे हुआ, वह और उसके घरके सभी लोग भक्तिसे विमुख थे। वही अभक्त पति उसे जब विदा कराने आया तो वह भक्ता बहुत व्याकुल हुई और चित्तमें सोचने लगी कि इसकी विमुखता कैसे दूर हो। घरवालोंने उसे पतिके साथ विदा कर दिया। वह अपने ही प्रेमरंगमें रँगी हुई उसके साथ चली। अब भगवद्-विमुख पतिके सम्पर्कसे बचनेका एकमात्र सहारा भगवान् ही थे, जिनसे वह प्रेम करती थी। रास्तेमें उसका पति उसके पास आया और वार्तालाप करके उसने उससे प्रेम करना चाहा, परंतु उस भक्ताने कहा—यदि आप मुझसे बातचीत करना चाहते हो तो पहले अपने हृदयमें भगवद्भक्तिकी चाहना करो। बिना भक्तिको किये मुझसे दूर रहो। यह सुनकर उसको बड़ा क्रोध आया और उसने अपने मनमें सोचा कि इसके पास जो पूजा-पाठकी पिटारी है और इसमें जो कुछ है, उसीमें इसका मन लगा है, उसे लेकर इससे अलग कर देना चाहिये। अवसर पाकर उसने पिटारीको चुराकर नदीमें फेंक दिया। इससे उस राजकन्याके हृदयमें दूसरा नया दुःख-दाह उत्पन्न हो गया।

उस राजकन्याने अन्न-जलका त्याग कर दिया, तब उसके पतिने उसे अनेक प्रकारसे प्रसन्न करना चाहा, परंतु जिसके सर्वस्व भगवान् छीन लिये गये हों, वह भला कैसे प्रसन्न हो? इसके बाद जब वे सब घरपर आये, तब उसके पतिने मार्गमें घटी घटनाका विवरण सुनाया। राजकन्याका शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण होते देखकर घरके लोगोंने कहा—तुमने ऐसा हठ क्यों ठाना है? उसकी सासने उसे बहुत समझाया और उसे अपने हाथसे खिलाने लगी, पर खानेकी क्या बात, उसे उन लोगोंसे बोलना भी अच्छा नहीं लग रहा था। यह मर न जाय, अतः घरवालोंने कहा—हम सब तेरे पाँवोंमें पड़ते हैं, अब जो तू कहे, उसे ही करेंगे। तब उस भक्ताने कहा—वे ही मेरे सिलपिल्ले भगवान् जब आयें, तभी मैं जीवित रह सकती हूँ।

तब वह भक्ता घरवालोंके साथ उसी नदीके समीप आयी, जहाँ जलमें पिटारी फेंकी गयी थी। प्रभुका स्मरण आते ही उसे चक्कर-सा आ गया और वह मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी। उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। फिर वह अत्यन्त दुःखित स्वरसे अपने प्राणनाथ सिलपिल्ले भगवान्‌को पुकारने लगी। भगवान् श्यामसुन्दर तो भक्तिके वशमें रहते हैं। दीन पुकार सुनते ही सिलपिल्ले भगवान् दौड़कर उसकी छातीसे आ लगे, उनके साथ वह पिटारी भी आ गयी। उस भक्ताके पति, सास और ससुर आदि सबने जब ऐसा चमत्कार देखा तो वे बड़े प्रभावित हुए। उस राजकन्याने अपनी भक्तिसे सबको भक्त बना दिया। वे सभी भक्त भगवान्‌की सेवामें लग गये। वे कहने लगे कि हम सबोंके भाग्य जग गये, जो ऐसी बहू घर आयी।

श्रीप्रियादासजी महाराज राजकन्याकी इस प्रीतिका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

सुनौ नृप सुता बात भक्ति गात गात पगी भगी सब बिषै वृत्ति सेवा अनुरागी है।
व्याही ही विमुख घर आयो लैंन वहै बर खरी अरबरी कोऊ चित चिन्ता लागी है॥
करि दई संग भरी अपने ही रंग चली अली हूँ न कोई एक वही जासौं रागी है।
आयो ढिंगपति बोलि कियो चाहै रति वाकी औरै भई गति मति आवौ विथा पागी है॥ २०१॥
कौन वह विथा ताकौं कीजिये जतन वेगि बड़ो उदवेग नेकु बोलि सुख दीजिये।
बोलिबों जौ चाहौ तौपै चाहौ हरिभक्ति हिये बिन हरिभक्ति मेरो अंग नहीं छीजिये॥
आयो रोषभारी अब मन मैं विचारी वा पिटारीमें जु कछु सोई लैकै न्यारो कीजिये।
करी वही बात मूसि जल मांझ डारि दई नई भई ज्वाला जियो जात नहीं खीजिये॥ २०२॥
तज्यो जल अन्न अब चाहत प्रसन्न कियो होत क्यों प्रसन्न जाको सरबस लियौ है।
पहुंचे भवन आइ दई सो जताइ बात गात अति छीन देखि कहा हठ कियौ है॥
सासु समुझावै कछु हाथ सों खवावै याकौं बोलिहू न भावै तब धरकत हियौ है।
कहैं सोई करैं अब पांय तेरे परैं हम बोली जब वेई आवैं तौ ही जात जियौ है॥ २०३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये वाही ठौर भौंर आई तनु भूमि गिर्‌यो ढर्‌यो जल नैन सुर आरत पुकारी है।
भक्तिबस श्याम जैसे कामबस कामी नर धाइ लागे छातीसों जु संग सो पिटारी है॥
देखि पति सासु आदि जगत विवाद मिट्यो बाद ही जनम गयो नेकु न सँभारी है।
किये सब भक्त हरि साधु सेवा मांझ पगे जगे कोऊ भाग घर बधू यों पधारी है॥ २०४॥

अपने पुत्रको विष देनेवाली दो भक्तिमती नारियाँ

(१)

एक राजा बड़ा भक्त था। उसके यहाँ बहुत-से साधु-सन्त आते रहते थे। राजा उनकी प्रेमसे सेवा करता था। एक बार एक महान् सन्त अपने साथियोंसमेत पधारे। राजाका सत्संगके कारण उनसे बड़ा प्रेम हो गया। वे सन्त राजाके यहाँसे नित्य ही चलनेके लिये तैयार होते, परंतु राजा एक-न-एक बात (उत्सव आदि) कहकर प्रार्थना करके उन्हें रोकता और कहता कि प्रभो! आज रुक जाइये, कल चले जाइयेगा। इस प्रकार उनको एक वर्ष और कुछ मास बीत गये। एक दिन उन सन्तोंने निश्चय कर लिया कि कल हम अवश्य ही चले जायँगे। राजाके रोकनेपर किसी भी प्रकारसे नहीं रुकेंगे। यह जानकर राजाकी आशा टूट गयी, वह इस प्रकार व्याकुल हुआ कि उसका शरीर छूटने लगा। रानीने राजासे पूछकर सब जान लिया कि राजा सन्तवियोगसे जीवित न रहेगा। तब उसने सन्तोंको रोकनेके लिये पुत्रको विष दे दिया; क्योंकि सन्त तो स्वतन्त्र हैं, इन्हें कैसे रोककर रखा जाय, इसका और कोई उपाय नहीं है। प्रात:काल होनेसे पहले ही रानी रो उठी, अन्य दासियाँ भी रोने लगीं, राजपुत्रके मरनेकी बात फैल गयी। राजमहलमें कोलाहल मच गया। सन्तने सुना तो शीघ्र ही राजभवनमें प्रवेश किया और जाकर बालकको देखा। उसका शरीर विषके प्रभावसे नीला पड़ गया था, जो इस बातका साक्षी था कि बालकको विष दिया गया है। महात्माजीने रानीसे पूछा कि सत्य कहो, तुमने यह क्या किया? रानीने कहा—आप निश्चय ही चले जाना चाहते थे और हमारे नेत्रोंको आपके दर्शनोंकी अभिलाषा है। आपको रोकनेके लिये ही यह उपाय किया गया है।

राजा और रानीकी ऐसी अद्भुत भक्तिको देखकर वे महात्मा जोरसे रोने लगे। उनका कण्ठ गद्‌गद हो गया, उन्हें भक्तिकी इस विलक्षण रीतिसे भारी सुख हुआ। इसके बाद महात्माजीने भगवान्‌के गुणोंका वर्णन किया और उस बालकको जीवित कर दिया। उन्हें वह स्थान अत्यन्त प्रिय लगा। अपने साथियोंको जो जाना चाहते थे, उन्हें विदा कर दिया और जो प्रेमरसमें मग्न सन्त थे, वे उनके साथ ही रह गये। इस घटनाके बाद महात्माजीने कहा कि अब यदि हमें आप मारकर भगायेंगे तो भी हम यहाँसे न जायँगे।

श्रीप्रियादासजी भक्तिमयी रानीकी इस अलौकिक संत-निष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

भक्तन के हित सुत विष दियौ उभै बाई कथा सरसाई बात खोलिकै बताइयै।
भयो एक भूप ताके भक्तहूँ अनेक आवैं आयो भक्त भूप तासौं लगन लगाइयै॥
नितहीं चलत ए पै चलन न देत राजा बितयो बरष मास कहैं भोर जाइयै।
गई आस टूटि तन छूटिबे की रीति भई लई बात पूछि रानी सबै लै जनाइयै॥ २०५॥
दियो सुत विष रानी जानी नृप जीवै नाहिं सन्त है स्वतन्त्र सो इन्हैंहि कैसे राखियै।
भये बिन भोर बधू शोर करि रोय उठी भोय गई रावले में सुनि साधु भाखियै॥
खोलि डारि कटिपट भवन प्रवेश कियो लियो देखि बालक कौं नील तनु साखियै।
पूछ्यो भूप तियासौं जू साँचे कहि कियो कहा? कही तुम चल्यौ चाहौ नैन अभिलाखियै॥ २०६॥
छाती खोलि रोए किहूँ बोलिहूं न आवै मुख सुख भयो भारी भक्ति रीति कछु न्यारियै।
जानीऊँ न जाति, जाति पाँति को विचारि कहा अहो रससागर सो सदा उर धारियै॥
हरि गुण गाय साखी सन्तनि बताय दियौ बालक जिवाय लागी ठौर वह प्यारियै।
संग के पठाय दिये रहे वे जे भींजे हिये बोले आप जाऊँ जौ न मारि कै विडारियै॥ २०७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

महाराष्ट्रके राजा महीपतिरावजी परम भक्त थे। उनकी कन्या कह्लाड़के राजा रामरायके साथ ब्याही थी, लेकिन घरके सभी लोग महा अभक्त थे। भक्तिमय वातावरणमें पलनेवाली उस राजपुत्रीका मन घबड़ाने लगा। अन्तमें जब उसे कोई उपाय नहीं सूझा तो उसने अपनी एक दासीसे कह दिया कि इस नगरमें जब कभी भगवान्‌के प्यारे भक्त आयें तो मुझे बताना।

एक दिन दैवयोगसे उस नगरमें साधुओंकी (श्रीज्ञानदेवजीकी) जमात आयी। उनके आनेका समाचार दासीने उस राजपुत्रीको दिया। अब उस भक्तासे सन्त-अदर्शन कैसे सहन होता। उसने अपने पुत्रको विष दे दिया। वह मर गया, अब वह राजकन्या तथा दूसरे घरके लोग रोने तथा विलाप करने लगे। तब उस भक्ताने व्याकुल होकर उन लोगोंसे कहा कि अब इसके जीवित होनेका एक उपाय है, यदि वह किया जाय तो पुत्र अवश्य जीवित हो सकता है। रोते-रोते सबोंने कहा—जो भी उपाय बताओगी, उसे हम करेंगे। तब उस बाईने कहा कि सन्तोंको बुला लाइये। उन लोगोंने पूछा कि सन्त कैसे होते हैं? इसपर भक्ताने कहा कि यह दासी मेरे पिताके घरमें सन्तोंको देख चुकी है, कैसे होते हैं, कहाँ मिलेंगे आदि सब बातोंको यह बतायेगी। पूछनेपर दासीने कहा कि आज इस नगरमें कुछ सन्त पधारे हैं और अमुक स्थानपर ठहरे हैं।

वह दासी राजाको साथ लेकर चली और सन्तोंसे बोलना सिखा दिया और कहा कि उनको देखते ही पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम करते हुए उनके चरणोंको पकड़ लीजियेगा। राजाने दासीके कथनानुसार ही कार्य किया। शोकवश राजाकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी, परंतु उस समय ऐसा लगा कि मानो ये सन्तप्रेमवश रो रहे हैं। सहज विश्वासी उन सन्तोंने भी विश्वास किया कि ये लोग प्रेमसे रुदन कर रहे हैं। राजाने प्रार्थना की कि प्रभो! मेरे घर पधारकर उसे पवित्र कीजिये। राजाकी विनती स्वीकारकर सन्तजन प्रसन्नतापूर्वक उसके साथ चले। दासीने आगे ही आकर भक्तारानीको साधुओंके शुभागमनकी सूचना दे दी। वह रानी पौरीमें आकर खड़ी हो गयी। सन्तोंको देखते ही वह उनके चरणोंमें गिर पड़ी और प्रेमवश गद्‌गद हो गयी। आँखोंमें आँसू भरकर धीरेसे बोली—आप लोग मेरे पिता-माताको जानते ही होंगे; क्योंकि वे बड़े सन्तसेवी हैं। आपलोगोंका दर्शन पाकर आज ऐसा मनमें आता है कि अपने प्राणोंको आपके श्रीचरणोंमें न्यौछावर कर दूँ।

उस भक्तारानीकी अति विशेष प्रीति देखकर सन्तजन अति प्रसन्न हो गये और बोले कि तुमने जो प्रतिज्ञा की है, वह पूरी होगी। राजमहलमें जाकर सन्तोंने मरे हुए बालकको देखकर जान लिया कि इसे निश्चय ही विष दिया गया है। उन्होंने भगवान्‌का चरणामृत उसके मुखमें डाला। वह तुरंत जीवित हो गया। इस विलक्षण चमत्कारको देखते ही राजा एवं उसके परिवारके सभी लोग जो भक्तिसे विमुख थे, सभीने सन्तोंके चरण पकड़ लिये और प्रार्थना की कि हमलोग आपकी शरणमें हैं। तब सन्तोंने उन सभीको दीक्षा देकर शिष्य बनाया। उन लोगोंने वैष्णव बनकर सन्तोंकी ऐसे प्रेमसे सेवा करना आरम्भ कर दिया, जिसे देखकर लोग प्रेमविभोर हो जाते थे।

श्रीप्रियादासजी रानीकी संतनिष्ठाकी इस घटनाका अपने कवित्तोंमें वर्णन करते हुए कहते हैं—

सुनौ चितलाई बात दूसरी सुहाई हिये जिये जग माहिं जौलौं सन्त संग कीजियै।
भक्त नृप एकसुता ब्याही सो अभक्त महा जाके घर माँझ जन नाम नहीं लीजियै॥
पल्यौ साधु सीथ सौं शरीर दृग रूप पले जीभ चरणामृतके स्वाद ही सों भीजिये।
रह्यों कैसे जाय अकुलाय न बसाय कछु आवैं पुर प्यारे तब विष सुत दीजियै॥ २०८॥
आये पुर सन्त आइ दासी ने जनाइ कही सही कैसे जाइ सुत विष लैकै दियो है।
गये वाके प्रान रोय उठी किलकानि सब भूमि गिरे आनि टूक भयो जात हियो है॥
बोली अकुलाय एक जीबे कौ उपाय जोपै कियो जाय पिता मेरे कैयो बार कियो है।
कहै सोई करैं दृग भरैं ल्यावो सन्तनिकौ, कैसे होत सन्त? पूछ्यो चेरी नाम लियो है॥ २०९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चली लै लिवाइ चेरी बोलिबौ सिखाय दियो देखिकै धरनि परि पाँय गहि लीजियै।
कीनी वही रीति दृगधारा मानौ प्रीति सन्त करी यौं प्रतीति गृह पावन कौ कीजियै॥
चले सुख पाय दासी आगे ही जनाई जाय आय ठाड़ी पौरि पाँय गहे मति भीजियै।
कही हरे बात मेरे जानौ पिता मात मैं तो अंग में न माति आज प्राण वारि दीजियै॥ २१०॥
रीझि गये सयन्त प्रीति देखिकैं अनन्त कह्यो होयगी जु वही सो प्रतिज्ञा तैं जो करी है।
बालक निहारि जानी विष निरधार दियो दियो चरनामृत कौं प्रान संज्ञा धरी है॥
देखत विमुख जाय पाँय ततकाल लिये किये तब शिष्य साधु सेवा मति हरी है।
ऐसे भूप नारि पति राखी सब साखी जन रहै अभिलाखी जोपै देखौ याही घरी है॥ २११॥

सन्तवेशका आदर करनेवाले भक्त

रंगनाथ को सदन करन बहु बुद्धि बिचारी।
कपट धर्म रचि जैन द्रब्य हित देह बिसारी॥
हंस पकरने काज बधिक बानौं धरि आए।
तिलक दाम की सकुच जानि तिन आप बँधाए॥
सुत बध हरिजन देखि कै दै कन्या आदर दियो।
आसय अगाध दुहुँ भक्त को हरितोषन अतिसय कियो॥ ५१॥

मामा और भानजे इन दोनों भक्तोंके अभिप्राय अत्यन्त ही गम्भीर थे। इन्होंने अपनी लोक-वेदसे विलक्षण भक्तिके द्वारा भगवान्‌को अत्यन्त प्रसन्न किया। इन्होंने श्रीरंगनाथजीका मन्दिर बनवानेके लिये धन प्राप्त करनेके अनेक उपाय सोचे; परंतु धन प्राप्ति न हुई, तब छल करके जैनी बन गये। धनहेतु अपने शरीरका भी त्याग किया। मानसरोवरनिवासी हंस भक्तोंको पकड़नेके लिये बहेलिये लोग वैष्णव सन्तोंका वेष बनाकर आये। वे हंस-भक्त तिलक और कण्ठीका आदर करके संकोचवश जानबूझकर स्वयं बँध गये। वेषधारी भगवद्भक्त द्वारा अपने लड़केकी हत्या हुई जानकर भी सदाव्रती भक्तने उस वैष्णव भक्तको अपनी कन्या ब्याहकर उसका अधिक आदर किया॥ ५१॥

श्रीप्रियादासजीने इन मामा-भानजेके इस दिव्य भावका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

आशय अगाध दोऊ भक्त मामा भानजे कौं दियौ प्रभुतोष ताकी बात चित धारियै।
घर ते निकसि चले बन कौं विवेक रूप मूरति अनूप बिन मन्दिर निहारियै॥
दक्षिण में रंगनाथ नाम अभिराम जाकौ ताकौ लै बनावै धाम काम सब टारियै।
धन के जतन फिरे भूमि पै न पायौ कहूँ, चहुँ दिशि हेरि देख्यो भयौ सुख भारियै॥ २१२॥
मन्दिर सरावगी कौ प्रतिमा सो पारस की आरस न कियो वेद न्यून हूं बतायो है।
पावै प्रभु सुख हम नर्क हूं गये तौ कहा? धरक न आई तब कान लै फुकायो है॥
ऐसी करी सेवा जासौ हरी मति केवरा ज्यों सेवरा समाज सबै नीके कै रिझायो है।
दियो सौपि भार तब लैबै को विचार करै हरै कौन राह? भेद राजनि पै पायो है॥ २१३॥
मामा रह्यो भीतर औ ऊपर सो भानजो हो कलस भँवरकली हाथ सौं फिरायो है।
जेवरी लै फाँसि दियो मूरति सो खैंचि लई और बार वह आप नीकैं चढ़ि आयो है॥
कियो हो जो द्वार तामें फूलि तन फँसि बैठ्यो अति सुख पाय तब बोलिकै सुनायो है।
काटि लेवो सीस ईस भेष की न निन्दा करैं भरैं अँकवारि मन कीजियो सवायो है॥ २१४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काटि लियो सीस ईस इच्छाकौ विचार कियो जियौ नहीं जाय तऊ चाह मति पागी है।
जो पै तन त्याग करौं कैसे आस सिन्धु तरौं ढरौं वाही ओर आयो नीव खुदै लागी है॥
भयो शोक भारी हमैं ह्वै गई अबारी काहू और नैं विचारी देखैं वही बड़भागी है।
भरि अँकवार मिले मन्दिर सँवारि झिले खिले सुख पाइ नैन जानै जोई रागी है॥ २१५॥

सन्तवेशनिष्ठ हंसोंकी कथा

एक राजा था, उसे कुष्ठ हो गया था। वैद्योंने कहा कि हंसोंको मारकर बनायी हुई औषधिसे ही आपके देहका कुष्ठ अच्छा हो सकता है। राजाके आज्ञानुसार चार बधिक हंसोंको लाने मानसरोवरपर गये, परंतु हंस इन्हें देखकर ही उड़ जाते थे। बधिकोंने देखा कि कोई साधु-सन्त जब उनकी ओर जाते हैं, तब वे नहीं डरते हैं। इस रहस्यको जानकर चारों बधिक वैष्णववेश बनाकर फिर मानसरोवरपर गये। हंसोंने इन्हें वैष्णववेशमें देखकर भी यह जान लिया कि ये बधिक ही हैं। वेष बनावटी है, फिर भी वेशनिष्ठासे अपनेको बँधा लिया। बधिक हंसोंको लेकर राजाके पास आये। हंसोंकी सन्तवेशनिष्ठा देखकर भगवान्ने वैद्यका स्वरूप धारण किया और उसी राजाके नगरमें जाकर यह घोषणा की कि मैं कुष्ठ आदि सभी असाध्य रोगोंकी सफल चिकित्सा करता हूँ। लोग इन्हें राजाके समीप ले आये। भगवान्ने कहा—आप इन पक्षियोंको छोड़ दें, मैं आपके शरीरको अभी-अभी बिलकुल नीरोग किये देता हूँ। राजाने कहा—ये तो बड़ी कठिनतासे हमें मिले हैं, कुष्ठरोग ठीक हुए बिना हम इन्हें कैसे छोड़ दें? यह सुनकर वैद्यजीने अपनी झोलीसे औषधि निकाली और पिसवाकर राजाके शरीरपर मलवायी। राजाका कुष्ठ दूर हो गया। राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने हंसोंको छोड़ दिया।

इस चरित्रको देखकर बधिकोंने अपने मनमें विचारा कि जिस वैष्णववेशका पक्षियोंने ऐसा विश्वास किया और उसीके फलस्वरूप उनके प्राण भी बच गये, ऐसे वेशको हम मनुष्य होकर अब कैसे छोड़ दें! इस प्रकार वे बधिक सच्चे सन्त बन गये, उन्होंने वेशका त्याग नहीं किया, उनकी मति भगवान्की भक्तिमें मग्न हो गयी।

श्रीप्रियादासजी महाराज हंसोंकी इस संतवेशनिष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

कोढ़ी भयो राजा कियो जतन अनेक ऐपै एकहूँ न लागै कह्यो हंसनि मँगाइयै।
बधिक बुलाय कही वेग ही उपाय करौ जहाँ तहाँ ढूंढ़ि अहो इहाँ लगि ल्याइयै॥
कैसे करि ल्यावें वै तो रहैं मानसर माँझ ल्यावोगे छुटोगे तब जनै चारि जाइयै।
देखत ही उड़ि जात जातिको पिछानि लेत साधु सौ न डरैं जानि भेष लै बनाइयै॥ २१६॥
गये जहाँ हंस सन्त बानो सो प्रशंस देखि जानिकै बँधाये राजा पास लैकै आये हैं।
मानि मतिसार प्रभु वैद को स्वरूप धारि पूछिकैं बाजार लोग भूप ढिग ल्याये हैं॥
काहेको मँगाये पच्छी? अच्छी हम करैं देह छोड़ि दीजै इन्हें कहीं नीठि करि पाये हैं।
औषधी पिसाये अंग अंगनि मलाये किये नीके सुख पाये कहि उनको छुटाये हैं॥ २१७॥
लेवो भूमि गाउँ बलि जाउँ या दयालता की भाल भाग ताकै जाकौं दरसन दीजियै।
पायो हम सब अब करौ हरि साधु सेवा मानुष जनम ताकी सफलता कीजियै॥
करी लै निदेस देस भक्ति विसतार भयो हंस हित सार जानि हिये धारि लीजियै।
बधिकनि जानी जासों खगनि प्रतीति कीनी ऐसो भेष छोड़िये न राख्यौ मति भीजियै॥ २१८॥

सदाव्रती महाजनकी कथा

सदाव्रती महाजन अपने सर्वस्वके द्वारा सन्त-सेवा करते थे, इनकी सेवाके प्रभावसे अनेक साधु-सन्त इनके घरपर आते रहते थे। एक बार एक सन्त आये, इनके यहाँ अत्यन्त सुख पाकर सदा इनके घरपर ही रहने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाव्रतीजीके पुत्रसे उनका प्रेम हो गया। नित्य उसीके साथ खेला करते। एक दिन उस सन्तकी मति भ्रष्ट हो गयी। खेलते-खेलते दोनों गाँवके बाहर गये, वहाँ सन्तने महाजन भक्तके पुत्रको आभूषणोंके लोभमें आकर मार डाला और उसके शवको गाड़कर घरको आ गया।

घरमें पिता-माता बाट देख रहे थे कि बालक कहाँ जाकर फँस गया। जब बाट देखते-देखते चार पहर बीत गये, फिर भी लड़का घर न आया, तब भक्त सदाव्रतीने गाँवमें ढिंढोरा पिटवाया कि मेरे लड़केको किसने रोक रखा है, इस बातको जो कोई शीघ्र बता देगा, उसे उस लड़केके सभी आभूषण दे दिये जायँगे। यह घोषणा सुनकर घटना देखनेवाले एक संन्यासीने आकर कहा कि तुम्हारे पुत्रको इसी सन्तने मारकर धरतीमें गाड़ दिया है। यह कहकर भक्त महाजनको वह स्थान दिखा दिया, जहाँ लड़का गड़ा था। भक्त सदाव्रतीने कहा—इस संन्यासीको पकड़ लो, इसीने हमारे लड़केको मारा है।

तब घबड़ाकर संन्यासीने कहा—मैंने देखा था, इसलिये बता दिया। मुझे छुड़ा दीजिये, मैं बिलकुल झूठ नहीं बोल रहा हूँ। तब महाजन भक्तने कहा—यदि तुम इस संकटसे बचना चाहते हो तो साधुका नाम कदापि मत लो और इस गाँवको छोड़कर कहीं दूसरी जगहपर चले जाओ। संन्यासीने यह बात मान ली। वह वहाँसे चला गया। लड़केका अन्तिम संस्कार करके सदाव्रतीजी घर आये। उन्होंने देखा कि सन्तजी कुछ उदास हो रहे हैं। सन्तके संकोचको दूर करनेका उपाय वे सोच ही रहे थे कि उनके मनका भाव जानकर उनकी स्त्री बोल उठी कि इन्हें अपनी कन्या देकर आदरसहित घरमें रखिये।

सदाव्रतीजीने अपनी स्त्रीके कथनानुसार सन्तजीको बुलाकर उनसे प्रार्थना की कि आप कृपया मेरे हृदयका दुःख मिट जाय, केवल इसलिये मेरी पुत्रीसे ब्याह कीजिये और जबतक मेरा जीवन है, आप मेरे साथ रहकर प्रेमका निर्वाह कीजिये। ऐसा कहकर सन्तके साथ बेटीका विवाह कर दिया।

भक्त सदाव्रतीजीके पुत्रकी मृत्युकी बात सुनकर अथवा भगवदादेशसे एक दिन उनके श्रीगुरुदेवजी घरपर पधारे। इन्होंने ही महाजन भक्तको सन्त-सेवाकी महिमा बतायी और सेवा करनेकी आज्ञा दी थी। श्रीगुरुदेवने सदाव्रतीसे कुशल पूछते हुए कहा कि बालक कहाँ है? इन्होंने उत्तर दिया—अजी! वह तो भगवान्‌को प्राप्त हो गया। यह सुनकर गुरुदेवने कहा—प्रभुने तुम्हारी परीक्षा ली है, तुम्हारा पुत्र मरा नहीं, इसीसे प्रभुने मुझे तुम्हारे पास आनेकी आज्ञा दी है। जहाँ उसके शरीरका दाह-संस्कार हुआ है, चलकर वह स्थान हमें दिखाओ। सन्तशिरोमणि गुरुदेव वहाँ गये और उन्होंने भगवान्‌का ध्यान किया। उसी क्षण बालक जीवित होकर आ गया। इस प्रकार भगवान्ने सन्तवेश निष्ठाके माध्यमसे भक्तकी परीक्षा लेकर उसकी कीर्तिका विस्तार किया।

श्रीप्रियादासजी सदाव्रतीजीकी इस सन्तनिष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

महाजन सुनो सदाव्रती ताको भक्तिपन मन विचार सेवा कीजै चितलायकै।
आवत अनेक साधु निपट अगाध मति साधि लेत जैसी आवै सुबुधि मिलायकै॥
सन्त सुख मानि रहि गयो घर माँझ सदा सुत सो सनेह नित खेलै संग जायकै।
इच्छा भगवान मुख्य गौन लोभ जानि मारि डार्‌यौ धूरि गाड़ि गृह आयो पछितायकै॥ २१९॥
देखै महतारी मग बेटा कहां पगि रह्यौ बीते चारि जाम तऊ धाम में न आयो है।
फेरी पुर डौंड़ी ताके संग संत आप लौड़ी कह्यौ यों पुकारि सुत कौंने विरमायो है॥
बेगिदै बताय दीजै आभरन दिये लीजै कही संन्यासयी एही मार्‌यौ मन लायो है।
दई लै दिखाय देह बोल्यो याको गहि लेहु याही ने हमारौ पुत्र हत्यौ नीके पायौ है॥ २२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोल्यौ अकुलाय मैं तो दियौ है बताय मोंको देहु जु छुटाय नहीं झूठ कछु भाखियै।
लेवो मति नाम साधु जो उपाधि मेट्यो चाहौ जावौ उठि और कहूँ मानी छोरि नाखियै॥
आयकै विचार कियौ जानी सकुचायौ सन्त बोलि उठी तिया सुत दैकैं नीके राखियै।
पर्यो बधू पाँय तेरी लीजियै बलाय पुत्र शोक को मिटाय और खरी अभिलाखियै॥ २२१॥
बोलि लियो सन्त सुता कीजिये जू अंगीकार दुख सो अपार काहू विमुख कौं दीजियै।
बोल्यो मुरझाय मैं तो मार्यौ सुत हाय मोपै जियौ हू न जाय मेरो नाम नहीं लीजियै॥
देखौ साधुताई धरी सीस पै बुराई जहाँ राई हूँ न दोष कियो मेरु सम रीझियै।
दई बेटी ब्याहि कहि मेरो उर दाह मिटै कीजियै निवाह जग माँहिं जोलौं जीजियै॥ २२२॥
आये गुरु घर सुनि दीजै कौन सर बड़े सिद्ध सुखदाई साधु सेवा लै बताई है।
कह्यो सुत कहाँ? अजू पायो, कही कैसी भाँति? कैसे कै बखानैं जग मीच लपटाई है॥
प्रभु ने परीक्षा लई सोई हमैं आज्ञा दई चलियै दिखावौ जहाँ देह कौं जराई है।
गए वाही ठौर सिरमौर हरिध्यान कियो जियो चल्यो आयो दास कीरति बढ़ाई है॥ २२३॥

भगवान्‌द्वारा भक्तोंकी वाणीको सत्य करना

दारुमई तरवार सारमय रची भुवन की।
देवा हित सित केस प्रतिग्या राखी जन की॥
कमधुज के कपि चारु चिता पर काष्ठ जु ल्याए।
जैमल के जुध माहिं अस्व चढ़ि आपुन धाए॥
भैंस चौगुनी घृत सहित श्रीधर सँग सायक धरन।
चारौ जुग चत्रभुज सदा भक्त गिरा साँची करन॥ ५२॥

चतुर्भुज भगवान् चारों युगोंमें सदा ही अपने भक्तोंकी वाणीको सत्य करते हैं। १-श्रीभुवनसिंहजी चौहानकी लकड़ीकी तलवार भगवान्‌ने लोहेकी बना दी। २-श्रीदेवाजी पण्डाके लिये भगवान्‌ने अपने सिरके बाल सफेद करके अपने भक्तकी वाणीको सत्य किया। ३-मरनेपर तुम्हें कौन जलायेगा, भाईके ऐसा कहनेपर भक्त कामध्वजजीने कहा था कि मैं जिसका चाकर हूँ, वही जलायेगा। भक्तकी इस वाणीको सत्य करनेके लिये उसके मरनेपर श्रीहनुमान्‌जी आये और लकड़ी लाकर सुन्दर चिता बनायी, दाह-संस्कार किया। ४-भक्त जयमलजीकी ओरसे युद्धमें भगवान् स्वयं घोड़ेपर चढ़कर दौड़े और उन्होंने लड़कर शत्रुको हराया। ५-ग्वाल भक्तकी भैंसें खो गयीं, इन्होंने घर आकर मातासे कह दिया कि भैंसें मैंने एक ब्राह्मणको दे दी हैं, कुछ दिन बाद वह घीके समेत भैंसें लौटा जायगा। तब भगवान्‌ने चौगुनी भैंसें लाकर भक्तकी बातको सत्य कर दिया। ६-श्रीधर भक्तकी वाणीको सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीराम उनकी रक्षा करते हुए उनके साथ घरतक गये। इस प्रकार प्रभु सदा भक्तोंके कथनको सत्य करते हैं॥ ५२॥

इन भक्तोंके पावन चरितका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीभुवनसिंहजीकी कथा

उदयपुरके राणाके एक दरबारी थे भुवनसिंहजी चौहान। ये शूरवीर होनेके साथ-साथ एक परम वैष्णव भक्त भी थे। इन्हें राणाने दो लाख रुपये वार्षिक आयवाली जागीर दे रखी थी, उसकी आयसे ये खूब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त-सेवा करते थे। एक बार राणा साहब शिकार खेलनेके लिये वनको गये, उनके साथ भुवनसिंहजी भी गये। वहाँ राणा साहबने एक हिरनीके पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया, पर वे उसे मार न सके। शिकार हाथसे जाता देखकर भुवनसिंहजीने अपना घोड़ा बढ़ाया और तलवारसे हिरनीके दो टूक कर दिये। वह गर्भिणी थी। बच्चेसमेत उसे तड़पकर मरते देखकर इनके मनमें बड़ी दया आयी, ये मनमें पछताने लगे कि मैंने इसे मारनेका पाप क्यों किया, लोग मुझे भक्त कहते हैं, परंतु मैं तो अभक्त-दुष्टोंका-सा कर्म करता हूँ। इसलिये मुझे अब उचित है कि मैं अब काठकी तलवार धारण करूँ। ऐसा विचारकर इन्होंने लोहेकी तलवार हटाकर लकड़ीकी तलवार म्यानमें रख ली।

भक्त भुवनसिंहजीका एक भाई था, उसने देख लिया कि इनकी तलवार तो लकड़ीकी है। चौहान साहबकी प्रतिष्ठाको धक्का पहुँचानेके लक्ष्यसे जाकर राणा साहबसे कह दिया। राणाजीने उसकी बातका विश्वास नहीं किया। तब उसने सैकड़ों कसमें खायीं। अन्तमें उसने जोर देकर कहा कि उनकी लकड़ीकी तलवार न हो और मैं झूठ कहता होऊँ तो आप मुझे मार डालियेगा। तब राणाजीने राजभवनके बगीचेमें एक राजगोष्ठी की। उसमें मन्त्री, सेनापति आदि मुख्य-मुख्य लोग एकत्र हुए। भोजनके उपरान्त जब सभी लोग सभाभवनमें बैठे, तब राणा साहबने कहा कि देखें, किसकी तलवार सबसे अधिक चमकीली है, सर्वश्रेष्ठको सम्मानित किया जायगा। यह कहते हुए उन्होंने अपनी तलवार निकालकर सबको दिखलायी। राणाजीने अपनी तलवार दिखाकर क्रमशः सभी सरदारोंकी तलवारें देखीं और जब भुवनसिंहजीकी बारी आयी, तब राणा साहबने कहा—कहिये, भुवनसिंहजी! आपका क्या विचार है। इसके उत्तरमें ये—मेरी तो दार (लकड़ी)-की है। यह कहना चाहते थे, परंतु 'मेरी तो सार (उत्तम लोहे)' की है—यह उनके मुखसे निकल गया। तदनुसार ही भगवान्ने उनकी तलवार लोहेकी कर दी, भक्तकी वाणी सत्य हो गयी और भुवनसिंहजीने जब अपनी तलवार निकालकर दिखलायी, तब ऐसा लगा कि तलवार नहीं, यह तो बिजली चमक रही है। उसी क्षण राणाजीके मनमें उस चुगलखोरके ऊपर क्रोध आया और उन्होंने उसे फटकारते हुए अपने सिपाहियोंको आज्ञा दी कि इसे पकड़ लो और शूलीपर चढ़ाकर मार डालो, यह पृथ्वीका भार है। उसके प्राणोंका संकट देखकर भक्त भुवनसिंहजीने हाथ जोड़कर राणाजीसे कहा कि इसे क्यों मरवा रहे हैं, यह तो निर्दोष है। इसने झूठी बात नहीं कही है। गर्भिणी हिरनी जब मेरी तलवारसे मरी थी, उसी दिनसे मैंने म्यानमें लकड़ीकी तलवार रख ली थी। उसे आज भगवान्ने लोहेकी कर दी है। इस विचित्र चमत्कारको देखकर राणाजीने प्रभावित होकर कहा—भक्तराज! अब आजसे आप दरबारमें हाजिरी बजाने मत आया करिये। दो लाखके स्थानपर चार लाखका पट्टा लीजिये। मैं कभी-कभी दर्शन करनेके लिये आपके घरपर ही आ जाया करूँगा। जिससे मेरा भी इस संसार-सागरसे उद्धार हो जायगा।

श्रीप्रियादासजी भगवान्की इस भक्तवत्सलताका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार करते हैं—

सुनौं कलिकाल बात और हैं पुराण ख्यात 'भुवन चौहान' जहां राना की दुहाई है।
पट्टा युग लाख खात सेवा अभिलाष साधु चल्यो सो सिकार नृप संग भीर धाई है॥
मृगी पाछे परे करे टूक हुती गाभिन यौं आइ गई दया कही काहे को लगाई है।
कहैं मोको भक्त क्रिया करौं मैं अभक्तन की दारु तरवार धरों यहै मन भाई है॥ २२४॥
और एक भाई तानै देखी तरवार दारु सक्यो न सँभार जाय राना कौं जनाई है।
नृप न प्रतीति करै करैं यह सौंह नाना बाना प्रभु देखि तेज बात न चलाई है॥
ऐसे ही बरस एक कहत बितीत भयो कह्यो मोहिं मारि डारौ जो पै मैं बनाई है।
करी गोठ कुण्ड जाय पायकै प्रसाद बैठे प्रथम निकासि आप सबनि दिखाई है॥ २२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम सौं निहारि कही भुवन विचार कहा? कहौ चाहैं दार मुख निकसत सार है।
काढ़िकै दिखाई मानौ बिजुरी चमचमाई आई मन माँझ बोल्यौ याकौ मारो भार है॥
भक्त कर जोरि कै बचायौ अजू मारियै क्यौं? कही बात झूठ नहीं करी करतार है।
पट्टा दूना दून पावौ आवौ मत मुजरा कौं मैं ही घर आऊँ होय मेरो निस्तार है॥ २२६॥

श्रीदेवाजी पण्डाकी कथा

उदयपुरके समीप श्रीरूप चतुर्भुज स्वामीका मन्दिर है, देवाजी वहीं पण्डा थे। एक दिन उदयपुरके राणा भगवान् श्रीचतुर्भुजजीका दर्शन करनेके लिये आये, परंतु नित्यकी अपेक्षा आज देरसे आये। समय हो गया था, इसलिये पुजारी श्रीदेवाजीने भगवान्‌को शयन करा दिया और प्रसादी माला जो राणाजीको पहनानेके लिये रखी थी, उसे उन्होंने अपने सिरपर धारण कर लिया। इतनेमें ही राणाजी आ रहे हैं, यह समाचार मिला। श्रीदेवापण्डाजीने प्रसादी माला अपने सिरसे उतारकर रख ली और राणाजीके आनेपर उसे उनके गलेमें पहना दिया। संयोगवश पण्डाजीके सिरका एक सफेद बाल मालामें लिपटा चला गया। उसे देखकर राणाजीने कहा—क्या ठाकुरजीके सिरके बाल सफेद हो गये हैं? पण्डाजीके मुखसे निकला—हाँ। राणाजीने कहा—मैं प्रातःकाल देखूँगा। पण्डाजी 'हाँ'—ऐसा कह तो गये, परंतु अब वे घबराये कि राणाजी हमें अवश्य ही मरवा डालेंगे; क्योंकि मैंने झूठी बात कही है। उन्हें और कोई उपाय नहीं सूझा, वे भगवान्‌के श्रीचरणोंका ध्यान करने लगे। उन्होंने प्रार्थना की कि हे हृषीकेश भगवान्! मेरे प्राणोंकी रक्षाके लिये कृपा करके आप अपने बालोंको सफेद कर लीजिये। आप भक्तरक्षक हैं, परंतु मेरे मनमें तो आपके प्रति नाममात्र भी भक्ति नहीं है। चिन्तामग्न श्रीपण्डाजीसे ठाकुरजीने कहा कि मैंने सफेद बाल धारण कर लिये हैं, न मानो तो आकर देख लो।

श्रीदेवापण्डाजी दुःखके महासागरमें डूबे थे, भगवान्‌की मधुर वाणी सुनकर उनकी जान-में-जान आयी। मन्दिरमें जाकर जब उन्होंने दर्शन किया तो सफेद बाल दिखायी पड़े। तब पण्डाजीने अपने मनके अनुभवसे यह जाना कि ठाकुरजीने हमारे ऊपर बड़ी कृपा की है, उनकी आँखोंमें आँसू भर आये।

प्रातःकाल शीघ्र ही चतुर्भुजजीके सफेद बाल देखनेके लिये राणाजी मन्दिरमें आये और सफेद बालोंको देखकर कुछ देर तो देखते ही रह गये, फिर परीक्षा लेनेके लिये उनमेंसे एक बाल खींचा। बालके खींचे जानेपर पीड़ावश ठाकुरजीने अपनी नाक चढ़ा ली। बाल उखड़ गया और उस बालके छिद्रसे रक्तकी धारा बह निकली। उसके छींटे राणाजीके शरीरपर पड़े। इससे राणाको मूर्च्छा आ गयी और वे पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें अपने शरीरका कुछ भी होश न रहा। एक पहर बाद जब होश आया। तब वे इसे करोड़ों अपराधोंके समान मानकर क्षमा-प्रार्थना करने लगे। श्रीचतुर्भुजजीने आज्ञा की—तुम्हारे लिये यही दण्ड है कि जो भी राजगद्दीपर बैठे, वह दर्शनोंके लिये मेरे मन्दिरमें न आये। इस आज्ञाके अनुसार उनकी आन मानकर जो भी राजा उदयपुरकी राजगद्दीपर बैठते हैं, वे दर्शन करने मन्दिरमें नहीं आते हैं।

श्रीप्रियादासजी भगवान्‌की इस भक्तवत्सलताका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

दरसन आयो राना रूप चतुर्भुज जू कैं रहे प्रभु पौढ़ि हार सीस लपटाये हैं।
वेगि ही उतारि कर लैकै गरे डारि दियो देखि धौरौ बार कही धौरे आये? आये हैं॥
कहत तो कही गई सही नहीं जात अब महीपति उारै मारि हरिपद ध्याये हैं।
अहो हृषीकेश करौ मेरे लिये सेतकेस लेसहूं न भक्तिकही किये देखो छाये हैं॥ २२७॥
मानि राजा त्रास दुखरासि सिंधु बूड्यौ हुतो सुनिकै मिठास बानी मानौं फेरि जियौ है।
देखे सेत बार जानी कृपा मो अपार करी भरी आँखैं नीर सेवा लेस मैं न कियौ है॥
बड़ेई दयाल सदा भक्त प्रतिपाल करैं मैं तो हौं अभक्त ऐपै सकुचायौ हियौ है।
झूठे सनबन्ध हूं तै नाम लाजै मेरोई जू तातैं सुख साजै यह दरसाय दियौ है॥ २२८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयो भोर राना सेत बार सो निहारि रह्यो कह्यौ केस काहूके लै पंडाने लगाये हैं।
ऐंचि लियो एक तामैं खैंचिकै चढ़ाई नाक रुधिरकी धार नृप अंग छिरकाये हैं॥
गिर्‍यो भूमि मुरछा ह्वै तनकी न सुधि कछू जाग्यो जाम बीते अपराध कोटि गाये हैं।
यही अब दण्ड राज बैठे सो न आवै इहां अब लौं हूँ आनि मानि करैं जो सिखाये हैं॥ २२९॥

श्रीकामध्वजजी

बहुत पहलेकी बात है, राजस्थानके उदयपुर राज्यमें एक सेवक परिवार रहता था। उस परिवारमें चार भाई थे। उनमेंसे तीन भाई तो उदयपुरके शासक राणाजीके यहाँ सेवा कार्य करते थे, परंतु चौथे भाई श्रीकामध्वजजी भगवद्भक्त थे। वे वनमें रहकर भजन करते और समयपर घर आकर भोजन-प्रसाद पाकर फिर वनमें चले जाते। यही उनका नित्यका कार्य था। उनके तीनों भाई उनको 'कामके न काजके दुश्मन अनाजके' मानकर उनसे नाराज ही रहा करते थे। एक दिन तीनों भाइयोंने कामध्वजजीसे कहा—'भाई! यदि तुम थोड़ी देरके लिये राणाजीके दरबारमें चलकर हाजिरी लगा दिया करो तो हमें तुम्हारा भी वेतन मिल जाया करे, जिससे घरका खर्च भी ठीकसे चल सके।' इसपर श्रीकामध्वजजी बोले—'मैं जिसका सेवक हूँ, उसकी सेवा करता हूँ और उसीकी हाजिरी बजाता हूँ, दूसरेसे हमें क्या काम?' भाई लोग उनका उत्तर सुनकर बहुत नाराज हुए और बोले—'जब तुम मर जाओगे तो तुम्हें जलायेगा कौन?' श्रीकामध्वजजीने उत्तर दिया—'जिसके हम सेवक हैं, वही हमें जलायेगा।' यह सुनकर भाईलोग उन्हें उनके हालपर छोड़कर चले गये। इधर एक दिन भजन करते-करते श्रीकामध्वजजीका शरीर छूट गया।

कामध्वजजीका शव वनमें पड़ा हुआ था। बन्धु-बान्धवोंको न कोई खबर थी और न ही वे खोज-खबर रखनेकी जरूरत ही समझते थे, परंतु दीनबन्धु भला अपने ऐसे अनन्य सेवकको कैसे भुला सकते थे। उन्होंने अपने उस सेवक (श्रीकामध्वजजी)-की दाहक्रियाका भार अपने सेवकश्रेष्ठ श्रीहनुमान्‌जीको सौंपा।

श्रीहनुमान्‌जी महाराजने उनके लिये चन्दनकी चिता तैयार की, उसपर श्रीकामध्वजजीका शरीर रखा और उसकी दाहक्रिया की। जिस वनमें श्रीकामध्वजजी रहते थे, वहाँ बहुत-से प्रेत भी रहते थे। श्रीकामध्वजजीकी चिताग्निसे निकले परम पवित्र धुएँका ऐसा दिव्य प्रभाव हुआ कि उसके स्पर्श और आघ्राणसे वे प्रेत उस अपवित्र प्रेतयोनिसे मुक्त होकर भगवद्धाम चले गये।

श्रीप्रियादासजी महाराज श्रीकामध्वजजीके इस चरितका वर्णन अपने कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—

भये चारि भाई करैं चाकरी वै रानाजूकी तामैं एक भक्त करै बनमें बसेरो है।
आय कै प्रसाद पावै फेरि उठि जाय तहीं कहैं नेकु चलौ तौ महीना लीजै तेरो है॥
जाके हम चाकर हैं रहत हजूर सदा मरै तौ जरावै कौन? वही जाको चेरो है।
छूट्यो तन वन राम आज्ञा हनुमान आये कियो दाह धुआँ लगे प्रेत पार नेरो है॥ २३०॥

श्रीजयमलजी

राजा जयमल राजस्थानकी मेड़ता रियासतके राजा थे और इन्होंने ही बादमें प्रसिद्ध जोधपुर नगर बसाया था। आप रसिकशिरोमणि सन्त श्रीहितहरिवंशजीके शिष्य और श्रीराधा-माधवजीके अनन्य भक्त थे। श्रीठाकुरजीकी सेवा-पूजामें उनका बड़ा भारी अनुराग था, उसमें उन्हें जरा भी व्यवधान स्वीकार नहीं था। यहाँतक कि उस समय कोई कितनी भी महत्त्वपूर्ण राजकीय सूचना क्यों न हो, वे उसे नहीं सुनते थे और सन्देश लेकर आनेवालेको मृत्युदण्ड दे दिया करते थे।

राजाका एक भाई था, परंतु वह राजासे ठीक विपरीत स्वभावका था। उसे भगवान्‌की सेवा-पूजासे कोई मतलब नहीं था, साथ ही वह राजा जयमलसे द्वेष भी करता था। यद्यपि राजा जयमलने उसे मँडोवरका राजा बना दिया था, पर उसकी महत्त्वाकांक्षा राजा जयमलके भी राज्यको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तगत कर लेनेकी थी। उसे किसी प्रकार राजाके सेवा-पूजाके नियमकी जानकारी हुई तो उसने एक कुटिल योजना बनायी। उस दुष्टने सोचा कि जब राजा जयमल पूजा कर रहे हों, तभी मेड़तापर आक्रमण कर देना चाहिये; क्योंकि मृत्युदण्डके भयसे उन्हें कोई आक्रमणकी सूचना देने नहीं जायगा और आसानीसे राज्य हस्तगत हो जायगा। ऐसा सोचकर उसने मेड़तापर आक्रमण कर दिया। राज्यपर आये इस प्रकारके संकटको देखकर मन्त्रियोंने विचार-विमर्श करके राजमातासे निवेदन किया कि आप ही महाराजको सूचना देनेमें समर्थ हैं; क्योंकि आपके प्रति पूज्य भावसे राजा आपको कुछ नहीं कहेंगे और उनतक सूचना भी पहुँच जायगी, फिर वे जैसा आदेश देंगे, हम लोग वैसा ही करेंगे, दूसरे किसीको भेजनेपर महाराज उसकी बात भी न सुनेंगे और प्राणदण्ड भी दे देंगे।

राज्यपर आये संकटकी गम्भीरताको देखते हुए राजमाता मन्त्रियोंके परामर्शसे मन्दिरमें गयीं और भगवान्‌की सेवा-पूजामें रत राजा जयमलको उन्होंने आक्रमणकी सूचना दी। राजा जयमलने माताकी बात सुनकर सिर्फ इतना कह दिया कि 'भगवान् सब अच्छा ही करेंगे' और स्वयं नित्यकी ही भाँति सेवा-पूजामें लगे रहे। इतने बड़े संकटकी सूचना भी उनके मनको सेवा-पूजासे न विचलित कर सकी और न ही उन्हें उद्विग्न कर सकी।

शत्रुसेना निर्बाध रूपसे बढ़ी चली आ रही थी; जब सेना मेड़ताके एकदम निकट पहुँच गयी तो भगवान्‌से रहा न गया। उन्होंने झट सैनिकका वेश बनाया; एक हाथमें तलवार ली, दूसरेमें भाला धारण किया। पीठपर ढाल बाँधी और राजाकी घुड़सालमें जाकर राजाकी सवारीका अश्व खोल लाये, फिर उसपर सवार होकर अकेले ही युद्धभूमिकी ओर चल दिये और सैनिक बने श्रीभगवान् तलवार चलाते हुए शत्रुसेनामें घुस गये। उस समय उनकी तलवार बिजलीकी भाँति कौंधकर शत्रुओंको सिरविहीन कर रही थी और भालेका एक ही प्रहार हाथियोंके गण्डस्थलको फाड़कर उन्हें धराशायी कर दे रहा था। प्रथम तो शत्रुसेनाने उस सैनिकको घेरनेका प्रयास किया, पर वायुवेगसे दौड़ते अश्व और विद्युत्‌की भाँति चमकती तलवारके पास आनेका उनका साहस न हुआ और थोड़ी ही देरमें युद्धका मैदान खाली हो गया। अब युद्धक्षेत्रमें सिर्फ शत्रु राजा ही अकेला बचा रहा, उसकी सेना भाग खड़ी हुई थी। शत्रु भी मेरे भक्तका भाई ही है, यह सोचकर भगवान्‌ने उसका वध करनेके स्थानपर उसे अपनी उसी भुवनमोहिनी छविके दर्शन कराये, उस छवि और तेजको देखते ही राजाके भाईका शत्रुभाव नष्ट हो गया और वह मूर्च्छित होकर वहीं रणभूमिमें गिर पड़ा। संकट समाप्त हुआ देखकर भगवान् रणभूमिसे वापस लौट आये और घोड़ेको पुनः घुड़सालमें बाँध दिया।

इधर जब राजाने भगवान्‌की सेवा-पूजा कर ली तो उन्हें माताद्वारा दी गयी आक्रमणकी सूचनाकी याद आयी, फिर तो वे राजाके कर्तव्यका ध्यानकर शीघ्र ही युद्धभूमिकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि आक्रमणकारी राजाकी सारी सेना घायल पड़ी है, आगे जानेपर देखा कि आक्रमण करनेवाला भाई भी घायल पड़ा है। उसने राजा जयमलको देखते ही सिर झुका लिया और बोला—आपको जो दण्ड देना हो, मुझे स्वीकार है। राजा जयमलने कहा कि पहले यह तो बताओ कि तुम्हारी सेनाका विनाश किसने किया और तुम कैसे घायल हो गये? उसने कहा—तुम्हारी ओरसे मात्र एक साँवला-सा सिपाही घोड़ेपर बैठकर आया था, उसने ही मेरी सेनाका विनाश किया और उसकी दृष्टि पड़ते ही मैं घोड़ेसे गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। राजा जयमलको अब सब समझते देर न लगी कि वह साँवला सिपाही कौन था? उन्होंने भाईसे कुशल-प्रश्नकर उसे वापस घर भेज दिया। उधर भाईके मनमें भी पश्चात्ताप हुआ कि मैंने अपने सन्तप्रकृति भाईसे इस प्रकारका द्रोह किया। उसने बार-बार क्षमा माँगी और स्वयं भी भगवद्भक्त हो गया।

इधर राजा जयमलके मनमें बड़ा दुःख हुआ कि मेरे कारण भगवान्‌को इतना कष्ट उठाना पड़ा। मैंने मातासे जो यह कह दिया था कि—'भगवान् सब अच्छा ही करेंगे;' इसीलिये भगवान् मेरे राज्यकी रक्षाके लिये स्वयं युद्ध करने गये। इस प्रकार करुणामय प्रभुने अपने भक्त राजा जयमलके वचनकी रक्षा की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

'मेरतै' प्रथम बास 'जैमल' नृपति ताकौं सेवा अनुराग नेकु खटकौं न भावहीं।
करै घरी दस तामैं कोऊ जो खबर देत लेत नहीं कान और ठौर मरवावहीं॥
हुतो एक भाई बैरी भेद यह पाइ लियो कियो आनि घेरौ माता जाइकै सुनावहीं।
'करैं हरि भली' प्रभु घोरा असवार भये मारी फौज सब कहैं लोग सचु पावहीं॥ २३१॥
देखैं हाँफैं घोरा अहो कौन असवार भयौ? गयो आगे जबै देख्यो वही बैरी पर्‌यौ है।
बोल्यो सुखपाय अजू साँवरो सिपाही को है? एकले ही फौज मारी मेरो मन हर्‌यौ है॥
तोही को दिखाई दई मेरे तरसत नैन बैनन सो जानी वही स्याम प्रभु ढर्‌यौ है।
पूंछि कैं पठाय दियौ वानै पन यहै लियौ कियौ इन दुःख 'करै भली' बुरो कर्‌यौ है॥ २३२॥

श्रीग्वाल-भक्तजी

किसी ग्राममें एक ग्वाल थे, वे बड़े भारी भक्त थे और वे बड़े प्रेमके साथ साधुओंकी सेवा किया करते थे, जो भी कुछ उत्तम सामग्री हाथ पड़ जाती, उसे ले जाकर साधुओंको खिलाया करते थे। किसी त्यौहारके दिन ग्वाल-भक्तकी माताने इन्हें अच्छे-अच्छे पकवान दिये, उन्हें लेकर वनमें भैंसें चराने गये। भैंसोंको चरती छोड़कर साधुओंको पकवान खिलाने वनमें उनके आश्रममें चले गये। साधुओंके समीप बैठे रहे, आनेमें देर हो गयी। इसी बीच अवसर पाकर चोर भैंसोंको चुरा ले गये। लौटकर आपने देखा तो भैंसें नहीं थीं, शामको घर आये। माताने पूछा—भैंसें कहाँ हैं? माताको दुःख होगा, यह जानकर आपने सच्ची बात छिपा ली और झूठी बात बनाकर माताजीसे कहा कि एक गरीब ब्राह्मण भूखों मर रहा था, मैंने सब भैंसे उसे दे दी हैं। वह भैंसोंको चरायेगा और छाछसे अपना पेट भरेगा, उसके बाद घीके समेत मेरी भैंसें वापस कर जायगा।

कुछ समय बाद दीपावलीका त्यौहार आया। चोरोंने भैंसोंको नहलाकर उनका श्रृंगार किया, चाँदीकी हँसुलियाँ पहनायीं। चोर लोग मत्त होकर नाच-गानमें लग गये। पटाकों एवं बाजेकी आवाज सुनकर भगवान्‌की इच्छासे सब भैंसोंको साथ लिये चुरायी गयी भैंसें वहाँसे भगीं और ग्वालभक्तके द्वारपर आकर रँभाने लगीं। ग्वालभक्तने अपनी मातासे कहा—देखो, ब्राह्मण भैंसें वापस कर गया, घी बेचकर चाँदीकी हँसुलियाँ भैंसोंको पहना दी हैं। इस प्रकार भक्तके मुखसे निकली बातको प्रभुने सत्य किया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भयौ एक ग्वाल साधु सेवा सो रसाल करै परै जोई हाथ लैकै सन्तन खवावहीं।
पायो पकवान वन मध्य गयो ख्वाइबे कौं आइबे की ढील चोर भैंस सो चुरावहीं॥
जानिकै छिपाई बात माता सौं बनाइ कही दई विप्र भूखो घृत संग फेरि आवहीं।
दिन हो दिवारी कौ सु उन्हि पहिरायौ हाँस आइ घर जाम लिये रांभकै सुनावहीं॥ २३३॥

श्रीश्रीधर स्वामीजी

श्रीमद्भागवतके टीकाकारोंमें श्रीश्रीधर स्वामीका नाम अग्रगण्य है। उनके गृहस्थाश्रमकी बात है, एक बार आप रास्तेमें चले आ रहे थे। ठगोंने आपसे पूछा—तुम्हारे साथ और भी कोई है क्या? आपने कहा—मेरे प्राणोंके आधार श्रीरघुनाथजी मेरे साथ हैं। ठगोंने साथ चलकर किसीको न देखकर यह समझ लिया कि इनके साथ कोई भी नहीं है। तब वे इन्हें मारने और लूटनेका उपाय करने लगे। इसी बीच ठगोंने देखा कि धनुष-बाण धारण किये हुए परम सुकुमार प्रभु श्रीधरजीके साथ-साथ चल रहे हैं, बीच-बीचमें भगवान् ठगोंको नहीं दिखायी देते, ठग जैसे ही मारनेका प्रयत्न करते, वैसे ही बाण तानकर डराते हुए भगवान् दिखायी पड़ते। ठगलोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ-साथ लगे चले ही आये। जब वे अपने घर आ पहुँचे, तब ठगोंको श्रीश्रीरघुनाथजी कहीं भी नहीं दिखायी पड़े। तब वे श्रीश्रीधरस्वामीजीसे पूछने लगे—साँवलेसे धनुष-बाणधारी जो आपके साथ थे, वे कहाँ हैं? श्रीधरस्वामीजी समझ गये कि रघुनाथजीने ही वनमें साथ रहकर कष्ट दूर किया। प्रभुकी कृपाका अनुभव करके आपने गृहस्थाश्रमका भार अपने सिरसे उतार फेंका और भजन करने लगे। चोरोंने भी रहस्य जानकर स्वामीजीकी शिष्यता स्वीकार की। श्रीधरस्वामीका वर्णन छप्पय ४५ पृ० १९८ में भी आया है।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

भागवत टीका करी 'श्रीधर' सुजानि लेहु गेह में रहत करैं जगत व्यवहार हैं।
चले जात मग ठग लगे कहैं कौन संग? संग रघुनाथ मेरो जीवन अधार हैं॥
जानी इन कोऊ नाहिं मारिबो उपाय करें धरे चाप बान आवैं वही सुकुमार हैं।
आये घर ल्याये पूछैं स्यामसों सरूप कहाँ? जानी वेतौ पार किये आपु डार्यो भार हैं॥ २३४॥

भगवान्का भक्तप्रेम

निहकिंचन इक दास तासु के हरिजन आए।
बिदित बटोही रूप भए हरि आपु लुटाए॥
साखि देन कौ स्याम खुरदहा प्रभुहि पधारे।
रामदास के सदन राय रनछोर सिधारे॥
आयुध छत तन अनुग के बलि बंधन अपु बपु धरैं।
भक्तनि सँग भगवान नित (ज्यों) गऊ बच्छ गोहन फिरैं॥ ५३॥

भगवान् सर्वदा अपने भक्तोंके साथ इस प्रकार घूमा करते हैं, जैसे बछड़ेके पीछे-पीछे गाय। (श्रीहरिपाल नामक) एक भगवान्के भक्त अति निष्किंचन थे, उनके यहाँ भक्तगण पधारे। घरमें सेवायोग्य कुछ भी नहीं था। स्वयं भगवान् लक्ष्मीजीको साथ लेकर यात्री बनकर आये और उस निष्किंचन भक्तके हाथोंसे लुटे। साक्षी देनेके लिये भगवान् वृन्दावनसे एक भक्तके साथ खुर्दहा ग्रामको पधारे। श्रीरणछोड़रायजी द्वारकासे श्रीरामदासजीके घर डाकौरको आये और अपने सेवक रामदासजीके ऊपर पड़ी हथियारोंकी चोटको अपने शरीरपर ले लिया। राजा बलिको बाँधनेवाले भगवान्ने अपने श्रीविग्रहको कानकी सोनेकी बालीसे भी हल्का कर लिया। ये चरित्र सर्वविदित हैं॥ ५३॥

यहाँ इन भगवत्प्रेमी भक्तोंका चरित्र संक्षेपमें प्रस्तुत है—

निष्किंचन भक्त श्रीहरिपालजी

श्रीहरिपाल नामक एक भक्त थे, उनका जन्म ब्राह्मणवंशमें हुआ था। आप साधुओंसे बड़ा प्रेम करते थे। आपने अपनी सारी सम्पत्ति उन्हींकी सेवामें लुटा दी। जब घरमें कुछ भी नहीं रहा, तब बाजारसे कर्ज ले-लेकर कई हजार रुपयेकी सामग्री साधुओंको खिला दिया। जब कर्ज मिलना बन्द हो गया, तब चोरीका सहारा लिया। पर चोरी करते समय यह ध्यानमें रखते थे कि भगवान्से विमुख धनिकोंका धन ही लें। एक बार चोरी करते समय भक्तका घर जानकर अपना चद्दर भी छोड़ आये। तबसे चोरी छोड़कर अभक्तोंको पहचानकर लूटपाट करने लगे। एक दिन द्वारपर बड़ी-सी सन्त-मण्डली आ पहुँची। अब सन्तोंका सत्कार कैसे करें, अपनी स्त्रीसे यही बातचीत करने लगे। घरमें कुछ भी सामग्री न थी। ऐसेमें दोनों दम्पत्ति भगवान्का स्मरण करने लगे।

निष्किंचन भक्त श्रीहरिपालजीको चिन्तित जानकर द्वारकामें श्रीरुक्मिणीजीके महलमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्ण सोचमें पड़ गये। उनकी साधु-सेवाकी निष्ठाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌का मन हर लिया था, अतः भगवान्‌ने मूल्यवान् वस्त्र-आभूषण धारण करके सेठका रूप बनाया और चलने लगे। तब श्रीरुक्मिणीजीने पूछा—प्रभो! सेठ बनकर आज कहाँ जा रहे हो? प्रभु बोले—हमारा एक प्रेमीभक्त है, उसीके पास जा रहा हूँ। रुक्मिणीजीने कहा—मैं भी चलूँ क्या? भगवान्‌ने कहा—आओ चलें। दोनों सेठ और सेठानी श्रीहरिपाल भक्तके द्वारपर आये और पूछनेपर श्रीहरिपालजीसे कहने लगे—अजी! मैं अमुक गाँवको जा रहा हूँ, मार्गमें अकेले जानेपर अनेक संकट हैं, यदि हमें कोई पहुँचा दे, तो हम उसे मजदूरीके रुपये दे देंगे। भक्तने कहा कि मेहमान लोग द्वारपर पड़े हैं, मजदूरीके रुपये पहले दे दो। सेठने रुपये दे दिये। उन रुपयोंको आपने अपनी स्त्रीको देकर कहा कि इन रुपयोंसे सन्तोंको बालभोग कराओ, मैं इन्हें पहुँचाकर अभी आता हूँ। जंगलमें जाकर सेठके पास बहुत-सा धन देखकर श्रीहरिपाल मन-ही-मन अति प्रसन्न हुए।

श्रीहरिपालजीने ध्यान देकर देखा कि उनके गलेमें माला और मस्तकमें तिलक नहीं हैं, ये वैष्णवका-सा आचार, नाम-उच्चारण आदि भी नहीं कर रहे हैं, इनके शरीरोंपर अति मूल्यवान् इतने आभूषण हैं तो घरमें सोना-चाँदी, जवाहरातके भण्डार भरे होंगे, ऐसेमें यदि मैं यह सब छीन भी लूँ, तो कोई विशेष हानि नहीं होगी। ऐसा मनमें विचारकर श्रीहरिपालजी दोनोंसे बोले—तुम्हारे पास जितना सामान है, सब साधु-सेवाके निमित्त न्यौछावरकर अपने शरीरसे उतारकर डाल दो, नहीं तो पिटोगे। उन दोनोंने सब कुछ उतारकर डाल दिया। श्रीरुक्मिणीजीकी अँगुलीमें एक छल्ला था, वह उनसे नहीं निकला। तब श्रीहरिपालजी अँगुली मरोड़कर उसे निकालने लगे। तब वे बोलीं—अरे! तू तो बड़ा ही कठोर है, मेरी अँगुली टूट जायगी। इस छल्लेको छोड़ दे। भक्तजीने कहा—छोड़ कैसे दूँ? इससे तो कई सन्तोंका भोजन होगा। इस साधु-सेवा निष्ठाकी बात सुनकर भगवान्‌ने सेठरूपको त्याग दिया और श्यामसुन्दर अनूपरूप धारणकर अपने भक्तको दिखाया। 'मेरे प्यारे हो, भक्तोंमें श्रेष्ठ हो'—ऐसा कहते हुए भगवान्‌ने हरिपालजीको छातीसे लगा लिया।

श्रीप्रियादासजी भक्त हरिपालकी इस सन्त-सेवा-निष्ठा और भगवान्‌की भक्तवत्सलताका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

भक्तनि के संग भगवान् ऐसे फिर्‌यो करैं जैसे बच्छ संग फिरै नेहवती गाइ है।
हरिपाल नाम विप्रधाम में जनम लियो कियो अनुराग साधु दई श्री लुटाइ है॥
केतिक हजार लै बजार के करज ख्वाए गरज न सरै कियो चोरी को उपाइ है।
विमुख को लेत हरिदास को न दुःख देत आये सन्त द्वार तिया संग बतराइ है॥ २३५॥
बैठे कृष्ण रुक्मिणी महल तहां शोच पर्‌यौ हर्‌यो मन साधु सेवा साहूरूप कियो है।
पूछीं चले कहाँ? कही भक्त है हमारों एक मैं हूं आऊँ? आओ, आये जहां पूछि लियो है॥
अजू मग चल्यौ जात बड़ो उतपात मधि कोऊ पहुँचावै देवौ लै रुपैया दियो है।
करो समाधान संत मैं लिवाइ जाऊँ इन्हें लाइ वन मांझ देखि बहुधन जियो है॥ २३६॥
देखैं जो निहार माला तिलक न सदाचार होयँगे भण्डार जो पै धन इतो लायो है।
लीजियै छिनाइ यह वारि कहै डारि देवौ दियौ सब डारि छला छिगुनीमें छायो है॥
अँगुरी मरोरि कही बड़ौ तूं कठोर अहो तोको कैसे छोड़ौं सन्त जेवैं मोको भायो है।
प्रगट दिखायो रूप सुन्दर अनूप वह मेरे भक्तभूप लैकैं छाती सों लगायो है॥ २३७॥

श्रीसाक्षीगोपालजीके भक्त

बहुत पहलेकी बात है, गौड़ देशमें दो ब्राह्मण निवास करते थे। इन दोनोंमें एक कुल और आयु दोनोंमें बड़ा था और दूसरा नयी अवस्थावाला साधारण कुलका था। दोनों तीर्थयात्रा करनेके लिये घरसे चले। अनेक तीर्थोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन करते हुए दोनों वृन्दावनधाममें आये। दैवयोगसे बूढ़ा ब्राह्मण बीमार हो गया। तब उस युवकने बड़े प्रेमसे खूब सेवा की। स्वस्थ हो जानेपर उसने अति प्रसन्न होकर श्रीगोपालजीको साक्षी बनाकर कन्या देनेकी प्रतिज्ञा की, तब उस युवकने भी स्वीकार कर लिया। दोनों वृन्दावनसे चले और घूमते-घामते घरको पहुँचे। तब उस युवकने वृद्धसे कहा कि अब आप अपनी प्रतिज्ञाका पालन कीजिये और अपनी लड़कीका विवाह मेरे साथ कर दीजिये। वृद्धने अपनी स्त्री तथा कुटुम्बवालोंसे पूछा, उनकी सम्मति न पाकर अपनी प्रतिज्ञासे टल गया।

युवकने पंचायत जोड़ी। पंचोंने पूछा कि कोई स्त्री या पुरुष तुम्हारा गवाह है। उसने कहा—इन्होंने श्रीगोपालजीको साक्षी बनाया था, अत: वे ही साक्षी हैं। तब सब पंच बोले—इस सभामें आज लिखा-पढ़ी करवा लो। यदि श्रीगोपालजी आकर साक्षी देंगे तो तुम्हारे साथ बेटीका विवाह कर दिया जायगा।

तब वह युवक वृन्दावन आया और वृन्दावनवासी श्रीगोपालजीसे बोला—आप मेरे साथ गाँवको चलिये और साक्षी दीजिये, ऐसी लिखा-पढ़ी मैंने करवा ली है। उत्तरकी प्रतीक्षामें वह गोपालजीके सामने बैठा रहा, बैठे-बैठे कई पहर बीत गये। उसने अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया। तब भगवान् श्यामसुन्दर बोले—'प्रतिमा चलती नहीं है।' तब उसने कहा—फिर बोलती क्यों है? यदि भावमें भरकर बोल सकती है तो चल भी सकती है। भावपूर्ण उत्तर सुनकर श्रीगोपालजी साथ चलनेको तैयार हो गये और बोले—मैं तुम्हारे साथ चलूँगा, पर नित्य दो सेर उत्तम भोग मुझे अर्पण किया करना, हम दोनों उसमेंसे आधा-आधा खा लिया करेंगे। दूसरी प्रतिज्ञा यह है कि मैं तुम्हारे पीछे-पीछे अपने पैरोंके नूपुरोंको बजाता चलूँगा। उनकी ध्वनि तुम्हारे कानोंमें पड़ती रहेगी, पीछे घूमकर मत देखना। जहाँ घूमकर मुझे देखोगे बस, मैं वहीं रह जाऊँगा।

अब आगे-आगे भक्त पीछे-पीछे भगवान् वृन्दावनसे चले, जैसे ही गाँवके निकट पहुँचे, वैसे उस भक्तके मनमें आया कि जरा चलते हुए ठाकुरकी शोभा देख लूँ। घूमकर देखते ही श्रीगोपालजी खड़े हो गये और मन्द-मन्द मुसकराने लगे। भक्तने कहा—क्यों थक गये क्या? अब तो बस थोड़ी दूर चलना है। भगवान्ने कहा—मैंने तो पहले ही कह दिया था, अब मैं यहाँसे आगे न जाऊँगा। पंचोंको यहाँ ही बुलाकर ले आओ। वह युवक विप्र गाँवमें आया और सबसे बोला कि चलकर देखो, स्वयं श्रीगोपालजी साक्षी देने पधारे हैं। यह सुनते ही सब लोग आश्चर्यचकित रह गये। गाँवके सभी लोग दौड़कर आये। पंचोंके सामने श्रीगोपालजीने श्रीमुखसे बोलकर साक्षी दी। इस प्रकार दोनों भक्तोंकी तथा अन्योंकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो गयीं। फिर वह श्रीगोपालजीका श्रीविग्रह लौटकर वृन्दावन नहीं आया। राजाने श्रीगोपालजीके लिये प्रेमसे भोगरागका प्रबन्ध किया। अबतक वहीं (खुर्दहा) उड़ीसामें साक्षीगोपाल विराज रहे हैं।

अपने भक्तकी साक्षी देनेके लिये भगवान्के वृन्दावनसे उड़ीसा आनेकी इस घटनाका श्रीप्रियादासजी महाराज अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

गौड़ देश वासी उभै विप्र ताकी कथा सुनौ एक वैस वृद्ध जाति वृद्ध छोटो संग है।
और और ठौर फिरि आये फिरि आये बन तन भयो दुखी कीनी टहल अभंग है॥
रीझो बड़ो द्विज निज सुता तोको दई अहो रहो नहीं चाह मेरे लई बिनै रंग है।
साखी दै गोपाल अब बात प्रतिपाल करौ ढरौ कुल ग्राम भाम पूछ्यो सो प्रसंग है॥ २३८॥
बोल्यौ छोटो विप्र छिप्र दीजियै कही जो बात तिया सुत कहैं अहो सुता याके जोग है।
द्विज कहै 'नाहीं कैसे करौं? मैं तो दैन कही' कही कहौ भूलि भयो विथाको प्रयोग है॥
भई सभा भारी पूछ्यो साखी नर नारी श्रीगोपाल बनवारी और कौन तुच्छ लोग है।
लेवोजू लिखाइ जोपै साखी भरैं आइ तो पै व्याहि बेटी दीजै लीजै करौ सुख भोग है॥ २३९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयौ वृन्दावन वनवासी श्रीगोपालजू सों बोल्यौं चलौ साखी देवो लई है लिखायकै।
बीते कैयो याम तब बोले श्यामसुन्दरजू 'प्रतिमा न चलै' तो पै बोलै क्यों जू भायकै॥
लागे जब संग युग सेर भोग धरौ रंग आधे आध पावौं चलौं नूपुर बजायकै।
धुनि तेरे काम परै पाछैं जिनि दीठि करै करै रहौं वाही ठौर कही मैं सुनायकै॥ २४०॥
गये ढिग गांव कही नेकु तौ चितांव रहे चितए ते ठाढ़े दियो मृदु मुसकायकै।
ल्यावौ जू बुलाय कह्यो आय देखौ आये आप सुनतहिं चौंकि सब ग्राम आयो धायकै॥
बोलि कै सुनाई साष पूजी हिये अभिलाष लाख लाख भांति रंग भर्‍यो उर भायकै।
आयो न सरूप फेरि बिनै करि राख्यो घेरि भूप सुख ढेरि दियो अब लौं बजायकै॥ २४१॥

श्रीरामदासजी

द्वारकापुरीके समीप ही डाकौर नामका एक गाँव है, वहाँ श्रीरामदासजी नामके एक भक्त रहते थे। वे प्रति एकादशीको द्वारकामें जाकर श्रीरणछोड़जीके मन्दिरमें जागरण-कीर्तन करते थे। जब आपका शरीर वृद्ध हो गया, तब भगवान्‌ने आज्ञा दी कि अब एकादशीकी रातका जागरण घरपर ही कर लिया करो। पर आपने श्रीठाकुरजीकी यह बात नहीं मानी। भक्तका दृढ़ नियम देखकर भावमें भरकर भगवान् बोले—अब तुम्हारे यहाँ आनेका कष्ट मुझसे सहन नहीं होता है, इसलिये अब मैं ही तुम्हारे घर चलूँगा। अगली एकादशीको गाड़ी ले आना और उसे मन्दिरके पीछे खिड़कीकी ओर खड़ी कर देना। मैं खिड़की खोल दूँगा, तुम मुझे गोदमें भरकर उठा ले जाना और गाड़ीमें पधराकर शीघ्र ही चल देना।

भक्त श्रीरामदासजीने वैसा ही किया। जागरण करनेके लिये गाड़ीपर चढ़कर आये। सभी लोगोंने समझा कि भक्तजी अब वृद्ध हो गये हैं। अतः गाड़ीपर चढ़कर आये हैं। एकादशीकी रातभर जागरण हुआ, द्वादशीकी आधी रातको वे खिड़कीके मार्गसे मन्दिरमें गये। आपके तन-मनमें भारी उत्साह था। ठाकुरजीके श्रीविग्रहपरसे सभी आभूषण उतारकर वहीं मन्दिरमें रख दिये। आपका सच्चा प्रेम भगवान्‌से था, आभूषणोंसे क्या प्रयोजन? श्रीरणछोड़जीको गाड़ीमें पधराकर चल दिये। प्रातःकाल पुजारियोंने मन्दिर खोला तो देखा कि मन्दिर सूना उजड़ा पड़ा है। लोग समझ गये कि रामदास गाड़ी लाये थे, वही ले गये। पुजारियोंने पीछा किया। उन्हें आते देखकर श्रीरामदासजीने कहा कि अब कौन उपाय करना चाहिये? भगवान्‌ने कहा—मुझे बावलीमें पधरा दो। भक्तने ऐसा ही किया और सुखपूर्वक गाड़ी हाँक दी। पुजारियोंने श्रीरामदासजीको पकड़ा और खूब मार लगायी। इनके शरीरमें बहुत-से घाव हो गये।

भक्तजीको मार-पीटकर पुजारी लोगोंने गाड़ीमें तथा गाड़ीके चारों ओर भगवान्‌को ढूँढ़ा, पर वे कहीं नहीं मिले। तब सब पछताकर कहने लगे कि इस भक्तको हमलोगोंने बेकार ही मारा। इसी बीच उनमेंसे एक बोल उठा—मैंने इस रामदासको इस ओरसे आते देखा था, इस ओर यह गया था। चलो, वहाँ देखो। सभी लोगोंने जाकर बावलीमें देखा तो भगवान् मिल गये। उसका जल खूनसे लाल हो गया था। भगवान्‌ने कहा—तुमलोगोंने जो मेरे भक्तको मारा है, उस चोटको मैंने अपने शरीरपर लिया है, इसीसे मेरे शरीरसे खून बह रहा है, अब मैं तुमलोगोंके साथ कदापि नहीं जाऊँगा। यह कहकर श्रीठाकुरजीने उन्हें दूसरी मूर्ति एक स्थानमें थी, सो बता दी और कहा कि उसे ले जाकर मन्दिरमें पधराओ, अपनी जीविकाके लिये मेरी इस मूर्तिके बराबर सोना ले लो और वापस जाओ। पुजारीलोग लोभवश राजी हो गये और बोले—तौल दीजिये। रामदासजीके घरपर आकर भगवान्‌ने कहा—रामदास! तराजू बाँधकर मेरे बराबर सोना तौल दो। रामदासजीकी स्त्रीके कानमें एक सोनेकी बाली थी, उसीसे उन्होंने भगवान्‌को तौल दिया और पुजारियोंको दे दिया।

पुजारीगण अत्यन्त लज्जित हुए और वहाँसे उठकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने घर चले आये। श्रीरणछोड़जी रामदासजीके घरमें ही विराजे। इस प्रसंगमें भक्तिका प्रकट प्रताप कहा गया है। भक्तके शरीरपर पड़ी चोटको जब प्रभुने अपने ऊपर ले लिया, तब उनका 'आयुध-क्षत' यह नाम हुआ। भगवान्ने भक्तसे अपनी एकरूपता दिखलानेके लिये ही चोट सही, अन्यथा उन्हें भला कौन मार सकता है। आज भी श्रीरणछोड़ भगवान्को पट्टी बाँधी जाती है, धन्य हैं, भक्त रामदास!

भक्त रामदासके प्रति भगवान्के इस अद्भुत प्रेमका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

द्वारिका के ढिग ही डाकौर एक गाँव रहै रहैं रामदास भक्त भक्ति याको प्यारियै।
जागरन एकादशी करैं रनछोरजू के भयौ तन वृद्ध आज्ञा दई नहीं धारियै॥
बोले भरि भाय तेरौ आयबौ सह्यौ न जाय चलौं घर धाय तेरे ल्यावो गाड़ी भारियै।
खिरकी जु मन्दिर के पाछे तहाँ ठाढ़ी करौ भरौ अँकवारी मोकों बेग ही पधारियै॥ २४२॥
करी वाही भाँति आयौ जागरन गाड़ी चढ़ि जानी सब वृद्ध भयो थकी पांव गति है।
द्वादशी की आधी रात लैकै चले मोद गात भूषण उतारि धरे जाकी साँची रति है॥
मन्दिर उघारि देखैं परो है उजारि तहाँ दौरे पाछे जानि देखि कही कौन मति है।
बापी पधराय हाँकि जाय सुखपाय रह्यो गह्यो चल्यो जात आनि मार्‌यौ घाव अति है॥ २४३॥
देखे चहुँ दिशि गाड़ी कहुँ पै न पाये हरि करि पछितावो कहैं भक्त कै लगाई है।
बोलि उठ्यो एक यहि ओर यह गयो हुतो जाय देखैं बावरी को लोहू लपटाई है॥
दास कों जु डारी चोट ओट लई अंग मैं ही नहीं मैं तो जाऊँ बिजै मूरति बताई है।
मेरी सम सोनो लेहु, कही जन तोलि देहु, मेरे कहाँ बोल्यो बारी तिया कै जताई है॥ २४४॥
लगे जब तौलिबे कों बारी पाछे डारि दई नई गति भई पल उठै नहीं बारी कौ।
तब तो खिसाने भये सबै उठि घर गये कैसैं सुख पावैं फिर्‌यो मत ही मुरारी कौ॥
घर ही विराजे आप कह्यौ भक्तिकौ प्रताप जाप करै जो पै फुरैं रूप लालप्यारी कौ।
बलि बन्ध नाम प्रभु बाँध बलि भयो तब आयुधको छत सुनि आये चोट मारी कौ॥ २४५॥

भक्तके वश भगवान्

जसू स्वामि के बृषभ चोरि ब्रजबासी ल्याए।
तैसेई दिए स्याम बरष दिन खेत जुताए॥
नामा ज्यों नँददास मुई इक बच्छि जिवाई।
अंब अल्ह कों नए प्रसिध जग गाथा गाई॥
बारमुखी के मुकुट को (श्री) रंगनाथ को सिर नयो।
बच्छ हरन पाछें बिदित सुनो संत अचरज भयो॥ ५४॥

जैसे द्वापरयुगमें ब्रह्माने गोवत्स-हरण किया और सभी व्रजवासियोंने अपने घरोंमें गो-वत्स जैसे-के-तैसे देखे, उसी प्रकार कलियुगमें एक प्रसिद्ध एवं विचित्र आश्चर्य हुआ। उसे सन्तजन ध्यानपूर्वक सुनें—भक्त श्रीजसू स्वामीके बैलोंको व्रजवासी चोर चुरा लाये, तब श्यामसुन्दरने वैसे ही बैल उन्हें दिये। उनसे एक सालतक खेतोंकी जोताई हुई। श्रीनामदेवजीकी तरह श्रीनन्ददासजीने भी एक मरी हुई बछियाको जीवित किया। श्रीअल्हजीके लिये फलवान् आमके वृक्ष जिस प्रकार झुके—यह कथा संसारमें प्रसिद्ध है और अब भी गायी जाती है। एक भक्ता वेश्याके हाथसे मुकुट धारण करनेके लिये श्रीरंगनाथजीका सिर झुक गया॥ ५४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीजसू स्वामी, श्रीनन्ददासजी आदि इन भक्तोंके पावन चरित इस प्रकार हैं—

श्रीजसू स्वामीजी

गंगा और यमुनाके बीच देशमें श्रीजसू स्वामी नामके एक भक्त रहते थे। वे प्रेमपूर्वक सदा साधु-सेवा किया करते थे और उसके लिये खेती करके अन्न पैदा कर लिया करते थे। एक बार व्रजवासी चोरोंने इनके बैल चुरा लिये, परंतु इन्हें यह बात मालूम ही नहीं हुई; क्योंकि उसी प्रकारके बैल श्रीश्यामसुन्दरने दे दिये। ये बैल पहले बैलोंकी अपेक्षा बहुत ही अच्छी प्रकार हलमें जुतकर चलते थे; क्योंकि दिव्य थे, अतः स्वामीजीको बहुत ही प्यारे लगते थे। एक वर्ष बाद एक दिन वे ही व्रजवासी आश्रमके निकट होकर निकले और बैलोंको देखकर मन-ही-मन कहने लगे कि इन्हें यहाँ कौन ले आया? उन्होंने घर जाकर देखा तो बैल वहाँ बँधे थे। वे लोग फिर आश्रममें आये तो देखते हैं कि बैल यहाँ भी बँधे हैं! ऐसे दो-चार बार चक्कर लगानेपर भी वे लोग वास्तविकताका निर्णय न कर सके। अन्तमें हारकर उन्होंने स्वामीजीसे पूछा, तब उन्हें मालूम पड़ा कि हम भी ले गये और यहाँ भी वैसे ही बैल निरन्तर काम कर रहे हैं। चोरलोग घरसे उन बैलोंको ले आये। उनके आते ही आश्रमके बैल अन्तर्धान हो गये।

उन चोरोंने श्रीजसू स्वामीका यह बड़ा भारी प्रभाव देखा कि इन्हें वैसे ही बैल देकर प्रभुने चिन्तासे बचाया। उनके मनमें स्वामीजीके प्रति प्रेमभाव हो गया। जाकर उनके चरणोंमें पड़ गये। स्वामीजीने उनके हृदयकी शुद्ध अभिलाषा देखी तो द्रवित हो गये; क्योंकि ये सहज ही दयाके सागर थे। इन सबको मन्त्र देकर अपना शिष्य बना लिया। इन्होंने भी चोरी छोड़ दी और साधुओंके मार्गपर चलने लगे। साधु-सेवाके लिये अन्न पहुँचाने लगे। दूध और दही देकर साधुओंकी सेवा करने लगे और सुखपूर्वक सेवा करके कृतार्थ हो गये।

जसू स्वामीकी भक्ति और भगवान्‌की कृपाका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

जसू नाम स्वामी गंगा जमुनाके मध्य रहैं गहैं साधु सेवा ताको खेती उपजावहीं।
चोरी गये बैल ताकी इनकौं न सुधि कछू तैसे दिये श्याम हल जुतैं मनभावहीं॥
आये ब्रजवासी पैंठ वृषभ निहारि कही 'इन्हें कौन ल्यायो?' घर जाय देखि आवहीं।
ऐसे बार दोय चारि फिरेउ न ठीक होत पूछी पुनि ल्याये आये उन्हें पै न पावहीं॥ २४६॥
बड़ोई प्रभाव देख्यो तैसे प्रभु बैल दिये भयो हिये भाय जाय पांयनि में परे हैं।
निपट अधीन दीन भाषि अभिलाष जानि दया के निधान स्वामी शिष्य लैकै करे हैं॥
चोरी त्यागि दई अति शुद्ध बुद्धि भई नई रीति गहि लई साधुपन्थ अनुसरे हैं।
अन्न पहुँचावैं दूध दही दै लड़ावैं आवैं सन्त गुण गावैं वे अनन्त सुख भरे हैं॥ २४७॥

श्रीनन्ददासजी वैष्णवसेवी

बरेलीके निकट हवेली नामका एक गाँव है, उसमें भगवान्‌के भक्त श्रीनन्ददासजी नामके एक ब्राह्मण निवास करते थे। ये साधु-सेवाके बड़े प्रेमी थे। इसीसे एक उसी गाँवका ब्राह्मण इनसे बड़ा भारी द्वेष रखता था। उसने एक बार एक मरी हुई बछिया लाकर श्रीनन्ददासजीके खेतमें डाल दी और इन्हें गाली देने लगा। सर्वत्र यह प्रचार करने लगा कि नन्ददासजीने अपने खेतमें चरती हुई बछियाको मार डाला है, अबतक उसके खेतमें पड़ी है। श्रीनन्ददासजीके समीप रहने एवं आने-जानेवाले साधुओंसे भी लड़ने लगा कि तुम कैसे वैष्णव हो, गायके हत्यारेके यहाँ रहते-खाते हो, जो हिन्दू होगा, वह गायको कभी भी नहीं मारेगा। यह तो बड़ा ही अभागी है। श्रीनन्ददासजीको जब यह बात मालूम हुई तो संतोंको साथ लेकर अपने खेतपर गये और उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस बछियाको जीवित कर दिया। यह देखकर उनसे द्वेष करनेवाले सभी उनके चरणोंमें आ पड़े। श्रीनन्ददासजीने शरणागतोंको भक्तिभाव देकर कृतार्थ किया। उन सभीकी बुद्धि साधु-सेवा और भगवद्भजनमें लग गयी।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजी महाराज अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

निकट बरेली गांव तामैं सो हबेली रहैं नन्ददास विप्र भक्त साधु सेवा रागी है।
करैं द्विज द्वेंष तासों मुई एक बछिया लै डारि दई खेत माँझ गारी जक लागी है॥
हत्या कौ प्रसंग करैं सन्त जनहूं सों लरैं हिन्दू सो न मारै यह बड़ोई अभागी है।
खेत पर जाय वाहि लियो है जिवाय देखि द्वेषी परे पांय भक्ति भाय मति पागी है॥ २४८॥

श्रीअल्हजी

भक्तवर श्रीअल्हजी श्रीस्वामी अनन्तानन्दजीके कृपापात्र शिष्य थे। एक बार वे तीर्थयात्रा करते हुए जा रहे थे, मार्गमें एक बाग दिखायी पड़ा। सुन्दर स्थान देखकर वे वहाँ ठहर गये और प्रेमसे भगवान्की सेवा-पूजा करने लगे। पेड़ोंमें आम पक रहे थे। श्रीअल्हजीने भगवान्के भोगके लिये मालीसे आम माँगे। उसने उपेक्षापूर्वक कह दिया कि ले लो। श्रीअल्हजीने आमोंकी ओर देखा तो डालियाँ झुक आयीं। आपने आम तोड़कर भोग लगाया। इस चमत्कारको देखकर माली दौड़ता हुआ राजाके पास गया और उसने सारा समाचार कह सुनाया। राजा सन्त-विरोधी था, लेकिन यह आश्चर्यमयी घटना सुनते ही राजाके मनमें बड़ी भारी प्रीति उत्पन्न हो गयी। राजा शीघ्र ही आया और आते ही पृथ्वीपर लेटकर साष्टांग प्रणाम करके कहने लगा—भगवन्! आज मैं आपके दर्शनोंसे सनाथ हो गया। मुझे अपना कृपामय प्रसाद दीजिये। श्रीअल्हजीने कहा—राजन्! भक्तिभावका ही सावधान होकर आश्रय लीजिये। इस प्रकार श्रीअल्हजीने उसे भक्ति देकर कृतार्थ किया।

श्रीअल्हजीके इस चरितका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

चले जात अल्ह मग लाग बाग दीठि पर्‌यो करि अनुराग हरि सेवा विसतारियै।
पकि रहे आम मांगे माली पास भोग लिये कह्यो लीजै कही झुकि आईं सब डारियै॥
चल्यौ दौरि राजा जहाँ जायकै सुनाई बात गात भई प्रीति आषुतट पांय धारियै।
आवत ही लोटि गयो मैं तो जू सनाथ भयो, देवो लै प्रसाद भक्ति भाव ही सँभारियै॥ २४९॥

श्रीवारमुखीजी

श्रीवारमुखीजी एक वेश्या भक्ता थीं। एक दिन एक विशाल संत-मण्डली उनके घरके सामने छायायुक्त, स्वच्छ सुन्दर स्थान देखकर ठहरी। सभीने यत्र-तत्र अपने ठाकुर पधरा दिये, आसन लगा लिये। इतनेमें ही वह वेश्या आभूषणोंसे लदी हुई बाहर द्वारपर आयी। हंसोंके समान स्वच्छ चित्तवाले दर्शनीय संतोंको देखकर वह मनमें विचारने लगी कि आज मेरे कौन-से भाग्य उदय हो गये? जो ये सन्तगण मेरे द्वारपर विराज गये। निश्चय ही इन्हें मेरे नाम या जातिका पता नहीं है। इस प्रकार सोच-विचारकर वह घरमें गयी और एक थालमें मुहरें भरकर ले आयी। उसे महन्तजीके आगे रखकर बोली—प्रभो! इस धनसे आप अपने भगवान्का भोग लगाइये। प्रेमवश उनकी आँखोंमें आँसू आ गये।

मुहरें भेंट करती देखकर श्रीमहन्तजीने पूछा—तुम कौन हो, तुम्हारा जन्म किस कुलमें हुआ है? इस प्रश्नको सुनकर वह वेश्या चुप हो गयी। उसे चिन्तित देखकर श्रीमहन्तजीने कहा कि तुम निःशंक होकर सच्ची बात खोलकर कह दो, मनमें किसी भी प्रकारकी शंका न करो। तब 'मैं वेश्या हूँ', ऐसा कहकर वह श्रीमहन्तजीके चरणोंमें आ पड़ी। फिर सँभलकर प्रार्थना की—प्रभो! धनसे भण्डार भरा हुआ है, आप कृपाकर इसे स्वीकार कीजिये। यदि आप मेरी जातिका विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेंगे और धनको नहीं लेंगे तो मैं जीवित नहीं रह सकूँगी। तब श्रीमहन्तजीने कहा—इस धनको भगवान्‌की सेवामें लगानेका बस यही उपाय है कि इस धनके द्वारा श्रीरंगनाथजीका मुकुट बनवाकर उन्हें अर्पण कर दो। इसमें जातिबुद्धि दूर हो जायगी। श्रीरंगनाथजी उसे स्वीकार करेंगे।

वेश्या बोली—भगवन्! जिसके धनको ब्राह्मण छूतेतक नहीं हैं, उसके द्वारा अर्पित मुकुटको श्रीरंगनाथजी कैसे स्वीकार करेंगे? महन्तजीने कहा—हम तुम्हें विश्वास दिलाते हैं कि वे अवश्य ही तुम्हारी सेवा स्वीकार करेंगे। इस कार्यके लिये हम तबतक यहीं रहेंगे, तुम मुकुट बनवाओ। वेश्याने अपने घरका सब धन लगाकर सुन्दर मुकुट बनवाया। अपना श्रृंगार करके थालमें मुकुटको रखकर वह चली। सन्तोंकी आज्ञा पाकर वह वेश्या निःसंकोच श्रीरंगनाथजीके मन्दिरमें गयी, पर अपनेको अपवित्र जानकर सशंकित होकर लौट पड़ी, सन्तोंने संकोचका कारण पूछा—उसने बता दिया कि मैं जानेयोग्य नहीं हूँ। श्रीरंगनाथजीने वेश्याकी दैन्यता एवं प्रेमको देखकर अपने पुजारियोंसे कहा—इसे ले आओ और यह अपने हाथसे हमें मुकुट पहनाये। ऐसा ही किया गया, जैसे ही उसने हाथमें मुकुट लेकर पहनाना चाहा, वैसे ही श्रीरंगनाथजीने अपना सिर झुका दिया और मुकुटको धारण कर लिया। लोग भक्त-भगवान्‌की जय-जयकार करने लगे।

भगवान्‌की भक्तवत्सलताकी इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

वेश्याको प्रसंग सुनौ अति रसरंग भर्‌यो भर्‌यो घर धन अहो ऐपै कौन काम कौ।
चले मग जात जन ठौर स्वच्छ आई मन छाई भूमि आसन सो लोभ नहीं दाम कौ॥
निकसी झमकि द्वार हंससे निहारि सब कौन भाग जागे भेद नहीं मेरे नाम कौ।
मुहरनि पात्र भरि लै महन्त आगे धर्‌यो ढर्‌यो दृग नीर कही भोग करौ श्याम कौ॥ २५०॥
पूछी तुम कौन काके भौनमें जनम लियो? कियो सुनि मौन महाचिन्ता चित्त धरी है।
'खोलिकै निसंग कहौ संका जिनि मानौ मन' कही 'वारमुखी' ऐपै पांय आय परी है॥
भरो है भण्डार धन करो अंगीकार अजू करिये विचार जो पै तो पै यह मरी है।
एक है उपाय हाथ रंगनाथस जू को अहौ कीजिये मुकुट जामें जाति मति हरी है॥ २५१॥
विप्र हू न छूए जाको रंगनाथ कैसे लेत? देत हम हाथ तो कौ रहें इह कीजियै।
कियोई बनाय सब घर कौ लगाय धन बनि ठनि चली थार मधि धरि लीजियै॥
सन्त आज्ञा पाइकै निसंग गई मन्दिरमें फिरी यौं ससंग धिक तिया धर्म भीजियै।
बोले आप याकों ल्याय आप पहिराय जाय, दियौ पहिराय नयौ सीस मति रीझियै॥ २५२॥

ब्राह्मण-दम्पतीका भगवद्विश्वास

बीच दिए रघुनाथ भक्त सँग ठगिया लागे।
निर्जन बन में जाय दुष्ट कर्म कियो अभागे॥
बीच दियो सो कहाँ राम कहि नारि पुकारी।
आए साराँगपानि सोक सागर ते तारी॥
दुष्ट किए निर्जीव सब दास प्रान संग्या धरी।
और जुगन तें कमलनैन कलिजुग बहुत कृपा करी॥ ५५॥

सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इन तीनों युगोंकी अपेक्षा कलियुगमें कमलनयन भगवान् श्रीरामने अपने भक्तोंपर विशेष कृपा की है, यह बात इस प्रकारके भक्त-चरित्रोंसे सिद्ध होती है जैसे कि एक ब्राह्मण-

-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त अपनी पत्नीके साथ ससुरालसे आ रहे थे। भक्त-दम्पतीके साथ ठग लग गये। इन्हें वनके मार्गसे ले चलते समय ठगोंने उन्हें विश्वास दिलानेके लिये कहा कि हमारे-तुम्हारे बीचमें श्रीरघुनाथजी हैं, यदि कोई विश्वासघात करेगा तो वे रक्षा करेंगे। निर्जन वनमें जाकर उन दुष्टोंने भक्त ब्राह्मणको मार डाला। भक्ता ब्राह्मणीने रोते हुए पुकारा—'जिन श्रीरामको बीचमें रखा गया था, वे कहाँ हैं, वे ही श्रीराम! रक्षा करें।' भक्ताकी दीन-पुकार सुनते ही शार्ङ्गधनुषधारी श्रीराम आ गये और शोक-सागरमें डूबती हुई भक्ताको उन्होंने उबार लिया। उन्होंने सभी दुष्टोंको श्वासहीन—मृतक कर दिया और दासको जीवित कर लिया। इस प्रकारकी कृपा भगवान् इस कलियुगमें करते हैं॥ ५५॥

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

विप्र हरिभक्त करि गौनो चल्यो तिया संग जाके दूनौ रंग ताकी बात लै जनाइयै।
मग ठग मिले द्विज पूछैं अहो 'कहाँ जात?' जहाँ तुम जात यामैं मन न पत्याइयै॥
पन्थ को छुटाय चहैं वन में लिवाय जायं कहैं अति सूधो पैड़ो उर में न आइयै।
बोले 'बीच राम' तऊ हिये नेकु धकधकी कहै वह बाम 'श्याम नाम' कहाँ पाइयै॥ २५३॥
चले लागि संग अब रंग कै कुरंग करौ तिया पर रीझे भक्ति सांची इन जानी है।
गये वन मध्य ठग लोभ लगि मार्‍यो विप्र छिप्र लैकै चले वधू अति विलखानी है॥
देखै फिरि फिरि पाछैं, कहैं 'कहा देखै? मार्‍यो' तब तो उचार्‍यो देखौं वाही बीच प्रानी है।
आये राम प्यारे सब दुष्ट मारि डारे साधु प्रान दै उबारे हित रीति यौं बखानी है॥ २५४॥

वेषनिष्ठ एक राजा

तिलक दाम धरि कोइ ताहि गुरु गोबिंद जानै।
षटदरसनी अभाव सर्बथा घट करि मानै॥
भाँड़ भक्त को भेष हाँसि हित भँड़ कुट ल्याए।
नरपति कै दृढ़ नेम ताहि ये पाँव धुवाए॥
भाँड़ भेष गाढ़ो गह्यो दरस परस उपजी भगति।
एक भूप भागौत की कथा सुनत हरि होय रति॥ ५६॥

एक राजा परम भागवत था, उसकी कथा सुनते ही भगवान्‌में भक्ति होती है। वह ऐसा वेषनिष्ठ था कि जो कोई भी तिलक और कण्ठी धारण करता, उसे वह गुरुदेव और भगवान्‌के समान मानता था। कोई कैसा भी षट् दर्शनका ज्ञाता क्यों न हो, पर राजा उसे वैष्णव-भक्तसे छोटा ही मानता था। एक बार भाँड़ोंने हँसी करनेके लिये तिलक-कण्ठी पहनकर भक्तोंका-सा वेष बनाया। जमात लेकर राजाके यहाँ पहुँचे। राजाका यह पक्का नियम था कि वैष्णवोंका भगवान्‌के समान पूजन करना। उसीके अनुसार राजाने भाँड़ोंके चरण धोये। उन्होंने भी सहर्ष धुलवाया। राजाकी भक्तिका दर्शन और स्पर्श पाकर इन सबके हृदयमें भक्ति उत्पन्न हो गयी। भाँड़ोंने दृढ़तापूर्वक वैष्णव-वेषको धारण कर लिया, फिर कभी उसका त्याग नहीं किया। मनोरंजनमें भक्तके दर्शन-स्पर्शका यह फल प्राप्त हुआ॥ ५६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_9_1_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने राजाकी संतवेषनिष्ठाका इस प्रकार वर्णन किया है—

राजा भक्तराज डोम भांड़ कौ न काज होय भोय गई याको धन हरीको न दीजियै।
आए भेष धारि लै पुजाय नाचैं दैकै तारि नृपति निहारि कही यों निहाल कीजियै॥
भोजन कराये भरि मुहरनि थार ल्याये आगे धरि विनय करी अजू यह लीजियै।
भई भक्ति रासि बोले आवै बास भावै नाहिं बाहिं गहि रहै कैसै चले मति भीजियै॥ २५५॥

अन्तर्निष्ठ नरपाल

हरि सुमिरन हरि ध्यान आन काहू न जनावै।
अलगन इहि बिधि रहै अंगना मरम न पावै॥
निद्रा बस सों भूप बदन तें नाम उचार्‌यो।
रानी पति पर रीझि बहुत बसु तापर वार्‌यो॥
रिषिराज सोचि कह्यो नारि सों आज भक्ति मेरी कजी।
अंतरनिष्ठ नृपाल इक परम धरम नाहिन धुजी॥ ५७॥

एक राजा अन्तर्निष्ठ (गुप्त भक्त) था। उसने हरि-भक्तिकी ध्वजा नहीं लगा रखी थी अर्थात् वह बाह्य चिह्न कण्ठी-तिलक आदिको नहीं धारण करता था। भगवान्‌का स्मरण और ध्यान निरन्तर करता था, पर किसीको जनाता न था। कोई नहीं जानता था कि राजा भक्त है। वह अपनी पत्नी-परिवार या कर्मचारियोंसे अलग नहीं रहता था, किंतु नामजप-ध्यान आदि इस प्रकार करता था कि उसकी स्त्री भी नहीं जान पाती थी। राजा भगवान्‌से अलग नहीं रहता था। लेकिन रानी राजाको अभक्त जानकर मन-ही-मन दुःखी रहती थी। एक दिन शयन करते हुए राजाने मुखसे अचानक ही भगवान्‌के नामका उच्चारण किया। इससे राजाको परम भक्त मानकर रानी बहुत प्रसन्न हुई। बहुत-सा धन राजापर न्यौछावर कर दिया। राजाने रानीसे इस प्रसन्नताका कारण पूछा तो रानीने बताया—आपने सोते समय भगवान्‌का नाम लिया, इसीसे प्रसन्नता हुई। इसपर उस राजर्षिने शोक करते हुए अपनी रानीसे कहा—आज मेरी भक्ति प्रकट हो गयी, अतः लुट गयी। अब मैं जीवित नहीं रह सकता हूँ (राजाने विचारा कि भगवन्नाम ही हमारे प्राण और जीवन थे, वे जब मुखसे निकल गये, मेरी भक्ति प्रकट हो गयी तो अब रह ही क्या गया। यह सोचकर नामके वियोगमें उन्होंने प्राण त्याग दिये)। पतिरूपी भगवान्‌के महाविरहमें रानीने भी प्राण त्याग दिये॥ ५७॥

श्रीप्रियादासजी राजाकी इस गुप्त भक्तिका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

तिया हरि भक्त कहै 'पति पै न भक्त पायों' रहै मुरझायो मन सोच बढ़्यो भारी है।
मरम न जान्यो निशि सोवत पिछान्यो भाव विरह प्रभाव नाम निकस्यो बिहारी है॥
सुनत ही रानी प्रेम सागर समानी भोर सम्पति लुटाई मानो नृपति जियारी है।
देखि उत्साह भूप पूछ्यो सो निबाह कह्यो रह्यो तन ठौर नाम जीव यों विचारी है॥ २५६॥
देखि तन त्याग पति भई और गति याकी ऐसे रतिवान मैं न भेद कछु पायो है।
भयो दुःख भारी सुधि बुधि सब टारी तब नेकु न बिचारी भावराशि हिये छायो है॥
निशि दिन ध्यान तजे विरह प्रबल प्रान भक्ति रसखान रूप कापै जात गायो है।
जाके यह होय सोई जानैं रस भोय सब डारै मति खोय यामैं प्रगट दिखायो है॥ २५७॥

Kalyan Bhaktmal Ank_Section_9_2_Front
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुनिष्ठ शिष्य

अनुचर आग्या माँगि कह्यो कारज कों जैहौं।
आचारज इक बात तोहि आए तैं कहिहौं॥
स्वामी रह्यो समाय दास दरसन कों आयो।
गुरु की गिरा बिस्वास फेरि सब घर मैं ल्यायो॥
सिषपन साँचो करन कों (बिभु) सबै सुनत सोई कह्यो।
गुरु गदित बचन सिष सत्य अति दृढ़ प्रतीति गाढ़ो गह्यो॥ ५८॥

श्रीगुरुदेवके द्वारा कहे हुए वाक्योंको एक शिष्यने पूर्ण सत्य माना और उनमें दृढ़ विश्वास किया। गुरुदेवकी आज्ञाको दृढ़तासे स्वीकारकर जीवनभर उसका पालन किया। एक बार शिष्यने गुरुदेवसे आज्ञा माँगी, कहा कि कार्यवश मैं दूसरे गाँवको जाऊँगा। श्रीगुरुजीने कहा—जाओ, एक बात तुमसे तब कहूँगा, जब लौटकर आओगे। शिष्य बाहर चला गया, श्रीगुरुदेव भगवान्‌के धामको चले गये। लौटकर शिष्य जब दर्शन करने आया। उस समय लोग अन्तिम संस्कार करनेके लिये गुरुदेवके शरीरको ले जा रहे थे। शिष्यको गुरुदेवजीकी वाणीमें विश्वास था। इसलिये शवको लौटाकर फिर घरमें ले आये। शिष्यने प्रार्थना की—प्रभो! आपने कहा था कि लौटकर आओगे तो एक बात कहूँगा। अब कृपा करके वही बात कहिये। अपने विश्वासी शिष्यकी बातको सत्य करनेके लिये गुरुदेव पुनः जीवित हो गये और सर्वसमर्थ गुरुदेवने सबके सामने शिष्यसे कहा कि सन्तोंकी मेरे समान ही सेवा किया करो। सबोंने सुना और शिष्यने इस आज्ञाका भलीभाँति पालन किया (गुरु महाराज एक वर्षतक रहकर शिष्यकी सन्त-सेवा देखते रहे, फिर शरीर त्यागकर भगवान्‌के धामको गये)॥ ५८॥

श्रीप्रियादासजी शिष्यकी श्रद्धाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

बड़ो गुरुनिष्ठ कछु घटी साधु इष्ट जाने स्वामी सन्त पूज्य मानैं कैसे समझाइयै।
नितही विचारे पुनि टारे पै उचारे नाहिं चल्यो जब रामती कों कही फिरि आइयै॥
सपथ दिवाई न जराइबें को दियो तन ल्यायो यों फिराइ वहे बात जू जनाइयै।
साँचो भाव जानि प्रान आये सो बखान कियो 'करो भक्तसेवा करी' वर्षलौं दिखाइयै॥ २५८॥

श्रीरैदासजी

सदाचार श्रुति सास्त्र बचन अबिरुद्ध उचार्‍यो।
नीर खीर बिबरन्न परम हंसनि उर धार्‍यो॥
भगवत कृपा प्रसाद परम गति इहि तन पाई।
राजसिंहासन बैठि ग्याति परतीति दिखाई॥
बरनाश्रम अभिमान तजि पद रज बंदहिं जासु की।
संदेह ग्रंथि खंडन निपुन बानि बिमल रैदास की॥ ५९॥

सन्तशिरोमणि श्रीरैदासजीकी निर्मल वाणी सन्देहकी ग्रन्थियोंको खोलनेमें पूर्ण समर्थ है। श्रीरैदासजीने जो भी कहा है, वह सदाचार (स्मृति) वेद-शास्त्रोंके अनुकूल ही है। उन्होंने नीर-क्षीर अर्थात् सत् और असत्‌का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवरण करनेवाला परमहंसोंका भाव अपने हृदयमें धारण किया तथा सार-असारका निर्णय करनेवाली उनकी वाणीको परमहंसोंने अपने हृदयमें धारण किया। आपने अपने इसी मर्त्य शरीरसे भगवान्‌की कृपा और परम श्रेष्ठ गति प्राप्त की। राजसिंहासनपर बैठकर अपने शरीरमें सोनेका यज्ञोपवीत दिखाकर अपने पूर्वजन्मकी ब्राह्मण जातिका विश्वास लोगोंको दिलाया। महान् पुरुषोंने अपने ऊँचे वर्ण एवं आश्रमके अभिमानको छोड़कर जिनकी चरण-धूलिकी वन्दना की, उन श्रीरैदासजीकी वाणी शंकाओंको खण्डन करनेमें अति ही चतुर है॥ ५९॥

सन्त श्रीरैदासजीका संक्षेपमें परिचय इस प्रकार है—

(क) श्रीरैदासजीके जन्मकी कथा

आचार्य श्रीस्वामी रामानन्दजीका एक ब्रह्मचारी शिष्य था। वह नित्य आटेकी चुटकी ब्राह्मणोंके यहाँसे माँगकर लाता था। उसीसे ठाकुरजीका भोग लगता था और साधु-सेवा होती थी। मार्गमें एक बनियेकी दूकान थी। वह बनिया प्राय: नित्य ही ब्रह्मचारीजीसे कहता था कि आप मेरा सीधा-सामान भी स्वीकार करो। इस प्रकार उसने दस-बीस बार कहा, परंतु नियमके विरुद्ध उस बनियेसे सामान लेना ब्रह्मचारीजीने स्वीकार नहीं किया। एक दिन बड़े जोरकी वर्षा हो रही थी, चुटकी माँगकर लाना सम्भव नहीं था। अत: उस बनियेसे ब्रह्मचारीजीने जो भी आवश्यक था सीधा-सामान ले लिया। जब श्रीआचार्यने ठाकुरजीको भोग लगाया तो उस दिन प्रभु भोग आरोगते हुए ध्यानमें नहीं आये। तब उन्होंने ब्रह्मचारीसे पूछा—कहो, आज भिक्षा कहाँ-कहाँसे लाये हो? उसने उत्तर दिया—एक बनियेसे। श्रीस्वामीजीने कहा—जाओ, पता लगाओ। पूछनेसे मालूम पड़ा कि बनियेने किसी नीच वर्णकी प्रेरणासे अन्न दिया है। तब श्रीस्वामीजीने बड़ा भारी शाप दिया कि तूने मेरी बात नहीं मानी, नीचकी भिक्षा ली, अत: जाकर उसी घरमें जन्म लो। वही दूसरे जन्ममें श्रीरैदास भक्त हुए।

माता अपने बालक रैदासको दूध पिलाना चाहती थी, पर बालक रैदास दूध पीनेकी कौन कहे, इन्हें माताका छूना भी अच्छा नहीं लगता था; क्योंकि गुरुदेवकी उत्तम सेवाके प्रतापसे इन्हें पूर्वजन्मकी सब बातें याद थीं। इसी समय श्रीस्वामीजीके लिये आकाशवाणी हुई कि आपके शापसे आपके शिष्यका जन्म रघु चमारके घरमें हुआ है और वह दूध नहीं पी रहा है, उसपर कृपा कीजिये। दयावश श्रीस्वामीजी शीघ्र ही स्वयं चलकर वहाँ आये। बालकके दूध न पीनेसे पिता-माता बड़े दु:खी थे। स्वामीजीको देखते ही वे दौड़कर इनके चरणोंमें लिपट गये और प्रार्थना करने लगे कि कोई उपाय करके बालकको बचाइये। तब स्वामीजीने बालकको दीक्षा देकर शिष्य बनाया और दूध पीनेकी आज्ञा दी। बालकके सब पाप दूर हो गये और वह दूध पीने लगा। श्रीरैदासजी आचार्यको ईश्वरके समान जान-मानकर मनमें पछताने लगे कि मैं बिलकुल ही अज्ञानी और अपराधी था, पर स्वामीजीने मेरे अपराधोंको भुलाकर इतनी कृपा की कि स्वयं पधारे।

श्रीरैदासजीके जन्म-सम्बन्धी इस घटनाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

रामानन्द जू कौ शिष्य ब्रह्मचारी रहे एक गहे वृत्ति चूटकीकी कहे तासों बानियों।
करो अंगीकार सीधो कहि दस बीस बार बरषे प्रबल धार तामें वापि आनियों॥
भोगको लगावै प्रभु ध्यान नहिं आवै अरे कैसे करि ल्यावै जाइ पूछि नीच मानियों।
दियो शाप भारी बात सुनी न हमारी घटि कुलमें उतारी देह सोई याकों जानियों॥ २५९॥
माता दूध प्यावे याकों छुयोऊ न भावे सुधि आवे सब पाछिली सुसेवाको प्रताप है।
भई नभ बानी रामानन्द मन जानी बड़ो दण्ड दियो मानीं बेगि आये चल्यो आप है॥
दुखी पिता माता देखि धाय लपटाय पाय कीजिये उपाय कियो शिष्य गयो पाप है।
स्तन पान कियो जियो लियो उन ईस जानि निपट अजानि फेरि भूले भयो ताप है॥ २६०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) रैदासजीका सन्तप्रेम और भगवान्से वार्तालाप

श्रीरैदासजी महान् सन्त थे, ये भगवान्के भक्तोंसे बड़ा प्रेम करते थे। सन्त-सेवामें धनका सदुपयोग करते थे। इनका यह आचरण पिताजीको अच्छा न लगा। अतः उन्होंने इन्हें अलग कर दिया और घरके पीछेकी जमीन रहनेके लिये दे दी। यद्यपि घरमें बहुत-सा धन-माल था, पर उसमेंसे पिताजीने अलग करते समय एक कण भी नहीं दिया। इससे रैदासजी और उनकी स्त्रीको बड़ा सुख हुआ; इन लोगोंको भगवान्पर पूर्ण भरोसा था। रैदासजी जूतियोंको गाँठते थे, पक्का चमड़ा लाकर जूते बनाते थे। साधु-सन्तोंको पहनाते थे। अपनी इस सेवाको प्रकट न करके गुप्त ही रखते थे। आपने एक छप्पर डालकर उसमें भगवान्की सेवाके योग्य स्थान बनाया। उसीमें सन्तजन भी निवास करते थे। पर स्वयं आप खुलेमें ही रहते थे। मजदूरीसे प्राप्त धनको आप अतिथियोंमें बाँटकर खाते थे। ऐसी दैनिक जीवनचर्यासे आप रहते थे।

एक दिन स्वयं भगवान् भक्तका वेष बनाकर श्रीरैदासजीके यहाँ पधारे और श्रीरैदासजीको पारसमणि देते हुए कहा कि 'इसे सँभालकर रखना।' श्रीरैदासजीने कहा—मेरे धन तो श्रीरामजी हैं। इस पत्थरसे मेरा काम नहीं चलेगा। मैं धन-सम्पत्तिको नहीं चाहता हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि सन्त-भगवन्तकी सेवामें अपना यह शरीर भी न्यौछावर कर दूँ। सन्त-भगवान्ने पारसका प्रत्यक्ष प्रभाव दिखानेके लिये उसे लोहेकी राँपीसे छुवा दिया, वह सोनेकी हो गयी। फिर पारस देकर श्रीरैदासजीसे बोले कि आप कृपा करके इसे रख लो और आवश्यकता पड़नेपर इसे निकाल लेना। तब श्रीरैदासजीने कहा—यदि आप नहीं मानते हो तो इसे ठाकुरजीके छप्परमें रख दो, जब इच्छा हो, तब निकाल ले जाना।

साधुवेषधारी भगवान् श्यामसुन्दर तेरह मास बीत जानेके बाद फिर श्रीरैदासजीके यहाँ आये और बड़े प्रेमसे बोले—कहिये, रैदासजी! पारसका प्रयोग करके क्या सेवा की? श्रीरैदासजी बोले—जहाँ आप रख गये थे, वहाँ ही रखा होगा। आप उसे ले लीजिये। श्रीरैदासजीकी ऐसी बात सुनकर पारसको लेकर वे चले गये। अब इसके बाद भगवान्ने जो नयी लीला रची, उसे सुनिये—प्रातःकाल जब श्रीरैदासजी ठाकुर-सेवा करने जाते तो नित्य पाँच मुहरें वहाँ मिलतीं। बिच्छूकी तरह उन्हें चिमटेसे पकड़कर रैदासजी नित्य गंगामें डाल आते। अब तो रैदासजीको ठाकुरजीकी सेवासे भी भय लगने लगा। तब भगवान्ने स्वप्नमें श्रीरैदासजीसे कहा—तुम अपना हठ छोड़ दो और मैं जैसा चाहता हूँ, वैसा करो।

अन्तमें श्रीरैदासजीने भगवान्की बात (आज्ञा) मान ली। नित्य प्राप्त मुहरोंसे नयी जगह लेकर विशाल सन्त-निवास और भगवान्का भव्य मन्दिर बनवाया। उसमें दिन-रात सेवा और भजन-कीर्तनसे ऐसा लगता था कि श्रीभक्तिदेवी यहीं रम गयी हैं।

उसी समय उरप्रेरक रघुवंशविभूषणने ब्राह्मणोंके हृदयोंमें प्रेरणा की कि 'रैदासकी सेवाका विरोध करो, उसे बन्द करा दो।' तब बहुत-से ब्राह्मणोंने एकत्र होकर राजाके आगे भरी सभामें श्रीरैदासजीको गालियाँ देते हुए पुकार की, उनपर आरोप लगाया कि वे शूद्र होकर पूजा करते हैं। यह अन्याय है, इसे रोका जाय, अन्यथा आपका राज्य नष्ट हो जायगा। तब राजाने श्रीरैदासजीको बुलवाया तथा उनका चमत्कार देखकर न्याय किया और श्रीरैदासजीको सेवाका अधिकार प्रदान किया।

सन्त श्रीरैदासजीकी उपर्युक्त जीवनचर्याका श्रीप्रियादासजी अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

बड़ेई रैदास हरि दासनि सों प्रीति करी पिता न सुहाई दई ठौर पिछवारहीं।
हुतो धन माल कन दियो हू न हाल तिया पति सुख जाल अहो किये जब न्यारहीं॥
गाठैं पगदासी कहूं बात न प्रकासी ल्यावें खाल करैं जूती साधु सन्त को सँभारहीं।
डारी एक छानि कियो सेवाको सुस्थान रहें चौंड़े आप जानि बाँटि पावें यहि धारहीं॥ २६१॥
सहे अति कष्ट अंग हिये सुख सील रंग आए हरि प्यारे लियो भक्त भेष धारि कै।
कियो बहुमान खान पान सो प्रसन्न ह्वै कै दीनों कह्यो पारस है राखियो सँभारि कै॥
मेरे धन राम कछु पाथर न सरै काम दाम मैं न चाहौं चाहौं डारौं तन वारि कै।
रांपी एक सोनो कियो दियो करि कृपा राखो राखो यहु छानि मांझ लैहो जु निकारि कै॥ २६२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये फिरि श्याम मास तेरह बितीत भये प्रीति करि बोले कहो पारसकी रीति कौ।
वाही ठौर लीजै मेरो मन न पतीजै अब चाहो सोई कीजै मैं तो पावत हौं भीति कौ॥
लै कै उठि गये नये कौतुक सो सुनो पावैं सेवत मुहर पाँच नित ही प्रतीति कौ।
सेवहु करत डर लाग्यो निसि कह्यो हरि छोड़ो अर अपनी औ राखो मेरी जीति कौ॥ २६३॥
मानि लई बात नई ठौर ले बनाय चाय सन्तनि बसाय हरि मन्दिर चिनायो है।
विविध वितान तान गनौं जो प्रमान होइ भोइ गई भक्ति पुरी जग जस गायो है॥
दरसन आवैं लोग नाना विधि राग भोग रोग भयो विप्रनि कौं तन सब छायो है।
बड़ेई खिलारी वे रहे हैं छानि डारि करी घर पै अँटारी फेरि द्विजन सिखायो है॥ २६४॥
प्रीति रस रास सों रैदास हरि सेवत हैं घरमें दुराय लोक रंजनादि टारी है।
प्रेरि दिये हृदै जाय द्विजनि पुकारि करी भरी सभा नृप आगे कह्यो मुख गारी है॥
जनकौं बुलाय समझाय न्याय प्रभु सौंपि कीनों जग जस साधु लीला मनुहारी है।
जिते प्रतिकूल मैं तो माने अनुकूल याते सन्तनि प्रभाव मनि कोठरी की तारी है॥ २६५॥

(ग) चित्तौड़की रानीद्वारा इनका शिष्य बनना

चित्तौड़ नगरमें झाली नामकी एक रानी रहती थी। किसी गुरुसे उसने कानमें मन्त्र नहीं लिया था। वह काशी आयी और श्रीरैदासजीके सुयशको सुनकर एवं दर्शनमात्रसे सद्गुरुबुद्धि आनेपर उनकी शिष्या हो गयी। उसके साथ बहुत-से ब्राह्मण थे, यह समाचार सुनते ही द्वेषवश उनके शरीरमें आग-सी लग गयी। वे सब लोगोंकी भीड़को लेकर राजाके पास गये और कहा—रैदासको दीक्षा देनेका अधिकार नहीं है, उन्होंने अनधिकार चेष्टा की है। आप न्याय करें। तब राजाने रैदासजीको बुलवाया और भगवान्की मूर्तिको सिंहासनपर विराजमान कराकर कहा—'बुलानेसे भगवान् जिसके पास चले जायँगे, वही उनकी सेवाका तथा उनके मन्त्रको देनेका अधिकारी समझा जायगा।' ब्राह्मणोंने सस्वर वेदपाठ करके भगवान्का आवाहन किया, किंतु भगवान् उनके पास नहीं गये। पश्चात् श्रीरैदासजीने *'पतित पावन नाम आज प्रकट कीजै'* यह पद गाया। तब भगवान् श्रीरैदासजीकी गोदीमें आकर विराजमान हो गये।

झाली रानीके बुलानेपर श्रीरैदासजी चित्तौड़को पधारे। रानीने बड़ा भारी स्वागत किया और बहुत-सा धन तथा वस्त्र न्यौछावर किये। साधुओंके विशाल भण्डारे हुए। यह सुनकर बहुत-से ब्राह्मण भी पधारे। उन्होंने भण्डारेमें भोजन करना स्वीकार नहीं किया, इसलिये इन्हें सीधा-सामान दिया गया। ब्राह्मणोंने रसोई की और जब भोजन करनेके लिये बैठे तो उन्हें पंक्तिमें दो-दो ब्राह्मणोंके बीचमें एक रैदास बैठे दिखायी पड़े। यह चमत्कार देखकर उनकी आँखें खुल गयीं। तब वे दीनवाणीसे अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थना करने लगे। लाखों ब्राह्मण भी उनके शिष्य हो गये। श्रीरैदासजीने अपने शरीरकी त्वचाको चीरकर सोनेका यज्ञोपवीत सबको दिखाया। इससे सबको विश्वास हो गया कि 'ये दिव्य पुरुष हैं'।

रानी झालीके श्रीरैदासजीकी शिष्या बननेकी घटनाका वर्णन करते हुए श्रीप्रियादासजी कहते हैं—

बसत चित्तौर मांझ रानी एक झाली नाम नाम बिन कान खाली आनि शिष्य भई है।
संग हुते बिप्र सुनि छिप्र तन आंच लागी भागी मति नृप आगे भीर सब गई है॥
वेसेहि सिंहासन पै आनि कै विराजे प्रभु पढ़े वेद बानी पै न आये यह नई है।
पतित पावन नाम कीजिये प्रकट आजु गायो पद गोद आइ बैठे भक्ति लई है॥ २६६॥
गई घर झाली पुनि बोलिकै पठाये अहो जैसे प्रतिपाली अब तैसे प्रतिपारियै।
आपुहू पधारे उन बहु धन पट वारे विप्र सुनि पांव धारे सीधो दै निवारियै॥
करिकैं रसोई द्विज भोजन करन बैठे द्वै द्वै मधि एक यों रैदासको निहारियै।
देखि भई आखें दीन भाषैं सिख लाखैं भये स्वर्णको जनेऊ काढ़यो त्वचा कीनी न्यारियै॥ २६७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकबीरदासजी

भक्ति बिमुख जो धर्म सोइ अधरम करि गायो।
जोग जग्य ब्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥
हिंदू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी।
पच्छपात नहिं बचन सबहि के हित की भाषी॥
आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिंन भनी।
कबिर कानि राखी नहीं बरनाश्रम षटदरसनी॥ ६०॥

श्रीकबीरदासने भक्तिहीन षड्दर्शन एवं वर्णाश्रम धर्मको मान्यता नहीं दी। वे भक्तिसे विरुद्ध धर्मको अधर्म ही कहते थे। उन्होंने बिना भजनके योग, यज्ञ, व्रत और दान आदिको व्यर्थ सिद्ध किया। उन्होंने अपने बीजक—रमैनी, शबदी और साखियोंमें किसी मतविशेषका पक्षपात न करके सभीके कल्याणके लिये उपदेश दिया। हिन्दू-मुसलमान सभीके लिये उनके वाक्य प्रमाण हैं। वे ज्ञान एवं पराभक्तिकी आनन्दमयी अवस्थामें सर्वदा स्थित रहते थे। श्रीकबीरदासजीने किसीके प्रभावमें आकर मुँहदेखी बात नहीं कही। वे जगत्के प्रपंचोंसे सर्वथा दूर रहे॥ ६०॥

सन्त श्रीकबीरदासजीका जीवन-चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

(क) श्रीरामानन्दजीका शिष्य बननेकी घटना

श्रीकबीरदासजीकी बुद्धि अत्यन्त गम्भीर थी और उनका हृदय प्रेमाभक्तिसे सर्वथा परिपूर्ण एवं अति सरस था। उन्होंने भक्तिभावको अपनाकर जाति-पाँतिमें विवाद समझकर उसे बिलकुल त्याग दिया था। इसी समय एक दिन आकाशवाणी हुई कि 'अपने शरीरमें तिलक रमाओ, आचार्य श्रीरामानन्दको अपना गुरु बनाओ, गलेमें तुलसीमाला धारण करो।' यह सुनकर कबीरदासने कहा कि मैं उनसे मन्त्र-दीक्षा कैसे लूँगा, वे मुझे म्लेच्छ मानकर मेरा मुख भी नहीं देखना चाहेंगे, पुनः आकाशवाणीने कहा—वे गंगा-स्नान करने जाते हैं, उस समय मार्गमें अपनेको उनके चरणोंमें डाल देना। नित्य प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें ध्यानमग्न-प्रेमावेशसे आप गंगा-स्नान करने जाते थे। श्रीकबीरदासजी गंगाघाटकी सीढ़ीपर लेट गये। यथासमय श्रीस्वामीजी पधारे। उनका श्रीचरण कबीरजीके सिरपर पड़ गया। सहसा उनके मुखसे निकला—राम! राम! कहो। श्रीकबीरदासजीने राम-नामको मन्त्र-दीक्षाके रूपमें ग्रहण कर लिया। इस प्रकार आप श्रीस्वामीजीके शिष्य बनकर घरको चले आये।

श्रीकबीरदासजीने वही किया जैसा कि आकाशवाणीने कहा था अर्थात् अपने शरीरपर रामानन्दीय (द्वादश) तिलक लगाया और गलेमें तुलसी-कण्ठी पहन ली। अपने लड़केका साधुवेष देखकर एवं उसे रात-दिन राम-नाम जपते देखकर माताने इसे बड़ा उत्पात माना और बड़ा हल्ला मचाने लगी कि मेरे लड़केको किसीने हिन्दू-बाबाजी बना दिया। धीरे-धीरे यह बात श्रीरामानन्दजीके पासतक पहुँच गयी, फिर किसीने आकर यह भी बताया कि जब कोई उससे पूछता है कि तुम किसके शिष्य बन गये हो? तब वह आपका ही नाम लेता है। यह सुनकर श्रीस्वामीजीने आज्ञा दी कि 'उसे पकड़कर मेरे पास ले आओ।' आज्ञानुसार लोग कबीरदासजीको बुला लाये। परदेके पीछे बैठकर श्रीस्वामीजीने पूछा—हमने तुमको कब शिष्य बनाया? तब श्रीकबीरदासजीने गंगाघाटकी सब घटना स्मरण करायी और बोले—श्रीरामनाम ही महामन्त्र है। यह बात सभी तन्त्रशास्त्रोंमें लिखी है। वही प्रदानकर आपने मुझे शिष्य बनाया। यह सुनकर श्रीस्वामीजी अति प्रसन्न हुए और परदा खोलकर बाहर आये तथा कबीरदासजीको छातीसे लगाकर बोले—वत्स! तुम्हारा सिद्धान्त सत्य है। श्रीरामनामको ही हृदयमें धारण करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजी कबीरदासजीद्वारा श्रीरामानन्दजीको गुरु बनानेकी घटनाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

अति ही गम्भीर मति सरस कबीर हियो लियो भक्ति भाव जाति पांति सब टारियै।
भई नभ बानी देह तिलक रमानी करौ करौ गुरु रामानन्द गरें माल धारियै॥
देखैं नहिं मुख मेरो मानिकै मलेछ मोंको 'जात न्हान गंगा कही मग तन डारियै'।
रजनी के शेष में आवेश सों चलत आप परै पग राम कहै मन्त्र सो विचारियै॥ २६८॥
कीनी वही बात माला तिलक बनाय गात मानि उतपात माता सोर कियो भारियै।
पहुँची पुकार रामानन्दजू कै पास आनि कही कोऊ पूछे तुम नाम लै उचारियै॥
ल्यावौ जू पकरि वाको कब हम शिष्य कियो? ल्याये करि परदा में पूछी कहि डारियै।
राम नाम मन्त्र यही लिखो सब तन्त्रनि में खोलि पट मिले सांचो मत उर धारियै॥ २६९॥

(ख) श्रीकबीरदासजीकी दिनचर्या और उनका भगवद्भाव

श्रीकबीरदासजी जीवन-निर्वाहके लिये ताने-बानेसे कपड़ा बुनते थे, किंतु उनके हृदयमें श्रीरामजीका नामरूप मँड़राया करता था। वे कपड़ा उतना ही बुनते थे, जितनेसे परिवारका खर्च चल जाय। एक बार बाजारमें कपड़ा बेचनेके लिये आप खड़े थे कि एक साधु आपके पास आकर बोला कि मुझे कपड़ा दीजिये, मेरे पास पहननेके लिये कुछ नहीं है। तब आप उसे आधा थान फाड़कर देने लगे। तो उसने कहा—इस आधे थानसे मेरा काम नहीं चलेगा। श्रीकबीरदासजीने कहा—यदि पूरा थान लेनेका निश्चय आपने अपने मनमें किया है तो लीजिये, यह पूरा थान ही लीजिये।

श्रीकबीरदासके घरपर उनकी स्त्री लोई, माता नीमा, पुत्र कमाल और पुत्री कमाली—ये सभी रास्ता देख रहे थे। घरमें भोजन-सामग्रीका अभाव था, अतः सभी भूखे थे। कपड़ा बेचकर मूल धनसे सूत और मुनाफेसे सामान खरीदकर आता था। उसीसे निर्वाह होता था। दूसरे दिनके लिये कुछ बचता ही न था। श्रीकबीरदासजीने विचार किया कि घरमें सभी भूखे होंगे। खाली हाथ चलकर क्या करूँ। वे बाजारमें ही इधर-उधर कहीं छिप गये। घरको क्या लेकर आते? पूरा थान-का-थान तो दान कर चुके थे। भगवान् घट-घट वासी हैं, श्रीकबीरदासके सच्चे भक्तिभावको जानकर और घरके लोगोंको दुःखी देखकर वे व्यापारी केशव बनजारेका रूप धारणकर बैलोंके ऊपर बहुत-सा आवश्यक सामान लादकर लाये। सब सामान उन्होंने कबीरदासजीके घरमें रख दिया और कहा—यह सामान सुविधाके लिये है। इससे आरामसे निर्वाह करो।

तीन दिन बाद भी जब श्रीकबीरदासजी लौटकर घर नहीं आये, तब दो-चार आदमी गये और ढूँढ़कर उन्हें लिवा लाये। घर आकर कबीरदासजीने सब बात सुनी कि एक व्यापारी बहुत-सा सामान लाकर डाल गया, तो उन्होंने जान लिया कि मेरे कष्टको देखकर स्वयं भगवान्‌को कष्ट हुआ तभी उन्होंने सामान पहुँचानेका कष्ट उठाया। विचारकर कि श्रीराम रघुवीरने मुझपर अत्यन्त कृपा की, आप परमानन्दमें मग्न हो गये। उसी समय भक्तोंकी भीड़को बुलाकर श्रीकबीरदासजीने सारा सामान लुटा दिया। ताना-बाना, कपड़ा बुनना सब आपने छोड़ दिया। हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी। यह सुनकर ब्राह्मणोंका धैर्य छूट गया, वे क्रोधित होकर दौड़ते हुए कबीरदासजीके यहाँ आये और बोले—क्यों रे जुलाहे! तूने इतना धन पाया और हमलोगोंको नहीं बुलाया। शूद्रोंको बुलाकर सब धन उन्हें दे दिया। या तो हमें भी धन दो, नहीं तो यहाँसे बाहर भाग जाओ।

श्रीकबीरदासजीने कहा—अब मेरे घरमें तो कुछ भी नहीं है, आपलोग घरमें घुसकर देख लीजिये। यदि आप नहीं मानते हैं तो यहीं बैठें मैं मण्डीमें जाता हूँ, कुछ मिलेगा तो लाकर दे दूँगा। यह कहकर श्रीकबीरदासजीने बड़ी कठिनाईसे अपना पीछा छुड़ाया और मण्डीमें जाकर छिप गये। इस प्रकार उन्होंने संकटको टाला। इसी समय भगवान् श्रीकबीरदासजीका रूप धारण करके आये और बहुत-सा धन लाये। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदरपूर्वक ब्राह्मणोंको धन देकर उनका समाधान किया। वे लोग धन लेकर बड़े सुखी हुए। इस प्रकार भगवान्ने अपने भक्तकी उज्ज्वल कीर्तिको सम्पूर्ण जगत्में प्रकाशित किया।

श्रीप्रियादासजीने कबीरदासजीकी आजीविका और भगवद्भक्तिका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

बीनै तानौ बानौ हिये राम मडरानौ कहि कैसें कै बखानौं वह रीति कछु न्यारियै।
उतनोई करैं जामैं तन निरवाह होय भोय गई औरै बात भक्ति लागी प्यारियै॥
ठाढ़े मण्डा मांझ पट बेचन लै जन कोऊ आयो मोकों देहु देहु मेरी है उधारियै।
लग्यौ देन आधो फारि आधे सों न काम होत दियो सब लियौ जोपैं यहै उर धारियै॥ २७०॥
तियासुत मात मग देखैं भूखे आवै कब? दबि रहे हाटनि में ल्यावैं कहा धाम कौं।
सांचो भक्तिभाव जानि निपट सुजान वे तौ कृपाके निधान गृह शोच पर्‍यो श्याम कौं॥
बालद लै धाये दिन तीन यों बिताये जब आये घर डारि दई दई हौं आराम कौं।
माता करै सोर कोऊ हाकिम मरोरि बाँधे डारो बिन जानै सुत लेत नहीं दाम कौं॥ २७१॥
गये जन दोय चार ढूंढ़ि कै लिवाय ल्याये आये घर सुनी बात जानी प्रभु पीर कौं।
रहे सुख पाय कृपा करी रघुराय दई छिन मैं लुटाय सब बोलि भक्त भीर कौं॥
दियो छोड़ि तानौ बानौ सुख सरसानौ हिये किये रोष धाये सुनि विप्र तजि धीर कौं।
क्यों रे तूं जुलाहे धन पाये न बुलाये हमें, शूद्रनिकों दियो जावौ कहैं यों कबीर कौं॥ २७२॥
क्यों जू उठि जाऊँ? कछु चोरी धन ल्याऊँ निज हरिगुन गाऊँ कोऊ राह मैं न मारी है।
उनिकौं लै मान कियो याहि मैं अमान भयौ दयौ जोपै जाय हमैं तौ ही तौ जियारी है॥
घरमें तौ नाहीं मण्डी जाहि तुम रहौ बैठे नीठिकै छुटायो पैड़ौ छिपे व्याधि टारी है।
आये प्रभु आप द्रव्य ल्याये समाधान कियो लियो सुख होय भक्त कीरति उजारी है॥ २७३॥

(ग) कबीरदासजीके जीवनके कुछ चमत्कार

ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करके भगवान्ने ब्राह्मणका रूप धारण किया और वहाँ पहुँचे, जहाँ श्रीकबीरदासजी छिपकर बैठे थे। भगवान्ने श्रीकबीरदासजीसे कहा—तू यहाँपर पड़ा हुआ, भूखों क्यों मरता है? श्रीकबीरदासजीके घरपर जा। जो भी कोई वहाँ जाता है, उसे वे ढाई सेर अन्न देते हैं, इसलिये अब तू देर मत कर, वहीं चला जा, जल्दीसे जा। श्रीकबीरदासजी घरको आये और सब समाचार देख-सुनकर प्रेमानन्दमें पूर्णरूपसे मग्न हो गये। भगवान्के द्वारा किये गये नये-नये कौतुकोंसे तथा वैभवकी वृद्धिसे परम अकिंचन भक्त श्रीकबीरदासजीका धैर्य कैसे रहे। बढ़ती हुई प्रतिष्ठाको घटानेके लिये श्रीकबीरदासने भी नये-नये कौतुकोंकी रचना प्रारम्भ कर दी। एक दिन आपने एक वेश्याको अपने साथमें ले लिया। उस समय ऐसा मालूम होता था कि भजन-भावको छोड़कर ये उसीके रंगमें रँग गये हैं। परंतु सच्ची बात तो यह थी कि मुझे कुमार्गी समझकर लोग मेरे पास न आयें, मेरे भजनमें बाधा न हो।

श्रीकबीरदासजीको एक वेश्याके साथ देखकर सन्तजन डर गये कि श्रीकबीरदासजी यदि मायासे मोहित हो सकते हैं तो हम सरीखे साधारण लोग कैसे बचेंगे और दुष्टोंके मनमें बड़ा भारी सुख हुआ। वे कहने लगे, हम तो कहते ही थे कि यह ढोंगी है, हमारी बात सच निकली। श्रीकबीरदासजीने जब सन्त और असन्तोंके ऐसे भाव जाने, तब वे वेश्याको साथ लिये हुए वहाँ पहुँचे, जहाँ काशीके राजाकी सभा लगी हुई थी। राजाने शिष्य होते हुए भी इनका कुछ भी सम्मान नहीं किया। फिर भी ये वहाँ बैठ गये और मानसी भावसे श्रीजगन्नाथ भगवान्का ध्यान करने लगे। थोड़ी देर बाद इन्होंने उठकर वहीं अपने पात्रसे जल गिरा दिया। यह देखकर राजाके मनमें कुछ चिन्ता हुई और उसने पूछा—आपने यह क्या किया, जल क्यों गिराया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकबीरदासजीने कहा—श्रीजगन्नाथपुरीमें श्रीजगन्नाथजीका रसोइया भोगका थाल मन्दिरमें लिये जा रहा था, उसका पैर जलनेवाला था, इसलिये आगको बुझाकर मैंने उसकी रक्षा की है। यह सुनकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजाने इसकी जाँचके लिये आदमी भेजे। उन्होंने लौटकर समाचार दिया कि श्रीकबीरदासजीकी बात सत्य है—बिलकुल सत्य है।

राजाने मनमें अपना अपराध मानकर रानीसे कहा—श्रीकबीरदासजीकी वह बात तो सत्य निकली। राजसभामें कृपा करके पधारे, मैंने उनका अपमान किया, इसलिये मेरे मनमें बड़ा भारी दुःख है। इस अपराधसे बचनेके लिये मैं कौन-सा उपाय करूँ? रानीने कहा कि उन्हींकी शरणमें जानेसे काम बनेगा। तब राजाने घासका एक बड़ा भारी बोझ सिरपर रख लिया और गलेमें कुल्हाड़ी बाँध ली। इस प्रकार भावमें भीगा हुआ राजा रानीको साथमें लेकर श्रीकबीरदासजीकी शरणमें चला। राजा-रानीने लोक-लज्जाका सर्वथा परित्याग कर दिया था। दोनों बाजारसे होकर निकले। हमने बड़ा अनुचित कार्य किया है ऐसा सोच-सोचकर उनके शरीर क्षण-प्रतिक्षण क्षीण हो रहे थे। श्रीकबीरदासजीने दूरसे राजाको आते देखा तो अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे उठकर राजाके पास आये और उन्होंने घासका बोझ उतरवा दिया, गलेसे कुल्हाड़ी खुलवा दी। राजा-रानीके भावसे श्रीकबीरदासजी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। मैं तुम्हारे ऊपर रुष्ट नहीं हूँ, ऐसा कहते हुए उन्होंने उपदेश देकर उन्हें आनन्दित किया।

श्रीकबीरदासजीके इन चरित्रोंका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

ब्राह्मनकौ रूप धरि आये छिपि बैठे जहाँ काहे को मरत भौन जावौ जू कबीर के।
कोऊ जाय द्वार ताहिं देत हैं अढ़ाई सेर बेर जिनि लावौ चले जावौ यों बहीर के॥
आये घर माँझ देखि निपट मगन भये नये नये कौतुक ये कैसे रहैं धीर के।
बारमुखी लई संग मानौ वाही रंग रँगे जानौ यह बात करी डर अति भीर के॥ २७४॥
सन्त देखि डरे सुख भयोई असन्तनिके तब तौ विचार मन मांझ और आयो है।
बैठी नृपसभा जहाँ गये पै न मान कियौ कियौ एक चोज उठि जल ढरकायो है॥
राजा जिय शोच पर्‌यो कर्‌यो कहा? कह्यो तब जगन्नाथ पण्डा पाँव जरत बचायो है।
सुनि अचरज भरे नृपने पठाये नर ल्याये सुधि कही अजू सांच ही सुनायो है॥ २७५॥
कही राजा रानी सों जु बात वह साँची भई आंच लागी हिये अब कहो कहा कीजियै।
'चले ही बनत' चले सीस तृण बोझ भारी गरेसों कुल्हारी बांधि तिया संग भीजियै॥
निकसे बाजार ह्वै कै डारि दई लोकलाज कियो मैं अकाज छिन छिन तन छीजियै।
दूर ते कबीर देखि ह्वै गये अधीर महा आये उठि आगे कह्यौ डारि मत रीझियै॥ २७६॥

(घ) कबीरदासजी और बादशाह सिकन्दर लोदी

श्रीकबीरदासजीकी बढ़ती हुई महिमाको देखकर ब्राह्मणोंके हृदयमें ईर्ष्या पैदा हो गयी। उस समय भारतका तत्कालीन बादशाह सिकन्दर लोदी काशी आया हुआ था। भक्तिविमुख ब्राह्मणोंने श्रीकबीरदासजीकी माताको भी अपने पक्षमें कर लिया और इकट्ठे होकर सिकन्दर लोदीके दरबारमें गये। सबोंने पुकार की कि इस कबीरदासने सारे गाँवको दुःखी कर रखा है। मुसलमान होकर हिन्दू बाबाजी बन गया है, किसी धर्मको न मानकर ढोंग फैलाता रहता है। बादशाहने तुरंत आज्ञा दे दी कि उसे अभी पकड़कर मेरे पास ले आओ, मैं उसे देखूँगा कि वह कैसा मक्कार है। बादशाहकी आज्ञा पाकर सिपाहीलोग श्रीकबीरदासजीको ले आये और बादशाहके सामने खड़ा कर दिया। तब किसी काजीने श्रीकबीरदासजीसे कहा—ये बादशाह सलामत हैं, इन्हें सलाम करो। इन्होंने उत्तर दिया कि हम श्रीरामके अतिरिक्त दूसरे किसीको सलाम करना जानते ही नहीं हैं।

श्रीकबीरदासजीकी बातें सुनकर बादशाहने इन्हें लोहेकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जंजीरोंसे बँधवाकर गंगाजीकी धारामें डुबा दिया। परंतु ये जीवित ही रहे, लोहेकी जंजीरें न जाने कहाँ गयीं! ये गंगाजीकी धारसे निकलकर तटपर खड़े हो गये। पश्चात् बादशाहकी आज्ञासे बहुत-सी लकड़ियोंमें इन्हें दबाकर आग लगा दी गयी। उस समय नया आश्चर्य हुआ, सभी लकड़ियाँ जलकर भस्म हो गयीं और इनका शरीर इस प्रकार चमकने लगा, जिसे देखकर तपे हुए सोनेकी चमक भी लज्जित हो जाय। जब यह उपाय भी व्यर्थ हो गया तो एक मतवाला हाथी लाकर उसे उनके ऊपर झपटाया गया। परंतु लाख प्रयत्न करनेपर भी हाथी श्रीकबीरदासजीके पास नहीं आया। बड़ी जोरसे चिंग्घाड़कर वह दूर भाग जाता था। इनके समीपमें हाथीके न आनेका कारण यह था कि स्वयं श्रीरामजी सिंहका रूप धारणकर श्रीकबीरदासजीके आगे बैठे थे।

बादशाह सिकन्दर लोदीने श्रीकबीरदासजीका ऐसा अद्भुत प्रभाव देखा तो वह सिंहासनसे कूदकर इनके चरणोंमें गिर पड़ा और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा कि 'अब आप कृपा करके ईश्वरके कोपसे मुझे बचा लीजिये।' श्रीकबीरदासजीने कहा—'अब कभी भी किसी साधु-सन्तके ऊपर ऐसा गजब न करना।' बादशाहने कहा—'प्रभो! गाँव, देश तथा अनेक सुख-सुविधाके सभी सामान जो-जो आप चाहें, वह सब मैं आपको दूँगा।' तब आपने उत्तर दिया—हम तो केवल श्रीरामजीको चाहते हैं और उन्हींको अष्ट-प्रहर जपते हैं। दूसरे किसी धनसे हमें कुछ भी प्रयोजन नहीं है, इस प्रकार बादशाहसे सम्मानित होकर आप अपने घर आये।

श्रीकबीरदासजीकी विजयसे वे विरोधी ब्राह्मणलोग अत्यन्त लज्जित हुए। साधुओंसे शाप दिलाकर इन्हें परास्त करनेके विचारसे उन्होंने अपनेमेंसे चार ब्राह्मणोंके सुन्दर वैरागी साधुओंके-से वेष बनाये। उन चारोंको चारों दिशाओंमें भेज दिया। वे लोग दूर-दूरतक गाँवोंमें साधुओंके स्थानों और नामोंको पूछ-पूछकर सब जगह सबको न्यौता दे आये कि अमुक दिन श्रीकबीरदासजीके यहाँ भण्डारा है, वस्त्र और दक्षिणाका भी प्रबन्ध है, आप पधारें। भण्डारा सुनकर अगणित साधु-सन्त श्रीकबीरदासजीके यहाँ आये। तब आप घरसे अलग कहीं दूर जाकर छिप गये। अपने भक्तकी प्रतिष्ठा रखनेके लिये भगवान् स्वयं श्रीकबीरदासजीका रूप धारण करके आ गये और भण्डारेका प्रबन्ध करने लगे। बड़ी-बड़ी पंगतें बैठ गयीं। अब कबीरदासजी भी आकर इन्हींमें मिल गये। भगवान्ने खिला-पिलाकर और दान-सम्मानसे सभी साधु-सन्तोंको तथा श्रीकबीरदासजीको भी अच्छी प्रकारसे प्रसन्न किया।

उक्त घटनाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

देखि कै प्रभाव फेरि उपज्यौ अभाव द्विज आयौ बादशाह सो सिकन्दर सुनांव है।
विमख समूह संग माता हूं मिलाय लई जाय कै पुकारे जू दुखायो सब गांव है॥
ल्यावो रे पकर वाके देखौं मैं मकर कैसो अकर मिटाऊँ गाढ़े जकर तनांव है।
आनि ठाढ़े किये काजी कहत सलाम करौ जानै न सलाम जानै राम गाढ़े पांव है॥ २७७॥
बाँधिकै जंजीर गंगानीर मांझ बोरि दिये जिये तीर ठाढ़े कहैं जन्त्र मन्त्र आवहीं।
लकरीन मांझ डारि अगिनि प्रजारि दई नई मानो भई देह कंचन लजावहीं॥
विफल उपाय भये तऊ नहीं आय नये तब मतवारो हाथी आनि कै झुकावहीं।
आवत न ढिग औ चिघारि हारि भाजिजाय आप आगे सिंह रूप बैठे सो भगावहीं॥ २७८॥
देख्यो बादशाह भाव कूदि परे गहे पांव देखि करामात मात भये सब लोग हैं।
प्रभु पै बचाय लीजै हमें न गजब कीजै दीजै जोई चाहौ गांव देस नाना भोग हैं॥
चाहैं एक राम जाकौं जपै आठो याम और दामसों न काम जामैं भरे कोटि रोग हैं।
आये घर जीत साधु मिले करि प्रीति जिन्हैं हरिकी प्रतीति केई गायबेके जोग हैं॥ २७९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होयके खिसाने द्विज निज चारि विप्रनके मूड़न मुड़ायो भेष सुन्दर बनाये हैं।
दूर-दूर गांवनिमें नांवनिकौ पूंछि पूंछि नाम लै कबीरजूकौं झूठै न्यौति आये हैं॥
आये सब साधु सुनि ए तौ दूरि गये किहूं चहूँ दिसि सन्तनके फिरैं हरि धाये हैं।
इनहींको रूपधरि न्यारी न्यारी ठौर बैठे ऐऊ मिलि गये नीके पोषिकै रिझाये हैं॥ २८०॥

(ङ) भगवान्‌का कबीरदासजीको दर्शन देना

श्रीकबीरदासजीको मोहित करनेके लिये स्वर्गलोकसे एक अप्सरा सुन्दर वेश-भूषा बनाकर आयी। लेकिन इनके हृदयमें दृढ़ भक्तिभावको देखकर वह वापस चली गयी; क्योंकि उसकी लाग नहीं लगी। श्रीकबीरदासजीके सम्मुख आकर भगवान्‌ने अपना चतुर्भुज रूप प्रकट कर दिया। उसका दर्शन करके इनके नेत्र सफल हो गये। ऐसे परम सौभाग्यशाली सन्त श्रीकबीरदासजी थे। भगवान्‌ने अपना करकमल इनके मस्तकपर रखकर कहा—तुम धन्य हो, तुम्हारी बुद्धि मेरे नाम-रूपादिमें पग गयी है। अपनी इच्छानुसार जबतक चाहो इस मर्त्यलोकमें रहो और मेरे गुणोंका गान करो। उसके बाद अपने इस शरीरके सहित मेरे परमधाम वैकुण्ठमें चले आना। मगहरमें जाकर आपने भगवद्भक्तिका प्रताप दिखाया। भक्तिका प्रचार किया। अन्त समयमें आपने बहुत-से पुष्प मँगाये, उन्हें बिछाकर लेट गये और भगवान्‌से जा मिले।

इस घटनाका भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने इस प्रकार वर्णन किया है—

आई अपछरा छरिबे के लिए वेस किए हिये देखि गाढ़े फिरि गई नहीं लागी है।
चतुर्भुज रूप प्रभु आनिकै प्रगट कियौ लियो फल नैननि कौं बड़ौ बड़ भागी है॥
सीस धरैं हाथ तन साथ मेरे धाम आवौ गावौ गुण रहो जौलौं तेरी मति पागी है।
मगह में जाय भक्ति भावको दिखाय बहु फूलनि मँगाय पौढ़ि मिल्यौ हरि रागी है॥ २८१॥

श्रीपीपाजी

प्रथम भवानी भक्त मुक्ति माँगन को धायो।
सत्य कह्यो तिहिं सक्ति सुदृढ़ हरि सरन बतायो॥
(श्री) रामानँद पद पाइ भयो अति भक्ति की सीवाँ।
गुन असंख्य निर्मोल संत धरि राखत ग्रीवाँ॥
परसि प्रनाली सरस भइ सकल बिस्व मंगल कियो।
पीपा प्रताप जग बासना नाहर कों उपदेस दियो॥ ६१॥

भक्तवर श्रीपीपाजी पहले भवानी देवीके भक्त थे। मुक्ति माँगनेके लिये आपने देवीका ध्यान किया, देवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर सत्य बात कही कि 'मुक्ति देनेकी शक्ति मुझमें नहीं है, वह शक्ति तो भगवान्‌में है। उनकी शरणमें जाना ही सुदृढ़ साधन है।' देवीजीके उपदेशानुसार आचार्य श्रीरामानन्दजीके चरणकमलोंका आश्रय पाकर श्रीपीपाजी अति भक्तिकी अन्तिम सीमा हुए। गुरुकृपा एवं अतिभक्तिके प्रभावसे आपमें असंख्य-अमूल्य सद्गुण थे, उन्हें सन्तजन सदा गाते रहते हैं। भक्त, भक्ति, भगवन्त और गुरुदेवकी आपने ऐसी आराधना की कि उसका स्पर्श करके अर्थात् देख-सुन और समझ करके सम्पूर्ण वैष्णवोंकी आराधना-प्रणाली अत्यन्त सरस हो गयी। आपने अपने प्रभावसे सम्पूर्ण संसारका कल्याण किया। इसका प्रमाण यह है कि आपने परम हिंसक सिंहको उपदेश देकर अहिंसक और विनीत बना दिया॥ ६१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीपीपाजीसे सम्बन्धित कुछ विवरण इस प्रकार है—

(क) श्रीरामानन्दाचार्यजीका शिष्य बननेकी घटना

गागरौनगढ़ नामक एक विशाल किला एवं नगर है, वहाँ पीपा नामक एक राजा हुए। वे देवीके बड़े भक्त थे। एक बार उस नगरमें साधुओंकी जमात आयी। राजाने जमातका स्वागत करके कहा—देवीजीको चालीस मन अन्नका भोग लगता है, सभी लोग प्रसाद लेते हैं, आपलोग भी देवीजीका प्रसाद ग्रहण कीजिये। साधुओंने कहा—हमारे साथ श्रीठाकुरजी हैं, हम उन्हींको भोग लगाकर प्रसाद लेते हैं, दूसरे देवी-देवताओंका नहीं। तब राजाने उन्हें सीधा-सामान दिया। साधुओंने रसोई करके भगवान्का भोग लगाया और मन-ही-मन प्रार्थना की—'हे प्रभो! इस राजाकी बुद्धिको बदल दीजिये, इसे अपना भक्त बना लीजिये।' रातको जब राजा महलमें सोया तो उसने एक बड़ा भयानक स्वप्न देखा कि एक विकराल देहधारी प्रेतने मुझे पटक दिया है। मैं भयभीत होकर रोने लगा। जागते ही राजाने स्वप्नकी घटनापर विचार किया, तब उसे वैराग्य हो गया। अब राजाके सोचने-विचारनेकी रीति दूसरी हो गयी। उसे भगवान्की भक्ति विशेष प्रिय लगने लगी।

राजाने देवीसे मायासे मुक्ति एवं भगवत्प्राप्तिका मार्ग पूछा, तब देवीजीने सही बात कही कि 'काशीमें विराजमान श्रीस्वामी रामानन्दजीको अपना गुरु बनाओ और उनके बताये हुए मार्गपर चलकर भगवान्को प्राप्त करो।' देवीजीकी आज्ञा पाकर राजाने काशीको प्रस्थान किया। श्रीस्वामीजीके दर्शनोंकी इच्छासे राजाने जब श्रीमठमें प्रवेश करना चाहा तो द्वारपालोंने कहा कि आचार्यश्रीकी आज्ञाके बिना कोई भी भीतर नहीं जा सकता है। आप अपना परिचय दें। इन्होंने कहा—हम गागरौनगढ़के राजा हैं। तब द्वारपालोंसे श्रीस्वामीजीने कहा कि हमलोग तो विरक्त हैं, राजाओंसे हमें क्या प्रयोजन? यह सुनकर पीपाजीने राजशाही वेषका त्याग करके फिर शरणागतिकी प्रार्थना कहला भेजी। देहासक्तिका निराकरण करनेके लिये श्रीस्वामीजीने आदेश दिया—'कुएँमें गिर पड़ो।' आज्ञा सुनते ही मनमें अत्यन्त प्रसन्न होकर पीपा कुएँमें गिरने चले। परंतु श्रीस्वामीजीके सेवकोंने पकड़ लिया। इनकी दृढ़ निष्ठा देखकर श्रीस्वामीजी बड़े प्रसन्न हुए और इन्हें बुलाकर दर्शन दिया।

आचार्य श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजीने भक्त पीपाको मन्त्र-दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया और इनके ऊपर विशेष कृपा की। गुरुदेवके अनुग्रहसे श्रीपीपाजीने भगवद्भक्तिको दृढ़तापूर्वक अपने हृदयमें धारण किया। श्रीस्वामीजीने इन्हें आज्ञा दी कि अब तुम अपनी राजधानी गागरौनगढ़को जाओ और वहीं घरमें रहकर साधु-सन्तोंकी सेवा करो। एक वर्ष बीतनेपर जब हम तुम्हारी सेवाको सरस जानेंगे और यह देख लेंगे कि तुम सन्तोंकी सेवामें सुख मानते हो और तुम्हारी सेवासे सुखी होकर सन्त तुम्हारे यहाँसे विदा होते हैं, तब हम तुम्हारे घर आयेंगे, वहीं हमारा दर्शन करना। श्रीस्वामीजीकी ऐसी आज्ञा पाकर श्रीपीपाजी घरको लौट आये और बड़ी सुन्दर रीतिसे सन्तसेवा करने लगे। जब वर्ष पूरा होने लगा, तब आपने गुरुदेवभगवान्को एक पत्रमें लिखकर भेजा कि 'दासपर आप कृपा कीजिये, अपने वचनोंका पालन कीजिये।' पत्र पाकर श्रीस्वामीजी अपने प्रिय चालीस भक्तोंको साथ लेकर गागरौनगढ़को चले।

श्रीप्रियादासजीने श्रीपीपाजीके रामानन्दाचार्यजीका शिष्य बननेकी घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—

गागरौन गढ़ बढ़ पीपा नाम राजा भयो लयो पन देवी सेवा रंग चढ्यो भारियै।
आये पुर साधु सीधो दियो जोई सोई लियो कियो मन माँझ प्रभु बुद्धि फेरि डारियै॥
सोयो निशिरोयो देखि सुपनो बेहाल अति प्रेत विकराल देह धरि कै पछारियै।
अब न सुहाय कछू वहू पायँ परि गई नई रीति भई वाहि भक्ति लागी प्यारियै॥ २८२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछ्यो हरि पायबे कौ मग जब देबी कही सही रामानन्द गुरु करि प्रभु पाइयै।
लोग जानैं बौरौ भयौ गयौ यह काशीपुरी फुरी मति अति आये जहाँ हरि गाइयै॥
द्वार मैं न जान देत आज्ञा ईश लेत कही राज सों न हेत सुनि सबही लुटाइयै।
कह्यौ कुवां गिरौ चले गिरन प्रसन्न हिये जिये सुख पायौ ल्याय दरस दिखाइयै॥ २८३॥
किये शिष्य कृपा करी धरी हरिभक्ति हृदै कही अब जावौ गृह सेवा साधु कीजियै।
बितये बरस जब सरस टहल जानि संत सुखमानि आवैं घर मधि लीजियै॥
आये आज्ञा पाय धाम कीन्ही अभिराम रीति प्रीतिकौ न पारावार चीठी लिखि दीजियै।
हूजिये कृपाल वही बात प्रतिपाल करौ चले जुग बीस जन संग मति रीझियै॥ २८४॥

(ख) पीपाजीकी रानी श्रीसीता सहचरीका श्रीरामानन्दजीकी शिष्या बनना

आचार्य श्रीरामानन्दजी महाराज कबीरदास, रैदास आदि अपने चालीस शिष्य-सेवकोंको साथ लेकर गागरौनगढ़के निकट पहुँचे। श्रीगुरुदेवके शुभागमनका समाचार पाते ही पीपाजी पालकी लेकर आये। आपने स्तुति करके गुरुदेवको तथा सभी साधुओंको अलग-अलग दण्डवत् प्रणाम किया। उत्साहपूर्वक बहुत-सा धन 'मुहरें' न्यौछावर करके, लुटा करके समस्त समाजको अपने राजभवनमें पधराया। श्रीस्वामीजीने पीपाजीकी भक्त-भगवन्तमें दृढ़ भक्ति तथा सेवाकी सुन्दर रीति देखकर उनसे कहा—तुम्हारी इच्छा हो तो घरपर रहकर सेवा करो अथवा विरक्त होकर भजन करो, दोनों ही तुम्हारे लिये समान हैं। श्रीगुरुदेवमें तथा उनकी आज्ञामें विश्वास करके उनके श्रीचरणोंमें पड़कर पीपाजीने प्रार्थना की कि अपने चरणोंमें ही रखिये।

श्रीपीपाजी जब घर छोड़कर श्रीस्वामीजीके साथ चलनेको तैयार हुए, तब उनकी सभी बीसों रानियाँ भी उनके साथ चलनेके लिये तैयार हो गयीं। तब श्रीपीपाजीने कहा—यदि तुम सबको मेरे साथ ही चलना है तो कमरीको फाड़कर उसकी अलफी पहन लो और मूल्यवान् वस्त्र तथा सभी गहने उतारकर फेंक दो। साधुवेष धारण करके चलो। ऐसा त्याग वे नहीं कर सकीं, सभी रोने लगीं। परंतु उनमेंसे जो सबसे छोटी रानी सीता सहचरीजी थीं, वे इसके लिये तैयार हो गयीं। उन्होंने अलफी गलेमें डाल ली, सभी आभूषण उतार दिये, तब राजाने दूसरी आज्ञा दी कि अधोवस्त्र मात्र रखो, इस अलफीको भी उतारकर फेंक दो। सुनते ही सीता सहचरी अलफी उतारकर फेंकने लगीं। यह देखकर श्रीस्वामीजीको दया आ गयी। उन्होंने श्रीपीपाजीको आज्ञा दी कि इनको साथमें ही रखो।

श्रीप्रियादासजी श्रीपीपाजीकी रानी श्रीसीता सहचरीजीके स्वामी श्रीरामानन्दजीकी शिष्या बनने और दोनोंके संन्यास ग्रहण करनेकी इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

कबीर रैदास आदि दास सब संग लिये आये पुरपास पीपा पालकी लै आयौ है।
करी साष्टांग न्यारी न्यारी बिनै साधुनको धनको लुटाय सो समाज पधरायौ है॥
जैसी कीन्हीं सेवा बहु मेवा नाना राग भोग बानीके न जोग भाग कापै जात गायौ है।
जानी भक्ति रीति घर रहौ कै अतीत होहु करिकै प्रतीति कुरु पग लगि धायौ है॥ २८५॥
लागी संग रानी दस दोय कही मानी नहीं कष्टको बतावैं डरपावैं मन लावहीं।
कामरीन फारि मधि मेखला पहिरि लेवो देवो डारि आभरन जो पै नहीं भावहीं॥
काहू पै न होय दियो रोय भोय भक्ति आई छोटी नाम सीता गरें डारी न लजावहीं।
यहू दूर डारौ करौ तनकौ उघारौ कियौ दया रामानन्द हियौ पीपा न सुहावहीं॥ २८६॥

(ग) श्रीपीपाजी तथा उनकी रानीको श्रीकृष्णदर्शन होनेकी कथा

श्रीस्वामीजीके अधिक आग्रह करने और शपथ दिलानेपर श्रीपीपाजी सीता सहचरीको अपने साथ ले चलनेके लिये तैयार हो गये। राजाको रोकनेके लिये रानियोंने एक ब्राह्मणको बहुत-सा धन देकर उसे प्रेरित किया, उसने कहा—मैं राजाको कदापि न जाने दूँगा। श्रीपीपाजीके समझानेपर भी उसने अपना हठ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ा। ये भी रुकनेको नहीं तैयार हुए, तब उस ब्राह्मणने विष खा लिया और मर गया। तब श्रीस्वामीजीने उसे जीवित करके उसे और रानियोंको लौटा दिया। कालान्तरमें श्रीपीपाजी और श्रीसीता सहचरीजी सन्त-समाजके साथ आनन्ददायिनी श्रीद्वारकापुरी पहुँचे। कुछ दिनोंतक सभी लोग वहाँ रहे। जब श्रीस्वामीजी अपने शिष्य-सेवकोंको लेकर वहाँसे काशीपुरीको चले, तब श्रीपीपाजीने प्रार्थना करके कुछ दिन द्वारकामें रहनेकी आज्ञा माँगी और आज्ञा पाकर वहीं रह गये। रहते-रहते इन्हें भगवान्के दिव्य द्वारकापुरीके दर्शनोंकी ऐसी उत्कट उत्कण्ठा हुई कि आप समुद्रमें कूद पड़े। उसी क्षण श्रीकृष्णने अपने कुछ सेवकोंको इन्हें लिवा लानेके लिये भेजा, वे इन्हें सादर लिवा लाये। श्रीपीपाजीने दिव्य द्वारकाका दर्शन किया। भगवान् श्रीकृष्ण बड़े प्रेमसे मिले और फिर सीता सहचरीसमेत श्रीपीपाजी सानन्द सात दिनतक वहाँ रहे। सात दिन बाद भगवान् श्रीकृष्णने इन लोगोंको इस दिव्य द्वारकासे उस द्वारकाको जानेकी आज्ञा दी। परंतु ये वहाँसे जाना नहीं चाहते थे। तब श्रीश्यामसुन्दरने बड़े प्रेमसे कहा—मेरे जिस रूपके दर्शन तुमने किये हैं, उसीमें मनको दिये हुए तथा उसी रूपमाधुरीका पान किये हुए, वहाँ जाकर भी उसे ही देखते रहोगे, अतः विरहव्यथा न व्यापेगी। यदि तुमलोग नहीं जाओगे तो संसारमें 'भक्त और ऐसे भक्त डूब गये' यह जो कलंक लग गया है, कैसे मिटेगा? इसके पश्चात् भगवान्के द्वारा दी गयी शंख-चक्रकी छापको तथा भगवान्की आज्ञा आपने स्वीकार की।

भगवान् स्वयं भक्तवर श्रीपीपा और सीता सहचरीको पहुँचानेके लिये चले। समुद्रके बाहरतक पहुँचाकर आप लौट आये। सपत्नीक श्रीपीपाजी जब समुद्रसे निकलकर तटपर आये तो लोगोंने एक विचित्र बात देखी कि आप दोनोंके वस्त्र सूखे हैं, परंतु हृदय प्रेमसे सराबोर है। जिन लोगोंने समुद्रमें कूदते हुए इन्हें देखा था, उन्होंने पहचान लिया और सभी लोग आकर आप दोनोंके पैरोंमें लिपट गये। श्रीपीपाजीने भगवान्की दी हुई शंख-चक्रकी छाप लोगोंके शरीरपर लगायी। द्वारकामें आपके दर्शनोंके लिये नित्य भारी भीड़ होने लगी, तब सीता सहचरीजीने श्रीपीपाजीको समझाकर कहा कि 'अब यहाँसे कहीं अन्यत्र चलो, यहाँ भजनमें बाधा हो रही है।' दोनों द्वारकासे चल दिये। छठे मुकामपर पहुँचते ही इन्हें पठान मुसलमान मिल गये। उन्होंने सीता सहचरीको छीन लिया। उसी समय भगवान् दौड़कर आ गये और दुष्टोंको मारकर सीता सहचरीको ले आये। इस प्रकार इनकी रक्षा करके और दर्शन देकर प्रभुने इन्हें आनन्दित किया।

श्रीपीपाजी-दम्पतीको दिव्य द्वारका और भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी इस घटनाका श्रीप्रियादासजी महाराज अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

जोपै यापै कृपा करी दीजै काहू संग करि मेरे नहीं रंग यामैं कही बार बार है।
सौंह को दिवाय दई लई तब कर धरि चले ढरि विप्र एक छोड़ै न विचार है॥
खायौ विष ज्यायौ पुनि फेरिकै पठायौ सब आयौ यों समाज द्वारावती सुखसार है।
रहे कोऊ दिन आज्ञा माँगी इन रहिबे की कूदे सिन्धु माँझ चाह उपजी अपार है॥ २८७॥
आये आगे लैन आप दिये है पठाय जन देखि द्वारावती कृष्ण मिले बहु भाग्य कै।
महल महल माँझ चहल पहल लखी रहे दिन सात सुख सकै कौन गाय कै॥
आज्ञा दई जाइबे की जाइबौ न चाहैं दिये पिये वह रूप देखौ मोहीं को जु जाइ कै।
भक्त बूड़ि गयो यह बड़ोई कलंक भयौ मेटौ तम अंक संक गही अकुलाइ कै॥ २८८॥
चले पहुँचायबे को प्रीति के अधीन आप बिन जल मीन जैसे ऐसे फिरि आये हैं।
देखि नई बात गात सूखे पट भीजे हिये लिये पहिचानि आनि पग लपटाये हैं॥
दई लै कै छाप पाप जगत के दूर करौ ढरौ कहूँ और कहि सीता समझाये हैं।
छठेई मिलान बन मैं पठान भेंट भई लई छीनि तिया कियो चैन प्रभु धाये हैं॥ २८९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) पीपाजीद्वारा हिंसक सिंहको अहिंसक वैष्णव बनाना

श्रीपीपाने श्रीसीता सहचरीसे कहा—देखो, यहाँ कैसे-कैसे संकट आते हैं, अतः अच्छा होगा कि अब भी तुम घरको चली जाओ। श्रीसीता सहचरीने उत्तर दिया—भगवन्! हरि ही भयको हरनेवाले हैं, रक्षक हैं, वे ही रक्षा करेंगे। इसके उपरान्त दोनों उसी मार्गसे चले, जिसमें एक सिंह रहता था। जो बहुतोंको मारकर खा चुका था, परंतु इनके दर्शनसे उसका अन्त:करण पवित्र हो गया। वह विनीत भावसे इनके निकट बैठ गया। तब इन्होंने उसे शिष्य करके समझाया कि अब तुम वैष्णव हो गये, अतः किसीकी हिंसा न करना। इसके बाद वे दूसरे गाँवमें पहुँचे। वहाँ आपने शेषशायी भगवान्के दर्शन किये और दुकानदारके न देनेपर सूखे बाँसोंको हरा करके एक हरा बाँस भगवान्को अर्पण किया। वहाँसे चलकर आप परम प्रेमी भक्त श्रीचीधरजीके यहाँ पहुँचे।

श्रीप्रियादासजीने श्रीपीपाजीद्वारा सिंहको वैष्णव बना लेनेकी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—

अभू लगि जावो घर कैसे कैसे आवै डर बोली हरि जानियै न भाव पै न आयो है।
लेत हौं परिच्छा मैं तो जानौं तेरो सिच्छा ऐपै सुनि दृढ़ बात कान अति सुख पायो है॥
चले मग दूसरे सु तामें एक सिंह रहै आयो वास लेत शिष्य कियो समझायो है।
आये और गाँव सेषसाई प्रभु नांव रहै करे बाँस हरे ढरे चीधर सुहायो है॥ २९०॥

(ङ) श्रीचीधरदम्पतीकी सन्तनिष्ठा

भक्त चीधरजी और उनकी धर्मपत्नीने देखा कि परम भागवत श्रीपीपाजी अपनी स्त्रीसमेत पधारे हैं तो वे परम प्रसन्न हुए, परंतु घरमें खाने-पीनेका कुछ भी सामान नहीं था। श्रीचीधरजीकी स्त्रीने अपना एकमात्र वस्त्र—लहँगा उतारकर दे दिया। श्रीचीधरजी उसे बेचकर सीधा सामान ले आये और श्रीपीपाजीके सामने रखकर बोले—'महाराज! रसोई कीजिये और भगवान्का भोग लगाइये।' लहँगा बिक जानेके कारण भगतिनका शरीर नग्न हो गया था, अतः श्रीचीधरने उन्हें कोठरीमें छिपा दिया। श्रीसीता सहचरीजीने रसोई तैयार कर दी, भगवान्का भोग लग गया। श्रीपीपाजीने श्रीचीधर भक्तसे कहा—भगतिनको बुला लाइये, आप और हम सब एक साथ ही बैठकर प्रसाद पायेंगे। श्रीचीधरजीने कहा—आपलोग प्रसाद पायें, उसे सीथ—प्रसाद प्रिय है। वह बादमें पा लेगी। तब श्रीपीपाजीने सीता सहचरीसे कहा—तुम भीतर जाकर उन्हें बुला लाओ और उन्हें भी साथ ही प्रसाद पवाओ। तब वे भीतर गयीं तो उन्होंने जाकर देखा कि वह नग्न बैठी हैं।

सीता सहचरीजीने जब भगतिनको नग्न देखा तो पूछा—कहिये, क्या बात है, आपका शरीर उघारा क्यों है? तब श्रीचीधरजीकी स्त्रीने कहा—हमलोगोंको सन्त-सेवा हृदयसे अत्यन्त प्रिय लगती है। अतः हमारा समय इसी प्रकार बीतता है। जब सन्त भगवान् पधारते हैं, तब उनका दर्शन-सत्संग एवं स्वागत करके हमें अपार सुख होता है। उस परमानन्दके सामने यह नश्वर शरीर ढका है अथवा उघारा है, इसकी क्या चर्चा की जाय। सीता सहचरीजीने जब ये बातें सुनीं, तो सब रहस्य उनकी समझमें आ गया। इसके उपरान्त सीता सहचरीजीने अपनी धोतीमेंसे आधी फाड़कर उन्हें दिया। उसे उन्होंने पहन लिया, तब उनका हाथ पकड़कर उन्हें घरसे वहाँ लिवा लायीं। सबोंने एक साथ बैठकर प्रसाद पाया। सन्त-सेवाके प्रति निष्ठाकी इस अनोखी घटनाको सीता सहचरीने बादमें शयन करते समय पीपाजीको सुनाया।

श्रीचीधरजी एवं उनकी पत्नीकी इस अद्भुत सन्त-सेवाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

दोऊ तिया पति देखैं आये भागवत ऐपै घर की कुगति रति साँची लै दिखाई है।
लहँगा उतारि बेचि दियौ ताकौ सीधौ लियौ करो अजू पाक बधू कोठीमें दुराई है॥
करी लै रसोई सोई भोग लगि बैठे कह्यो आवौ मिलि दोई कही पाछे सीथ भाई है।
वाहू को बुलावौ ल्यावौ आनिकै जिमावौ तब सीता गई ठौर जाइ नगन लखाई है॥ २९१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछैं कहौ बात ए उघारे क्यों हैं गात कही ऐसे ही बिहात साधु सेवा मन भाई है।
आवैं जब सन्त सुख होत है अनन्त तन ढँक्यो कै उघारौ कहा चरचा चलाई है॥
जानि गई रीति प्रीति देखी एक इनही में हमहूं कहावै ऐ पै छटा हूं न पाई है।
दियौ पट आधौ फारि गहि कै निकारि लई भई सुखसैल पाछे पीपा सों सुनाई है॥ २९२॥

(च) श्रीसीता सहचरीजीकी सन्तसेवाका दृष्टान्त

सपत्नीक भक्त श्रीचीधरजीकी सन्त-सेवा-निष्ठासे प्रभावित होकर सीता सहचरीजीने अपने पतिदेवसे कहा—अब तो हमारा धर्म यह है कि हम वेश्यावृत्ति अपनाकर सन्त-सेवा करें। ऐसा निश्चयकर वे दोनों वहाँ जाकर बैठे, जहाँ अनाजकी बड़ी मण्डी थी। श्रीसीता सहचरीकी अपार सुन्दरतासे आकृष्ट हो करके वे लोग एकत्र हो गये जो रूप निरखनेके लोभी थे। समीप आकर जब उन लोगोंने उनको देखा तो उनके नेत्रोंका रोग अर्थात् उनकी विषय-दृष्टि नष्ट हो गयी। लोगोंने श्रीसीता सहचरीजीसे पूछा कि आप कौन हैं ? आपके साथ ये सज्जन आपके कौन हैं ? इन्होंने उत्तर दिया—हम वेश्या हैं, हमारे घर-द्वार कुछ भी नहीं है और हमारे साथमें यह हमारा सेवक है। यह सुनकर वे सब स्तब्ध खड़े-के-खड़े ही रह गये। फिर जिन लोगोंने उन्हें द्वारकामें देखा था, उन्होंने पहचानकर बताया—अरे! ये परमभक्त श्रीपीपाजी और ये उनकी धर्मपत्नी सीता सहचरीजी हैं। तब तो लोगोंने उनके आगे अन्न-वस्त्र और मुहरोंके ढेर लगा दिये। श्रीपीपाजीने वह सब सामान भक्त चीधरके यहाँ भेज दिया।

श्रीसीता सहचरीजीकी इस अद्भुत सन्त-सेवा-निष्ठाका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

करैं वेश्या कर्म अब धर्म है हमारो यही कही जाय बैठी जहाँ नाजनि की ढेरी है।
घिरि आये लोग जिन्हें नैननिकौ रोग लखि दूर भयो सोग नेकु नीके हू न हेरी है॥
कहैं तुम कौन? 'वारमुखी नहीं भौन संग भरुवा' सु गहैं मौन सुनि परी बेरी है।
करी अन्नरासि आगे मुहर रुपैया पागे पठै दई चीधर के तब ही निबेरी है॥ २९३॥

(छ) श्रीपीपाजीको स्वर्णमुहरोंकी प्राप्ति और उनका त्याग

श्रीचीधर भक्तसे आज्ञा माँगकर उनसे विदा लेकर सीता सहचरीसमेत श्रीपीपाजी टोंड़े ग्राम आये और गाँवसे बाहर कुटी बनाकर रहने लगे। एक दिन आप स्नान करनेके लिये गये थे तो वहाँ एकाएक आपको मुहरोंसे भरे हुए कई मटके दिखायी पड़े। उस मिले हुए धनको त्यागकर आप चले आये। रातमें सीता सहचरीजीसे आपने बताया कि उस सरोवरपर स्वर्णमुद्राओंसे भरे मटके मैं छोड़ आया हूँ। सुनकर उन्होंने कहा—अब आप उस तालाबपर स्नान करने मत जाइयेगा। संयोगवश चोरी करनेकी इच्छासे वहीं कहीं कुटीके पास छिपे हुए चोरोंने यह बात सुन ली। वे तुरंत उसी सरोवरपर गये और जाकर देखा तो उन पात्रोंमें साँप भरे हुए हैं। चोरोंने समझा कि वे हमें साँपोंसे कटवाकर मरवा डालनेके लिये ही ऐसी बातचीत आपसमें कर रहे थे। बदला लेनेकी भावनासे उन चोरोंने मुहरभरे सभी मटके उखाड़े और श्रीपीपाजीकी कुटीमें पटककर भाग गये। जब श्रीपीपाजीने गिना, तब मालूम पड़ा कि सात सौ बीस सोनेकी मुहरें हैं और एक-एक मुहर तौलमें पाँच-पाँच तोलेकी है।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आज्ञा माँगि टोंड़े आये कभूं भूखे कभूं घाये औचक ही दाम पाये गयो हो स्नान को।
मुहरनि भांड़ो भूमि गाड़ो देखि छांड़ि आयौ कही निसि तिया बोली जावौ सर आन को॥
चोर चहैं चोरी करैं ढरे सुनि वाही ओर देखैं जो उघारि सांप डारैं हतैं प्रान को।
ऐसे आय परीं गनी सात सत बीस भईं तोलै पांच बांट करैं एक के प्रमान को॥ २९४॥

(ज) राजा सूर्यसेनमलका पीपाजीका शिष्य बनना

श्रीपीपाजी उस धनसे साधु-महात्माओंको निमन्त्रण देकर बड़े-बड़े विशाल भण्डारे करने लगे। असंख्य सन्त प्रसाद पाने लगे। इस प्रकार खिला-पिलाकर सम्पूर्ण धनको श्रीपीपाजीने तीन दिनमें समाप्त कर दिया। आपकी इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल कीर्तिको टोंड़ेके राजा सूर्यसेनमलने सुना तो वह दर्शन करनेके लिये आया और दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुआ। फिर बड़ी नम्रतासे राजाने प्रार्थना की और कहा—आप मुझे शिष्य बना लीजिये। जैसी आज्ञा मुझे देंगे, मैं वही करूँगा। तब आपने आज्ञा दी कि यदि ऐसा है तो आप अपनी सब सम्पत्ति और रानियोंको यहाँ लाकर मुझको अर्पण कर दो। राजाने राज्य और रानियाँ उन्हें अर्पण कर दीं।

इस प्रकार श्रीपीपाजीने राजाकी परीक्षा लेकर उसको मन्त्र-दीक्षा दी। फिर सम्पत्ति और रानियोंको लौटाकर कहा कि सम्पूर्ण राज्य तथा ये रानियाँ आजसे अब हमारी हैं, इनमें अब ममता न रखना। मेरी आज्ञासे इनका पालन-पोषण करना। रानियोंको आज्ञा दी कि सन्तोंकी सेवा करना। इसके बाद राजाने बहुत अनुनय-विनय करके गुरुदेवको एक घोड़ा और सन्त-सेवार्थ बहुत-सा धन भेंट किया। आपने उसमेंसे कुछ धन रख लिया। शेष लौटा दिया। गुरुदेवके उपदेशानुसार राजाने अहंकारको त्याग दिया और सभी जीव-जन्तुओंको अपनेसे बड़ा मानने लगा। यह समाचार सुनकर राजाके भाई-बन्धु जल-भुन गये, परंतु महान् प्रतापी सीतापति श्रीपीपाजीसे वे कुछ भी कह न सके। इसी बीच एक व्यापारी बैलोंको खरीदनेके लिये टोंड़े गाँवको आया। राजाके भाइयोंने उसे बहकाया कि पीपा भगत बैलोंके बहुत बड़े व्यापारी हैं, उनके पास बहुत अच्छे-अच्छे बैल हैं, वहीं चले जाओ।

राजा सूर्यसेनके पीपाजीका शिष्य बननेकी इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

जोई आवै द्वार ताहि देत हैं अहार और बोलिकै अनंत संत भोजन करायो है।
बीते दिन तीन धन खाय प्याय छीन कियौ लियौ सुनि नाम नृप देखिबेको आयो है॥
देखिकै प्रसन्न भयौ, नयौ, देवौ दीक्षा मोहि, दीक्षा है अतीत करैं आप सो सुहायो है।
चाहो सोई करौं ह्वै कृपाल मोको ढरौ, अजू धरौ आनि संपति औ रानी जाइ ल्यायौ है॥ २९५॥
करिकै परीक्षा दई दीक्षा संग रानी दई भई ए हमारी करौ परदा न संतसों।
दीयौ धन घोरा कछू राख्यौ दै निहोरा भूप मान तन छोरा बड़ौ मान्यौ जीवजंतसों॥
सुनि जरि बरि गये भाई सेनसूरज के ऊरज प्रताप कहा कहैं सीता कंतसों।
आयो बनिजारौ मोल लियो चाहै खैलनिकौं दियो बहकाय कहौ पीपाजू अनंतसों॥ २९६॥

(झ) पीपाजीके जीवनकी विलक्षण घटनाएँ

लोगोंके बहकानेमें आकर वह व्यापारी श्रीपीपाजीके पास आया और थैली खोलकर रुपये इनके सामने रखते हुए बोला—मैं बैल लेने आया हूँ, मुझे बैल दीजिये। श्रीपीपाजीने कहा—आपको जितने बैल चाहिये, उतने मिल जायँगे, परंतु आज अभी यहाँ नहीं हैं। गाँवमें चरनेके लिये भेज दिये गये हैं। कल दोपहरको आकर आप ले लीजियेगा। इसके बाद वह व्यापारी तो रुपये देकर चला गया। आपने सन्तोंको बुलवाकर भण्डारा महोत्सव कर दिया। उसीमें सब रुपये खर्च कर दिये। वह बनजारा निर्धारित समयपर आ गया और बोला—'मुझे बैल दीजिये। बैल कहाँ हैं?' उस समय पंगत हो रही थी, सैकड़ों सन्त बैठे प्रसाद पा रहे थे। श्रीपीपाजीने पंगतकी ओर हाथसे संकेत करके कहा—'यही सब मेरे बैल (धर्मस्वरूप सन्त) हैं, मैं इन्हींका व्यापार करता हूँ। इनमेंसे जितने आपको चाहिये, आप उतने ले जाइये।' उस व्यापारीने सन्तोंके दर्शन किये, उसके हृदयमें भक्तिका भाव भर गया। वह उसी समय बाजार गया और वस्त्र लाकर उसने सभी साधुओंको पहनाया।

एक दिन श्रीपीपाजी घोड़ेपर चढ़कर स्नान करनेके लिये सरोवरपर गये। घोड़ेको वहीं छोड़कर आप स्नान करने लगे। इतनेमें ही दुष्ट चोरोंने आकर घोड़ा पकड़ लिया और उसे छिपाकर बाँध दिया। आप जब स्नान करके आये तो घोड़ा ज्यों-का-त्यों वहींपर खड़ा मिला। मानो उसीको ले आये हों। घोड़ेपर चढ़कर आप अपने आश्रममें आ गये। जब चोरोंने यह चमत्कार देखा तो वे डर गये और घोड़ेको ले आये। तब वह घोड़ा नहीं दिखायी पड़ा। उन्होंने चोरी छोड़कर शिष्यता स्वीकार की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन घटनाओंका वर्णन भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

बोल्यो बनिजारो दाम खोलि खैला दीजियै जू, लीजियै जू आय गांव चरन पठाये हैं।
गये उठि पाछे बोलि संतनि महोच्छौ कियौ आयौ वाही समैं कही लेहु मन भाये हैं॥
दरसन करि हिये भक्ति भाव भर्‌यौ आनि आनिकै बसन सब साधु पहिराये हैं।
और दिन न्हान गये घोड़ा चढ़ि छोड़ि दियौ लियौ बांध्यौ दुष्टननि आयौ मानौ ल्याये हैं॥ २९७॥

(ञ) श्रीपीपादम्पतीके सन्तनिष्ठाकी अद्भुत कथा

एक बार श्रीपीपाजी राजा सूर्यसेनमलके यहाँ एक झगड़ेका फैसला करनेके लिये गये थे। आपके चले जानेके बाद कुटीपर कुछ सन्तजन पधारे। संयोगवश उस दिन कुटीमें अन्न-धन कुछ भी नहीं था। सन्त-सेवाके लिये कहीं जाकर कुछ ले आऊँ, ऐसा विचारकर श्रीसीता सहचरीजी बाजारको गयीं। वहाँ इन्हें देखकर एक दुराचारी बनियेने बुलाकर पूछा—आपने सामानकी आवश्यकता बतायी। तब उसने सब सीधा-सामान देकर कहा—'आप रातको मेरे पास अवश्य आइये।' सब सामग्री लेकर आप कुटीपर आयीं। रसोई हुई और भोग लगाकर जब महात्मालोग भोजन कर रहे थे, उसी समय श्रीपीपाजी पधारे। उन्होंने पूछा कि सामान कहाँसे आया तो श्रीसीता सहचरीजीने सब बात बतला दी। उसे सुनकर श्रीपीपाजीने उसकी सन्त-सेवा-निष्ठाकी बड़ी प्रशंसा की। सायंकालको शृंगार करके श्रीसीता सहचरीजी बनियेके पास जब जानेको तैयार हुईं तो उसी समय पानी बरसने लगा। कीचड़ हो गया, कैसे जायँ, शृंगार बिगड़ेगा। तब श्रीपीपाजीने उन्हें कन्धेपर चढ़ा लिया और उस बनियेको प्रसन्न करनेके लिये चले।

श्रीपीपाजीने सीता सहचरीजीको ले जाकर बनियेके द्वारपर उतार दिया। वे भीतर चली गयीं। आप बाहर द्वारपर बैठ गये। इनके दर्शन-चिन्तनसे एवं अन्नके सन्त-भगवन्तकी सेवामें लगनेसे उसकी बुद्धि शुद्ध हो चुकी थी, अतः मुखपर दृष्टि न पड़कर उस बनियेकी दृष्टि इनके चरणोंपर पड़ी। इनके सूखे श्रीचरणोंको देखकर उसने पूछा—माताजी! आप यहाँतक कैसे आयी हैं? इन्होंने उत्तर दिया—'स्वयं श्रीस्वामीजी अपने कन्धेपर बिठाकर लाये हैं।' फिर उसने पूछा—'वे कहाँ हैं?' आपने कहा—'तुम जाकर देखो, वे बाहर ही होंगे।' यह सुनकर वह सीता सहचरीजीके चरणोंमें गिर पड़ा और रोने लगा। फिर बाहर आकर श्रीपीपाजीके चरणोंको पकड़कर बोला—'आप कृपा करके हमारी रक्षा करो, आप तो जीवमात्रको सुख देनेवाले सन्त हैं।' श्रीपीपाजीने कहा—'आप अपने मनमें किसी प्रकारकी शंका एवं भय न करें। निःसंकोच एवं निडर होकर अपना काम करें। आपने हमलोगोंके साथ बड़ा भारी उपकार किया है। जिस धनके वास्ते सहोदर भाई भी परस्पर लड़ते और मरते-मारते हैं। वह धन आपने बिना रुक्का लिखाये ही सन्तोंकी सेवाके लिये दे दिया।' वह बनिया लज्जा और ग्लानिके मारे दबा मरा जा रहा था। वह चाहता था कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ तो अच्छा है। श्रीपीपाजीने उसे इस प्रकार दुःखी देखा तो उन्हें बड़ी दया आयी। उसे दीक्षा दी, वह भगवद्भक्ति पाकर कृतार्थ हुआ।

सन्तसेवाके प्रति पीपाजी-दम्पतीके इस दिव्यभाव और दुष्ट बनियेके हृदयपरिवर्तनकी इस घटनाका श्रीप्रियादासजी महाराजने अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

गये हे बुलाये आप पाछे घर संत आये अन्न कछू नाहिं कहूं जाय करि ल्याइयै।
विषयी बनिक एक देखि कै बुलाइ लई दई सब सौंज कही सही निसि आइयै॥
भोजन करत मांझ पीपा जू पधारे पूछी वारे तन प्रान जब कहि कै सुनाइयै।
करि कैं सिंगार सीता चली झुकि मेह आयो कांधे पै चढ़ायौ बपु बनिया रिझाइयै॥ २९८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाट पै उतारि दई द्वार आप बैठे रहे चहे सूके पग माता कैसे करि आई हौ।
स्वामीजू लिवाय ल्याये, कहां है ? निहारौ जाय आय पांय पर्‌यो डर्‌यो राखौ सुखदाई हौ॥
मानौ जिनि संक काज कीजिये निसंक धन दियो बिन अंक जापै लरैं मरैं भाई हौ।
मर्‌यौ लाज भार चाहै धसौं भूमि फार दृग बहै नीरधार देखि दई दीक्षा पाई हौ॥ २९९॥

(ट) राजा सूर्यसेनमलको ज्ञान प्रदान करना

श्रीपीपाजीके सीता सहचरीको कन्धेपर चढ़ाकर बनियेके यहाँ पहुँचानेकी बात चलते-चलते राजा सूर्यसेनमलके कानोंमें पड़ी। राजाकी भरी सभामें भक्तिविमुख ब्राह्मणोंने श्रीपीपाजीकी निन्दा करते हुए कहा—'उनका यह आचरण धर्मशास्त्रके बिलकुल विरुद्ध है।' राजाके मनमें भी यही आया, इसलिये गुरुदेवके श्रीचरणोंमें भी उसकी प्रीति घट गयी। यह जानकर समर्थ श्रीपीपाजी उसे समझाने एवं उसके हृदयमें भक्ति सुस्थिर करने चले। राजद्वारपर पहुँचकर द्वारपालोंके द्वारा अपने आगमनकी सूचना भेजी। भीतरसे राजाने कहला भेजा कि इस समय पूजा कर रहे हैं। कुछ देर बाद आयेंगे।' यह सुनकर श्रीपीपाजीने कहा—'राजा बड़ा मूर्ख है, मोचीके घरपर बैठकर जूते गाँठ रहा है और कहता है कि मैं सेवा-पूजा कर रहा हूँ।' राजाने द्वारपालोंके मुखसे जब यह बात सुनी तो दौड़कर आया और चरणोंमें गिर पड़ा। वह आश्चर्यचकित था, वस्तुतः मनसे मोचीके घरपर पहुँच गया था।

उस राजाके महलमें एक अत्यन्त रूपवती, परंतु बन्ध्या रानी थी। उसमें राजाकी विशेष आसक्ति जानकर श्रीपीपाजीने कहा—'तुम शीघ्र उस रानीको मेरे पास ले आओ।' राजा महलकी ओर चला, परंतु उसे बड़ा शोक और संकोच हो रहा था कि मैं रानीको कैसे लाऊँ। चलते समय उसके पैर डगमगा रहे थे। रनिवासमें घुसते ही उसे भयंकर सिंह दिखायी पड़ा। उसे देखकर राजा डर गया और वहीं खड़ा हो गया। पीछे लौटनेमें बुराई और आगे जानेका साहस नहीं रहा। फिर वह सिंह गायब हो गया। राजा किसी प्रकार रानीके पास पहुँचा तो उसके पास अभीका जन्मा हुआ एक बालक दिखायी पड़ा। अब राजाकी समझमें आया कि गुरुदेव भगवान्‌में कितनी सामर्थ्य है। वहीं पृथ्वीपर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके राजाने स्तुति की—'हे प्रभो! हम आपकी मायाको नहीं जान सकते हैं। आपके सिंह एवं शिशु दोनों ही रूप वन्दनीय हैं।' राजाकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर निज स्वरूपसे श्रीपीपाजी वहीं प्रकट हो गये और फटकारते हुए बोले—कहो, वह पहलेवाला रंग कहाँ गया, जब तुमने लोक लज्जा और मोहका त्याग करके सारा राज्य और रानियाँ मुझे अर्पण की थीं और मेरे शिष्य हुए थे।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

चलत चलत बात नृपति श्रवन परी भरी सभा विप्र कहैं बड़ी विपरीति है।
भूप मन आई यह निपट घटाई होत भक्ति सरसाई नहीं जानै घटी प्रीति है॥
चले पीपा बोध दैन द्वारही ते सुधि दई लई सुनि कही आवौं करौं सेवारीति है।
बड़ौ मूढ़ राजा मोजा गाठै बैठ्योमोची घर, सुनि दौरि आयो रहे ठाढ़े कौन नीति है॥ ३००॥
हुती घर मांझ बांझ रानी एक रूपवती मांगी वही ल्यावौ बेगि चल्यौ सोच भारी है।
डग मग पांव धरै, पीपा सिंह रूप करै ठाढ़ौ देखि डरै इत आवै आप ख्वारी है॥
जाय तौ बिलाय गयो तिया ढिग सुत नयौ नयौ भूमिपर कला जानी न तिहारी है।
प्रगट्यौ सरूप निज खीझिकै प्रसंग कह्यौ, कहाँ वह रंग ? शिष्य भयौ लाज टारी है॥ ३०१॥

(ठ) दुराचारी भगवद्विमुखोंको सन्तभाव प्रदान करना

अब जब राजाका अन्तःकरण पवित्र हो गया, तब श्रीपीपाजीने उसे अनन्य भक्तिका उपदेश दिया। एक दिन एक साधुरूपधारी दुराचारी श्रीपीपाजीके पास आकर बोला—'आप अपनी स्त्रीको मुझे एक रातके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये दे दें।' आपने कहा—'ले जाओ।' उसने सीता सहचरीजीसे कहा—'आप मेरे संग दौड़कर चलो।' आज्ञाके अनुसार ये उसके साथ दौड़ती हुई चलने लगीं। परंतु दौड़ते-दौड़ते सारी रात बीत गयी फिर भी उसका घर नहीं आया। प्रात:काल हो गया। ये बैठ गयीं और बोलीं कि अब मैं आपके साथ एक पग भी नहीं चल सकती हूँ; क्योंकि मेरे स्वामीजीकी यह आज्ञा थी कि इनके साथ एक रात रहना। सो वह रात बीत गयी। उसने सोचा कि थक गयी हैं, अत: पालकी या गाड़ी ले आऊँ, उसमें बिठाकर ले चलूँ। वह गाँवमें गया तो घर-घरमें श्रीसीता सहचरीके दर्शन हुए। तब उसकी आँखें खुलीं। वहीं आकर बोला—'माताजी! चलो, आपको स्वामीजीके पास पहुँचा आवें।' आश्रममें आकर वह श्रीपीपाजीके और श्रीसीता सहचरीजीके पैरोंमें गिर पड़ा, उसके मनसे कामवासना दूर हो गयी और सन्त-भगवन्तकी भक्तिमें दृढ़भाव हो गया।

एक बार चार कामी-कुटिल दुष्टोंने सुन्दर माला-तिलक आदि धारण कर लिया और श्रीपीपाजीके निकट आकर बड़ी नम्रतासे बोले—'आप सच्चे सन्तसेवी हैं, आप अपनी स्त्री हमें दे दीजिये।' श्रीपीपाजीने उन्हें कामभावसे व्याकुल होकर प्रतीक्षा करते देखा तो कहा—'आपलोग कोठेमें जाइये।' जैसे ही ये लोग कोठेके द्वारपर गये, वैसे ही एक सिंहनी इन सबके ऊपर इन्हें फाड़ डालनेके लिये झपटी। परंतु उसने साधुवेष जानकर फाड़ा नहीं। वे चारों भयभीत होकर भागे और श्रीपीपाजीसे नाराज होकर बोले—'तुमने तो वहाँ हमलोगोंको मरवानेके लिये सिंहनी बैठा रखी है, तुम साधु नहीं दुष्ट मालूम पड़ते हो।' हँसकर आपने कहा—'आपलोग अपने हृदयकी कुत्सित भावनाओंको देखिये। अनधिकार भोग-भावना ही सिंहनी है। सद्भावसे पुन: जाकर देखिये।' उन लोगोंने फिर जाकर देखा तो सीता सहचरीजी विराजमान हैं। वे सब चरणोंमें पड़कर रोने एवं अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थना करने लगे। श्रीपीपाजीकी बातको सत्य मानकर वे सब उनके शिष्य बन गये।

श्रीप्रियादासजीने उक्त घटनाओंका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कियौ उपदेश नृप हृदैमें प्रवेश कियौ लियौ वही पन आप आये निज धाम है।
बोल्यौ एक नाम साधु एक निसि देहु तिया, लेहु, कही भागौ, संग भागी सीता वाम है॥
प्रात भये चलै नाहिं, रैन ही की आज्ञा प्रभु चल्यौ हारि आगे घर घर देखो ग्राम है।
आयौ वाही ठौर चलो माता पहुँचाय आवौं, आय गहे पांव भाव भयौ गयौ काम है॥ ३०२॥
विषयी कुटिल चारि साधु भेष लियो धारि कीनी मनोहारि कही तिया निज दीजियै।
करिकै सिंगार सीता कोठे मांझ बैठीं जाय चाहैं मग आतुर ह्वै अजू जाहु लीजियै॥
गये जब द्वार उठी नाहरी सुफारिबे कौं फारै नहीं बानौ जानि आय अति खीजियै।
अपनौ विचारौ हियौ कियौ भोग भावनाकौ मानि सांच भये शिष्य प्रभु मति धीजियै॥ ३०३॥

(ड) ग्वालिनको शिष्य बनाना

श्रीपीपाजीके यहाँ विराजमान साधु-सन्तोंने एक दिन दही पानेकी इच्छा प्रकट की कि आज तो श्रीरघुनाथजीका दहीभोग आरोगनेका मन है। उसी समय एक ग्वालिन दही बेचती हुई उधर आयी। इससे यह जाना गया कि भगवान् अपने भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करते हैं। श्रीपीपाजीने दहीका मूल्य पूछा तो उस ग्वालिनने तीन आना बताया। परंतु उस समय श्रीपीपाजीके पास एक भी पैसा नहीं था। उन्होंने उससे कहा—तू दही दे दे, पैसे अभी नहीं हैं, आज जो भी कुछ भेंटमें आ जायगा, वही तुझको मिल जायगा। यदि कुछ न आया तो तुम्हारा दही ही भेंट समझा जायगा। ग्वालिनने स्वीकार कर लिया। दहीका भोग लगा, साधुओंने शक्कर मिलाकर भोग लगाया और बड़े प्रेमसे दही पिया। उसी समय श्रीपीपाजीका एक शिष्य आया और उसने एक मोतीमालाके समेत बहुत-सा धन भेंट किया। इन्होंने मोतीमाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सम्पूर्ण धन ग्वालिनको दे दिया। वह उस धनको घर लायी, उसमेंसे कुछ थोड़ा अपने पास रखा, शेषको भक्त-भगवन्त-सेवामें खर्च करके श्रीपीपाजीकी शिष्या बन गयी। ऐसे ही अनेकविध चरित्र थे पीपाजीके।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

गूजरी को धन दियौ पियौ दही संतनि नै, ब्राह्मनकौ भक्त कियौ देवी दी निकारिकै।
तेली कों जिवायो, भैंस चोरनिपै फेरिल्यायौ, गाड़ी भरि आयौ, तन पांचठौर जारिकै॥
कागद लै कोरो कर्‍यौ बनियांको सोक हर्‍यौ, भर्‍यौ घर त्यागि, डारी हत्या हूं उतारिकै।
राजा कौ औसेर भई, सन्त कौ जु विभौ दई, लई चीठी मानि गये श्रीरंग उदारिकै॥ ३०४॥

(ढ) श्रीरंगदासको भक्तिका मर्म समझाना

एक बार श्रीपीपाजी श्रीअनन्तानन्दस्वामीके शिष्य श्रीरंगजीके यहाँ पहुँचे, उस समय वे भगवान्‌का मानसी पूजन कर रहे थे। श्रीपीपाजी उनकी पौरपर बैठे रहे। श्रीरंगजी मानसी-पूजामें भगवान्‌का शृंगार कर रहे थे। पहले मुकुट धारण कराकर तब फूलोंकी माला पहना रहे थे। वह किंचित् छोटी होनेसे मुकुटमें अटक रही थी। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि कैसे पहनाऊँ? श्रीपीपाजीका मानसी-सेवामें प्रवेश था, अतः बाहरसे ही कहा कि गाँठ खोलकर धारण करा दीजिये। श्रीरंगजीने ऐसा ही किया। फिर तुरंत ही विस्मित होकर आँख खोलकर इधर-उधर देखने लगे कि किसने इतनी गुप्त भावनाको प्रत्यक्ष देखकर मुझे उपाय बताया है। जब वहाँ कोई नहीं दिखायी पड़ा तो उत्सुकतावश बाहर आये। परम तेजोमय दिव्य भव्य, प्रसन्न मुख श्रीपीपाजीको देखकर श्रीरंगनाथजीने पूछा—आप कौन हैं, कृपा करके अपना नाम बताइये। श्रीपीपाजीने मुसकराकर कहा—सन्तोंसे इस प्रकार कुछ पूछनेकी विधि नहीं है। यह सुनकर श्रीरंगजी बड़े लज्जित हुए और समझ गये कि यह कोई परम ज्ञानवान् सिद्ध पुरुष हैं। अतः गीतोक्त विधिसे पुनः परिचय पूछा। जब श्रीपीपाजीने अपना नाम, ग्राम बताया तो सुनते ही वह इनके श्रीचरण-कमलोंमें लोट-पोट हो गये। इसके बाद वे हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रतापूर्वक बोले—प्रभो! मेरा मन तो यह था कि जब आप आयेंगे तो मैं गाजे-बाजेके साथ चलकर आपकी अगवानी करूँगा। परंतु आप तो बिना किसी पूर्व सूचनाके एकदम द्वारपर ही आ गये। आप कृपा करके बागमें पधारें, मैं आपकी अगवानी करने चलूँगा। श्रीपीपाजीने कहा—अरे भाई! अब तो हम घरपर आ ही गये, अब अगवानीकी क्या जरूरत रह गयी? उन्होंने कहा—फिर तो महाराज, मेरी अभिलाषा अपूर्ण ही रह जायगी। अन्तमें उनके प्रेमसे हारकर श्रीपीपाजी घरसे एक कोस दूर बागमें जाकर विराजे। श्रीरंगजी खूब बाजे बजवाते हुए, मुहरें लुटाते हुए, प्रेमोन्मत्त होकर नृत्यगान करते हुए पालकी लेकर इनको लिवाने चले। श्रीपीपाजीने कहा कि पालकीपर तो हमारे श्रीसद्‌गुरुदेव श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी चलते हैं, भला मैं पालकीपर कैसे चल सकता हूँ। यदि आपका ऐसा ही भाव है तो श्रीस्वामीजीकी छविको पालकीपर पधराकर ले चलें, मैं पैदल चलूँगा। ऐसा ही हुआ। श्रीपीपाजी उनके प्रेमको देखकर एक महीनेतक उनके घर रहे। श्रीपीपाजीके सत्संगसे सम्पूर्ण गाँव श्रीरामरंगमें रंग गया। इसी प्रकार आपने दो स्त्रियोंको भक्तिका चेत कराया, ब्राह्मणकन्याका विवाह कराया, इत्यादि विविध चरित्रोंको प्रदर्शितकर पीपाजीने भक्तिका विस्तार किया। उनके उदात्त चरित्रका महान् विस्तार है।

उपर्युक्त घटनाओंका श्रीप्रियादासजी महाराजने अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीरंगके चेत धर्‍यौ तिया हिय भाव भर्‍यौ ब्राह्मणको शोक हरयौ राजा पै पुजाय कै।
चँदवा बुझाय दियौ तेली को लै बैल दियौ दियौ पुनि घर मांझ भयौ सुख आय कै॥
बड़ोई अकाल पर्‍यौ जीव दुख दूरि कर्‍यौ पर्‍यौ भूमि गर्भ धन पायौ दै लुटाय कै।
अति विसतार लियौ कियौ है विचार यह सुनै एक बार फेरि भूलै नहीं गाय कै॥ ३०५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीधन्नाजी

घर आए हरिदास तिनहि गोधूम खवाए।
तात मात डर खेत थोथ लांगलहिं चलाए॥
आस पास कृषिकार खेत की करत बड़ाई।
भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पाई॥
अचरज मानत जगत मैं कहुँ निपज्यौ कहुँवै बयो।
धन्य धना के भजन कों बिनहिं बीज अंकुर भयो॥ ६२॥

परम पुण्यवान्, प्रशंसनीय भक्त श्रीधन्नाजीकी भगवद्भागवत सेवाकी हम सराहना करते हैं, जिनके खेतमें बिना बीज बोये ही अंकुर जमा। घरपर वैष्णवोंके आनेपर बोनेके लिये रखा हुआ बीजका गेहूँ उन्हें खिला दिये और माता-पिताके डरसे खेतमें खाली-खाली हल चला दिये। (परंतु सन्तसेवाके प्रतापसे बिना बोये भी खेतमें गेहूँ बढ़िया जमा अतः) पास-पड़ोसके किसान इनके खेतकी बड़ाई करते थे। (जब श्रीधन्नाजीने जाकर देखा तो) साधुसेवाकी प्रीतिरीति एवं प्रतीतिको प्रत्यक्ष पाया। इस बातको सुनकर संसारके लोग आश्चर्य मानते हैं कि बोया कहीं अन्य गया और उपजा कहीं अन्यत्र॥ ६२॥

श्रीधन्नाजीके पावन चरितका वर्णन इस प्रकार है—

श्रीधन्नाजीके बाल्यकालकी घटना है—एक बार एक वैष्णव ब्राह्मण (श्रीत्रिलोचनजी) इनके घर आये। वे श्रीठाकुरजीकी सेवा बड़ी सुन्दर विधिसे करते थे। सेवाके समय बालक धन्ना भी वहीं आ गया और बोला कि मुझे भी श्रीठाकुरजीकी सेवा दीजिये, मेरी भी श्रीठाकुरसेवामें बड़ी प्रीति है। पण्डितजीने एक गोल पत्थर देकर कहा कि खूब प्रेमसे सेवा करना। बालक धन्नाने पत्थरको ही श्रीठाकुरजी समझकर हृदयसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक भगवान्की सेवा करने लगा। भगवान्के आगे भोगके लिये रोटी रखकर, परदा करके आँखें बन्द कर लिया। थोड़ी देर बाद परदा खोलकर देखा तो भगवान्ने एक टुकड़ा भी रोटी नहीं खायी थी। तब धन्नाको बड़ा भय हुआ।

श्रीधन्नाजी बारंबार भगवान्के पाँवोंमें पड़कर अनुनय विनय करने लगे। इतनेपर भी जब भगवान् नहीं पाये तो ये भी अड़ गये कि आप नहीं खायेंगे तो मैं भी नहीं खाऊँगा। फिर भी नहीं पाये तो ये भी उस दिन भूखे-प्यासे रह गये। धन्नाजीके हृदयका भाव सच्चा था, अतः प्रभुने इनके द्वारा अर्पित रोटियाँ पायीं। भगवान्को रोटियाँ बहुत ही प्यारी लगीं। श्रीधन्नाजी नित्य-प्रति जंगलमें गायें चराने जाते थे। इनको वहीं छाक आती तो ये बड़े प्रेमसे भगवान्को भोग लगाते। भगवान् पा करके छोड़ देते थे, वही यह भी पाते थे। प्रीतिकी रीति कुछ ऐसी ही विलक्षण होती है।

एक दिन भगवान्ने श्रीधन्नाजीसे कहा—देखो धन्ना! जो कोई जिसका खाता है, वह उसकी सेवा भी अच्छी तरह करता है। अतः मुझे भी कोई सेवा बताओ। श्रीधन्नाजीके मना करनेपर भी श्रीठाकुरजी इनकी गायें रोज चराने लगे। एक वर्ष बाद वे ब्राह्मण फिर इनके यहाँ आये, परंतु घरमें सेवा-पूजाकी प्रीति-रीति कहीं खोजनेपर भी नहीं पाये। पूछनेपर श्रीधन्नाजीने कहा कि भगवान् गैया चराने गये हैं। पण्डितजीको विश्वास नहीं हो रहा था, कारण कि सेवा-पूजा करते-करते जन्म बीत गया और आजतक दर्शन नहीं हुआ था। फिर पण्डितजीकी प्रार्थनापर श्रीधन्नाजीने उन्हें भी भगवान् श्यामसुन्दरका दर्शन करा दिया।

फिर घर आकर श्रीधन्नाजीपर कृपा करके श्रीभगवान्ने आज्ञा दी कि तुम श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजीके पास जाओ और उन्हें अपना गुरु बनाओ अर्थात् उनसे विधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वक मन्त्रदीक्षा ले लो। श्रीधन्नाजी जाकर श्रीस्वामीजीके शिष्य हो गये। शिष्य होनेपर भगवान्ने उन्हें हृदयसे लगा लिया। फिर श्रीधन्नाजी घरके सब काम-काज करते हुए भगवदाराधन करते रहे।

श्रीप्रियादासजीने धन्नाजीके चरित्रोंका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

खेत की तो बात कही प्रगट कवित्त माँझ और एक सुनौ भई प्रथम जू रीति है।
आयौ साधु विप्रधाम सेवा अभिराम करै ढर्यौ ढिंग आप कही मोहूं दीजै प्रीति है॥
पाथर लै दियो, अति सावधान कियौ, छाती महँ लाय जियो सेवै जैसी नेह नीति है।
रोटी धरि आगे आंखि मूंदि लियौ परदाकै छियौ नहिं टूक देखि भई बड़ी भीति है॥ ३०६॥
बार बार पांव परै अरै भूख प्यास तजी धरै हिये सांचौ भाव पाई प्रभु प्यारियै।
छाक नित आवै नीकै भोगको लगावै जोई छोड़ै सोई पावैं प्रीति रीति कछु न्यारियै॥
जाकौ कोऊ खाय ताकी टहल बनाय करै ल्यावत चराय गाय हरि उर धारियै।
आयौ फिरि विप्र नेह खोजहूँ न पायौ कहूँ सरसायौ बातैं लै दिखायौ स्याम ज्यारियै॥ ३०७॥
द्विज लखि गायनिमें चायनि समात नाहिं भायनिकी चोट दृग लागी नीर झरी है।
जायकै भवन सीता रँवन प्रसन्न करैं बड़े भाग मानि प्रीति देखी जैसी करी है॥
धनाकौ दयाल ह्वै कै आज्ञा प्रभु दई ढरौ करौ गुरु रामानन्द भक्ति मति हरी है।
भए शिष्य जाय आप छातीसों लगाय लिये किये गृह काम सबै सुनी जैसी धरी है॥ ३०८॥

श्रीसेनजी

प्रभू दास के काज रूप नापित को कीनो।
छिप्र छुरहरी गही पानि दर्पन तहँ लीनो॥
तादृस ह्वै तिहिं काल भूप के तेल लगायो।
उलटि राव भयो सिष्य प्रगट परचो जब पायो॥
स्याम रहत सनमुख सदा ज्यों बच्छा हित धेन के।
बिदित बात जग जानिए हरि भए सहायक सेन के॥ ६३॥

यह बात सर्वप्रसिद्ध है, सारा संसार जानता है कि श्रीभगवान् परम भागवत श्रीसेनजीके सहायक हुए। भक्तवत्सल प्रभुने अपने भक्त (सेनजी)-के लिये नाईका रूप बनाया और अत्यन्त शीघ्र बगलमें छुड़हरी लटकाये हाथमें दर्पण लिये ठीक सेनजीके समान ही रूप धारण करके जाकर राजाको तेलकी मालिश की। जब राजाने यह रहस्य जाना तो वह उल्टे श्रीसेनजीका ही शिष्य बन गया। जैसे नवीन ब्यायी हुई गाय हमेशा अपने बछड़ेके हितके लिये सामने ही रहती है, उसी प्रकार भगवान् श्रीश्यामसुन्दरजी श्रीसेनजीके हितके लिये सदा उनके सन्मुख ही बने रहते थे॥ ६३॥

श्रीसेनजीसे सम्बन्धित कुछ विवरण इस प्रकार है—

पाँच-छः सौ साल पहलेकी बात है। बघेलखण्डका बान्धवगढ़ नगर अत्यन्त समृद्ध था। महाराज वीरसिंह वहाँके राजा थे। इसी नगरमें एक परम सन्तोषी, उदार, विनयशील व्यक्ति रहते थे; उनका नाम था सेन। राजपरिवारसे उनका नित्यका सम्पर्क था; भगवान्की कृपासे दिनभरकी मेहनत-मजदूरीसे जो कुछ भी मिल जाता था, उसीसे परिवारका भरण-पोषण और सन्त-सेवा करके वे निश्चिन्त हो जाते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे नित्य प्रात:काल स्नान, ध्यान और भगवान्‌के स्मरणपूजन और भजनके बाद ही राजसेवाके लिये घरसे निकल पड़ते थे और दोपहरको लौट आते थे। जातिके नाई थे। राजाका बाल बनाना, तेल लगाकर स्नान कराना आदि ही उनका दैनिक काम था। एक दिन वे घरसे निकले ही थे कि उन्होंने देखा एक भक्तमण्डली मधुर-मधुर ध्वनिसे भगवान्‌के नामका संकीर्तन करती उन्हींके घरकी ओर चली आ रही है। सेनने प्रेमपूर्वक सन्तोंको घर लाकर उनकी यथाशक्ति सेवा-पूजा की और सत्संग किया।

उधर महाराज वीरसिंहको प्रतीक्षा करते-करते अधिक समय बीत गया। इतनेमें सेन नाईके रूपमें स्वयं लीलाविहारी राजमहलमें पहुँच गये। सदाकी भाँति उनके कंधेपर छुरे, कैंची तथा अन्य उपयोगी सामान तथा दर्पण आदिकी छोटी-सी पेटी लटक रही थी। उन्होंने राजाके सिरमें तेल लगाया, शरीरमें मालिश की, दर्पण दिखाया। उनके कोमल करस्पर्शसे राजाको आज जितना सुख मिला, उतना और पहले कभी अनुभवमें नहीं आया था। सेन नाई राजाकी पूरी-पूरी परिचर्या और सेवा करके चले गये।

उधर जब भक्तमण्डली चली गयी तो थोड़ी देरके बाद भक्त सेनको स्मरण हुआ कि मुझे तो राजाकी सेवामें भी जाना है। उन्होंने आवश्यक सामान लिया और डरते-डरते राजपथपर पैर रखा। वे चिन्ताग्रस्त थे, राजाके बिगड़नेकी बात सोचकर वे डर रहे थे।

'कुछ भूल तो नहीं आये?' एक साधारण राजसैनिकने टोक दिया।

'नहीं तो, अभी तो राजमहल ही नहीं जा सका।' सेन आश्चर्यचकित थे।

'आपको कुछ हो तो नहीं गया है? मस्तिष्क ठीक-ठिकाने तो है न?'' भगवान्‌के भक्त कितने सीधे-सादे होते हैं, इसका पता तो आज ही चल सका।' सैनिक कहता गया। 'आज तो राजा आपकी सेवासे इतने अधिक प्रसन्न हैं कि इसकी चर्चा सारे नगरमें फैल रही है।' सैनिक आगे कुछ न बोल सका।

सेनको पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि मेरी प्रसन्नता और सन्तोषके लिये भगवान्‌को मेरी अनुपस्थितिमें नाईका रूप धारण करना पड़ा। वे अपने-आपको धिक्कारने लगे कि एक तुच्छ-सी सेवापूर्तिके लिये शोभानिकेतन श्रीराघवेन्द्रको बहुरूपिया बनना पड़ा। प्रभुको इतना कष्ट उठाना पड़ा! उन्होंने भगवान्‌के चरण-कमलका ध्यान किया, मन-ही-मन प्रभुसे क्षमा माँगी।

उनके राजमहलमें पहुँचते ही राजा वीरसिंह बड़े प्रेम और विनय तथा स्वागत-सत्कारसे मिले, भगवान्‌के साक्षात्कारका प्रभाव जो था। भक्त सेनने बड़े संकोचसे विलम्बके लिये क्षमा माँगी, सन्तोंके अचानक मिल जानेकी बात कही। दोनोंने एक दूसरेका जीभर आलिंगन किया। राजाने सेनके चरण पकड़ लिये। वीरसिंहने कहा—'राजपरिवार जन्म-जन्मतक आपका और आपके वंशजोंका आभार मानता रहेगा। भगवान्‌ने आपकी ही प्रसन्नताके लिये मंगलमय दर्शन देकर हमारे असंख्य पाप-तापोंका अन्त किया है।'

श्रीप्रियादासजीने श्रीसेनजीकी सन्तसेवानिष्ठा और भगवान्‌की कृपाका इस प्रकार वर्णन किया है—

'बांधौगढ़' बास हरि साधु सेवा आस लगी पगी मति अति प्रभु परचौ दिखायौ है।
करि नित्त नेम चल्यौ भूपकौ लगाऊँ तेल भयो मग मेल सन्त फिरि घर आयौ है॥
टहल बनाय करी नृपकी न संक करी धरी उर श्याम जाय भूपति रिझायौ है।
पाछे सेन गयौ पंथ पूछै हिये रंग छायौ भयौ अचरज राजा बचन सुनायौ है॥ ३०९॥
फेरि कैसे आये? सुनि अति ही लजाये कही सदन पधारे सन्त भई यों अबार है।
आवन न पायों वाही सेवा अरुझायौ राजा दौरि सिर नायौ देखि महिमा अपार है॥
भीजि गयौ हियौ दास भव दृढ़ लियौ पियौ भक्तिरस शिष्य ह्वै के जान्यो सोई सार है।
अब लौं हूं प्रीति सुत नाती वही रीति चलैं होय जौं प्रतीति प्रभु पावै निरधार है॥ ३१०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसुखानन्दजी

सुखसागर की छाप राग गौरी रुचि न्यारी।
पद रचना गुरु मंत्र मनों आगम अनुहारी॥
निसि दिन प्रेम प्रबाह द्रवत भूधर ज्यों निर्झर।
हरि गुन कथा अगाध भाल राजत लीला भर॥
संत कंज पोषन बिमल अति पियूष सरसी सरस।
भक्ति दान भय हरन भुज सुखानंद पारस परस॥ ६४॥

श्रीसुखानन्दजीकी भुजा आश्रितजनोंको भक्तिका दान देनेवाली और संसारका भय हरनेवाली थी और इनका स्पर्श लौहवत् विमुख, दुष्टजनोंको स्वर्णवत् साधु सदाचारी बनानेके लिये पारसमणिके समान था। ये अपने पदोंमें 'सुखसागर' की छाप लगाते थे। राग गौरीमें इनकी विलक्षण रुचि थी। इनके द्वारा रचे गये पद मानो गुरुमन्त्रतुल्य होते थे तथा इनकी रचना शास्त्रसम्मत होती थी। इनके हृदयमें निरन्तर प्रेमका प्रवाह उमड़ता रहता था और इनकी आँखोंसे ऐसा अविरल अश्रुपात होता रहता था, जैसे पहाड़से झरना झर रहा हो। भगवान्‌के अनन्त गुण, कथा तथा लीलासे परिपूर्ण इनका उन्नत ललाट अत्यन्त सुशोभित लगता था। ये सन्तसमुदायरूपी कमलवनका पोषण करनेके लिये सूर्य तथा अत्यन्त निर्मल, सरस अमृतके सरोवरके समान थे॥ ६४॥

श्रीसुखानन्दजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीसुखानन्दजीका जन्म उज्जैनके समीप किरीटपुर नामक स्थानपर श्रीजानकीनवमीके दिन हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीत्रिपुरारिभट्ट और माताका नाम श्रीगोहावरीबाई था।

बचपनसे ही आपके जीवनमें अनेक चमत्कारी घटनाएँ घटीं। जब आप बालक थे और घुटनोंके बल चलते थे तो एक बार माँकी गोदसे उतरकर एक वृक्षके पीछे जाकर बैठ गये, थोड़ी देर बाद माता-पिताका जब उधर ध्यान गया तो देखा कि इनके सिरपर एक नाग फन फैलाये बैठा है। पिताके प्रार्थना करनेपर वह थोड़ी दूर जाकर अदृश्य हो गया। जब आप पढ़नेके लिये विद्यालय जाने लगे तो थोड़े ही समयमें आपने सम्पूर्ण श्रुति-शास्त्रोंका सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लिया और अपने विद्यागुरुसे कहा कि मुझे उस अक्षरका ज्ञान कराइये, जो अक्षरातीतकी प्राप्ति करानेवाला हो।

एक दिन एक ज्योतिषीने आपके विषयमें आपके माता-पितासे बताया कि ये एक अलौकिक विभूति हैं, परंतु ध्यान रखियेगा कि अठारह सालतक ये दर्पण अथवा जलमें अपना मुख न देख सकें; अन्यथा ये विरक्त हो जायँगे। ज्योतिषीकी चेतावनी सुनकर माता-पिता इस विषयमें विशेष सावधान रहते थे। संयोगसे एक दिन श्रीत्रिपुरारिजी क्षिप्रा नदीमें स्नान करने गये थे, इधर रंगराज दीक्षित नामक पण्डितका एक दूत आकर आपसे वार्षिक कर माँगने लगा। जब आपने पूछा कि यह किस बातका कर है, तो उसने बताया कि आपके पितामह पण्डित श्रीरंगराजजीसे शास्त्रार्थमें पराजित हो गये थे, तबसे वे उन्हें वार्षिक कर देते रहे, यह परम्परा अभी भी चल रही है। इसपर आपने कहा कि श्रीरंगराजजीसे कहियेगा कि मैं आजके चौथे दिन आपसे शास्त्रार्थ करने आऊँगा। निश्चित समयपर आप रंगराजजीके यहाँ शास्त्रार्थके लिये गये और उन्हें पराजित करके वार्षिक कर देनेवाले सभी पण्डितोंका संकट दूर किया। श्रीत्रिपुरारिजीने इस उपलक्ष्यमें बड़ा भारी उत्सव आयोजित किया। संयोगकी बात उसी दिन आपकी दृष्टि जब जलमें पड़ी तो उसमें अपने मुखका प्रतिबिम्ब दिखायी दे गया। फिर तो ये जगत्से उदासीन हो गये और रात्रिमें घर छोड़कर चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिये। पिताने बहुत आग्रह किया, समझाया-बुझाया, पर ये घर वापस नहीं आये। अन्तमें त्रिपुरारिजीने श्रीपंचोलीजी नामक एक परम विश्वासी व्यक्तिको इनके साथ कर दिया। एक रात स्वप्नमें आपको काशी जानेका दिव्यादेश प्राप्त हुआ। स्वप्नकी बात जब आपने श्रीपंचोलीजीसे बतायी तो उन्होंने श्रीरामानन्दजीकी चर्चा की। श्रीआचार्यचरणकी चर्चा सुनते ही आपका मन श्रीस्वामीजीके दर्शनके लिये आकुल-व्याकुल हो उठा और आप श्रीकाशीजीके लिये चल दिये। मार्गमें ही आपको श्रीरामभारती नामक एक संन्यासी मिले, इन्होंने आपको अधिकारी समझकर अष्टांग योगका ज्ञान दिया। अल्पकालमें ही आपने समस्त यौगिक क्रियाएँ सिद्ध कर लीं।

कुछ दिनों बाद आप श्रीरामभारतीजीके साथ स्वामी रामानन्दाचार्यजीके आश्रमपर गये। श्रीस्वामीजीने आपका विधिपूर्वक पंच-संस्कार करके श्रीराम-मन्त्रकी दीक्षा दी और 'सुखानन्द' नाम रख दिया। आप कुछ कालतक काशीमें ही रहकर श्रीआचार्यचरणकी सेवा करते रहे फिर उनके आदेशसे चित्रकूटमें रामशय्या नामक स्थानपर रहकर भजन-साधन करने लगे।

कहते हैं कि जब आपके भगवद्धाम जानेका समय हुआ तो स्वयं श्रीहनुमान्‌जी प्रकट हुए और आप उन्हींमें लीन हो गये।

श्रीसुरसुरानन्दजी

एक समै पथ चलत बाक्य छल बरा सुपाए।
देखादेखी सिष्य तिनहुँ पाछै ते खाए॥
तिन पर स्वामी खिजे बमन करि बिन बिस्वासी।
तिन तैसे परतच्छ भूमि पर कीनी रासी॥
सुरसुरी सुवर पुनि उदगले पुहुप रेनु तुलसी हरी।
महिमा महाप्रसाद की सुरसुरानंद साँची करी॥ ६५॥

श्रीसुरसुरानन्दजीने भगवान्‌के महाप्रसादकी शास्त्रोक्त महिमाको सत्य करके दिखा दिया। एक बार मार्गमें चलते समय एक दुष्टके वाक्छलसे दही-बड़ा पा लिया। आपकी देखा-देखी शिष्योंने भी बादमें खूब पेटभर पाया। तब उन लोगोंपर श्रीस्वामी सुरसुरानन्दजी नाराज होकर बोले कि तुमलोगोंने प्रसादमें बिना विश्वासके ही स्वादबुद्धिसे दही-बड़ा खाया, अतः वमन करो। उन लोगोंने वमन करके जैसा-का-तैसा पृथ्वीपर प्रत्यक्ष बड़ोंका ढेर लगा दिया। इसके बाद परमसाधु श्रीसुरसुरीजीके पतिने वमन किया तो उनके उदरसे हरी तुलसी, फूल और रेणु निकली। प्रसाद बुद्धिसे पानेसे उड़दका बड़ा *'पुहुप रेनु तुलसी हरी'* हो गया था॥ ६५॥

श्रीसुरसुरानन्दजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीसुरसुरानन्दजी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य थे। आपका बचपनका नाम भायण कुमार था। आपका जन्म वैशाख कृष्ण नवमी, गुरुवारको लखनऊके समीप परखम नामक ग्राममें हुआ था। आपके पिताका नाम पण्डित सुरेश्वरजी शर्मा और माताका नाम श्रीमती देवीजी था।

'श्रीरामानन्दाचार्यचरितामृत' में श्रीसुरसुरानन्दजीको देवर्षि नारदका अवतार कहा गया है। कहते हैं कि आपके सभी शुभ संस्कारोंके अवसरपर एक नारायण नामके ब्राह्मण आया करते थे, जो अपने-आपको इनका मामा बताया करते थे। वे उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये कहाँसे आते और कहाँ जाते थे—यह किसीको ज्ञात नहीं होता था। काशी-प्रस्थानके समय भी उन्होंने ही आपको श्रीरामानन्दाचार्यजीकी शरणमें जानेकी प्रेरणा दी थी।

काशी पहुँचकर आपने स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजसे दीक्षाहेतु निवेदन किया और साथ ही अपने नारायण नामधारी तथाकथित मामाके विषयमें भी जानकारी चाही। श्रीस्वामीजीने कहा कि धैर्य रखो, समय आनेपर स्वयं ही सब रहस्योद्घाटन हो जायगा।

दूसरे दिन सत्संगके समय श्रीरामानन्दाचार्यजीने शंखध्वनि की, उस दिव्य ध्वनिके श्रवणरन्ध्रोंमें प्रवेश करते ही आप मूर्च्छित हो गये। उसी अवस्थामें आपको अव्यक्त वाणी सुनायी दी कि नारदरूपमें मायाके वशीभूत होकर तुम विवाह करना चाहते थे, परंतु मैंने तुम्हें विवाह नहीं करने दिया, यद्यपि मेरे समझानेसे तुम्हारी विवाहकी इच्छा समाप्त हो गयी, पर संस्काररूपमें वह तुम्हारे मनमें बनी रही; अत: इस जन्ममें तुम्हारी यह इच्छा पूरी की जायगी।

अब आपको अपने स्वरूपका बोध हो चुका था, साथ ही नारायणकी कृपा एवं नारायण नामधारी अपने मामाके रहस्यका भी उद्घाटन हो चुका था। आपके गाँवमें ही सुरसरी नामकी मातृपितृहीना ब्राह्मण बालिका रहती थी। उसने मनसा अपने-आपको आपके ही चरणोंमें समर्पित कर रखा था। जब उसे आपके काशीगमनका समाचार मिला तो वह भी काशी आ गयी और उसने भी श्रीस्वामीजीके चरणोंमें प्रणिपात करके परमार्थकी भिक्षा माँगी। श्रीस्वामीजीने उसे 'सौभाग्यवती भव' का आशीर्वाद दिया। फिर आप दोनोंको दीक्षा दी तथा पूर्वस्वरूपका बोध कराया। तत्पश्चात् श्रीस्वामीजीने आप दोनोंको परिणय-सूत्रमें निबद्ध कराया और भजन करनेका आदेश दिया। आप दोनों श्रीआचार्यचरणकी आज्ञा और आशीर्वाद ले अपने गाँव चले आये और वैदिक विधिसे विवाहकर भगवदाराधन और भक्तिभावमें प्रवृत्त हो गये।

जीवनके अन्तिम कालमें आप श्रीअयोध्याजी चले आये और यहीं श्रीसरयूपुलिनपर श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका दर्शन करते हुए दिव्य धाम साकेतको प्रस्थान कर गये।

श्रीसुरसुरीजी

अति उदार दंपती त्यागि गृह बन को गवने।
अचरज भयो तहँ एक संत सुन जिन हो बिमने॥
बैठे हुते एकांत आय असुरनि दुख दीयो।
सुमिरे साराँगपानि रूप नरहरि को कीयो॥
सुरसुरानंद की घरनि को सत राख्यो नरसिंह जह्यो।
महासती सत ऊपमा (त्यों) सत्त सुरसुरी को रह्यो॥ ६६॥

महासतियों [जैसे श्रीअरुन्धतीजी, श्रीअनसूयाजी, श्रीलोपामुद्राजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीसीताजी, श्रीसावित्रीजी आदि]-के सतीत्वके सदृश ही श्रीसुरसुरीजीका पातिव्रत्य भी प्रभुकृपासे अक्षुण्ण रहा। अत्यन्त उदार दम्पती श्रीसुरसुरानन्दजी एवं श्रीसुरसुरीजी वैराग्यपूर्वक गृहत्याग करके भगवद्भजनके लिये वनको प्रस्थान किये। वहाँ वनमें एक दिन ये दोनों एकान्तमें बैठे हुए भगवान्का भजन कर रहे थे, उसी समय दुष्ट म्लेच्छोंने श्रीसुरसुरीजीका अपहरण करनेके लिये अनेक प्रकारका उपद्रव किया। उस समय दम्पतीने श्रीशार्ङ्गपाणि भगवान् श्रीरामजीका स्मरण किया। भक्तके स्मरण करते ही श्रीरामजीने श्रीनृसिंहरूप धारणकर असुरोंको मार डाला और श्रीसुरसुरानन्दजीकी पत्नी श्रीसुरसुरीजीका पातिव्रत्य बचा लिया॥ ६६॥

श्रीसुरसुरीजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीसुरसुरीजी स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजीकी शिष्या और श्रीसुखानन्दजीकी धर्मपत्नी थीं।

एक बारकी बात है। अपने पतिके साथ ये वनमें तप कर रही थीं कि एक म्लेच्छकी दृष्टि इनपर पड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी। वह इनके अनुपम सौन्दर्यको देखकर कामोन्मत्त हो उठा तथा रात-दिन इस अवसरकी ताकमें रहने लगा कि इनके पति कहीं चले जायँ।

एक दिन सुरसुरीके पति समिधा और पुष्प लेनेके लिये वनमें थोड़ी दूर निकल गये। म्लेच्छने अपने लिये सुअवसर देखा। वह दुष्ट प्रलाप करता हुआ सुरसुरीके पास चला आया। म्लेच्छको दूरसे ही देखकर सुरसुरी घबरा गयी। अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये वह दयानिधान भगवान्‌से मन-ही-मन कातर प्रार्थना करने लगी।

म्लेच्छ निर्भीक होकर सुरसुरीके पास चला आया; पर सुरसुरीको देखते ही वह उलटकर सिरपर पाँव रखकर जोरसे भागा, पीछे मुड़कर भी नहीं देखा उसने। सुरसुरीके स्थानपर उसकी आँखोंने बैठी हुई सिंहिनीको देखा था! उसे अपने ही प्राणोंके लाले पड़े थे।

ऐसी पतिव्रता और भगवद्भक्ता थीं सुरसुरीजी!

श्रीनरहरियानन्दजी

झर घर लकरी नाहिं सक्ति को सदन उदारैं।
सक्ति भक्त सों बोलि दिनहिं प्रति बरही डारैं॥
लगी परोसी हौंस भवानी भ्वै सो मारै।
बदले की बेगारि मूड़ वाके सिर डारै॥
भरत प्रसंग ज्यों कालिका लड़ू देखि तन में तई।
निपट नरहर्‌यानंदको करदाता दुरगा भई॥ ६७॥

एक बार वर्षाकी झड़ी लग जानेसे घरमें ईंधनके लिये सूखी लकड़ी न होनेसे श्रीठाकुरजीके लिये भोग बनने एवं सन्त-सेवामें बाधा देखकर श्रीनरहरियानन्दजीने समीपके श्रीदुर्गाजीके मन्दिरको ही उजाड़ना शुरू किया। तब श्रीदुर्गाजीने प्रकट होकर भक्तसे कहा कि मेरे मन्दिरको न उजाड़ें, मैं प्रतिदिन आपके यहाँ सूखी लकड़ीका एक बड़ा बोझ रख आया करूँगी। उसी दिनसे श्रीदुर्गाजी श्रीनरहरियानन्दजीके यहाँ लकड़ी पहुँचाने लगीं। यह देखकर आश्रमके पड़ोसमें रहनेवाले एक व्यक्तिको भी इच्छा हुई कि मैं भी इसी प्रकारसे दुर्गाजीसे लकड़ियाँ लूँ। वह भी श्रीनरहरियानन्दजीकी तरह भवानीजीका मन्दिर उजाड़ने लगा। तब भवानीने उसे पृथ्वीपर पटककर बहुत मार लगायी और अपने सिरकी बेगार [लकड़ी पहुँचाना] उसके सिरपर सौंपकर तब उसको छोड़ा। जैसे श्रीजड़भरतजी तथा श्रीलड्डूभक्तजीके प्रसंगमें भक्तकी भक्तिके तेजसे श्रीकालिकाजी तप्त हो गयी थीं, उसी प्रकार श्रीनरहरियानन्दजीके भक्तितेजसे तप्त होकर देवीने कर दिया॥ ६७॥

श्रीनरहरियानन्दजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

स्वामी श्रीनरहरियानन्दजी महाराज श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य और गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके गुरु थे। आपका जन्म वैशाख कृष्ण तृतीया संवत् १४९१ वि० को वृन्दावनके समीप एक ग्राममें हुआ था। आपकी माता अम्बिका देवी पतिपरायणा सद्गृहिणी और पिता श्रीमहेश्वरमिश्र भगवती विन्ध्यवासिनीके परम भक्त थे। भगवतीके ही कृपाप्रसादसे आपको श्रीनरहरियानन्द-जैसे पुत्रकी प्राप्ति हुई। बालक नरहरि जब तीन वर्षके हुए, तब इनकी माताकी मृत्यु हो गयी। श्रीमहेश्वरजीने बड़े धैर्यसे उनका अन्त्येष्टि संस्कार किया। यथासमय आपका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और भगवती विन्ध्यवासिनीके आदेशसे ही महेश्वरजीने बालक नरहरिको अन्य विद्यार्थियोंके साथ श्रीरामानन्दचार्यजीके पास काशी भेज दिया और स्वयं तप करने बदरिकाश्रम चले गये। काशी पहुँचकर नरहरिने पहले स्वामीजीके प्रधान शिष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअनन्तानन्दजीका दर्शन किया और दीक्षाके लिये प्रार्थना की। श्रीस्वामीजीके आदेशसे श्रीअनन्तानन्दजीने नरहरिको सविधि श्रीराम-मन्त्रका उपदेश दिया और उनका नरहर्यानन्द नाम रख दिया। भगवद्भजनमें आपकी रुचि देखकर पंचगंगाघाटपर श्रीगंगाजीके किनारे एकान्तमें एक कोठरी दे दी। श्रीगुरुदेवभगवान्‌से आपको कृपाप्रसादरूपमें एक शालग्राम शिला प्राप्त हुई थी, जिसे आप 'विजयराघव भगवान्' कहते थे और उसकी सेवा-पूजा करते थे।

श्रीनरहरियानन्दजीकी मुख्य साधना-स्थली चित्रकूट रही, वहाँ आप नित्य श्रीकामतानाथजीकी परिक्रमा करते थे। कहते हैं कि वहाँ आपको भगवान् श्रीसीतारामजी, अत्रि-अनुसूयाजी, श्रीदत्तात्रेयजी और श्रीकामतानाथजीके दिव्य दर्शन भी हुए थे। यहींपर भगवान् शिवने आपको श्रीरामचरितमानसका रहस्य-बोध कराया और बालक 'रामबोला' को इसका उपदेश देनेका आदेश दिया, जो आगे चलकर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके नामसे विश्वविख्यात हुए।

श्रीपद्मनाभजी

नाम महानिधि मंत्र नाम ही सेवा पूजा।
जप तप तीरथ नाम नाम बिन और न दूजा॥
नाम प्रीति नाम बैर नाम कहि नामी बोलैं।
नाम अजामिल साखि नाम बंधन ते खोलैं॥
नाम अधिक रघुनाथ तें राम निकट हनुमत कह्यो।
कबिर कृपा ते परम तत्व पद्मनाभ परचो लह्यो॥ ६८॥

श्रीकबीरदासजीकी कृपासे श्रीपद्मनाभजीने परमतत्त्व श्रीनाम महाराजके माहात्म्यको भली प्रकारसे जाना। श्रीभगवन्नाम ही आपका परम धन था, श्रीनामको ही आप महामन्त्र मानते थे। श्रीनामकी ही आप सेवा-पूजा करते थे और नाम-जपको ही भगवान्‌की सेवा-पूजा समझते थे तथा नाम-जपको ही समस्त जप, तप, तीर्थादि साधन समझते थे। श्रीनामके अतिरिक्त अन्य साधन-साध्य कुछ भी नहीं जानते थे। वे नामानुरागियोंसे प्रीति करते थे तथा नामसे विमुखजनों एवं विरोधियोंसे वैर करते थे। इनका विश्वास था कि भगवान्‌का नाम चाहे प्रेमपूर्वक लिया जाय चाहे वैरपूर्वक—दोनों प्रकारसे ही नाम लेनेपर श्रीनाम महाराज उसका कल्याण ही करते हैं। ये श्रीनामको ही नामी अर्थात् परब्रह्म परमात्मा कहते थे। इनका दृढ़ विश्वास था कि श्रीभगवन्नाम ही जीवको भव-बन्धनसे छुड़ानेवाला है। श्रीनाम महाराजके इस परत्वके साक्षी श्रीअजामिलजी हैं। श्रीरामनाम तो श्रीरामजीसे भी बड़ा है, यह बात श्रीहनुमान्‌जीने श्रीरामके सम्मुख ही कही है॥ ६८॥

श्रीपद्मनाभजीका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीपद्मनाभजी श्रीकबीरदासजीके शिष्य थे। गृहस्थाश्रममें आपको शास्त्रार्थ करने तथा दूसरे पण्डितोंको पराजित करनेका व्यसन था। आप जब कहीं शास्त्रार्थ करने जाते तो आपके साथ बैलगाड़ियोंमें भरकर आपकी पोथियाँ चलतीं और साथमें अनेक विद्वान् पण्डित चलते। इस प्रकार देशके कोने-कोनेसे पण्डितोंद्वारा विजय-पत्र लिखवाते हुए श्रीपद्मनाभजी काशी आये। यहाँ भी इन्होंने पण्डितोंको शास्त्रार्थके लिये ललकारा कि या तो यहाँके विद्वान् मुझसे शास्त्रार्थ करें या विजय-पत्र लिखकर दें। काशीके सब पण्डितोंने जाकर भगवान् विश्वनाथसे प्रार्थना की। श्रीशिवजीने परामर्श दिया कि दिग्विजयी पण्डितको कबीरदासजीके पास भेजो। तत्पश्चात् सभी पण्डित मिलकर श्रीपद्मनाभजीके पास गये और बोले कि यदि आप हम लोगोंके गुरु श्रीकबीरदासजीको शास्त्रार्थमें पराजित कर दें तो हम सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी हार मान लें। आपको यदि शास्त्रार्थ करना हो तो उनके पास चलें। श्रीपद्मनाभजी तैयार हो गये। पण्डितोंने सारी बात श्रीकबीरदासजीसे बतायी। कबीरदासजीने कहा कि जब शिवजीकी आज्ञा है, तो वे ही मुझे सँभालेंगे और वे ही मेरे मुखसे बोलेंगे।

समयपर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। दिग्विजयी पण्डित पद्मनाभने कबीरदासजीसे ही प्रश्न करनेका आग्रह किया। कबीरदासजीने कहा—पण्डितजी! मैंने तो ***'मसि कागद छूयो नहीं कलम गही नहिं हाथ'***, फिर भला मैं क्या जानूँ शास्त्र और क्या करूँ शास्त्रार्थ! फिर भी आप कह रहे हैं तो जिज्ञासावश पूछ रहा हूँ—

समुझि पढ़े कि पढ़ि समुझि, अहो कहो कविराय।

श्रीकबीरदासजी सिद्ध सन्त थे, उनकी वाणी प्रासादिक थी, उसके कानमें पड़ते ही दिग्विजयी पण्डितके अन्तश्चक्षु खुल गये। उन्होंने बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा—महाराज! मैंने न तो समझकर पढ़ा, न पढ़कर ही समझा, अब आपकी कृपासे समझा कि हमारा सब पढ़ना-लिखना व्यर्थ रहा। उन्होंने उसी क्षण निश्चय किया कि अब मैं कभी शास्त्रार्थ नहीं करूँगा। साथ आये पण्डितोंको बैलगाड़ीपर लदी पुस्तकोंके साथ उन्होंने वापस कर दिया और स्वयं कबीरदासजीकी शरण ली। कबीरदासजीने उन्हें श्रीराम-मन्त्रकी दीक्षा दे दी।

श्रीपद्मनाभजीका अब तो जीवन ही बदल गया था, निरन्तर नाम-जप करते और भगवान्‌की मानसी सेवा करते।

एक बारकी बात है, काशीपुरीमें निवास करनेवाले एक सेठको असाध्य गलित कुष्ठ हो गया था। ऐसी स्थितिमें वह श्रीगंगाजीमें डूबकर मर जानेका संकल्प करके डूबनेको चला। उस समय उसके साथ लोगोंकी बहुत बड़ी भीड़ गंगातटपर एकत्रित हो गयी थी। संयोगवश श्रीपद्मनाभजी उधरसे ही जा निकले। भीड़ देखकर समीप जाकर पूछा। लोगोंने बताया। तब इन्होंने कहा कि उसे पकड़ो, डूबने मत दो और उसके शरीरसे बन्धन खोल दो तथा उससे कहो कि वह श्रीगंगाजलमें स्नान करे। स्नान करते समय तीन बार श्रीरामनाम कहनेमात्रसे ही उसका शरीर नवीन हो जायगा। उसने वैसा ही किया तो सचमुच उसका शरीर नवीन हो गया। फिर तो उसने जीवनपर्यन्त बुद्धिको स्थिर करके भगवान्‌की भक्ति की। ऐसे सिद्ध सन्त और नामविश्वासी थे श्रीपद्मनाभजी!

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—

काशीबासी साहु भयो कोढ़ी सो निबाह कैसे परि गये कृमि चल्यौ बूड़िबेको भीर है।
निकसे पदम आय पूछी ढिग जाय, कही गही देह खोलौ गुन न्हाय गंगा नीर है॥
रामनाम कहै बेर तीन मैं नवीन होत भयौई नवीन कियौ भक्ति मति धीर है।
गयौ गुरु पास तुम महिमा न जानी अहो नाम भास काम करै कही यौं कबीर है॥ ३११॥

श्रीतत्त्वाजी, श्रीजीवाजी

भक्ति सुधा जल समुद भए बेलावलि गाढ़ी।
पूरबजा ज्यों रीति प्रीति उतरोतर बाढ़ी॥
रघुकुल सदृस सुभाव सिष्ट गुन सदा धर्म रत।
सूर धीर ऊदार दयापर दच्छ अननि ब्रत॥
पदमखंड पदमा पधति प्रफुलित कर सबिता उदित।
तत्वाजीवा दच्छिन देस बंसोद्धर राजत बिदित॥ ६९॥

परम भक्त श्रीतत्त्वाजी एवं श्रीजीवाजी दक्षिण देशके निवासी थे। ये अपने वंशका उद्धार करनेवाले तथा जगत्-प्रसिद्ध सन्त हुए। इनका सुयश आज भी सन्त-समाजमें सुशोभित है। ये दोनों भक्तिरूपी अमृतमय जलके समुद्रके दो दृढ़ किनारे थे। पूर्वाचार्योंकी भाँति श्रीसन्त-भगवन्तके प्रति इनकी प्रीति-रीति भी दोपहरके बाद पूर्व दिशाकी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानेवाली छायाकी तरह उत्तरोत्तर बढ़नेवाली थी। इनका स्वभाव रघुवंशियोंके समान था। ये सज्जनोंके गुणोंको धारण करते थे। सदैव धर्ममें लगे रहनेवाले तथा बड़े ही शूर, धीर, उदार, दयालु, प्रवीण तथा इष्टमें अनन्य निष्ठा रखनेवाले थे। ये श्रीसम्प्रदायरूपी कमलवनको प्रफुल्लित करनेके लिये वैष्णव जगत्में सूर्यरूप उदित हुए॥ ६९॥

श्रीतत्त्वाजी और श्रीजीवाजीका विशेष परिचय इस प्रकार है—

श्रीतत्त्वाजी और श्रीजीवाजी दोनों भाई-भाई थे, जातिके ब्राह्मण थे। इन दोनोंने साधु-सेवाका प्रण लिया था। परंतु मनमें एक बात सोच रखे थे कि जिस सन्तके चरणामृतसे सिंचन करनेसे सूखा वृक्ष हरा-भरा हो जायगा, उसीसे मन्त्रदीक्षा लेंगे। संयोगसे एक बार इनके यहाँ श्रीकबीरदासजी आये। इन लोगोंकी आशा पूर्ण हो गयी। दोनोंने श्रीकबीरदासजीके चरणोंमें पड़कर प्रणाम किया और दीक्षाके लिये प्रार्थना की। श्रीकबीरदासजीने बड़ी कठिनाईसे इन्हें भगवन्नामका उपदेश दिया, साथ ही अपने निवासस्थान काशीका पता बताया और कहा कि यदि कोई आवश्यक काम पड़े तो आकर हमें सूचित करना।

श्रीतत्त्वाजी-जीवाजीके श्रीकबीरदासजीसे दीक्षा लेनेके अनन्तर गाँवके ब्राह्मणोंने यही समझा कि इनकी तो जाति ही नष्ट हो गयी। फिर तो सबने सलाह करके इनको अपने खान-पानकी पंक्तिसे बहिष्कृत कर दिया और इनकी कन्याका अपने पुत्रसे विवाह करनेको तैयार कोई नहीं हुआ। तब इन्होंने सब बात कबीरदासजीसे कही। श्रीकबीरदासजीने सोच-विचारकर कहा कि तुम दोनों भाई आपसमें ही सगाईकी चर्चा कर लो। फिर तो घर आकर उन्होंने वैसा ही विचार व्यक्त किया। यह देख-सुनकर जाति-विरादरीवालोंमें खलबली मच गयी।

श्रीतत्त्वा-जीवाजीने कहा कि हम तो ऐसा ही करेंगे। इन लोगोंको अपने निश्चयमें दृढ़ देखकर जाति-बिरादरीके सभी लोग कहने लगे कि आपलोग अपना हठ छोड़ दीजिये। हम आपको अपनी पंक्तिमें लेने तथा पुत्र और पुत्रियोंका अपने कुल-गोत्रमें विवाह करने-करानेका वचन देते हैं। तब एक भाई पुनः श्रीकबीरदासजीसे पूछनेको काशी गया। श्रीकबीरदासजीने कहा कि यदि वे लोग झुक रहे हैं तो उन्हें भक्तिपथमें दृढ़ कीजिये फिर वे जैसे कहें, वैसा ही विवाह कीजिये। श्रीगुरुदेवके आज्ञानुसार सभी कुल-कुटुम्बियोंको भक्तिमें आरूढ़ करके इन्होंने अपनी कन्याएँ उन्हें दीं और उनकी कन्याओंसे अपने पुत्रोंका विवाह किया। उन लोगोंने भी प्रसन्न होकर इन्हें अपनी पंक्तिमें मिला लिया। ऐसी थी श्रीतत्त्वा-जीवाजीकी दृढ़ गुरुनिष्ठा एवं सन्तोंके प्रति सद्भाव!

श्रीप्रियादासजी श्रीजीवाजी और श्रीतत्त्वाजीकी इस गुरुनिष्ठाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

**तत्वा जीवा भाई उभै विप्र साधु सेवा पन मन धरी बात ताते शिष्य नहीं भए हैं।
गाड्यो एक ठूंठ द्वार होय अहो हरी डार संत चरणामृत को लैकै डारि दए हैं॥
जब ही हरित देखैं ताको गुरु करि लेखैं आये श्रीकबीर पूजी आस पांव लए हैं।
नीठ नीठ नाम दियौ दियौ परिचाय धाम काम कोऊ होय जोपै आवौ कहि गए हैं॥ ३१२॥
काना कानी भई द्विज जानी जाति गई पाँति न्यारी करि दई कोऊ बेटी नहीं लेत है।
चल्यो एक काशी जहाँ बसत कबीर धीर जाय कही पीर जब पूछ्यो कौन हेत है॥
दोऊ तुम भाई करौ आपु में सगाई होय भक्ति सरसाई न घटाई चित चेत है।
आय वहै करी परी ज्ञाति खरभरी कहैं कहा उर धरी कछू मति हूँ अचेत है॥ ३१३॥
करैं यही बात हमैं और न सुहात आये सबै हा हा खात यह छांड़ि हठ दीजियै।
पूछिबेकों फेरि गये करौ ब्याह जौ पै नये दण्डकरि नाना भाँति भक्ति दृढ़ कीजियै॥
तब दई सुता लई पांतिमें प्रसन्न ह्वै कै पांति हरि भक्तनिसों सदा मति भीजियै।
विमुख समूह देखि संमुख बड़ाई करैं धरैं हिय मांझ कहैं पन पर रीझियै॥ ३१४॥**

Kalyan Bhaktmal Ank_Section_10_1_Front CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमाधवदासजी

पहिले बेद बिभाग कथित पूरान अष्टदस।
भारत आदि भागवत मथित उद्धार्‌यो हरि जस॥
अब सोधे सब ग्रंथ अर्थ भाषा बिस्तार्‌यो।
लीला जै जै जैति गाय भव पार उतार्‌यो॥
जगनाथ इष्ट बैराग्य सिंव करुना रस भीज्यो हियो।
बिनै ब्यास मनो प्रगट ह्वै जग को हित माधो कियो॥ ७०॥

विनयकी मूर्ति भगवान् वेदव्यासजीने ही मानो श्रीमाधवदासजीके रूपमें प्रकट होकर जगत्‌का कल्याण किया। श्रीवेदव्यासजीने पहले [द्वापरमें] वेदका विभाजन किया तथा अठारह पुराणोंका गान किया। फिर महाभारतकी रचना की। चारों वेद, सत्रह पुराण एवं महाभारतका मन्थन करके नवनीतरूपमें श्रीहरिसुयश-प्रधान श्रीमद्भागवत नामक अठारहवें पुराणकी रचना की। अब श्रीमाधवदासजीके रूपमें प्रकट होकर पुनः आपने सब ग्रन्थोंके तात्पर्यको खोज-खोजकर उनका अर्थ बोलचालकी भाषामें विस्तारसे वर्णन किया। 'जै-जै' शब्दसंयुक्त भगवान्‌की लीलाका गानकर जगत्‌में प्रचुर-प्रचार करके असंख्य जीवोंको संसार-सागरसे पार किया। इनके इष्ट श्रीजगन्नाथ भगवान् थे, ये वैराग्यकी सीमा थे, इनका हृदय करुणारससे सदा सराबोर रहता था॥ ७०॥

श्रीमाधवदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीमाधवदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। गृहस्थ-आश्रममें आपने अच्छी धन-सम्पत्ति कमायी। आप बड़े ही विद्वान् तथा धार्मिक भक्त थे। जब आपकी धर्मपत्नी स्वर्गलोकको सिधारीं, तब आपके हृदयमें संसारसे सहसा वैराग्य हो गया और आपने घर छोड़ जगन्नाथपुरीका रास्ता पकड़ा। वहाँ पहुँचकर आप समुद्रके किनारे एकान्त स्थानमें पड़े रहे और अपनेको भगवद्ध्यानमें तल्लीन कर दिया। आप ऐसे ध्यानमग्न हुए कि आपको अन्न-जलकी भी सुध न रही। इस प्रकार जब बिना अन्न-जल आपको कई दिन बीत गये, तब दयालु जगन्नाथजीने लक्ष्मीजीको आज्ञा दी कि आप स्वयं उत्तम-से-उत्तम भोग सुवर्ण-थालमें रखकर मेरे भक्त माधवके पास पहुँचा दें। लक्ष्मीजी प्रभुकी आज्ञा पाकर सुवर्ण-थाल सजाकर माधवदासजीके पास गयीं और थाल रखकर चली आयीं। जब माधवदासजीका ध्यान समाप्त हुआ, तब वे सुवर्णका थाल देखकर भगवत्कृपाका अनुभव करते हुए आनन्दाश्रु बहाने लगे। भोग लगाया, प्रसाद पा थालको एक ओर रख दिया; फिर ध्यानमग्न हो गये।

उधर जब भगवान्‌के पट खुले, तब पुजारियोंने सोनेका एक थाल न देख बड़ा शोर-गुल मचाया। पुरीभरमें तलाशी होने लगी। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थाल माधवदासजीके पास पड़ा पाया गया। बस, फिर क्या था, माधवदासजीको चोर समझकर उनपर चाबुक पड़ने लगे। रात्रिमें पुजारियोंको भगवान्‌ने स्वप्नमें कहा—'मैंने माधवकी चोट अपने ऊपर ले ली, अब तुम्हारा अनिष्ट कर दूँगा; नहीं तो चरणोंपर पड़कर अपने अपराध क्षमा करवा लो।' बेचारे पण्डा दौड़ते हुए माधवदासजीके पास पहुँचे और उनके चरणोंपर जा गिरे। माधवदासजीने तुरंत क्षमा प्रदानकर उन्हें निर्भय किया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

माधौदास द्विज निज तिया तन त्याग कियौ लियौ इन जानि जग ऐसोई व्यौहार है।
सुत की बढ़नि जोग लिये चित चाहत हो भई यह औरं लै दिखाई करतार है॥
ताते तजि दियौ गेह वेई सब पालै देह करै अभिमान सोई जानिये गँवार है।
आए नीलगिरिधाम रहे गिरि सिन्धुतीर अति मतिधीर भूख प्यास न बिचार है॥ ३१५॥

Kalyan Bhaktmal Ank_Section_10_1_Back
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भए दिन तीन ए तो भूख के अधीन नाहिं रहैं हरिलीन प्रभु शोच पर्‌यौ भारियै।
दियो सैन भोग आप लक्ष्मीजू लै पधारीं हाटक की थारी झन झन पाँव धारियै॥
बैठे हैं कुटी में पीठ दिये हिये रूप रँगे बीजुरी सी कौंधि गई नीके न निहारियै।
देखि सो प्रसाद बड़ौ मन अहलाद भयौ लयौ भाग मानि पात्र धर्‌योई विचारियै॥ ३१६॥
खोलैं जो किवार थार देखियै न सोच पर्‌यौ कर्‌यौ लै जतन ढूंढ़ि वाही ठौर पायौ है।
ल्याये बाँधि मारी बेंत धारी जगन्नाथ देव भेव जब जान्यौ पीठ चिह्न दरसायौ है॥
कही पुनि आप मैं ही दियौ जब लियौ याने माने अपराध पाँव गहि कै छिमायौ है।
भई यों प्रसिद्ध बात कीरति न मात कहूँ सुनि कै लजात साधु सील यह गायौ है॥ ३१७॥

अब माधवदासजीके प्रेमकी दशा ऐसी हो गयी कि जब कभी आप भगवद्दर्शनके लिये मन्दिरमें जाते, तब प्रभुकी मूर्तिको ही एकटक देखते रह जाते। दर्शन समाप्त होनेपर आप तल्लीन-अवस्थामें वहीं खड़े-खड़े पुजारियोंके देखते-देखते अदृश्य हो जाते। एक बार आप रात्रिमें मन्दिरमें ही रुके रहे। वहाँ जब रात्रिमें आपको जाड़ा लगने लगा तो स्वयं जगन्नाथजीने अपनी रजाई आपको ओढ़ा दी।

एक बार माधवदासजीको अतिसारका रोग हो गया। आप समुद्रके किनारे दूर जा पड़े। वहाँ इतने दुर्बल हो गये कि उठ-बैठ नहीं सकते थे। ऐसी दशामें जगन्नाथजी स्वयं सेवक बनकर आपकी शुश्रूषा करने लगे। जब माधवदासजीको कुछ होश आया, तब उन्होंने तुरंत पहचान लिया कि हो-न-हो ये प्रभु ही हैं। यह समझ झट उनके चरण पकड़ लिये और विनीत भावसे कहने लगे—'नाथ! मुझ-जैसे अधमके लिये क्यों आपने इतना कष्ट उठाया? फिर प्रभो! आप तो सर्वशक्तिमान् हैं। अपनी शक्तिसे ही मेरे दुःख क्यों न हर लिये, वृथा इतना परिश्रम क्यों किया?' भगवान् कहने लगे—'माधव! मुझसे भक्तोंका कष्ट नहीं सहा जाता, इसी कारण तुम्हारी सेवा मैंने स्वयं की। तुम जानते हो कि प्रारब्ध भोगनेसे ही नष्ट होता है—यह मेरा ही नियम है, इसे मैं क्यों तोड़ूँ? इसलिये केवल सेवा करके प्रारब्ध-भोग भक्तोंसे करवाता हूँ और इसकी सत्यता संसारको दिखलाता हूँ।' भगवान् यह कहकर अन्तर्धान हो गये।

श्रीमाधवदासजीके प्रति भगवान् जगन्नाथ स्वामीकी इन वात्सल्यभरी घटनाओंका श्रीप्रियादासजी महाराजने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

देखत सरूप सुधि तन की बिसरि जात रहि जात मन्दिर में जानै नहीं कोई है।
लग्यो सीत गात सुनो बात प्रभु काँपि उठे दई सकलात आनि प्रीति हिये भोई है॥
लागे जब बेग-बेग जाय परे सिन्धु तीर चाहैं जब नीर लिये ठाढ़े देह धोई है।
करिकै विचारि औ निहारि कही 'जानौं मैं तो देत हौ अपार दुख ईशता लै खोई है'॥ ३१८॥
कहा करौं अहो! मोपै रहो नहीं जात नेकु 'मेटौ विथा गात' मोकौं विथा वह भारी है।
रहै भोग शेष और तन में प्रवेश करै ताते नहीं दूर करौं ईशता लैं टारी है॥
वहू बात साँच याकी गांस एक और सुनौ साधु को न हँसै कोऊ यह मैं विचारी है।
देखत ही देखत में पीड़ा सो बिलाय गई नई नई कथा कहि भक्ति विसतारी है॥ ३१९॥

श्रीमाधवदासजी भिक्षा माँगकर भोजन करते थे, एक दिन भिक्षाटन करते हुए ये एक गृहस्थके घरपर गये और भिक्षाके लिये आवाज लगायी तो घरकी मालकिनने खीझकर चूल्हा पोतनेका कपड़ा इनकी ओर फेंक दिया। इन्होंने उस कपड़ेको धोकर साफ किया, उसकी बत्तियाँ बनायीं और घीमें डुबोकर भगवान्‌के समक्ष दीपक जलाया। इससे उस महिलाका अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया।

Kalyan Bhaktmal Ank_Section_10 2 Front
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कीरति अभंग देखि भिक्षाकौ अरम्भ कियौ दियौ काहू बाई पोता खीझत चलायकै।
देबौ गुण लियौ नीके जल सों प्रछाल करि करी दिव्य बाती दई दिये में बरायकै॥
मन्दिर उँजारौ भयौ हियेको अन्ध्यारौ गयौ गये फेरि देखन कौं परी पाँय आयकै।
ऐसे हैं दयाल दुःख देत मैं निहाल करैं करैं लै जे सेवा ताकौ सकै कौन गायकै॥ ३२०॥

एक बार एक पण्डितजी शास्त्रार्थद्वारा दिग्विजय करते हुए जगन्नाथपुरी आये और माधवदासजीसे शास्त्रार्थ करनेका हठ करने लगे। भक्तोंको शास्त्रार्थ निरर्थक प्रतीत होता है। अतः माधवदासजीने एक पत्रपर यह लिखकर हस्ताक्षर कर दिया, 'माधव हारा, पण्डितजी जीते।' पण्डितजी इस विजयपर फूले न समाये। तुरंत काशीको चल दिये। वहाँ पण्डितोंकी सभा करके वे अपनी विजयका प्रमाणपत्र लोगोंको दिखाने लगे। पण्डितोंने देखा तो उसपर यह लिखा पाया, 'पण्डितजी हारे, माधव जीता।' अब तो पण्डितजी क्रोधके मारे आगबबूला हो गये। उल्टे पैर जगन्नाथपुरी पहुँचे और माधवदासजीसे कहा कि 'शास्त्रार्थमें जो हारे, वही काला मुँह करके गदहेपर चढ़ नगरभरमें घूमे।' भगवान् माधवदासजीका रूप बना पण्डितजीसे शास्त्रार्थ करने पहुँचे और भरी सभामें उन्हें खूब छकाया। अन्तमें उनकी शर्तके अनुसार उनका मुँह काला करके गदहेपर चढ़ा, सौ-दो-सौ बालकोंको ले धूल उड़ाते नगरमें सैर की। माधवदासजीने जब यह हाल सुना तो पण्डितजीको गदहेसे उतारकर क्षमा माँगी, उनका रोष दूर किया। धन्य है भक्तोंकी सहिष्णुता और दयालुता!

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

पण्डित प्रबल दिग बिजै करि आयौ आय वचन सुनायौ जू! विचार मोसों कीजियै।
दई लिखि हारि काशी जायकै निहारि पत्र भयो अति ख्वार लिखी जीति वाकी खीजियै॥
फेरि मिलि माधै जू कौं वैसे ही हरायौ एक खर कौ मँगायौ कही चढ़ौ तब धीजियै।
बोल्यौ जूती बाँधौ कान गयौ सुनि न्हान आन जगन्नाथ जीते लै चढ़ायौ वाको रीझियै॥ ३२१॥

एक बार माधवदासजी व्रजयात्राको जा रहे थे। मार्गमें एक बाई आपको भोजन कराने लगी। इधर श्यामसुन्दर भगवान् भी आपके बगलमें बैठ भोजन करने लगे। बाई भगवान्‌का सुकुमार रूप देखकर रोने लगी और माधवजीसे पूछा, 'भगवन्! किस कठोरहृदया माताने ऐसे सुन्दर बालकको आपके साथ कर दिया?' माधवदासजीने गर्दन फिराकर देखा तो श्यामसुन्दरजी भोजन कर रहे हैं। बस, आप सुध-बुध भूल गये और बाईजीकी प्रशंसा करके उनकी परिक्रमा करने लगे। उसके भक्तिभाव और सौभाग्यकी सराहना करके वहाँसे विदा हुए।

श्रीप्रियादासजीने भगवान् श्यामसुन्दरकी इस कौतुकी लीलाका एक पदमें इस प्रकार वर्णन किया है—

ब्रज ही की लीला सब गावैं नीलाचल माँझ मन भई चाह जाइ नैननि निहारियै।
चले वृन्दावन मग लग एक गांव जहाँ बाई भक्त भोजन को ल्याई चाव भारियै॥
बैठे ये प्रसाद लेत, लेत दृग भरि अहौ! कहौ कहा बात दुख हिये को उघारियै।
साँवरो कुवर यह कौनको भुराय ल्याये? माय कैसे जीवै? सुनि मति लै बिसारियै॥ ३२२॥

श्रीमाधवदासजी वहाँसे आगे चले और एक दूसरे गाँवमें पहुँचे; जहाँपर एक वैश्य भक्त रहता था। परंतु संयोगकी बात, वह भक्त किसी औरके घर गया था। घरमें उसकी परम भागवती पत्नी थी। उसने आकर श्रीमाधवदासजीके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रसाद पानेका अनुरोध किया। उस दिन उसके यहाँ एक महन्तजी आये हुए थे, उनका आसन मकानकी ऊपरी मंजिलपर था। भक्त पत्नीने ऊपर महन्तजीसे जाकर कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि एक सन्त और आ गये हैं। महन्तजीने कहा कि यहाँ तो किसीकी गुंजाइश नहीं है, तब तो वह घबड़ायी हुई नीचे आयी और श्रीमाधवदासजीसे बोली कि मैं सीधा-सामान दिये देती हूँ, आप कृपा करके रसोई बना लीजिये। इन्होंने कहा कि यदि तुम्हें कुछ खिलानेका ही आग्रह है तो जो भी बना-बनाया सामान हो, वही लाओ। तब उस भक्ताने इन्हें खूब अच्छी तरहसे औटाया हुआ दूध पिलाया। इस प्रकार उसकी अभिलाषा पूर्ण हुई। चलते समय इन्होंने कहा कि भक्तजी आयें तो कह देना कि 'जगन्नाथी माधवदासजी' आये थे।

भक्तपत्नीको अपना परिचय देकर श्रीमाधवदासजी वहाँसे उठकर चल दिये। इनके जानेके थोड़ी ही देर बाद वह महाजन भक्त घरपर आया, तब उसकी पत्नीने श्रीमाधवदासजीका नाम सुनाया। यह सुन्दर एवं शुभ समाचार सुनते ही महाजन भक्त दौड़ पड़े। उनके साथ ही वे महन्तजी भी दौड़े। दोनों ही जाकर श्रीमाधवदासजीके चरणोंमें लिपट गये। श्रीमाधवदासजी भी उनसे बड़े सुखपूर्वक मिले। श्रीमाधवदासजीने भक्त-दम्पतीकी सन्तनिष्ठाकी बड़ी बड़ाई की। महन्तजीने अत्यन्त दीन होकर कहा कि मैंने आपका अनन्त अपराध किया है, वह कैसे दूर होगा? श्रीमाधवदासजीने कहा कि जबतक जीओ, तबतक सन्तोंकी सीथ—प्रसादी सेवन करो। अपराध छूटनेका यही अमोघ उपाय समझो। घर चलनेका आग्रह करनेपर श्रीमाधवदासजीने महाजन भक्तसे कहा कि लौटते समय पुनः मिलूँगा और श्रीवृन्दावन चले आये।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

चले और गांव जहाँ महाजन भक्त रहै गहे मन मांझ आगे विनती हू करी है।
गये वाके घर वह गयौ काहू और घर भाय भरी तिया आनि पांयन में परी है॥
ऊपर महंत कही 'अजू एक संत आये' 'इहां तौ समाई नाहिं' आई अरबरी है।
कीजिये रसोई 'जोई सिद्ध सोई ल्यावो' दूध नीके कैं पिवायो नाम माधौ आस भरी है॥ ३२३॥
गये उठि पाछे भक्त आयौ सो सुनायौ नाम सुनि अभिराम दौरे संग ही महन्त है।
लिये जाय पांय लपटाय सुख पाय मिले झिले घर माँझ तिया धन्य तोसों कन्त है॥
सन्त पति बोले मैं अनन्त अपराध किये जिये अब कही सेवो सीत मानि जन्त है।
आवत मिलाप होय यही राखौ बात गोय आये वृन्दावन जहाँ सदाई बसन्त है॥ ३२४॥

श्रीमाधवदासजी श्रीवृन्दावनकी शोभा देख-देखकर मनमें परमानन्दमें डूब गये। पुनः जब आप श्रीबाँकेबिहारीजीके दर्शनार्थ गये तो वहाँ आपको चने मिले। इन्होंने चनोंको ही ले जाकर श्रीयमुनाजीके पुलिनपर श्रीठाकुरजीको भोग लगाया और स्वयं भी चना-प्रसाद पाया। इधर जब स्वामी श्रीहरिदासजी श्रीबाँकेबिहारीजीके भोग आरोगनेकी भावना करने लगे तो ध्यानमें देखा कि श्रीठाकुरजी भोग नहीं आरोग रहे हैं। तब श्रीस्वामीजीने पूछा कि 'जै, जै' आज आप भोग क्यों नहीं आरोग रहे हैं। तब श्रीबिहारीजीने कहा कि आज मुझे पानेकी रुचि नहीं है, श्रीमाधवदासजीने चने खिला दिये हैं। श्रीस्वामीजीने पूछा—वे कहाँ हैं? तब श्रीबिहारीजीने उन्हें बताया कि वे इस समय श्रीयमुनाजीके किनारे हैं। तब श्रीस्वामीजीकी आज्ञासे शिष्य-सेवकगण श्रीमाधवदासजीको खोज लाये। पूछनेपर श्रीमाधवदासजीने कहा कि आपके ठाकुर ग्वारिया होंगे तो पचा लेंगे और यदि महली ठाकुर होंगे तो नहीं पचा पायेंगे।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजी महाराजने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

देखि देखि वृन्दावन मन में मगन भए गए श्रीबिहारीजू के चना तहां पाये हैं।
कहि रह्यो द्वारपाल नेकु में प्रसाद लाल यमुना रसाल तट भोग सो लगाये हैं॥
नाना विधि पाक धरैं स्वामी आप ध्यान करैं बोले हरि भावैं नाहिं वेई लै खवाये हैं।
पूछ्यो सो जनायौ ढूंढ़ि ल्यायौ आगे गायौ सब तुम तौ उदास हास रस समझाये हैं॥ ३२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमाधवदासजी व्रजके तीर्थोंका दर्शन करने गये। भाण्डीरवट नामक तीर्थमें पहुँचे। वहाँ 'खेमदास' नामके एक वैरागी रहते थे। वे रात्रिमें श्रीमाधवदासजीसे छिपाकर खीर खाने लगे तो इन्होंने उन्हें शिक्षा देनेके लिये चमत्कारपूर्वक खीरमें कीड़े दिखाये फिर उपदेश भी दिया। भगवान्‌की लीला-कथा सुननेके लिये हरियानेके एक गाँवमें जाकर कुछ दिन रहे। वहाँ एक सन्तके आश्रममें गोबर पाथनेकी सेवा करते थे। (परिचय हो जानेपर) पुनः ये श्रीजगन्नाथपुरीको लौट चले। मार्गमें इनकी जन्मभूमिका गाँव पड़ा। लोगोंके मुखसे अपनी माता एवं पुत्रका कुशल समाचार सुनकर घर आये। फिर माताकी उपदेशपरक वाणी (मेरा मधुवा भगवान्‌को छोड़कर घर नहीं आ सकता है) सुनकर वहाँसे तत्काल भूखे ही चल दिये। मार्गमें भगवान्‌ने एक महाजन भक्तको स्वप्न देकर (प्रसाद पवानेके लिये) श्रीमाधवदासजीसे मिलाया। आपने उसके यहाँ भोजन किया और फिर जगन्नाथपुरीको चल दिये। इस प्रकार माधवदासजीके अनेक चरित्र हैं।

श्रीमाधवदासजीसे सम्बन्धित इन घटनाओंका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

गये ब्रज देखिबे को भाण्डीर में खेम रहै निसिकौ दुराय खाय क्रिमि लै दिखाये हैं।
लीला सुनिबे को हरियाने गांव रहे जाय गोबरहू पाथि पुनि नीलाचल आये हैं॥
घरहूँ को आये सुत सुखी सुनि माता बानी मारग में स्वप्न दैके बनिक मिलाये हैं।
याही विधि नाना भांति चरित अपार जानौ जिते कछु जाने तिते गानके सुनाये हैं॥ ३२६॥

श्रीरघुनाथदास गोस्वामीजी

सीत लगत सकलात बिदित पुरुषोत्तम दीनी।
सौच गए हरि संग कृत्य सेवक की कीनी॥
जगन्नाथ पद प्रीति निरंतर करत खवासी।
भगवत धर्म प्रधान प्रसन नीलाचल बासी॥
उत्कल देस उड़िसा नगर बैनतेय सब कोउ कहैं।
(श्री) रघुनाथ गोसाईं गरुड़ ज्यों सिंह पौरि ठाढ़े रहैं॥ ७१॥

श्रीरघुनाथदास गोस्वामीजी श्रीगरुड़जीकी तरह श्रीजगन्नाथभगवान्‌के सम्मुख सिंहपौरिपर खड़े रहते थे। यह बात सर्वप्रसिद्ध है कि इन्हें ठण्डक लगनेपर श्रीजगन्नाथभगवान्‌ने अपनी रजाई ओढ़ायी थी। अतिसारके कारण बारम्बार दस्तका वेग लगनेपर स्वयं भगवान्‌ने सेवकका-सा कृत्य किया अर्थात् अपने श्रीकरकमलसे इनके शरीर एवं वस्त्रादिको धोया, सेवा-शुश्रूषा की। इनका श्रीजगन्नाथभगवान्‌के श्रीचरणकमलोंमें परम अनुराग था। ये निरन्तर भगवान्‌की सेवामें लगे रहते थे। ये वैष्णवधर्मको सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते थे अथवा भगवद्धर्म करने-करानेवालोंमें प्रधान थे। सर्वदा सुप्रसन्न मन रहते थे। श्रीनीलाचलधाममें निवास करते थे। उत्कल प्रान्तमें उड़ीसा नगरके रहनेवाले सब लोग इन्हें 'श्रीगरुड़जी' कहा करते थे॥ ७१॥

श्रीरघुनाथ गोस्वामीजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

बंगालमें तीसबीघाके पास पहले एक सप्तग्राम नामक महासमृद्धिशाली प्रसिद्ध नगर था। इस नगरमें हिरण्यदास और गोवर्द्धनदास—ये दो प्रसिद्ध धनी महाजन रहते थे। दोनों भाई-भाई ही थे। ये लोग गौड़के तत्कालीन अधिपति सैयद हुसैनशाहका ठेकेपर लगान वसूल किया करते थे और ऐसा करनेमें बारह लाख रुपया सरकारी लगान भर देनेके बाद आठ लाख रुपया इनके पास बच जाता था। ऐसे सम्पन्न घरमें रघुनाथदासका जन्म हुआ था। परंतु श्रीकृष्णचरणोंमें अत्यन्त अनुराग होनेके कारण ऐसे वैभवपूर्ण घरको भी त्यागकर श्रीरघुनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामीजीने श्रीजगन्नाथपुरीमें निवास किया। इन्हें श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका दर्शन तथा उनके समीप निवास प्रिय लगता था। ये श्रीजगन्नाथ-भगवान्‌के मन्दिरके द्वारपर खड़े होकर भगवान्‌के त्रिभुवनमोहन सौन्दर्यको देखा करते थे। एक बार ठण्डके दिनोंमें इन्हें बड़े जोरकी सर्दी लगी तो जगन्नाथ-भगवान्‌ने इन्हें अपनी रजाई ओढ़ायी थी। शौचके समय साथ जाकर सेवा करनेकी रीतिका प्रमाण तो वैसा ही समझना चाहिये जैसा कि सुखराशि श्रीप्रभुने श्रीमाधवदासजीके साथ किया था।

महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यजीकी आज्ञा पाकर श्रीरघुनाथदासजी श्रीजगन्नाथपुरीसे श्रीवृन्दावन चले आये और राधाकुण्डपर निवास किया। इन्होंने श्रीप्रिया-प्रियतमके प्रबल चिन्तनद्वारा अपने शरीरको भावरूप कर लिया था। एक दिन भगवान्‌की मानसीपूजा करते समय दूध-भातका भोग लगाया और स्वयं भी इन्होंने प्रभुके अनुरोधसे भावपूरित हृदयसे प्रसादी दूध-भात पा लिया। इससे हृदयमें प्रेम तो खूब उमड़ा, परंतु साथ ही उस दूध-भातका रस शरीरकी नाड़ियोंमें व्याप्त हो गया, जिससे ज्वर हो आया। नाड़ी देखकर वैद्यने स्पष्ट कह दिया कि इन्होंने दूध-भात पाया है।

श्रीरघुनाथदासजीपर भगवान् श्रीजगन्नाथ स्वामीकी कृपाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

अति अनुराग घर सम्पति सों भर्‍यो पागि ताहू करि त्याग कियौ नीलाचल वास है।
धनको पठावै पिता ऐ पै नहीं भावै कछु देखिबो सुहावै महाप्रभुजी कौ पास है॥
मन्दिरके द्वार रूप सुन्दर निहार्‍यौ करैं लाग्यौ सीत गात सकलात दई दास है।
सौच संग जायबे की रीति को प्रमान वहै वैसे सब जानौ माधौदास सुखरास है॥ ३२७॥
महाप्रभु कृष्णचैतन्यजूकी आज्ञा पाइ आये वृन्दावन राधाकुण्ड बास कियो है।
रहनि कहनि रूप चहनि न कहि सकै थकै सुनि तन भाव रूप करि लियो है॥
मानसीमें पायो दूध भात सरसात हिये लिये रस नारी देखि वैद कहि दियो है।
कहां लौं प्रताप कहौं आप ही समझि लेहु देहु वही रीझि जासों आगे पाय जियो है॥ ३२८॥

श्रीनित्यानन्दजी, श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी

गौड़ देस पाखंड मेटि कियो भजन परायन।
करुना सिंधु कृतग्य भए अगनित गति दायन॥
दसधा रस आक्रांति महत जन चरन उपासे।
नाम लेत निहपाप दुरित तिहि नर के नासे॥
अवतार बिदित पूरब मही उभै महँत देही धरी।
नित्यानंद कृष्न चैतन्य की भक्ति दसो दिसि बिस्तरी॥ ७२॥

श्रीनित्यानन्दजी तथा श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुजीकी भक्तिका प्रकाश दसों दिशाओंमें फैला। आप दोनों महानुभावोंने गौड़देशमें फैले हुए पाखण्ड (कुप्रथाओं एवं मुसलमानोंके आतंक)-को मिटाकर वहाँके लोगोंको भगवद्भजनमें प्रवृत्त किया। आप दोनों करुणाके समुद्र, कृतज्ञ तथा अगणित अगतिक जीवोंको गति देनेवाले हुए। (अर्थात् दुष्टोंको न मारकर उनकी दुष्टताका नाशकर उन्हें भक्त बनाया।) आप दोनों सदा ही प्रेमरस-विवश बने रहते थे। बड़े-बड़े महापुरुषोंने आपके श्रीचरणकमलोंकी उपासना की। आपका नाम लेते ही प्राणी निष्पाप हो जाते हैं, तत्काल उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। पूर्व देशकी भूमिमें श्रीबलराम और श्रीकृष्ण ही श्रीनित्यानन्दजी एवं श्रीकृष्ण चैतन्य—इन दोनों महापुरुषोंके रूपमें प्रादुर्भूत हुए थे। इनके अवतारकी बात सर्वप्रसिद्ध है॥ ७२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनित्यानन्दजी एवं श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीनित्यानन्दजी

शस्यश्यामला वंगभूमिके वीरभूमि जनपदके एकचाका गाँवमें शाके १३९५ के माघ मासमें श्रीनित्यानन्दका जन्म हुआ था। उनके पिता-माता हाँड़ाई पण्डित और पद्मावती बड़े धर्मनिष्ठ थे।

श्रीनित्यानन्दजी चैतन्य महाप्रभुके परमप्रिय शिष्य थे, आप करुणाविग्रह और पतितोद्धारक थे। जगाई-मधाई नामक क्रूर डाकुओंका आपने उद्धारकर उन्हें भगवत्पथका पथिक बना दिया। आप महाप्रभुके साथ नवद्वीपसे पुरी आये। फिर उनके आदेशसे गौड़देशमें हरिनामका प्रचार करनेके लिये चल पड़े। गौरांगके कहनेपर उन्होंने पुनः विवाहित जीवनमें प्रवेश किया। अम्बिकानगरके सूर्यदासकी कन्या वसुधा और जाह्नवीका उन्होंने पाणिग्रहण किया। वे खड़दहमें भगवती भागीरथीके तटपर निवास करने लगे। उनके वीरचन्द्र नामका एक पुत्र भी हुआ। एक दिन भगवान् श्यामसुन्दरके मन्दिरमें हरिका नाम लेते-लेते वे सदाके लिये अचेत हो गये। भगवान्ने अपने भक्तको अपना लिया।

श्रीनित्यानन्दजी श्रीबलरामजीके अवतार हैं। श्रीबलरामजी प्रेमोन्मादमें सदा मतवाले बने रहते थे। एक बार उनके मनमें यह चाह उत्पन्न हुई कि अब प्रेमोन्मत्तताका रसास्वादन करना चाहिये। अतः वे ही श्रीबलरामजी श्रीनित्यानन्द महाप्रभुजीके रूपमें प्रकट हुए। आपके अगाध हृदयमें सम्पूर्ण प्रेमराशि आकर परिपूर्ण रूपसे भर गयी, परंतु फिर भी आपको प्रेम-तृष्णा बनी रहती थी। आपका प्रेम ऐसा बढ़ा कि उसका भार आपसे सँभालते नहीं बनता था। तब आपने उसे पार्षदों (शिष्यों)-में यथायोग्य यथास्थान स्थापित कर दिया। आपके प्रेमकी कथा कहते-कहते और सुनते-सुनते अनेकों जन प्रेम-मतवाले हो गये। अनेकों ग्रन्थ इसके साक्षी हैं।

श्रीनित्यानन्दजीकी इस प्रेमोन्मत्तताका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

आप बलदेव सदा वारुणी सों मत्त रहैं चहैं मन मानौ प्रेम मत्तताई चाखियै।
सोई नित्यानन्द प्रभु महँत की देह धरी भरी सब आनि तऊ पुनि अभिलाखियै॥
भयो बोझ भारी किहूँ जात न सँभारी तब ठौर ठौर पारषद माँझ धरि राखियै।
कहत-कहत और सुनत-सुनत जाके भये मतवारे बहु ग्रन्थ ताकी साखियै॥ ३२९॥

श्रीकृष्ण चैतन्यमहाप्रभु

श्रीचैतन्यमहाप्रभुका प्राकट्य शक-संवत् १४०७ की फाल्गुन शुक्ला १५ को दिनके समय सिंहलग्नमें पश्चिमी बंगालके नवद्वीप नामक ग्राममें हुआ था। इनके पिताका नाम जगन्नाथ मिश्र और माताका नाम शचीदेवी था। ये भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। इन्हें लोग श्रीराधाका अवतार मानते हैं। बंगालके वैष्णव तो इन्हें साक्षात् पूर्णब्रह्म ही मानते हैं। इनके जीवनके अन्तिम छः वर्ष राधाभावमें ही बीते। उन दिनों इनके अन्दर महाभावके सारे लक्षण प्रकट हुए थे। जिस समय ये श्रीकृष्णके विरहमें उन्मत्त होकर रोने और चीखने लगते थे, उस समय पत्थरका हृदय भी पिघल जाता था।

जब कभी प्रेमावेश आता तो श्रीमहाप्रभुजीका शरीर द्रवीभूत होकर अंग-अंग सिमटकर सोनेके पिण्डके समान हो जाता और कभी-कभी शरीरके जोड़ अपने स्थानोंको छोड़कर अलग हट जाते, जिससे सभी अंग बहुत बड़े-बड़े हो जाते। आपकी एक लोकविलक्षण रीति यह भी थी कि आपकी आँखोंसे ऐसा अश्रुप्रवाह चलता था मानो पिचकारी छूट रही हो। इस प्रकार आप सदैव युगल सरकार श्रीप्रिया-प्रियतमजीके भाव-सागरमें डूबे रहते थे। श्रीजगन्नाथक्षेत्रमें आपकी ईश्वरता साक्षात् देखी गयी थी। आपने अधिकारीजनोंको अपना चतुर्भुज, षड्भुज स्वरूप दिखाया था तथा लोकोत्तर प्रेमका दान किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन घटनाओंका भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

गोपिन के अनुराग आगै आप हारे श्याम जान्यो यह लाल रंग कैसे आवै तन में।
ये तौ सब गौर तनी नख सिख बनी ठनी खुल्यौ यों सुरंग अंग अंग रंगे बन में॥
श्यामताई माँझ सों ललाई हूँ समाई जोही ताते मेरे जान फिरि आई यहै मन में।
'जसुमति सुत' सोई 'शची सुत' गौर भये नये नये नेह चोज नाचैं निज गन में॥ ३३०॥
आवै कभू प्रेम हेमपिण्डवत तन होत कभू संधि संधि छूटि अंग बढ़ि जात है।
और एक न्यारी रीति आंसू पिचकारी मानों उभै लालप्यारी भावसागर समात है॥
ईशता बखान करौ सो प्रमान याकों काह? जगन्नाथ क्षेत्र नेत्र निरखि साक्षात है।
चतुर्भुज षटभुज रूप लै दिखाय दियो, दियो जो अनूपहित बात पात पात है॥ ३३१॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही अत्यन्त सुन्दर, परम महान् श्रीगौरचन्द्रके रूपमें अवतरित हुए तथा संन्यास लेनेके उपरान्त 'श्रीकृष्णचैतन्य' इस नामसे जगत्में विख्यात हुए। श्रीमहाप्रभुजीके अवतारके पूर्व सम्पूर्ण गौड़ देशके लोग भक्तिका लेशमात्र भी नहीं जानते थे, परंतु श्रीमहाप्रभुजीने 'हरिबोल, हरिबोल' की मंगलमय नामध्वनि सुनाकर सबको प्रेमसागरमें डुबा दिया। आपके एक-एक पार्षद वैष्णवशिरोमणि एवं जगत्के समस्त प्राणियोंका उद्धार करनेमें समर्थ हुए। करोड़ों-करोड़ों अजामिल भी जिनकी दुष्टतापर न्यौछावर हैं, ऐसे जगाई-मधाई सरीखे पापियोंको भी आपने प्रेममें मग्न कर दिया।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कृष्णचैतन्यनाम जगत प्रगट भयौ अति अभिराम लै महन्त देह करी है।
जितौ गौड़ देश भक्ति लेसहूँ न जानै कोई सोऊ प्रेमसागर में बोर्‌यो कहि 'हरी' है॥
भए सिरमौर एक एक जग तारिबे कों धारिबे कों कौन साखि पोथिन में धरी है।
कोटि कोटि अजामिल वारि डारैदुष्टता पै ऐसेहूँ मगन किये भक्ति भूमि भरी है॥ ३३२॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अन्तिम बारह वर्ष कृष्णविरहमें दिव्योन्मादकी स्थितिमें बीते। आप गम्भीरा मन्दिरमें प्रायः भावावेशमें रोते-बिलखते रहते। अन्तमें शक संवत् १४५५ में आषाढ़ मासमें एक दिन दिनके तीसरे पहरमें आप दौड़ते हुए सीधे श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें प्रवेश कर गये और महाप्रभुमें ही लीन हो गये।

श्रीसूरदासजी

उक्ति चोज अनुप्रास बरन अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्बाह अर्थ अद्भुत तुकधारी॥
प्रतिबिंबित दिबि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी॥
बिमल बुद्धि गुन और की जो यह गुन श्रवननि धरै।
सूर कबित सुनि कौन कबि जो नहिं सिर चालन करै॥ ७३॥

श्रीसूरदासजीकी कविताको सुनकर ऐसा कौन कवि है जो आनन्दमें भरकर सिर नहीं हिलाने लगता हो। इनकी कवितामें सुन्दर सरस उक्तियाँ, मधुर व्यंग्यपूर्ण उपहास (सुभाषित, अनोखा भाव, रहस्य) अनूठे अनुप्रास और ललितवर्ण-मैत्री अत्यन्त प्रचुरताके साथ वर्तमान हैं। इनकी वाणीमें प्रेमका ओर-छोर निर्वाह देखा जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तथा कवितामें प्रयुक्त शब्दोंके सम्बन्धका पूर्णरूपेण निर्वाह पाया जाता है अर्थात् परस्पर मैत्रीयुक्त शब्दोंका प्रयोग किया गया है। पदोंमें अन्त्यानुप्रास बड़ा ही मनोरम है तथा प्रत्येक पदमें विलक्षण भावार्थ निहित है। दिव्यदृष्टि होनेसे इनके हृदयमें भगवान्‌की सम्पूर्ण लीलाएँ प्रतिबिम्बित होकर प्रकाशित होती थीं, अतः इन्होंने भगवान्‌के जन्म, कर्म, गुण इन सबका अपनी रसना (जिह्वा)-से बड़ा ही सरस वर्णन किया है। श्रीसूरदासजी-द्वारा वर्णित भगवान्‌के जन्म, कर्म, रूप, गुणादिको प्रेमपूर्वक श्रवण करनेसे लोगोंकी बुद्धि निर्मल हो जाती है तथा निर्मल गुणोंसे युक्त हो जाती है अर्थात् उन्हें भी भगवान्‌की लीलाएँ भासने लगती हैं॥ ७३॥

श्रीसूरदासजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

सूरदासजी पूर्ण भगवद्भक्त थे। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके शब्दोंमें वे 'भक्तिके सागर' और श्रीगोसाईं विट्ठलनाथकी सम्मतिमें वे 'पुष्टिमार्गके जहाज' थे। उनका सूरसागर काव्यामृतका असीम सागर है। वे महात्यागी, अनुपम विरागी और परम प्रेमी भक्त थे। भगवान्‌की लीला ही उनकी अपार, अचल और अक्षुण्ण सम्पत्ति थी।

सूरदासजी त्यागी, विरक्त और प्रेमी भक्त थे। श्रीवल्लभाचार्यके सिद्धान्तोंके पूर्ण ज्ञाता थे। उनकी मानसिक भगवत्सेवा सिद्ध थी। वे महाभागवत थे। उन्होंने अपने उपास्य श्रीराधारानी और श्रीकृष्णका यश-वर्णन ही श्रेय-मार्ग समझा। गोपी-प्रेमकी ध्वजा भारतीय काव्य-साहित्यमें फहरानेमें वे अग्रगण्य स्वीकार किये जाते हैं।

उन्होंने बताया है कि 'गोपीजनोंके भावसे भावित भगवान्‌के भजनसे पुष्टिमार्गके रसका अनुभव होता है। इस मार्गमें केवल प्रेमकी ही मर्यादा है।' अन्तमें श्रीराधाकृष्णकी रसमयी छविका ध्यान करके वे सदाके लिये ध्यानस्थ हो गये।

श्रीपरमानन्ददासजी

पौगँड बाल कैसोर गोपलीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात हुतौ पहिलौ जु सखाई॥
नैननि नीर प्रबाह रहत रोमांच रैन दिन।
गदगद गिरा उदार स्याम सोभा भीज्यो तन॥
सारंग छाप ताकी भई श्रवन सुनत आबेस देत।
ब्रजबधू रीति कलिजुग बिषे परमानँद भयो प्रेम केत॥ ७४॥

द्वापरयुगकी श्रीकृष्णानुरागिणी व्रजगोपियोंकी तरह इस कलियुगमें भी श्रीपरमानन्ददासजी प्रेमकी ध्वजा हुए। इन्होंने श्रीकृष्णकी पौगण्डावस्था, बाल्यावस्था एवं कैशोरावस्था आदिकी समस्त लीलाओंका पदोंमें गान किया। इस बातका आश्चर्य ही क्या है? ये पहले (द्वापरयुग)-के श्रीकृष्णके तोक (सखा) ही तो हैं। इनके नेत्रोंसे रात-दिन प्रेमाश्रुओंका प्रवाह चलता रहता था और इनके शरीरमें सदा रोमांच बना रहता था। इनकी उदार वाणी सदैव प्रेमके कारण गद्‌गद बनी रहती थी, ये बड़े उदार थे तथा इनका भाव-तन उदार श्रीश्यामसुन्दरकी शोभासे सराबोर रहता था। सारंग रागमें विशेष पद रचना करनेके कारण इनकी 'सारंग' छाप पड़ गयी थी। इनके द्वारा रचे हुए पदोंको कानोंसे सुनते ही प्रेमावेश आ जाता है॥ ७४॥

श्रीपरमानन्ददासजीका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीपरमानन्ददासजी भगवान्‌की लीलाके मर्मज्ञ, अनुभवी कवि और कीर्तनकार थे। वे अष्टछापके प्रमुख कवियोंमेंसे एक थे। उन्होंने आजीवन भगवान्‌की लीला गायी। श्रीमद्-वल्लभाचार्यजीकी उनपर बड़ी कृपा रहती थी। वे उनका बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मान करते थे। उनका पद-संग्रह 'परमानन्दसागर' के नामसे विख्यात है, उनकी रचनाएँ अत्यन्त सरस और भावपूर्ण हैं। लीलागायक कवियोंमें उन्हें गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

सं० १६४१ वि० में भाद्रपद कृष्ण नवमीको उन्होंने श्रीराधाकृष्णकी रूप-सुधाका चिन्तन करते हुए अपनी गोलोक-यात्रा सम्पन्न की।

श्रीकेशवभट्टजी

कस्मीरी की छाप पाप तापनि जग मंडन।
दृढ़ हरि भक्ति कुठार आन धर्म बिटप बिहंडन॥
मथुरा मध्य मलेछ बाद करि बरबट जीते।
काजी अजित अनेक देखि परचै भयभीते॥
बिदित बात संसार सब संत साखि नाहिन दुरी।
केसौभट नर मुकुट मनि जिन की प्रभुता बिस्तरी॥ ७५॥

श्रीकेशवभट्टजी मनुष्योंमें मुकुटमणि हुए। जिनकी महामहिमा सारे संसारमें फैल गयी। आपके नामके साथ 'काश्मीरी' यह विशेषण अति प्रसिद्ध हो गया था। आप पापों एवं पापरूप लोगोंको ताप देनेवाले तथा जगत्‌के आभूषणस्वरूप थे। आप परम सुदृढ़ श्रीहरिभक्तिरूपी कुठारसे पाखण्ड धर्मरूपी वृक्षोंका समूलोच्छेद करनेवाले हुए। आपने मथुरापुरीमें यवनोंके बढ़ते हुए आतंकको देखकर उनसे वाद-विवादकर उन परम उद्दण्ड यवनोंको बलपूर्वक हराया। अनेकों अजेय काजी आपकी सिद्धिका चमत्कार देखकर एकदम भयभीत हो गये। आपका उपर्युक्त सुयश सारे संसारमें प्रसिद्ध है, सब सन्त इनके साक्षी हैं॥ ७५॥

श्रीकेशवभट्टजीके विषयमें संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

आपका जन्म काश्मीरी ब्राह्मणकुलमें बारहवीं शताब्दीके लगभग हुआ माना जाता है। कुछ इतिहास-वेत्ताओंका कथन है कि काशीमें श्रीरामानन्दजी और नदियामें श्रीचैतन्यदेवजीसे आपका सत्संग हुआ था।

एक बार दिग्विजयनिमित्त पर्यटन करते हुए आप नवद्वीपमें आये। वहाँका विद्वद्वर्ग आपसे भयभीत हो गया। तब श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु अपने शिष्यवर्गको साथ लेकर श्रीगंगाजीके परम सुखद पुलिनपर जाकर बैठ गये और बालकोंको पढ़ाते हुए शास्त्रचर्चा करने लगे। उसी समय टहलते हुए श्रीकेशवभट्टजी भी आकर आपके समीप बैठ गये। तब श्रीमहाप्रभुजी अत्यन्त नम्रतापूर्वक बोले—सारे संसारमें आपका सुयश छा रहा है, अत: मेरे मनमें यह अभिलाषा हो रही है कि मैं भी आपके श्रीमुखसे कुछ शास्त्रसम्बन्धी वार्ता सुनूँ।

श्रीकृष्णचैतन्यके इन वचनोंको सुनकर श्रीकेशवभट्टजी बोले कि तुम तो अभी बालक हो और बालकोंके साथ पढ़ते हो, परंतु बातें बड़ोंकी तरह बहुत बड़ी-बड़ी करते हो। परंतु तुम्हारी नम्रता-सुशीलता आदि देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अत: तुम्हारा जो भी सुननेका आग्रह हो वह कहो, हम वही सुनायेंगे। श्रीमहाप्रभुजीने कहा—आप श्रीगंगाजीका स्वरूप वर्णन करिये। तब श्रीकेशवभट्टजीने तत्काल स्वरचित नवीन सौ श्लोक धाराप्रवाह कह सुनाये। उन्हें सुनकर श्रीमहाप्रभुजीकी बुद्धि भाव-विभोर हो गयी। तत्पश्चात् उन्हीं सौ श्लोकोंमेंसे एक श्लोक कण्ठस्थ करके श्रीमहाप्रभुजीने भी श्रीकेशवभट्टजीको सुनाया और निवेदन किया कि इस श्लोककी व्याख्या एवं दोष और गुणोंका भी वर्णन करिये। सुनकर श्रीकेशवभट्टजीने कहा कि भला मेरी रचनामें दोष कहाँ? श्रीमहाप्रभुजीने कहा—काव्य-रचनामें दोषका लेश रहना स्वाभाविक ही है। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं इसके दोष-गुण कह सुनाऊँ। तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने कहा—अच्छा, तुम्हीं कहो। तब श्रीमहाप्रभुजीने उस श्लोककी गुण-दोषमयी एक नवीन व्याख्या कर दी। श्रीकेशवभट्टजीने कहा—अच्छा, अब हम प्रातःकाल तुमसे फिर मिलेंगे और इसपर अपना विचार व्यक्त करेंगे। ऐसा कहकर आप अपने निवास-स्थानपर चले आये और एकान्तमें श्रीसरस्वतीजीका ध्यान किया। श्रीसरस्वतीजी तत्काल एक बालिकाके रूपमें इनके सम्मुख आ उपस्थित हुईं। आपने उपालम्भभरे स्वरमें कहा कि सारे संसारको जितवा करके आपने एक बालकसे मुझे हरा दिया।

श्रीसरस्वतीजीने कहा—वे बालक नहीं हैं, वे तो साक्षात् लोकपालक भगवान् हैं और मेरे स्वामी हैं। भला मेरी सामर्थ्य ही कितनी है जो मैं उनके सम्मुख खड़ी होकर वाद-विवाद कर सकूँ! श्रीसरस्वतीजीकी यह सुखस्रोतमयी वाणी सुनकर श्रीकेशवभट्टजी मनमें बड़े हर्षित हुए और वाद-विवादके भावका परित्याग करके श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभुजीके पास आये तथा बहुत प्रकारसे विनय-प्रार्थना की। तब श्रीमहाप्रभुजीने कृपापूर्वक कहा कि वाद-विवादके प्रपंचको छोड़कर फलस्वरूपा भक्तिका रसास्वादन कीजिये, अब आजसे किसीको भूलकर भी नहीं हराइये। श्रीकेशवभट्टजीने श्रीमहाप्रभुजीकी यह बात हृदयमें धारण कर ली और शास्त्रार्थ तथा दिग्विजय छोड़कर एकान्तिक भक्ति-सुखमें निमग्न रहने लगे।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकेशवभट्ट और श्रीचैतन्यमहाप्रभुके इस संवादका इस प्रकार वर्णन किया है—

करि दिगबिजै सब पण्डित हराय दिये लिये बड़े बड़े जीति भीति उपजाई है।
फिरत चौडोल चढ़े गज बाजि लोग संग प्रतिभा कौ रंग आए नदिया प्रभाई है॥
डरे द्विज भारी महाप्रभु जू बिचारी तब लीला बिस्तारी गंगा तीर सुखदाई है।
बैठे ढिंग आय बोले नम्रता जनाय रह्यो जग जसु छाय नेकु सुनै मन भाई है॥ ३३३॥
लरिकान संग पढ़ौ बातैं बड़ी बड़ी गढ़ौ ऐपै रढ़ौ कहौ सोई सीलता पै रीझियै।
'गंगा कौ सरूप कहौ' 'चाहौ दृग आगे सोई' नये सौ श्लोक किये सुनि मति भीजियै॥
तामैं एककण्ठ करि पढ़िकै सुनायौ अहो बड़ो अभिलाष याकी व्याख्या करि दीजियै।
अचरज भारी भयो कैसे तुम सीखि लयो? दयौ लै प्रभाव, तुम्हैं ताने दयो जीजियै॥ ३३४॥
दूषन और भूषन हूँ कीजिये बखान याके सुनि दुखमानि कही दोष कहां पाइयै।
कविता प्रबन्ध मध्य रहै खोटि गंध अहो आज्ञा मोको देउ कह्यो कहिकै सुनाइयै॥
व्याख्या करि दई नई औगुन सुगुन मई आए निजधाम भोर मिले समुझाइयै।
सरस्वती ध्यान कियौ आई तत्काल बाल बाल पै हरायो सब जग जितवाइयै॥ ३३५॥
बोली सरस्वती मेरे ईस भगवान वे तौ मान मेरौ कितौ सन्मुख बतराइयै।
भयौ दरसन तुम्हैं मन परसत होत सुनि सुख सोत बानी आए प्रभु पाइयै॥
बिनै बहु करी करी कृपा आप बोले अजू भक्तिफल लीजै काहू भूलि न हराइयै।
हियै धरि लई भीर भार छोड़ि दई पुनि नई यह भई सुनि दुष्ट मरवाइयै॥ ३३६॥

आपके समयमें दिल्लीका बादशाह अलाउद्दीन खिलजी था, उसके उग्र स्वभावसे हिन्दू प्रजा ऊब उठी थी। उसने घोषणा की कि सारे हिन्दू-मन्दिर तोड़ दिये जायँ। उस समय मथुराके सूबेदारके आदेशानुसार एक फ़कीरने लाल दरवाजेपर एक यन्त्र टाँगा, जिसके प्रभावसे जो भी हिन्दू उस दरवाजेसे निकलता वह मुसलमान बन जाता और दूसरे लोग जबरन उसे अपने धर्ममें शामिल कर लेते। इस महान् विपत्तिसे बचनेके लिये सभी व्रजवासी श्रीभट्टजीके पास पहुँचे। श्रीआचार्यदेव स्वयं शिष्यसमूहको साथ ले उस स्थानपर गये और यन्त्रको तोड़कर धर्मकी रक्षा की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आपु काश्मीर सुनी बसत विश्रान्त तीर तुरक समूह द्वार जन्त्र इक धारियै।
सहज सुभाय कोऊ निकसत आय ताको पकरत जाय ताके सुन्नत निहारियै॥
संग लै हजार शिष्य भरे भक्ति रंग महा अरे वही ठौर बोले नीच पट टारियै।
क्रोध भरि झारे आय सूबा पै पुकारे वे तौ देखि सबै हारे मारे जल बोरि डारियै॥ ३३७॥

श्रीश्रीभट्टजी

मधुर भाव संमिलित ललित लीला सुबलित छबि।
निरखत हरषत हृदै-प्रेम बरषत सुकलित कबि॥
भव निस्तारन हेतु देत दृढ़ भक्ति सबनि नित।
जासु सुजस ससि उदै हरत अति तम भ्रम श्रम चित॥
आनंद कंद श्रीनंदसुत श्रीबृषभानुसुता भजन।
श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मन मोद घन॥ ७६॥

महा अजय संसाररिपुको जीतनेमें महावीर श्रीभट्टजीने अपार उज्ज्वल श्रृंगाररस पारावार प्रकट किया। आप अपनी सरस रचनाओंके द्वारा रसकी वर्षा करके रसिक महानुभावोंके मनको आनन्द प्रदान करनेके लिये मानो मेघके समान (विश्व-व्योममें) प्रकट हुए। आपके पदोंमें माधुर्य भावमयी तथा भक्तोंको सुख देनेवाली ललित लीलाओंसे सुष्ठु प्रकारेण संयुक्त श्रीप्रिया-प्रियतमकी मनोहारिणी छविका साक्षात् दर्शन होता है, जिसे देखते ही रसिक जनोंका हृदय हर्षित हो उठता है तथा हृदयमें प्रेमकी वर्षा-सी होने लगती है। आप ऐसे जगद्विदित कवि हुए। जीवोंको संसार-बन्धनसे मुक्त करनेके लिये अथवा संसार-सागरसे पार करनेके लिये आप अत्यन्त उदारतापूर्वक सबको अविचल अनपायिनी भक्ति प्रदान करते थे। आपका सुयशरूपी चन्द्रमा अपने अभ्युदयसे आज भी जीवोंके हृदयमें स्थित अज्ञानरूपी अन्धकार, विपरीत ज्ञान एवं अनादिकालसे भवाटवीमें भटकनेसे संजात श्रमको दूर कर रहा है। आप सदा-सर्वदा आनन्दकन्द श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्ण एवं श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाजीके भजनमें निमग्न रहा करते थे॥ ७६॥

श्रीश्रीभट्टजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

विक्रमीय संवत्‌की सोलहवीं सदीके पूर्व वृन्दावनकी पवित्र भूमि मधुर भक्तिसे पूर्ण आप्लावित थी। इसी समय व्रजभाषाके महान् कवि रसिक श्रीभट्टने श्रीराधा-कृष्णकी उपासनासे समाजको सरस और नवीन भक्ति-चेतनासे समलंकृतकर सगुण लीलाका प्रचार किया। श्रीभट्ट व्रज और मथुराकी ही सीमामें रहनेको परम सुख और आनन्दका साधन समझते थे। व्रजकी लताएँ, कुंज, सरिता, हरीतिमा और मोहिनी छविको वे प्राणोंसे भी प्रिय मानते थे। वे केशव काश्मीरीके अन्तरंग शिष्य थे।

गुरुजीकी आज्ञासे आपने श्रीयुगलकिशोरकी कुंजक्रीड़ाके सौ शतक रच डाले और सबको ले जाकर श्रीगुरुदेवजीके करकमलोंमें अर्पित कर दिया। श्रीकेशव कश्मीरीजीने जब उन पदोंको देखा तो विचार किया कि इन्होंने तो प्रेमावेशमें श्रृंगाररसकी परम गोपनीयसे भी गोपनीय लीलाओंको एकदम प्रकट कर दिया है। भला, इस कराल कलिकालमें इस रसके ऐसे अधिकारी कहाँ हैं, जो यथावत् इसको समझ सकें। अतः आपने सब-का-सब श्रीयमुनाजीको भेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया और कहा कि श्रीयमुनाजी जो कृपा करके प्रसादरूपमें दें, वही प्रकाशित किया जाय। श्रीयमुनाजीने सौ पदोंको छोड़कर शेष सबको स्वयंमें आत्मसात् कर लिया। वे ही सौ पद 'श्रीयुगलशतक' के नामसे प्रसिद्ध हैं। श्रीभट्ट रस-साहित्यके मर्मज्ञ और भक्त कवि थे।

श्रीहरिव्यासदेवजी

खेचरि नर की सिष्य निपट अचरज यह आवै।
बिदित बात संसार संत मुख कीरति गावै॥
बैरागिन के बृंद रहत सँग स्याम सनेही।
ज्यों जोगेस्वर मध्य मनो सोभित बैदेही॥
श्रीभट्ट चरन रज परस तें सकल सृष्टि जाकों नई।
हरि ब्यास तेज हरि भजन बल देबी कों दीच्छा दई॥ ७७॥

श्रीहरिव्यासजीने भगवद्भजनके तेज और बलसे देवीको भी मन्त्रोपदेश दिया था। अपनी दिव्यगतिसे आकाशमें विचरण करनेवाली देवी मनुष्यकी शिष्या बनीं, यह सुनकर नितान्त ही आश्चर्य होता है, किंतु यह सत्य है, सारे संसारमें यह बात प्रसिद्ध है एवं सन्तजन श्रीमुखसे श्रीहरिव्यास-देवाचार्यजीकी इस कीर्तिका गान करते हैं। परम स्नेही श्रीसर्वेश्वरभगवान्‌का डोला एवं संसारसे वैराग्यपूर्वक भगवान् श्रीश्यामसुन्दरके श्रीचरण-कमलोंमें अनुराग करनेवाले विरक्त महात्माओंका समूह सदा ही आपके साथ बना रहता था। विरक्तोंके बीचमें आपकी ऐसी शोभा होती थी, जैसे नौ योगेश्वरोंके बीच श्रीविदेहराज जनक शोभा पाते थे। अपने सद्गुरुदेव श्रीभट्टदेवाचार्यजीके श्रीचरणकमलरजके स्पर्शके प्रतापसे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीके सम्मुख समस्त सृष्टिके लोग सिर झुकाते थे॥ ७७॥

श्रीहरिव्यासदेवजीके विषयमें विवरण इस प्रकार है—

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें परम वैष्णव आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजी बहुत ऊँचे सन्त हो गये हैं। आपका जन्म गौड़ ब्राह्मणकुलमें हुआ था। आपने श्रीभट्टजीसे दीक्षा ली थी।

गुरुदेव श्रीभट्टजीके आज्ञानुसार आपने 'युगलशतक' पर संस्कृतमें भाष्य लिखा। ये ही सर्वप्रथम उत्तर-भारतीय सम्प्रदायाचार्य हैं। स्वामीजी इस सम्प्रदायमें उस शाखाके प्रवर्तक हैं, जिसे 'रसिकसम्प्रदाय' कहते हैं। श्रीहरिव्यासदेवजीका इतना प्रभाव हुआ कि श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायकी इस शाखाके सन्तोंको तबसे लोग 'हरिव्यासी' ही कहने लगे।

एक बार श्रीहरिव्यासदेवजी साथमें संतोंकी जमात लिये हुए विचरते-विचरते 'चटथावल' नामक ग्राममें पहुँचे। वहाँ एक बागमें जल-थलका सब सुपास देखकर आप बड़े प्रसन्न हुए और उस बागमें ही उतरकर स्नान, भजन, पूजन आदि नित्य कृत्य करके रसोई करनेका विचार किया। उस बागमें ही एक देवीका मन्दिर था। उसी समय किसीने देवीकी प्रसन्नताके लिये एक बकरेको लाकर देवीके सम्मुख वध किया। यह वीभत्स दृश्य देखकर किसीने जलतक नहीं पिया। सब संत भूखे ही रह गये। दिन बीता, रात्रि आ गयी। उपवासपूर्वक श्रीहरिस्मरणसे भक्तिका तेज तो बढ़ा, पर भागवतापराधके कारण देवीका तेज नष्ट हो गया, अतः देवी भक्तके तेजसे एकदम अभिभूत हो गयीं। उन्होंने घबड़ाकर तुरंत नवीन देह धारणकर आकर आपका एवं सब संतोंका दर्शन किया और अत्यन्त नम्रतापूर्वक बोलीं—आपलोग रसोई बनाइये। भूखे क्यों बैठे हैं? आपने उत्तर दिया—अब रसोई कौन करे? पहले करनेका विचार तो था, परंतु यहाँकी स्थिति देखकर मनकी और ही दशा हो गयी। देवीने कहा—जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमित्तसे आपलोगोंको ऐसी खिन्नता प्राप्त हुई, वह देवी मैं ही हूँ। आज मैंने भक्तिका तेज देखा, अतः अब कृपा करके मुझे भी भक्तिका दान दीजिये और अपनी शिष्या बना लीजिये।

देवीकी प्रार्थना सुनकर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीने उन्हें शिष्या बनाया। मन्त्रोपदेशश्रवण करनेके उपरान्त देवीजी अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक नगरको दौड़ी गयीं और वहाँ जाकर जो उस नगरका प्रमुख था, उसको खाटसमेत भूमिपर पटक दिया। तत्पश्चात् उसकी छातीपर चढ़कर सूक्ष्मरूपसे उसकी जिह्वापर बैठकर उसके ही मुखसे कहने लगीं कि मैं तो श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीकी शिष्या हो गयी हूँ। तुमलोग भी शीघ्र उनका शिष्यत्व ग्रहण करो। यदि तुमलोग उनका शिष्यत्व नहीं स्वीकार करोगे तो मैं अभी-अभी सबको मार डालूँगी। देवीका उग्र आदेश सुनकर वे परम हिंसक भी डरकर सब-के-सब आकर आपके शिष्य हो गये।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

चटथावल गाँव बाग देखि अनुराग भयौ लयौ नित्त नेम करि चाहैं पाक कीजियै।
देवीको स्थान काहू बकरा लै मार्‍यौ आनि देखत गलानि इहां पानी नहिं पीजियै॥
भूख निसि भई भक्ति तेज मिड़ गई नई देह धरि लई आय लखि मति भीजियै।
'करौ जू रसोई' 'कौन करै कछु औरे भई' 'सोई मोकों दीजै दान शिष्य करि लीजियै'॥ ३३८॥
करी देवी शिष्य सनि नगरको सटकी यों पटकी लै खाट जाकी बड़ौ सरदार है।
चढ़ी मुख बोलै हौं तो भई हरिव्यासजी जौ न दास होहु तौ पै अभी डारौं मार है॥
आये सब भृत्य भए मानौ नए तन लए गए दुःख पाप ताप किए भव पार है।
कोऊ दिन रहे नाना भोग सुख लहे एक श्रद्धाकै स्वपच आयो पायौ भक्तिसार है॥ ३३९॥

श्रीदिवाकरजी

उपदेसे नृपसिंह रहत नित आग्याकारी।
पक्व बृच्छ ज्यों नाय संत पोषक उपकारी॥
बानी भोलाराम सुहृद सबहिन पर छाया।
भक्त चरन रज जाचि बिसद राघौ गुन गाया॥
करमचंद कस्यप सदन बहुरि आय मनो बपु धर्‍यो।
अग्यान ध्वांत अंतहि करन द्वितिय दिवाकर अवतर्‍यो॥ ७८॥

जीवोंके हृदयके अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीदिवाकर भक्तजी मानो दूसरे सूर्यके समान हुए। आपने बड़े-बड़े रजोगुणी, क्रूर प्रकृतिके राजा-महाराजाओंको उपदेश देकर भक्ति-पथपर आरूढ़ किया। वे सब सदा-सर्वदा आपकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर रहते थे। जिस प्रकार परिपक्व फलोंके भारसे वृक्ष नम्र हो जाते हैं, उसी प्रकार आप अपने सद्गुणोंके कारण अत्यन्त विनयशील थे। बड़े ही सद्भावपूर्वक भगवत्प्रसादान्न एवं उपदेशामृतसे सन्तोंका पालन-पोषण करते थे तथा प्राणिमात्रके उपकारमें तत्पर रहते थे। आप बात-बातमें 'भोलाराम' इस प्रकारका उच्चारण करते थे। सबके शुभचिन्तक तथा सबपर कृपा रखते थे। भक्तोंकी चरणरजको ही अपना सर्वस्व समझकर उसीकी कामना-याचना करते थे। आपने आजीवन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके परमोज्ज्वल गुणोंका गान किया। आपके पिता श्रीकर्मचन्दजी मानो साक्षात् प्रजापति श्रीकश्यपजी थे, उनके घर मानो साक्षात् सूर्यभगवान् ही पुनः भक्त श्रीदिवाकरजीके रूपमें प्रकट हुए॥ ७८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीदिवाकरजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीदिवाकरजीका जन्म राजस्थानके देवासा ग्राममें हुआ था। उनके पिता श्रीकर्मचन्द वैश्य परम भगवद्भक्त थे। श्रीसीतारामजी आपके इष्ट और श्रीअग्रदेवाचार्यजी आपके गुरु थे। आपके यहाँ सन्तोंका आगमन प्रायः बना ही रहता था। जब भी कभी घरमें सीधा-सामग्रीका अभाव होता, आप अपनी गुदड़ी किसी वणिक्‌के यहाँ गिरवी रखकर सामान लाते और जब पैसोंकी व्यवस्था हो जाती, तो उसे छुड़ा लाते। एक बार आपने अपनी गुदड़ी एक वणिक्‌के यहाँ गिरवी रख दी और उससे खाद्य-सामग्री लाकर सन्तोंका सत्कार किया। संयोगकी बात, इस बार पैसोंकी व्यवस्था न हो सकी और आप गुदड़ी छुड़ा न पाये। धीरे-धीरे समय बीतता गया, शीत ऋतु आ गयी, फिर कड़ाकेकी सर्दी पड़ने लगी। एक दिन आप सर्दीसे काँपते हुए वणिक्‌के यहाँ गये और उससे निवेदन किया कि मुझे शीत ऋतुभरके लिये गुदड़ी वापस कर दो, जैसे ही पैसेकी व्यवस्था होगी मैं आपका कर्ज चुका दूँगा; परंतु वणिक्‌ने पैसेके बिना इनसे सीधे मुँह बात भी नहीं की। भगवदिच्छा समझ आप वापस लौट आये। रातमें ठण्डके मारे नींद नहीं आ रही थी, तो आप थर-थर काँपते हुए बैठे-बैठे भगवन्नाम-संकीर्तन करने लगे। भगवान्‌से भक्तका यह क्लेश देखा न गया। वे स्वयं एक रजाई लेकर आये और चुपचाप इन्हें ओढ़ा दिया। दूसरे दिन वणिक्‌ने जब इन्हें नयी रजाई ओढ़े देखा तो क्रोधमें भरकर बोला कि मेरे पैसे तो दिये नहीं और अपने लिये नयी रजाई बनवा ली। ऐसा कहकर उस निर्दयी वणिक्‌ने इनकी रजाई छीन ली। रातमें ये फिर थर-थर काँपते भगवन्नाम-संकीर्तन करने लगे, भगवान् फिर आये और एक नयी रजाई ओढ़ाकर चले गये। अगले दिन वणिक्‌ने इनके पास फिर नयी रजाई देखी तो वह आश्चर्यचकित हो गया। उसने जब 'रजाई कहाँसे आयी?' पूछा तो आपने सब सच-सच बता दिया। भगवत्कृपाका यह प्रत्यक्ष चमत्कार देखकर वणिक् बहुत लज्जित हुआ और चरणोंमें गिरकर बार-बार क्षमा माँगी तथा उनकी गुदड़ी और रजाई लाकर वापस कर गया। धीरे-धीरे यह चर्चा पूरे गाँवमें फैल गयी और सभी लोग इनके शिष्य बन गये।

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी

राग भोग नित बिबिध रहत परिचर्या तत्पर।
सय्या भूषन बसन रचित रचना अपने कर॥
वह गोकुल वह नंदसदन दीछित को सोहै।
प्रगट बिभव जहँ घोष देखि सुरपति मन मोहै॥
बल्लभ सुत बल भजन के कलिजुग में द्वापर कियो।
बिठलनाथ ब्रजराज ज्यों लाल लड़ाय कै सुख लियो॥ ७९॥

गोसाईं श्रीविट्ठलनाथजीने व्रजेश्वर श्रीनन्दबाबाकी ही तरह श्रीबालकृष्णभगवान्‌को वात्सल्य भावसे अत्यन्त लाड़-प्यार करके परम सुख प्राप्त किया। आप नित्य प्रति श्रीठाकुरजीकी सेवामें अनेक प्रकारके सामयिक पदोंका गायन एवं उत्तमोत्तम नैवेद्य समर्पणपूर्वक अष्टयाम सेवामें ही तल्लीन रहते थे। आप अपने हाथसे ही श्रीठाकुरजीका वस्त्राभूषणोंसे शृंगार करते थे एवं शयनके लिये शय्या सजाते थे अर्थात् समस्त सेवा स्वयं ही करते थे। द्वापर युगमें श्रीगोकुल एवं श्रीनन्दबाबाके महलकी जो शोभा थी, वह शोभा दाक्षिणात्य दीक्षितब्राह्मण श्रीविट्ठलनाथजीके समयमें भी श्रीगोकुल एवं उनके भवनकी थी। जिस प्रकार द्वापरयुगमें श्रीगोकुलके गोपोंका ऐश्वर्य देखकर देवराज इन्द्र मोहित हो जाते थे, उसी प्रकारका वैभव श्रीविट्ठलनाथजीके समयमें भी श्रीगोकुलमें था। सारांश यह है कि श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके पुत्र श्रीविट्ठलनाथजीने भगवद्भजनके बलसे कलियुगमें भी द्वापर कर दिया था॥ ७९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगोसाईं विट्ठलनाथ महाप्रभु वल्लभाचार्यके द्वितीय पुत्र थे। उनका जन्म संवत् १५७२ वि० में काशीके निकट चरणाट (चुनार)-में हुआ। उनके पिता श्रीवल्लभ नवजात शिशुको अपने पूर्व निवासस्थान अड़ैल ले आये और वहाँ उन्होंने उनके आवश्यक संस्कार कराये। भाग्यशाली विट्ठलके प्राकट्यपर महाकवि सूरने मंगलगीत गाया था। गोकुलमें नन्दमहोत्सव मनाया गया था। कलियुगके जीवोंके उद्धार और सन्तोंके प्रतिपालनके लिये ही उनका जन्म हुआ था। उनके जीवनका अधिकांश समय गोवर्धन और गोकुलमें व्यतीत हुआ। अपने पिताद्वारा निर्धारित भगवान्‌की आठ झाँकियोंके अनुरूप विधिवत् सेवा करके भक्तिरसामृतका आस्वादन करनेको ही उन्होंने श्रेयमार्ग स्वीकार किया। श्रीविट्ठलनाथजीने पुष्टिमार्गके विकास और प्रगतिमें बड़ा योग दिया। महाकवि सूर, नन्ददास कुम्भनदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्ददास, कृष्णदासकी कविताको अष्टछापकी पवित्र गद्दीपर प्रतिष्ठितकर उन्होंने भक्तिका रसराजत्व सिद्ध किया। अष्टछाप उनकी कीर्तिकी अमर लता है।

संवत् १६४२ वि० में गोवर्धनकी एक कन्दरामें प्रवेशकर उन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजीके कृपापात्र श्रीत्रिपुरदासजी थे। इनका चरित्र संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीत्रिपुरदासजी

श्रीत्रिपुरदासजी जातिके कायस्थ थे। इनके हृदयमें राशि-राशि भक्ति-सुख भरा हुआ था। इन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि मैं प्रतिवर्ष शीतकालमें ठाकुर श्रीश्रीनाथजीके लिये दगला (अंगरखा) भेजा करूँगा। तदनुसार ये अत्यन्त ही बहुमूल्य वस्त्रका दगला सिलवाते थे, फिर उसमें सुनहले गोटे लगवाते थे और बड़े प्रेमसे भेजते थे। यही कारण है कि इनका भेजा हुआ दगला ठाकुर श्रीनाथजीको अत्यन्त प्रिय लगता था और गोसाईं श्रीविट्ठलनाथजी भी उसे बड़े प्रेमसे श्रीठाकुरजीको धारण करवाते थे। कुछ कालोपरान्त इनका ऐसा समय आया कि राजाने इनका सर्वस्व अपहरण कर लिया। ये एक-एक आने और एक-एक दानेको मोहताज हो गये। इसी बीच शरद् ऋतु आ गयी। तब इन्हें श्रीठाकुरजीके लिये दगला भेजनेकी याद आयी, परंतु धनका सर्वथा अभाव होनेसे श्रीठाकुरजीकी सेवासे वंचित होने तथा प्रतिज्ञा-भंग होनेके दुःखसे इनकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। एकाएक पीतलकी एक दावात इनकी नजरमें आयी, फिर तो मानो डूबतेको तिनकेका सहारा मिल गया हो। इन्होंने मनमें निश्चय किया कि इसीको बेचकर श्रीठाकुरजीकी सेवा करूँगा।

श्रीत्रिपुरदासजीने उस दावातको बाजारमें बेचा, उससे उन्हें एक रुपया मिला। उस रुपयेसे इन्होंने केवल मोटे कपड़ेका एक थान खरीदा। फिर उस कपड़ेको लाल रंगमें रँगा। परंतु फिर भी इनका साहस नहीं हुआ कि ऐसे साधारण वस्त्रको लेकर हम कैसे श्रीगोसाईंजीके पास जायँ, अतः उसे घरमें ही रख लिया। सोचा था कि श्रीगिरिराजजीकी ओरसे कोई आयेगा तो उसके द्वारा भेजवा दूँगा। इसी बीच श्रीगोसाईंजीका कोई सेवक अपने गाँवमें आया हुआ सहज ही दीख गया। फिर तो इन्होंने वह वस्त्र उस सेवकको देकर कहा—'आप इसे भण्डारीजीको दे देना। यद्यपि यह वस्त्र श्रीगुसाईंजीके किसी दास-दासीके भी पहनने योग्य नहीं है तो भी मुझ दीनकी यह तुच्छ भेंट आप ले जाइये, परंतु एक बातका ध्यान रखियेगा, मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि इस वस्त्रका समाचार श्रीगुसाईंजीको मत सुनाइयेगा'।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

कायथ त्रिपुरदास भक्ति सुख राशि भर्‌यो कर्‌यो ऐसो पन सीत दगला पठाइयै।
निपट अमोलपट हिये हित जटि आवै तातें अति भावै नाथ अंग पहिराइयै॥
आयो कोऊ काल नरपति नैं बिहाल कियौ भयौ ईश ख्याल नेकु घर मैं न खाइयै।
वही ऋतु आई सुधि आई आंखि पानी भरि आई एक द्वाति दीठि आई बेचि ल्याइयै॥ ३४०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेचिकै बजार यों रुपैया एक पायौ ताकौ ल्यायौ लोटौ थान मात्र रंग लाल गाइयै।
भीज्यो अनुराग पुनि नैन जल धार भीज्यो भीज्यो दीनताई धरि राख्यो और आइयै॥
कोऊ प्रभु जन आय सहज दिखाई दई भई मन दियो लै 'भँडारी पकराइयै'।
काहू दास दासी के न काम कौ पै जाउ लै कै विनती हमारी जू गुसाईं न सुनाइयै॥ ३४१॥

उस सेवकने श्रीत्रिपुरदासजीके वस्त्रको लाकर भण्डारीके हाथमें दे दिया और उस भण्डारीने उस वस्त्रको बिछाकर उसके ऊपर श्रीठाकुरजीके शृंगारके और बढ़िया वस्त्र रख दिये। परंतु परम-सनेही ठाकुर श्रीश्रीनाथजीसे भक्तके इस प्रेमोपहारकी उपेक्षा सही नहीं गयी, वे व्याकुल होकर बोले—मुझे बड़े जोरसे ठण्डक लग रही है, शीघ्र इसको दूर करनेका कोई उपाय करो। तब श्रीगुसाईंजीने बहुतसे सुन्दर-सुन्दर वस्त्र श्रीअंगपर ओढ़ाये। परंतु ठण्ड नहीं गयी। तब श्रीगुसाईंजीने अँगीठी जलायी। फिर भी ठण्ड दूर नहीं हुई। तब आपके ध्यानमें आया कि किसी भक्तपर अनुग्रह करनेके लिये प्रभु यह लीला कर रहे हैं, अतः तुरंत ही सेवकको बुलाकर पूछा कि इस वर्ष किस-किसकी पोशाकें आयी हैं? बही खोलकर सेवकने सबका नाम सुनाया, परंतु एक त्रिपुरदासजीका नाम नहीं लिया।

गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजीने कहा कि मैंने भक्त त्रिपुरदासका नाम तो सुना नहीं, क्या इस वर्ष इनके यहाँसे पोशाक नहीं आयी है? सेवकने कहा—उनका सब धन नष्ट हो गया है, अतः उनके यहाँसे मोटे कपड़ेका एक थान आया है, मैंने उसे और पोशाकोंके नीचे बिछा रखा है। श्रीगुसाईंजी श्रीठाकुरजीके मनकी जान गये कि प्रेम-प्रवीण प्रभु तो भक्तोंके भावको देखकर उनके प्रेमोपहारको सहर्ष स्वीकार करते हैं, आज्ञा दी कि उस कपड़ेको शीघ्र लाओ। सेवक अनमना-सा होकर उस कपड़ेको ले आया। तुरंत ही श्रीठाकुरजीके दर्जीको बुलाकर उस कपड़ेको नाप-साधकर कटवाकर अँगरखा सिलाया गया। श्रीगुसाईंजीने तुरंत उस अँगरखेको श्रीठाकुरजीके श्रीअंगमें धारण कराया, तब श्रीठाकुरजीने बड़े भावमें भरकर कहा कि अब हमारा जाड़ा दूर हो गया।

श्रीप्रियादासजी श्रीत्रिपुरदासजीके प्रति श्रीठाकुरजीके इस भावका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

दियौ लै भंडारी कर राखे धरि पट वापै निपट सनेही नाथ बोले अकुलायकै।
भये हैं जड़ाये कोऊ बेग ही उपाय करौ बिबिध उढ़ाये अंग वसन सुहायकै॥
आज्ञा पुनि दई यों अंगीठी बारि दई फेर वही भई सुनि रहे अति ही लजायकै।
सेवक बुलाय कही कौनकी कबाय आई सबैकी सुनाई एक वही ली बचायकै॥ ३४२॥
सुनी न त्रिपुरदास, बोल्यो धन नास भयौ मोटो एक थान आयौ राख्यौ है बिछायकै।
ल्यावो बेगि याही छिन मनकी प्रवीन जानि ल्यायो दुखमानि ब्योंति लई सो सिवायकै॥
अंग पहिराई सुखदाई कापै गाई जाति कही तब बात जाड़ौ गयौ भरि भायकै।
नेह सरसाई लै दिखाई उर आई सबै ऐसी रसिकाई हृदै राखी है बसायकै॥ ३४३॥

गोस्वामी श्रीविट्ठलेशसुतजी

श्रीगिरधर जू सरससील गोबिंद जु साथहि।
बालकृष्ण जसबीर धीर श्रीगोकुलनाथहि॥
श्रीरघुनाथ जु महाराज श्रीजदुनाथहि भजि।
श्रीघनस्याम जु पगे प्रभू अनुरागी सुधि सजि॥
ए सात प्रगट बिभु भजन जग तारन तस जस गाइये।
श्रीबिट्ठलेस सुत सुहृद श्रीगोबरधन धर ध्याइये॥ ८०॥

गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजीके पुत्रोंको सर्वभूत सुहृद् साक्षात् श्रीगोवर्धनधारी श्रीकृष्ण जानकर उनका ध्यान करना चाहिये। उनके नाम हैं—१-श्रीगिरिधरजी, जो बड़े रसिक एवं अत्यन्त सुन्दर शील स्वभाववाले थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२-श्रीगोविन्दजीका स्वभाव भी वैसा ही था। ३- श्रीबालकृष्णजी महायशस्वी हुए। ४-श्रीगोकुलदासजी बड़े धीर महापुरुष हुए। ५-श्रीरघुनाथजी महाराज एवं ६-श्रीयदुनाथजी महाराज अपने समगुणोंसे भजनेयोग्य हुए। इनका भजन करना चाहिये। ७-श्रीघनश्यामजी सदा-सर्वदा प्रभुप्रेममें पगे रहते थे, बड़े अनुरागी थे, हृदयमें हमेशा प्रभुकी स्मृति सँजोये रहते थे। ये सातों प्रत्यक्ष ही भगवद्विभूति थे, भगवद्भजनमें परम प्रवीण एवं समर्थ थे तथा श्रीकृष्णकी ही भाँति ये भी संसारका उद्धार करनेवाले थे। इनका यशोगान करना चाहिये॥ ८०॥

गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजीके पुत्रों (विट्ठलेशसुत)-का विशेष वर्णन इस प्रकार है—

गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजीका श्रीठाकुरजीके प्रति वही भाव था, जो नन्दरायजी और यशोदारानीका बालकृष्णके प्रति था। श्रीठाकुरजीने भी इनके वात्सल्यभावको स्वीकार किया था और उनके साथ छोटे बालक-जैसी ही लीला किया करते थे। वे कभी दूध पीनेमें आना कानी करते, कभी सोनेमें तो कभी बन्दरसे डरकर उनकी गोदमें छिप जाते। श्रीगुसाँईजी उनकी इस लीलासे आनन्दविभोर हो जाया करते थे। उनके वात्सल्यभावपर रीझकर एक बार श्रीठाकुरजी प्रकट हुए और उनसे वर माँगनेको कहा। तब आपने यह वर माँगा कि आपने द्वापरमें श्रीनन्दरायजीको जैसी बाललीलाका सुख दिया एवं उनका आपमें जैसा वात्सल्य-स्नेह था, वैसा ही सुख एवं वैसा ही स्नेह आप कृपा करके हमको भी प्रदान करें। तब श्रीठाकुरजीने कहा—पिताके रूपमें तो मुझे आप पितृसुख दे देंगे, पर बिना माताके मेरी बाललीलाका पूर्ण विकास कैसे होगा ? अत: पहले आप मेरे रिक्त मातृपदकी पूर्ति करें, फिर आपको परम प्रभावशाली सात पुत्रोंकी प्राप्ति होगी। उन सभी पुत्रोंमें पाँच-पाँच वर्षतक मेरा आवेश रहेगा। इस प्रकार आपको दीर्घकालतक मेरा वात्सल्य सुख प्राप्त होता रहेगा। कालान्तरमें प्रभुकृपासे आपको सात पुत्रोंकी प्राप्ति हुई और आप दीर्घकालतक वात्सल्यरससिन्धुमें अवगाहन करते रहे। आपने अपने सातों पुत्रोंके लिये सात गद्दियोंकी स्थापना की, जिससे वैष्णव धर्म और भगवद्भक्तिका खूब प्रचार-प्रसार हुआ। लीलासंवरणकालमें आपने अपने सभी पुत्रोंको श्रीठाकुरजीका एक-एक सेवा-विग्रह प्रदान किया था, जिनकी आज भी परम्परागत रूपसे सेवा-पूजा हो रही है।

श्रीकृष्णदासजी

श्रीबल्लभ गुरु दत्त भजन सागर गुन आगर।
कबित नोख निर्दोष नाथ सेवा में नागर॥
बानी बंदित बिदुष सुजस गोपाल अलंकृत।
ब्रज रज अति आराध्य वहै धारी सर्बसु चित॥
सान्निध्य सदा हरि दास बर गौर स्याम दृढ़ ब्रत लियो।
गिरिधरन रीझि कृष्णदास कों नाम माझ साझो दियो॥ ८१॥

श्रीगोवर्धनधारी भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर श्रीकृष्णदासको अपने नाममें हिस्सा दिया। श्रीकृष्णदासजी श्रीगुरु वल्लभाचार्यजीके द्वारा दिये गये भजन-भावके समुद्र एवं समस्त शुभ गुणोंकी खानि थे। आपके द्वारा रची गयी कविताएँ बड़ी ही अनोखी एवं काव्यदोषसे रहित होती थीं। आप ठाकुर श्रीश्रीनाथजीकी सेवामें बड़े चतुर थे। श्रीगिरिधर गोपालजीके मंगलमय सुयशसे विभूषित आपकी वाणीकी विद्वान् जन भी सराहना करते थे। आप श्रीव्रजकी रज (धूल)-को अपना परम आराध्य मानते थे। चित्तमें उसीको सर्वस्व मानकर शरीरमें एवं सिर-माथेपर धारण करते थे तथा चित्तमें चिन्तन भी करते थे। आप सदा-सर्वदा श्रीहरिदासवर्य श्रीगोवर्धनजीके समीप बने रहते थे एवं सदा बड़े-बड़े सन्तोंके सान्निध्यमें रहते थे। आपने श्रीराधा-माधव-युगलकी सेवाका दृढ़ व्रत ले रखा था॥ ८१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णदासजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकृष्णदासजी महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके शिष्य थे। महाप्रभुने ठाकुर श्रीश्रीनाथजीकी सेवाका सम्पूर्ण भार इन्हें सौंपा था। एक बार आप श्रीठाकुरजीके सेवा-कार्यके लिये दिल्ली गये हुए थे। वहाँ बाजारमें कड़ाहीसे निकलती हुई गरमागरम जलेबियोंको देखकर आपने मानसी-सेवामें ही उन जलेबियोंका श्रीश्रीनाथजीको भोग लगाया, भाववश्य भगवान्ने उसे स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप जब मन्दिरमें भोग उसारा गया तो विविध भोग सामग्रियोंमें जलेबीका थाल और हाथमें जलेबी प्रत्यक्ष मौजूद पायी गयी। ऐसे ही एक बार आप आगरा गये थे। वहाँ आप एक वेश्याका अत्यन्त मधुर राग-स्वरसे गायन सुनकर प्रेमके वशीभूत हो गये और उससे बोले—क्या तू हमारे चन्द्रमुख श्रीलालजीके यहाँ चलकर गाना सुना सकती है? वेश्याने इन्हें गुणग्राहक तथा प्रेमी देखकर इनके साथ चलनेकी स्वीकृति दे दी। फिर तो ये भी लोक-लाजको सर्वथा दूरकर उसे साथ लेकर चल दिये।

श्रीकृष्णदासजी उस वेश्याको अपने संग श्रीश्रीनाथजीके मन्दिरमें लिवा लाये और बोले—'आजतक तुमने संसारी लोगोंको रिझाया है, अब हमारे श्रीलालजीको रिझाओ। देखो, ये कैसे रिझवार हैं।' वेश्या श्रीश्रीनाथजीका दर्शन करते ही प्रेममतवाली हो गयी और स्वर साधकर उसने आलाप किया। श्रीकृष्णदासजीने पूछा—क्या तुमने मेरे लालजीको अच्छी प्रकार देखा? उसने कहा—हाँ, मैंने देखा, दर्शनमात्रसे ही हृदयको अत्यन्त अच्छे लग रहे हैं। वेश्याने अपने नृत्य, गान, तान, भावभरी मुसकान और नेत्रोंकी चितवनसे श्रीनाथजीको एकदम रिझा लिया। उसने एकदम तदाकार होकर नृत्य-गान किया। प्रेमाधिक्यके कारण उसका शरीर छूट गया। श्रीठाकुरजीने उसके जीवात्माको अंगीकार कर लिया। वेश्याने अपने हृदयमें प्रेमभाव भर रखा था और भगवान् भी प्रेमके भूखे हैं, अतः उसकी जाति-पाँति या कर्मपर दृष्टि न देकर उसके हृदयके प्रेमको ही अपने हृदयमें धारणकर अपना लिया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकृष्णदासजीसे सम्बन्धित इन दो घटनाओंका इस प्रकार वर्णन किया है—

प्रेम रसरास कृष्णदास जू प्रकाश कियौ लियौ नाथ मानि सो प्रमान जग गाइयै।
दिल्लीके बजारमें जलेबी सो निहारि नैन भोग लै लगाई लगी विद्यमान पाइयै॥
राग सुनि भक्तिनी को भए अनुरागबस ससिमुख लाल जूको जाइ कै सुनाइयै।
देखि रिझवार रीझि निकट बुलाइ लई, लई संग चले जग लाजको बहाइयै॥ ३४४॥
नीके अन्हवाय पट आभरन पहिराय सौधौ हू लगाय हरि मन्दिर में ल्याये हैं।
देखि भई मतवारी कीनी लै अलापचारी कह्यौ 'लाल देखे?' बोली देखेमें ही भाये हैं॥
नृत्य, गान, तान, भावभरि मुसक्यान, दृगरूप लपटान, नाथ निपट रिझाये हैं।
ह्वै कै तदाकार, तन छूट्यौ अंगीकार करी धरी उर प्रीति मन सबके भिजाये हैं॥ ३४५॥

एक बार श्रीकृष्णदासजी श्रीसूरदासजीसे मिलने आये। पद-रचनाके प्रसंगमें श्रीसूरदासजीने विनोदमें कहा कि आप तो कविता करनेमें बड़े प्रवीण हैं, अतः कोई ऐसा पद बनाकर गाइये, जिसमें मेरे पदोंकी छाया न हो। श्रीकृष्णदासजीने पाँच-सात पद गाये। श्रीसूरदासजी उन पदोंको सुनकर मुसकराने लगे तथा पूछनेपर बताया कि आपके इस पदमें हमारे इस पदकी छाया है। श्रीकृष्णदासजी बड़े संकुचित हुए। श्रीसूरदासजीने कहा कि अच्छा, कोई बात नहीं है, कल प्रातःकाल कोई नया पद बनाकर आकर मुझे सुनाना। निवास-स्थानपर आकर श्रीकृष्णदासजीको भारी सोच हुआ; क्योंकि कोई भी भाव श्रीसूरदासजीसे अछूता नहीं मिल रहा था। श्रीकृष्णदासजीकी सोचका निवारण करनेके लिये प्रभुने स्वयं एक अत्यन्त सुन्दर पद बनाकर श्रीकृष्णदासजीकी शय्यापर रख दिया। जब चिन्तामें निमग्न श्रीकृष्णदासजी शय्यापर पौढ़ने गये तो सिरहाने श्रीप्रभुके करकमलसे लिखा हुआ पद पाया। फिर क्या था, प्रातःकाल होते ही श्रीकृष्णदासजी पुनः श्रीसूरदासजीके पास आये और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णदासकी नर्तकीपर कृपा [पृ० २८६]

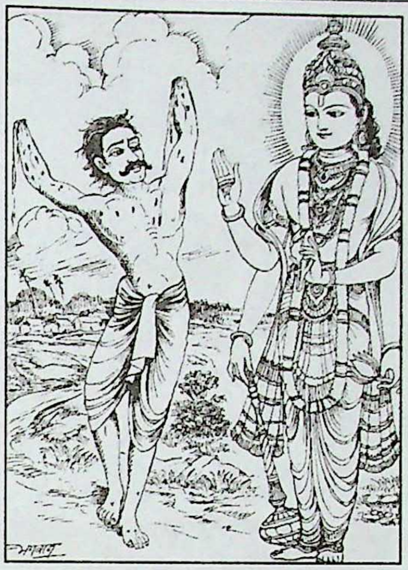

भक्त सदनपर प्रभुकृपा [पृ० ३१९]

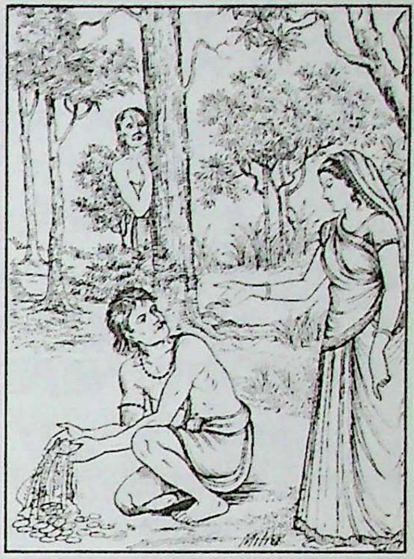

राँका-बाँका [पृ० ३२४]

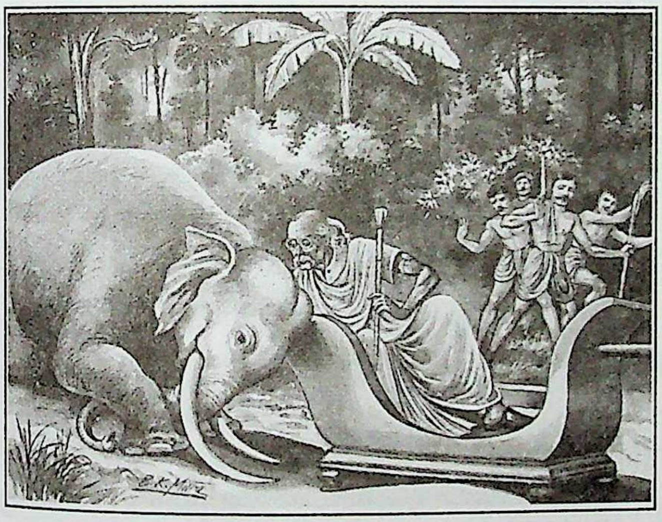

रसिकमुरारीका हाथीको उपदेश [पृ० ३१६]

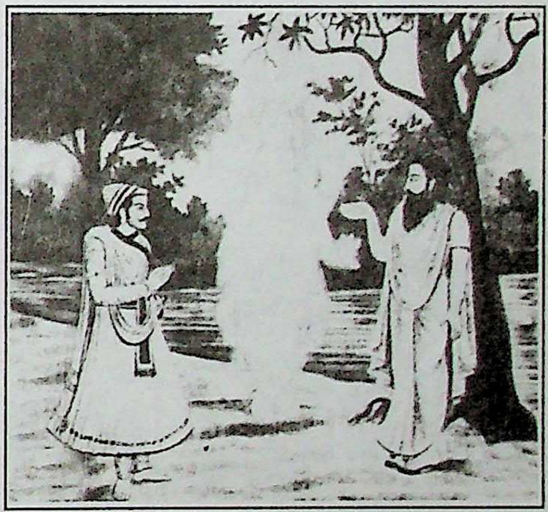

पृथ्वीराज और पयहारीजी [पृ० ३७९]

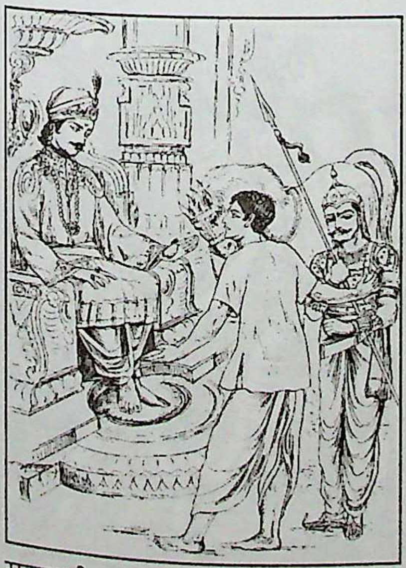

सत्यवादी भक्त घाटम [पृ० ३३६]

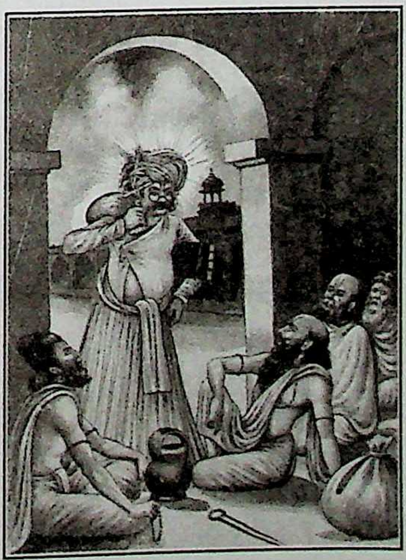

नरसीके साँवलशाह [पृ० ३५८]

भक्त अंगद और उनकी बहन [पृ० ३७०]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिमती मीरा [पृ० ३७४]

श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी [पृ० ४०३]

भगवान् नृसिंहकी रत्नावतीपर कृपा [पृ० ४१८]

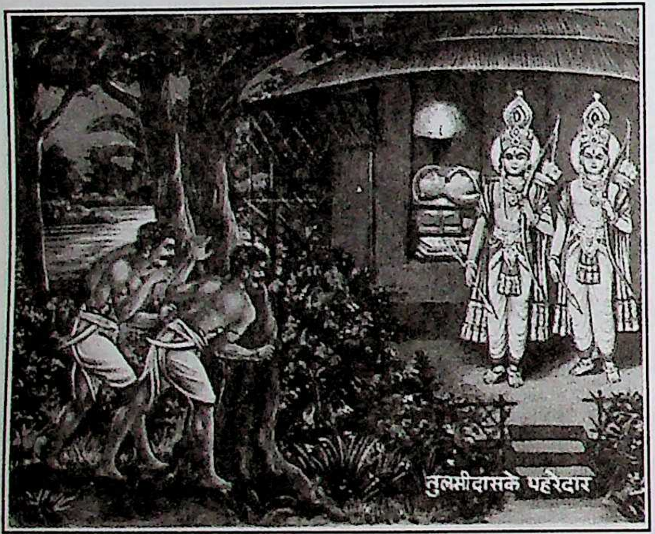

तुलसीदासके पहरेदार [पृ० ३९६]

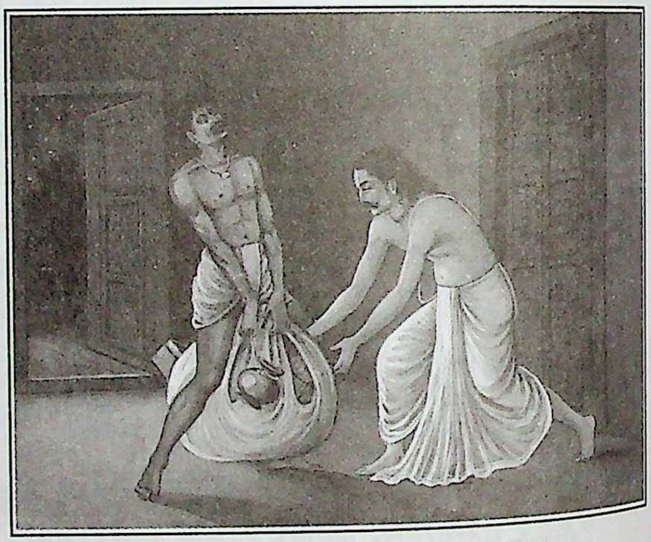

भक्त गदाधरभट्ट [पृ० ४०६]

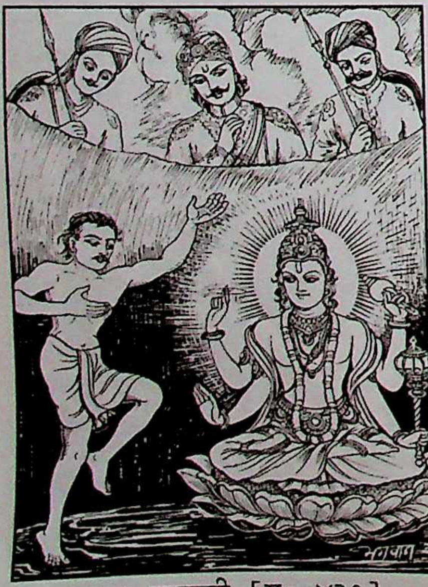

भक्त कूबाजी [पृ० ४३१]

भक्तिमती करमैतीबाई [पृ० ४४६]

भक्त प्रेमनिधिपर प्रभुकृपा [पृ० ४५१]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस पदको सुनाया। सुनकर श्रीसूरदासजी बड़े सुखी हुए, साथ ही यह जानकर कि यह पद श्रीकृष्णदासरचित नहीं हो सकता है, इसे तो श्रीश्रीनाथजीने बनाया है, श्रीसूरदासजीने इसे श्रीठाकुरजीका पक्षपात बताया। श्रीठाकुरजीके इस पक्षपातपर श्रीसूरदासजी रूठ गये। उन्होंने मन्दिरमें कीर्तनकी सेवा बन्द कर दी, तब श्रीठाकुरजीने उन्हें मनाया। फिर तो भक्त और भगवान्‌के हृदयमें परस्पर प्रेम रंग छा गया।

श्रीठाकुरजीकी इस लीला और भक्तवत्सलताका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

आए सूर सागर सो कही बड़े नागर हौ कौऊ पद गावो मेरी छाया न मिलाइयै।
गाए पांच सात सुनि जानि मुसकात कही भले जू प्रभात आनि करिकैं सुनाइयै॥
पर्‌यो सोच भारी गिरिधारी उर धारी बात सुन्दर बनाय सेज धर्‌यो यों लखाइयै।
आयके सुनायौ सुख पायौ पच्छपात लै बतायौ हूँ मनायौ रंग छायौ अभूगाइयै॥ ३४६॥

अन्त समयमें श्रीकृष्णदासजी फिसलकर कुएँमें गिर गये और उसीमें इनका शरीर छूट गया। यद्यपि भजनके प्रतापसे आपको तत्काल दिव्यदेहकी प्राप्ति हो गयी, परंतु लोगोंके मनमें अकाल मृत्युकी आशंका थी। इस आशंकासे रसिकजनोंके मनमें दुःख हुआ। सुजानशिरोमणि श्रीश्रीनाथजीने भक्तोंके हार्दिक दुःखको जानकर उसे दूर करनेके लिये तथा लोगोंकी आशंकाका निवारण करनेके लिये श्रीकृष्णदासजीका परम सुखदायी ग्वालस्वरूप लोगोंको प्रत्यक्ष दिखला दिया। श्रीगोवर्धनजीकी तलहटीमें कुछ व्रजवासियोंको देखकर दिव्यदेहधारी श्रीकृष्णदासजीने कहा कि आगे श्रीबलदाऊजी गये हैं, उन्हींके साथ पीछे-पीछे मैं भी जा रहा हूँ, आपलोग श्रीगुसाईं विट्ठलनाथजीसे मेरा प्रणाम कह देना। तदुपरान्त श्रीकृष्णदासजीने पृथ्वीमें गड़े हुए धनका पता बताया, जो इन्होंने पूर्व शरीरसे सुरक्षार्थ पृथ्वीमें गाड़ रखा था। व्रजवासियोंने आकर श्रीकृष्णदासजीका वृत्तान्त गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजीसे निवेदन किया, पुनः निर्दिष्ट स्थान खोदा गया तो वहाँ धन भी मिला। इससे सबको विश्वास हो गया कि निश्चय ही इन व्रजवासियोंको श्रीकृष्णदासजी मिले थे तथा दूसरी बात यह कि श्रीकृष्णदासजीकी अधोगति नहीं हुई, वे भगवान्‌की नित्यलीलामें सम्मिलित हो गये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कुवां में खिसिल देह छूटि गई नई भई भई यों असंका कछु और उर आई है।
रसिकन मन दुख जानि सो सुजान नाथ दियो दरसाय तन ग्वाल सुखदाई है॥
गोबर्धन तीर कही 'आगे बलबीर गये श्रीगुसाईं धीरसों प्रनाम' यों जनाई है।
धनहू बतायो खोदि पायो बिसवास आयो हिये सुख छायो संक पंक लै बहाई है॥ ३४७॥

श्रीवर्धमानजी तथा श्रीगंगलजी

श्रीभागवत बखानि अमृतमै नदी बहाई।
अमल करी सब अवनि ताप हारक सुखदाई॥
भक्तन सों अनुराग दीन सों परम दयाकर।
भजन जसोदानंद संत संघट के आगर॥
भीषमभट अंगज उदार कलिजुग दाता सुगति के।
बर्द्धमान गंगल गँभिर उभै थंभ हरि भगति के॥ ८२॥

श्रीवर्धमानजी तथा श्रीगंगलजी—ये दोनों भाई भक्तिरूपी सेतुके दो सुदृढ़ स्तम्भ थे। इन्होंने श्रीमद्भागवतमहापुराणकी कथा कहकर मानो पृथ्वीपर कथासुधाकी नदी बहा दी तथा अपने दर्शन-स्पर्श-सदुपदेश-समागमादिसे सम्पूर्ण पृथ्वीको पापरहित कर दिया। आप दोनों प्राणियोंके तीनों तापोंको दूर करनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा उन्हें परम सुख देनेवाले हुए। आप दोनों भक्तोंसे अत्यन्त प्रेम एवं दीनोंपर दया करनेवाले थे, श्रीयशोदानन्दन श्रीकृष्णकी उपासना करते थे, सन्त-समूहमें अग्रगण्य तथा सेवामें बड़े चतुर थे। आप दोनों श्रीभीष्मभट्टजीके पुत्र थे, स्वभावसे बड़े उदार थे तथा इस कराल कलिकालमें भी प्राणियोंको उत्तम गति अर्थात् भगवत्पद प्रदान करनेवाले थे॥ ८२॥

श्रीक्षेम गुसाईंजी

रघुनंदन को दास प्रगट भूमंडल जानै।
सर्बस सीताराम और कछु उर नहिं आनै॥
धनुष बान सों प्रीति स्वामि के आयुध प्यारे।
निकट निरंतर रहत होत कबहूँ नहिं न्यारे॥
सूरबीर हनुमत सदृस परम उपासक प्रेम भर।
रामदास परताप तें खेम गुसाईं खेमकर॥ ८३॥

श्रीगुरु रामदासजीके प्रतापसे, कृपाप्रसादसे श्रीक्षेम गुसाईंजी सचमुच प्राणियोंका क्षेम अर्थात् कल्याण करनेवाले हुए। आप श्रीराघवेन्द्रसरकारके अनन्य भक्त थे, यह बात सारे संसारमें विख्यात थी, सब लोग जानते थे। आपके सर्वस्व श्रीसीतारामजी थे। अपने इष्टको छोड़कर और कुछ भी हृदयमें नहीं लाते थे। आपको अपने आराध्यदेव श्रीरामजीके आयुध बड़े प्यारे लगते थे, अतः श्रीरामजीकी ही तरह श्रीरामजीके आयुध धनुष-बाणसे भी अत्यन्त प्रीति करते थे। आप भावनामें निरन्तर अपने प्रभु श्रीसीतारामजीके सन्निकट बने रहते थे, कभी भी एक क्षणके लिये भी अलग नहीं होते थे। आप श्रीहनुमान्‌जीके समान शूर-वीर, अनन्य उपासक एवं परम प्रेमसे परिपूर्ण थे॥ ८३॥

श्रीक्षेम गुसाईंजीके सम्बन्धमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीक्षेमदासजी श्रीगुरु रामदासजीके शिष्य थे, आपकी प्रभु श्रीसीतारामजीमें अनन्य भक्ति थी। एक बार आपको श्रीरामदर्शनकी प्रबल लालसा जगी, आप प्रभु-वियोगमें रात-दिन आँसू बहाते रहते। यहाँतक कि अन्न-जल भी छूट गया। यह देखकर श्रीहनुमान्‌जीको इनपर बड़ी दया आयी। उन्होंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीसे इन्हें दर्शन देनेकी प्रार्थना की। श्रीहनुमान्‌जीकी प्रार्थना और आपके प्रेमसे द्रवीभूत श्रीराघवेन्द्रसरकारने प्रकट होकर आपको दर्शन दिये और वरदान माँगनेको कहा। आपने प्रभुसे उनकी अनन्य भक्ति माँगी और सेवा करनेके लिये उनके आयुधद्वय धनुष-बाण माँगे। भगवान् श्रीराम वरदानस्वरूप इन्हें अपने धनुष-बाण देकर अन्तर्धान हो गये। उसी दिनसे आप प्रभुके धनुष-बाणकी आरती-पूजा करते और उनका दर्शन करके अपने आराध्यके दर्शनका सुख पाते थे।

श्रीविट्ठलदासजी

तिलक दाम सों प्रीति गुनहिं गुन अंतर धार्‌यो।
भक्तन को उत्कर्ष जनम भरि रसन उचार्‌यो॥
सरल हृदै संतोष जहाँ तहँ पर उपकारी।
उत्सव में सुत दान कियौ क्रम दुसकर भारी॥
हरि गोबिंद जै जै गुबिंद गिरा सदा आनंददा।
बिठलदास माथुर मुकुट भयो अमानी मानदा॥ ८४॥

श्रीविट्ठलदासजी मथुराके चतुर्वेदी ब्राह्मणोंमें सिरमौर हुए। आप स्वयं सर्वथा अभिमानशून्य रहते हुए दूसरोंको सम्मान देते थे। वैष्णवताके प्रतीक ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, श्रीतुलसीकी कण्ठी-माला आदिसे आप अत्यन्त प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते थे तथा सबमें गुण-ही-गुण देखते थे एवं सबके अवगुणोंपर दृष्टिपात न करके सबके गुणोंको हृदयमें धारण करते थे। आपने जीवनभर भक्तोंकी ही महिमाका जिह्वासे गान किया। आप परम सरल हृदय तथा सन्तोषी थे एवं सदा-सर्वत्र परोपकारमें रत रहा करते थे। आपने भगवान्के उत्सवमें पुत्रदानरूपी अत्यन्त महान् कर्म किया, जो औरोंसे असम्भव है। आपकी जिह्वासे सदा-सर्वदा *'हरि गोबिंद जै जै गुबिंद'* का उच्चारण होता रहता था, जिसे सुनकर सबको परमानन्द प्राप्त होता था॥ ८४॥

श्रीविट्ठलदासजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

मथुरापुरीके चतुर्वेदी ब्राह्मणोंमें दो ब्राह्मण भाई उदयपुरके राणाके पुरोहित थे। एक बार धनके बँटवारेको लेकर दोनों भाई आपसमें लड़कर मर गये। उन्हींमेंसे एकके पुत्र श्रीविट्ठलदासजी थे। ये बचपनसे ही भगवान्को हृदयमें बसाये हुए थे। एक दिन सभामें राणा साहबने कहा—पिताके मरनेके बाद वह ब्राह्मण-कुमार कभी भी सभामें नहीं आता है, उसे शीघ्र बुला लाओ। राजकर्मचारियोंने आकर श्रीविट्ठलदासजीसे कहा कि चलो, राणा साहब तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण कर देंगे। तब उन्होंने कहा कि भगवत्कृपासे मेरे सब मनोरथ पूर्ण हो गये हैं, अतः अब तो मैं एकमात्र भगवद्भजनको छोड़कर और कहीं आना-जाना नहीं चाहता। कर्मचारियोंने इनका सन्देश राजाको सुनाया। राजाने इन्हें पुनः यह कहकर बुलवाया और प्रार्थना की कि आज रात्रिमें भगवन्नाम-संकीर्तनपूर्वक जागरण हमारे ही यहाँ हो।

श्रीविट्ठलदासजी साधुओंको साथ लेकर राणा साहबके यहाँ पहुँचे। इनके प्रेमकी परीक्षा करनेके लिये राणाने कुछ दुष्टोंके बहकावेमें आकर जागरणके लिये महलकी तीसरी मंजिलकी छतपर बिछौना बिछवाया। सभी लोग प्रेमपूर्वक कीर्तन तथा नृत्य करने लगे। नाचते-गाते श्रीविट्ठलदासजीको प्रेमावेश आया तो ये बेसुध होकर नृत्य करते हुए छतपरसे गिरकर नीचे पृथ्वीपर आ पड़े। यह देखकर राणाका मुँह एकदम उदास हो गया, वह दुष्टोंको गाली देने लगा कि इनके कहनेसे ही मैंने ऐसा किया और फलस्वरूप इतना महान् अनर्थ हो गया। साधुलोग श्रीविट्ठलदासजीको गोदमें उठाकर घर ले आये। राणाने अपने अपराधके प्रायश्चित्त तथा इनकी वृद्ध माताकी जीविकाके निमित्त इनकी माताको बहुत-सा द्रव्य भेंटमें दिया। तीन दिनतक इनका शरीर मूर्च्छित पड़ा रहा। तीन दिन बाद जब वैष्णवोंने आपको जगाया तो शरीरकी सुधि हुई, आप उठकर बैठ गये। भगवत्कृपासे किसी अंगमें चोट नहीं आयी थी। मूर्च्छा तो प्रेमजन्य थी।

मूर्च्छा दूर होनेपर जब श्रीविट्ठलदासजी उठे तो माताने सब हाल कह सुनाया। उसे सुनकर इन्हें असह्य दुःख हुआ, ये रात्रिमें घरसे निकल पड़े। घूमते-फिरते छठीकरा गाँवमें आकर श्रीगरुड़ गोविन्द भगवान्की सेवा-पूजा करने लगे और फिर वहीं रहने लगे।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भाई उभैं माथुर सुराना के पुरोहित हे, लरि मरे आपस में जियो एक जाम है।
ताको सुत विट्ठल सुदास सुखरासि हिये लिए बैस थोरी भयौ बड़ौ सेवै स्याम है॥
बोल्यो नृप सभा मध्य 'आवत न विप्र सुत छिप्र लैकै आवौ' कही कह्यौ पूजै काम है।
फेरिकै बुलायौ 'करौ जागरन याही ठौर', काहू समझायौ 'गावै नाचै प्रेमधाम है'॥ ३४८॥
गए संग साधुनि लै बिनै रंग रँगे सब राना उठि आदर दै नीके पधराये हैं।
किये जा बिछौना तीनि छत्तनिके ऊपर लै नाचि गाय आये प्रेम गिरे नीचे आये हैं॥
राजा मुख भयो सेत दुष्टनि को गारीदेत सन्त भरि अंक लेत घर मधि ल्याये हैं।
भूपबहु भेंट करी देह वाही भांति परी पाछे सुधि भई दिन तीसरे जगाये हैं॥ ३४९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठे जब मायने जनाय सब बात कही सही नहीं जात निसि निकसे बिचारिकै।
आये यों छठीकरा में गरुड़ गोविन्दसेवा करत मगन हिये रहत निहारिकै॥
राजाके जे लोग सु तो ढूंढ़ि करि रहे बैठि तिया मात आई करै रुदन पुकारिकै।
किये लै उपाय रही कितौ हा हा खाय ये तौ रहे मँडराय तब बसी मन हारिकै॥ ३५०॥

छठीकरा (गरुड़ गोविन्द) निवासकालमें एक बार इनका शरीर दुःखी हो गया। इनके शारीरिक कष्टको देखकर भगवान् श्रीगरुड़ गोविन्दजीने स्वप्नमें आदेश दिया कि तुम मथुरा चले जाओ। भगवान्‌ने तीन दिन लगातार इस प्रकारका स्वप्नादेश दिया। तब ये माता और पत्नीको लेकर मथुरा चले आये, जहाँपर इनकी जाति-बिरादरीके लोग रहते थे। परंतु इन्होंने देखा तो वहाँ कुछ और ही रंग छा रहा था। हाँ, एक बढ़ई अवश्य ऐसा था, जो सदा साधु-संगकी अभिलाषा करता था। उसकी सज्जनताको देखकर ये उसीके घर रहने लगे। उन दिनों इनकी पत्नी गर्भवती थी और धनके अभावमें अत्यन्त शोकमग्न रहा करती थी। दैवयोगसे इन्हें एक दिन घरमें मिट्टी खोदते समय पृथ्वीमें गड़ा हुआ धन एवं श्रीठाकुरजीकी एक प्रतिमा मिली। श्रीविट्ठलनाथजीने खातीको बुलाकर कहा—देखो, तुम्हारे घरमें पृथ्वीमें गड़ा हुआ यह धन और श्रीठाकुरजीकी प्रतिमा मुझे मिली है, इसे ग्रहण करो। परंतु उस बढ़ईने इनके चरणोंमें माथा टेककर प्रणाम करके कहा—इस धनसे आप ही श्रीठाकुरजीकी सेवा करिये। हम तो आपके दर्शन और सत्संगसे ही परम सुखी हैं।

श्रीप्रियादासजी महाराजने श्रीविट्ठलनाथजीके प्रति बढ़ईके दिव्य भावका इस प्रकार वर्णन किया है—

देख्यो जब कष्ट तन प्रभू जू स्वपन दियौ 'जावौ मधुपुरी' ऐसै तीन बार भाषियै।
आये जहां जाति पांति छाये कछु औरै रंग देख्यो एक खाती साधु संग अभिलाखियै॥
तिया रहै गर्भवती सती मति सोचरती खोदि भूमि पाई प्रतिमा सुधन राखियै।
खातीको बुलाय कही, 'लही, यहु लेहु तुम' उन पांय परि कह्यौ रूप मुख चाखियै॥ ३५१॥

अब श्रीविट्ठलदासजी सदा भगवान्‌की सेवा-पूजामें लगे रहते थे। धीरे-धीरे जब आपकी भक्ति चारों ओर फैल गयी तो बहुत-से लोग प्रेमपूर्वक आकर आपके शिष्य बन गये। आपके यहाँ रसिकजनों तथा गुणी गायकजनोंका बहुत बड़ा समाज एकत्रित होता था। एक बार ऐसे ही समाजके अवसरपर गुणीजनोंने बधाईके विविध पद गाये। सब लोग आनन्दसे झूम रहे थे। इस बीच वहाँ रूप-गुण-धनसे जटित एक नटी आयी और भगवान्‌के सामने नृत्य-गान करने लगी। जब वह विविध मूर्च्छनाओंके साथ कटीली तानसे सबके हृदयमें प्रेमकी चटपटी-सी उत्पन्न करती हुई गाने लगी तो उसके कौशलपर रीझकर श्रीविट्ठलदासजीने प्रेमसे व्याकुल होकर अपने पुत्रको ही भगवान्‌के ऊपर न्यौछावर करके उस नटीको दे दिया।

श्रीविट्ठलदासजीके पुत्रका नाम श्रीरंगीराय था। श्रीराणासाहबकी एक पुत्री उनकी शिष्या थी। जब उसने सुना कि हमारे गुरुदेवजीको उनके पिताने न्यौछावरमें किसी नटिनीको दे दिया तो उसे बड़ा दुःख हुआ, उसने एकदम अन्न-जलका परित्याग कर दिया। राणासुताने उस नटिनीको संदेश कहलाया कि जितना धन चाहो उतना हमसे ले लो, परंतु मेरे श्रीगुरुदेवजीको मुझे वापस कर दो। उस नटिनीने उत्तरमें कहा कि द्रव्यकी मुझे किंचिन्मात्र भी चाहना नहीं है, हाँ मैं रीझकर तो अपना तन-मन तथा सर्वस्व दे सकती हूँ। तब राणाकी पुत्रीने श्रीविट्ठल-दासजीसे पुनः समाज करानेकी प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना मानकर श्रीविट्ठलदासजीने दुबारा समाज किया। उसमें राणाकी पुत्रीने स्वयं भी नृत्य किया। उसके नृत्यपर रीझकर औरकी तो बात ही क्या, स्वयं वह नटिनी भी न्यौछावरमें उसे बहुत-सा द्रव्य देने लगी, परंतु उसने नहीं लिया।

वह नटिनी श्रीरंगीरायजीका सुन्दर शृंगार करके,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें एक डोलेमें बिठाकर सभामें लायी और उन्हें श्रीठाकुरजीके द्वारपर ले जाकर न्यौछावर करके राणा सुताको भेंट किया। जब राणा सुताने उन्हें लेनेके लिये हाथ बढ़ाया तो उन्होंने कहा कि मैं तो मनमोहन श्रीकृष्णचन्द्रके न्यौछावर हो चुका हूँ, अत: तुम मुझे मत लो। परंतु प्रेमार्त उनकी शिष्या राणा सुताने उन्हें ले ही लिया। इस प्रकार राणाकी पुत्रीका अभीष्ट सिद्ध तो हो गया लेकिन दूसरे ही क्षण श्रीरंगीरायजीने अपना तन त्याग दिया। ऐसे श्रीरंगीरायजीको एवं उनकी-सी निष्ठाको कोई कहाँ पा सकता है।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

करैं सेवा पूजा और काम नहिं दूजा जब फैलि गई भक्ति भये शिष्य बहु भायकै।
बड़ोई समाज होत मानों सिंधु सोत आये बिबिध बधाये गुनी जन उठै गायकै॥
आई एक नटी गुण रूप धन जटी वह गावै तान कटी चटपटी सी लगायकै।
दिये पट भूषन लै भूख न मिटत किहूं चहूँ दिसि हेरि पुत्र दियो अकुलायकै॥ ३५२॥
'रंगीराय' नाम ताकी सिष्या एक राना सुता भयो दुःख भारी नेकु जलहूँ न पीजियै।
कहि कै पठाई वासों चाहौ सोई धन लीजे मेरो प्रभु रूप मेरे नैननि कूँ दीजियै॥
द्रव्य तौ न चाहौं रीझि चाहौं तन मन दियौ फेरिकै समाज कियौ विनती कौ कीजियै।
जिते गुनी जन तिनै दियो अनगनदाम पाछे नृत्य कर्‍यौ आप देत सो न लीजियै॥ ३५३॥
ल्याई एक डोलामें बैठाय रंगीराय जू कौ सुन्दर सिंगार कही बार तेरी आइयै।
कियौ नृत्य भारी जो विभूति सो तौ वारि लिये भरि अंकवारी भेंट किये द्वार गाइयै॥
'मोहन न्यौछावर मैं भयौ मोहि लेहु मति' लियौ उन शिष्य तन तज्यौ कहा पाइयै।
कह्यौ जू चरित्र बड़े रसिक विचित्रन कौ जो पै लाल मित्र कियौ चाहौ हिये ल्याइयै॥ ३५४॥

श्रीहरिराम हठीलेजी

उग्र तेज ऊदार सुघर सुथराई सींवा।
प्रेम पुंज रस रासि सदा गदगद सुर ग्रीवा॥
भक्तन को अपराध करै ताको फल गायो।
हिरनकसिपु प्रहलाद परम दृष्टांत दिखायो॥
सस्फुट बकता जगत में राज सभा निधरक हियो।
हरिराम हठीले भजन बल राना को उत्तर दियो॥ ८५॥

श्रीहरिराम हठीलेजीने भजनके बलसे चित्तौड़के राणाके साथ निर्भय होकर उत्तर-प्रत्युत्तर किया। आप परम तेजस्वी, उदार, सुन्दर एवं स्वच्छता-पवित्रताकी सीमा थे। आप प्रेम-निधान तथा भक्तिरसकी राशि थे। प्रेमावेशके कारण आप सदा गद्‌गद वाणी बोलते थे। भक्तोंका अपराध करनेपर, उसका क्या दुष्परिणाम भोगना पड़ता है, यह बात आपने जोर देकर कही है और इसकी पुष्टिमें आपने हिरण्यकशिपु और श्रीप्रह्लादजीका ज्वलन्त दृष्टान्त दिया है। आप संसारमें बड़े स्पष्ट वक्ता थे। आपने राजसभामें भी निर्भय होकर राणाको उत्तर दिया॥ ८५॥

श्रीहरिराम हठीलेजीकी राणासे संवादकी घटना इस प्रकार है—

एक संन्यासी थे, उनका राणा साहबके साथ बड़ा स्नेह था। वे उनके साथ सदा चौपड़ खेला करते थे। उन्होंने राणा साहबका बल पाकर एक वैष्णव सन्तकी भूमि छिनवा ली थी। सन्तने राणाके पास जाकर पुकार की, परंतु वह चूँकि संन्यासीके वशमें था, अत: उसने सन्तको फटकारकर भगा दिया। सन्तकी सच्ची बातको भी झूठी करके अनसुनी कर दी। तब वे सन्त श्रीहरिरामजी हठीलेके पास आये और अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। श्रीहरिरामजीने उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैष्णव सन्तको अपना भाई जानकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया, उन्हें बहुत प्रकारसे आश्वासन दिया और उनको साथ लेकर आगे-आगे राणाके पास चले। दोनों महानुभाव राणाके यहाँ गये और उससे वार्तालाप करनेकी प्रतीक्षामें बहुत देरतक बैठे रहे, परंतु उस विमुखने इसपर किंचित् ध्यान नहीं दिया कि मेरे यहाँ सन्त-महात्मा आये हैं। तब श्रीहरिरामजीने स्वयं वार्ता चलायी और राजाको समझाया कि वह सन्तकी भूमि संन्यासीसे दिलवा दें, परंतु जब उसने इनकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया तो इन्होंने निर्भय होकर राणाको खूब फटकारा और अन्तमें उसे लोक-परलोकका भय दिखाकर सन्तकी भूमि पुनः वापस करवा दी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

राना सों सनेह सदा चौपर कौं खेल्यौ करै ऐसो सो संन्यासी भूमि सन्तकी छिनाई है।
जायकै पुकार्‌यौ साधु झिरकि बिडार्‌यो पर्‌यौ विमुखके बस बात सांची लै झुठाई है॥
आये हरिराम जू पै सबही जताई रीति प्रीति करि बोले चल्यौ आगे आवै भाई है।
गये बैठे आयौ जन मनमें न ल्यायौ नृप तब समुझायो झार्‌यौ फेरि भू दिवाई है॥ ३५५॥

श्रीकमलाकरभट्टजी

पंडित कला प्रबीन अधिक आदर दें आरज।
संप्रदाय सिर छत्र द्वितिय मनों मध्वाचारज॥
जेतिक हरि अवतार सबै पूरन करि जानै।
परिपाटी ध्वजबिजै सदृस भागवत बखानै॥
श्रुति स्मृती संमत पुरान तप्त मुद्राधारी भुजा।
कमलाकर भट जगत में तत्वबाद रोपी धुजा॥ ८६॥

पण्डित श्रीकमलाकरभट्टजीने संसारमें तत्त्ववादकी ध्वजा फहरायी। आप शास्त्रार्थ, खण्डन-मण्डन एवं शंका-समाधानादिकी कलाओंमें बड़े चतुर थे। श्रेष्ठ पुरुष आपका बड़ा आदर करते थे। आप 'माध्व-गौड़ेश्वर सम्प्रदाय' के सिरमौर थे। आपको देखकर ऐसा लगता था, मानो आप ब्रह्म-सम्प्रदाय-प्रवर्तकाचार्य श्रीमन्मध्वाचार्यजीकी ही प्रतिमूर्ति हों। आप भगवान्‌के सभी अवतारोंको पूर्णावतार ही जानते एवं मानते थे। श्रीमद्भागवतकी 'विजयध्वजी' टीकाकी पद्धतिसे श्रीमद्भागवतकी व्याख्या करते थे। आपके वचन श्रुति-स्मृति-पुराणसम्मत होते थे। आप अपनी भुजाओंपर तप्त मुद्राओंको धारण किये हुए थे॥ ८६॥

श्रीनारायणभट्टजी

गोप्य स्थल मथुरा मँडल जिते बाराह बखाने।
(ते) किए नरायन प्रगट प्रसिध पृथ्वी में जाने॥
भक्ति सुधा को सिंधु सदा सतसंग समाजन।
परम रसग्य अनन्य कृष्न लीला को भाजन॥
ग्यान समारत पच्छ को नाहि न कोउ खंडन बियो।
ब्रजभूमि उपासक भट्ट सो रचि पचि हरि एकै कियो॥ ८७॥

श्रीव्रजभूमिकी उपासना करनेवाला श्रीनारायण-भट्टजी-सरीखा भक्त भगवान्‌ने बहुत परिश्रम करके एक ही बनाया। श्रीवाराहपुराणमें मथुरामण्डल (चौरासी कोस)-के जितने तीर्थोंका वर्णन किया गया है, कालके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख्यालसे वे सभी तीर्थ लुप्तप्राय हो गये थे। श्रीनारायणभट्टजीने उन सभी तीर्थोंको प्रकट और प्रसिद्ध किया, यह बात सर्वप्रसिद्ध है और सारी पृथ्वीके लोग जानते हैं। आप भक्तिरसामृतके समुद्र थे तथा सदा ही सन्तोंके समाजमें विराजमान होकर सत्संग किया करते थे। आप परम रसज्ञ, अनन्य निष्ठावान् तथा श्रीकृष्णलीलामृतको धारण करनेके लिये उत्तम पात्र एवं नित्यलीलाके पात्र थे। शुष्कज्ञान तथा कोरे कर्मकाण्डका खण्डन करके भक्तिकी स्थापना करनेवाला आपके समान दूसरा कोई नहीं हुआ॥ ८७॥

श्रीनारायणभट्टजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीनारायणभट्टजीका जन्म दक्षिण भारतके मदुरानगरमें वैशाख शु० १४, सं० १५८८ वि० को हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीभास्करभट्ट और माताका नाम यशोमति था। उपनयन संस्कार होनेके बाद आपने अपने पितृव्य श्रीशंकरभट्टजीसे वेद-वेदान्त आदि शास्त्रोंका अध्ययन करना प्रारम्भ किया और बारह वर्षकी अवस्थामें ही उसे पूर्ण कर लिया। भगवान् श्रीराधा-माधव और ब्रज-वृन्दावनके प्रति अनुरागपूर्ण भक्तिभाव आपमें बचपनसे ही था।

एक दिन आप श्रीगोदावरीजीमें स्नान करके स्तोत्रपाठ करते हुए युगलसरकारका ध्यान कर रहे थे। उसी समय प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवजीने प्रकट होकर आपको दर्शन दिया और उपासना-रहस्योपदेशके साथ-साथ यह आदेश दिया कि तुम शीघ्र ही ब्रज जाकर मेरी लीलास्थलियोंका प्रकाश करो। यह कहकर श्रीभगवान्ने आपको अपना 'लाडिलेय' नामक बालस्वरूपवाला श्रीविग्रह प्रदान किया और कहा कि इसकी सेवा-पूजासे तुमको व्रजलीलाके रहस्योंका बोध हो जायगा। इस अलौकिक घटनाके उपरान्त आप व्रजमें निवास करने और लुप्त तीर्थोंका प्राकट्य करनेके लिये घरसे चल दिये और ढाई वर्षतक तीर्थाटन करके वि० सं० १६०२ में आप व्रज पहुँचे। श्रीव्रजधाम पहुँचनेपर सर्वप्रथम आप श्रीगोवर्धनके समीपस्थ श्रीराधा-कुण्ड गये, जहाँ चैतन्यमतानुयायी श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजीसे सम्प्रदायके सिद्धान्तों एवं उपासना-रहस्यका अध्ययन किया। तदुपरान्त आपने भगवान्‌की आज्ञाका स्मरणकर व्रजके लुप्त तीर्थोंका उद्धार करनेका निश्चय किया। सर्वप्रथम आपने श्रीराधाकुण्ड और श्यामकुण्डको प्रकट करानेकी योजना बनायी; परंतु उस समय कोई आपकी बातका विश्वास ही नहीं कर रहा था। तब आपने एक स्थानपर दस हाथकी गहराईतक धरतीका उत्खनन कराया तो वहाँ दहीसे भरे एक मृण्मय पात्रकी प्राप्ति हुई और टूटी सीढ़ियाँ भी दिखीं; जिससे लोगोंको आपकी बातका विश्वास हो गया। फिर तो आप सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें घूम-घूमकर तीर्थोंको प्रकटित कराने लगे। व्रजवासी भी इसमें आपको पूर्ण सहयोग देते थे। एक बार आप मथुरामें विराजमान थे। माघका महीना था, बहुत-से लोग तीर्थराज प्रयागमें श्रीत्रिवेणी-स्नानको जा रहे थे। आपने उन लोगोंसे कहा कि चलो मैं दिखाऊँ, श्रीत्रिवेणीजी तो व्रजमें ही हैं, फिर आप सब लोग अन्यत्र क्यों जा रहे हैं? तब लोगोंने आश्चर्यचकित होकर पूछा कि 'व्रजमें त्रिवेणी कहाँ है?' आपने कहा 'ऊँचेगाँवमें।' फिर आप सबको साथ लिवा लाये एवं भूमि खोदकर श्रीत्रिवेणीजीके तीन स्रोत सबको प्रत्यक्ष दिखा दिये।

श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भट्ट श्रीनारायन जू भये व्रजपारायन जायँ जाही ग्राम तहाँ व्रत करि ध्याये हैं।
बोलिकै सुनावैं इहां अमुकौ स्वरूप है जू लीला कुण्ड धाम स्याम प्रगट दिखाये हैं॥
ठौर ठौर रासकै विलास लै प्रकास किये जिये यों रसिक जन कोटि सुख पाये हैं।
मथुराते कही चलौ बेनी पूछै बेनी कहाँ ऊँचे गाँव आप खोदि स्रोत लै लखाये हैं॥ ३५६॥

उस समय अकबर दिल्लीका बादशाह था, वह भी आपके कार्योंसे अत्यन्त प्रभावित हुआ, अतः उसने अपने कोषाध्यक्ष राजा टोडरमलको आपकी सेवामें भेजा। श्रीटोडरमलजीके द्वारा सेवाकी प्रार्थना करनेपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने कहा कि यदि आपका विशेष प्रेम है तो मैंने जिन-जिन तीर्थोंको प्रकट किया है, उनका स्वरूपानुरूप आप निर्माण करा दीजिये। टोडरमलजीने सहर्ष आज्ञा स्वीकार की और तीर्थोंका सुन्दर ढंगसे निर्माण करा दिया। आपने श्रीबरसाने ग्राममें 'श्रीश्रीजी' और ऊँचे गाँवमें 'श्रीरेवतीरमण बलभद्रजी' के विग्रहोंका प्राकट्य किया था। इन विग्रहोंकी सेवा-पूजा आप स्वयं किया करते थे। आपने बारह वर्षतक श्रीराधाकुण्डपर तथा शेष जीवन ऊँचेगाँवमें निवास करते हुए व्यतीत किया और आप श्रीवामनजयन्तीको गोलोक प्रस्थान कर गये।

श्रीब्रजबल्लभभट्टजी

नृत्य गान गुन निपुन रास में रस बरषावत।
अब लीला ललितादि बलित दंपतिहि रिझावत॥
अति उदार निस्तार सुजस ब्रज मंडल राजत।
महा महोत्सव करत बहुत सबही सुख साजत॥
श्रीनारायन भट्ट प्रभु परम प्रीति रस बस किए।
ब्रजबल्लभ बल्लभ परम दुर्लभ सुख नैननि दिए॥ ८८॥

श्रीब्रजबल्लभजी सभीको अत्यन्त प्यारे थे, क्योंकि आपने सभीके नेत्रोंको रासलीलाका परम दुर्लभ सुख प्रदान किया। आप नृत्य-गानादि गुणोंमें बड़े प्रवीण थे। रासलीलामें आप अपने कौशलसे रसकी वर्षा करते थे और श्रीललितादि सखियोंके सहित दम्पती श्रीयुगलकिशोरको रिझाया करते थे। आप स्वभावसे बड़े उदार तथा प्राणियोंका भवसे निस्तार करनेवाले थे। आपका सुयश सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें व्याप्त तथा शोभायमान है। आप बहुत-से महोत्सव करते थे, जिसमें सभीको परम सुख मिलता था। आपने श्रीस्वामी नारायणभट्टजीको अपने प्रेमरससे वशमें कर लिया था॥ ८८॥

श्रीरूपसनातनजी

गौड़ देस बंगाल हुते सबही अधिकारी।
हय गय भवन भँडार बिभव भूभुज उनहारी॥
यह सुख अनित बिचारि बास बृंदाबन कीन्हो।
जथा लाभ संतोष कुंज करवा मन दीन्हो॥
ब्रज भूमि रहस राधाकृषन भक्त तोष उद्धार कियो।
संसार स्वाद सुख बांत ज्यों (दुहुं) रूप सनातन तजि दियो॥ ८९॥

श्रीरूपजी तथा श्रीसनातनजी—इन दोनों भाइयोंने संसार-स्वादके सब सुखोंका वमन (उलटी)-की भाँति परित्याग कर दिया। आप दोनों भाई पहले बंगाल-प्रान्तस्थ गौड़ देशके शासकके यहाँ उच्चाधिकारी थे। आपके पास राजाओंके समान घोड़े-हाथी, महल-मकान, कोष-खजाना, भोग-ऐश्वर्यादि थे। परंतु इस संसारके सुखको अनित्य विचारकर आप दोनोंने सब कुछ छोड़कर श्रीवृन्दावनमें दृढ़वास किया। भगवदिच्छासे शरीर-निर्वाहके लिये सहजमें जो कुछ भी मिल जाता, उसीमें संतोष करते थे। राज्यैश्वर्यसे मन हटाकर परम वैराग्यपूर्ण जीवन बिताते थे। आप दोनोंने श्रीव्रजभूमिके रहस्यों तथा श्रीराधाकृष्णके रहस्य तत्त्वोंको प्रकटकर भक्तोंको परम संतोष प्रदान किया तथा जगत्‌के जीवोंका उद्धार किया॥ ८९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजी श्रीरूपसनातनजीके विषयमें कहते हैं—

गोस्वामी श्रीनाभाजी श्रीरूपजी तथा श्रीसनातनजीके वैराग्यका वर्णन करनेमें ऐसे प्रेममग्न हो गये कि छप्पयके पाँच चरण वैराग्य वर्णनमें ही पूरे हो गये। केवल एक चरण शेष रह गया, तब श्रीनाभाजीका मन अत्यन्त संतप्त हो उठा कि मैंने इनके प्रेमपक्षका तो कुछ वर्णन ही नहीं किया। फिर तो एक तुक शेष रह गयी थी, उसीमें करोड़ों कवित्तोंका अर्थ भर दिया। श्रीनाभाजीने इस स्थलपर कविताका सच्चा स्वरूप दिखलाया है। इस एक तुकमें श्रीनाभाजीने श्रीरूप-सनातनजीकी श्रीराधा-कृष्णरसकी आचार्यता वर्णन की है। अहो! जिनकी कृपादृष्टिसे जनसाधारण भी प्रेम-पोथी पढ़े, पढ़ते हैं एवं पढ़ेंगे, उनके लिये यह कहना कि 'ये दोनों महानुभाव बड़े अनुरागी थे' क्या कोई बड़ाई है? अर्थात् नहीं। भाव यह कि ये तो सहज ही प्रेमरूप थे—

कहत बैराग गये पागि नाभा स्वामी जू वै गई यों निबर तुक पांच लागी आंचि है।
रही एक मांझ धर्‍यो कोटिक कवित्त अर्थ याही ठौर लै दिखायो कविताकौ सांचि है॥
राधाकृष्ण रसकी आचारजता कही यामें सोई जीवनाथभट्ट छप्पै बानी नांचि है।
बड़े अनुरागी ये तौ कहिबो बड़ाई कहा अहो जिन कृपा दृष्टि प्रेम पोथी बांचि है॥ ३५७॥

कालके कुचक्रसे व्रजमण्डलके तीर्थ प्रायः लुप्त-गुप्त हो गये थे। अतः उन दिनों उन्हें और श्रीव्रजभूमि एवं श्रीवृन्दावनके स्वरूप एवं रहस्यको कोई जानता नहीं था। परंतु श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजीने श्रीव्रज-वृन्दावनके सम्बन्धमें जैसा कुछ कहा है, श्रीरूप-सनातनजीने वैसा ही प्रकट करके दिखा दिया। आपकी उपासनाकी रीति भी श्रीमद्भागवतके ही अनुसार थी। आपने रससार शृंगार रसकी उपासना अपनायी थी, जो कि रसिक महानुभावोंको परम सुखदायिनी है। श्रीगौरांग महाप्रभुका आदेश पाकर आपने कुछ दिनतक श्रीगोपीश्वर महादेवके निकट निवास किया और श्रीमहाप्रभुकी कृपासे सब प्रकारकी भक्ति पाकर बहुत-से भक्ति-ग्रन्थोंकी रचना की। ग्रन्थोंमें वर्णित आपकी एक-एक बातमें मन, बुद्धि जब निमग्न होते हैं तो वह सुख मिलता है कि फिर शरीर पुलकायमान हो जाता है और आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी-सी लग जाती है—

वृन्दावन व्रज भूमि जानत न कोऊ प्राय दई दरसाय जैसी शुक मुख गाई है।
रीति हूं उपासनाकी भागवत अनुसार लियो रससार सो रसिक सुखदाई है॥
आज्ञा प्रभु पाय पुनि 'गोपीस्वर' लगे आय किये ग्रन्थ पाय भक्ति भाँति सब पाई है।
एक एक बात में समात मन बुद्धि जब पुलकित गात दृग झरी सी लगाई है॥ ३५८॥

एक समय श्रीरूपगोस्वामीजी श्रीनन्दग्राममें कदम्ब टेरपर भजन कर रहे थे। उसी समय बड़े भाई श्रीसनातनजी श्रीवृन्दावनसे आपके पास आये। उस समय श्रीरूपजीके मनमें यह विचार आया कि आज मैं परम सुखदायी खीरका भोग श्रीठाकुरजीको लगाकर वह प्रसाद अपने अग्रजको पवाऊँ। आपके मनमें किंचिन्मात्र ही यह विचार आया था कि तत्काल मानो भक्तोंको सुख देनेवाली लाडिली श्रीप्रियाजू एक बालिकाके रूपमें खीरका सब सामान ले आयीं। उसी सामानसे तुरंत रसोई करके श्रीठाकुरजीको भोग लगाया गया और जब वह प्रसाद लेकर श्रीसनातनजीने पाया तो उन्हें अत्यन्त प्रिय लगा तथा प्रेमका नशा-सा छा गया; तब उन्होंने पूछा कि यह खीर कैसे बनी है? इसमें तो अलौकिक स्वाद है, तब श्रीरूपजीने सब बात बतायी। सुनकर श्रीसनातनजीने कहा—अब पुनः ऐसी इच्छा मत करना। मेरी इस बातको हृदयमें दृढ़तापूर्वक धारण कर लो। तुम तो अपनी वैराग्यकी चालसे ही चलो। इतना कहते-कहते श्रीसनातनजीकी एवं सुनकर श्रीरूप गोस्वामीजीकी आँखोंमें प्रेमाश्रु छलछला आये—

रहे नन्दगांव रूप आये श्रीसनातन जू महासुख रूप भोग खीर कौ लगाइयै।
नेकु मन आई सुखदाई प्रिया लाडिली जू मानो कोऊ बालकी सुसौंज सब ल्याइयै॥
करिकै रसोई सोई लै प्रसाद पायो भायौ अमलसो आयौ चढ़ि पूछी सो जताइयै।
फेरि जिनि ऐसी करौ यही दृढ़ हिये धरौ ढरौ निज चाल कहि आखैं भरि आइयै॥ ३५९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार वैष्णव समाजमें श्रीरूप गोस्वामीजीके श्रीमुखसे श्रीराधा-कृष्णके रूप-गुणका गान हो रहा था। जिसे कानोंसे सुनकर सभामें उपस्थित सभी लोगोंके प्राण व्याकुल हो गये, सबको मूर्च्छा-सी आ गयी। परंतु आप (श्रीरूपजी) बड़े ही धैर्यवान् थे। अत: यद्यपि भावावेशमें शरीरकी सुधि नहीं थी तो भी खड़े ही रहे और खड़े-खड़े रूप-गुण-गान करते रहे। उस समय आपने प्रेमकी ऐसी रहस्यमय स्थितिका दर्शन कराया, जो बड़े-बड़े भावज्ञोंकी बुद्धिमें नहीं आ सकती है। (वह यह कि उसी समय) श्रीकर्णपूर गोस्वामीजीने आपके पीछे आकर अच्छी प्रकारसे देखा कि आप बिलकुल अच्छेसे, स्वस्थसे जान पड़ते हैं, किसी प्रकारकी आकुलता नहीं है। परंतु वह तनिक आपके समीप आये और आपकी श्वास उनके शरीरको लगी, तब वे आपके प्रेमको जान पाये। श्वासका स्पर्श होते ही उन्हें ऐसा लगा मानो अग्निकी लपट लग गयी हो तथा उनके शरीरपर अंगार छू जाने-जैसा चिह्न भी हो गया अर्थात् फफोले पड़ गये। प्रेमकी यह नवीन रीति भला किससे गायी जा सकती है—

रूप गुण गान होत कान सुनि सभा सब अति अकुलान प्रान मूरछा सी आई है।
बड़े आप धीर रहे ठाढ़े न शरीर सुधि बुधि मैं न आवै ऐसी बात लै दिखाई है॥
श्रीगुसाईं कर्णपूर पाछे आये देखे आछे नेकु ढिंग भये स्वास लग्यौ तब पाई है।
मानौ आगि आँचि लागी ऐसो तन चिह्न भयौ नयौ यह प्रेमरीति कापै जात गाई है॥ ३६०॥

एक दिन रात्रिके समय ठाकुर श्रीगोविन्दचन्द्रजीने आपको स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि मैं खिरक (गोमटीला)-के भूगर्भमें निवास करता हूँ। एक गैया नित्यप्रति सुबह-शाम तथा रात्रिको भी अपनी दूधकी धारासे मेरा अभिषेक करती है और हमारा पोषण करती है। आप वहाँ जाकर देखिये, तब स्वयं जान जायँगे। श्रीठाकुरजीके संकेतानुसार श्रीरूप गोस्वामीजीने श्रीगोविन्द-चन्द्र भगवान्‌का स्वरूप प्रकट किया। श्रीठाकुर गोविन्द-देवजीकी अत्यन्त ही अनुपम छबि है। चतुर रसिकजन रसिकेन्द्रचूड़ामणि श्रीराधागोविन्द एवं परम रसिक श्रीरूपजीका निरन्तर हृदयमें ध्यान करते हैं—

श्रीगोविन्दचन्द आय निसि कौ स्वपन दियौ दियौ कहि भेद सब जासों पहिचानियै।
रहौ मैं खिरक मांझ पोषैं निसिभोर सांझ सींचै दूधधार गाय जाय देखि जानियै॥
प्रगट लै कियो रूप अति ही अनूप छबि कबि कैसे कहै थकि रहै लखि मानियै।
कहाँ लौं बखानौं भरै सागर न गागर मैं नागर रसिक हिये निसि दिन आनियै॥ ३६१॥

एक बार श्रीसनातनजी नन्दगाँवमें पावन सरोवरपर रह रहे थे। भजनमें मन लग जानेसे तीन दिन न तो गाँवमें मधुकरी आदि माँगने गये और न तो संयोगसे गाँवका ही कोई सरोवरकी ओर आया। चौथे दिन एक श्यामवर्णका बालक (स्वयं ठाकुर श्रीमदनमोहनजी) दूध लेकर आया और उसने प्रार्थनापूर्वक इन्हें दूध पिलाया। बालककी रूप-माधुरीसे आकृष्ट होकर इन्होंने पूछा—तुम कहाँ रहते हो? तब बालकने अपने घरका पता बताया तथा कहा कि हम चार भाई श्रीहरदेवजी गोवर्धनमें, श्रीबलदेवजी बलदेव ग्राममें, श्रीकेशवदेवजी मथुरामें, श्रीगोविन्ददेवजी वृन्दावनमें हैं, साथ ही पिताजी (श्रीनन्दूजी)-का भी परिचय दिया। बालकके चले जानेपर श्रीसनातनजीका मन पुनः बालकके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हुआ, अतः सरोवरसे उठकर नन्दगाँव गये और उन्होंने घर-घर पूछा, परंतु कहीं भी बालकरूपधारी श्रीहरिको नहीं पाया। चारों ओर खोज-खोजकर हार गये। इनकी आँखोंमें आँसू भर आये, तब आपने निश्चय किया कि यदि अबकी बार वह बालक आयेगा तो उसे जाने नहीं दूँगा। श्रीसनातनजीको बालकके सिरपर बँधी लाल पगिया बहुत ही अच्छी लग रही थी। आप रात-दिन उसी लालपागवाले साँवरे किशोरका ध्यान करने लगे—

रहैं श्रीसनातन जू नन्दगांव पावन पै आवन दिवस तीन दूध लै कै प्यारियै।
सांवरो किशोर, आप पूछे किहिं ओर रहो? कहे चारि भाई पिता रीतिहूँ उचारियै॥
गये ग्राम, बूझी घर हरि पै न पाये कहूँ चहूं दिसि हेरि हेरि नैन भरि डारियै।
अब कै जो आवै फेर जान नहिं पावै सीस लाल पाग भावै निसिदिन उर धारियै॥ ३६२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरूप गोस्वामीजीने 'चाटु पुष्पांजलि' नामक स्तोत्रमें श्रीराधिकाजीकी वेणीकी नागिनसे उपमा दी है। इस प्रसंगको जब श्रीसनातनजीने पढ़ा तथा श्रीराधिकाजीका स्वरूप नेत्रोंसे देखा तो उन्हें यह उपमा नहीं जँची। उन्होंने सोचा कि जान पड़ता है भाईने भावपद्धतिसे हटकर केवल काव्यपद्धतिका अनुसरण करते हुए ऐसा लिखा है। परंतु एक दिन आप श्रीराधाकुण्डके किनारे बैठे भजन कर रहे थे। इतनेमें क्या देखा कि एक वृक्षकी डालपर झूला पड़ा हुआ है, उसपर बैठी एक गौरवर्णकी किशोरी प्रफुल्लित-मना झूल रही है और सखियाँ उमंगमें भरी झुला रही हैं। उस किशोरीकी पीठपर आपको लपलपाती हुई नागिन-सी दिखायी पड़ी। आप तुरंत ही नागिनसे किशोरीकी रक्षा करनेके लिये दौड़ पड़े। परंतु समीप पहुँचनेपर देखा कि वह नागिन नहीं है, वस्तुतस्तु उसकी वेणी है। इतनेमें ही वह झूलेका दृश्य भी अन्तर्धान हो गया। फिर तो आप समझ गये कि यह तो साक्षात् किशोरी श्रीराधिकाजी सखियोंके साथ झूला झूल रही थीं और हमारे भ्रमका निवारण करनेके लिये यह लीला की थी। फिर तो आप अपने छोटे भाई श्रीरूपजीके पास आये और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनकी परिक्रमा की। बड़े भाईको अपनी परिक्रमा करते देखकर श्रीरूपजीने भयभीत होकर इनके चरण पकड़ लिये। श्रीसनातनजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। दोनों ही भाई प्रेमरस सारमें पगे रहते थे। आप दोनोंके चरित्र अपार हैं। आपका सुयश संसारमें जगमगा रहा है—

कही ब्याली रूप बेनी निरखि सरूप नैन जानी श्रीसनातन जू काव्य अनुसारियै।
राधातर तीर द्रुम डार गहि झूलैं फूलैं देखत लफलफात गति मति वारियै॥
आये यों अनुज पास फिरे आसपास देखि भयो अति त्रास गहे पांउँ उर धारियै।
चरित अपार उभै भाई हित सार पगे जगे जग माहिं मति मनमैं उचारियै॥ ३६३॥

श्रीहितहरिवंशजी गोस्वामी

राधा चरन प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी।
कुंज केलि दंपती तहाँ की करत खवासी॥
सर्बसु महाप्रसाद प्रसिध ताके अधिकारी।
बिधि निषेध नहिं दास अननि उतकट ब्रत धारी॥
ब्यास सुवन पथ अनुसरै सोइ भलें पहिचानिहै।
(श्री) हरिबंस गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानिहै॥ ९०॥

श्रीहितहरिवंश गोस्वामीजीकी भजनकी रीतिको कोई एक विरला (श्रीदामोदरदासजी 'सेवकजी') ही जान सकेगा। आपकी उपासना-पद्धतिमें श्रीराधाजीकी प्रधानता है। आप उन्हींके श्रीचरणोंकी हृदयमें अत्यन्त सुदृढ़ भावसे उपासना करते थे और कुंजक्रीड़ामें दम्पती श्रीश्यामाश्यामकी सखीरूपसे सेवा करते थे। आपके सम्बन्धमें यह बात प्रसिद्ध है कि आप श्रीमहाप्रसादको सर्वस्व करके मानते थे। अपनी अनन्य निष्ठाके कारण आप सचमुच महाप्रसादके उत्तम अधिकारी थे। आपने श्रीश्यामाश्यामकी सेवारूपी उत्कट व्रतको धारण किया था। अतः स्मृतिशास्त्रोक्त विधि-निषेधोंकी अपेक्षा नहीं रखते थे। श्रीव्यासमिश्रजीके पुत्र श्रीहितहरिवंश गोस्वामीद्वारा प्रवर्तित पथका जो अनुसरण करेंगे, वे ही अच्छी तरहसे आपके सिद्धान्तोंको जान सकेंगे॥ ९०॥

श्रीहितहरिवंश गोस्वामीजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

रसिकभक्तशिरोमणि गोस्वामी श्रीहितहरिवंशचन्द्र महाप्रभुजीका जन्म मथुराके निकट बादग्राममें वि० संवत् १५५९ वैशाख शुक्ला एकादशीको हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीव्यासमिश्रजी और माताका श्रीतारादेवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। व्यासमिश्रजी नौ भाई थे, जिनमें सबसे बड़े श्रीकेशवदासजी तो संन्यास ग्रहण कर चुके थे। उनके संन्यासाश्रमका नाम श्रीनृसिंहाश्रमजी था। शेष आठ भाइयोंके केवल यही एक व्यास-कुलदीपक थे, इसलिये ये सभीको प्राणोंसे बढ़कर प्रिय थे और इसीसे इनका लालन-पालन भी बड़े लाड़-चावसे हुआ था। ये बड़े ही सुन्दर थे और शिशुकालमें ही 'राधा' नामके बड़े प्रेमी थे। 'राधा' सुनते ही ये बड़े जोरसे किलकारी मारकर हँसने लगते थे। कहते हैं कि छः महीनेकी अवस्थामें ही इन्होंने पलनेपर पौढ़े हुए 'श्रीराधा-सुधानिधि' स्तवका गान किया था, जिसे आपके ताऊ स्वामी श्रीनृसिंहाश्रमजीने लिपिबद्ध कर लिया था।

श्रीप्रियादासजीने श्रीहितहरिवंशजीकी इस राधाभक्तिका वर्णन इस प्रकार किया है—

हित जू की रीति कोऊ लाखनि मैं एक जानै राधा ही प्रधान मानै पाछे कृष्ण ध्याइयै।
निपट विकट भाव होत न सुभाव ऐसो उन ही की कृपा दृष्टि नेकु क्यों हूँ पाइयै॥
विधि औ निषेध छेद डारे प्रान प्यारे हिये जिये निजदास निसिदिन वहै गाइयै।
सुखद चरित्र सब रसिक विचित्र नीके जानत प्रसिद्ध कहा कहिकै सुनाइयै॥ ३६४॥

इनके बालपनकी कुछ बातें बड़ी ही विलक्षण हैं। एक दिन ये अपने कुछ साथी बालसखाओंके साथ बगीचेमें खेल रहे थे। वहाँ इन्होंने दो गौर-श्याम बालकोंको श्रीराधा-मोहनके रूपमें सुसज्जित किया। फिर कुछ देर बाद दोनोंके शृंगार बदलकर श्रीराधाको श्रीमोहन और श्रीमोहनको श्रीराधाके रूपमें परिणत कर दिया और इस प्रकार वेश-भूषा बदलनेका खेल खेलने लगे।

प्रातःकालका समय था। इनके पिता श्रीव्यासजी अपने सेव्य श्रीराधाकान्तजीका शृंगार करके मुग्ध होकर युगलछविके दर्शन कर रहे थे। उसी समय आकस्मिक परिवर्तन देखकर वे चौंक पड़े। उन्होंने श्रीविग्रहोंमें श्रीराधाके रूपमें श्रीकृष्णको और श्रीकृष्णके रूपमें राधाजीको देखा। सोचा, वृद्धावस्थाके कारण स्मृति नष्ट हो जानेसे शृंगार धरानेमें भूल हो गयी है। क्षमा-याचना करके उन्होंने शृंगारको सुधारा। परंतु तुरंत ही अपने-आप वह शृंगार भी बदलने लगा। तब घबराकर व्यासजी बाहर निकले। सहसा उनकी दृष्टि बागकी ओर गयी, देखा—हरिवंश अपने सखाओंके साथ खेल-खेलमें वही स्वरूप-परिवर्तन कर रहा है। उन्होंने सोचा इसकी सच्ची भावनाका ही यह फल है। निश्चय ही यह कोई असाधारण महापुरुष है।

एक बार श्रीहरिवंशजी खेल-ही-खेलमें बगीचेके पुराने सूखे कुएँमें सहसा कूद पड़े। इससे श्रीव्यासजी, माता तारादेवी और कुटुम्बके लोगोंको तो अपार दुःख हुआ ही, सारे नगरनिवासी व्याकुल हो उठे। व्यासजी तो शोकाकुल होकर कुएँमें कूदनेको तैयार हो गये। लोगोंने जबरदस्ती उन्हें पकड़कर रखा।

कुछ ही क्षणोंके पश्चात् लोगोंने देखा, कुएँमें एक दिव्य प्रकाश फैल गया है और श्रीहरिवंशजी श्रीश्यामसुन्दरके मंजुल श्रीविग्रहको अपने नन्हे-नन्हे कोमल करकमलोंसे सम्हाले हुए अपने-आप कुएँसे ऊपर उठते चले आ रहे हैं। इस प्रकार आप ऊपर पहुँच गये और पहुँचनेके साथ ही कुआँ निर्मल जलसे भर गया। माता-पिता तथा अन्य सब लोग आनन्द-सागरमें डुबकियाँ लगाने लगे। श्रीहरिवंशजी जिन भगवान् श्यामसुन्दरके मधुर मनोहर श्रीविग्रहको लेकर ऊपर आये थे, उन्हें राजमहलमें लाया गया और बड़े समारोहसे उनकी प्रतिष्ठा की गयी। श्रीहरिवंशजीने उनका नामकरण किया—श्रीनवरंगीलालजी। अब श्रीहरिवंशजी निरन्तर अपने श्रीनवरंगीलालजीकी पूजा-सेवामें निमग्न रहने लगे। इस समय इनकी अवस्था पाँच वर्षकी थी।

इसके कुछ ही दिनों बाद इनकी अतुलनीय प्रेममयी सेवासे विमुग्ध होकर साक्षात् रासेश्वरी नित्य-निकुंजेश्वरी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाजीने इन्हें दर्शन दिये, अपनी रस-भावनापूर्ण सेवा-पद्धतिका उपदेश किया और मन्त्रदान करके इन्हें शिष्यरूपमें स्वीकार किया।

आठ वर्षकी अवस्थामें आपका उपनयनसंस्कार हुआ और सोलह वर्षकी अवस्थामें श्रीरुक्मिणीदेवीसे आपका विवाह हो गया। पिता-माताके गोलोकवासी हो जानेके बाद आप सब कुछ त्यागकर श्रीवृन्दावनके लिये विदा हो गये। श्रीनवरंगीलालजीकी सेवा भी आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पुत्रोंको सौंप दी।

देववनसे आप चटथावल आये। यहाँ आत्मदेव नामक एक भक्त ब्राह्मणके घर ठाकुरजी श्रीराधावल्लभजी विराजमान थे। आत्मदेवजीको स्वप्नादेश हुआ कि तुम्हारी जो दोनों पुत्रियाँ (श्रीकृष्णदासी और मनोहरी) हैं, उनका हितहरिवंशजीसे विवाह कर दो और दहेजरूपमें मुझे दे देना। यदि वे विवाहके लिये न मानें तो उन्हें मेरी आज्ञा बता देना, तब वे प्रस्तुत हो जायँगे। आत्मदेवजीने ऐसा ही किया और उसीके अनुसार श्रीराधावल्लभजी महाराजको हरिवंशजी वृन्दावन ले आये।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

आये घर त्यागि राग बाढ्यौ प्रिया प्रियतमसों विप्र बड़भाग हरि आज्ञा दई जानियै।
तेरी उभै सुता ब्याह देवौ लेवौ नाम मेरो इनकौ जो बंस सो प्रसंस जग मानियै॥
ताही द्वार सेवा विसतार निज भक्तनकी अगतिन गति सो प्रसिद्ध पहिचानियै।
मानि प्रिय बात गहगह्यौ सुखलह्यौ सब कह्यौ कैसे जात यह मन मन आनियै॥ ३६५॥

वृन्दावनमें मदन-टेर नामक स्थानमें श्रीराधावल्लभजीने प्रथम निवास किया। इसके पश्चात् इन्होंने भ्रमण करके श्रीवृन्दावनके दर्शन किये और प्राचीन एवं गुप्त सेवाकुंज, रासमण्डल, वंशीवट एवं मानसरोवर नामक चार पुण्यस्थलोंको प्रकट किया। तदनन्तर आप सेवाकुंजके समीप ही कुटियोंमें रहने लगे तथा श्रीराधावल्लभजीका प्रथम प्रतिष्ठा-उत्सव इसी स्थानपर हुआ। श्रीराधावल्लभजीकी आज्ञासे श्रीहितहरिवंशजीने श्रीश्यामाश्याम युगल-सरकारकी निकुंजलीलाका क्रिया और काव्यद्वारा प्रचार-प्रसार किया।

श्रीप्रियादासजी श्रीराधावल्लभ प्रभुद्वारा दी गयी हितहरिवंशजीको आज्ञाका वर्णन अपने कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—

राधिका वल्लभलाल आज्ञा सो रसाल दई सेवा मो प्रकास औ विलास कुंज धामकौ।
सोई विसतार सुखसार दृग रूप पियौ दियौ रसिकनि जिन लियौ पच्छ बामकौ॥
निसि दिन गान रस माधुरी कौ पान उर अन्तर सिहान एक काम स्यामास्यामकौ।
गुन सो अनूप कहि कैसे कै सरूप कहै लहै मन मोद जैसे और नहीं नामकौ॥ ३६६॥

श्रीहितहरिवंशजी महाराज राधावल्लभ-सम्प्रदायके मेरुदण्ड हैं, इन्हें श्रीकृष्णकी वंशीका अवतार माना जाता है। सं० १६०९ वि० की शारदीय पूर्णिमाके दिन आपने निकुंजलीलामें प्रवेश किया।

श्रीस्वामी हरिदासजी

जुगल नाम सों नेम जपत नित कुंजबिहारी।
अवलोकत रहैं केलि सखी सुख के अधिकारी॥
गान कला गंधर्ब स्याम स्यामा कों तोषैं।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषैं॥
नृपति द्वार ठाढ़े रहैं दरसन आसा जास की।
आसधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की॥ ९१॥

श्रीस्वामी हरिदासजी श्रीआशुधीरजीके सुयशको जगमें प्रकाशित करनेवाले हुए। आप वैष्णव समाजमें 'श्रीरसिकजी' इस नामसे विख्यात थे। आपका श्रीकुंजविहारिणी-विहारी श्रीश्यामाश्याम प्रियाप्रियतम-युगलके नामके प्रति बड़ा नेम-प्रेम था। आप निरन्तर प्रेमपूर्वक श्रीयुगलनामका जप किया करते थे तथा नित्य श्रीप्रिया-प्रियतमकी केलि-विलास-लीलाका दर्शन करते रहते थे। आप सखी-सुखके परम अधिकारी थे तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत विद्यामें ऐसे निपुण थे कि आपके समक्ष गन्धर्व भी एक कलामात्र प्रतीत होते थे। अपने रसमय संगीतसे आप श्रीश्यामाश्यामको सदा रिझाते थे। आप अपने परमाराध्य श्रीश्यामाश्यामको परमोत्तम भोग अर्पित करते थे और सन्तसे अवशिष्ट भोग-प्रसादद्वारा मयूर, बन्दर एवं मछलियोंका भी पोषण करते थे। बड़े-बड़े राजा-महाराजा आपके दर्शनोंकी आशामें कुंजद्वारपर खड़े रहते थे॥ ९१॥

स्वामी श्रीहरिदासजी महाराजके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

लगभग पाँच सौ साल पहलेकी बात है, वृन्दावनसे आधे कोसकी दूरीपर राजपुर गाँवमें सं० १५३७ वि० के लगभग स्वामी हरिदासजीका जन्म हुआ। उनके पिताका नाम गंगाधर और माताका चित्रादेवी था। वे ब्राह्मण थे। बाल्यावस्थासे ही उन्हें भगवान्‌की लीलाके अनुकरणके प्रति प्रेम था और वे खेलमें भी विहारीजीकी सेवायुक्त क्रीड़ामें ही तत्पर रहते थे। बड़े होनेपर भी हरिदासका मन घर-गृहस्थीमें बहुत ही कम लगता था। एक दिन अवसर पाकर पचीस वर्षकी अवस्थामें एक विरक्त वैष्णवकी तरह वे घरसे अचानक निकल पड़े। वे घरसे सीधे वृन्दावन आये, अपने उपास्यदेवता विहारीजीके दर्शन किये और उन्हींके शरणागत होकर निधिवनमें रहने लगे। आशुधीरजी उनके दीक्षा-गुरु थे। धीरे-धीरे उनके त्याग, निःस्पृहता, रसोपासना और संगीतदक्षताकी प्रसिद्धि चारों ओर व्याप्त हो गयी और शिष्योंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

एक बार एक भक्तने स्वामीजीको अत्यन्त मूल्यवान् इत्र भेंट किया। वे भगवती यमुनाकी रेतीमें बैठे हुए थे। वसन्त ऋतुका यौवन अपनी पराकाष्ठापर था। वृन्दावनके मन्दिरोंमें धमारकी धूम थी। रसिक हरिदासका मन डोल उठा। उनके प्राणप्रिय रासविहारी और उनकी रासेश्वरी श्रीराधा रानीकी कृपादृष्टिकी मनोरम दिव्यता उनके नयनोंमें समा गयी, वृन्दावनकी चिन्मयताकी आरसीमें अपने उपास्यकी झाँकी करके वे ध्यानस्थ हो गये। उन्हें तनिक भी बाह्य ज्ञान नहीं था, वे मानस-जगत्‌की सीमामें भगवदीय कान्तिका दर्शन करने लगे। भगवान् राधारमण रंगोत्सवमें प्रमत्त होकर राधारानीके अंग-अंगको करमें कनक-पिचकारी लेकर सराबोर कर रहे थे। भगवान् होली खेल रहे थे। हरिदासके प्राणोंमें रंगीन चेतनाएँ लहराने लगीं और उसी मानसिक भावावेशमें हरिदासने भगवान्‌के पीताम्बरपर इत्रकी शीशी उड़ेल दी। इत्रकी शीशी जिसने भेंट की थी, वह तो उनके इस चरित्रसे आश्चर्यचकित हो गया। जिस वस्तुको उसने इतने प्रेमसे प्रदान किया था, उसे उन्होंने रेतीमें छिड़ककर अपार आनन्दका अनुभव किया। रसिक हरिदासकी आँखें खुलीं, उन्होंने उस व्यक्तिकी मानसिक वेदनाकी बात जान ली और शिष्योंके साथ श्रीविहारीजीके दर्शनके लिये भेजा। उस व्यक्तिने विहारीजीका वस्त्र इत्रसे सराबोर देखा और देखा कि पूरा मन्दिर विलक्षण सुगन्धसे परिपूर्ण था। वह बहुत लज्जित हुआ; पर भगवान्‌ने उसकी परम प्यारी भेंट स्वीकार कर ली, यह सोचकर उसने अपने सौभाग्यकी सराहना की।

एक बार एक धनी तथा कुलीन व्यक्तिने हरिदाससे दीक्षित होनेकी इच्छा प्रकट की और उन्हें पारस भेंट-स्वरूप दिया। हरिदासने पारसको पत्थर कहकर यमुनाजीमें फेंक दिया और उसे शिष्य बना लिया।

श्रीप्रियादासजी महाराज इन घटनाओंका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

स्वामी हरिदास रसरासको बखान सकै रसिकता छाप जोई जाप मधि पाइयै।
ल्यायौ कोऊ चोवा वाकौ अति मन भोवा वामै, डार्‌यौ लै पुलिन यह खोवा हिये आइयै॥
जानिकै सुजान कही लै दिखावौ लाल प्यारे, नैसुकु उघारे पट सुगंध बुड़ाइयै।
पारस पषान करि जल डरवाय दियौ कियौ तब शिष्य ऐसे नाना विधि गाइयै॥ ३६७॥

स्वामी हरिदासजी निम्बार्क-सम्प्रदायके अन्तर्गत 'टट्टी-संस्थान' के संस्थापक थे। वृन्दावनकी भगवल्लीला-मयी चिन्मयताके सौन्दर्यमें उनकी रसोपासनाने विशेष अभिवृद्धि की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_11_2_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिराम व्यासजी

काहू के आराध्य मच्छ कछ नरहरि सूकर।
बामन फरसाधरन सेतबंधन जु सैल कर॥
एकन के यह रीति नेम नवधा सों लाएँ।
सुकुल सुमोखन सुवन अच्युत गोत्री जु लड़ाएँ॥
नै गुन तोरि नूपुर गुह्यो महत सभा मधि रास कें।
उतकर्ष तिलक अरु दाम को भक्त इष्ट अति ब्यास कें॥ ९२॥

श्रीहरिराम व्यासजी (श्रीयुगलकिशोरजीको इष्ट और) भक्तोंको अपना परम इष्ट मानते थे। इन्होंने ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक तथा तुलसी कण्ठी-मालाकी बड़ी महिमा गायी है। कोई-कोई तो श्रीमत्स्य, कच्छप, नृसिंह, वाराह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण आदि अवतारोंकी आराधना करते हैं। एक समुदाय ऐसा है जो नवधा भक्तिमें निष्ठा रखता है। परंतु श्रीसुमोखन शुक्लजीके पुत्र श्रीहरिराम व्यासजीने तो वैष्णवोंको ही प्रेमपूर्वक दुलराया। आपने रासलीलाके समय महत्पुरुषोंकी सभामें अपना यज्ञोपवीत तोड़कर उसमें श्रीप्रियाजीके पाँवका नूपुर गूथा था॥ ९२॥

श्रीहरिराम व्यासजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

श्रीहरिराम व्यासजी ओरछानरेश महाराज मधुकर-शाहजीके राजगुरु थे। सम्प्रदाय-ग्रन्थोंमें आपको विशाखा सखीका अवतार माना जाता है। आपका जन्म ओरछामें मार्गशीर्ष कृष्ण ५, सं० १५६७ वि० को हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीसुमोखनजी शुक्ल और माताका नाम पद्मावती देवी था। आप वेदशास्त्र-पुराणादिके पारंगत विद्वान् थे और आपको श्रीसरस्वतीजीकी सिद्धि थी।

भगवत्कृपासे एक बार श्रीवृन्दावनसे श्रीहितहरिवंश महाप्रभुजीके कृपापात्र श्रीनवलदासजी महाराज विचरण करते हुए ओरछा आये और आपके अतिथि हुए। उनसे श्रीहितहरिवंश महाप्रभुजीके बारेमें सुनकर आप बहुत प्रभावित हुए। एक दिन आपने घर-द्वार सब कुछ छोड़कर श्रीवृन्दावनधामकी राह ली और श्रीनवलदासजीके माध्यमसे श्रीहितहरिवंश महाप्रभुके चरणोंमें जा पहुँचे। आपको अधिकारी जानकर महाप्रभुने सम्प्रदायकी दीक्षा दी और श्रीयुगलकिशोरकी उपासनाका रहस्य समझाया।

ओरछानरेश महाराज मधुकरशाह आपको लिवाने आये, परंतु श्रीयुगलकिशोरने आपके मनको ऐसा फँसा लिया था कि आपको यहाँसे जाना बिलकुल अच्छा नहीं लगा।

एकबार आप श्रीठाकुरजीका शृंगार कर रहे थे। श्रीठाकुरजीके सिरपर पाग बाँध रहे थे, परंतु वह अत्यन्त चिकनी होनेके कारण सिरसे बार-बार फिसल-फिसल जाती थी। जब कई बार बाँधनेपर भी ठीकसे नहीं बँधी तो आपने झुँझलाकर कहा—अजी देखो, या तो मुझसे अच्छी तरहसे पाग बँधा लीजिये या फिर मेरा बाँधना आपको पसन्द नहीं हो तो स्वयं ही बढ़िया-से-बढ़िया बाँध लीजिये। यह कहकर आप शृंगार छोड़कर कुंजोंमें जाकर कीर्तन करने लगे। तब श्रीठाकुरजीने ही पाग बाँध ली। किसीने आपसे आकर कहा कि आज तो आपने श्रीठाकुरजीको बढ़िया पाग बाँधी है। यह सुनकर आपको श्रीठाकुरजीकी याद आयी तो तुरंत ही आकर देखा। सचमुच बहुत बढ़िया पाग बँधी थी। तब मुसकराकर बोले—'अहो! जब आप स्वयं इतनी बढ़िया पाग बाँधना जानते हैं तो मेरे द्वारा बाँधी पाग आपको कैसे पसन्द आ सकती है'।

श्रीप्रियादासजी महाराजने ठाकुरजीकी इस लीलाका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

आये गृह त्यागि वृन्दावन अनुराग करि गयौ हियौ पागि होय न्यारो तासौं खीझियै।
राजा लैन आयौ ऐपै जायबौ न भायौ श्रीकिशोर उरझायो मन सेवा मति भीजियै॥
चीरा जरकसी सीस चिकनो खिसिल जाय, लेहु जू बँधाय, नहीं आप बांधि लीजियै।
गये उठि कुंज, सुधि आई सुखपुंज, आये देख्यौ बँध्यो मंजु, कही कैसे मोपै रीझियै॥ ३६८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार श्रीव्यासजी सन्तोंके आग्रहपर उनके साथ ही प्रसाद पाने बैठे। आपकी पत्नी परोस रही थीं। दूध परोसते समय उन्होंने मलाई अपने पतिके कटोरेमें गिरा दी। इससे श्रीव्यासजी बड़े ही नाराज हुए। आप समझ गये कि यह मुझमें पतिबुद्धि करके मेरा पोषण कर रही है। फिर तो श्रीव्यासजीने पत्नीको सेवासे अलग कर दिया। इससे वे बहुत उदास एवं खिन्न हो गयीं। तीन दिन बिना खाये-पीये व्यतीत हो गये। शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। सब सन्तोंने श्रीव्यासजीको समझाया, तब आपने पत्नीके लिये यह दण्ड निश्चित किया कि यदि वह अपने समस्त आभूषण बेचकर सन्तोंका भण्डारा कर दें, तब तो सेवामें आ सकती हैं अन्यथा नहीं। पत्नीने ऐसा ही किया, तब उन्हें पुनः सेवा प्राप्त हो गयी।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

सन्त सुख दैन बैठे संगही प्रसाद लैन परोसति तिया सब भांतिन प्रवीन है।
दूध बरताई लै मलाई छिटकाई निज खीझि उठे जानि पति पोषति नवीन है॥
सेवा सों छुटाय दई अति अनमनी भई गई भूख बीते दिन तीन तन छीन है।
सब समझावैं तब दण्ड को मनावैं अंग आभरन बेंचि साधु जेंवैं यों अधीन है॥ ३६९॥

जब आपकी पुत्री रत्नाबाईका विवाह हुआ, उस समय घरवालों (पत्नी-पुत्रों)-ने बड़े उत्साहके साथ सब कार्य किया। बारातियोंके स्वागतार्थ अनेकानेक प्रकारके पक्वान्न बने थे। सुन्दर सामान देखकर श्रीहरिराम व्यासजीकी बुद्धि विकल हो गयी कि इसे कैसे वैष्णवोंको पवाया जाय। फिर तो इन्होंने भावनामें ही उन वस्तुओंका भगवान्‌को अच्छी तरह भोग लगाया और अपने किसी अन्तरंग अनुचरद्वारा सन्तोंको बुलवाया। जब सन्त आ गये तो इन्होंने उन्हें सामानोंकी पोटली बँधवा दी और कहा कि अपनी-अपनी कुंजोंमें जाकर पाओ। इस प्रकार सन्तोंको सामान देकर कुंजोंमें भेजा। आपने श्रीठाकुरजीको वंशी धारण करायी, एक ब्राह्मणको भक्तिमें दृढ़ किया। एक सन्तके सम्पुटमें श्रीठाकुरजीकी जगह चिड़िया बन्द करके दे दी, फिर आनेपर सुखपूर्वक उन्हें श्रीवृन्दावनमें बसाया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीव्यासजीके इस सन्त-प्रेमका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सुता कौ विवाह भयौ बड़ौ उत्साह कियौ नाना पकवान सब नीके बनि आये हैं।
भक्तनि की सुधि करी खरी अरबरी मति भावना करत भोग सुखद लगाये हैं॥
आय गये साधु सो बुलाय कही पावैं जाय पोटनि बधाय चाय कुंजनि पठाये हैं।
बंसी पहिराई द्विज भक्ति लै दृढ़ाई सन्त संपुट मैं चिरैया दै हित सों बसाये हैं॥ ३७०॥

एक बार शरत्पूर्णिमाकी प्रकाशमयी रात्रिके समय श्रीप्रियाप्रियतमने रास रचाया। नृत्यके प्रसंगमें जब श्रीप्रियाजीने भावावेशमें आकर गति ली तो रासमण्डलमें मानो बिजली-सी चमक गयी तथा रासमण्डलमें परम शोभा छा गयी। तबतक श्रीप्रियाजीके पाँवका नूपुर टूट गया, उसके घुँघरू बिखर गये। यह देखकर रसिकोंका मन बेचैन हो गया, परंतु उसी क्षण श्रीव्यासजीने अपना यज्ञोपवीत तोड़कर उसीमें नूपुरको पुनः पूर्ववत् पोहकर बड़ी सावधानीपूर्वक श्रीप्रियाजीके श्रीचरणोंमें बाँध दिया, जिससे कि नृत्यमें कोई भी व्यवधान नहीं आने पाया। श्रीव्यासजीका यह कार्य सबके मनको अत्यन्त भाया।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

सरद उज्यारी रास रच्यौ पिया प्यारी तामें रंग बढ़्यौ भारी कैसे कहिकै सुनाइयै।
प्रिया अति गति लई बीजुरीसी कौंधि गई चकचौंधी भई छबि मण्डलमें छाइयै॥
नूपुर सो टूटि छूटि पर्‌यौ अरबर्‌यौ मन तोरिकै जनेऊ कर्‌यौ वाही भाँति भाइयै।
सकल समाज मैं यौं कह्यौ आज काम आयौ ढोयो हौं जनम ताकी बात जिय आइयै॥ ३७१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भक्त ही श्रीव्यासजीके परम इष्ट हैं'—यह सुनकर एक महन्त श्रीव्यासजीके इस भावकी परीक्षा लेने आये। उनके संग सन्तोंकी बहुत बड़ी जमात थी। महन्तजीने आते ही भूखका संकेत किया, वे श्रीव्यासजीको सुना-सुनाकर अपने भूखे होनेकी बात कहने लगे, उसे सुनकर श्रीव्यासजीने कहा—'आपलोग तनिक धैर्य धारण करें, श्रीठाकुरजीको भोग जा चुका है, अभी-अभी प्रसादी थाल आता है, फिर पूर्ण होकर पाइये।' यह सुनकर महन्तजीने मनमें सोचा कि मालूम पड़ता है कि हृदयसे तो श्रीभगवान्‌को ही परम इष्ट मानते हैं, परंतु ऊपरसे कहते हैं कि सन्त ही हमारे परम इष्ट हैं। उन्होंने मनमें श्रीव्यासजीके भावपर शंका की। इतनेमें भगवत्प्रसाद आ गया। श्रीव्यासजीने बड़े ही भावपूर्वक उनको प्रसाद परोसा। परंतु श्रीमहन्तजी दो-चार ग्रास ही प्रसाद पाकर ऐसे उठ गये, मानो उनके पेटमें पीड़ा हो गयी हो। तब श्रीव्यासजीने उनकी पत्तल समेट ली और बोले—'अहो! सन्त कितने कृपालु होते हैं। आपने कृपा करके मेरे लिये सीथ—प्रसादी छोड़ दी है। अच्छा अब आप और पाइये, हम आपके लिये अभी-अभी अमनिया ही मँगवाते हैं।' यह सुनकर श्रीव्यासजीके भावको सच्चा जानकर श्रीमहन्तजी आपके चरणोंमें पड़ गये। उनकी आँखोंसे आँसुओंका प्रवाह बह चला।

श्रीव्यासजीकी इस सन्त-भगवन्त-निष्ठाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

गायो भक्त इष्ट अति सुनिकै महन्त एक लैन कौं परिच्छा आयो संग संत भीर है।
भूख को जतावैं बानी व्यासको सुनावैं सुनि कही भोग आवैं इहां मानें हरि धीर है॥
तब न प्रमान करी सङ्क धरी लै प्रसाद ग्रास दोय चार उठे मानो भई पीर है।
पातर समेटि लई सीत करि मोकों दई पावौ तुम और पांव लिये दृग नीर है॥ ३७२॥

श्रीव्यासजीके तीन पुत्र थे। इन्होंने अपने पुत्रोंमें अपनी सम्पत्तिका बँटवारा नितान्त ही नवीन ढंगसे किया। एक हिस्सेमें तो श्रीठाकुरजीकी सेवा-पूजाको रखा, दूसरे हिस्सेमें धन इत्यादि और तीसरे हिस्सेमें श्याम-बंदनी और छापको रखा। आपने तीनों पुत्रोंको छूट दे दी कि वे स्वेच्छानुसार जो चाहें, ले लें। तब ज्येष्ठ पुत्र श्रीरासदासने धन लिया, मँझले पुत्र श्रीविलासदासने श्रीठाकुर युगलकिशोरजीकी सेवा ली और तीसरे पुत्र श्रीकिशोरदासजीने श्याम-बंदनी और छाप ली एवं तुरंत ही उन्होंने ललाटपर तिलक कर लिया तथा गलेमें माला धारण कर ली। श्रीव्यासजीके अनुरोधपर श्रीस्वामी हरिदासजीने श्रीकिशोरदासजीको छाप दी, अपना शिष्य बनाया। एक दिन श्रीस्वामीजीके आदेशसे श्रीकिशोरदासजी कुछ रात रहते ही श्रीयमुनाजीसे जल लेने गये तो वहाँ उन्होंने श्रीयमुनापुलिनपर श्रीप्रियाप्रियतमका दिव्य रास देखा। भावकी उमंगमें श्रीकिशोरदासजीने उसी समय स्वरचित एक पद गाया। जिसे ललिता आदि सखियोंने तत्काल सीख लिया और फिर जब भावनामें श्रीस्वामी हरिदासजी रास-क्रीड़ाका ध्यान कर रहे थे तो रासमें वही पद श्रीललिता आदि सखियोंको गाते हुए सुना, जिसे सुनकर श्रीस्वामी हरिदासजीका मन हर गया।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

भये सुत तीन बांट निपट नवीन कियौ एक ओर सेवा एक ओर धन धर्‌यौ है।
तीसरी जु ठौर स्याम बंदनी और छाप धरी करी ऐसी रीति देखि बड़ौ सोच पर्‌यौ है॥
एकने रुपैया लिये एकने किशोर जू कों श्रीकिशोरदास भाल तिलक लै कर्‌यौ है।
छापे दिये स्वामी हरिदास निसि रास कीनौ वही रास ललितादि गायो मन हर्‌यौ है॥ ३७३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीजीवगोस्वामीजी

बेला भजन सुपक्व कषाय न कबहूँ लागी।
बृंदाबन दृढ़ बास जुगल चरननि अनुरागी॥
पोथी लेखन पान अघट अच्छर चित दीनो।
सदग्रंथनि को सार सबै हस्तामल कीनो॥
संदेह ग्रंथि छेदन समर्थ (रस) रास उपासक परम धिर।
(श्री) रूप सनातन भक्ति जल जीव गुसाईं सर गँभिर॥ ९३॥

श्रीरूपगोस्वामीजी एवं श्रीसनातनगोस्वामीजीके भक्तिरूपी जलको धारण करनेके लिये श्रीजीवगोस्वामीजी गम्भीर सरोवरके समान हुए। दृढ़ नियमपूर्वक भजन-साधन ही इस सरोवरका सुदृढ़ तट है। इसमें कभी भी मायिक विकाररूप काई नहीं लगी। आपने अखण्ड वृन्दावनवास किया। श्रीप्रियाप्रियतमयुगलके श्रीचरण-कमलोंमें आपका परमानुराग था। ग्रन्थ लिखनेमें आप प्रत्येक पत्रोंपर न्यूनाधिक्य दोषरहित समान अक्षर लिखते थे। समस्त सद्ग्रन्थोंके सार-सिद्धान्तका आपको सम्यक् बोध था। जिज्ञासुजनोंकी सन्देहरूपी गाँठोंको खोलनेमें आप परम समर्थ थे। रामरस अर्थात् परमोज्ज्वल श्रृंगार रसके आप उपासक थे तथा परम शान्त, दान्त एवं विवेकवान् थे॥ ९३॥

श्रीजीवगोस्वामीजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

श्रीजीवगोस्वामी श्रीरूप-सनातनके छोटे भाई श्रीअनुपमवल्लभके पुत्र थे। जीवगोस्वामीकी अल्पावस्थामें ही श्रीअनुपमवल्लभको 'श्रीकृष्णप्राप्ति' हो गयी थी। पिताकी मृत्युने जीवगोस्वामीके हृदयको बड़ा आघात पहुँचाया। एक रात उन्होंने स्वप्नमें श्रीचैतन्य और नित्यानन्दमहाप्रभुके दर्शन किये, वे नवद्वीप चले आये। नित्यानन्दने उनको काशी तपनमिश्रके आश्रममें शास्त्र-अध्ययनके लिये भेजा। जीवगोस्वामीने मधुसूदन वाचस्पतिसे वेदान्त, न्याय आदिकी शिक्षा पायी। वे शास्त्रमें पूर्णरूपसे निष्णात होकर परम विरक्त सनातन और रूपके पास वृन्दावन चले आये। जीवनके शेष पैंसठ वर्ष उन्होंने वृन्दावनमें ही बिताये। श्रीभगवान्के स्वरूप तथा तत्त्वविचारमें उन्होंने अपने पाण्डित्यका सदुपयोग किया। रूपने उनको मन्त्र दिया और समस्त शास्त्र पढ़ाये। उन्होंने वृन्दावननिवासकालमें श्रीरूप-गोस्वामिकृत उज्ज्वलनीलमणिकी टीका, क्रमसन्दर्भ नामक भागवतकी टीका, भक्तिसिद्धान्त, उपदेशामृत, षट्सन्दर्भ, गोपालचम्पू, गोविन्दविरुदावली, हरिनामामृत-व्याकरण आदि महान् ग्रन्थोंकी रचना की। श्रीजीव गोस्वामीके ये सभी ग्रन्थ 'अचिन्त्यभेदाभेद' मतके अनुसार लिखे गये हैं, जो कि जीवकी कठिन हृदय ग्रन्थियोंको दृढ़तापूर्वक छेदन करनेमें समर्थ हैं।

एक बार वल्लभभट्ट नामक एक दिग्विजयी पण्डितने रूपकी किसी कृतिमें दोष निकाला और घोषणा कर दी कि रूपने जयपत्र लिख दिया। जीवके लिये यह बात असह्य हो गयी, उन्होंने शास्त्रार्थमें वल्लभको पराजित किया। रूपको जब यह बात विदित हुई, तब उन्होंने जीवको अपने पाससे अलग कर दिया। वे सात-आठ दिनतक एक निर्जन स्थानमें पड़े रहे। सनातनने रूपसे पूछा कि 'जीवके प्रति वैष्णवका कैसा व्यवहार होना चाहिये?' रूपने कहा—'दयापूर्ण!' सनातनने कहा—'तुम जीवगोस्वामीके प्रति इतना कठोर व्यवहार क्यों करते हो?' रूपके हृदयपर बड़े भाईके कथनका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने जीवको बुलाकर गले लगाया और अपने पास रख लिया। रूप और सनातनके बाद जीव ही वृन्दावनके वैष्णवोंके सिरमौर घोषित किये गये।

आपकी सेवामें चारों ओरसे अपार धन आता, परंतु आप उस धनको श्रीयमुनाजीमें फेंक देते थे। शिष्य-सेवकोंने कई बार अनुरोध किया कि धनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयमुनाजीमें न फेंककर उससे साधुसेवा की जाय तो उसका अच्छा सदुपयोग होगा। आपने कहा—मैं किसी भी शिष्य अथवा सेवकमें साधुसेवा करनेकी योग्यता नहीं देखता हूँ। एक शिष्यने कहा—मैं अच्छी प्रकारसे साधुसेवा करूँगा। उसने कहनेको तो कह दिया, परंतु एक बार उसने एक साधुके आनेपर झुँझलाकर क्रोधपूर्वक जोरसे कटु वचन बोल दिया; तब श्रीजीवगोस्वामीजीने उसे समझाया तथा सन्तोंकी महिमाका बखान किया। फिर आपने समस्त शिष्य-सेवकोंको शिक्षा दी कि तुम सब लोग सुबहसे लेकर शामतक मधुर बोला करो। आपके अपार चरित्र हैं। आपकी भक्ति-भावनाका पार नहीं है। आपने परम वैराग्यको धारण किया था, उसका ओर-छोर वर्णन कोई नहीं कर सकता है।

इस घटनाका वर्णन भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

किये नाना ग्रन्थ हृदै ग्रन्थि दृढ़ छेदि डारैं डारैं धन यमुनामें आवै चहुँ ओर ते।
कही दास 'साधु सेवा कीजै' कहैं 'पात्रता न' करौ नीके, करी बोल्यो कटु कोप जोर ते॥
तब समझायौ सन्त गौरव बढ़ायौ यह सबकों सिखायौ बोलैं मीठो निसि भोर ते।
चरित अपार भाव भक्ति कौ न पारावार कियोऊ बैराग सार कहै कौन छोर ते॥ ३७४॥

जीवगोस्वामीने भक्तिको रस माना है। वे रसोपासक और विरक्त महात्मा थे। जीवगोस्वामीकी मान्यता थी कि भजनानन्द स्वरूपानन्दसे विशिष्ट है। भजनानन्दसे भगवान्‌की भक्ति मिलती है, स्वरूपानन्द ब्रह्मत्वका परिचायक है। आश्विन शुक्ल तृतीयाको शाके १५४० में पचासी सालकी अवस्थामें उन्होंने देह-त्याग किया। वे महान् दार्शनिक, पण्डित और भक्तियोगके पूर्ण मर्मज्ञ थे। वे महात्मा, योगी, विरक्त, भक्त—सबके सहज समन्वय थे।

श्रीराधारमणके भक्त

सर्बस राधारमन भट्ट गोपाल उजागर।
हृषीकेस भगवान बिपुल बीठल रस सागर॥
थानेस्वरि जग (नाथ) लोकनाथ महमुनि मधु श्रीरँग।
कृष्नदास पंडित्त उभै अधिकारी हरि अँग॥
घमँडी जुगलकिसोर भृत (भू) गर्भ जीव दृढ़ ब्रत लियो।
बृंदाबन की माधुरी इन मिलि आस्वादन कियो॥ ९४॥

श्रीधाम श्रीवृन्दावनकी माधुरीका इन महाभागवतोंने मिलकर अर्थात् परस्पर सत्संगद्वारा खूब आस्वादन किया। इनके नाम ये हैं—परम विख्यात श्रीगोपालभट्टजी, जिनके सर्वस्व ठाकुर श्रीराधारमणजी थे। श्रीहृषीकेशजी, श्रीअलिभगवान्‌जी, माधुर्यरससागर श्रीविट्ठलविपुलजी, श्रीजगन्नाथजी थानेश्वरी, श्रीलोकनाथगोस्वामीजी, महामुनि श्रीमधुगोस्वामीजी, श्रीरंगजी, ब्रह्मचारी श्रीकृष्णदासजी और पण्डित श्रीकृष्णदासजी ये दोनों श्रीहरिरसके अधिकारी एवं भगवान्‌के परमप्रिय थे। श्रीयुगलकिशोरजीके सेवक श्रीउद्धवघमण्डदेवाचार्यजी, श्रीभूगर्भगोस्वामीजी, श्रीजीव-गोस्वामीजी आदि। इन महानुभावोंने श्रीश्रीधामवासका दृढ़ व्रत ले रखा था॥ ९४॥

श्रीराधारमणजीके इन भक्तोंका चरित्र संक्षेपमें इस प्रकार वर्णित है—

श्रीगोपालभट्टजी

श्रीगोपालभट्टजीका जन्म श्रीरंगम्‌क्षेत्रस्थ बेलगुंड ग्राममें माघ कृष्ण ३ सं० १५५७ वि० को हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीवेंकटभट्ट और माताका नाम श्रीसदाम्बाजी था। श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीजी आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाचा थे, जो श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रिय पार्षद और अपने समयके उद्भट विद्वान् थे। आपने न्याय, वेदान्त, व्याकरण, साहित्य आदिकी शिक्षा इन्हींसे प्राप्त की। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने दक्षिण भारतकी यात्रा करते समय चातुर्मास्य आपके यहाँ ही बिताया था, उस समय आप मात्र एकादश वर्षके थे, अत: आपको महाप्रभुकी गोदमें बैठकर व्रजलीलाके निगूढ़तम रहस्योंका उस अल्प अवस्थामें ही श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब माता-पिताका परमधामगमन हो गया तो आपने श्रीब्रज-वृन्दावनकी राह पकड़ी और वहाँ पहुँचकर श्रीरूप-सनातनके दर्शन किये तथा उनकी सन्निधिमें रहते हुए अनेक भक्ति-ग्रन्थोंका अध्ययन, व्रजके तीर्थोंका उद्धार, वैष्णव-ग्रन्थोंका प्रणयन और भक्तिका प्रचार किया। रूप-सनातनके द्वारा आपके वृन्दावन-आगमनकी सूचना जब महाप्रभुको मिली तो वे बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीगोपालभट्टजी अपने परमाराध्य श्रीराधारमण-लालजीको अत्यन्त अनुरागमें पगकर अनेक प्रकारके राग-भोग सेवामें प्रस्तुत करते थे। भक्तिके प्रभावसे आप जगद्विख्यात हुए। आपके अनुपम प्रेममय अनेकों चरित्र हैं। आपने आजीवन श्रीवृन्दावनकी अगाध माधुरीका रसास्वादन किया तथा जिसने आपकी सीथ-प्रसादी पायी, वह भी दिव्य जीवन पाकर रसस्वरूप हो गया। आप जीवमात्रके गुणको ही ग्रहण करते थे, अवगुणोंको ध्यानमें नहीं लाते थे। आप बड़े ही करुणाधाम, धर्मके सेतु (पुल) तथा भक्तराज थे।

श्रीप्रियादासजीने श्रीगोपालभट्टजीके वृन्दावन और कृष्ण-प्रेमका इस प्रकार निरूपण किया है—

श्रीगोपालभट्टजू के हिये वै रसाल बसे लसे यों प्रगट राधारवन सरूप हैं।
नाना भोग राग करैं अति अनुराग पगे जगे जग माहिं हित कौतुक अनूप हैं॥
वृन्दावन माधुरी अगाधकौ सवाद लियौ जियौ जिन पायौ सीथ भये रस रूप हैं।
गुन ही को लेत जीव अवगुनको त्यागि देत करुनानिकेत धर्मसेत भक्तभूप हैं॥ ३७५॥

श्रीगोपालभट्टजीको सम्प्रदायमें गुणमंजरी सखीका अवतार माना जाता है, जिनके जिम्मे श्रीप्रिया-प्रियतमको जल पिलाने तथा चँवर डुलानेकी सेवा है। आपने अनेक नवीन ग्रन्थोंका प्रणयन किया, अनेक ग्रन्थोंपर टीकाएँ लिखीं। आषाढ़ शुक्ल ५, सं० १६४२ में आप नित्यलीलालीन हो गये।

श्रीअलिभगवान्

भक्तमालके आधारपर श्रीअलिभगवान्का काल सं० १६५० के आस-पास प्रतीत होता है। आप प्रारम्भमें भगवान् श्रीराघवेन्द्रसरकारके अनन्य भक्त थे, परंतु बादमें युगलकिशोरने आपके मनको ऐसा मोहा कि आप सदा-सदाके लिये श्रीधाम वृन्दावनमें बस गये और आजीवन श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवामें संलग्न रहे। आपके आराध्य-परिवर्तनकी कथा भी बहुत अद्भुत है। एक बारकी बात है, आप श्रीरामलीला देख रहे थे, उसमें जब श्रीराम-वनवास और रामवनगमनके करुण प्रसंग आये तो आपका धैर्य छूट गया और आप 'हा राम! हा रघुनाथ!' कहते हुए विलाप करने लगे। किसी प्रकारसे आपको शान्ति ही नहीं मिलती थी। इसी अवस्थामें आपके कई दिन बीत गये, शरीर जर्जर हो गया। भगवत्कृपासे इनकी एक सन्तसे भेंट हो गयी, उन्होंने इनकी स्थिति देखकर ही इनकी मन:स्थिति समझ ली। आपने भी उचित पात्र समझकर उनसे अपनी सारी मनोव्यथा कह सुनायी। सन्तने पूछा—'आप कभी श्रीवृन्दावन गये हैं?' आपके 'नहीं' कहनेपर वे आपको लेकर श्रीधाम वृन्दावन आये और भगवान् श्रीकृष्णके श्रीरासलीलानुकरणका दर्शन कराया। भगवान् श्रीकृष्णने भी अधिकारी जानकर आपको लीलास्वरूपमें ही अपनी दिव्य झाँकीका दर्शन कराया। भगवान्का साक्षात्कार होते ही आपका विरह दूर हो गया और मनमें एक नयी उमंग आ गयी। आपने निश्चय कर लिया कि अब मैं इन्हीं रासबिहारी भगवान्की सेवा करता हुआ यहीं वृन्दावनमें ही रहूँगा; परंतु दूसरे ही क्षण आपको ध्यान आया कि श्रीगुरुदेवजीने तो मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसीतारामजीकी सेवा सौंपी है; ऐसेमें उनकी सेवा छोड़कर श्रीरासबिहारीजीकी सेवा करनेसे कहीं भगवदपराध न बन जाय! अन्तमें आपने निश्चय किया कि अब मैं श्रीसीतारामजीकी ही श्रीरासबिहारी-विहारिणीके रूपमें सेवा करूँगा। इस प्रकार श्रीरासबिहारीजीकी सेवामें रहते हुए भी आपकी श्रीसीतारामजीके प्रति अनन्यता बनी रही।

श्रीप्रियादासजीने इष्ट-परिवर्तनकी इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

अलि भगवान् राम सेवा सावधान मन वृन्दावन आये कछु औंर रीति भई है।
देखे रास मण्डलमें बिहरत रसरास बाढ़ी छबि प्यास दृग सुधि बुधि गई है॥
नाम धरि रास औ बिहारी सेवा प्यारी लागी खगी हिय मांझ गुरु सुनी बात नई है।
बिपिन पधारे आप जाय पग धारे सीस 'ईस मेरे तुम' सुख पायो कहि दई है॥ ३७६॥

श्रीविट्ठलविपुलदेव

श्रीविट्ठलविपुलदेवजीका जन्म मार्गशीर्ष शु० ५, सं० १५३२ वि० को हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीगुरुजनजी और माताका नाम कौशल्या देवी था। महात्मा विट्ठलविपुलदेव बड़े भगवद्भक्त और रसिक थे। वे रसिकराज स्वामी हरिदासजीके शिष्य थे। उनकी अनन्य गुरुनिष्ठा थी।

विट्ठलविपुलदेव हरिदासजीके ममेरे भाई थे। उनसे अवस्थामें कई वर्ष बड़े थे। वे कभी-कभी हरिदासजीके साथ उनकी बाल्यावस्थाके समय भगवल्लीलानुकरणमें सम्मिलित हो जाया करते थे, उनके संस्कार पहलेसे ही पवित्र और शुद्ध थे। तीस वर्षकी अवस्थामें विट्ठलविपुलदेव वृन्दावन गये, उन्हें कुंज-कुंजमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलामाधुरीकी सरस अनुभूति होने लगी। साथ-ही-साथ स्वामी हरिदासके सम्पर्क और सत्संगका भी उनपर विशेष प्रभाव पड़ा। अपने गुरु आशुधीरजी महाराजकी आज्ञासे हरिदासजीने उन्हें दीक्षित कर लिया। वे उनकी कृपासे वृन्दावनके मुख्य रसिकोंमें गिने जाने लगे।

दीक्षित होनेके बाद उन्होंने वृन्दावनको ही अपना स्थायी निवासस्थान चुना। सं० १६३१ में स्वामी हरिदासके नित्यधाम पधारनेपर सन्तों और महन्तोंने उन्हें उनकी गद्दी सौंपी, बड़े आग्रह और अनुनय-विनयके बाद उन्होंने उत्तराधिकारी होना स्वीकार किया। गुरुविरहके दुःखसे कातर होकर उन्होंने आँखोंमें पट्टी बाँध ली थी। जिन नेत्रोंने रसिकराजेश्वर हरिदासके दिव्य अंगोंका माधुर्य-पान किया था, उनसे संसारका दर्शन करना उनके लिये सर्वथा असह्य था।

वे बड़े भावुक और सहृदय थे। एक बार वृन्दावनकी सन्त-मण्डलीने रासलीलाका आयोजन किया। सर्वसम्मतिसे महात्मा विट्ठलविपुलदेवको बुलानेका निश्चय किया गया। रसिकप्रवर व्यासजीके विशेष आग्रहपर वे रास-दर्शनके लिये उपस्थित हुए। उनके नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा बह रही थी, शरीर वशमें नहीं था, रास आरम्भ हुआ। भगवान्से भक्तकी विरह-पीड़ा न सही गयी। उनकी आह्लादिनी शक्ति रसमयी रासस्थिता श्रीरासेश्वरीने कहा, 'मेरे दर्शन करो! मैं राधा हूँ।' नित्यकेलिके साहचर्य-रसके स्मरणमात्रने भावावेशमें उन्हें दर्शनके लिये विवश किया। उन्होंने पट्टी हटा दी। नेत्रोंने रासरसिक-शेखर नन्दनन्दन और राधारानीका रूप देखा। वे खुले तो खुले ही रह गये, पट्टी अपने स्थानपर पड़ी रह गयी। विट्ठलविपुलदेवने रासस्थ भगवान् और उनकी भगवत्ता-स्वरूप साक्षात् राधारानीके दर्शन किये। उनके अधरोंपर स्फुरण था—'हे रासेश्वरी! तुम करुणा करके मुझे अपनी नित्यलीलामें स्थान दो। अब मेरे प्राण संसारमें नहीं रहना चाहते हैं।' बस, वे नित्यलीलामें सदाके लिये सम्मिलित हो गये। उनकी रसोपासनाने पूर्ण सिद्धि अपनायी। भगवान्ने उन्हें अपना लिया, कितना बड़ा सौभाग्य था उनका!

श्रीप्रियादासजीने विट्ठलविपुलदेवजीके नित्यलीलाप्रवेशकी घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—

स्वामी हरिदास जू के दास दास बीठल हैं गुरुसे वियोग दाह उपज्यो अपार है।
रासके समाजमें विराज सब भक्तराज बोलिकै पठाये आये आज्ञा बड़ो भार है॥
युगल सरूप अवलोकि नाना नृत्य भेद गान तान कान सुनि रही न सँभार है।
मिलि गये वाही ठौर पायौ भावतन और कहे रससागर जो ताको यों विचार है॥ ३७७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीजगन्नाथ थानेश्वरीजी

श्रीजगन्नाथ थानेश्वरीजी महाराज श्रीगौरांगमहाप्रभुके शिष्य थे। आप बड़े ही सन्तसेवी महात्मा थे और सन्तोंको भगवान्‌का ही प्रतिरूप मानते थे। एक बार आपके मनमें श्रीजगन्नाथपुरी जाकर महाप्रभु श्रीजगन्नाथजीके दर्शनकी अभिलाषा हुई, परंतु फिर मनमें आया कि मेरे घरपर न रहनेसे सन्तोंका ठीकसे सत्कार न हो पायेगा; अतः सन्तसेवा छोड़कर भगवान्‌का दर्शन करने जाना उचित नहीं। भगवान्‌का दर्शन करनेसे मेरा व्यक्तिगत कल्याण तो होगा, परंतु यहाँ सन्तोंको कष्ट होगा—ऐसा सोचकर आपने पुरी जानेका कार्यक्रम स्थगित कर दिया। तब आपके एक शिष्यने सलाह दी—'महाराज! आप तीन दिनके लिये श्रीजगन्नाथपुरीकी यात्रापर चलिये, उतने दिनतक अन्य लोग यहाँ काम सँभाले रहेंगे।' शिष्यकी बात आपको ठीक लगी और आपने पुनः चलनेका मन बना लिया। भगवान् जगन्नाथजीने आपका अपने प्रति प्रगाढ़ प्रेम और सन्तोंके प्रति अनन्य निष्ठा एवं सेवा-भावना देखी तो गद्‌गद हो गये तथा लगातार तीन दिनोंतक उन्होंने घरपर ही आपको दर्शन दिया। सन्तसेवाके इस तरहके प्रताप और भगवत्कृपाको देखकर आपने पुनः यात्रा स्थगित कर दी और सन्तसेवामें ही लगे रहे।

श्रीप्रियादासजी श्रीथानेश्वरीजीपर श्रीजगन्नाथस्वामीकी कृपाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

महाप्रभु पारषद थानेश्वरी जगन्नाथ नाथकौ प्रकाश घर दिना तीन देख्यो है।
भए शिष्य जान आप नाम कृष्णदास धर्‌यौ, कृष्णजू कहत सबै आदर विसेख्यो है॥
सेवा 'मनमोहनजू' कूपमें जनाइ दई, बाहर निकासि करी लाड़ उर लेख्यो है।
सुत रघुनाथजूकों स्वप्नमें श्लोकदान दयाके निधान पुत्र दियो प्रेम पेख्यो है॥ ३७८॥

श्रीलोकनाथजी

बंगालके जैसोर जिलेमें तालखड़ी नामका एक छोटा-सा गाँव है। लगभग पाँच सौ वर्षपूर्व इस गाँवमें पद्मनाभचक्रवर्ती नामक एक ब्राह्मण रहते थे। इनकी पत्नीका नाम था सीतादेवी। इन धर्मप्राण ब्राह्मण-दम्पतीके एकमात्र पुत्र थे लोकनाथ। घरमें वैष्णव-उपासना परम्परासे चली आ रही थी। स्वयं पद्मनाभ चक्रवर्ती श्रीअद्वैतप्रभुके शिष्य थे और सदा उन्हींकी सेवा-शुश्रूषामें लगे रहते थे। इन सब कारणोंसे लोकनाथको बहुत ही दिव्य संस्कार प्राप्त हुए।

श्रीलोकनाथजी श्रीमहाप्रभु कृष्णचैतन्यजीके एक पार्षद थे, इनकी श्रीराधाकृष्णके प्रति अहर्निश एकरस प्रीति थी। रसरूप श्रीमद्भागवत महापुराणका गान, कीर्तन, पारायण इनको प्राणके समान प्रिय था। ये इसमें अत्यन्त सुख मानते थे और कहा करते थे कि जो कोई भी श्रीमद्भागवतका गान करते हैं, वे मेरे मित्र हैं। इस रसभावनामें प्रवीण श्रीलोकनाथजी एक बार मार्गमें जाते हुए एक महानुभावको श्रीमद्भागवतका पाठ करते हुए देखकर उनके चरणोंपर पड़ गये।

श्रीप्रियादासजीने श्रीलोकनाथजीके इस भागवत-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

महाप्रभु कृष्ण चैतन्यजूके पारषद लोकनाथ नाम अभिराम सब रीति है।
राधाकृष्ण लीला सौं रंगीनमें नवीन मन जैसे जल मीन तैसें निसि दिन प्रीति है॥
भागवत गान रसखान सो तौ प्राण तुल्य अति सुख मान कहैं गावैं जोइ मीति है।
रसिक प्रवीन मग चलत चरण लागि कृपा कै जनाय दई जैसी नेह नीति है॥ ३७९॥

श्रीमधुगोस्वामीजी

श्रीमधुगोस्वामीजीका जन्म बंग देशमें हुआ था। बचपनमें भी खेल खेलते समय उन्हें भगवान्‌की लीलाका सरस स्मरण हो जाया करता था। उनके नयन श्यामसुन्दरकी अभिराम और मोहिनी झाँकी देखनेके लिये विकल हो उठते थे। यौवनके प्रथम कक्षमें चरण रखते ही भगवान् और उनके व्रजका विरह वे बहुत दिनोंतक नहीं सह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सके। वृन्दावनके लिये चल पड़े। श्रीमधुगोसाईं बंगालसे श्रीवृन्दावन आये। यहाँ आनेपर इनके मनमें यह चाह बढ़ी कि इन नेत्रोंसे श्रीश्यामसुन्दरके त्रिभुवनमोहन स्वरूपको देखना चाहिये तथा यह देखना चाहिये कि भगवान्‌का वह अचिन्त्यानन्त सौन्दर्य स्वरूप कैसा है? इसी लालसासे ये श्रीवृन्दावनके वन-वन, वृक्ष-लता-कुंजोंमें भगवान्‌को ढूँढ़ते फिरते। दर्शनकी चटपटीमें इनकी भूख-प्यास मिट गयी। ऐसे बेसुध हुए कि इन्हें छाया-धूपका भी किंचित् भान नहीं रहा। एक बार ये वंशीवटके निकट श्रीयमुनातटपर (पीठ देकर) बैठे हुए थे। उस समय श्रीयमुनाजीमें बाढ़ आयी हुई थी, वे ऊपर चढ़ रही थीं। उनका तीव्रवेग बड़े वेगसे करारोंको काट-काटकर गिरा रहा था। उस समय इन्हें श्रीवंशीवटके समीप अनूप रूपसिन्धु श्रीठाकुरजीके दर्शन हुए। इन्होंने दौड़कर श्रीठाकुरजीको गोदमें भर लिया। आज भी वे शिरमौर श्रीठाकुरजी श्रीगोपीनाथजीके रूपमें जयपुरमें विराजमान हैं। बड़भागी जन आज भी उनका दर्शनकर कृतार्थ होते हैं।

श्रीप्रियादासजीने श्रीमधुगोस्वामीजीके वृन्दावन-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीमधुगोसाईं आये वृन्दावन चाह बढ़ी देखैं इन नैननिसों कैसोधौं सरूप है।
ढूंढ़त फिरत बन बन कुंज लता द्रुम मिटी भूख प्यास नहीं जानै छांह धूप है॥
जमुना चढ़त काट करत करारे जहाँ बंसीबट तट डीठ परो सो अनूप है।
अंक भरि लिये दौर अजहूं लौं सिरमौर चाहै भाग भाल साथ गोपीनाथ रूप है॥ ३८०॥

श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजी

श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजी श्रीसनातनगोस्वामीपादजीके शिष्य थे। श्रीसनातनगोस्वामीजीने ठाकुर श्रीमदनमोहनजीको नवनिर्मित मन्दिरमें पधराकर उनकी सेवाका भार इन्हींको सौंप दिया और कहा कि भली प्रकारसे श्रीठाकुरजीकी सेवा करना। श्रीकृष्णदासजी ब्रह्मचारी भी गुरुकी आज्ञा शिरोधार्यकर बड़ी कुशलतापूर्वक श्रीठाकुरजीकी सेवा करते। आगे चलकर यही अधिकारी श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीके नामसे प्रसिद्ध हुए। आपने श्रीनारायणभट्टजीकी भक्तिपर रीझकर उनको अपना शिष्य बनाया। आप जब श्रीठाकुरजीका परम सुन्दर शृंगार करके स्वयं छबिका दर्शन करते तो शरीरकी सुधि-बुधि भूल जाती। आपकी बुद्धि भावसागरमें डूब जाती। आप अत्यन्त भावसे श्रीठाकुरजीको उत्तम राग-भोग अर्पण करते। इनके सेवित ठाकुर श्रीमदनमोहनजी वर्तमानमें करौली राजस्थानमें विराजमान हैं।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजीके भक्ति-भावका इस प्रकार वर्णन किया है—

गुसाईं श्रीसनातनजू मदनमोहन रूप, माथे पधराये कही सेवा नीके कीजियै।
जानौ कृष्णदास ब्रह्मचारी अधिकारी भये, भट्ट श्रीनारायणजू शिष्य किये रीझियै॥
करिकै सिंगार चारु आप ही निहारि रहै, गहे नहीं चेत भाव मांझ मति भीजियै।
कहा लौं बखान करौं राग भोग रीति भांति, अब लौ विराजमान देखि देखि जीजियै॥ ३८१॥

श्रीकृष्णदास पण्डित

पण्डित श्रीकृष्णदासजी महाराज बड़े ही सन्तसेवी महात्मा थे, आप ठाकुर श्रीगोविन्दचन्द्रजीको अपना आराध्य और उपास्य मानते थे। साथ ही भगवद्भक्तोंमें भी आपकी बड़ी प्रीति थी।

श्रीप्रियादासजीने इनके इस भगवत्सेवानुरागका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीगोविन्दचन्द रूपरासि रसरासि दास, कृष्णदास पण्डित ये दूसरे यों जानिलै।
सेवा अनुराग अङ्ग अङ्ग मति पागि रही पाग रही मति जो पै तो पै यह मानिलै॥
प्रीति हरिदासनसों विविध प्रसाद देत हिये लाय लेत देखि पद्धति प्रमानिलै।
सहजकी रीतिमें प्रतीतसों बिनीत करै ढरैं वाही ओर मन अनुभव आनिलै॥ ३८२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप श्रीठाकुरजीको श्लोक सुनानेकी सेवा करते थे, इसके लिये आप नित्य प्रति सौ नवीन श्लोकोंकी रचना करते और उन्हें प्रभुको सुनाते थे। एक दिन जब आप श्रीठाकुरजीको श्लोक सुना रहे थे, उसी समय कोई सन्त आपसे मिलने आ गये। आप सन्तसेवाको गरीयसी मानकर भगवान्को श्लोक सुनाना छोड़ उनसे मिलने चले गये। वार्तालापके क्रममें देर होने लगी, इधर भगवान्का भी धैर्य जवाब दे गया, उन्होंने आपको सचेत करनेके लिये भीतरसे एक थाल बाहर फेंका। थालकी झनझनाहटसे आपका वार्तालापका क्रम टूटा और आप पुनः श्रीठाकुरजीको श्लोक सुनाने गये तो वे उलाहना देते हुए बोले—'पण्डितजी! आप तो मेरी उपेक्षा करके दूसरोंसे मिलने चल देते हैं।' आपने कहा—'प्रभो! आपकी उपेक्षा तो की जा सकती है, क्या किसी सन्तकी उपेक्षा आपको सह्य होगी?' ठाकुरजी इनकी सन्तनिष्ठा देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'अच्छा, पण्डितजी! अब श्लोक सुनाओ।' आप भी प्रभुकी श्रवणोत्कण्ठा विचारकर गद्गद हो गये और प्रतिदिन सौ श्लोक सुनानेका नियम दृढ़ कर लिया।

श्रीभूगर्भगोसाईंजी

श्रीभूगर्भगोसाईंजी श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके कृपापात्र शिष्य श्रीगदाधर पण्डितजीके शिष्य थे। आप श्रीलोकनाथ गोस्वामीजीके साथ वृन्दावन आये थे और फिर वृन्दावनमें ही रह गये, वृन्दावनसे बाहर कहीं नहीं गये। ये संसारसे परम विरक्त एवं भगवान्की रूपमाधुरीमें अत्यन्त अनुरक्त थे। रसिक भक्तजनोंके साथ मिलकर आप उसी रूपमाधुरीका आस्वादन करते रहते। भगवान्का मानसी चिन्तन, मानसी अर्चन-वन्दन ही आपके जीवनका आधार था। भगवान्की मानसी मूर्तिको निरन्तर निहारा करते थे। आपके मनकी वृत्ति सदा उसी युगलस्वरूपके चिन्तनमें लगी रहती थी।

श्रीप्रियादासजीने श्रीभूगर्भगोसाईंजीकी युगलसरकारकी इस भक्तिका इस प्रकार वर्णन किया है—

गुसाईं भूगर्भ वृन्दावन दृढ़ बास कियो लियो सुख बैठि कुंज गोविन्द अनूप हैं।
बड़ेई विरक्त अनुरक्त रूप माधुरी में ताही कौ सवाद लेत मिले भक्तभूप हैं॥
मानसी विचार ही अहार सो निहारि रहैं गहैं मन वृत्ति वेई युगल सरूप हैं।
बुद्धिके प्रमान उनमानि मैं बखान कर्‌यौ भर्‌यौ बहु रंग जाहि जानैं रसरूप हैं॥ ३८३॥

श्रीगोवर्धनजीकी नित्य परिक्रमा करना आपकी दैनिकचर्याका अंग था। एक दिन आप प्रेममें बेसुध हुए परिक्रमा कर रहे थे कि एक शिलासे आपका पैर टकरा गया। पैरसे रक्तकी धारा बहने लगी थी, पीड़ा अधिक होनेसे चलना दूभर हो गया था। किसी प्रकार 'हा कृष्ण-हा कृष्ण' करते दिन कटा, शाम होनेको आयी, अब आपको और क्लेश होने लगा कि ठाकुरजीकी सायं पूजा-आरती कैसे होगी? भक्तवत्सल भगवान्से अपने भक्तका कष्ट न देखा गया, वे एक बलिष्ठ शरीरवाले साधुके रूपमें आपके पास आये और आपके मना करनेके बावजूद आपको कन्धेपर बिठाकर कुटीतक छोड़ गये। जब आपने उन्हें धन्यवाद देना चाहा तो वे अन्तर्धान हो चुके थे। अब आपको यह समझनेमें देर न लगी कि मेरे आराध्य श्रीठाकुरजी ही साधुके वेशमें मुझे कन्धेपर बैठाकर यहाँतक लाये थे। अब तो आपके दुःखका पारावार न रहा। आप यह सोच-सोचकर रोने लगे कि मुझसे तो श्रीठाकुरजीकी सेवा हो न सकी, उल्टे मैंने ही उनसे सेवा करा ली। उनकी इस व्याकुलताको देखकर श्रीठाकुरजीने उनसे स्वप्नमें कहा—'गुसाईंजी! भक्तोंका दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। जबतक मैं उनका दुःख दूरकर उन्हें सुखी नहीं कर देता, तबतक मेरे मनको विश्राम नहीं मिलता, अतः आप व्यर्थ संकुचित न हों।' भगवान्की इस प्रकारकी अमृतमयी वाणी सुनकर और उनकी भक्तवत्सलता देखकर आप गद्गद हो उठे। ऐसे भगवत्कृपापात्र थे श्रीभूगर्भगोसाईंजी!

श्रीहृषीकेश देवाचार्यजी

श्रीहृषीकेश देवाचार्यजी महाराज श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायानुयायी वैष्णव सन्त थे। आप श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजके द्वादश प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। श्रीवृन्दावनधाम आपकी साधना-स्थली थी। आप श्रीप्रिया-प्रियतमजीकी मानसीसेवा करते थे और सदा उनके ही ध्यानमें मग्न रहते थे।

श्रीरंगजी

श्रीरंगजी महाराज सिद्ध वैष्णव सन्त थे, आपकी सन्तसेवामें बड़ी निष्ठा थी। आपके यहाँ प्राय: सन्तोंका सत्संग चलता ही रहता। एक बार आपने सन्तोंका एक विशाल भण्डारा किया। सन्तोंकी पंक्ति प्रसाद पाने बैठ गयी और प्रसाद परोसा जाने लगा; इतनेमें जितने सन्त प्रसाद पाने बैठे थे, उसके दूने और आ गये। परोसनेवाले, रसोइया आदि घबरा गये कि इतने लोगोंको खिलानेभरका सामान तो है नहीं, फिर व्यवस्था कहाँसे होगी? श्रीरंगजी महाराजने कहा—'आप लोग धैर्य रखिये, भगवत्कृपासे किंचिन्मात्र भी कमी नहीं होगी; आप लोग सबको बैठाकर पवाइये।' रसोइयेने आपकी आज्ञाके अनुसार सबको बैठाकर प्रसाद-वितरण किया, आश्चर्य! उतना ही प्रसाद आये हुए समस्त सन्तजनोंकी पूर्णताके लिये पर्याप्त था। होता भी क्यों न! जिन प्रभुने द्रौपदीकी बटलोईके एक सागके पत्तेसे समस्त ब्रह्माण्डको तृप्त कर दिया था, उसके भक्तकी प्रतिष्ठा भला कैसे जा सकती थी!

श्रीघमण्डीजी

परम वैष्णव सन्त श्रीघमण्डीजी महाराजका जन्म राजस्थानके जयपुर राज्यान्तर्गत टोड़ाभीमके सन्निकट दूबरदू नामक ग्राममें हुआ था। छोटी अवस्थामें ही आपने निम्बार्क-सम्प्रदायके आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजीसे शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर ली और भगवद्भजनमें लग गये। श्रीगुरुदेवजीने आपका नाम श्रीउद्धवदेवजी रखा। आप अपने परमाराध्य श्रीयुगलकिशोरजीपर गर्व करते थे और पाखण्डियों तथा भगवद्विमुखोंको कुछ भी नहीं गिनते थे, अत: वे लोग आपको घमण्डीजी कहने लगे और सन्त समाजमें आपकी 'श्रीउद्धवघमण्डदेवाचार्यजी' के नामसे प्रतिष्ठा हो गयी। आपके जीवनका अधिकांश समय व्रजमें ही बीता, वहीं करहला ग्राममें रहते हुए आप श्रीराधामाधवजीकी भक्तिपूर्ण सेवा किया करते थे। कहते हैं कि आपकी भक्तिसे प्रसन्न होकर श्रीप्रियाप्रियतम युगलकिशोरने आपको दर्शन दिये साथ ही श्रीठाकुरजीने अपना मुकुट और श्रीराधाजीने अपनी चन्द्रिका भी इन्हें दी। श्रीराधाजीने आपसे कहा कि व्रजवासी ब्राह्मण बालकोंको मेरा और मेरी सखियोंका प्रतिरूप बनाकर रासलीलाका अनुकरण कराओ। तबसे लेकर आजतक उस ग्राममें और व्रजके अन्य क्षेत्रोंमें भी रासलीलानुकरणकी परम्परा चली आ रही है। करहला ग्राममें श्रीठाकुरजीके मुकुट और श्रीराधाजीकी चन्द्रिकाके आज भी दर्शन होते हैं, जो श्रीघमण्डीजी महाराजपर उनके आराध्यदेवकी कृपाके साक्षात् प्रतीक हैं।

श्रीरसिकमुरारिजी

तन मन धन परिवार सहित सेवत संतन कहँ।
दिब्य भोग आरती अधिक हरि हू ते हिय महँ॥
श्रीबृंदाबनचंद स्याम स्यामा रँग भीने।
मगन प्रेम पीयूष पयधि परचै बहु दीने॥
(श्री) हरिप्रिय स्यामानंद बर भजन भूमि उद्धार कियो।
(श्री) रसिक मुरारि उदार अति मत्त गजहि उपदेस दियो॥ ९५॥

श्रीरसिकमुरारिजी परमोदार सन्त थे। इन्होंने मतवाले हाथीको भी श्रीकृष्णनामका उपदेश दिया। ये (शिष्य परिकर एवं) सपरिवार तन, मन, धनसे सन्तोंकी सेवा करते थे। सन्तोंको दिव्य भोग अर्पित करते, विधिपूर्वक पूजा-आरती करते। कहाँतक कहा जाय, ये अपने हृदयमें श्रीहरिसे भी अधिक श्रीहरिभक्तोंको मानते थे। श्रीवृन्दावनचन्द श्रीश्यामा-श्यामके प्रेमरंगमें रँगे रहते थे तथा सर्वदा प्रेमामृतसिन्धुमें डूबे रहते थे। इन्होंने बहुत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से चमत्कार दिखाये हैं। श्रीभगवान्‌के परम प्यारे, श्रीसद्‌गुरुदेववर्य श्रीश्यामानन्दजीकी सन्तसेवाकी साधनभूत भूमिको यवन नवाबके चंगुलसे मुक्तकर आपने अपनी अद्भुत भक्ति-शक्तिका परिचय दिया॥ ९५॥

श्रीरसिकमुरारिजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीरसिकमुरारिजीका जन्म उड़ीसा मल्लभूमिमें रोहिणीनगरमें शक सं० १५१२ में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको प्रातःकालकी मंगल वेलामें हुआ था। आपके पिता श्रीअच्युतपटनायक जमींदार होते हुए भी बड़े भगवद्भक्त थे तथा माता भवानीदेवी पतिव्रता सद्‌गृहिणी थीं। आपका नामकरण करते समय पण्डितोंने ज्योतिष-गणनाके आधारपर आपका नाम 'रसिक' रखा और महापुरुषके लक्षण बताये, परंतु आपके पिताजी आपका नाम 'मुरारि' रखना चाहते थे; अतः दोनों नाम मिलाकर आपका नाम 'रसिकमुरारि' रखा गया। अन्नप्राशनके अवसरपर प्रवृत्ति-परीक्षण हेतु रखे गये द्रव्योंपर जब हाथ रखना हुआ तो आपने ग्रन्थरत्न श्रीमद्भागवतपर अपना हाथ रखा। उसी समय उपस्थित जनों और कुटुम्बियोंको यह दृढ़ निश्चय हो गया कि यह बालक परमभागवत और महान् भगवद्भक्त होगा। बाल्यकालसे ही आपका सन्तोंके प्रति सहज आकर्षण था। उनकी 'जय जगदीश' की ध्वनि सुनते ही आप-अपने नन्हें-नन्हें हाथोंमें जो कुछ मिलता भरकर लाते और भिक्षा देते। एक बार आपके यहाँ श्रीमद्भागवतका सप्ताह पाठ चल रहा था, जब उसमें गोपीगीतका प्रसंग आया तो आप मूर्च्छित हो गये। श्रीमद्भागवत ग्रन्थपर आपका विशेष अनुराग था, आपने श्रीश्यामानन्दजीसे श्रीयुगल-मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त की। उन्हींसे आपको व्रजतत्त्व और सम्प्रदाय-रहस्यका ज्ञान हुआ। श्रीगुरुदेवजीके साथ आपने व्रजके तीर्थोंकी यात्राकर उनके तात्त्विक दर्शन किये। तत्पश्चात् उन्हींके साथ आप उत्कल देश चले गये, वहाँ अनेक विमुखोंको भक्त बनाया और अन्तिम समयतक भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी सेवामें रत रहे।

श्रीरसिकमुरारिजी बड़े बृहद् रूपसे सन्त-सेवा करते थे। आपकी सेवाकी पद्धति कुछ विलक्षण ही थी, वह यह कि सन्तोंके चरणोदकसे भरे हुए मटके घरपर धरे रहते थे। आप उसीको प्रणाम करते, उसीकी पूजा करते और उसीका हृदयमें ध्यान धरते थे। आपके यहाँ जो भी सन्त-वैष्णव आते, उन्हें अपार सुख देते थे। आप बड़े समारोहसे श्रीगुरु-उत्सव मनाया करते थे। उसमें पूरे दिन कथा-कीर्तन सत्संग, भोज-भण्डारे होते रहते थे, जिससे सब लोग बहुत सुख पाते थे। यह उत्सव बारह दिन तक लगातार चलता रहता था। बारहों दिनतक भक्तोंकी भीड़ लगी रहती थी, जो देखनेमें अत्यन्त ही प्रिय लगती थी।

श्रीप्रियादासजी महाराजने श्रीरसिकमुरारिजीकी इस सन्तसेवाका इस प्रकार वर्णन किया है—

रसिकमुरारि साधुसेवा बिसतार कियौ पावै कौन पार रीति भांति कछु न्यारियै।
सन्त चरणामृत के माट गृह भरे रहै ताहीकौ प्रनाम पूजा करि उर धारियै॥
आवैं हरिदास तिन्हैं देत सुखराशि जीभ एक न प्रकाशि सकै थकै सो विचारियै।
करैं गुरु उत्सव लै दिनमान सबैं कोऊ द्वादस दिवस जन घटा लागी प्यारियै॥ ३८४॥

एक दिन श्रीरसिकमुरारिजीके यहाँ भण्डारेमें बहुतसे सन्त प्रसाद पा रहे थे। आपने एक शिष्यका सन्तोंके प्रति हृदयका भाव जाननेके लिये उसे आज्ञा देकर भेजा कि जाकर सन्तोंका चरणामृत अच्छी प्रकारसे ले आओ। उसने लाकर कहा कि सब साधुओंका चरणामृत ले आया। श्रीरसिकमुरारिजीने चरणामृत पानकर कहा कि '*क्या कारण है कि चरणामृतमें पहले-जैसा स्वाद नहीं आया।*' आपने निश्चय करके जान लिया कि यह किसी सन्तका चरणामृत लेनेसे छोड़ आया है, अतः जोर देकर पूछा कि 'सही बताओ तुमने किसी सन्तको छोड़ा तो नहीं है?' तब शिष्यने कहा कि 'एक कोढ़ी सन्त थे, मैंने उन्हींका चरणामृत नहीं लिया।' आपने कहा—'जाओ, उनका चरणामृत भी ले आओ। तब शिष्य उनका भी चरणामृत ले आया।' उसे आपने स्वयं पान किया और दूसरोंको भी दिया। आपको वह चरणामृत पीनेसे अपार सुख मिला। आपके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह चले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने श्रीरसिकमुरारिजीकी इस सन्तचरणामृतनिष्ठाका इस प्रकार वर्णन किया है—

सन्त चरणामृतको ल्यावो जाय नीकी भाँति जीकी भाँति जानिबेको दास लै पठायौ है।
आनिकै बखान कियौ लियौ सब साधुनकौ पान कर बोले 'सो सवाद नहिं आयौ है'॥
जिते सभाजन कही चाखौ देहु मन, कोऊ महिमा न जानैं कन जानी छोड़ि आयौ है।
पूछी, कही 'कोढ़ी एक रह्यौ,' आनो, ल्यायो, पीयो, दियो सुख पाय नैन नीर ढरकायौ है॥ ३८५॥

एक बार भक्तराज श्रीरसिकमुरारिजी राजाओंके समाजमें विराजमान होकर ज्ञानोपदेश कर रहे थे। सभी लोग बड़े ही मनोयोगपूर्वक आपका उपदेश श्रवण कर रहे थे; वहीं पासमें ही एक स्थलपर सब सन्त बैठे भोजन कर रहे थे। उन्हीं सन्तोंमें एक सन्त अपने अतिरिक्त अपने सोंटेका भी दूसरा पारस माँग रहे थे। परंतु रसोइया उन्हें सोंटेका पारस नहीं दे रहा था। पारस न देनेपर वह सन्त शोरगुल मचा रहे थे। अन्ततोगत्वा उन सन्तने अपनी परसी-परसाई पत्तल उठायी और गोस्वामी श्रीरसिक-मुरारिजीके ऊपर डाल दी और बहुतेरी गालियाँ भी दीं। प्रवचन करते समय मुँह खुला होनेके कारण एक लड्डू गोस्वामीजीके मुखमें चला गया। श्रीरसिकमुरारिजी शान्तिपूर्वक गालियाँ सुनते रहे। फिर उन्होंने अवसर देखकर कहा—'अहो! मैं सन्तोंकी सीथ—प्रसादीसे विमुख था तो सन्तने स्वयं कृपा करके लाकर मेरे मुखमें ही डाल दिया।' तत्पश्चात् आपने उस सेवकको, यह कहकर कि तुम्हारा सन्त-सेवामें भाव नहीं है, सेवासे अलग कर दिया और सोंटेका पारस दिलाया।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

नृपति समाज मैं विराजमान भक्तराज कहैं वे विवेक कोऊ कहनि प्रभाव है।
तहां एक ठौर साधु भोजन करत रौर देवौ दूजी सोंटा संग कैसे आवै भाव है॥
पातरि उठाय श्रीगुसाईं पर डारि दई दई गारी सुनि आप बोले देख्यौ दाव है।
सीथ सों विमुख मैं तो आनि मुखमध्य दियौ कियौ दास दूर सन्तसेवामें न चाव है॥ ३८६॥

एक दिनकी बात है। श्रीरसिकमुरारिजीके बागमें सन्तोंकी जमात टिकी हुई थी। आप सन्तोंका दर्शन करने चले। उस समय एक सन्त हुक्का पी रहे थे। उन्होंने आपको आते हुए देखा तो सकुचाकर हुक्काको कहीं छिपा दिया। अपने आनेसे सन्तोंको संकोच हुआ जानकर इसके प्रायश्चित्तके लिये आपने उन साधुका सम्मान करना चाहा। फिर तो उसी क्षण चक्कर खाकर पेट पकड़कर बैठ गये और बोले—'मेरे पेटमें बड़े जोरका दर्द हो रहा है, देखो तो किसी संतके पास हुक्का रखा है क्या?' आपके एक सेवकने सन्तोंकी जमातमें जाकर सबको सुनाकर पूछा कि 'किसीके पास हुक्का-तम्बाकू है', यह सुनकर हुक्का पीनेवाले सन्तको बड़ा उल्लास हुआ और उन्होंने तत्काल ही हुक्का लाकर सामने कर दिया। आपने झूठ-मूठकी लम्बी श्वास खींचकर हुक्का पीनेका स्वाँग किया और तुरंत स्वस्थ हो गये। इस प्रकार आपने झूठे स्वाँगसे सन्तकी शंका और दुःखको दूर कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बागमें समाज सन्त चले आप देखिबेको देखत दुरायो जन हुक्का सोच पर्यौ है।
बड़ौ अपराध मानि साधु सनमान चाहैं, घूमितन बैठि कही देखौ कहूं धर्यौ है॥
जायकै सुनाई दास काहूके तमाखू पास सुनिकै हुलास बढ्यौ आगे आनि कर्यौ है।
झूठे ही उसांस भरि सांचे प्रेम पाय लिये किये मन भाये ऐसे संका दुःख हर्यौ है॥ ३८७॥

श्रीरसिकमुरारिजीके गुरुदेव 'धारेन्दा' नामक स्थानमें रहते थे। उनके स्थानसे सम्बन्धित कुछ जमीन बानपुर नामक ग्राममें थी। वहाँ खेती होती थी। जो अन्न उत्पन्न होता, वह साधुसेवा निमित्त धारेन्दा स्थानपर आता। उन्हीं दिनों बानपुरमें एक नया नवाब आया। वह बड़ा ही दुष्ट था। उसने आकर साधुओंको बहुत अवाच्य वचन कहा और उस ग्रामकी समस्त भूमि अपहरण कर ली। श्रीश्यामानन्दजीने विचार किया कि सन्तसेवाकी इस जमीनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे छुड़ाया जाय? फिर विचारकर उन्होंने श्रीरसिकमुरारिजीको पत्र लिख दिया कि तुम जिस स्थितिमें हो, उसी स्थितिमें यहाँ चले आओ। श्रीरसिकमुरारिजी उस समय भोजन कर रहे थे। पत्र पाते ही बिना आचमन किये ही हाथ जोड़े हुए चले आये। श्रीरसिकमुरारिजीने हाथ और मुँह जूठा होनेसे पीछेसे ही गुरुजीको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। पुनः निवेदन किया कि मैं भोजन कर रहा था, उसी समय आपका पत्र मिला, अतः बिना आचमन किये, ज्यों-का-त्यों चला आया। इनकी यह गुरुभक्ति देखकर श्रीश्यामानन्दजीका हृदय प्रेमसे भीग गया।

श्रीरसिकमुरारिजीकी गुरुभक्तिकी इस घटनाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

उपजत अन्न गांव आवै साधुसेवा ठांव नयो नृपदुष्ट आय कांव कांव कियो है।
ग्रामसो जबत कर्‌यौ कर्‌यौ लै विचार आप स्यामानन्दजू मुरारि पत्र लिखि दियो है॥
जाही भाँति होहु ताही भाँति उठि आवौ इहां आये हाथ बांधि करि अँचैहू न लियो है।
पाछे साष्टांग करी करी लै निवेदन सो भोजनमें कही चले आये भीज्यो हियो है॥ ३८८॥

श्रीगुरुदेव श्रीश्यामानन्दजीकी आज्ञा पाकर श्रीरसिकमुरारिजीने आचमन किया। तत्पश्चात् श्रीश्यामानन्दजीने इन्हें उसी स्थानपर भेजा, जहाँ दुष्टोंमें शिरोमणि नवाब रहता था। आप वहाँ गये। वहाँपर आपके शिष्यगण मिले, जो नवाबके यहाँ मुन्शी, मुनीम आदि थे। उन सबोंने आपको नवाबकी बात सुनायी कि वह बड़ा नीच है, अतः आप तो यहाँसे प्रातःकाल ही चले जायँ। हम सब उसको समझा-बुझाकर काम करा लेंगे। श्रीरसिकमुरारिजी बोले—'चिन्ता मत करो। हृदयमें निश्चिन्तताको धारण करो।' तीन दिनतक नवाबके कर्मचारी लोग अपने गुरुदेव श्रीरसिकमुरारिजीकी ही सेवामें रहे। तीसरे दिन नवाबका ध्यान इस ओर गया तो उन लोगोंको दरबारमें बुलवाया और पूछा कि तीन दिनतक कहाँ रहे?

जब नवाबने कर्मचारियोंके मुखसे यह सुना कि उनके गुरुवर्य आये हैं तो कहा कि उन्हें मेरे घर लिवा लाओ, मैं उनकी करामात देखूँगा। नवाबने जब यह बात सुनायी तो कर्मचारियोंने आकर श्रीरसिकमुरारिजीसे प्रार्थना की कि अब भी आप यहाँसे चले जाइये। आपने कहा कि चलो, जरा उसको देखें तो क्या कहता-करता है। उसकी कितनी सामर्थ्य है? यह कहकर आप नवाबके द्वारा भेजी हुई पालकीपर बैठकर चले। मार्गमें आये तो देखा कि चारों ओर मतवाले हाथीकी धूम छायी हुई है। हाथीके डरसे कहार इनकी पालकी छोड़कर भाग गये। परंतु आप किंचित्मात्र भी विचलित नहीं हुए। बल्कि शास्त्रोंमें जैसी वाणी बोलनेको कहा गया है, हाथीसे आप वैसी ही परमरसमयी वाणी बोले—'हे गज! हरे कृष्ण हरे कृष्ण कहो, अपने तामसी शरीरके तमोगुणी स्वभावको छोड़ो।' आपके ये वचन सुनते ही हाथीके हृदयमें प्रेम-भाव भर गया। उसने आपके श्रीचरणोंमें अपने शरीरको झुकाकर प्रणाम किया।

श्रीरसिकमुरारिजीका मंगलमय दर्शन करके और अमृतमय वचनोंको श्रवण करके हाथीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। तब आपने कृपा करके उसे धैर्य बँधाया और भक्ति-भाव प्रदान किया। उसके कानमें श्रीकृष्णनाम सुनाया, गलेमें तुलसीकी माला पहिनायी और उसका नाम गोपालदास रखा। इस प्रकार ऐसे मतवाले हाथीको शिष्य बनानेसे श्रीरसिकमुरारिजीका महान् प्रभाव प्रकटित हुआ, जिसे देखकर दुष्टशिरोमणि नवाब दौड़कर उसी स्थानपर आया और आपके श्रीचरणोंमें लिपट गया। जो जमीन जब्त की थी, वह तो लौटा ही दी और भी कितने नवीन गाँव एवं हाथी भेंटमें दिया। पुनः हाथ जोड़कर बोला कि आज मेरे किसी बड़े भाग्यका उदय हुआ, जो आपका दर्शन हुआ।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

आज्ञा पाइ अँचयो लै दै पठाए वाही ठौर दुष्ट सिर मौर जहां तहां आप आये हैं।
मिले मुतसद्दी शिष्य आइकै सुनाई बात 'जावो उठि प्रात' यह नीच जैसे गाये हैं॥
हमहीं पठावैं, काम करि समझावैं सब मनमें न आवै जानी नेह डरपाये हैं।
चिन्ता जिनि करौ हिये धरौ निहचिंतताई भूप सुधि आई दिना तीन कहां छाये हैं॥ ३८९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनि आये गुरुवर कही ल्यावो मेरे घर देखौं करामात बात यह लै सुनाई है।
कह्यौ आनि अभूं जावौ चलौ उनमान देखै, चले सुख मानि आयौ हाथी धूम छाई है॥
छोड़िकै कहार भाजि गये न निहारि सके आप रससार बानी बोले जैसी गाई है।
बोलौ हरे कृष्ण कृष्ण छाड़ौ गज तम तन सुनि गयौ हिये भाव देह सो नवाई है॥ ३९०॥
बहै दृग नीर देखि ह्वै गयौ अधीर आप कृपा करि धीर कियौ दियौ भक्ति भाव है।
कान में सुनायौ नाम नामदै 'गुपालदास' माल पहिराई गरें प्रगट्यौ प्रभाव है॥
दुष्ट सिरमौर भूप लखि लहि ठौर आयौ पाँय लपटायौ भयौ हिये अति चाव है।
निपट अधीन गाँव केतिक नवीन दिये लिये करजोरि मेरौ फल्यौ भागदाव है॥ ३९१॥

श्रीरसिकमुरारिजीकी कृपासे वह गजराज गोपालदास भक्तराज हो गया। वह खूब सन्तसेवा करता था। सन्त समाजको देखकर प्रणाम करता था। वह हाथी बनजारोंके यहाँसे बोरे-के-बोरे चावल-दाल आदि लाकर सन्तोंकी जमातमें पटक देता था। एक बार सभी बनजारोंने मिलकर गजराज गोपालदासजीके गुरुदेव श्रीरसिकमुरारिजीके स्थानपर आकर पुकार की कि 'आपके शिष्य गजगोपालदास हमलोगोंका सब माल-मत्ता उठा लाते हैं।' गजगोपालदासजीका नियम था कि जब कभी स्थानमें कोई विशेष महोत्सव, भोज-भण्डारा होता तो जब सन्तोंकी पंक्ति भोजन करके उठ जाती, तब वे आते और सन्तोंकी सीथ—प्रसादी पाते। एक दिन ऐसे ही समयपर आये तो श्रीरसिकमुरारिजीने समझाया कि बलात्कारपूर्वक बनजारोंका सामान मत उठा लाया करो। यह काम निन्द्य है। तबसे गजगोपालदासजीने वह काम छोड़ दिया। सन्तोंसे उनका ऐसा प्रेम बढ़ा कि उनके संग सन्तोंका समूह चलता था। इससे गजगोपालदासजीकी बड़ी ख्याति फैली।

इनका चमत्कार सुनकर बंगालके नवाब शाहशुजाको चाह हुई कि ऐसे हाथीको हम अपने पास रखें। अत: पकड़वानेके लिये उसने बहुतसे आदमी नियुक्त किये, परंतु यह किसीके भी हाथ नहीं आये, तब सूबेदारने यह घोषणा की कि जो भी हाथीको पकड़कर लायेगा, उसे बहुत पुरस्कार दिया जायगा। यह सुनकर उस सन्तवेष-निष्ठ हाथीको एक साधुवेषधारी, जो नाममात्रका साधु था, पकड़ लाया। श्रीगजगोपालदासजीका नियम था कि बिना सन्तोंकी सीथ—प्रसादी लिये जल भी नहीं पीते थे। सूबेदारके यहाँ सन्तोंकी सीथ—प्रसादी न मिलनेसे तीन-चार दिनतक इन्होंने कुछ भी खाया-पिया नहीं। तब सूबेदारके कहनेसे नौकर-चाकर इन्हें जल पिलानेके लिये श्रीगंगाजीकी धारामें ले गये। श्रीगंगाजीका दर्शन करके इन्होंने बीच धारामें प्रवेश करके अपना शरीर छोड़ दिया।

श्रीप्रियादासजी गजगोपालदासजीकी इस सन्तनिष्ठाका अपने कवित्तोंमें वर्णन करते हुए कहते हैं—

भयौ गजराज भक्तराज साधुसेवा साज सन्तनि समाज देखि करत प्रनाम है।
आनि डारै गोनि बनजारनि की बारन सों आयेई पुकारन वे जहां गुरुधाम है॥
आवत महोच्छौ मध्य पावत प्रसाद सीथ बोले आप हाथी सौं यों निन्द्य वह काम है।
छोड़ि दई रीति तब भक्तनसौं प्रीति बढ़ी संगही समूह फिरै फैलि गयौ नाम है॥ ३९२॥
सन्त सत पांचसात संग जित जात तित लोग उठि धावै ल्यावै सीधे बहु भीर है।
चहूँ दिसि परी हई सूबा सुनि चाह भई हाथ पै न आवत सो आनै कोऊ धीर है॥
साधु एक गयौ गहि लयौ भेष दास तन मन में प्रसाद नेम पीवै नहिं नीर है।
बीते दिन तीन चार जल लै पिवावैं धार गंगा जू निहारि मधि तज्यौ यों सरीर है॥ ३९३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवसागरसे पार करानेवाले भगवद्भक्त

सोझा सींव अधार धीर हरिनाम त्रिलोचन।
आसाधर द्योराजनीर सधना दुखमोचन॥
कासीस्वर अवधूत कृष्न किंकर कटहरिया।
सोभू ऊदाराम, नाम डूँगर ब्रतधरिया॥
पदम पदारथ रामदास बिमलानंद अमृत श्रए।
भव प्रबाह निस्तार हित अवलंबन ये जन भए॥ ९६॥

आवागमनरूप संसारके प्रवाहमें पड़े हुए जीवोंके उद्धारके लिये ये भगवद्भक्त अवलम्बस्वरूप हुए। श्रीसोझाजी, श्रीसींवाजी, धैर्यवान् श्रीअधारजी, श्रीहरिनाभजी, श्रीत्रिलोचनजी, श्रीआसाधरजी, श्रीद्यौराजनीरजी, श्रीसदनजी—ये सब भक्तजीवोंको संसार-दुःखसे छुड़ानेवाले हुए। अवधूत काशीश्वरजी, श्रीकृष्णकिंकरजी, श्रीकटहरियाजी, श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी, श्रीऊदारामजी, श्रीडूँगरजी—ये श्रीहरिनामका व्रत धारण करनेवाले हुए। श्रीपद्मजी, श्रीपदारथजी, श्रीरामदासजी, श्रीविमलानन्दजी—ये भक्त श्रीहरिभक्तिरसामृतकी वर्षा करनेवाले हुए॥ ९६॥

इनमेंसे कतिपय भक्तोंके विषयमें विवरण इस प्रकार है—

सदन कसाई

प्राचीन समयमें सदन नामक कसाई जातिके एक भक्त हो गये हैं। यद्यपि ये जातिसे कसाई थे, फिर भी इनका हृदय दयासे पूर्ण था। आजीविकाके लिये और कोई उपाय न होनेसे दूसरोंके यहाँसे मांस लाकर बेचा करते थे, स्वयं अपने हाथसे पशु-वध नहीं करते थे। इस काममें भी इनका मन लगता नहीं था, पर मन मारकर जाति-व्यवसाय होनेसे करते थे। सदनका मन तो श्रीहरिके चरणोंमें रम गया था। रात-दिन वे केवल 'हरि-हरि' करते रहते थे।

भगवान् अपने भक्तसे दूर नहीं रहा करते। सदनके घरमें वे शालग्रामरूपसे विराजमान थे। सदनको इसका पता नहीं था। वे तो शालग्रामको पत्थरका एक बाट समझते थे और उनसे मांस तौला करते थे। एक दिन एक साधु सदनकी दूकानके सामनेसे जा रहे थे। दृष्टि पड़ते ही वे शालग्रामजीको पहचान गये। मांस-विक्रेता कसाईके यहाँ अपवित्र स्थलमें शालग्रामजीको देखकर साधुको बड़ा क्लेश हुआ। सदनसे माँगकर वे शालग्रामको ले गये। सदनने भी प्रसन्नतापूर्वक साधुको अपना वह चमकीला बाट दे दिया।

साधु बाबा कुटियापर पहुँचे। उन्होंने विधिपूर्वक शालग्रामजीकी पूजा की; परंतु भगवान्को उससे प्रसन्नता न हुई। रातमें उन साधुको स्वप्नमें भगवान्ने कहा—'तुम मुझे यहाँ क्यों ले आये? मुझे तो अपने भक्त सदनके घरमें ही बड़ा सुख मिलता था। जब वह मांस तौलनेके लिये मुझे उठाता था, तब उसके शीतल स्पर्शसे मुझे अत्यन्त आनन्द मिलता था। मुझे सदनके बिना एक क्षण कल नहीं पड़ती।'

साधु महाराज जगे। उन्होंने शालग्रामजीको उठाया और सदनके घर जाकर उसे दे आये। साथ ही उसको भगवत्कृपाका महत्त्व भी बता आये। सदनको जब पता लगा कि उनका यह बटखरा तो भगवान् शालग्राम हैं, तब उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। अपने व्यवसायसे घृणा हो गयी। वे शालग्रामजीको लेकर पुरुषोत्तमक्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीको चल पड़े।

श्रीप्रियादासजीने सदनके प्रति भगवान्की इस भक्तवत्सलताका इस प्रकार वर्णन किया है—

सदना कसाई ताकी नीकी कस आई जैसे बारा बानी सोनेकी कसौटी कस आई है।
जीवको न बध करैं ऐपै कुलाचार ढरैं बेंचैं मांस लाय प्रीति हरिसों लगाई है॥
गंडकीकौ सुत बिन जाने तासों तोल्यौ करैं भरै दृग साधु आनि पूजै पै न भाई है।
कही निसि सुपने मैं वाही ठौर मोकों देवौ सुनौ गुनगान रीझौं हियेकी सचाई है॥ ३९४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लै कै आयो साधु मैं तो बड़ो अपराध कियौ कियौ अभिषेक सेवा करी पै न भाई है।
ये तौ प्रभु रीझे तोपै जोई चाहौ सोई करौ गरो भरि आयौ सुनि मति बिसराई है॥
वेई हरि उर धारि डारि दियो कुलाचार चले जगन्नाथ देव चाह उपजाई है।
मिल्यौ एक संग संग जात वे सुगात सब तब आप दूर दूर रहैं जानि पाई है॥ ३९५॥

मार्गमें सन्ध्या-समय सदनजी एक गाँवमें एक गृहस्थके घर ठहरे। उस घरमें स्त्री-पुरुष दो ही व्यक्ति थे। स्त्रीका आचरण अच्छा नहीं था। वह अपने घर ठहरे हुए इस स्वस्थ, सुन्दर, सबल पुरुषपर मोहित हो गयी। आधी रातके समय सदनजीके पास आकर वह अनेक प्रकारकी अशिष्ट चेष्टाएँ करने लगी। यह देख वे हाथ जोड़कर बोले—'तुम तो मेरी माता हो! अपने बच्चेकी परीक्षा मत लो, मा! मुझे तुम आशीर्वाद दो।'

उस स्त्रीने समझा कि मेरे पतिके भयसे ही यह मेरी बात नहीं मानता। वह गयी और तलवार लेकर सोते हुए अपने पतिका सिर उसने काट दिया और कहने लगी—'प्यारे! अब डरो मत। मैंने अपने पतिका सिर काट डाला है। अब तुम मुझे स्वीकार करो।'

सदन भयसे काँप उठे। स्त्रीने अनुनय-विनय करके जब देख लिया कि उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं हो सकती, तब द्वारपर आकर छाती पीट-पीटकर रोने लगी। लोग उसका रुदन सुनकर एकत्र हो गये। उसने कहा—'इस यात्रीने मेरे पतिको मार डाला है और यह मेरे साथ बलात्कार करना चाहता था।' लोगोंने सदनको खूब भला-बुरा कहा, कुछने मारा भी; पर सदनने कोई सफाई नहीं दी। मामला न्यायाधीशके पास गया। सदन तो अपने प्रभुकी लीला देख रहे थे, अतः अपराध न करनेपर भी अपराध स्वीकार कर लिया। न्यायाधीशकी आज्ञासे उनके दोनों हाथ काट लिये गये।

सदनके हाथ कट गये, रुधिरकी धारा चलने लगी; उन्होंने इसे अपने प्रभुकी कृपा ही माना। उनके मनमें भगवान्‌के प्रति तनिक भी रोष नहीं आया। भगवान्‌के सच्चे भक्त इस प्रकार निरपराध कष्ट पानेपर भी अपने स्वामीकी दया ही मानते हैं। भगवन्नामका कीर्तन करते हुए सदन जगन्नाथपुरीको चल पड़े। उधर पुरीमें प्रभुने पुजारीको स्वप्नमें आदेश दिया—'मेरा भक्त सदन मेरे पास आ रहा है। उसके हाथ कट गये हैं। पालकी लेकर जाओ और उसे आदरपूर्वक ले आओ।' पुजारी पालकी लिवाकर गये और आग्रहपूर्वक सदनको उसमें बैठाकर ले आये। सदनने जैसे ही श्रीजगन्नाथजीको दण्डवत् करके कीर्तनके लिये भुजाएँ उठायीं, उनके दोनों हाथ पूर्ववत् ठीक हो गये।

श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका अपने दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आयौ मग गाँव भिक्षा लेन इक ठांव गयौ नयो रूप देखि कोऊ तिया रीझि परी है।
बैठो याही ठौर करो भोजन निहोरि कह्यौ रह्यौ निसि सोय आई मेरी मति हरी है॥
लेवो मोको संग करौ काटौ तौ न होय रंग बूझी और काटी पति ग्रीव पै न डरी है।
कही अब पागो मोसों नातो कौन तोसों मोसों सोर करि उठी इन मार्‍यो भीर करी है॥ ३९६॥
हाकिम पकरि पूछै कहैं हँसि मार्‍यो हम, डार्‍यौ सोच भारी कही हाथ काटि डारियै।
कट्यो कर चले हरिरंग मांझ झिले मानी जानी कछु चूक मेरी यहै उर धारियै॥
जगन्नाथदेव आगे पालकी पठाई लेन, सधनासो भक्त कहां? चढ़ैं न विचारियै।
चढ़ि आये प्रभु पास सुपनोसो मिट्यौ त्रास बोले दै कसौटी हूँ पै भक्ति विसतारियै॥ ३९७॥

प्रभुकी कृपासे हाथ ठीक तो हुए, पर मनमें शंका बनी ही रही कि वे क्यों काटे गये? रातमें स्वप्नमें भगवान्‌ने सदनजीको बताया—'तुम पूर्वजन्ममें काशीमें सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण थे। एक दिन एक गाय कसाईके घेरेसे भागी जा रही थी। उसने तुम्हें पुकारा। तुमने कसाईको जानते हुए भी गायके गलेमें दोनों हाथ डालकर उसे भागनेसे रोक लिया। वही गाय वह स्त्री थी और कसाई उसका पति था। पूर्वजन्मका बदला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेनेके लिये उसने उसका गला काटा। तुमने भयातुरा गायको दोनों हाथोंसे पकड़कर कसाईको सौंपा था, इस पापसे तुम्हारे हाथ काटे गये। इस दण्डसे तुम्हारे पापका नाश हो गया।'

सदनने भगवान्‌की असीम कृपाका परिचय पाया। वे भगवत्प्रेममें विह्वल हो गये। बहुत कालतक नाम-कीर्तन, गुण-गान तथा भगवान्‌के ध्यानमें तल्लीन रहते हुए उन्होंने पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास किया और अन्तमें श्रीजगन्नाथजीके चरणोंमें देह त्यागकर वे परम-धाम पधारे।

श्रीगुसाईं काशीश्वरजी

गुसाईं श्रीकाशीश्वरजी अवधूत संन्यासी थे। आपको श्रीनीलाचल (श्रीजगन्नाथपुरी)-का वास अच्छा लगा, अतः अनुरागपूर्वक वहीं बस गये। कालान्तरमें महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यजीके आदेशानुसार आप श्रीवृन्दावन चले आये। श्रीवृन्दावनका दर्शन करके आपके हृदयकी अभिलाषा पूरी हो गयी। यहाँ आपको रसिकेन्द्रचूड़ामणि श्रीराधा गोविन्दचन्द्रजीकी सेवाका अधिकार प्राप्त हुआ।

श्रीप्रियादासजीने गुसाईं काशीश्वरजीकी भाव-दशाका वर्णन इस प्रकार किया है—

श्रीगुसाईं काशीश्वर आगे अवधूत बर करि प्रीति नीलाचल रहे लाग्यो नीको है।
महाप्रभु कृष्ण चैतन्यजूकी आज्ञा पाय आये वृन्दावन देखि भायौ भयौ हीको है॥
सेवा अधिकार पायौ रसिक गोविन्दचन्द चाहत मुखारविन्द जीवनि जो जीको है।
नित ही लड़ावैं भाव सागर बढ़ावैं कौन पारावार पावैं सुनै लागै जग फीको है॥ ३९८॥

श्रीसोझाजी

श्रीसोझाजी-दम्पती भगवद्भक्त गृहस्थ थे। धीरे-धीरे जगत्‌की असारता, सांसारिक सुखोंकी असत्यता और श्रीहरिभजनकी सत्यताका सम्यक् बोध हो जानेपर आपके मनमें तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया। आपने अपनी धर्मपत्नीके समक्ष अपने गृहत्यागका प्रस्ताव रखा तो उस साध्वीने न केवल सहर्ष प्रस्तावका समर्थन किया, बल्कि स्वयं भी साथ चलनेको तैयार हो गयीं। इसपर आपने कहा कि यदि तुम्हारे हृदयसे समस्त सांसारिक आसक्तियाँ समाप्त हो गयी हों तो तुम भी अवश्य चल सकती हो। अर्धरात्रिके समय ये दोनों घर छोड़कर चल दिये। आपकी तो प्रभुकृपापर अनन्य निष्ठा थी, इसलिये साथ कुछ नहीं लिया, परंतु आपकी पत्नी अपने दस माहके शिशुके प्रति वात्सल्यभावको न त्याग सकी और उसको भी अपनी गोदमें लेते आयी। रातभर पैदल चलनेके उपरान्त प्रातःकालके उजालेमें आपने जब पत्नीकी गोदमें शिशुको देखा तो बहुत नाराज हुए और बोले—'अभी तुम्हारे मनमें संसारके प्रति बहुत राग है, यदि तुम मेरे साथ चलना चाहती हो तो इस शिशुको यहीं छोड़ दो।' पत्नीने बड़े ही करुण स्वरमें कहा—'नाथ! यहाँ इसका लालन-पालन कौन करेगा?' आपने पृथ्वीपर रेंगते हुए जीव-जन्तुओंको दिखाकर कहा—'जो इनका पालन करता है, वही इस बालकका भी पालन करेगा।' आपकी आज्ञाका पालन करते हुए आपकी पत्नीने बालकको वहीं छोड़ दिया और दोनों लोग श्रीद्वारकापुरीकी यात्रापर चल दिये।

बारह वर्ष बाद अचानक एक दिन आपकी पत्नीको अपने उस दुधमुँहे शिशुकी याद आयी, जिसे वे आपके कहनेपर रास्तेमें ही छोड़कर चली आयी थीं। उन्होंने इस बातको आपसे कहा। प्रभुकृपासे आप तो सब जानते ही थे, फिर भी पत्नीको भगवत्कृपाके दर्शन करानेके लिये उन्हें लेकर अपने देश वापस लौटे। वहाँ वे एक बागमें रुके और मालीसे पूछा—'यहाँका राजा कौन है?' मालीने बताया—'यहाँके राजाको कोई संतान नहीं थी; अतः उन्होंने भक्त सोझाजीके पुत्रको गोद ले लिया था, जिसे उसके माता-पिता जंगलमें छोड़ गये थे, अब वही लड़का यहाँका राजा है।' सोझाजीकी पत्नी इस भगवत्कृपासे गद्गद हो गयीं, उन्हें विश्वास हो गया कि जो अनन्य भावसे प्रभुकी शरणमें जाते हैं, उनके योग-क्षेमका वहन स्वयं श्रीभगवान् करते हैं।

श्रीसींवाजी

श्रीसींवाजी भगवद्भक्त सद्गृहस्थ थे। आपकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तसेवामें बड़ी निष्ठा थी, इससे समाजमें आपका सम्मान भी बहुत था। आपकी यह प्रतिष्ठा अनेक लोगोंकी ईर्ष्याका कारण बनी। उन लोगोंने राजासे आपकी शिकायत कर दी। अविवेकी राजाने भी बिना कोई विचार किये आपको कारागारमें डाल दिया। आपकी सन्त प्रकृति थी, अतः आपके लिये सुख-दुःख, मान-अपमान सब समान ही थे; परंतु आपको इस बातका विशेष क्लेश था कि अब मेरी सन्तसेवा छूट गयी है। एक दिन एक सन्तमण्डली आपके घरपर आयी, जब आपको इस बातका पता चला तो आपको सन्तसेवा न कर पानेका बहुत दुःख हुआ। सर्वसमर्थ प्रभुसे अपने भक्तकी सच्ची तड़पन और उसकी मानसिक पीड़ा देखी न गयी। उसी समय चमत्कार हुआ और आपकी हथकड़ी-बेड़ी टूटकर जमीनपर गिर पड़ी, जेलके फाटक भी अपने-आप खुल गये। आप सन्तोंके पास पहुँच गये और भावपूर्वक उनकी सेवा की। राजाको जब यह वृत्तान्त मालूम हुआ तो वह नंगे पैर भागकर आया और आपके चरणोंमें गिरकर क्षमा-प्रार्थना करने लगा। आपके मनमें कोई विकार भाव तो था ही नहीं, अतः तुरंत ही क्षमा कर दिया। इस प्रकार श्रीसींवाजी गृहस्थमें रहते हुए भी आदर्श सन्त थे।

श्रीअधारजी

श्रीअधारजी बड़े उच्च कोटिके सन्त थे। भगवान् श्रीहरिके नाममें आपकी बड़ी निष्ठा थी। आपने श्रीहरि नामको ही अपना आधार बना लिया और उसीके बलपर असंख्य जनोंको भवसागरसे पार किया। श्रीहरि नामको आधार बना लेनेके कारण आपका नाम श्रीअधारजी पड़ गया।

श्रीहरिनाभजी

श्रीहरिनाभजी भगवत्कृपाप्राप्त सन्त थे। आपका जन्म ब्राह्मण-कुलमें हुआ था और आपकी सन्त-सेवामें बड़ी ही निष्ठा थी। एक बार संन्यासियोंकी एक बड़ी मण्डली आपके गाँवमें आयी, गाँववालोंने उन्हें आपके यहाँ भेज दिया। संयोगसे उस दिन आपके यहाँ तनिक भी सीधा (कच्चा अन्न) नहीं था और न ही घरमें रुपया-पैसा या आभूषण ही था, जिसे देकर दूकानसे सौदा आ सकता। ऐसेमें आपने अपनी विवाहयोग्य कन्याको एक सगोत्री ब्राह्मणके यहाँ गिरवी रख दिया कि पैसेकी व्यवस्था होनेपर छुड़ा लेंगे। इस प्रकार पैसोंकी व्यवस्था करके आप सीधा-सामान लाये और सन्त-सेवा की। कुछ समय बाद जब आपके पास पैसे इकट्ठे हो गये तो आपने ब्राह्मणके पैसे लौटा दिये, परंतु फिर भी वह कन्याको वापस करनेमें आनाकानी करता रहा। आपकी सन्त-सेवाके प्रति निष्ठा और ब्राह्मणकी कुटिलताने सन्तोंके परम आराध्य भगवान् श्रीहरिको उद्वेलित कर दिया। वे स्वयं चुपचाप कन्याको आपके यहाँ पहुँचा आये। अब वह ब्राह्मण आपसे झगड़ा-तकरार करने लगा। इसपर भगवान्ने रात्रिमें स्वप्नमें उससे कहा कि कन्याको मैंने उसके पिताके घर पहुँचाया है, यदि तुम इसके लिये तकरार करोगे तो मैं तुम्हारा सर्वनाश कर दूँगा। अब ब्राह्मणको अपनी गलती और आपपर भगवत्कृपाका बोध हुआ। वह दूसरे दिन प्रातःकाल ही आकर आपके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना करने लगा। आपके मनमें उसके प्रति तनिक भी क्रोध नहीं था, अतः उसे क्षमा तो कर ही दिया, साथ ही उसे भी सन्त-सेवी बना दिया।

श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी

श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी महाराजका जन्म ब्राह्मण-कुलमें हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीकृष्णदत्त और माताका नाम श्रीराधादेवी था। श्रीकृष्णदत्त एवं राधादेवीको जब दीर्घकालतक संतानकी प्राप्ति नहीं हुई तो एक सन्तकी प्रेरणासे दोनों निम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिदेव व्यासजीके पास गये। उन्होंने आपलोगोंको गो-सेवा करनेकी आज्ञा दी। अब आपलोग गायोंको चराते, उनकी सार-सँभाल करते और हर प्रकारकी सेवा करते। इस प्रकार सेवा करते-करते गोपाष्टमीका दिन आया। आप दोनों लोग गोशालामें गये, वहाँ देखा तो चारों ओर प्रकाश फैला था और उस प्रकाशपुंजके मध्यमें एक सुन्दर शिशु लेटा था। उसे देखते ही दम्पतीका वात्सल्य भाव जाग्रत् हो गया और राधादेवीने उसे अपनी गोदमें उठा लिया। इस प्रकार स्वयं प्रकट होनेके कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशुका नाम स्वभूराम पड़ा। आठ वर्षकी अवस्थामें बालक स्वभूरामको उनके माता-पिता श्रीहरिदेव व्यासजीके पास ले गये और उनका यज्ञोपवीत कराकर वैष्णव दीक्षा दिलायी, तत्पश्चात् सब लोग पुनः घर आ गये। श्रीस्वभूरामजी घर आ तो गये, पर उनका मन घरमें न लगता। एक दिन उन्होंने अपने माता-पितासे संन्यास लेनेकी बात कही और उनसे आज्ञा एवं आशीर्वाद माँगा। इसपर आपके माता-पिता वात्सल्यस्नेहवश बिलखने लगे और रोते हुए बोले—'बेटा! हम वृद्धोंके तुम्हीं एकमात्र प्राणाधार हो, यदि तुम भी वैराग्य-धारण कर लोगे तो हम लोग किसके आधारपर जीवन धारण करेंगे?' माता-पिताकी इस परेशानीको देखकर आपने कहा कि यदि मेरे दो भाई और हो जायँ तो क्या आप लोग मुझे विरक्त हो जानेकी आज्ञा दे देंगे? यह सुनकर माता-पिता हँस पड़े; क्योंकि तबतक उनकी पर्याप्त अवस्था हो चुकी थी। परंतु आपकी वाणी सत्य सिद्ध हुई। कुछ दिनों बाद भगवत्कृपासे सन्तदास और माधवदास नामक दो भाइयोंका जन्म हुआ। उनके कुछ बड़े हो जानेपर आपने पुनः माता-पितासे संन्यासकी अनुमति माँगी और मौन स्वीकृति प्राप्तकर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीकी शरणमें चले गये। आपने श्रीगुरुदेवजीसे विरक्त दीक्षा ली और भजन-साधन करने लगे। आपने अनेक अलौकिक कार्य किये और वैष्णव धर्मकी ध्वजा फहरायी।

श्रीऊदारामजी

श्रीऊदारामजीका जन्म वैश्यकुलमें हुआ था। आप परम भगवद्भक्त और सन्तसेवी थे। आपकी पत्नी भी परम भागवती और पतिपरायणा थीं। एक पुत्रके जन्मके बाद आप दम्पतीने निश्चय किया कि अब पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिये सन्तान हो गयी है, अतः शेष समय भगवद्भजन और सन्तसेवामें ही बिताना चाहिये। यह निश्चयकर पति-पत्नी भगवद्भजन और साधु-सेवामें रत हो गये। आपकी सन्तसेवामें निष्ठा और ख्यातिसे जाति-बिरादरीके लोग आपसे ईर्ष्या करने लगे। उन लोगोंने राजाके पास झूठी शिकायत कर दी कि ऊदारामके पास बहुत धन है, परंतु यह राज्यकर नहीं देता। अविवेकी राजाने भी बिना कोई विचार किये सिपाहियोंको श्रीऊदारामजीको गिरफ्तारकर लानेके लिये भेज दिया, परंतु सिपाही जब आपके घरके पास पहुँचे तो सबके सब अन्धे हो गये। यह समाचार जब राजाको पता चला तो उसे अपनी भूल ज्ञात हुई। उसने तत्काल आकर आपके चरणोंमें प्रणिपात किया और आपके उपदेशोंसे प्रभावित होकर भगवद्भजन और साधु-सेवाका व्रत ले लिया। इसी प्रकार आपके चरित्रसे प्रेरणा लेकर अनेक भगवद्विमुख जन वैष्णव बन गये।

श्रीडूँगरजी

भक्त श्रीडूँगरजी जातिसे पटेल क्षत्रिय थे। सन्तसेवामें आपकी बड़ी ही निष्ठा थी, परंतु आपके पिताको यह सब व्यर्थ लगता था। अतः आप पितासे छिपाकर सन्तोंको खिलाने-पिलानेमें धन खर्च कर दिया करते थे। इस प्रकार आपने जब बहुत-सा धन व्यय कर दिया तो यह बात आपके पिताजीको भी मालूम हुई और क्रुद्ध होकर उन्होंने आपको घरसे निकाल दिया। यद्यपि अब आपके पास अर्थाभाव हो गया था, फिर भी आपकी सन्तसेवा बदस्तूर जारी रही। यहाँतक कि आपने अपनी पत्नीके आभूषणतक बेंचकर उससे सन्तोंकी सेवा की।

श्रीपदारथजी

श्रीपदारथजी महाराज बड़े ही उच्चकोटि के गृहस्थ सन्त थे। सन्तोंमें ही नहीं, अपितु सन्तवेषमें भी आपकी बड़ी निष्ठा थी। एक बार एक ठग किसी सन्तसेवी वणिक्के यहाँ सन्तवेषमें रहने लगा, थोड़े ही दिनमें वह वणिक्-परिवारका विश्वासपात्र बन गया। एक दिन मौका पाकर वह वणिक्का सारा माल-मत्ता लेकर चम्पत हो गया। वणिक्-पत्नीने जब देखा कि तिजोरी खुली है और सारी धन-सम्पत्ति गायब है, तो वह चीख-चीखकर रोने-चिल्लाने लगी। उसका रोना-चिल्लाना सुनकर राजकर्मचारियोंने ठगका पीछा किया। जब ठगको अपने बचनेका कोई उपाय न सूझा तो वह आपके ही घरमें घुस आया। उसे राजकर्मचारियोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयसे भयभीत देखकर आपको कुछ दालमें तो काला लगा, पर सन्तवेषके प्रति निष्ठा होनेके कारण उसे अपने घरमें छिपा लिया और राजकर्मचारियोंके वापस चले जानेके बाद उससे सारी घटना सच-सच बतानेको कहा। समस्त वस्तुस्थितिसे अवगत होनेपर आपने वणिक्‌का सारा धन उसके घर भिजवा दिया और ठगको भगवान्‌का चरणामृत एवं प्रसाद दिया, जिससे उसकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। इसी प्रकार आपने अनेक कुमार्गगामियोंको भगवद्भक्ति-पथका पथिक बना दिया।

श्रीविमलानन्दजी

श्रीविमलानन्दजी महाराज बड़े ही सिद्ध महापुरुष थे। नामके अनुरूप ही आपका हृदय बड़ा ही निर्मल था और आपके सम्पर्कमें आनेवाले प्राणी भी मनकी दुर्वासनाओंसे मुक्त हो जाया करते थे।

सच्चे सन्त

जतीराम रावल्य स्याम खोजी सँतसीहा।
दल्हा पद्म मनोरत्थ राँक द्यौगू जप जीहा॥
जाड़ा चाचा गुरू सवाई चाँदा नापा।
पुरुषोत्तम सों साच चतुर कीता मन कौ जिहि मेट्यो आपा॥
मति सुंदर धीधांगश्रम संसार नाच नाहिन नचे।
करुना छाया भक्ति फल ए कलिजुग पादप रचे॥ ९७॥

श्रीभगवान्‌ने इन भक्तोंको वृक्षरूप रचा। इन सन्तरूपी वृक्षोंमें इनकी करुणा ही छाया है और इनकी भक्ति ही फल है। इनके ये नाम हैं—श्रीजतीरामजी, श्रीरावल्यजी, श्रीस्यामजी, श्रीखोजीजी, सन्त श्रीसीहाजी, श्रीदल्हाजी, श्रीपद्मजी, श्रीमनोरथजी, श्रीराँका-बाँकाजी, श्रीद्यौगूजी, जो जिह्वासे निरन्तर भगवन्नाम जप किया करते थे। श्रीजाड़ाजी, श्रीचाचा गुरुजी, श्रीसवाईजी, श्रीचाँदाजी, श्रीनापाजी, भगवान् पुरुषोत्तमके सच्चे भक्त श्रीपुरुषोत्तमजी, श्रीचतुरजी, श्रीकीताजी, जिन्होंने अपने मनका अहं सर्वथा मिटा डाला था—इन सभी भक्तोंकी बुद्धि बड़ी सुन्दर थी। ये संसाररूपी रंगमंचपर श्रमरूपी धीङ्-धाङ् आदि मृदंगके तालपर नहीं नाचे॥ ९७॥

इनमेंसे कतिपय भक्तोंके पावन चरित्र इस प्रकार वर्णित हैं—

श्रीखोजीजी

श्रीखोजीजी मारवाड़-राज्यान्तर्गत पालड़ी गाँवके निवासी थे। आप जन्मजात वैराग्यवान् और भगवदनुरागी होनेके कारण बचपनसे ही गृहकार्यमें उदासीन और भगवद्भजन तथा साधुसंगमें रमे रहते थे। इससे आपके भाइयोंकी आपसे नहीं पटती थी और वे लोग आपको निकम्मा ही मानते थे। एक बार आपके गाँवमें एक सन्तमण्डली आयी हुई थी, आप रात-दिन सन्तों की सन्निधिमें रहकर कथावार्ता और सत्संगमें लगे रहते थे। इसी बीच दुर्भाग्यसे एक दिन अचानक आपके पिताका स्वर्गवास हो गया। जब सारे और्ध्वदैहिक कार्य सम्पन्न हो गये तो भाइयोंने आपसे कहा कि पिताजीके अस्थिकलशको गंगाजीमें प्रवाहित कर आओ, जिससे तुम भी पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाओ। इसपर आपने कहा—वैष्णवजन भगवन्नामका जहाँ उच्चारण करते हैं, वहाँ गंगाजीसहित सारे तीर्थ स्वयं प्रकट हो जाते हैं। जब भाइयोंने जबरदस्ती भेजा तो आपने सन्तोंको साथ लिया और भगवन्नामकीर्तन करते हुए अस्थिकलश लेकर गंगाजीको चल दिये। मार्गमें आपको स्वर्णकलश लिये कुछ दिव्य नारियाँ दिखायी दीं। जब आप उनके समीपसे गुजरने लगे तो वे पूछने लगीं—'भक्तवर! आप कहाँ जा रहे हैं?' आपने कहा—'मैं पिताजीके अस्थिकलशको श्रीगंगाजीमें प्रवाहित करने जा रहा हूँ।' उन दिव्य नारियोंने कहा—'हम गंगा-यमुना आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदियाँ ही हैं, आप अपने पिताजीके अस्थिकलशका यहीं विसर्जन कर दीजिये और स्वयं स्नानकर घर चले जाइये।' आपने ऐसा ही किया और भाइयोंकी प्रतीतिके लिये एक कलश जल भी लेते गये।

श्रीखोजीजीके श्रीगुरुदेव भगवच्चिन्तनमें परम प्रवीण थे। उन्होंने अपने शरीरका अन्तिम समय जानकर अपनी मुक्तिके प्रमाणके लिये एक घण्टा बाँध दिया और सभी शिष्य-सेवकोंसे कह दिया कि हम जब श्रीप्रभुकी प्राप्ति कर लेंगे तो यह घण्टा अपने-आप बज उठेगा। यही मेरी मुक्तिका प्रमाण जानना। परंतु आश्चर्य यह हुआ कि उन्होंने शरीरका त्याग तो कर दिया, परन्तु घण्टा नहीं बजा। तब शिष्य-सेवकोंको बड़ी चिन्ता हुई। श्रीगुरुदेवजीके शरीर-त्यागके समय श्रीखोजीजी स्थानपर नहीं थे। ये बादमें आये जब इनको समस्त वृत्तान्त विदित हुआ तो जहाँ श्रीगुरुजीने लेटकर शरीर छोड़ा था, श्रीखोजीजीने भी वहीं पौढ़कर ऊपर देखा तो इन्हें एक पका हुआ आम दिखायी पड़ा। इन्होंने उस आमको तोड़कर उसके दो टुकड़े कर दिये। उसमेंसे एक छोटा-सा जन्तु (कीड़ा) निकला और वह जन्तु सबके देखते-देखते अदृश्य हो गया, घण्टा अपने-आप बज उठा।

हुआ यूँ कि श्रीखोजीजीके गुरुदेव तो प्रथम ही प्रभुको प्राप्त कर चुके थे, यह सर्व प्रसिद्ध है। परंतु बादमें शरीर-त्यागके समय अच्छा पका हुआ फल देखकर, भगवान्के भोग योग्य विचारकर उनके मनमें यह नवीन अभिलाषा उत्पन्न हुई कि इसका तो भगवान्को भोग लगना चाहिये। भक्तकी उस इच्छाको भक्तवश्य भगवान्ने सफल किया।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार करते हैं—

खोजीजू के गुरु हरि भावना प्रवीन महा देह अन्त समैं बांधि घण्टासो प्रमानियै।
पावैं प्रभु जब तब बाजि उठै जानौ यही पाये पै न बाजो बड़ी चिन्ता मन आनियै॥
तन त्याग बेर नहीं हुते फेरि पाछे आये वाही ठौर पौढ़ि देख्यौ आँब पक्यौ मानियै।
तोरि ताके टूक किये छोटौ एक जन्तु मध्य गयौ सो बिलाय बाजि उठो जग जानियै॥ ३९९॥
शिष्यकी तौ योग्यताई नीके मन आई अजू गुरुकी प्रबल ऐपै नेकु घट क्यों भई।
सुनौ याकी बात मन बात वति गति कही सही लै दिखाई और कथा अति रसमई॥
ये तौ प्रभु पाय चुके प्रथम प्रसिद्ध पाछे आछो फल देखि हरि जोग उपजी नई।
इच्छा सो सफल श्याम भक्तवश करी वही रही पूर पच्छ सब बिथा उरकी गई॥ ४००॥

श्रीराँका-बाँकाजी

भक्त श्रीराँकाजी पति थे और भक्तिमती श्रीबाँकाजी उनकी पत्नी थीं। ये दोनों भागवत पति-पत्नी पंढरपुरमें निवास करते थे। इन दोनोंके हृदयमें सिवा भगवान्के और कुछ भी चाह नहीं थी। इनकी रीति-रहनी कुछ विलक्षण ही थी। जंगलसे लकड़ियाँ बीनकर लाते और उन्हींको बेचकर अपनी नित्य नवीन जीविका करते थे। एक बार भक्तवर श्रीनामदेवजीने भगवान् श्रीकृष्णसे विनती की कि भक्त राँका-बाँकाका गरीबीका दुःख दूर कर दीजिये। भगवान्ने कहा—'मैंने बहुत उपायोंसे इन्हें देना चाहा, परंतु ये लेते ही नहीं, यदि नहीं मानो तो मेरे संग चलो, मैं इनकी निष्कामता दिखलाऊँ।' फिर तो भगवान्ने मार्गमें एक स्वर्णमुहरोंसे भरी थैली डाल दी और स्वयं तथा श्रीनामदेवजी दोनों जंगलमें छिप गये।

इतनेमें श्रीराँका-बाँकाजी दोनों उसी मार्गसे आये। आगे-आगे पति श्रीराँकाजी थे और पीछे-पीछे उनकी पत्नी श्रीबाँकाजी थीं। एकाएक श्रीराँकाजीने मार्गमें पड़ी हुई मुहरोंसे भरी हुई थैली देखी। देखकर विचार किया कि मेरी पत्नी स्त्री जाति है, वैसे यद्यपि निष्काम है फिर भी कभी-कभी दृष्टिपथमें आनेपर लौकिक वस्तुओंमें भी मन चलायमान हो जाता है। अतः उन्होंने शीघ्रतापूर्वक उस थैलीपर धूल डाल दी। श्रीबाँकाजीने पतिसे पूछा—'अजी, आपने यहाँ पृथ्वीपर झुककर क्या किया है?' तब श्रीराँकाजीने सत्य बात बता दी। तब श्रीबाँकाजीने कहा—'अभी आपके मनमें धनका ज्ञान बना ही है?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुनकर श्रीराँकाजी बोले—'लोग मुझे राँका और तुमको बाँका कहते हैं, सो सत्य ही मैं राँका अर्थात् रंक ही हूँ और तुम बाँका अर्थात् श्रेष्ठ मुझसे बढ़कर हो। यह बात मैंने आज देख ली।' इनकी ये बातें सुनकर भगवान् श्रीनामदेवजीसे बोले—देखो, हमारी बात सत्य हुई। ये दोनों धनके प्रति कितने निस्पृह हैं।

श्रीप्रियादासजीने राँका-बाँका-दम्पतीकी निस्पृहताका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

राँका पति बाँका तिया बसै पुर पंढरमें उरमें न चाह नेकु रीति कछु न्यारियै।
लकरीन बीनि करि जीविका नवीन करैं धरैं हरि रूप हिये ताही सों जियारियै॥
विनती करत नामदेव कृष्णदेव जू सों कीजै दुःख दूर कही मेरी मति हारियै।
चलो लै दिखाऊँ तब तेरे मन भाऊँ रहे बन छिपि दोऊ थैली मग मांझ डारियै॥ ४०१॥
आये दोऊ तिया पति पाछे बधू आगे स्वामी औचक ही मग मांझ सम्पति निहारियै।
जानी यों जुबति जाति कभूँ मन चलि जात याते बेगि संभ्रम सों धूरि वापै डारियै॥
पूछी अजू कहा कियौ भूमिमें निहुरि तुम कही वही बात बोली धनहूं विचारियै।
कहैं मोसों रांका ऐपै बांका आज देखी तुही सुनि प्रभु बोले बात सांची है हमारियै॥ ४०२॥

भगवान्‌की जीत हुई, श्रीनामदेवजी हार गये। फिर भगवान्‌ने एक और बात कही कि 'यदि तुम्हारे मनमें विशेष परिताप है कि श्रीराँका-बाँकाजीकी सहायता करनी ही चाहिये तो चलो इनके लिये लकड़ी बटोरें।' फिर श्रीभगवान् और श्रीनामदेवजीने लकड़ियाँ बटोरीं। तदुपरान्त श्रीराँका और बाँकाजी लकड़ी बीनने आये तो जहाँ-तहाँ लकड़ियोंका ढेर देखा तो विचार किया कि हमसे पहले ही कोई बटोर गया है। फिर तो इनका मन ऐसा भयभीत हुआ कि दो लकड़ियाँ भी एक जगह होतीं तो उन्हें हाथसे नहीं छूते। तब तो भगवान् श्यामसुन्दरने प्रकट होकर दर्शन दिया। श्रीराँका-बाँकाजी श्रीठाकुरजीको घर लिवा लाये। भगवान्‌के संग श्रीनामदेवजीको देखकर श्रीराँकाजीने झुंझलाकर कहा—'अरे मूड़फोरा! श्रीप्रभुको इस प्रकार वन-वन भटकाया जाता है?' भगवान्‌ने राँकाजीसे कुछ माँगनेका अनुरोध किया। तब वे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि 'मुझे आपकी कृपाके सिवा और कुछ नहीं चाहिये।' तब श्रीनामदेवजीने हाथ-जोड़कर इनसे कहा कि 'अच्छा और कुछ नहीं तो प्रभुका रुख रखते हुए प्रभुका एक प्रसादी वस्त्र ही शरीरपर धारण कर लीजिये।' यद्यपि इतनेसे भी श्रीराँका-बाँकाजीको लगा कि मेरे सिरपर भारी बोझ पड़ गया, परंतु उन्होंने भक्त और भगवान्‌की रुचि रखनेके लिये वस्त्रमात्र स्वीकार कर लिया।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

नामदेव हारे हरिदेव कही और बात जो पै दाह गात चलो लकरी सकेरियै।
आयै दोऊ बीनिबेको देखी इक ठौरी ढेरी द्वै हूँ मिली पावैं तऊ हाथ नाहिं छेरियै॥
तब तौ प्रगट श्याम ल्याये यों लिवाय घर देखि मूंड फोरौ कह्यौ ऐसे प्रभु फेरियै।
विनती करत करजोरि अंग पट धारौ भारौ बोझ पर्‍यौ लियौ चीरमात्र हेरियै॥ ४०३॥

श्रीयतीरामजी

श्रीयतीरामजी महाराज श्रीरामानन्दी वैष्णव सम्प्रदायके प्रवर्तक श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके द्वादश प्रधान शिष्योंमेंसे एक श्रीसुखानन्दाचार्यजीके शिष्य थे। आप श्रीभगवान्‌के नाम-गुणगानमें मग्न रहा करते थे, सदा भाव-जगत्‌में रहनेके कारण सामान्यजनोंको आप उन्मत्तकी तरह प्रतीत होते थे।

एक बारकी बात है, किसी बादशाहकी सवारी कहीं जा रही थी; साथमें बड़ा लाव-लश्कर भी था। उन लोगोंको किसी एक ऐसे आदमीकी आवश्यकता थी, जो सामानके एक बड़े गट्ठरको सिरपर लादकर चले। आप अपनी मस्तीमें घूमते हुए उधर जा निकले। फिर क्या था, बादशाहके यवन सिपाहियोंने इन्हें ही पकड़कर इनके सिरपर गट्ठर रखवा दिया। कुछ तो इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावावस्था और कुछ गट्ठर भी भारी था, अतः एक जगह आप लड़खड़ा गये और गट्ठर गिर पड़ा। अब तो वे दुष्ट सिपाही इन्हें मारने लगे। आप तो क्रोध-शोक आदि विकारोंसे मुक्त थे, परंतु अपने भक्तकी ऐसी अवमानना और सिपाहियोंकी दुष्टता सर्वशक्तिमान् भगवान्से न सही गयी। अचानक असंख्य गिरगिट वहाँ प्रकट हो गये और यवन सिपाहियोंको काटने लगे। वे जिधर भी भागते उधर ही गिरगिट प्रकट होकर उन्हें काटने लगते। सिपाहियोंकी यह दुर्दशा देखकर बादशाह समझ गया कि यह हिन्दू फकीर सिद्ध महापुरुष है। फिर तो वह रथसे उतरकर तुरंत आपके चरणोंमें गिर पड़ा और क्षमा माँगने लगा। इसपर आपने कहा—भाई! मैं आपसे नाराज ही कहाँ हूँ, जो क्षमा कर दूँ! जो आपपर नाराज है और दण्ड दे रहा है, उससे क्षमा माँगो।

श्रीरामरावलजी

श्रीरामरावलजी महाराज भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। आप सदा एकान्त स्थानमें बैठे भगवच्चिन्तनमें मग्न रहा करते थे। आपका समाजमें सम्मान भी बहुत था। यह देखकर एक ऐंद्रजालिक (जादूगर)-को आपसे ईर्ष्या हो गयी, वह आपको भगानेके लिये नाना प्रकारके उपद्रव करने लगा। परंतु भला माया जिसकी दासी है, उसके भक्तको क्षुद्र बाजीगरकी ये कपट चालें क्या भयभीत कर पातीं! अन्तमें उसे इस बातका भान हो गया कि ये पहुँचे सन्त और सिद्ध महापुरुष हैं, अतः इनके शरणागत होकर शिष्य हो गया। इसी प्रकार आपने भगवत्पथसे भटके अनेक प्राणियोंको अपने आचरणसे सही राह दिखायी।

श्रीसीहाजी

भक्त श्रीसीहाजी बड़े ही नामनिष्ठ सन्त थे और सदा नाम-संकीर्तन करते रहते थे। आपका संकीर्तन इतना रसमय होता था कि स्वयं भगवान् भी विभिन्न वेश बनाकर उसमें आनन्द लेने पहुँच जाया करते थे। आप स्वयं तो कीर्तन करते ही थे, गाँवके बालकोंको भी बुलाकर कीर्तन कराते थे। बालकोंको कीर्तनके अन्तमें आप प्रसाद दिया करते थे, अतः वे भी खुशी-खुशी पर्याप्त संख्यामें आ जाया करते थे। एक बार ऐसा संयोग बना कि तीन दिनतक आपके पास बाँटनेके लिये प्रसाद ही न रहा। इससे आपको बड़ी चिन्ता हुई, साथ ही दुःख भी हुआ। आपको इस प्रकार चिन्तित देख चौथे दिन भगवान् स्वयं बालक बनकर आये और सबको उनकी इच्छाके अनुसार इच्छाभर लड्डू वितरित किये और फिर रात्रिमें आपसे स्वप्नमें कहा कि अब आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, प्रसाद न रहनेपर मैं स्वयं वेश बदलकर प्रसाद बाँटा करूँगा, आप बस कीर्तन कराइये। अब भगवान् प्रतिदिन वेश बदलकर आपके कीर्तनमें सम्मिलित होने लगे।

श्रीदलहासिंहजी

राजस्थानमें एक ग्राम है, खीचीबाड़ा। श्रीदलहासिंहजी वहींके निवासी थे। जातिसे यद्यपि आप क्षत्रिय थे, फिर भी आपकी वृत्ति अहिंसक थी और आपने सन्तसेवाका व्रत ले लिया था। सन्त-सेवामें आपके घरकी स्थिति ऐसी हो गयी कि पेट पालना भी मुश्किल हो गया। इसी बीच एक रिश्तेदारीसे भात भरनेका निमन्त्रण आ गया। अब तो आपका दिनका चैन और रातकी नींद गायब हो गयी। आपकी ऐसी स्थिति देखकर नरसीका भात भरनेवाले भक्तवत्सल भगवान्को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने स्वप्नमें आपसे कहा कि तुम्हारे घरके पासमें ही एक टीला है, उसमें अथाह सम्पत्ति भरी पड़ी है, उसे खोद लो और खूब सन्त-सेवा करो तथा भात भरो। फिर तो भगवान्का संकेत समझकर आपने वैसा ही किया। टीलेमेंसे अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई, जिससे आपने जीवनभर सन्तसेवा की।

श्रीपद्मजी

श्रीपद्मजी भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त थे। आपके पास भगवान् विष्णुकी एक सुवर्ण-प्रतिमा थी, जिसकी वे आराधना करते थे। एक बारकी बात है, आप सुवर्ण-प्रतिमाको एकान्तमें रख उसकी सेवा-पूजा कर रहे थे; सहसा एक चोरकी कुदृष्टि उसपर पड़ गयी। उसने सुनसान एकान्त स्थान देखकर वह सुवर्ण-प्रतिमा और उसपर चढ़े आभूषण भी छीन लिये और भाग चला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तो आपके प्राण विकल हो उठे, अत्यन्त आर्त होकर आप भगवान्को पुकारने लगे। भक्तवत्सल भगवान्से भक्तका यह दुःख देखा न गया। उन्होंने कुछ ऐसी लीला की कि उस चोरका जूता उसके पैरसे निकलकर उसके सिरपर पड़ने लगा। इस संकटसे बचनेके लिये वह इधर-उधर बहुत दौड़ा पर जिधर जाता, उधर ही उसपर जूता पड़ता। अन्तमें वह गिरता-पड़ता आपके पास आया और प्रतिमा तथा सभी आभूषण वापसकर चरणोंमें पड़कर क्षमा माँगी। मूर्ति पाते ही आप ऐसे प्रसन्न हो गये, मानो मृतशरीरमें पुनः प्राण प्रविष्ट हो जायँ। आपने उस दुष्ट चोरको तुरंत ही क्षमा कर दिया। आपके क्षमा करते ही चोरपर जूते पड़ने अपने-आप बन्द हो गये। ऐसे परम कारुणिक और सन्तहृदय भक्त थे श्रीपद्मजी!

श्रीमनोरथजी

श्रीमनोरथजी जातिके ब्राह्मण थे और बड़े ही सन्तसेवी गृहस्थ भक्त थे। आपके एक कन्या थी। सयानी होनेपर आपने उसका विवाह एक भक्त ब्राह्मणसे तय किया, परंतु उसके गरीब होनेसे कन्याकी माता और उसका मामा वहाँ विवाह नहीं करना चाहते थे। वे दोनों उसका एक धनी ब्राह्मणसे विवाह करना चाहते थे, परंतु वह अभक्त था, इसलिये आपको पसन्द नहीं था। उधर वह अभक्त ब्राह्मण दुष्ट और लम्पट भी था, उसने ठीक विवाहके दिन बलपूर्वक कन्याका अपहरण कर लिया। इससे आपको बहुत दुःख हुआ कि मेरी कन्या ऐसे अभक्त और भगवद्विमुख दुष्ट व्यक्तिके साथ कैसे गुजारा करेगी? यह सोचकर आप अपने आराध्यदेवकी मूर्तिके पास जाकर बिलख-बिलखकर रोने लगे। भक्तवत्सल भगवान्से अपने भक्तका यह दुःख न देखा गया। उन्होंने तुरंत उस अभक्तके घरसे कन्याको लाकर आपके सम्मुख उपस्थित कर दिया। आपने तुरंत उस कन्याका भक्त ब्राह्मणके साथ विवाह कर दिया। इस अद्भुत चमत्कारको देखकर सब लोग बहुत प्रभावित हुए। आपके विपक्षी भी आपके शरणागत हो गये और भक्त-भगवत्सेवामें लग गये।

श्रीद्यौगूजी

श्रीद्यौगूजी बड़े ही सन्तसेवी गृहस्थ भक्त थे। आप सन्तसेवाके लिये विविध प्रकारके उद्योग करके बड़े परिश्रमसे धनोपार्जन करते थे, अतः लोग आपको उद्योगीजी कहते थे। जनसाधारणमें वही नाम बिगड़कर द्यौगूजी हो गया। आप बड़े ही सरल स्वभावके व्यक्ति थे। गृहस्थ होते हुए भी सांसारिकतासे दूर, केवल भगवद्भजन और सन्तसेवासे ही प्रयोजन रखते थे।

श्रीचाचागुरु

श्रीचाचागुरुका वास्तविक नाम 'क्षेमदास' था। आप सभी सन्तोंको चाचागुरु कहते थे, अतः आपका नाम श्रीचाचागुरु हो गया। आप बड़े ही सन्तसेवी सद्गृहस्थ थे। आपके भक्तिभाव और सरल स्वभावके कारण आपके गाँववासियोंकी आपपर बड़ी श्रद्धा थी। जब आपके यहाँ सन्त लोग आते तो आपके गाँववाले भी उनके लिये यथाशक्ति सीधा-सामान दे जाते थे और सम्यक् रूपसे सन्तसेवा होती थी। इस प्रकार यह क्रम बहुत दिनोंतक चलता रहा, परंतु जब आपके यहाँ रोज ही सन्तमण्डली आने लगी तो गाँववाले भी परेशान होकर कहने लगे कि अब तो आपके यहाँ रोज ही सन्तमण्डली आती है, हम बाल-बच्चेवाले लोग हैं, कहाँतक सहयोग करें। गाँववालोंकी इस प्रकारकी बात सुनकर आपको बड़ी निराशा हुई; क्योंकि आपके भी घरमें कुछ शेष नहीं बचा था। आपको चिन्तामें देखकर भगवान्की दिव्य वाणी हुई कि तुम्हारे पास जो धरोहरके रूपमें दूसरेका रजतपात्र रखा है, उसीको बेंचकर सन्तसेवा करो, कोई समस्या आयेगी तो मैं सँभाल लूँगा। आपने तुरंत उस रजतपात्रको बेंच दिया, जिससे पर्याप्त धनकी प्राप्ति हो गयी और उससे आप सन्तसेवा करने लगे।

श्रीसवाईसिंहजी

श्रीसवाईसिंहजी बड़े ही सन्तसेवी और परोपकारी स्वभावके क्षत्रिय राजपूत थे। एक बार एक भक्त-दम्पती वन-मार्गसे कहीं जा रहे थे, उनके पास धन-सम्पत्ति देखकर लुटेरोंने उन्हें लूट लिया। उन भक्त-दम्पतीने पासके गाँवमें जाकर गुहार लगायी। गाँवके अन्य लोगोंको तो लुटेरोंका नाम सुनते ही साँप सूँघ गया, परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवाईसिंहजीसे भक्तोंका यह कष्ट न देखा गया। उन्होंने तुरंत अपने अस्त्र-शस्त्र लिये और घोड़ेपर सवार होकर अकेले ही लुटेरोंके पीछे सरपट दौड़ चले और ललकारकर कहा कि धन-सम्पत्ति छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा; सन्तोंको दु:ख देनेवाला कभी सुखी नहीं रह सकता। अब तो वे आपपर चारों ओरसे प्रहार करने लगे। आपके प्राण संकटमें पड़ गये, परंतु तभी भगवत्कृपाका चमत्कार हुआ। लुटेरोंके अस्त्र-शस्त्र इनके शरीरका स्पर्श करते ही खण्ड-खण्ड हो गये। लुटेरोंको यह देखकर लगा कि हमने किसी भक्तको लूट लिया है, इसीलिये हमपर भगवान्‌का ही कोप हो गया है। तब वे लोग आपसे रक्षाकी प्रार्थना करते हुए शरणागत हो गये। उन लुटेरोंने न केवल सारा धन वापस कर दिया, बल्कि लूट-डकैतीका काम भी छोड़ दिया और सभी भगवद्भक्त हो गये।

श्रीचाँदाजी

श्रीचाँदाजीका स्थितिकाल विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दी है, आप भगवान्‌के परम अनुरागी और वीर प्रकृतिके सन्त थे। उस समय देशमें यवनोंका राज्य था। वे लोग हिन्दुओंको पददलित करनेके लिये उनके आस्थाके केन्द्र मठ-मन्दिरोंको नष्ट कर देते थे। एक बार यवनसेना मठ-मन्दिरोंको ध्वस्त करती हुई बढ़ रही थी, उसने चन्द्रसेनपर आक्रमण कर दिया। तब आपने धर्मरक्षार्थ बहुत-से वीरोंको एकत्र किया और बड़ी वीरताके साथ यवनोंसे युद्ध किया। आपके प्रबल प्रहारोंसे यवनसेनाके पैर उखड़ गये और वह परास्त होकर तितर-बितर हो गयी। इसके बाद आपने जोधपुरके गढ़में प्रवेशकर उसे सुरक्षित किया। वैशाख कृ० १०, सं० १६२१ वि० की बात है, रामपोलसे निकलते हुए आपको यवनसेनाने घेर लिया और चारों ओरसे अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहार होने लगे। आपने अपने इष्टदेवका स्मरणकर ऐसा युद्ध किया कि एक भी यवन जीवित न बचा। इस प्रकार श्रीचाँदाजी शास्त्र और शस्त्र दोनोंसे धर्मरक्षा करनेवाले वीरव्रती भक्त थे।

श्रीनापाजी

श्रीनापाजी बड़े ही सन्तसेवी भगवद्भक्त गृहस्थ थे। आपका जन्म खोसाके निकट एक ग्राममें हुआ था और आप जातिसे माली थे। आपके यहाँ सदैव सन्तोंकी मण्डलियाँ आती ही रहती थीं और कथा-कीर्तन एवं सत्संग होता रहता था। प्रभुकृपासे कभी किसी प्रकारकी कमी नहीं होती थी।

श्रीनापाजी गृहस्थ थे, आजीविकाके लिये आप खेती करते थे। आपका ज्यादातर समय सन्तसेवामें ही बीतता था, अत: खेत सूखने लगे। आप-जैसे भक्तका दु:ख भगवान्‌को भी बर्दाश्त नहीं हुआ और वे आपके पुत्रका रूप धारणकर आये और बोले—'पिताजी! आपको अब रात्रिमें खेतोंकी सिंचाई करनेकी आवश्यकता नहीं है, अब आप निश्चिन्त रहिये और मैं दिनमें ही खेतोंकी सिंचाई और खेतीका काम कर दिया करूँगा। आप प्रसन्नतापूर्वक सन्तसेवा कीजिये।' पुत्रकी इस कर्तव्यनिष्ठा और सन्तसेवाके प्रति आदर-भाव देखकर आपको बड़ी प्रसन्नता हुई और आप निश्चिन्त होकर सन्तसेवा करने लगे।

एक दिन आपने देखा कि पुत्र घरपर सो रहा है, आपने सोचा थका होगा, इसलिये आराम कर रहा है और यही सोचकर स्वयं खेतपर चले गये। वहाँ देखा तो पुत्र खेतोंकी सिंचाई कर रहा था, आपको बड़ा आश्चर्य हुआ। चुपचाप घर लौट आये और यहाँ देखा तो पुत्र सो रहा था। अब तो आप समझ गये कि मेरे पुत्रका वेश धारणकर स्वयं परमपिता परमात्मा ही मेरे खेतोंकी देखभाल कर रहे हैं। अब तो आप तुरंत ही वापस अपने खेतोंपर पहुँचे और पुत्ररूपधारी भगवान्‌का हाथ पकड़कर कहने लगे—'प्रभो! मैं आपको पहचान गया, आप मेरे पुत्र नहीं स्वयं श्रीभगवान् हैं।' पुत्ररूपधारी भगवान्‌ने कहा—'अरे पिताजी! आप यह क्या कह रहे हैं? मैं तो आपका पुत्र ही हूँ।' परंतु जब आप नहीं माने तो विवश होकर भगवान्‌को प्रकट होना पड़ा। आपने कहा—'प्रभो! आपको यह सब करनेकी क्या जरूरत थी?' प्रभुने कहा—'नापाजी! आप नित्य प्रति हमारी और हमारे भक्तोंकी सेवा करते हैं, यदि हमने थोड़ी-सी आपकी सहायता कर ही दी तो क्या हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया? अरे! मैं तो आपद्वारा की गयी सेवाका ब्याज भी नहीं चुका पाया हूँ।' भक्तवत्सल प्रभुकी बातें सुनकर आपके प्रेमाश्रु छलछला आये और हृदय परमानन्दसे गद्गद हो उठा।

श्रीकीताजी

श्रीकीताजी महाराजका जन्म जंगलमें आखेट करनेवाली जातिमें हुआ था, परंतु पूर्वजन्मके संस्कारवश आपकी चित्तवृत्ति भगवत्स्वरूपमें लगी रहती थी। साथ ही आपकी सन्तसेवामें बड़ी प्रीति थी, यहाँतक कि आप सन्तसेवाके लिये भगवद्भक्तिसे विमुख जनोंको जंगलमें लूट भी लिया करते थे और उससे सन्तसेवा करते थे।

परोपकारी भक्त

लछिमन लफरा लडू संत जोधापुर त्यागी।
सूरज कुंभनदास बिमानी खेम बिरागी॥
भावन बिरही भरत नफर हरिकेस लटेरा।
हरिदास अजोध्या चक्रपानि (दियो) सरजू तट डेरा॥
तिलोक पुखरदी बिज्जुली उद्धव बनचर बंसजे।
पर अर्थ परायन भक्त ये कामधेनु कलिजुग्ग के॥ ९८॥

ये भक्तजन इस कलियुगमें भी बड़े ही परोपकारी तथा आश्रितजनोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये कामधेनुके समान हुए। इनके नाम ये हैं—श्रीलक्ष्मणजी, श्रीलफराजी, श्रीलड्डूजी, जोधपुरके त्यागी श्रीसन्तजी, श्रीसूरजजी, श्रीकुम्भनदासजी, श्रीविमानीजी, श्रीखेम वैरागीजी, श्रीभावनजी, श्रीविरही भरतजी, श्रीनफरजी, श्रीहरिकेशजी लटेरा, श्रीहरिदासजी, श्रीअयोध्या-सरयू-तटवासी श्रीचक्रपाणिजी, श्रीतिलोक सुनारजी, श्रीपुखरदीजी, श्रीबिज्जुलीजी, वनचर (श्रीहनुमान्) वंशमें उत्पन्न श्रीउद्धवजी॥ ९८॥

इन परोपकारी भक्तोंमेंसे कुछ भक्तोंके चरित्र इस प्रकार हैं—

श्रीलड्डूजी

श्रीलड्डूजी महाराज बड़े ही परोपकारी एवं भगवद्भक्त वैष्णव सन्त थे। दूसरेके दुःखोंको दूर करना आपका सहज स्वभाव था। आपके समयमें बंगाल प्रान्तके एक गाँवमें प्रायः भगवद्विमुख नास्तिक लोग ही रहते थे। इन्हें हिंसा करनेमें लेशमात्रका भी पाप-भय नहीं था; यहाँतक कि पशुबलि क्या, मानवबलि देनेमें भी उनको हिचक नहीं होती थी।

कहते हैं कि जिस समय आप उन विमुखोंके देश पहुँचे, उस समय वहाँके राजाने देवीको बलि देनेके लिये किसी मनुष्यको पकड़ लानेके लिये अपने कर्मचारियोंको भेजा था। राजकर्मचारी एक गरीब ब्राह्मणके बालकको पकड़कर ले जा रहे थे। उसके माता-पिता करुण क्रन्दन कर रहे थे। उसी समय आप वहाँ पहुँच गये। दीन ब्राह्मण-दम्पती आपकी शरणमें आये और पुत्रकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। ब्राह्मणकी करुण प्रार्थना, ब्राह्मणीके क्रन्दन और बालककी दीनता देखकर आपका सन्त हृदय द्रवित हो उठा। आपने ब्राह्मण बालकको मुक्त करा दिया और उसकी जगहपर स्वयं बलिदान होनेके लिये तैयार हो गये। राजकर्मचारी आपको पकड़कर देवीके सम्मुख ले गये। देवी भक्तको बलिके लिये आया देखकर अत्यन्त कुपित हुईं और उन्होंने उन राजकर्मचारियोंका ही वध कर डाला।

इस घटनाका भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

लड्डू नाम भक्त जाय निकसे विमुख देश लेसहूँ न सन्तभाव जानै पाप पागे हैं।
देवी कों प्रसन्न करैं मानुस को मारि धरैं लै गये पकरि तहां मारिबे कों लागे हैं॥
प्रतिमाको फारि बिकरारि रूपधारि आई लै कै तरवार मूंड काटे भीजे बागे हैं।
आगे नृत्य करै, दृग भरै साधु पांव धरै ऐसे रखवारे जानि जन अनुरागे हैं॥ ४०४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसन्तजी

भक्त श्रीसन्तजीका साधु-सेवामें बड़ा प्रेम था। इन्होंने गाँव-गाँवसे भिक्षा लाकर सन्त-सेवा करनेका नियम ले रखा था। एक बार ये किसी गाँवमें भिक्षा लेने गये थे। इसी बीच घरपर सन्तोंकी जमात आ गयी। सन्तोंने इनकी पत्नीसे पूछा कि 'सन्तजी कहाँ हैं?' तो पत्नीने प्रमादपूर्वक कहा कि 'वे चूल्हेमें गये।' पत्नीकी वाणी सुनकर सन्त जान गये कि इसका साधु-सन्तोंमें भाव नहीं है, अतः वहाँसे चल दिये। संयोगसे मार्गमें श्रीसन्तजी मिल गये। सन्तोंने पूछा—'आप कहाँ रहे?' उस समय सन्तजीके हृदयमें साक्षात् भगवान् ही बैठकर बोले—'हमारी पत्नीने जो कहा है, वह सत्य कहा है। सचमुच मेरे मनमें चूल्हेकी आँचका ही ध्यान हो रहा था।' फिर श्रीसन्तजी सन्तोंको पुनः घर लौटा लाये और भगवत्प्रसाद पवाकर उन्हें आनन्दमें मग्न कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सदा साधुसेवा अनुराग रंग पागि रह्यौ गह्यौ नेम भिक्षा व्रत गांव गांव जाय कै।
आये घर संत पूछैं तिया सों यों संत कहां? 'संत चूल्हे मांझ' कही ऐसे अलसाय कै॥
बानी सुनि जानी, चले मग सुखदानी मिले कही कित हुते? सो बखानी उर आय कै।
बोली वह सांच, वही आंच ही कौ ध्यान मेरे आनिगृह फेरि किये मगन जिंवाय कै॥ ४०५॥

श्रीतिलोकजी सुनार

श्रीतिलोकभक्तजी पूर्व देशके रहनेवाले थे और जातिके सोनार थे। इन्होंने हृदयमें भक्तिसार—सन्त-सेवाका व्रत धारण कर रखा था। एक बार वहाँके राजाकी लड़कीका विवाह था। उसने इन्हें एक जोड़ा पायजेब बनानेके लिये सोना दिया, परंतु इनके यहाँ तो नित्यप्रति अनेकों सन्त-महात्मा आया करते थे, उनकी सेवासे इन्हें किंचिन्मात्र भी अवकाश नहीं मिलता था, अतः आभूषण नहीं बना पाये। जब विवाहके दो दिन ही रह गये और आभूषण बनकर नहीं आया तो राजाको क्रोध हुआ और सिपाहियोंको आदेश दिया कि तिलोक सुनारको पकड़ लाओ। सिपाहियोंने तुरंत ही इन्हें पकड़कर लाकर राजाके सम्मुख कर दिया। राजाने इन्हें डाँटकर कहा कि 'तुम बड़े धूर्त हो। समयपर आभूषण बनाकर लानेको कहकर भी नहीं लाये।' इन्होंने कहा—'महाराज! अब थोड़ा काम शेष रह गया है, अभी आपकी पुत्रीके विवाहके दो दिन शेष हैं। यदि मैं ठीक समयपर न लाऊँ तो आप मुझे मरवा डालना'।

राजाकी कन्याके विवाहका दिन भी आ गया, परंतु इन्होंने आभूषण बनानेके लिये जो सोना आया था, उसे हाथसे स्पर्श भी नहीं किया। फिर इन्होंने सोचा कि समयपर आभूषण न मिलनेसे अब राजा मुझे जरूर मार डालेगा, अतः डरके मारे जंगलमें जाकर छिप गये। यथासमय राजाके चार-पाँच कर्मचारी आभूषण लेनेके लिये श्रीतिलोकजीके घर आये। भक्तके ऊपर संकट आया जानकर भगवान्ने श्रीतिलोक भक्तका रूप धारणकर अपने संकल्पमात्रसे आभूषण बनाया और उसे लेकर राजाके पास पहुँचे। वहाँ जाकर राजाको पायजेबका जोड़ा दिया। राजाने उसे हाथमें ले लिया। आभूषणको देखते ही राजाके नेत्र ऐसे लुभाये कि देखनेसे तृप्त ही नहीं होते थे। राजा श्रीतिलोकजीपर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उनकी पहलेकी सब भूल-चूक माफ कर दी और उन्हें बहुत-सा धन पुरस्कारमें दिया। श्रीतिलोकरूपधारी भगवान् मुरारी इस प्रकार धन लेकर श्रीतिलोक भक्तके घर आकर विराजमान हुए।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—

पूरबमें ओकसो तिलोक हो सुनार जाति पायो भक्तिसार साधुसेवा उर धारियै।
भूपके विवाह सुता जोरौ एक जेहरिकौ गढ़िबेकौ दियौ कह्यौ नीके कै सँवारियै॥
आवत अनन्त सन्त औसर न पावै किहूँ रहे दिन दोय भूप रोष यों संभारियै।
ल्यावो रे पकरि, ल्याये, छाड़िये मकर, कही नेकु रह्यो काम आवै नातो मारि डारियै॥ ४०६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयो वही दिन कर छुयौ हूं न इन नृप करै प्रान बिन बन मांझ छिप्यौ जायकै।
आये नर चारि पांच जानी प्रभु आँच गढ़ि लियौ सो दिखायौ सांच चले भक्तभायकै॥
भूपको सलाम कियो जेहरिकौ जोरौ दियौ लियो कर देखि नैन छोड़ैं न अघायकै।
भई रीझि भारी सब चूक मेटि डारी धन पायो लै मुरारी ऐसे बैठे घर आयकै॥ ४०७॥

श्रीतिलोकरूपधारी भगवान्ने दूसरे दिन प्रातःकाल ही महान् उत्सव किया। उसमें अत्यन्त रसमय, परम स्वादिष्ट अनेकों प्रकारके व्यंजन बने थे। साधु-ब्राह्मणोंने खूब पाया। फिर भगवान् एक सन्तका स्वरूप धारणकर झोलीभर सीथ—प्रसाद लिये हुए वहाँ गये, जहाँ श्रीतिलोक भक्त छिपे बैठे थे। श्रीतिलोकजीको प्रसाद देकर सन्त रूपधारी भगवान्ने कहा—'श्रीतिलोक भक्तके घर गया था। उन्होंने ही खूब प्रसाद पवाया और झोली भी भर दी।' श्रीतिलोक भक्तने पूछा—कौन तिलोक? भगवान्ने कहा—'जिसके समान त्रैलोक्यमें दूसरा कोई नहीं है।' फिर भगवान्ने पूरा विवरण बताया। सन्तरूपधारी भगवान्के वचन सुनकर श्रीतिलोकजीके मनको शान्ति मिली। फिर भगवत्प्रेममें मग्न श्रीतिलोकजी रात्रिके समय घर आये। घरपर साधु-सन्तोंकी चहल-पहल तथा घरको धन-धान्यसे भरा हुआ देखकर श्रीतिलोकजीका श्रीप्रभुके श्रीचरणोंकी ओर और भी अधिक झुकाव हो गया। वे समझ गये कि श्रीप्रभुने मेरे ऊपर महान् कृपा की है, निश्चय ही मेरे किसी महान् भाग्यका उदय हुआ है।

श्रीप्रियादासजी श्रीतिलोकजीपर भगवान्की इस कृपाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

भोरही महोछौ कियौ, जोई मांगे सोई दियौ नाना पकवान रसखान स्वाद लागे हैं।
सन्तकौ सरूप धरि लै प्रसाद गोद 'भरि गये तहां' पावै जू तिलोक गृह पागे हैं॥
कौनसो तिलोक? अरे दूसरो तिलोक मैं न बैन सुनि चैन भयो आये निसि रागे हैं।
चहल पहल धन भर्‌यौ घर देखि ढर्‌यौ प्रभुपद कंज जानौ मेरे भाग जागे हैं॥ ४०८॥

श्रीलक्ष्मणजी

परम सन्तसेवी श्रीलक्ष्मणजी सन्तोंके रहनेके लिये निवास-स्थान बनवा रहे थे, छतका पटाव हो गया था, परंतु वह अभी परिपक्व नहीं हुआ था कि छतकी आधारभूता एक बल्ली टूट गयी। लोगोंको बड़ी चिन्ता हुई कि अब तो छत गिर जायगी अथवा नीचेको धँस जायगी। अब तो इसे फिरसे बनवाना पड़ेगा आदि। श्रीलक्ष्मणजीने सबको समझाया कि आप लोग चिन्ता नहीं करें, श्रीहरिकृपासे कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। सचमुच प्रातःकाल जब सबने देखा तो बल्लीमें टूटनेका निशान भी नहीं था, छत ज्यों-की-त्यों दुरुस्त थी! सब लोग भगवान्की इस प्रत्यक्ष कृपापर आश्चर्य करने लगे। ऐसे अनन्य निष्ठावान् और सन्तसेवी भक्त थे श्रीलक्ष्मणजी!

श्रीलफराजी (श्रीलफरा गोपालदेवाचार्यजी)

आप निम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य श्रीस्वामी हरिव्यास-देवाचार्यजीके कृपापात्र थे। आप स्वभावसे बड़े विरक्त एवं अलमस्त थे। एक बार श्रीगुरुदेवजीने आपको एक आश्रमकी देख-रेखका भार सौंपा। यद्यपि इस कार्यमें आपकी अभिरुचि बिलकुल नहीं थी, फिर भी श्रीगुरुदेवजीसे संकोचवश आप इनकार नहीं कर सके। अतः कुछ दिन तक तो आपने जैसे-तैसे आश्रमका कार्य सँभाला, फिर दस दिनके लिये तीर्थयात्राका बहाना बनाकर श्रीगुरुदेवजीसे आज्ञा लेकर आप आश्रमसे निकले तो फिर लौटकर आश्रमपर गये ही नहीं। श्रीगुरुजीने कुछ दिनतक तो इनकी प्रतीक्षा की, परंतु ये जब नहीं आये तो उन्होंने प्रसंग चलनेपर इन्हें 'लफरा' कहा। वही नाम पड़ गया।

श्रीकुम्भनदासजी

श्रीकुम्भनदास परम भगवद्भक्त, आदर्श गृहस्थ और महान् विरक्त थे। वे निःस्पृह, त्यागी और महासन्तोषी व्यक्ति थे। उनके चरित्रकी विशिष्ट अलौकिकता यह थी कि भगवान् साक्षात् प्रकट होकर उनके साथ सखाभावकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रीड़ाएँ करते थे।

कुम्भनदासका जन्म गोवर्धनके सन्निकट जमुनावतो ग्राममें संवत् १५२५ वि० में चैत्र कृष्ण एकादशीको हुआ था। वे गोरवा क्षत्रिय थे। उनके पिता एक साधारण श्रेणीके व्यक्ति थे। खेती करके जीविका चलाते थे। कुम्भनदासने भी पैतृक वृत्तिमें ही आस्था रखी और किसानीका जीवन ही उन्हें अच्छा लगा।

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी उनके दीक्षा-गुरु थे। संवत् १५५० वि० में आचार्यकी गोवर्धन-यात्राके समय उन्होंने ब्रह्मसम्बन्ध लिया था।

श्रीनाथजीके शृंगारसम्बन्धी पदोंकी रचनामें उनकी विशेष अभिरुचि थी। महाप्रभु वल्लभाचार्यके लीला-प्रवेशके बाद कुम्भनदास गोसाईं विट्ठलनाथके संरक्षणमें रहकर भगवान्का लीला-गान करने लगे। विट्ठलनाथजी महाराजकी उनपर बड़ी कृपा थी। वे मन-ही-मन उनके निर्लोभ-जीवनकी सराहना किया करते थे। संवत् १६०२ वि० में अष्टछापके कवियोंमें उनकी गणना हुई।

श्रीखेमदासजी

प्राणिमात्रका क्षेम-कुशल चाहते हुए श्रीखेमदासजी बड़े भावसे सन्तसेवा करते थे। एक बार सन्तोंके आनेपर एक वैश्यके यहाँसे सीधा-सामान लेकर आ रहे थे तो मार्गमें एक ब्राह्मणने व्यंग्य किया—'माला पहन लिये तिलक लगा लिये, बस, बाबाजी बन गये। कुछ करना न धरना, फोकटका माल खाते हैं और मटरगश्ती करते हैं। अरे, सच्चे साधु तो ये बैल हैं। इन्हें जो दो, जितना दो, उतना ही खाते हैं और खूब हल खींचते हैं, भार ढोते हैं।' श्रीखेमदासजीने मुसकुराकर कहा—'तुम ठीक कहते हो। देखो, तुम्हारा एक बैल चोरी चला गया है, यदि मैं उसके बदले तुम्हारे हलमें चलूँ तब तो तुम मुझे सच्चा साधु मानोगे।' उसने कहा—'हाँ, यदि आप भी बैलका-सा परोपकार करें तो मैं मान लूँगा कि आप भी सच्चे सन्त हैं।' श्रीखेमदासजी सन्तोंकी व्यवस्था करके उस ब्राह्मणके हलमें जुतकर बैलके साथ हल खींचने लगे। भगवान्से भक्तका यह महाश्रम देखा नहीं गया। तुरंत प्रभु-प्रेरणासे उस ब्राह्मणका चोरी गया बैल वहाँ आकर खड़ा हो गया, तब श्रीखेमदासजीने ब्राह्मणको क्षमादान देते हुए सन्त-सेवाका उपदेश दिया। ब्राह्मण भी भक्त हो गया।

श्रीहरिदासजी

श्रीहरिदासजी श्रीअयोध्याधाममें निवास करते थे। आप भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। श्रीहरि-इच्छासे जो कुछ भी अपने-आप सहज रूपसे प्राप्त हो जाता, उसीसे सन्त-सेवा करते थे। एकबार सन्तोंकी बहुत बड़ी जमात इनके स्थानपर आयी। कुटीमें एक छटाँक भी सीधा-सामान नहीं था। ये बड़े चिन्तित हुए। तब इनकी चिन्ता दूर करनेके लिये प्रभुने अपने श्रीचरणकमलसे पाँच मुहरें प्रकट कर दीं। प्रभुकी ऐसी कृपा देख आप बड़े प्रसन्न हुए। उन्हीं मुहरोंसे उन्होंने खूब सन्तोंकी सेवा की।

श्रीउद्धवजी

अनन्य श्रीरामभक्त श्रीउद्धवजी स्वयं श्रीहरि और हरिजन—दोनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहते ही थे, दूसरोंको भी यही उपदेश देते थे। इनके उपदेशसे प्रभावित होकर एक राजाने सन्तसेवाका व्रत लिया था। वेषमात्रमें उसकी अपार निष्ठा हो गयी थी। एक दुष्ट राजाकी इस निष्ठाका अनुचित लाभ उठाकर महलमें रहने लगा। एक दिन मौका देखकर वह रात्रिके समय राजमहलकी एक युवतीको ले भागा। इससे राजाको बड़ा रोष हुआ। उसने श्रीउद्धवजीको उपालम्भ दिया कि आपके कहनेसे मैंने सन्त-सेवा प्रारम्भ की थी और देखिये ये सन्तवेषधारी ऐसे-ऐसे घृणित कार्य करते हैं। श्रीउद्धवजीने राजाको धैर्य बँधाया। निष्ठापर दृढ़ रहनेके लिये जोर दिया और उस युवतीका आकर्षण किया। श्रीहरि-कृपासे वह युवती आकाश-मार्गसे राजमहलमें आ गयी। तब तो राजाकी सन्तसेवामें और भी दृढ़ निष्ठा हो गयी तथा श्रीउद्धवजीके प्रति भी उसकी श्रद्धा बढ़ गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_12_1_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिलाषा पूर्ण करनेवाले भक्त

सोम भीम सोमनाथ बिको बिसाखा लमध्याना।
महदा मुकुँद गनेस त्रिबिक्रम रघु जग जाना॥
बालमीक बृधब्यास जगन झाँझू बिठल अचारज।
हरिभू लाला हरिदास बाहुबल राघव आरज॥
लाखो छीतर उद्धव कपुर घाटम घूरी कियो प्रकास।
अभिलाष अधिक पूरन करन ये चिंतामनि चतुरदास॥ ९९॥

ये भगवद्दास अपने भजन-साधनमें बड़े ही चतुर थे तथा दूसरोंकी अधिकाधिक अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये चिन्तामणिके समान थे। इनके नाम ये हैं—श्रीसोमजी, श्रीभीमजी, श्रीसोमनाथजी, श्रीबिकोजी, श्रीविशाखाजी, श्रीलमध्यानजी, श्रीमहदाजी, श्रीमुकुन्दजी, श्रीगणेशजी, श्रीत्रिविक्रमजी, श्रीरघुजी, श्रीबालमीकजी, श्रीवृद्धव्यासजी, श्रीजगनजी, श्रीझाँझूजी, श्रीबीठल आचार्यजी, श्रीहरिभूजी, श्रीलालाजी, श्रीहरिदासजी, श्रीबाहुबलजी, आर्य श्रीराघवजी, श्रीलाखाजी, श्रीछीतरजी, श्रीउद्धवजी, श्रीकपूरजी, श्रीघाटमजी, श्रीघूरीजी—ये सभी भक्त जगत्‌में प्रसिद्ध हुए और इन सभीने अपने सुयशसे जगत्‌को प्रकाशित किया॥ ९९॥

इनमेंसे कतिपय भक्तोंका भगवत्प्रेममय चरित्र इस प्रकार है—

श्रीसोमजी

आप बड़े ही समृद्धिशाली सन्त थे। आपके यहाँ सन्त-सेवा, कथा-कीर्तन-सत्संगकी धूम मची रहती थी। आपके उत्कर्षको देखकर आपका ही एक गुरुभाई आपसे अत्यन्त द्वेष करता था। उसने आपका अनिष्ट करनेके लिये छल-बल तो बहुत किया, परंतु सफल नहीं हो सका। तब अन्ततोगत्वा उसने आपके श्रीगोपालजीको चुराकर गहरे जलाशयमें फेंक दिया। परंतु श्रीगोपालजी स्वयं जलाशयसे निकलकर सिंहासनपर आ विराजे। उसने फिर फेंका तो श्रीगोपालजी फिर आ गये। श्रीसोमजीको इसका कुछ भी रहस्य मालूम नहीं था। उसने पुनः तीसरी बार भी श्रीगोपालजीको चुराकर फेंकनेका निश्चय किया तो श्रीगोपालजीने स्वप्नमें भय दिया कि मैंने दो बार तो तुम्हारा अपराध क्षमा कर दिया है, परंतु यदि तीसरी बार फिर वही कुकृत्य करोगे तो मैं क्षमा नहीं कर सकता। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो श्रीसोमजीकी शरण ग्रहण करो अन्यथा सर्वनाश हो जायगा। यह सुनकर वह गुरुभाई बहुत घबराया और तत्काल श्रीसोमजीके पास आया और उसने अपनी समस्त काली करतूत कह सुनायी तथा क्षमा-याचना की। श्रीसोमजीने तो उसका कोई अपराध न तो जाना ही था, न माना ही था, फिर भी उसकी प्रार्थनापर उसे क्षमादान देते हुए सन्त-भगवन्त-सेवाका आदेश दिया।

श्रीभीमजी

ये श्रीरामजीकी उपासना करते थे। जूनागढ़के पास निवास-स्थान था। आप अत्यन्त अनुरागपूर्वक सन्तोंकी सेवा करते थे। एकबार इनकी सेवा-निष्ठाकी परीक्षाके लिये स्वयं भगवान् पाँच सन्तोंका वेष धारणकर इनके यहाँ पधारे। इन्होंने बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। फिर हाथ जोड़कर पूछा कि 'मैं आप लोगोंका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?' सन्तोंमेंसे एकने तो इनकी पत्नी माँगी, दो-ने दोनों पुत्रियोंको तथा अन्य दो-ने दोनों पुत्रोंको माँगा। इन्होंने सहर्ष सन्तोंको पत्नी, पुत्री तथा पुत्र प्रदान कर दिये। सन्तोंके चले जानेपर पड़ोसियोंने इन्हें बहुत उल्टा-सीधा सुनाया। श्रीभीमजी शान्त चित्तसे सबकी व्यंग्य-बौछार सहते रहे। सन्तोंके प्रति इनके मनमें किंचित् भी दुर्भाव नहीं हुआ। प्रातःकाल सबके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, जब सब लोगोंने श्रीभीमजीकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी तथा पुत्रोंको घरपर पूर्ववत् पाया। मानो कोई कहीं गया ही नहीं था। तब सबने आपकी महिमा जानी और चरणोंमें पड़कर क्षमा माँगी।

श्रीध्यानदासजी

आप सदा भगवद्ध्यानमें मग्न रहते थे। वाणीसे कभी भी असद्वाक्य नहीं बोलते थे। अतः इनके मुखसे जो भी वचन निकल जाता, वह सत्य होकर रहता। एक दिन वणिक् दम्पती इनकी शरणमें आये। वे रोकर अपना दुःखड़ा सुनाने लगे कि 'महाराज! न जाने किस पापसे मेरी सन्तान जन्मते ही मर जाती है। इससे हम लोग बहुत दुःखी रहते हैं। ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हमलोग इस दुःखसे मुक्त हो जायँ।' श्रीध्यानदासजीने उपदेश दिया—

'कबहूँ असत न भाषिये, सेइअ अतिथि सप्रेम। इहाँ उहाँ लेहिं सकल सुख, सत सङ्गति करि प्रेम॥'

आपका उपदेश मानकर वणिक् दम्पती तदनुकूल आचरणपरायण हो गये। फलस्वरूप थोड़े ही दिनोंमें घरमें नाती-पोतोंका छगन-मगन छा गया।

श्रीमुकुन्दजी

ये श्रीप्रबोधानन्दजीके शिष्यके शिष्य थे। आपने बड़ा बढ़िया आश्रम बनवाया था। खूब सन्त-सेवा करते थे। एक बार एक सन्तने इनसे कहा—'मुकुन्द! तुम अपना आश्रम हमें दे दो और अपने लिये दूसरा आश्रम बनवा लेना।' इन्होंने सहर्ष वह आश्रम सन्तको दे दिया और स्वयं जंगलकी राह ली। वनपथमें एक राजाका घोड़ा सहसा मर गया था, जिससे उसे अत्यन्त दुःख था। इन्होंने कृपा करके राजाका घोड़ा जीवित कर दिया। इनकी महिमा जानकर राजाने इनके लिये पहलेसे बढ़िया आश्रम बनवा दिया और साथ ही सन्त-सेवाका प्रबन्ध भी कर दिया।

श्रीवृद्धव्यासजी

इनकी सद्गुरु एवं सन्तोंमें बड़ी निष्ठा थी। घरमें एक विवाहयोग्य कन्या थी। उसके विवाहके लिये इन्होंने सामग्री एकत्र की थी। इसी बीच इन्हें पता चला कि श्रीगुरुदेवजीके यहाँ उत्सव मनाया जा रहा है तो इन्होंने वह सब सामग्री श्रीगुरुदेवजीको अर्पित कर दी। इन्होंने यह परवाह नहीं की कि कन्याका विवाह कैसे होगा? भगवान्ने एक वैश्यको प्रेरणा की। वह विवाहका सब सामान इनके घर दे गया। कन्याका विवाह यथासमय सानन्द सम्पन्न हो गया।

श्रीजगनजी

आप बड़े गौ-सन्तसेवी थे। एक बार आपकी एक गायको चोर चुरा ले गये। गायोंकी सेवामें रहनेवाला आपका शिष्य बहुत दुःखी हुआ कि अब श्रीठाकुरजीको दूधका भोग कैसे लगेगा? फिर वह अपने गुरुदेव श्रीजगनजीपर नाराज होने लगा कि एक सन्त तो श्रीनामदेवजी थे, जिन्होंने मरी हुई गायको जीवित कर दिया था और एक आप हैं, जिन्होंने जीवितको भी गवाँ दिया। श्रीजगनजीने मुसकुराकर कहा—'तुम मुझसे लड़ाई क्यों कर रहे हो? पहले गौशालामें जाकर तो देखो।' शिष्यने गौशालामें जाकर देखा तो गाय अपने स्थानपर बँधी मिली। श्रीगुरुदेवकी यह महिमा देखकर उसकी श्रद्धा श्रीगुरुचरणोंमें और भी अधिक हो गयी।

श्रीझाँझूदासजी

पयोहारी श्रीकृष्णदासजी महाराजके प्रमुख शिष्योंमें एक संगीत-प्रवीण हेमानन्दजी महाराज थे। इन्हींके कृपापात्र थे श्रीझाँझूदासजी। आपका जन्म चौदहवीं शताब्दीके उत्तरकालमें उमाड़ा नामक ग्राममें पण्डित चोखारामजीके घरमें हुआ था। आप खाण्डल विप्र जातिके बुढ़ाडरा गोत्रके थे। बाल्यकालसे ही झाँझूदासजीकी निष्ठा भगवद्भजनकी ओर विशेष रूपसे थी। पिताजीने विद्याध्ययन कराया, पर आप तो भगवान्के भजनमें ही तल्लीन रहा करते थे। आपने गुरु श्रीहेमानन्दजीसे उपदेश लेकर जयपुरसे पश्चिमकी ओर अरण्य प्रदेशमें एक तालाबके किनारे आश्रम बनाकर भगवान्की आराधना करना प्रारम्भ कर दिया।

एक बार रामघाटके ऊपर जब ये प्रबल साधनामें तल्लीन होकर दर्शनके लिये अत्यन्त व्याकुल हो गये, तब वहाँ प्रेमसुधासागर भगवान् श्रीराघवेन्द्रने श्रीजानकीजी एवं श्रीलक्ष्मणजीसहित आपको दर्शन दिया और कहा—'कलियुगमें मेरा प्रकट होना ही दुःसाध्य है, परंतु तुम्हारी दृढ़ एवं अनन्य भक्तिको देखकर मुझे दर्शन देना पड़ा। नित्य सेवाके लिये तुमको सरयूमें विग्रह-रूपकी प्राप्ति होगी, उसे ले जाना और स्थापितकर उसकी सेवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना। तुम्हारे उत्सवोंमें मैं नीलकण्ठ पक्षीके रूपमें आऊँगा। उसे मेरा ही स्वरूप समझना।'

इसके अनन्तर वह अलौकिक आभा अदृश्य हो गयी। श्रीझाँझूदासजी उस स्वरूपका चिन्तन करते हुए श्रीसरयूमें स्नान करने गये। वहाँ स्नान करते समय आपको श्रीराम, लक्ष्मण एवं श्रीजानकीके श्रीविग्रह सिंहासनासीन प्राप्त हुए। भगवान्‌की इस असीम अनुकम्पासे भक्तके हृदयमें परम प्रसन्नता हुई। श्रीझाँझूदासजीने सिंहासनको शिरोधार्य करके अपने स्थानकी ओर प्रस्थान किया। आपने बड़ी प्रसन्नतासे वहीं श्रीविग्रहकी स्थापनाकर विजयादशमीको लीला-उत्सव मनाया। इस उत्सवमें प्रात:काल अपने पूर्वसंकेतानुसार भगवान् नीलकण्ठरूपमें दर्शन देनेके लिये आये।

श्रीबाहुबलजी

आप श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिव्यासदेवजीके प्रमुख शिष्योंमेंसे थे। आपका बाहुबल नाम पड़नेका कारण यह कहा जाता है कि एक बार एक राजापर उसके शत्रुओंने चढ़ाई कर दी। राजाने प्रथम तो शत्रुओंका डटकर मुकाबला किया, परंतु जब देखा कि शत्रु-सैन्य अति प्रबल है तो वह राजमहल छोड़कर, भागकर श्रीबाहुबलजीकी शरणमें चला गया। श्रीबाहुबलजीने भयभीत राजाको अभय प्रदान करते हुए अपने हाथके संकेतमात्रसे ही शत्रुदलको स्तम्भित कर दिया। विपक्षी दल इस प्रकारका चमत्कार देखकर श्रीबाहुबलजीके चरणोंके पड़कर क्षमा माँगकर अपने स्थानको लौट गया। सन्त-कृपासे राजाका बाल भी बाँका नहीं हुआ। इससे प्रजासहित उसकी श्रीबाहुबलजीमें तथा सन्तमात्रमें अत्यन्त श्रद्धा हो गयी। बाहुके संकेतसे सेनाको जड़ीभूत करनेसे ही आपका नाम बाहुबल पड़ गया।

श्रीकपूरजी

आप बड़े दयालुहृदय सन्त थे। एक बार आपने एक सन्तके पाँवमें बिवाई फटी देखी तो उनसे पूछा—'महाराज! आप जूता क्यों नहीं पहनते?' सन्तने कहा—'मैंने एक दृढ़ नियम ले रखा है कि एक हजार सन्तोंको भोजन कराकर, तब पाँवमें जूता पहनूँगा। इसी फिराकमें मैं बहुत दिनोंसे घूम रहा हूँ। परंतु न तो हमारे पास इतना धन हुआ कि एक हजार सन्तोंको भोजन करा सकूँ और न मैंने जूता पहना।' श्रीकपूरजीको दया आयी। उन्होंने अपने घरकी बहुत-सी सम्पत्ति बेचकर अकेले ही एक हजार सन्तोंके भोजनकी व्यवस्था कर दी। सन्तका नियम पूर्ण हुआ। उसी दिनसे वे अपने पाँवमें पदत्राण धारण करने लगे।

श्रीघाटमजी

श्रीघाटमजी जातिके मीना थे। जयपुर-राज्यान्तर्गत खेड़ी ग्रामके निवासी थे। चोरी, डाका, लूट-पाट इनका पेशा था। एक बार ये जंगलमें किसीको लूटनेकी तलाशमें घूम रहे थे। संयोगसे एक महात्माका दर्शन हुआ। इन्होंने सहज भावसे प्रणाम किया तो सन्तने समीप आकर उपदेश दिया—'बेटा! यह चोरी-डाका अत्यन्त निन्द्य काम है। इसे तुम छोड़ दो। इससे लोक और परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।' इन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! यह तो हमारी जीविका है और वह भी आजसे नहीं मेरी कई पीढ़ियोंसे चली आ रही है, अत: यह तो हमसे छूट नहीं सकती। अत: आप और कुछ उपदेश दें, वह हम सहर्ष माननेके लिये तैयार हैं।' सन्तने कहा—'अच्छा, तो हमारी चार बातें यदि तुम मानोगे तो तुम्हारा अवश्य कल्याण हो जायगा। १-सत्य बोलना, २-साधु-सेवा करना, ३-भगवान्‌को अर्पण करके प्रसाद पाना, ४-भगवान्‌की आरतीका दर्शन करना।' श्रीघाटमजीने चारों बातें मान लीं। अब तो ये लूट-मारकर धन लाते तो प्रथम सन्तोंकी सेवा करते, फिर बचे-खुचे धनसे परिवारका पालन करते।

एक बार इनके श्रीगुरुदेवजीके यहाँ कोई उत्सव था, परंतु इनके पास पैसेके नामपर एक छदाम भी गाँठमें नहीं था। अत: इन्होंने चोरीका विचार किया। ये फौजी सिपाहीका भेस बनाकर एक राजाके अस्तबलमें घुसे। पहरेदारोंने टोका भी कि तुम कौन हो? तो इन्होंने गुरुकी बात यादकर सत्य ही कहा कि 'मैं चोर हूँ।' परंतु इनकी वेषभूषाको देखकर पहरेदारोंने इन्हें कोई फौजका सरदार समझा। इन्होंने निर्भय होकर अस्तबलमें प्रवेश किया और राजाकी सवारीका एक बढ़िया घोड़ा खोला और उसपर आरूढ़ होकर सेनापतिकी भाँति बड़े शानसे बाहर निकले। किसीने कुछ भी नहीं कहा। कुछ दूर जानेपर इन्हें एक मन्दिरमें भगवान्‌की मंगला आरती होती दिखायी पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये घोड़ेको एक पेड़से बाँधकर आरतीका दर्शन करने लगे। उधर जब सबेरा हुआ तो पता चला कि घोड़ा चोरी चला गया। अब पहरेदारोंको मालूम हुआ कि वह सचमुच चोर ही था। घोड़ेका पता लगानेके लिये घुड़सवार चारों दिशाओंमें दौड़े। पता लगाते-लगाते वहाँ पहुँच गये, जहाँ घोड़ा बँधा था। देखनेपर मालूम हुआ कि घोड़ा तो वही है, परंतु रंग बदल गया है, श्यामसे श्वेत हो गया है। इतनेमें आरतीका दर्शन, स्तुति, दण्डवत्प्रणाम करके तथा चरणामृत लेकर श्रीघाटमजी बाहर आये। पूछनेपर पुनः इन्होंने सब बात सही-सही कह दी कि घोड़ा वही है और चुरानेवाला चोर मैं वही हूँ; परंतु श्रीहरिकृपासे घोड़ेका रंग वह नहीं रहा। भगवान्ने मेरी रक्षा करनेके लिये अभी-अभी घोड़ेका रंग बदल दिया है। यह देख-सुनकर राजाके घुड़सवार दंग रह गये। वे श्रीघाटमजीको भी साथ लेकर राजाके पास आये। श्रीघाटमजीकी सत्यवादिता और हरिकृपासे घोड़ेके रंगमें परिवर्तनसे राजा बड़ा प्रभावित हुआ। उसने श्रीघाटमजीके चरणोंमें पड़कर प्रणाम किया और श्रीगुरुसेवा एवं जीविकाके निमित्त बहुत-सा द्रव्य एवं भूमि भेंट की। श्रीघाटमजीकी श्रीगुरुवचनोंमें और अधिक आस्था हो गयी। ये सहर्ष श्रीगुरु-उत्सवमें सम्मिलित हुए और इन्होंने सदा-सर्वदाके लिये चोरी-डाका छोड़ दिया।

भक्तोंके पालक महन्त

देवानंद नरहर्‌यानंद मुकुंद महीपति संतराम तंमोरी।
खेम श्रीरंग नंद बिष्नु बीदा बाजू सुत जोरी॥
छीतम द्वारकादास माधव मांडन रूपा दामोदर।
भल नरहरि भगवान बाल कान्हर केसौ सोहैं धर॥
दास प्रयाग लोहंग गुपाल नागू सुत गृह भक्त भीर।
भक्तपाल दिग्गज भगत ए थानाइत सूर धीर॥ १००॥

ये स्थानाधिपति (महन्त) सन्त भक्तोंका पालन-पोषण करनेवाले, बड़े शूर, धीर तथा दिग्गज भक्त हुए। इनके नाम ये हैं—श्रीदेवानन्दजी, श्रीनरहरियानन्दजी, श्रीमुकुन्दजी, श्रीमहीपतिजी, श्रीसन्तरामजी तमोली, श्रीखेमजी, श्रीरंगजी, श्रीनन्दजी, श्रीविष्णुजी, श्रीबीदाजी, श्रीबाजूजी तथा श्रीबाजूजीके दोनों पुत्र, श्रीछीतमजी, श्रीद्वारकादासजी, श्रीमाधवजी, श्रीमांडनजी, श्रीरूपाजी, श्रीदामोदरजी, परम साधु श्रीनरहरिजी, श्रीभगवानजी, श्रीबालजी, श्रीकान्हरजी, श्रीकेशवजी, श्रीप्रयागदासजी, श्रीलोहंगजी, श्रीगोपालजी, श्रीनागूजी एवं इनके पुत्र। ये भक्त अपने स्थानपर बड़े सुशोभित हुए। इनके यहाँ भक्तोंकी भीड़ लगी रहती थी॥ १००॥

इनमेंसे कुछ सन्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीदेवानन्दजी

श्रीदेवानन्दजी बड़े ही सन्तसेवी सद्गृहस्थ थे। आपके पास कोई स्थायी जगह-जमीन नहीं थी। अतः आकाशवृत्तिपर ही सन्त-सेवा आधारित थी। एक बार सन्तोंकी एक जमात आपके स्थानपर पधारी। धनके अभावमें आप एक वणिक्के यहाँ उधार सीधा-सामान लेने गये। वणिकने उधार देनेसे मना कर दिया। तब ये श्रीठाकुरजीकी पूजाका पात्र वणिक्के यहाँ गिरवी रखकर सीधा-सामान लाये और सन्तसेवा की। श्रीदेवानन्दजीके मनमें इस बातका बड़ा क्षोभ था कि श्रीठाकुरजीकी सेवाका एक पार्षद कम हो गया। परंतु जब वे पूजामें गये तो जो पात्र वणिक्के यहाँ गिरवी रख आये थे, वह भी मौजूद मिला। तब तो श्रीप्रभुकृपा विचारकर बड़े हर्षित हुए।

श्रीखेमजी

श्रीखेमजी जातिके वैश्य एवं जैन-मतावलम्बी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार इन्होंने मन्दिरमें भगवान्‌की झाँकी देखी। वह झाँकी इनके हृदयमें गड़ गयी। बस, विवश होकर इन्हें वैष्णव होना पड़ा। अब तो रात-दिन ये भगवान्‌की सेवा-पूजा, कथा-वार्तामें ही अपना सारा समय बिताने लगे। सन्तोंको बुला-बुलाकर सेवा करते और कथा-कीर्तन करवाते।

श्रीरूपाजी (श्रीरूपरसिकदेवाचार्यजी)

आप दक्षिण देशके रहनेवाले और जातिके ब्राह्मण थे। परिवार-पोषणके लिये आप खेती करते थे। सन्तसेवामें आपकी बड़ी निष्ठा थी। बहुत कालतक आपके यहाँ सन्तसेवा सुचारुरूपसे चलती रही। एक साल वर्षाके अभावमें खेतीमें अन्नकी उपज कुछ भी नही हुई। ऐसी स्थितिमें घरमें उपवासकी स्थिति आ गयी। बाल-बच्चे भूखे मरने लगे। श्रीरूपाजी अन्नकी तलाशमें कहीं जा रहे थे। मार्गमें सन्त मिल गये तो उन्हें अनुनय-विनयकर घर लिवा लाये। ये तो सन्तोंके आनेसे बड़े प्रसन्न हो रहे थे, परंतु इनकी पत्नी घबड़ायी कि इतने सन्तोंका सत्कार कैसे होगा? इन्होंने पत्नीसे कहा कि 'यदि कोई आभूषण हो तो दो, उसे बेचकर सन्तोंकी सेवामें लगा दूँ। इन सन्तोंके आशीर्वादसे ही दुःखोंकी निवृत्ति होगी।' पत्नीने अपनी नथ लाकर पतिको दी। श्रीरूपाजीने उसे ही बेचकर सन्तोंकी सेवा की। सन्तोंके पीछे सबने सीथ—प्रसादी पायी। उसी रातको भगवान्‌ने स्वप्नमें कहा कि 'घरमें अमुक जगह अपार सम्पत्ति गड़ी पड़ी है, उसे खोदकर आनन्दपूर्वक सन्तसेवा करो।' श्रीरूपाजीने वह स्थान खोदा तो सचमुच इन्हें अपार धन प्राप्त हुआ। फिर तो बड़े आनन्दसे दिन बीतने लगे। सन्तोंके श्रीमुखसे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीकी महिमा सुनकर आपने निश्चय किया कि मैं इन्हींसे मन्त्र दीक्षा लूँगा। अपने निश्चयके अनुसार आप अपने देशसे श्रीमथुरा-वृन्दावनके लिये चल पड़े। परंतु संयोगकी बात, जब आप मथुरा पहुँचे तो पता चला कि श्रीहरिव्यासजी तो नित्य निकुंजमें प्रवेश कर गये। इस दुःखद समाचारसे आपको मर्मान्तक पीड़ा हुई। आप मथुराके विश्रामघाटपर प्राण-त्यागका संकल्पकर जा बैठे। अन्तमें निष्ठाकी विजय हुई। श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीने नित्य-धामसे प्रकट होकर इन्हें दर्शन दिया। मन्त्रोपदेश देकर श्रीमहावाणीजीके अनुशीलनका आदेश दिया। श्रीगुरुदेवकी यह अलौकिक कृपा देखकर आप आनन्द-विभोर हो गये। तत्पश्चात् श्रीगुरुके आदेशानुसार आप आजीवन श्रीमहा-वाणीजीके मनन-चिन्तनमें रत रहते हुए इष्टाराधन करते रहे।

भगवद्भजनपरायण सन्त

केसव पुनि हरिनाथ भीम खेता गोबिंद ब्रह्मचारी।
बालकृष्ण बड़ भरथ अच्युत अपया ब्रतधारी॥
पंडा गोपीनाथ मुकुँद गजपती महाजस।
गुननिधि जसगोपाल देइ भक्तनि को सरबस॥
श्रीअंग सदा सानिधि रहैं (कृत) पुन्य पुंज भल भाग भर।
बद्रिनाथ उड़ीसे द्वारका सेवक सब हरि भजन पर॥ १०१॥

श्रीबदरिकाश्रम, उड़ीसा (श्रीजगन्नाथपुरी), श्रीद्वारिकापुरी—इन भगवद्धामोंमें भगवान् श्रीनरनारायण, श्रीजगन्नाथभगवान् और श्रीरणछोड़भगवान्‌के सभी सेवक बड़े ही भगवद्भजनपरायण हुए। इनके नाम ये हैं—श्रीकेशवजी, श्रीहरिनाथजी, श्रीभीमजी, श्रीखेताजी, ब्रह्मचारी श्रीगोविन्दजी, श्रीबालकृष्णजी, श्रीबड़भरतजी, श्रीअच्युतजी, श्रीअपयाजी, पण्डा श्रीगोपीनाथजी, श्रीमुकुन्दजी, महायशस्वी श्रीरुद्रप्रताप गजपतिजी (पुरीनरेश), श्रीगुणनिधिजी और श्रीजसगोपालजी। ये सभी भक्त सन्त-भगवन्त-सेवाका व्रत धारण करनेवाले, परम यशस्वी तथा भक्तोंको अपना सर्वस्व समर्पण करनेवाले हुए। ये सदा भगवान्‌के श्रीअंगके समीप रहते थे। इन्होंने पूर्वजन्ममें महान् सुकृत किया था। ये बड़े सौभाग्यशाली थे॥ १०१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमेंसे कुछ सन्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीरुद्रप्रतापजी गजपति

पुरीनरेश श्रीरुद्रप्रतापजी परम भागवत राजा हुए। श्रीजगन्नाथभगवान्‌में इनकी परम निष्ठा थी। राजा रुद्रप्रतापजीकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि मैं श्रीचैतन्य महाप्रभुके दर्शन करूँ। इसके निमित्त उन्होंने सार्वभौम वासुदेव भट्टाचार्यजीसे निवेदन किया कि मुझे जैसे हो वैसे श्रीमहाप्रभुजीका दर्शन करा दीजिये। श्रीसार्वभौमजीने श्रीमहाप्रभुजीसे निवेदन भी किया। परंतु श्रीमहाप्रभुजीने दो टूक जवाब दे दिया कि संन्यासीका रजोगुणी राजा-महाराजाओंसे मिलना उचित नहीं है। श्रीसार्वभौमजीने राजाको जब यह प्रभु-वचन सुनाया तो प्रथम तो राजाके मनमें बड़ा खेद हुआ। फिर अनेक प्रयत्नोंके पश्चात् जैसे इन्हें महाप्रभुके दर्शन हुए, वह वृत्तान्त बड़ा ही रोचक है। एक बारकी बात है—

रथयात्राका समय था। श्रीमहाप्रभुजी अपने परिकरोंसहित श्रीजगन्नाथभगवान्‌की रथयात्राका दर्शन करनेके लिये वहाँ उपस्थित थे। पुरीनरेश महाराज रुद्रप्रतापजी स्वर्णमार्जनी लेकर भगवान्‌के सामनेका रास्ता बुहार रहे थे एवं चन्दनमिश्रित जलका छिड़काव कर रहे थे। श्रीमहाप्रभुजी राजाकी यह सेवा देखकर बहुत सुखी हुए। श्रीजगन्नाथभगवान्‌का रथ चला। श्रीगौरांग महाप्रभुजी अपने परिकरोंसहित रथके आगे कीर्तन करते हुए चल रहे थे। श्रीमहाप्रभुजीका प्रेमोन्मत्त होकर उद्दाम नृत्यपूर्वक संकीर्तन करना सबके मनको आकर्षित कर रहा था। इतनेमें श्रीमहाप्रभुजी नृत्य करते-करते प्रेमावेशमें पछाड़ खाकर राजा रुद्रप्रतापके आगे गिरने लगे। प्रभुको गिरता हुआ देखकर राजाने उन्हें अतिशीघ्र अपनी बलिष्ठ भुजाओंसे पकड़ लिया। राजाका स्पर्श होते ही प्रभु सावधान हो गये और कहने लगे—'छि: छि: मुझे तो रजोगुणीका स्पर्श हो गया। धिक्कार है मुझको।' प्रभुके वचन सुनकर राजा भयभीत हो गये। तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यजीने इन्हें समझाया कि 'आप चिन्ता न करें, यह तो श्रीप्रभुने अपने भक्तोंको शिक्षा देनेके लिये कहा है। आपपर तो श्रीप्रभुकी शीघ्र कृपा होनेवाली है।'

बलगण्डि नामक स्थानपर पहुँचकर श्रीजगन्नाथ-भगवान्‌का रथ रुका। वहाँ भगवान्‌को बहुत-बहुत व्यंजनोंका भोग लगता है। भक्तलोग भगवान्‌का भोग लगाने लगे। श्रीमहाप्रभुजी भी एक एकान्त स्थलपर प्रेमावेशमें नेत्र बन्द किये हुए शयन कर रहे थे। इतनेमें राजा रुद्रप्रतापजी श्रीसार्वभौमजीकी बतायी हुई विधिके अनुसार राजवेष छोड़कर, वैष्णववेष धारणकर वहाँ आये और श्रीप्रभुके चरण दबाने लगे। चरण-सेवा करते समय राजा रासपंचाध्यायीके 'गोपीगीत' के श्लोकोंका सुमधुर स्वरसे गान करने लगे। जब राजाने '**तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्। श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥**'—यह श्लोक गाया तो उसे सुनकर श्रीमहाप्रभुजी बड़े सुखी हुए और प्रेमावेशमें उठकर राजाका आलिंगन कर लिया और बोले—'तुमने मुझे बहुत अमूल्य रत्न दिये हैं। मेरे पास और देनेको नहीं है, इसलिये मैं तुम्हें आलिंगन ही देता हूँ।' राजा रुद्रप्रतापके सौभाग्यको देखकर समस्त भक्त आनन्दित मन होकर प्रशंसा करने लगे। राजा प्रभुको दण्डवत् करके बाहर चले आये और हाथ-जोड़कर उन्होंने सभी भक्तोंको भी प्रणाम किया।

श्रीप्रियादासजीने गौरांग महाप्रभुके प्रति राजा श्रीरुद्रप्रतापजीके इस भावका इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीप्रतापरुद्र गजपति कै बखान कियौ लियौ भक्तिभाव महाप्रभु पै न देखहीं।
किये हूँ उपाय कोटि ओटि लै संन्यास लियौ हियौ अकुलायौ अहौ किहूं मोकों पेखहीं॥
जगन्नाथ रथ आगे नृत्य करैं मत्त भये नीलाचल नृप पांय पर्‌यो भाग लेखहीं।
छाती सों लगायौ प्रेमसागर बुड़ायौ भयौ अति मन भायौ दुख देत ये निमेखहीं॥ ४०९॥

श्रीहरिनाथजी

ये दक्षिण देशके रहनेवाले थे। घर धन-सम्पत्तिसे भरा-पूरा था। भगवत्-भागवत-परिचर्या ही इनकी प्रमुख साधना थी। एक बार स्वप्नमें भगवान् श्रीनरनारायणने इनको आदेश दिया कि सब कुछ छोड़कर मेरी सेवामें आ जाओ। इन्होंने भगवदादेश शिरोधार्यकर दूसरे दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रात:काल ही सर्वस्व त्यागकर श्रीबदरिकाश्रमके लिये प्रस्थान कर दिया। वहाँ पहुँचकर मनसा-वाचा-कर्मणा भगवान्‌की सेवामें लग गये। इनकी सेवासे रीझकर भगवान्‌ने इन्हें निज अंग-सेवामें रख लिया।

श्रीगोविन्द ब्रह्मचारीजी

ये बड़े उदारमना, परोपकारी सन्त थे। एक बार एक भक्तको सभी मन्दिरोंमें दर्शन करते हुए तथा आँसू बहाते हुए देखकर इन्होंने दु:खका कारण पूछा तो उसने बताया कि 'मैं घरसे भगवत्सेवा एवं सन्त-सेवाके निमित्त बीस स्वर्ण-मुद्राएँ लेकर चला था। रास्तेमें एक जगह विश्राम कर रहा था। वहीं मेरी सभी मुहरें किसीने चुरा लीं। मेरे मनका मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका। इस बातका मुझे बड़ा दु:ख है।' इन्होंने कहा—'तुम शोक मत करो, जितना धन चाहो, मुझसे लेकर अपना मनोरथ पूर्ण कर लो।' भक्तका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने श्रीगोविन्द ब्रह्मचारीजीसे द्रव्य लेकर अपने मनके अनुसार भगवान्‌को भेंट चढ़ायी और सन्तोंका भोज-भण्डारा किया। उसी रात भगवान्‌ने श्रीगोविन्दजीको स्वप्नमें बताया कि 'भक्तकी मुहरें अमुकने चुरायी हैं।' तब इन्होंने चोरको एकान्तमें बुलाया और विविध प्रकारसे उपदेश दिया। चोरने सब मुहरें लाकर वापस कर दीं और स्वयं भी चोरी छोड़कर भक्त बन गया।

भक्त कविगण

बिद्यापति ब्रह्मदास बहोरन चतुरबिहारी।
गोबिंद गंगा रामलाल बरसानियाँ मंगलकारी॥
प्रियदयाल परसराम भक्त भाई खाटी को।
नंदसुवन की छाप कबित केसव को नीको॥
आसकरन पूरन नृपति भीषम जन दयाल गुन नहिन पार।
हरि सुजस प्रचुर कर जगत मैं ये कविजन अतिसय उदार॥ १०२॥

श्रीहरिके सुन्दर यशका जगत्‌में प्रचार करनेवाले ये कविजन अत्यन्त उदार हुए। इनके नाम ये हैं—श्रीविद्यापतिजी, श्रीब्रह्मदासजी, श्रीबहोरनजी, श्रीचतुर कवि श्रीविहारीजी, श्रीगोविन्द स्वामीजी, श्रीगंगारामजी, जगत्‌का कल्याण करनेवाले बरसाना निवासी श्रीरामलालजी, श्रीप्रियदयालजी, श्रीपरशुरामजी, श्रीभक्त भाईजी, श्रीखाटीकजी, श्रीकेशवाचार्यजी, जो अपनी कवितामें 'नन्दसुवन' की छाप लगाते थे तथा जिनकी कविता बड़ी ही अच्छी होती थी। श्रीआशकरनजी, राजा पूर्णजी, श्रीभीष्मजी, श्रीजनदयालजी, इन सुकवियोंके सद्‌गुणोंका पार नहीं है॥ १०२॥

इनमेंसे कतिपय भक्त सुकवियोंका परिचय संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीगोविन्दस्वामीजी

श्रीगोविन्ददासजीका जन्म व्रजके निकट आँतरी ग्राममें सं० १५६२ वि०में हुआ था। वे ब्राह्मण थे। बाल्यावस्थासे ही उनमें वैराग्य और भक्तिके अंकुर प्रस्फुटित हो रहे थे। कुछ दिनोंतक गृहस्थाश्रमका उपभोग करनेपर उन्होंने घर छोड़ दिया, वैराग्य ले लिया और महावनमें जाकर भगवान्‌का भजन-कीर्तन करने लगे। सं० १५९२ वि०में गोविन्दस्वामीने गोकुल आकर श्रीविट्ठलनाथजीसे ब्रह्मसम्बन्ध ले लिया और उनके परम कृपापात्र और भक्त हो गये।

गोविन्ददास स्वरचित पदोंको श्रीनाथजीके सम्मुख गाया करते थे। उनकी भक्ति सख्य-भावकी थी। वल्लभ-सम्प्रदायमें उन्हें भगवान्‌के सखा श्रीदामाका अवतार माना जाता है। श्रीनाथजी साक्षात् प्रकट होकर उनके साथ खेला करते थे, बाल-लीलाएँ किया करते थे। एक बार गोविन्ददासजी श्रीनाथजीके साथ गुल्ली खेल रहे थे, राजभोगका समय हो रहा था, भगवान् बिना दाँव दिये ही मन्दिरमें चले गये। गोविन्ददासने पीछा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया, श्रीनाथजीको गुल्ली मारी। प्रेमराज्यमें रमण करनेवाले सखाकी भावना मुखिया और पुजारियोंकी समझमें न आयी, उन्होंने उनको तिरस्कारपूर्वक मन्दिरसे बाहर निकाल दिया। गोविन्ददास रास्तेपर बैठ गये; उन्होंने सोचा कि श्रीनाथजी इसी मार्गसे जायँगे, बदला लेनेमें सुविधा होगी। उधर भगवान्‌के सामने राजभोग रखा गया। मित्र रूठकर चले गये, विश्वपतिके दरवाजेसे अपमानित होकर गये थे। भोगकी थाली पड़ी रह गयी, भोग अस्वीकार हो गया। सखा भूखे हों, रूठे हों और भगवान् भोग स्वीकार करें? असम्भव बात थी। मन्दिरमें हाहाकार मच गया, व्रजके रँगीले ठाकुर रूठ गये, उन्हें तो उनके सखा ही मना पायेंगे। विट्ठलनाथजीने गोविन्ददासकी बड़ी मनौती की, वे उनके साथ मन्दिर आ गये। भगवान्‌ने राजभोग स्वीकार किया, गोविन्ददासने भोजन किया, मित्रता भगवान्‌के पवित्र यशसे धन्य हो गयी।

श्रीप्रियादासजी महाराज भगवान्‌की इस लीलाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

गोवर्धन नाथ साथ खेलैं सदा झेलैं रंग अंग सख्य भाव हिये गोविन्द सुनाम है।
स्वामी करि ख्यात ताकी बात सुनि लीजे नीके सुने सरसात नैन रति अभिराम है॥
खेलत हो लाल संग गयौ लौट दाव लैकै मारी खैंचि गिल्ली देखि मन्दिर मैं स्याम है।
मानि अपराध साधु धक्का दै निकारि दियौ मति सो अगाध कैसे जाने वह बाम है॥ ४१०॥
बैठ्यौ कुण्ड तीर जाय निकसैगो आय बन दिये हैं लगाय ताको फल भुगताइयै।
लाल हिय सोच पर्‌यौ, कैसे भर्‌यौ जात वह अर्‌यौ मग मांझ भोग धर्‌यौ पै न खाइयै॥
कही श्रीगुसाईंजी कौं, मोकों ये न भाई कछू चाहौ जो खवावौ तोपै वाकों जा मनाइयै।
वाको हुतो दांव मोपै, सो तौ भाव जान्यो नहीं कही मोसों बातैंसो कुमारै बेगि ल्याइयै॥ ४११॥
बन बन खेले बिन बनत न मोकौं नेकु भनत जु गारी अनगनत लगावैगो।
सुधि बुधि मेरी गई भई बड़ी चिन्ता मोहिं ल्याइये जू ढूंढ़ि कहूं चैन ढिंग आवैगो॥
भोग जे लगाये मैं तो तनक न पाये रिस वाकी जब जाये तव मोहूं कछु भावैगो।
चले उठि धाये नीठ नीठकै मनाय ल्याये मन्दिरमें खाय मिल कही गरे लावैगो॥ ४१२॥

एक दिन गोविन्दसखा शौचके लिये बाहर जंगलमें गये हुए थे। प्रेममें झूमते हुए श्रीकृष्ण भी वहाँ आ गये। वे गोविन्दको मंदारके फलोंसे मारने लगे। इन्होंने भी जब श्रीकृष्णको देखा तो उठकर उन्हीं फलोंसे उनको भी मारा। इस प्रकार श्रीकृष्ण और गोविन्दसखाके बीच अपार कौतुक हुए। उधर जब बहुत देर हो गयी और ये घर नहीं गये, तब इनकी माता ही वहाँ आयीं। उन्हें देखकर श्रीठाकुरजी गोविन्दकी ओटमें छिप गये, इसी बहानेसे गोविन्दकी मारसे बच गये। गोविन्दको देखकर मैयाने कहा—'अरे ओट पाई (उपद्रवी)! तूने इतनी देर कहाँ लगायी।' गोविन्द बिना कुछ बोले मैयाके संग चल पड़े। फिर थोड़ी देर बाद विचार आया कि मैं तो शौच करने बैठा था, परंतु शुद्धि तो की नहीं, तो तुरंत इन्होंने नियमानुसार शरीरकी शुद्धिरूप सदाचार किया। श्रीगोविन्दसखाका श्रीठाकुरजीमें प्रगाढ़ प्रेम था। अतः श्रीठाकुरजीके साथ खेलते समय ये प्रायः लौकिक सदाचार करना भूल ही जाया करते थे।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

गये हे बहिरभूमि तहां कृष्ण आये झूमि करी बड़ी धूम आक बोड़िन सौं मारि कै।
इनहूं निहारि उठि मारि दई वाहीं सों जु कौतुक अपार सख्य भाव रससारि कै॥
माता मग चाहै, बड़ी बेर भई आई तहां कहां बार लाई ओट पाई उरधारि कै।
आयौ यों विचार अनुसार सदाचार कियौ लियो प्रेम गाढ़ कभूं करत सँभारिकै॥ ४१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार पुजारी श्रीनाथजीके लिये राजभोगकी थाली ले जा रहा था; गोविन्ददासने कहा कि पहले मुझे खिला दो, फिर मन्दिरमें ले जाना। यह सुनकर पुजारीको क्रोध हुआ और यह बात पुजारीने गोसाईंजीसे कही। गोंसाईंजीके पूछनेपर गोविन्ददासने सख्यभावके आवेशमें कहा कि 'आपके लाला खा-पीकर मुझसे पहले ही गाय चराने निकल जाते हैं, मुझे बादमें भोजन मिलता है, इसलिये मैं बादमें जाता हूँ तो मुझे इन्हें ढूँढ़ना पड़ता है।' उनका सख्य-भाव देखकर गोसाईंजीने यह व्यवस्था कर दी कि राजभोगके साथ-ही-साथ गोविन्ददासको भी खिला दिया जाय।

गोविन्ददासके इस सख्यभावका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आवत हो भोग महासुन्दर समुन्दिर कौ रह्यौ मग बैठि, कही, आगे मोहिं दीजियै।
भयौ कोप भार, थार डारि, जा पुकार करीं, भरी न अनीति जात सेवा यह लीजियै॥
बोलिकै सुनाई, अहो कहा मन आई? तब बोलिकै बताई अजू बात कान कीजियै।
पहिले जु खाय बनमांझ उठि जाय, पाछे पाऊँ कहाँ धाय सुनि मति रस भीजियै॥ ४१४॥

भगवान्‌को जो जिस भावसे चाहते हैं, वे उसी भावसे उनके वशमें हो जाते हैं। एक समय गोविन्ददासको श्रीनाथजीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे श्यामढाकपर बैठकर वंशी बजा रहे थे। इधर मन्दिरमें उत्थापनका समय हो गया था। गोसाईंजी स्नान करके मन्दिरमें पहुँच गये थे। श्रीनाथजी उतावलीमें वृक्षसे कूद पड़े, उनका बागा वृक्षमें उलझकर फट गया। श्रीनाथजीका पट खुलनेपर गोसाईं विट्ठलनाथने देखा कि उनका बागा फटा हुआ है। बादमें गोविन्ददासने रहस्योद्घाटन किया, गोसाईंजीको साथ ले जाकर वृक्षपर लटका हुआ चीर दिखलाया।

यह देखकर श्रीगुसाईंजीका हृदय भर आया और कहने लगे कि 'धन्य है गोविन्दसखा, जिनके साथ खेले बिना श्रीठाकुरजीका मन ही नहीं मानता।'

गोविन्दस्वामीने गोवर्धनमें एक कन्दराके निकट संवत् १६४२ वि० में लीला-प्रवेश किया।

श्रीविद्यापतिजी

मैथिलकोकिल विद्यापतिने विक्रमकी पन्द्रहवीं सदीमें विसपी ग्राममें जन्म लिया था। इनके पिताका नाम गणपति ठाकुर था। उनका परिवार बिहारके तत्कालीन शासक 'हिन्दूपति' महाराज शिवसिंहके पूर्वजोंका कृपापात्र था और विद्यापतिने तो शिवसिंह और उनकी पटरानी महारानी लक्ष्मी (लखिमा)-के आश्रयमें मिथिलाको अपनी श्रीकृष्ण-भक्ति-सुधासे वृन्दावन बना दिया। अभिनव कृष्ण महाप्रभु चैतन्यदेव और उनकी भक्तमण्डलीके लिये तो कविकण्ठहार विद्यापतिके पद श्रीराधाकृष्णकी मधुर भक्तिके उद्दीपन ही बन गये। महाप्रभु उनके विरह और प्रेमसम्बन्धी पदोंको सुनते जाते थे और साथ-ही-साथ नयनोंसे अनवरत अश्रुकी धारा बहाते थे।

ऐसा कहा जाता है कि विद्यापतिकी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् भोलेनाथ अपना 'उगना' नाम रखकर उनके सेवक बने थे। वह प्रसंग इस प्रकार है—एक बार श्रीविद्यापतिजीके मनमें एक सुयोग्य सेवककी अभिलाषा हुई। बस, उसी क्षण एक गौरवर्ण व्यक्ति इनके पास आया और अपनेको नौकर रख लेनेकी प्रार्थना करने लगा। उसके सुन्दर स्वरूप और मधुर वचनोंने इनके मनको आकृष्ट कर लिया। अतः इन्होंने सहर्ष स्वीकृति दे दी। उसका नाम उगना था। उगना इनकी समस्त सेवाएँ करता। एक दिन ये उगनाको साथ लिये कहीं जा रहे थे। मार्गमें इन्हें प्यास लगी। तब उगनाको जल लानेको कहा। उगना थोड़ी ही दूर जाकर वृक्षोंके झुरमुटमेंसे लोटा भर लाया। इन्होंने जलपान किया तो गंगाजलका-सा स्वाद आया। चकित हो गये कि यहाँ गंगाजल कहाँ? पूछा तो उगनाने कहा—'यहीं पाससे ही लाया हूँ।' उगनाके उत्तरसे संतोष नहीं हुआ। श्रीविद्यापतिने नेत्र बन्दकर किंचित् ध्यान किया। जब नेत्र खोला तो इन्हें उगनाकी जगह भगवान् शिवके दर्शन हुए। ये भगवान् शिवके चरणोंमें लोट-पोट हो गये। श्रीशिवजीकी जटाओंसे गंगाकी धारा बह रही थी। श्रीविद्यापतिजी समझ गये कि सचमुच वह जल किसी अन्य कूप-बावलीका न होकर साक्षात् गंगाजीका ही था। श्रीशिवजीने कहा—'विद्यापतिजी! मुझे आपके साथ रहनेमें बड़ा सुख मिलता है, अतः मैं ही उगनारूपसे आपकी सेवामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह रहा था। अभी भी मैं आपके ही साथ रहना चाहता हूँ, परंतु देखना यह रहस्य किसीसे प्रकट न करना।' इतना कहकर भगवान् शिवजी पुनः उगनारूपमें हो गये, परंतु अब श्रीविद्यापतिजी और उगनामें पहले-जैसा स्वामी-सेवकका भाव नहीं रहा। अब तो यह निर्णय करना कठिन हो गया है कि कौन स्वामी है और कौन सेवक? सेवकके साथ इस प्रकारका बर्ताव श्रीविद्यापतिजीकी पत्नीको अच्छा नहीं लगता। अतः वह उगनासे चिढ़ने लगीं। एक दिन तो किसी कार्यमें किंचित् देर हो जानेपर वे उगनाको जलती हुई लकड़ी लेकर मारने दौड़ीं। यह देखकर श्रीविद्यापतिजीसे रहा नहीं गया। वे बोल ही पड़े—'अरे अधमे! तू मेरे इष्टदेव देवदेव महादेवको मारने दौड़ रही है।' पत्नी तो जहाँकी तहाँ रुक गयी; परंतु उगना अन्तर्धान हो गया। विद्यापतिजीको उगनाका वियोग व्याप गया। उस समय इन्होंने यह पद गाया—*उगना रे मोर कतए गेला।*

श्रीब्रह्मदासजी

श्रीब्रह्मदासजी श्रीराधा-कृष्ण युगलसरकारके अनन्य भक्त थे। आप अपनी कवितामें सदैव श्रीकृष्ण-लीलाका ही गान करते थे। जन-समाजमें आपकी कविताका बड़ा आदर था। आपका परमोत्कर्ष एक प्राकृत कविसे सहा नहीं गया। उसने आकर आपसे व्यर्थका विवाद ठाना कि यदि काव्यकी कसौटीपर कसा जाय तो मेरी कविता किसी भी दृष्टिसे आपकी कवितासे हीन नहीं है। यदि कोई त्रुटि मेरी कवितामें हो तो आप ही बतलायें। श्रीब्रह्मदासजीने कहा—तुम और हम दोनों अपनी-अपनी रचनाएँ कागजपर लिखकर अग्निमें डाल दें। जिसकी रचना शाश्वत होगी, वह नहीं जलेगी; जिसकी नाशवान् होगी, वह भस्मसात् हो जायगी। प्राकृत कवि आपके इस कथनपर सहमत हो गया। फिर क्या था, दोनों कवियोंने अपनी-अपनी रचनाएँ अग्निदेवताको समर्पित कीं। हजारों लोगोंने देखा कि उस प्राकृत कविकी रचनाएँ तो अग्निकी लपटमें स्वाहा हो गयीं और ब्रह्मदासजीकी रचनाओंपर आँच भी नहीं आयी, यह चमत्कार देखकर वह प्राकृत कवि हार मान गया और श्रीब्रह्मदासजीके शरणागत होकर स्वयं भी श्रीकृष्ण-लीला-गुणका ही गान करने लगा।

श्रीकेशवाचार्यजी

श्रीकेशवाचार्यजीके पिताका नाम श्रीमोहनमिश्र एवं माताका नाम भागवती देवी था। ये सनाढ्य ब्राह्मण और परम भागवत थे। इन्होंने गार्हस्थ्यमें अपनी अनिच्छा प्रकट की। तब पिता श्रीमोहनमिश्रने बालकका संसारसे वैराग्य एवं श्रीप्रभुचरणोंमें परम अनुराग देखकर भगवत्प्राप्तिका आशीर्वाद प्रदान किया।

ये पिता-माताको प्रणामकर श्रीवृन्दावनके लिये चल पड़े। श्रीवृन्दावन पहुँचनेपर इनका ऐसा प्रेम उमड़ा कि प्रभु-दर्शनके बिना इनका एक-एक क्षण युगके समान बीतने लगा। तब श्रीप्रभुकी प्रेरणासे श्रीज्ञानदेवजीने इन्हें मन्त्र-दीक्षा देकर श्रीनिकुंजबिहारी प्रिया-प्रियतमका दर्शन कराया और श्रीगोवर्धनकी तलहटीमें निवास करके भजन करनेकी आज्ञा दी। यह आशीर्वाद भी दिया कि श्रीहरिदेवजी तुमपर प्रसन्न होकर प्रकट होंगे।

श्रीगुरुदेवजीकी आज्ञा शिरोधार्यकर श्रीकेशवाचार्यजीने श्रीगोवर्धनजीका आश्रय लिया। श्रीगिरिराज गोवर्धनजीमें आपका ऐसा अनुराग हुआ कि आपने स्वरचित 'गोवर्धन-शतक' में लिखा है कि '**गोवर्द्धनात्किञ्चिदहं न जाने।**' अर्थात् श्रीगोवर्धनजीसे परे हम और किसीको नहीं जानते हैं। इस निष्ठाके फलस्वरूप श्रीश्यामसुन्दर नित्य निकट रहते, लीला दिखाते और रसमय वार्तालाप करते। एक दिन भगवान्ने कहा कि 'मेरा एक श्रीविग्रह विछुआ कुण्डके निकट खेतकी मेड़में है, उसे प्रकट करो।'

भगवान्की आज्ञा पाकर श्रीकेशवाचार्यजीने लोगोंको एकत्रित करके विछुवा कुण्डपर वह स्थान बताया, जहाँ श्रीविग्रह था। खोदनेपर श्रीहरिदेवजीकी परम सुन्दर मूर्ति दिखायी पड़ी। प्रेममग्न श्रीआचार्यजीने जैसे ही उसका स्पर्श किया कि भगवान् छातीसे आ लगे। श्रीकेशवाचार्यजी श्रीहरिदेवजीको अपनी पर्णकुटीमें ले आये और पधराकर सात्त्विक भावसे सेवा करने लगे।

श्रीपूर्णसिंहजी

श्रीपूर्णसिंहजी परम सदाचारी, वीर एवं महान् भगवद्भक्त थे। श्रीठाकुरजी आपके इष्टदेव थे। ये आमेर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरेश श्रीपृथ्वीराजजीके पुत्र थे। उनकी माताका नाम पदारथ देवी था। कविहृदय, परम भागवत श्रीपूर्णसिंहजी नित्य नूतन पद रचकर अपने श्रीठाकुरजीको सुनाते। श्रीठाकुरजीको भी इनके पदोंको सुननेमें बड़ा सुख मिलता। यदि कभी किसी कार्यविशेषकी व्यस्ततामें श्रीपूर्णसिंहजी पद नहीं सुना पाते तो श्रीठाकुरजी स्वप्नमें इनसे पद सुनानेका अनुरोध करते। दो-एक बार इस प्रकारका प्रसंग प्राप्त होनेपर इन्होंने दृढ़ नियम बना लिया था पद सुनानेका। बहुत समयतक नियम अक्षुण्ण रूपसे चलता रहा। परंतु एक बार किसी राज्यकार्यवश इन्हें पद सुनानेका ध्यान नहीं रहा। जब कार्यसे फुरसत मिली तो श्रीठाकुरजीका दर्शन करने मन्दिरमें गये। परंतु वहाँ इन्हें श्रीठाकुरजीका श्रीविग्रह ही नहीं दिखायी पड़ा। पुजारीसे पूछा—श्रीठाकुरजीकी प्रतिमा कहाँ गयी? पुजारीने कहा—'प्रतिमा तो सिंहासनपर ही विराजमान है।' श्रीपूर्णसिंहजीकी समझमें नहीं आ रहा था कि आखिर मुझे क्यों नहीं दर्शन हो रहा है! बहुत विचार करनेके बाद याद आयी कि मैंने श्रीठाकुरजीको आज पद नहीं सुनाया। फिर तत्काल पद सुनाने लगे तो श्रीठाकुरजी भी मन्द-मन्द मुसकराते हुए इन्हें दर्शन देने लगे।

श्रीमथुरामण्डलके भक्त

रघुनाथ गोपीनाथ रामभद्र दासूस्वामी।
गुँजामालि चित उतम बिठल मरहठ निहकामी॥
जदुनंदन रघुनाथ रामानँद गोबिंद मुरली सोती।
हरिदास मिश्र भगवान मुकुँद केसव दंडौती॥
चतुर्भुज चरित बिष्णुदास बेनी पद मो सिर धरौ।
जे बसे बसत मथुरा मँडल (ते) दयादृष्टि मो पर करौ॥ १०३॥

जो भक्तजन पहले श्रीमथुरामण्डल (चौरासी कोस)-में निवास करते थे एवं जो अब वर्तमानमें निवास कर रहे हैं, वे मेरे ऊपर दयाकी दृष्टि रखें। उनमेंसे कुछके नाम ये हैं—श्रीरघुनाथजी, श्रीगोपीनाथजी, श्रीरामभद्रजी, श्रीदासूस्वामीजी, श्रीगुंजामालीजी, श्रीचितउत्तमजी, श्रीबीठलजी, परम निष्काम श्रीमरहठजी, श्रीयदुनन्दनजी, श्रीरघुनाथजी, श्रीरामानन्दजी, श्रीगोविन्दजी, श्रीमुरली श्रोत्रियजी, श्रीहरिदासमिश्रजी, श्रीभगवान्‌जी, श्रीमुकुन्दजी, श्रीदण्डौती केशवजी, श्रीचतुर्भुजजी, श्रीचरित्रजी, श्रीविष्णुदासजी, श्रीबेणीजी आदि। श्रीनाभाजी इन भक्तोंसे प्रार्थना करते हैं कि हे भक्तजनो! आपलोग अपना पद-कमल मेरे सिरपर रख दें॥ १०३॥

इनमेंसे कतिपय भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीगुंजामालीजी और उनकी पुत्रवधू

श्रीगुंजामालीजी नामके एक सन्त हो गये हैं, ये गुंजाकी माला प्रभुको पहनाते तथा स्वयं पहनते थे। अतः इनका गुंजामाली नाम ही पड़ गया। ये पहले लाहौरमें निवास करते थे। इनकी पुत्रवधू विधवा हो गयी थी। एक दिन उसे बुलाकर इन्होंने कहा—'देखो, यह तुम्हारे पतिका घर है और धन-माल है, इसे लो तथा श्रीगोपालजीको लो। अब तो श्रीगोपालजी ही तुम्हारे पति हैं।' परंतु इनकी पुत्रवधू तो बार-बार यही माँगती कि हमें श्रीप्रभुकी सेवा ही प्रदान कीजिये।

श्रीगुंजामालीजीने पुत्रवधूकी निष्ठा देखकर उसे श्रीगोपालजीकी सेवा प्रदान की और घर तथा धन अपनी पत्नीको दिया एवं स्वयं आकर श्रीवृन्दावनमें रहने लगे।

जहाँपर श्रीगुंजामालीजीकी पुत्रवधूके श्रीठाकुरजी श्रीगोपालजी विराजते, वहाँ पास-पड़ोसके और लोगोंके बालक खेलते। वे परस्पर एक-दूसरेपर ईंट, धूल, मिट्टी आदि डालते। ठाकुरजी भी बालकोंके साथ खेलते थे। एक दिन बालकोंने श्रीठाकुरजीपर भी धूल डाल दी। तब वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालकोंपर बहुत नाराज हुई और उसने उन्हें वहाँसे भगा दिया। इसके बाद उसने श्रीठाकुरजीके लिये भोग रखा। परंतु श्रीठाकुरजीने भोग नहीं आरोगा। जब इसने पूछा कि 'जै जै, आप भोग क्यों नहीं आरोग रहे हैं' तब श्रीठाकुरजीने कहा—'जब बालक आयेंगे, तभी मुझे प्रसन्नता होगी और भोग आरोगूँगा।' तब उसने प्रणयकोप करके कहा—'अभी खा लो, प्रात:काल खूब अच्छी तरह आपके ऊपर धूल डाल दूँगी और उन बालकोंसे भी डलवा दूँगी।' इतनेपर भी जब नहीं पाये तो जैसे-तैसे उन बालकोंको बुला लायी, तब श्रीठाकुरजी प्रसन्न हुए और भोग पाये।

श्रीप्रियादासजीने गुंजामालीजीकी पुत्रवधूके इस श्रीकृष्ण-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

कही नाभा स्वामी आप गायौं मैं प्रताप सन्त बसे व्रज बसैं सो तौ महिमा अपार है।
भये गुंजामाली गुंजाहार धारि नाम पर्‌यौ कर्‌यौ बास लाहौर मैं आगे सुनौ सार है॥
सुत बधू विधवा सों बोलिकै सुनायौ लेहु धन पति गेह श्रीगोपाल भरतार है।
देवौ प्रभु सेवा माँगै नारि बार-बार यहै डारै सब वारि यापै गनै जगछार है॥ ४१५॥
दई सेवा वाहि और घर धन तिया दियो लियौ व्रजवास वाकी प्रीति सुनि लीजियै।
ठाकुर विराजैं तहाँ खेलैं सुत औरनिके डारैं ईंटा खोहा पर्‌यौ प्रभु पर खीझियै॥
दिये वे विडारि धर्‌यौ भोग पै न खात हरि पूछी कही वेई आवैं तब ही तौ जीजियै।
कह्यौ रिस भरि धूरि नीकी भोर डारै भरि खावौ अब हा हा करी पायौ ल्याई रीझियै॥ ४१६॥

श्रीकेशवजी दण्डौती

व्रजमण्डलके भक्तजनोंमें श्रीकेशवजी दण्डौतीका नाम अग्रगण्य है। आप हमेशा श्रीगोवर्धनजीकी दण्डवती परिक्रमा करते रहते थे, अत: आपके नामके साथ दण्डवतीकी छाप लग गयी थी। एक बार आप कीर्तन करते हुए श्रीगोवर्धनजीकी दण्डवती परिक्रमा लगा रहे थे। रात्रि हो गयी थी। उसी समय श्रीठाकुरजी एक हट्टे-कट्टे साधुके रूपमें आकर इनसे बोले—'मैं भी आपके साथ कीर्तन करते हुए परिक्रमा करूँगा।' श्रीकेशवजीने स्वीकृति दे दी। परंतु जब ये दण्डवत् करने लगे तो साधुरूपधारी भगवान्‌ने इन्हें आगे सरका दिया। यह देखकर श्रीकेशवजी नाराज हुए और बोले—'तू कौन है? कहाँसे आया है? तू मेरी परिक्रमा खण्डित कर रहा है। तेरी बुद्धिमें अधर्म समाया हुआ है।' साधुरूपधारी भगवान् बोले—'अधर्म तो आप स्वयं करते हैं और उलटे दोष मुझे लगाते हैं? अरे! आपको मालूम है कि पृथ्वीको भूधर (विष्णु)-की पत्नी कहते हैं और आप रात्रिके समय परस्त्रीका आलिंगन करते हैं, यह कितना बड़ा अधर्म है?' श्रीकेशवजीने कहा—'पृथ्वी हमारी माता है। अत: उनकी गोदमें विचरनेसे हमें कोई दोष नहीं है।' यह मुँहतोड़ उत्तर सुनकर साधुरूपधारी भगवान् मुसकराने लगे और प्रसन्न होकर उन्होंने निजस्वरूपका दर्शन कराया।

श्रीचतुर्भुजदासजी

श्रीचतुर्भुजदासका जन्म सं० १५७५ वि० में जमुनावतो ग्राममें हुआ था। वे पुष्टिमार्गके महान् भगवद्भक्त महात्मा कुम्भनदासजीके सबसे छोटे पुत्र थे। कुम्भनदासजीके सत्प्रयत्नसे गोसाईं विट्ठलनाथजीने चतुर्भुजदासको जन्मके इकतालीस दिनोंके बाद ही ब्रह्म-सम्बन्ध दे दिया था। वे बाल्यावस्थासे ही पिताकी देखा-देखी पद-रचना करने लगे थे, घरपर अनासक्तिपूर्वक रहकर खेती-बारीका भी काम सँभालते थे। श्रीनाथजीकी सेवामें उनका मन बहुत लगता था। बाल्यावस्थासे ही भगवान्‌की अन्तरंग लीलाओंकी उन्हें अनुभूति होने लगी थी, उन्हींके अनुरूप वे पद-रचना किया करते थे। उनकी काव्य और संगीतकी निपुणतासे प्रसन्न होकर श्रीविट्ठलनाथजीने उनको अष्टछापमें सम्मिलित कर लिया था।

श्रीनाथजीमें उनकी भक्ति सखाभावकी थी। भगवान् उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर साथमें खेला करते थे। श्रीवल्लभ-सम्प्रदायमें आपको श्रीनाथजीके नित्य सखा 'विशाल' का अवतार माना जाता है।

श्रीबेनीजी

श्रीबेनीजी भगवान्‌के अनन्य भक्त थे, उन्हें उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त दूसरी गति नहीं थी। एक बार इन्हें कोई असाध्य रोग हो गया। लोगोंने बहुत कहा औषधि-उपचार करने-करानेको। लेकिन इन्होंने एक नहीं सुनी। अन्ततोगत्वा स्वयं भगवान् ही वैद्य बनकर आये और इनका उपचार किया। इनका रोग तो भगवान्‌के दर्शन-स्पर्शसे ही दूर हो गया।

कलियुगकी भक्त नारियाँ

सीता झाली सुमति सोभा प्रभुता उमा भटियानी।
गंगा गौरी कुँवरि उबीठा गोपाली गनेसदे रानी॥
कला लखा कृतगढ़ौ मानमति सुचि सतिभामा।
जमुना केली रामा मृगा देवा दे भक्तन बिश्रामा॥
जुगजीवा की कमला देवकी हीरा हरिचेरी पोषे भगत।
कलिजुग जुबती जन भक्तराज महिमा सब जानै जगत॥ १०४॥

इस कलियुगमें भी ये युवतीजन (माताएँ) भक्तराज हुईं। इनकी महिमा सारा संसार जानता है। इनके नाम ये हैं—श्रीसीतासहचरीजी, श्रीझालीजी, श्रीसुमतिजी, श्रीशोभाजी, श्रीप्रभुताजी, श्रीउमा भटियानीजी, श्रीगंगाजी, श्रीगौरीजी, श्रीकुँवरिजी, श्रीउबीठाजी, श्रीगोपालीजी, रानी श्रीगणेशदेईजी, श्रीकलाजी, श्रीलखाजी, श्रीकृतगढ़ौजी, श्रीमानमतीजी, परम साध्वी श्रीसत्यभामाजी, श्रीयमुनाजी, श्रीकोलीजी, श्रीरामाजी, श्रीमृगाजी, श्रीदेवाजी, दोनों जेवाजी, श्रीकीकीजी, श्रीकमलाजी, श्रीदेवकीजी, श्रीहीराजी, श्रीहरिचेरीजी। ये सब भक्ताएँ भक्तोंको विश्राम देनेवाली तथा सब प्रकारसे उनका पालन-पोषण करनेवाली हुईं॥ १०४॥

इनमेंसे कतिपय भक्त नारियोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

रानी श्रीगणेशदेईजी

महाराजा मधुकरशाहजी ओरछा देशके राजा थे। इनकी रानीका नाम गणेशदेई था। इनके यहाँ बहुतसे सन्त आते और ये उनकी अनेक प्रकारसे सेवा करते। खान-पानका सुख देखकर एक साधु बहुत दिन इनके यहाँ रह गया। एक दिन महलमें नितान्त अकेली देखकर उसने रानी गणेशदेईजीसे पूछा कि 'बताओ धन (मुहरों-जवाहरातों)-की थैलियाँ कहाँ हैं?' इन्होंने कहा कि यदि मेरे पास धनकी थैलियाँ हों तो बताऊँ। जब हैं ही नहीं तो क्या बताऊँ। तब उस साधु-वेषधारीने श्रीगणेशदेई रानीकी जाँघमें छुरी मार दी। खूनकी धारा बह चली। रक्तका प्रवाह देखकर वह तुरंत भाग गया। रानीको सोच हुआ कि कहीं राजा इस घटनाको जान जायेंगे तो साधु सेवा बन्द कर देंगे, अतः घावपर कसकर पट्टी बाँध ली और पौढ़ रहीं। उन्होंने किसीसे भी यह बात नहीं कही। जब राजा मधुकरशाहजी इनके पास आये तो इन्होंने कहा कि 'मेरे पास मत आइये। इस समय मुझे मासिक धर्म हुआ है।' तीन दिन बीतनेपर भी रानीको शय्यापर ही पड़ी देखकर राजा समीप जाकर बोले—हे प्रवीणे! तुम मुझसे व्यथाका सब रहस्य खोलकर कहो। तब भी रानीने दो-चार बार इस प्रसंगको टरकाया, परंतु इससे राजाका विचार और भी दृढ़ हो गया कि अवश्य ही इन्हें कोई नयी व्यथा है। अतः बारम्बार बतानेका आग्रह किया। तब रानीने कहा कि 'मैं बता तो दूँ, परंतु आप जानकर मनमें सन्तोंके प्रति सन्देह नहीं करना।' इसके बाद रानीने सब बात बता दी। तब रानीकी अपार सन्त-निष्ठा देखकर राजा बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने पति-पत्नी भावकी लज्जा और संकोचको छोड़कर, भक्तिका प्रभाव विचारकर अपनी रानी गणेशदेईकी परिक्रमा की और पृथ्वीपर पड़कर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने रानी गणेशदेईकी इस सन्त-निष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

मधुकर शाह भूप भयो देश ओड़छे कौ रानी सो गनेसदेई काम बाँको कियो है।
आवैं बहु सन्त सेवा करत अनन्त भांति रह्यौ एक साधु खान पान सुख लियो है॥
निपट अकेली देखि बोल्यौ धन थैली कहाँ? होय तौ बताऊँ सब तुम जानौ हियौ है।
मारी जांघ छुरी लखि लोहू बेगि भागि गयौ भयौ सोच जानै जिनि राजा बंद दियौ है॥ ४१७॥
बांधि नीकी भांति पौढ़ि रही कही काहू सों न आयो ढिग राजा मति आवौ तिया धर्म है।
बीते दिन तीन जानी बेदन नबीन कछु कहिये प्रबीन मोसों खोलि सब मर्म है॥
टारी बार दोय चारि नृप के विचार पर्‌यौ कर्‌यौ समाधान जिन आनौ जिय भर्म है।
फिर्‌यौ आस पास भूमि पर तन रासकरी भक्तिकौ प्रभाव छांड़ि तिया पति सर्म है॥ ४१८॥

श्रीझालीरानीजी

ये चित्तौड़गढ़की रानी और श्रीरैदासजीकी शिष्या थीं। सन्तोंमें इनकी बड़ी निष्ठा थी। एक बार इनके यहाँ सन्तोंकी एक जमात आयी। जमातमें इनके एक गुरुभाई भी आये हुए थे। इनके मनमें दर्शनोंकी बड़ी अभिलाषा थी। परंतु राणा साहबने दर्शनार्थ जानेकी अनुमति तो नहीं ही दी, उलटे द्वार-द्वारपर पहरा लगा दिया कि रानी महलसे बाहर निकलने न पायें और कोई साधु महलके भीतर न आने पाये। यदि कोई आया-गया तो पहरेदारोंको शूलीपर चढ़ा दिया जायेगा। इस सख्त हुक्मसे सभी पहरेदार अत्यन्त चौकन्ने होकर पहरा दे रहे थे। इधर रानीके मनमें दर्शनकी छटपटी लगी। अतः यह सन्तोंके श्रीचरण-कमलोंका स्मरण करती हुई प्रेमावेशमें अकेली महलसे निकल पड़ीं सन्तोंके दर्शनके लिये। भगवदिच्छा एवं सन्तोंकी कृपासे कोई भी पहरेदार रानीको जाते हुए देख नहीं सका। रानीने बड़े सुखसे सन्तोंका दर्शन किया और खूब भोग-भण्डारा, भेंट-पूजासे सन्तोंका सम्मान किया। उधर राजाको पता चला कि रानी तो महलसे निकलकर सन्तोंकी जमातमें चली गयीं तो उन्हें पहरेदारोंपर बहुत क्रोध आया। आकर उनको बहुत डाँट लगायी और बोले—'अच्छा, जो हुआ सो हुआ, अब खबरदार, रानी महलमें घुसने नहीं पायें। यदि अबकी असावधानी हुई तो किसीके भी प्राण नहीं बचेंगे।' राणा साहब पहरेदारोंको सावधानकर स्वयं भी बड़ी सतर्कतापूर्वक देखभाल करने लगे। परंतु रानी तो जैसे गयी थीं, वैसे ही पुनः महलमें आ भी गयीं और कोई देख नहीं पाया। जब राणा साहबको रानीके महलमें पहुँचनेका समाचार मिला तो उनकी आँखें खुल गयीं कि यह तो प्रत्यक्ष भक्तिका चमत्कार है। फिर तो रानीके साथ राणा साहब भी भगवत्-भागवत सेवामें जुट गये।

श्रीशोभाजी

सन्त-सेवापरायणा श्रीशोभाजी अपने देवर-देवरानीके साथ रहती हुई निरन्तर भजन-साधनमें लगी रहती थीं। इनका देवर तो इनकी भक्ति-भावनासे सन्तुष्ट था, परंतु देवरानी सदा कुढ़ा करती थी। एक बार उसने इनपर कंकण-चोरीका आरोप लगाया और फिर वह अपने पतिके कान भरने लगी कि रोज साधुओंको बुला-बुलाकर हलवा-पूरी खिलाती हैं। एक जाते हैं तो दो साधु आते हैं। आप निश्चय मानिये, इन्होंने कंकण बेचकर साधुओंको खिला दिया है। देवरानीका यह झूठा आरोप सुनकर श्रीशोभाजीको बड़ा दुःख हुआ। इन्होंने भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'प्रभो! यह झूठा कलंक आप दूर करो।' प्रभुकृपासे शोभाजी जब सोकर उठीं तो उसने कंकणको खाटपर पाया।

श्रीप्रभुताजी

ये भक्तवर श्रीरैदासजीकी धर्मपत्नी थीं। श्रीरैदासजीकी तरह इनकी भी सन्तोंके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। एक दिन घरपर सन्त आये, परंतु घरमें एक मुट्ठी अन्न भी नहीं था। श्रीरैदासजीको बड़ा शोच हुआ। पतिको शोचग्रस्त जानकर श्रीप्रभुताजीने धैर्य बँधाया और तुरंत अपनी सासके पास जाकर बोलीं कि 'मुझे कहीं बाहर जाना है, थोड़ी देरके लिये आप अपना हमेल (गलेमें पहननेका एक आभूषण) हमें दे दीजिये। मैं अभी लाकर वापस कर दूँगी।' सास इनकी बातमें आ गयी और अपना हमेल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे दिया। इन्होंने वह हमेल श्रीरैदासजीको देकर कहा कि 'शीघ्र इसे बेचकर सन्तोंकी सेवा कीजिये।' श्रीरैदासजीने ऐसा ही किया। उधर जब बहुत देर होनेपर भी प्रभुताजीने हमेल वापस नहीं लौटाया तो उसकी सासको खलबली पड़ी। उसने पूछताछ करवायी तो पता चला कि हमेल तो बिककर सन्त-सेवामें लग गया। तब तो वह बहुत ही नाराज हुई और उसने श्रीप्रभुताको कोठेमें बन्द कर दिया। बिना अन्न-जलके प्रभुताजी रातभर कोठेमें बन्द रहीं। प्रातःकाल भगवान् श्रीरैदासजीका रूप धरकर हमेल ले आये। जब सासको हमेल मिल गया, तब उसने श्रीप्रभुताजीको छोड़ा। घर आकर श्रीप्रभुताजीने पतिसे पूछा कि हमेल कैसे छुड़ा लाये ? पैसा इतनी जल्दी कहाँ मिला ? श्रीरैदासजीने कहा कि हमें न तो कहींसे पैसा ही मिला, न हमने हमेल ही छुड़ाया, न दिया। कैसी बात कर रही हो ? तब श्रीप्रभुताजी समझ गयीं कि मेरे पतिके रूपमें साक्षात् परमात्माने ही हमेल छुड़ाकर हमें बन्धनसे मुक्त किया। उस दिनसे श्रीरैदासजी और उनकी पत्नीकी सन्त-सेवामें और भी निष्ठा हो गयी।

श्रीउमा भटियानीजी

श्रीउमा भटियानीजी जैसलमेरके राजाकी कन्या और जोधपुरके राव मालदेवकी रानी थीं। आपमें बचपनसे हरिभक्तिके दिव्य संस्कार थे। विवाहके पश्चात् पहले-पहल जब पति-दर्शनार्थ उनके भवनमें गयीं, तो इन्हें वहाँ एक मनचली दासी दिखलायी पड़ी। इससे आप अपने पतिसे रूठ गयीं और उन्हें प्रणाम करके चली आयीं। आपने निश्चय किया कि अपने पिताके घर रहकर ही हरि-भजनमें जीवन बिताऊँगी। आपकी भक्तिसे प्रभावित होकर संवत् १६०४ में आसवदासजी चारणको राजाने मनानेके लिये भेजा। आपके भजनमें बाधा न होगी, ऐसा पूरा आश्वासन प्राप्तकर आप पालकीमें बैठकर जोधपुर चलीं। मार्गमें विश्रामस्थलपर किसी चारणने यह दोहा कहा—***'मान रखे तो पीव तज, पीव चहे तज मान। दो-दो गयन्द न बँधहीं एकहि कम्बू ठान॥'*** यह सुनकर आप उसी स्थानपर रह गयीं। पिता एवं पति दोनोंकी ओरसे आपको सद्भाव प्राप्त रहा। एकान्तमें भजनके अतिरिक्त किसीसे आपने व्यवहार नहीं रखा। संवत् १६१९ में राजा मालदेवके मरनेपर लौकिक, वैदिक प्रथाके अनुसार आप सती हो गयीं। इतिहासमें आपके पवित्र जीवन एवं भगवत्प्रेमकी महती प्रशंसा है।

श्रीगौराबाईजी

श्रीगौराबाई सन्तसेवी भक्ता थीं। एक बार आपके यहाँ कई सिद्ध-सन्त एक साथ पधारे। श्रीगौराबाईने बड़े प्रेमभावसे उनकी सेवा की। उस दिन सत्संगमें उन सन्तोंने श्रीकृष्णकी बाललीलाओंका वर्णन करते हुए कहा कि—जो प्रभु अमलात्मा योगीन्द्र मुनीन्द्रोंके ध्यानमें सहसा नहीं आते, उन्होंने प्रेमपरवश होकर यशोदाका स्तन-पान किया और उन्हें अपनी मधुर बाललीलाओंसे परमसुख प्रदान किया। इस कथाको श्रवणकर श्रीगौराबाईने कहा—'धन्य हैं श्रीयशोदाजी, जिनका स्तन-पान करके श्यामसुन्दरको तुष्टि-पुष्टि प्राप्त हुई।' सन्तोंने कहा—धन्यवादके योग्य प्रेम है, आज भी यदि किसीको प्रेम हो तो प्रभु बालक बनकर उसका पयःपान कर सकते हैं। वात्सल्य-रसमयी श्रीगौराजीके मनमें भगवान्‌को स्तन-पान करानेकी बलवती इच्छा जाग्रत् हो उठी। इनके परम प्रेमको देखकर रातमें स्वयं भगवान् बालरूप धारणकर श्रीगौराबाईका स्तन-पान करने लगे। पयःपानसे सन्तुष्ट होकर बालगोविन्द किलकारी मारने लगे। भगवान्‌को स्तन-पान कराकर गौराबाई प्रेममग्न हो गयीं। कुछ देर बाद बालमुकुन्द भगवान्‌ने उन्हें अचेत देखकर रुदन आरम्भ कर दिया। श्रीगौरादेवी उन्हें गोदमें लेकर चुप करानेकी इच्छासे उठीं। बालकके रुदनसे सन्त लोग जग गये। घटनाका विवरण ये सन्तोंसे कहना चाहती थीं, तभी उनकी गोदसे शिशु श्यामसुन्दर अन्तर्धान हो गये, बाईके स्तनोंसे अब भी दूध टपक रहा था। विरहसे व्यथित भक्ताको सन्तोंने धैर्य दिलाया और भाग्यकी प्रशंसा करके कहा—'तुम्हारा सच्चा प्रेम देखकर प्रभुने तुम्हारी अभिलाषा पूरी कर दी।'

श्रीकलाबाईजी

श्रीकलाबाईजीकी श्रीगुरुगोविन्दके चरणोंमें अपार श्रद्धा थी। एक बार आपको समाचार मिला कि गुरुदेव पधार रहे हैं। आपके मनमें परम सुख हुआ। परंतु थोड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही देरमें श्रीबाईजीको समाचार मिला कि—'गुरुदेव तो जमातके साथ इस गाँवकी ओर न आकर आगेके गाँवमें पहुँच गये।' यह सुनते ही श्रीकलाबाईजीको आवेश आ गया। स्तन-पान करते हुए शिशुको पालनेमें छोड़कर गुरुदर्शनार्थ दौड़ीं। पाँच कोसकी दौड़ लगानेपर श्रीगुरुदेवके दर्शन हुए। उनके चरणोंमें प्रणामकर दर्शन-सत्संगकर इन्हें परम सन्तोष हुआ। तबतक रात हो गयी। वहाँसे घरको वापस लौटना असम्भव जानकर आप रातको वहाँ ही रह गयीं। रातको सहसा आपके मनमें शिशुका स्मरण आया। उसे क्षुधित अनुमानकर वात्सल्यवश स्तनोंसे दुग्धकी धार बहने लगी। आपका हृदय व्याकुल हो उठा। कुछ तन्द्रा-सी आनेके बाद जब आप सचेत हुईं तो आपने देखा कि एक बालक साथ ही लेटा हुआ स्तन-पान कर रहा है। उठकर उजालेमें देखकर पहचाना तो वह अपना वही पुत्र था, जिसे वे पालनेमें छोड़ आयीं थी। इस चमत्कारको देखकर सभी लोगोंके मनमें श्रीकलाबाईके प्रति अपार श्रद्धा एवं गुरुगोविन्दकी भक्तिमें दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो गया।

श्रीजीवाबाईजी

श्रीजीवाबाईजी भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य भक्त थीं। एक बार इनके पुत्रको शीतला निकलीं। लोगोंने शीतला देवीकी मान्यता-पूजाका आग्रह किया। पतिदेवने भी विशेष जोर दिया। पर आपने किसीकी एक न मानी। अपने इष्टदेव श्यामसुन्दरका ही स्मरण करती रहीं। पतिदेवने क्रोधित होकर कहा कि—'कहना नहीं मान रही हो, यदि बालक मर गया तो तुझे भी मैं जीवित ही जला दूँगा।' श्रीजीवाजीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, क्योंकि उन्हें भगवान्में अटूट विश्वास था। वे जीवन-मरणके मोहमें नहीं थीं। बालककी दशा बिगड़ती गयी और अन्तमें उसका प्राणान्त हो गया। पतिने तरह-तरहकी खरी-खोटी सुनायी। श्रीजीवाजीने बिना किसी विषादके श्मशानमें जाकर चिता तैयार की और मृत बालकको गोदमें लेकर जलनेके लिये चितापर बैठ गयीं। ऐसा करनेसे सभी लोगोंने और स्वयं पतिदेवने भी मना किया, परंतु अपने पतिदेवके प्रथम वाक्यको सत्य करनेका निश्चय करके जीवित ही जलना चाहा। ऐसी आपकी दृढ़ताको देखकर प्रभु प्रसन्न हो गये और गोदका बालक जीवित हो गया।

श्रीजेवासीजी

जेवासीजी श्रीलाखा भक्तकी धर्मपत्नी थीं। आप सर्वदा अपने पतिदेवकी रुचिके अनुसार ही सन्तोंकी खूब सेवा करती थीं। जब श्रीलाखाजीने जगन्नाथजीकी यात्रा की, उस समय आपने घरपर रहकर श्रीलाखाजीसे भी अच्छी सन्त-सेवा की।

श्रीकीकीजी

आप जाड़ामेरुकी पुत्री एवं लाखाचारणकी पत्नी थीं। सं० १६०० में अकाल पड़नेपर पूर्वजोंकी सम्पत्तिमेंसे खूब धन बाँटा। भगवत्कृपासे धनकी विशेष वृद्धि हुई। आपके भक्तिके प्रभावको देखकर सभी लोग भक्तिनिष्ठ हो गये। इनके पुत्र श्रीनरहरिदासजी चारण हुए। माताके प्रभावसे ये भी भक्त हुए और इन्होंने वि० सं० १७८७ में 'अवतारचरित' नामक ग्रन्थकी रचना की।

श्रीहरिके सम्मत भक्त

नरबाहन बाहन बरीस जापू जैमल बीदावत।
जयंत धारा रुपा अनभई ऊदारावत॥
गंभीरा अर्जुन्न जनार्दन गोबिंद जीता।
दामोदर साँपिले गदा ईस्वर हेमबिदीता॥
मयानंद महिमा अनँत गुढिले तुलसीदास।
हरि के संमत जे भगत ते दासनि के दास॥ १०५॥

श्रीनरवाहनजी, श्रीवाहन वरीसजी, श्रीजापूजी, श्रीजयमलजी, श्रीबीदावतजी, श्रीजयन्तजी, श्रीधाराजी, श्रीरूपाजी, श्रीअनुभवीजी, श्रीऊदारावतजी, श्रीअर्जुनजी (गम्भीरे), श्रीजनार्दनजी, श्रीगोविन्दजी, श्रीजीताजी, साँपले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामवासी श्रीदामोदरजी, श्रीगदाजी, श्रीईश्वरजी, श्रीहेमबिदी-ताजी, श्रीमयानन्दजी और गुढ़ीले ग्रामवासी श्रीतुलसीदासजी। इन सभी सन्तोंकी महिमा अनन्त है। जो भक्त सदा भगवान्के मतसे सहमत हैं, मैं उनके दासोंका दास हूँ॥ १०५॥

इनमेंसे हरिके सम्मत कुछ भक्तोंका चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीनरवाहनजी

भौगाँवके रहनेवाले गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजीके शिष्य श्रीनरवाहनजी बड़े साधुसेवी थे। आप जमींदार थे और सन्त-सेवाके निमित्त भगवद्विमुखोंको लूटते भी थे। एक बार एक साहूकार नावपर माल लादकर ले जा रहा था। भगवद्विमुख जानकर एवं घाटका कर न देनेपर आपके सिपाहियोंने उसके सात सौ सिपाहियोंको परास्त करके लगभग तीन लाख पैंसठ हजारका माल लूट लिया और उसे कैदखानेमें बन्द कर दिया। उसे भोजन देनेके लिये एक दासी जाया करती थी। साहूकारका कष्ट देखकर उसे दया आ गयी। वह उससे बन्दीखानेसे छुड़ानेका उपाय बताती हुई बोली कि 'तुम श्रीराधाबल्लभ और श्रीहितहरिवंशजीका नाम ऊँचे स्वरसे बार-बार उच्चारण करो। जब कोई पूछे तो कहना कि 'मैं श्रीहितहरिवंशजीका शिष्य हूँ।' उस साहूकारने ऐसा ही किया। तब श्रीनरवाहनजीने उसका सब धन लौटा दिया और कहा कि 'श्रीगुरुदेवसे यह बात न बतलाना'। बन्दीखानेसे छूटकर वह आया और श्रीहितहरिवंशजीका शिष्य बना। सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर श्रीहितमहाप्रभुजी बड़े ही प्रसन्न हुए और दो अपने पदोंमें श्रीनरवाहनजीकी छाप देकर उन्हें श्रीचतुराशीजीमें स्थान दिया'।

श्रीप्रियादासजीने श्रीनरवाहनजीकी इस गुरुनिष्ठाका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

रहैं भौगांव नांव, नरबाहन साधुसेवी, लूटि लई नाव जाकी, बंदीखानै दियौ है।
लौंडी आवै दैंन कछू खायबे को, आई दया, अति अकुलाई, लै उपाय यह कियौ है॥
बोलौ 'राधाबल्लभ' औ लेवौ 'हरिवंश' नाम, पूछै 'शिष्य' नाम कहौ, पूछी नाम लियौ है।
दई मंगवाय वस्तु राखियो दुराय बात आय दास भयौ कही रीझि पद दियौ है॥ ४१९॥

श्रीजापूजी

ये परम प्रेमी भगवद्भक्त थे। नित्य ही सन्त-भगवन्त-सेवा एवं उत्सवोंकी धूम आपके यहाँ मची रहती थी। अपना सर्वस्व व्यय करनेके बाद आप सन्त-सेवाके निमित्त राहजनी करने लगे। एक बार एक सुनारको आपने लूटा और आकर भण्डारा किया। सुनारने आपके घरपर आकर झगड़ा किया। झगड़ा बढ़ते देखकर सिपाहियोंने दोनोंको पकड़कर राजाके सामने उपस्थित किया। राजाने दोनोंको कारागारमें डाल दिया। श्रीजापूजीको अपनी चिन्ता न थी। पर सन्त-सेवासे वंचित होनेसे चिन्तित हुए। रातको राजासे स्वप्नमें भगवान्ने कहा कि—तूने मेरे भक्तको कैदखानेमें बन्द कर रखा है। उसे शीघ्र छोड़ दे, नहीं तो तेरा कल्याण नहीं होगा। सबेरा होते ही राजाने श्रीजापूजीको कारागारसे मुक्त कर दिया और आपको निरपराध समझा। सुनारको अपराधी समझकर उसको नहीं छोड़ा। श्रीजापूजीने सुनारके बिना अकेले कैदसे मुक्त होना स्वीकार नहीं किया। दूसरी रातको भगवान्ने पुनः स्वप्न दिया और कहा कि 'जैसा भक्त कहते हैं, वैसा ही करो।' राजाने दोनोंको छोड़ दिया। आपने सच्ची घटना बता दी और साधु-सेवाकी महिमा बतायी। इससे राजा और सुनार दोनोंके हृदयमें भगवद्भक्ति एवं सन्त-सेवाकी निष्ठा दृढ़ हुई। भगवान् जापूजीकी सेवासे सन्तुष्ट हो गये और भूगर्भमें गड़े धनको बताकर उससे ही सन्त-सेवा करनेका आदेश दिया।

श्रीरूपाजी

श्रीरूपाजीका पूरा नाम श्रीरूपरसिकदेवाचार्यजी था। आप बड़े ही सन्तसेवी थे। आपका चरित छप्पय १०० पृ० ३३७ में भी वर्णित है।

श्रीअर्जुनजी

आप सन्त-सेवानिष्ठ भक्त थे। एक बार आपने सन्त-सेवाके निमित्त एक भैंस खरीदी। उसके दूध-दही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और घीसे सन्त-सेवा होने लगी। कुछ दिनोंके बाद अच्छी भैंस देखकर उसे चोर लोग चुरा ले गये। सन्त-सेवामें बाधासे आपके मनमें दु:ख हुआ। आप भगवान्से ही रूठ गये कि आपने ही भैंस चोरी जाने दी, आपने मुझे जगाया नहीं, भैंसकी रक्षा नहीं की। भगवान्‌की सेवा किये बिना ही जाकर जंगलमें बैठ गये। आपके प्रणयरोषसे प्रभावित होकर प्यारे प्रभु प्रसन्न हो गये। आपका रूप धारणकर चोरोंके पास गये, उन्हें भयभीत करके भैंस ले आये। गाँवके किसी परिचित आदमीने इन्हें जंगलमें बैठे देखकर कहा—कहिये जी! भैंस कहाँ मिली? इन्होंने कहा कि—क्या भैंस मिल गयी? उसने कहा—घरपर बँधी है। घरपर आकर आपने लोगोंसे पूछा—इसे कौन कहाँसे ले आया? लोगोंने कहा—कुछ देर पहले आप ही तो लाये। अब अनजानकी तरह पूछ रहे हो। यह सुनकर आपने समझ लिया कि यह लीला लीलाविहारीकी ही है।

श्रीदामोदरजी

किशनगढ़ (राजस्थान)-से कुछ दूर पूर्व दिशामें काचरिया नामक ग्राममें पं० श्रीकेशवानन्दजी नामके ब्राह्मण रहते थे। इनके यहाँ श्रीयुगलकिशोरकी उपासना होती थी। इन्हींकी कृपासे पण्डितजीको दामोदर नामक पुत्र प्राप्त हुआ। पूर्व संस्कारोंके प्रभावसे कुमारावस्थामें ही इन्हें वैष्णवधर्माचरणमें निष्ठा हो गयी और आप भजन-पाठमें लग गये। पिता-माताने एक सुशील कन्याके साथ विवाह कर दिया। पत्नी भी पतिव्रता एवं भक्ता थी। एक बार आप पुष्करराज गये। वहाँ आपको श्रीहरिव्यासदेवजीके दर्शन मिले। आपने उनकी शरण ग्रहणकर उनसे मन्त्रोपदेश एवं उपासनाकी विधि प्राप्त की। गुरु-आज्ञासे आप घर आये। साँपला ग्राममें आपकी लड़की ब्याही थी, वहाँके भक्तोंकी प्रार्थना मानकर आपने वहीं आकर पर्णकुटीमें निवास किया और भजन-सत्संगसे लोगोंको सुखी किया।

श्रीमयानन्दजी

आनन्दमय श्रीमयानन्दजी गुरु-गोविन्दके समान ही सन्तोंका भी सत्कार किया करते थे। अपनेको भक्तोंका दासानुदास कहते थे। एक बार आपको एक बहुत बढ़िया बारीक चादर ओढ़े देखकर एक साधुने व्यंग्य करते हुए कहा कि सेवकका यह धर्म नहीं है कि स्वामीको उघारा रहने दे और स्वयं चादर ओढ़े। श्रीमयानन्दने उसकी इच्छा जानकर प्रसन्नतासे अपने शरीरपरसे चादर उतारकर उसे ओढ़ा दिया। उसी समय आकाशसे एक चादर आयी और मयानन्दजीके शरीरसे पूर्ववत् लिपट गयी और उस परिहासकारीके शरीरसे चादर उड़ गयी। श्रीमयानन्दने पुनः उसे चादर दी तो फिर वही हुआ। इनके शरीरपर चादरका अभाव नहीं हुआ और उनके शरीरपर चादर नहीं रह सकी। ऐसा चमत्कार देखकर वह इनके चरणोंमें पड़ गया और अपने व्यंग्य—परिहासके लिये क्षमा-प्रार्थना करने लगा।

सन्तसेवाको भगवत्सेवासे बढ़कर माननेवाले भक्त

यहै बचन परमान दास गाँवरी जटियाने भाऊ।
बूँदी बनियां राम मँडौते मोहनबारी दाऊ॥
माडौठी जगदीसदास लछिमन चटुथावल भारी।
सुनपथ में भगवान सबै सलखान गुपाल उधारी॥
जोबनेर गोपाल के भक्त इष्टता निरबही।
श्रीमुख पूजा संत की आपुन तें अधिकी कही॥ १०६॥

भगवान्ने अपने श्रीमुखसे अपने भक्तोंकी पूजाको अपनी पूजासे श्रेष्ठ कहा है। इसी वचनको प्रमाण मानकर इन भक्तोंने सन्तोंकी सेवाको भगवान्की सेवासे बढ़कर माना और किया। गाँवरी ग्रामके श्रीदासजी, जटियानेके श्रीभाऊजी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूँदीके रामदासजी, मण्डौतेके श्रीमोहन बारीजी और श्रीदाऊजी, माडौठीके श्रीजगदीश-दासजी, चटुथावलके श्रीलक्ष्मणजी, सुनपथके श्रीभगवान नामक भक्तने सन्तोंकी सेवा की। श्रीगोपालजीने सम्पूर्ण सलखान गाँवका उद्धार सन्त-सेवाके प्रतापसे किया। जोबनेरके श्रीगोपालजी भक्तने भक्तोंमें इष्टभावका सदा निर्वाह किया॥ १०६ ॥

इनमेंसे कतिपय सन्तसेवी भक्तोंका चरित इस प्रकार है—

श्रीदासजी

आप सन्तोंकी सेवाको भगवान्‌की सेवासे बढ़कर मानते थे। एक बार आपके यहाँ कई सन्त आये। सन्ध्या-आरती हुई। रात्रि-भोजनके बाद आप सन्तोंकी चरण-सेवामें लग गये। मन्दिरमें श्रीठाकुरजीको शयन कराना भूल गये। प्रात:काल मंगलाके समय आप मन्दिरमें जाने लगे तो मन्दिरके किवाड़ भीतरसे बन्द मिले। प्रयत्न करनेपर भी किवाड़ नहीं खुले। तब आप बड़े असमंजसमें पड़ गये। इतनेमें आकाशवाणी हुई—'अब किवाड़ नहीं खुलेंगे, मेरी सेवा रहने दो, अब सन्तोंकी ही सेवा करो। मैं रातभर सिंहासनपर खड़ा रहा हूँ, तुमने मुझे शयन नहीं कराया।' यह सुनकर दासजीने सरलभावसे निवेदन किया—प्रभो! सन्त-सेवामें लगे रहनेके कारण यदि आपकी सेवामें चूक हुई तो आपके नाराज होनेका भय मुझे बिलकुल नहीं है। आपकी सेवामें लगा रहूँ और सन्त-सेवामें भूल-चूक हो जाय, तब मुझे आपकी नाराजगीका भारी भय है। यह सुनते ही प्रभु प्रसन्न हो गये। किवाड़ खुल गये। 'हम तुमपर बहुत प्रसन्न हैं, इस भावसे सन्त-सेवा करनेवाले मुझे अपने वशमें कर लेते हैं।' ऐसा कहकर भगवान्‌ने प्रत्यक्ष होकर दर्शन दिया।

बूँदी बनिया

श्रीरामदासजी बूँदी नगरके निवासी थे। जातिके बनिया थे। अत: वर्ण-धर्मानुसार व्यापार करते हुए भगवद् भक्तिकी साधना करते थे। अपनी पीठपर नमक-मिर्च-गुड़ आदिकी गठरी लादकर गाँवोंमें फेरी लगाते थे। कुछ नगद पैसे और कुछ अनाज भी मिलता था। एक दिन फेरीमें सामान बिक गया और बदलेमें अनाज ही विशेष मिला। उसकी गठरी सिरपर रखकर घरको चले। वजन अधिक था, अत: भारसे पीड़ित थे, पर ढो रहे थे। एक किसानका रूप रखकर भगवान् आये और बोले—'भगतजी! आपका दु:ख मुझसे देखा नहीं जा रहा है। हमें भार वहन करनेका भारी अभ्यास है, हमें भी बूँदी जाना है। आपकी गठरी मैं पहुँचा दूँगा।' ऐसा कहकर भगवान्‌ने भक्तके सिरका भार अपने ऊपर लिया और तीव्र गतिसे आगे बढ़े। इनकी आँखोंसे ओझल हो गये। तब ये सोचने लगे—'मैं इसे पहचानता नहीं हूँ और यह भी शायद मेरा घर न जानता होगा। अच्छा, जाने दो राम करै सो होय।' राम-कीर्तन करते हुए चले। मनमें आया कि आज थका हूँ, घर पहुँचते ही यदि गरम जल मिल जाय, तो झट स्नानकर सेवा-पूजा कर लूँ और आज कढ़ी-फुलकाका भोग लगे तो अच्छा है। इधर किसान भगवान्‌ने इनके घर आकर गठरी पटक दी और पुकारकर कह दिया कि—'भगतजी आ रहे हैं। नहानेके लिये पानी गरम कर लो और भोगके लिये कढ़ी-फुलका बना लो। उन्होंने कह दिया है।' कुछ देर बाद श्रीरामदासजी घर आये तो देखा कि अनाजकी गठरी पड़ी है। स्त्रीने कहा—'जल गरम हो चुका है, झट स्नान कर लो। कढ़ी भी तैयार है, सेवा करोगे तबतक फुलके भी तैयार हो जायेंगे।' श्रीरामदासजीने कहा—'तुमने मेरे मनकी बात कैसे जान ली।' उसने कहा—'उस गठरी लानेवालेने कहा था। मुझे क्या पता तुम्हारे मनकी बातका।' अब तो श्रीरामदासजी समझ गये कि आज रामजीने भक्तवात्सल्यवश बड़ा कष्ट सहा। ध्यान किया तो प्रभुने प्रसन्न होकर कहा—'तुम नित्य सन्त-सेवाके लिये इतना श्रम करते हो, मैंने तुम्हारी थोड़ी-सी सहायता कर दी तो क्या बिगड़ गया।' आपने स्त्रीसे पूछा—'तूने उस गठरी लानेवालेको देखा था क्या?' उसने कहा—'मैं तो भीतर थी, उसके शब्द अवश्य ही अति मधुर थे।' आपने कहा—वे साक्षात् भगवान् ही थे। तभी तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने मेरे मनकी बात जान ली!

भक्तवर श्रीलक्ष्मणजी

आप बड़े सद्भावसे साधुओंकी सेवा करते थे। बिना किसी रोक-टोकके आपके यहाँ सन्तोंका दिन-रात आवागमन रहता था। आपकी इस उदारताको देखकर एक दुष्टने भी सन्तवेष धारण कर लिया और कई दिनतक आपके यहाँ रहा। आप उसकी भी सेवा करते रहे; क्योंकि आप वेषनिष्ठ सन्त थे। एक दिन मौका पाकर वह भगवान्‌के मन्दिरमें घुस गया। भगवान्‌के आभूषण-पार्षदोंको लेकर भाग चला। यह देखकर भगवान्‌ने एक सिपाहीका रूप धारणकर उसे जा पकड़ा और उसे श्रीलक्ष्मण भक्तके पास लाये और बोले—'देखो, यह तुम्हारे मन्दिरका सामान चुराकर ले जा रहा है।' आपने कहा—'इन सन्तको सामानकी आवश्यकता होगी। इसलिये ले जा रहे हैं। मेरे पास जो कुछ है, इन्हींका है। इन्हें ले जाने दो।' अब वे सिपाही भगवान् क्या करते? वह सामान लेकर चला तो भगवान् भी साथ-साथ चले। फिर उसके आगे-आगे चलने लगे, इसके बाद अन्तर्धान हो गये। इधर-उधर बहुत निगाह दौड़ानेपर भी नहीं दीखे। इस तरह कभी प्रकट कभी अप्रकट होते देखकर उसे भय हुआ। उसने मनमें अनुमान कर लिया कि—भक्तोंके हितकारीकी यह लीला है। मैं भक्तकी चोरी करके दुःख पाऊँगा। श्रीलक्ष्मणजीकी सहज सरलताका स्मरण करता हुआ वापस लौट आया। उसने सब सामान देकर हृदयके दुष्ट भावको खोलकर रख दिया और चरणोंमें पड़कर क्षमा माँगने लगा। भक्तके प्रतापसे वह सच्चा सन्त बन गया।

श्रीगोपालजी

जोबनेर ग्रामवासी भक्त श्रीगोपालजीने भगवान्‌से बढ़कर भक्तोंको इष्ट माननेकी, सेवा करनेकी प्रतिज्ञा की थी और उसका पालन किया। आपके कुलमें एक सज्जन (काकाजी) विरक्त-वैष्णव हो गये थे। उन्होंने सन्तोंके मुखसे इनकी निष्ठाकी प्रशंसा सुनी कि 'भक्तोंको इष्टदेव मानते हैं।' तब वे श्रीगोपाल भक्तकी परीक्षा लेनेके विचारसे उनके द्वारपर आये। इन्हें आया देखकर श्रीगोपाल भक्तजीने झट आकर सप्रेम साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया कि 'भगवन्! अपने निज घरमें पधारिये।' उन्होंने (परीक्षाकी दृष्टिसे) उत्तर दिया कि 'मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं स्त्रीका मुख न देखूँगा।' तुम्हारे घरके भीतर जाकर मैं अपनी इस प्रतिज्ञाको कैसे छोड़ दूँ? तब श्रीगोपालजीने कहा—'आप अपनी प्रतिज्ञा न छोड़िये।' सभी स्त्रियाँ एक ओर अलग छिप जायेंगी। आपके सामने नहीं आयेंगी। ऐसा कहकर घर जाकर उन्होंने सब स्त्रियोंको छिपा दिया। तब इनको घर ले गये। इसी बीच सन्त-दर्शनके भावसे या कौतुकवश एक स्त्रीने झाँककर देखा, स्त्रीके झाँकते ही उन्होंने गोपाल भक्तके गालपर एक तमाचा मारा। श्रीगोपालजीके मनमें जरा-सा भी कष्ट नहीं हुआ।

वे हाथ जोड़कर बोले—'महाराजजी! आपने एक कपोलको तमाचा प्रसाद दिया, वह तो कृतार्थ हो गया। दूसरा आपके कृपाप्रसादसे वंचित रह गया। अतः उसे रोष हो रहा है, कृपा करके इस कपोलपर भी तमाचा मारकर इसे भी कृतार्थ कर दीजिये।' प्रियवाणी सुनकर उस वैष्णवके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वह श्रीगोपालजीके चरणोंमें लिपट गया और बोला—'आपकी सन्तनिष्ठा अलौकिक है। मैंने आकर आपकी परीक्षा ली।' आज मुझे आपसे बहुत बड़ी यह शिक्षा मिली कि 'भक्तको अति सहनशील होना चाहिये तथा वैष्णवोंको भगवान्‌से भी बढ़कर मानना चाहिये।'

श्रीप्रियादासजीने इस सन्तनिष्ठाका इस प्रकार वर्णन किया है—

'जोबनेर' बास सो 'गोपाल' भक्त-इष्ट ताकों कियो निर्बाह, बात मोको लागी प्यारियै।
भयौ हौ बिरक्त कोऊ कुलमें, प्रसंग सुन्यौ, आयौ यौ परीक्षा लैन, द्वार पै बिचारियै॥
आय पर्‌यौ पांय, 'पांय धारौ निज मन्दिर मैं', 'सुन्दरि न देखौं, मुख पन, कैसे टारियै'।
'चलो' जिन टारौ तिया रहैंगी किनारौ, करि, चले, सब छिपी, नैकुदेखी, याकै मारियै॥ ४२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पै तमाचो दियौ, दूसरे ने रोस कियौ, 'देवौ या कपोल पै' यों बानी कही प्यारी है।
सुनि, आंसू, भरि आये, जाय लपटाये पांय, कैसे कही जाय यह रीति कछु न्यारी है॥
'भक्त इष्ट' सुन्यौ, मेरे बड़ौ अचरज भयो, लई मैं परीक्षा, भई सिक्षा मोको भारी है।
बोल्यौ अकुलाय, 'अजू पैयै कहां भाय, ऐपै साधू सुख पाय कहैं, यही मेरी ज्यारी हैं'॥ ४२१॥

श्रीलाखाजी

मुरधरखंड निवास भूप सब आग्याकारी।
राम नाम बिस्वास भक्त पद रज ब्रतधारी॥
जगन्नाथ के द्वार डँडौतनि प्रभु पै धायो।
दई दास की दादि हुँडी करि फेरि पठायो॥
सुरधुनी ओघ संसर्ग तें नाम बदल कुच्छित नरो।
परमहंस बंसनि मैं भयो बिभागी बानरो॥ १०७॥

भक्तवर श्रीलाखाजी मारवाड़के अन्तर्गत मुरधर खण्डके निवासी थे। भजनका ऐसा प्रभाव था कि बड़े-बड़े राजा-महाराजा आपके आज्ञाकारी थे। आपका श्रीरामनाममें अविचल विश्वास था तथा भगवद्भक्तोंकी श्रीचरण-रजको सिरपर धारण करनेका दृढ़ नियम था। श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करने घरसे दण्डवत्-यात्रा करते हुए आप उनके द्वारपर पहुँचे। भगवान्ने अपने दासकी सहायता की तथा इनकी इस भक्तिकी प्रशंसा की और कन्याके विवाहके लिये हुण्डी कराकर भेजा। जैसे गन्दा नाला श्रीगंगाजीकी धारामें मिलकर गंगारूप हो जाता है और उसका नाम बदल जाता है, उसी प्रकार वानरवंशमें उत्पन्न होकर भी श्रीलाखाजी परमहंसोंके वंशकी कमनीय कीर्ति, पावन पुण्य ज्ञान, साधन-भजन एवं भक्ति-भावमें हिस्सेदार हुए॥ १०७॥

भक्तश्रेष्ठ श्रीलाखाजीका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीलाखाजी मारवाड़के वानरवंशी थे, इनकी जातिके लोग राज दरबारमें नृत्य-गानकर आजीविका चलाते हैं। ये नित्य साधुओंकी सेवा करते थे। जब सन्त-सेवा ये कर रहे थे, उसी समय बड़ा भारी अकाल पड़ा, लोग भूखों मरने लगे। तब कण्ठीमाला और तिलक धारण करके बहुतसे (नास्तिक-आस्तिक) लोग आपके यहाँ आने लगे। इन सबका भरण-पोषण कहाँसे कैसे और कहाँतक करें? अन्ततोगत्वा बहुत सोच-विचारकर इन्होंने यह निश्चय किया कि इस स्थानको छोड़कर कहीं अन्यत्र चलकर रहें। इनके इस निश्चयको जानकर भगवान्ने इनसे स्वप्नमें कहा—लाखाजी! ध्यान देकर सुनो—अन्यत्र जानेका विचार न करो। हमने एक उपाय कर दिया है, तदनुसार तुम्हारे पास एक गाड़ीभर गेहूँ आयेंगे और एक भैंस आयेगी। जब गाड़ीभर गेहूँ आ जाय, तब उन्हें कोठीमें भर देना और उसके ऊपरके मुखको बन्द कर देना। उसमेंसे निकालनेके लिये नीचेका मुँह खोल देना। उससे आवश्यकतानुसार अधिक-से-अधिक गेहूँ निकलेंगे। उन्हें पीसकर रोटियाँ बनवाना और भैंसके दूधको जमा करके मथ लेना। जो घी निकले उससे रोटियोंको चुपड़ देना और छाँछके साथ सबको भोजन कराते रहना। इतना सुननेके बाद श्रीलाखाजीकी आखें खुल गयीं। उन्होंने स्वप्नमें प्राप्त भगवान्की आज्ञा अपनी धर्मपत्नीको सुनायी और कहा कि यह तो हमारे मनकी भावती बात हो गयी। स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह जानेकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता नहीं है। प्रातःकाल होते ही गेहूँभरी गाड़ी और भैंस आ गयी। इन्होंने भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार उसी रीतिसे साधु-सन्तोंकी सेवा की और अनेक प्रकारसे उन्हें प्रसन्न किया।

श्रीप्रियादासजी लाखाजीकी भक्ति और भगवान्‌की इस लीलाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

'लाखा' नाम भक्त, वाकौ 'बानरौ' बखान कियौ, कहै जग डोम जासों मेरो सिरमौर है।
करै साधुसेवा बहु पाक डारि मेवा, सन्त जेंवत अनन्त सुख पावै कौर कौर है॥
ऐसे में अकाल पर्‍यौ, आवै धरि माल जाल, कैसे प्रतिपाल करैं, ताकी और ठौर है।
प्रभूजू स्वपन दियौ 'कियौ मैं जतन एक गाड़ी भरि गेहूँ भैंसि आवै करौ गौर है'॥ ४२२॥
'गेहूं कोठी डारि मुंह मूंदि नीचे देवो खोलि' निकसै अतोल पीस रोटी लै बनाइयै।
दूध जितौ होय सो जमायकै बिलोय लीजे, दीजै यों चुपरि संग छांछ दै जिवाइयै॥
खुलि गई आखैं, भाखैं, तिया सों जु आज्ञा दई, भई मन भाई, अजू हरि गुन गाइयै।
भोर भये गाड़ी भैंसि आई, वही रीति करी, करी साधुसेवा नाना भांतिन रिझाइयै॥ ४२३॥

गेहूँभरी गाड़ी और भैंस श्रीलाखाजीके घर कैसे आयी, उसका वर्णन इस प्रकार है—श्रीलाखाजीके निवास-स्थानसे कुछ दूरपर एक गाँवमें सभा हुई और उसमें यह निश्चय हुआ कि अपने परिवारका अपना जो एक भाई धनहीन हो गया है, उसके लिये चन्दा किया जाय और धनका संग्रह करके उसकी सहायता की जाय। इस प्रस्तावके पास हो जानेके बाद एक सज्जन व्यक्तिने उठकर सभामें कहा कि हमलोगोंने स्वार्थके भारको तो चुका दिया, परंतु इससे पारलौकिक लाभ सम्भव नहीं है। परमार्थके लिये सन्तसेवी श्रीलाखाजीकी कुछ सेवा-सहायता कीजिये, जिससे हमलोग भवसागरको पार कर सकें। यह सुनकर सब लाज-संकोचसे दब गये और उन्होंने उगाही करके पचास मन गेहूँ एकत्र किये। ग्रामसभाके प्रधानने दूध देती हुई अपनी (बीस सेर दूध देनेवाली) एक भैंस गेहूँभरी गाड़ीके साथ भेज दी।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आई कौन रीति, वाकी प्रीतिहूँ बखान कीजै, लीजै उर धारि सार भक्ति निराधार है।
रहै ढिग गाँव, तहां सभा एक ठांव भई, टूटि गयो भाई सो उगाही कौ विचार है॥
बोलि उठ्यौ कोऊ 'यौं व्यौहारको तौ भार चुक्यौ, लीजियै सँभारि 'लाखा' संत भवपार है।
लाज दबि तिन दिए गेहूँ लै पचास मन, दई निज भैंसि संग सब सरदार है॥ ४२४॥

श्रीलाखाजी अपने निवास-स्थान मारवाड़ देशसे चले। इन्होंने हृदयमें प्रतिज्ञा की कि मैं साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुए लगभग सात सौ कोस दूर श्रीजगन्नाथपुरीको जाऊँगा और श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करूँगा। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार आप साष्टांग दण्डवत् करते हुए श्रीजगन्नाथ धामके समीप पहुँचे। प्रेम-पारखी प्रभुने इन्हें लिवा लानेके लिये पण्डोंके हाथ पालकी भेजी, पर लाखाजीने हाथ जोड़कर उनसे कहा—महाराज! मैं भला पालकीपर चढ़कर कैसे चल सकता हूँ, यह सेवापराध है। मैं साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करता हुआ ही जाकर श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करूँगा—मेरी यही प्रतिज्ञा है। उसका पालन करूँगा। पण्डे लोग बोले—भगवान्‌ने बड़े प्रेम-भावपूर्वक आज्ञा दी है, अतः उसका पालन कीजिये। जब श्रीलाखाजी नहीं माने, तब पण्डोंने पुनः कहा कि प्रभुने आज्ञा दी है कि आप मेरे लिये जो भक्तोंके नामकी सुमिरनी बनाकर लाये हैं, शीघ्र आकर अब मुझे पहनाइये। यह सुनकर श्रीलाखाजीने पूर्ण विश्वास कर लिया कि सचमुच पालकीपर चढ़कर जानेकी आज्ञा दी है। श्रीलाखाजी भगवान्‌के अनुपम भक्तवात्सल्यको स्मरण करके प्रभुकी प्रसन्नताके लिये पालकीपर चढ़ते हुए बोले—अब मैं जान गया कि श्रीजगन्नाथजी मेरे लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालकी भेजकर मेरी महिमा बढ़ाना चाहते हैं। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें पहुँचकर प्रभुकी मनोहर झाँकीका दर्शनकर श्रीलाखाजीने अपने तन-मन और प्राणोंको श्रीचरणोंमें न्यौछावर कर दिया।

भगवान् जगन्नाथजीकी इस भक्तवत्सलता और लाखाजीकी प्रतिज्ञाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

मारवार देस तें चल्यौ ई साष्टांग किये, हिये 'जगन्नाथ देव याही पन जाइयै'।
नेह भरि, भारी देह वारिफेरि डारी, कैसे करै तनधारी, नेकु श्रम मुरझाइयै॥
पहुँच्यौ निकट जाय, पालकी पठाइ दई, कहैं 'लाखा भक्त कौन? बेगि दै बताइयै'।
काहू कहि दियौ, जाय कर गहि लियौ, 'अजू! चलौ प्रभु पास, इहि छिनही बुलाइयै'॥ ४२५॥
'कैसे चढ़ौं पालकी मैं? पन प्रतिपाल कीजै दीजै मोकों दान, यही भांति जा निहारियै'।
बोले प्रभु कही भाय सुमिरनी बनाय ल्याये, अब पहिराय मोहिं सुनि उर धारियै॥
चढ़े 'चढ़ि बढ़ि कियौ चाहै, यह जानी मैं तो, पढ़ि पढ़ि पोथी प्रेम मोपै बिसतारियै'।
जाय कै निहारे, तन मन प्रान वारे, जगन्नाथजू के प्यारे नेकु ढिग तें न टारियै॥ ४२६॥

श्रीलाखाजीकी एक कन्या गंगाबाई थी, वह विवाहके योग्य हो गयी थी, परंतु आप उसका विवाह नहीं करते थे। वे अपने मनमें सोचते थे कि मेरे पास जो भी धन है अथवा आता है, वह सब भगवान् और भक्तोंका है, उन्हींकी सेवाके लिये है। उसे कन्याके विवाहमें कैसे लगाऊँ? श्रीजगन्नाथजीने श्रीलाखाजीसे कहा कि तुम अपनी लड़कीका विवाह करनेके लिये मुझसे धन ले लो और उसका विवाह कर दो। परंतु श्रीलाखाजीके मनमें यह बात ठीक नहीं जँची। पुरीमें कुछ दिन निवास करनेके उपरान्त आप अपने घरके लिये चल दिये। प्रभुसे विदा माँगने इस संकोचसे नहीं गये कि प्रभु कुछ देंगे। चलते समय आपको भगवान्‌का विरह व्याप गया। व्याकुलतावश आँखोंसे आँसुओंका प्रवाह चलने लगा। उसी क्षण श्रीजगन्नाथजीने अपने एक भक्त राजाको स्वप्नमें धन देनेकी आज्ञा दी। उसने रास्तेमें चौकीदार बैठा दिये और श्रीलाखाजीके आनेपर उनसे प्रार्थना करते हुए कहा कि 'स्वप्नमें मुझे आदेश हुआ है। अतः अब आप अधिक हठ न कीजिये, धन ले लीजिये।' ऐसा कहकर उसने हुण्डी लिख दी। श्रीलाखाजीने उसे ले लिया।

इस प्रकार श्रीलाखाजी एक हजार रुपयेकी हुण्डी लेकर अपने घरको आये, उन्होंने उनमेंसे एक सौ रुपये केवल कन्याके ब्याहमें लगाये और शेष धनसे सन्तोंको निमन्त्रण देकर उन्हें भोजन कराया। उनका अनेक प्रकारसे सत्कार किया।

श्रीप्रियादासजी श्रीलाखाजीकी इस सन्तनिष्ठाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

बेटी एक क्वांरी ब्याहि देत न विचारी मन धन हरि साधुनि कौ कैसे कै लगाइयै।
'कीजै याकौ काज' कही जगन्नाथ देवजू ने 'लीजै मोपै द्रव्य' उर नेकहूं न आइयै॥
विदा पै न भये चले दृग भरि लये, गये आगे नृप भक्त मग चौकी अटकाइयै।
दियौ है सुपन प्रभु जिनि हठ करौ अजू हुंडी लिख दई नई बिनै कें जताइयै॥ ४२७॥
हुण्डी सो हजार की, यों लै कै गृहद्वार आये, तामैं तें लगायौ सौक बेटी ब्याह कियौ है।
और सब सन्तनि बुलाय कें खवाय दिये, लिये पग दास सुखरासि पन लियो है॥
ऐसें ही बहुत दाम वाही के निमित्त लै लै सन्त भुगताये अति हरषित हियौ है।
चरित अपार कछु मति अनुसार कह्यौं लह्यौ जिन स्वाद सो तौ पाय निधि जियौ है॥ ४२८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनरसीजी

महा समारत लोग भक्ति लौलेस न जानैं।
माला मुद्रा देखि तासु की निंदा ठानैं॥
ऐसे कुल उतपन्न भयौ भागवत सिरोमनि।
ऊसर तें सर कियो षंड दोषहि खोयो जिनि॥
बहुत ठौर परचो दियो रस रीति भक्ति हिरदै धरी।
जगत बिदित नरसी भगत (जिन) गुज्जर धर पावन करी॥ १०८॥

श्रीनरसीजी सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध भक्त हुए, जिन्होंने गुजरात प्रान्तको पावन किया। उस समय गुजरातके निवासी महास्मार्त थे, भक्ति-भजनको बिलकुल नहीं जानते-मानते थे। छाप और कण्ठी-तिलकधारी किसी वैष्णवको देखकर उसकी बड़ी निन्दा करते थे। ऐसे देश-कुल एवं वायुमण्डलमें उत्पन्न होकर भी श्रीनरसीजी वैष्णवभक्तशिरोमणि हुए। ऊसरके समान उस देशको सुन्दर हरा-भरा, भक्तिरससे परिपूर्ण सरोवर बना दिया। देशके दोषोंको नष्ट कर दिया। आपने अनेक स्थानोंपर भक्तिपूर्ण चमत्कार दिखलाये। जिसमें रसकी रीतियोंका सम्पूर्ण रूपसे संगम होता है, ऐसी माधुर्य-रसमयी भक्तिको आपने हृदयमें धारण किया॥ १०८॥

श्रीनरसीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

(क) नरसीका गृहत्याग

भक्तवर श्रीनरसीजी गुजरात प्रान्तके जूनागढ़ नगरके निवासी थे। पाँच वर्षकी अवस्थामें आपके पिता-माताका स्वर्गवास हो गया था। घरमें एक भाई वंशीधर और भाभी थी, वे अति ही क्रोधी स्वभावकी थीं। किसी दिन आप इधर-उधर घूम-फिरकर आये और भाभीसे पीनेके लिये जल माँगा। वे मन-ही-मन जल भुन गयीं और बोलीं—'तुम बड़ी भारी कमाई करके आये हो न? इसीलिये तुम्हें जल पिलाये बिना कैसे काम बनेगा? अपने-आप जल लाकर पियो।' भाभीने जब इस प्रकारका जवाब दिया तो घोर अपमानका अनुभव करके श्रीनरसीजी बिना जल पिये ही घरसे निकल चले और जंगलमें जाकर एक शिवजीके मन्दिरपर पड़ गये। मानो आपने शिवकी शरणमें जाकर अपना दुःख निवेदन किया और स्थिरचित्तसे आपने शिवका ध्यान किया।

श्रीप्रियादासजीने नरसीजीके गृहत्यागकी घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

'जूनागढ़' वास, पिता माता तन नास भयौ, रहै एक भाई और भौजाई रिसभरी है।
डोलत फिरत आय, बोलत 'पियावौ नीर,' भाभी पैं न जानी पीर, बोली जरीबरी है॥
'आवत कमाए, जल प्याये बिन सरै कैसे? पियौ,' यों जवाब दियौ देह थरथरी है।
निकसे बिचारि 'कहूं दीजै तन डारि,' मानौ शिवपै पुकार करी, रहे चित्त धरी है॥ ४२९॥

(ख) भगवान् शंकरद्वारा नरसीको कृष्णभक्तिका वरदान

श्रीशंकरजीके मन्दिरपर बिना कुछ खाये-पीये पड़े-पड़े सात दिन बीत गये। तब श्रीशिवजीने विचार किया कि यदि कोई आदमी किसी क्षुद्र या गरीबके द्वारपर जाकर पड़ जाता है, तो वह भी उसकी खबर लेता है, दुःख-दर्दकी पूछताछ करता है। फिर मैं तो देवाधिदेव महादेव हूँ। मुझे इसकी खबर लेनी चाहिये। ऐसा विचारकर भगवान् शंकरजीने प्रथम तो श्रीनरसीजीकी भूख-प्यासको सर्वथा दूर कर दिया। उसके बाद साक्षात् प्रकट होकर दर्शन देकर बोले—'वत्स! वर माँग लो।' श्रीनरसीजीने कहा—'प्रभो! मैं वर माँगना नहीं जानता हूँ। फिर भी यदि आप देना चाहते हैं तो सोच-समझकर वह वस्तु दीजिये, जो आपको सबसे अधिक प्यारी है।' यह सुनकर श्रीशंकरजी सोच-विचारमें पड़ गये कि जो मेरी प्रिय वस्तु है, उसका रहस्य तो मैं अपनी प्राणप्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीपार्वतीजीसे भी कहनेमें डरता हूँ और वेद नेति-नेति कहकर उसका वर्णन करते हैं।

अब यदि कदाचित् इसे अपनी प्रिय वस्तु नहीं देता हूँ तो मेरा 'वर माँगो' यह बोलना झूठा पड़ जायगा। ऐसा विचारकर श्रीशंकरजीने अपना-सा श्रीकृष्ण-प्रेम प्रदान किया और श्रीनरसीजीको सुन्दर सखी स्वरूप प्रदानकर स्वयं भी त्रिलोचना सखीरूप धारणकर साथ-साथ नित्य श्रीवृन्दावनधाममें आये। वहाँ दिव्य बहुमूल्यवान् अनेक प्रकारकी मणियोंसे जड़े हुए रासमण्डलपर अगणित व्रजगोपियोंके मध्य श्रीराधाश्यामसुन्दरका दिव्य-दर्शन शिवजीने श्रीनरसीजीको कराया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीनरसीजीपर भगवान् शंकरकी इस कृपाका वर्णन इस प्रकार किया है—

बीते दिन सात, शिवधामतें न जात बार, 'परै काहू तुच्छ द्वार, सोई सुधि लेत है'।
इतनी विचारि, भूख प्यास, दई टारि, लियौ प्रगट सरूप धारि, भयौ हिये हेतु है॥
बोले 'बर मांग,' 'अजू-मांगिबौ न जानत हौं, तुम्हें जोई प्यारौ सोई देवो चितचेत है'।
पर्‍यो सोच भारी, 'मेरी प्रान प्यारी नारी,' तासों कहत डरत, बेद कहैं 'नेति नेति' है॥ ४३०॥
'दियौं मैं वृकासुर को वर, डर भयौ तहाँ, वैसे डर कोटि कोटि यापै वारि डारे हैं'।
बालक न होय यह पालक है लोकनि कौ, मन कौ विचार कहा दीजै प्रान प्यारे हैं॥
जोपै नहीं देत मेरौ बोलिबो अचेत होत, 'दियौ निज हेत तन आलिन के धारे हैं'।
ल्याये वृन्दावन रास मण्डल, जटित मनि, प्रिया अनगन बीच लालजू निहारे हैं॥ ४३१॥

(ग) नरसीका शिवसहचरी बनकर रासमण्डलका दर्शन करना

श्रीनरसीजीने देखा कि स्वर्णमय रासमण्डल रंग-बिरंगे हीरोंसे जड़ा हुआ है, व्रजगोपियोंके मध्य प्रिया-प्रियतम दोनों विचित्र गतियोंमें नृत्य कर रहे हैं। गान-तानकी अद्भुत ध्वनि छायी हुई है। लालजी ताली बजाकर ताल लगा रहे हैं और नृत्य एवं रागकी सुन्दर गति ले रहे हैं। ग्रीवा (गर्दन)-का झुकना और हिलना, अँगुलियोंको मोड़कर मुद्राएँ बनाना अत्यन्त मनमोहक था। श्रीमुखसे निकलता हुआ गायनका मधुर स्वर सुनकर कानोंको तृप्ति होती थी। मृदंग और मुँहचंग आदि बाजे गायनके साथ-साथ बज रहे थे। नृत्य करते हुए प्रिया-प्रियतमके प्रत्येक अंगमें शोभाकी जो लहरें उठ रही थीं, वे मानो परिकर-प्रेमियोंको नवीन प्रेम-जीवन प्रदान कर रही थीं।

श्रीप्रियादासजीने रासमण्डलकी इस शोभाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

हीरनि खचित रासमंडल, नचत दोऊ रचित अपार नृत्य गान तान न्यारियै।
रूप उजियारी, चन्द चांदनी न सम, तारी देत कर-तारी, लाल गति लेत प्यारियै॥
ग्रीवा की ढुरनि, कर आंगुरी मुरनि, मुख मधुर सुरनि सुनि श्रवन तपारियै।
बजत मृदंग मुंहचंग संग, अंग अंग उठति तरंग रंग छबि जीकी ज्योरियै॥ ४३२॥

(घ) श्रीकृष्णद्वारा नरसीको भक्तिका उपदेश तथा नरसीका गृहस्थाश्रममें प्रवेश

श्रीशंकरजीने श्रीनरसी अलीको मसाल दिखलानेकी सेवा प्रदान की। यह प्रिया-प्रियतमकी शोभा-सुन्दरताको देखकर निहाल हो गयी। इसी बीच नन्दलालजीकी दृष्टि इनके ऊपर पड़ी तो आपने जान लिया कि यह तो कोई नयी सखी आज रासमें आयी है। श्रीठाकुरजीने अनुमान करके जान लिया कि यह शिवजीकी रंगीली सहचरी है। श्रीशंकरजीने मीठी मुसकान और नेत्रोंके संकेतसे जनाया कि ये मेरे साथ आयी हैं, आप कृपया अपने परिकरोंमें सम्मिलित कर लें। रास-विलासका दर्शन कराकर श्रीशिवजी चाहते थे कि अब मैं यहाँसे इन्हें ले जाऊँ, परंतु श्रीनरसी अलीजी चाहती थीं कि मैं अपने प्राणोंको न्यौछावर कर दूँ। तब श्रीठाकुरजीने कुछ समीप आकर श्रीनरसीजीको समझाया कि तुम यहाँसे जाओ और मेरे इस विहारीरूपका सर्वदा ध्यान करते रहना। जब जहाँ तुम मेरा स्मरण करोगी, तब तहाँ ही प्रकट होकर मैं तुम्हें दर्शन दूँगा। साथ ही भगवान्‌ने कीर्तन करनेके लिये करताल प्रदान किया। श्रीरासविहारीजीकी आज्ञा मानकर आँख बन्द करनेपर श्रीनरसीजी अपने ग्रामको वापस लौट आये और अलग निवास बनाकर भजन करने लगे। परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः रास विहार-लीलाके दर्शन करनेकी चटपटी इनके मनमें लगी ही रहती थी।

कुछ दिन बाद एक ब्राह्मणकी पुत्री माणिकगौरीसे आपका व्याह हो गया। उससे दो पुत्रियाँ (कुँवरबाई, रतनबाई) और एक पुत्र (शामलदास) हुआ। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी आपने संसारमें श्रीहरिभक्तिका खूब प्रचार-प्रसार किया। बहुतसे सन्त-महात्मा आपके यहाँ नित्य ही आते-जाते रहते थे। उनकी सद्भावपूर्वक सेवा करके आप उन्हें अपार सुख प्रदान करते थे। नित्य हरिनाम-लीलाओंका संकीर्तन करते हुए आप भक्त-भगवन्तको प्रसन्न करते थे। श्रीठाकुरजीको पधराकर उनकी नित्य-नियमसे वैष्णवविधिके अनुसार सेवा करते थे। श्रीनरसीजीके ऐसे पवित्र आचरणोंसे इनकी महिमा बढ़ी, इससे जितने विप्रजातिके लोग थे, उन्होंने अपने मनमें बड़ा दुःख माना और क्रोधवश अनेक प्रकारके उपद्रव करके श्रीनरसीजीके भजनमें बाधा करने लगे। क्योंकि नरसीका भजन-कीर्तन उन्हें उपद्रव-सा प्रतीत हो रहा था। वे अपने मनमें जरा भी विचार नहीं करते थे कि नरसीजी भक्त हैं। इधर परम विवेकी श्रीनरसीजी श्रीश्यामसुन्दरकी रूपमाधुरीके सागरमें निरन्तर डूबे रहते थे।

श्रीप्रियादासजीने नरसीजीके इस श्रीकृष्ण-प्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

दई लै मसाल हाथ, निरखि निहाल भई, लाल डीठि परी कोऊ नई यह आई है।
शिव सहचरी रँगभरी अटकरी, बात मृदु-मुसकात नैन कोर में जताई है॥
चाहै यहि टारौं वह चाहै प्रान वारौं, तब श्याम ढिग आय कही नीके समुझाई है।
'जावौ यहै ध्यान करौ, करौ सुधि, आऊं जहां,' आए निज ठौर, चटपटी सी लगाई है॥ ४३३॥
कीनी ठौर न्यारी, विप्रसुता भई नारी, एक सुत उभै बारी, जग भक्ति बिसतारी है।
आवै बहु सन्त, सुख देत हैं अनन्त, गुन गावत रिझावत और सेवा बिधि धारी है॥
जिती द्विजजात दुख भयौ अति गात, मान्यौ बड़ौ उतपात, दोष करै न बिचारी है।
एतौ रूप सागत मैं नागर मगन महा, सकैं कहा करि चहूँ ओर गिरधारी है॥ ४३४॥

(ङ) नरसीद्वारा श्रीसाँवलशाहके नाम हुण्डी लिखना

एक बारकी बात है, तीर्थयात्रा करते हुए कुछ साधु-सन्त जूनागढ़ पहुँचे और बाजारमें जाकर पूछने लगे कि यहाँ कोई ऐसा महाजन है क्या? जो हमें हुण्डी लिख दे? क्योंकि मार्गमें लुटेरोंका भय है, हमको द्वारका जाना है। जो लोग श्रीनरसीजीसे द्वेष करते थे, उन्होंने उनसे कहा कि यहाँके सबसे बड़े प्रसिद्ध महाजन नरसीजी हैं, उन्हींकी हुण्डी चलती है। ऐसा कहकर उन दुष्टोंने साथ जाकर नरसीजीका घर बतला दिया। इन साधु-सन्तोंने वैसा ही किया। श्रीनरसीजीने सन्तोंको छातीसे लगा लिया और विनती करते हुए बोले—'मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आपलोगोंने आकर दर्शन दिया। आपलोग आज्ञा दें। मेरा सर्वस्व आपपर न्यौछावर है।'

श्रीद्वारकाकी यात्रा करनेवाले साधुओंने गिनकर सात सौ रुपयोंका ढेर श्रीनरसीजीके आगे लगा दिया तथा उनके चरणोंमें प्रणाम करके बार-बार प्रार्थना करने लगे कि 'हमें सात सौ रुपयोंकी हुण्डी लिख दीजिये, हमें द्वारका जाना है।' आप समझ गये कि इन्हें किसीने बहका दिया है और उसमें प्रेरणा श्रीद्वारकानाथजीकी है। इस बहाने भगवान्‌ने सन्त-सेवाके निमित्त रुपये मेरे पास भेजे हैं। यह विचारकर श्रीनरसीजीने उन सन्तोंकी इच्छाकी पूर्ति की और हुण्डी लिख दी तथा कहा कि 'हमारे महाजन श्रीसाँवलशाहजी बड़े उदार हैं। उन्हींके हाथमें आप हुण्डी दीजियेगा और उनसे हुण्डीके रुपये लेकर निःशंक होकर कार्य कीजियेगा।' हुण्डी लेकर सन्त-महात्मा द्वारकापुरी पहुँचे और वहाँके बाजारमें साँवलशाहकी कोठी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये और भूख-प्याससे अत्यन्त व्याकुल हो गये, परंतु साँवलशाहकी कोठीका पता नहीं चला। तब ये लोग नगरसे बाहर निकल आये। आशा टूट गयी, अतः अपार दुःख-सागरमें डूब गये।

सन्तोंको व्यथित देखकर श्रीनरसीजीकी हुण्डी चुकानेके लिये श्रीद्वारकाधीशभगवान् सेठका रूप धारणकर कन्धेपर रुपयोंसे भरी थैली रखकर सन्तोंके निकट पधारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बोले—'श्रीनरसीजीकी हुण्डी किसके पास है? जिसके पास हो वह आकर अपने रुपये गिनकर ले ले।' सन्तोंने कहा—'अजी सेठजी! हमलोग आपको बाजारमें ढूँढ़-ढूँढ़कर हार गये, पर आप नहीं मिले।' साँवलशाह बोले—आपको रुपये देनेमें इतना विलम्ब हुआ। अत: हमें भी लज्जा लग रही है। विलम्बका कारण यह है कि मैं बाजारमें नहीं मिलता हूँ। मेरा निवास एकान्तमें है और इस बातको कोई-कोई भगवान्‌के भक्त ही जानते हैं। ये लीजिये, अपने रुपये और उनसे अपना कार्य कीजिये। यह कहकर भगवान्‌ने हुण्डी लेकर रुपये दे दिये और उसके उत्तरमें चिट्ठी लिखी कि मेरे पास रुपयोंकी कमी नहीं है, आप बार-बार हुण्डी लिखकर भेजा करें। सन्तजन द्वारकापुरीका दर्शन करके लौटे और श्रीनरसीजीको साँवलशाहकी चिट्ठी दी। उसे पाकर श्रीनरसीजी प्रेमानन्दमें डूब गये और उन्होंने सन्तोंको गलेसे लगा लिया।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

तीरथ करत साधु आये पुर, पूछै कोऊ हुंडी लिखि देय हमैं? द्वारिका सिधारिबे।
जे वे रहे दूषि, कही जात ही भगावैं भूषि, नरसी बिदित साह आगे दाम डारिबे॥
चरण पकरि गिरि जावौ जौ लिखावौ अहो कहौ बार बार सुनि बिनती न टारिबे।
दियौ लै बताय घर, जाय वही रीति करी, भरी अँकवार मेरे भाग, कहा वारिबे?॥ ४३५॥
सात सै रुपैया गिनि ढेरी करि दई आगे, लागे पग, देवौ लिखि, कही बार बार है।
जानी बहकाये प्रभु दाम दै पठाये, लिखी किये मन भाये, साह सांवल उदार है॥
वाही हाथ दीजियै, लै कीजिये निशंक काज, गये जदुराजधानी पूछ्यो सों बजार है।
ढूंढ़ फिरि हारे भूख प्यास मीड़ डारे, पुर तजि भये न्यारे दुख सागर अपार है॥ ४३६॥
साहकौ सरूप करि, आये कांधे थैली धरि, 'कौन पास हुण्डी? दाम लीजिये गनाय कै'।
बोलि उठे ढूंढ़ि हारे! भलेजू निहारे आजु, कही 'लाज हमें देत, मैं हूं पाये आय कै'॥
मेरौ है इकोसौ बास, जानै कोउ हरिदास, लेवो सुखरासि, करो चीठी दीजै जाय कै।
धरे है रुपया ढेर, लिख्यो करौ बेर बेर, फेरि आय पाती दई, लई गरे लाय कै॥ ४३७॥

(च) नरसीके भक्तिभावका विलक्षण प्रभाव

श्रीनरसीजीने सन्त-महात्माओंसे कहा कि आपलोग यह बतलाइये कि साँवलशाहजी आपको मिले या नहीं? उन सन्तोंने कहा—हाँ, मिले और बड़े प्रेमसे मिले। श्रीनरसीजीने साँवलशाहके नाम हुण्डी लिख दी थी और उसके जो रुपये थे, उनसे आपने सन्तोंका भण्डारा कर दिया। सन्तोंके प्रति श्रीनरसीका ऐसा सद्भाव था। अत: श्रीद्वारकाधीशने उनके सभी कार्यों-मनोरथोंको पूरा किया।

श्रीनरसीजीकी लड़की ससुरालमें थी, उसके लड़का हुआ था। लोक-रीतिके अनुसार इन्हें छूछक देना चाहिये, पर इनके पास कुछ न था, अतः न दे सके। लड़कीकी सास नित्य ही गालियाँ बकती। सासके वचन जब असह्य हो गये, तब उस लड़कीने अपने पिताको कहला भेजा कि 'मेरी सास ताने मारती है, गाली देती है, इससे मेरी छाती जलती रहती है। यदि आपके पास कुछ देनेके लिये हो तो आप आकर दे जाइये।'

लड़कीका सन्देशा पाकर श्रीनरसीजी एक टूटी-सी बैलगाड़ीमें दो बूढ़े बैलोंको जोतकर जहाँ पुत्री ब्याही थी, उस नगरके किनारे पहुँच गये। इनके आगमनका समाचार एक ब्राह्मण (कोकल्या पुरोहित)-ने जाकर इनकी कन्यासे कह दिया। पिताजीका आगमन सुनते ही वह आयी, परंतु जब उसने देखा कि गाड़ीमें छूछकका कुछ भी सामान नहीं है, तो उसका मुख उदास हो गया। उसने कहा—'पिताजी! यदि आपके पास देनेके लिये एक पैसा या एक वस्तु न थी तो फिर न आते, वही ठीक था।' श्रीनरसीजीने कहा—बेटी! तुम अपने मनमें चिन्ता न करो। जाकर अपनी साससे कह दो कि जिन-जिन चीजोंकी जितनी-जितनी जरूरत हो, उन सबको एक कागजमें लिख दें। उसने अपनी सासको समझाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा तो वह बहुत रिसमें भरकर बोली—मैं समझ गयी, तेरे पिता यहाँ आकर हँसी कर रहे हैं। अन्तमें खिसियाई सासने गाँवके सभी स्त्री-पुरुषों-बालकोंके नाम लिखवा दिये कि इन सभीको कपड़े एवं गहने चाहिये।

श्रीनरसीजीकी लड़की आवश्यक वस्तुओंका चिट्ठा लेकर आयी तो आपने उसे देखकर लौटा दिया और कहा कि इसे फिरसे दिखा लाओ। इसमें यदि किसीका नाम या कोई वस्तु लिखनेसे रह गयी हो तो उसे फिर लिखवा लाओ। इस बातसे क्रुद्ध होकर उसने दो पत्थर और लिखवा दिये। श्रीनरसीजीको अपमानित करनेके लिये उन्हें टूटी-फूटी पुरानी पौर रहनेके लिये बतला दी। भक्तशिरोमणि श्रीनरसीजी जाकर उसीमें ठहरे और उस निवास-स्थानको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। सासने खौलता हुआ जल इनके स्नान करनेके लिये भेजा। इसी बीच वर्षा हुई जिससे जल शीतल हो गया और श्रीनरसीजीने सुखपूर्वक स्नान किया। इसके बाद पौरकी कोठरीको झाड़ू-बुहारू देकर उसे साफकर उसके द्वारपर आपने एक परदा लगा दिया। सामानके चिट्ठेको वहीं रखकर तानपूरा बजाकर श्रीहरिनाम-संकीर्तन करने लगे। भगवत्कृपासे अगणित पोशाकें-वस्त्राभूषण आकर कोठरीमें भर गये।

श्रीनरसीजीने गाँवभरके आबाल-वृद्ध सभी नर-नारियोंको सुन्दर मूल्यवान् वस्त्र-आभूषण पहनाये, उससे सब लोग शोभायमान हो रहे थे। श्रीनरसीजीकी उदारता, कीर्तिका यत्र-तत्र-सर्वत्र सभी लोग गान कर रहे थे। बड़ा भारी आश्चर्य तो यह हुआ कि उस चिट्ठेमें लिखी सोने-चाँदीकी दो शिलाएँ भी आयीं और समधी और समधिनके लिये विशेष भेंटके रूपमें प्रदान की गयीं। संयोगवश एक स्त्रीका नाम (भानीबाई) सूचीमें लिखनेसे रह गया था। उसे पहनावा नहीं मिला। उसने दूसरेसे लेना स्वीकार नहीं किया और कहा कि जिसने सब स्त्री-पुरुषोंको वस्त्राभूषण पहनाये हैं, मैं भी उसीके हाथसे लूँगी। श्रीनरसीजीकी कन्याने अपने पितासे प्रार्थना की कि इसे भी पहनावा दीजिये, जिससे कि मेरी लज्जा रह जाय। श्रीनरसीजीने प्रभुसे प्रार्थना की तो भगवान् फिर आये। वस्त्रादि देकर उसकी कामना पूर्ण की। अपने पिताजीके प्रभावको देखकर उनकी पुत्री अपने अंगमें फूली नहीं समाती थी। अपने पति, सास, ससुर आदिको भुलाकर वह अपने पिताके साथ अपने घरको चली आयी।

नरसीजीकी भक्तिके इस प्रभावका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

'देखि आये साह?' दौरि मिले उत्साह अंग, वेऊ रँग बोरे सन्त, संगकौ प्रभाव है।
हुण्डी लिखि दई, दाम लिये सो खवाय दिये, किये प्रभु पूरे काम, संतनि सों भाव है॥
सुता ससुरारि, भयौ छूछक विचारि, सासु देत बहु गारि, जाको निपट अभाव है।
पिता सों पठाई कहि, छाती लै लगा इन, जोपै कछु दियौ जाय, आवो यह दाव है॥ ४३८॥
चले गाड़ी टूटीसी उभय बूढ़े बैल जोरि, पहुँचे नगर छोर, द्विज कही जाय कै।
सुनत ही आई देखि मुँह पियराई, फिरी 'दाम नहीं एक तुम कियौ कहा आय कै?'॥
'चिन्ता जिनि करौ, जाय सासु ढिग ढरौ, लिखि कागद में धरौ अति उत्तम अघाय कै'।
कही समुझाय, सुनि निपट रिसाय उठी, कियौ परिहास, लिख्यौ गांव खुनसाय कै॥ ४३९॥
कागद लै आई देखि दूसरें फिराई पुनि भूलै पै न पाई जात 'पाथर' लिखाये हैं।
रहिबे कौं दई ठौर, फूटी ढही पौरि जाके बैठे सिरमौर आय बहु सुख पाये हैं॥
जल दै पठायौ भली भाँति कै औटायौ, भई बरषा, सिरायो, यों समोयकै अन्हाये हैं।
कोठरी सँवारि, आगे परदा सो दियो डारि, लै बजाई तार बेस अगनित आये हैं॥ ४४०॥
गांव पहिरायो, छवि छायौ, जस गायो, अहो हाटक रजत, उभै पाथर हू आये हैं।
रहि गई एक भूले लिखत अनेक जहां, 'लेंहौं ताही पास जापै सब मिलि पाये हैं'॥
बिनती करत बेटी दीजियै जू लाज रहै, दियौ मँगवाय, हरि फेरिकै बुलाये हैं।
अंग न समात सुता तात कौ निरखि रंग संग चली आई पति आदि बिसराये हैं॥ ४४१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(छ) नरसीद्वारा दो गायिकाओंको भगवत्प्रेमकी महिमा बताना

श्रीनरसीजीके कुँवरसेना और रतनसेना नामकी दो पुत्रियाँ थीं। वे दोनों भगवद्भक्तिमें मग्न होकर अपने घरमें ही रहीं। एक तो विवाहके बाद छूछकका प्रभाव देखकर पति आदिको त्यागकर घर चली आयी और दूसरीने तो विवाह ही नहीं किया। किसी दिन गा-बजाकर जीविका चलानेवाली दो स्त्रियाँ जूनागढ़ शहरमें आयीं और यत्र-तत्र उन्होंने लोगोंको अपना कलात्मक गान सुनाया। वे सारे नगरमें घूमीं, परंतु उन्हें धनकी प्राप्ति नहीं हुई। उन्हें निराश देखकर किसीने श्रीनरसीजीका नाम-पता बतला दिया। वे दोनों श्रीनरसीजीके द्वारपर आकर गाने लगीं। तब आपने उन्हें समझाकर कहा कि यहाँ तुम्हें थोड़ा भी धन नहीं मिलेगा। इससे तुम्हारा मन दु:खित होगा। यदि कदाचित् तुम्हें भगवत्प्रेम प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो सिर मुड़वाकर विरक्त-शिक्षा-दीक्षा लेकर भगवदाराधन करो, इनकी शिक्षा मानकर दोनों नरसीजीके यहाँ ही रहने लगीं और भजन-कीर्तन-सत्संगके प्रभावसे उन्हें भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो गयी, दोनों उसका रसास्वादन करने लगीं।

श्रीप्रियादासजीने नरसी भक्तके इस भगवत्प्रेमदानरूपी कृत्यका इस प्रकार वर्णन किया है—

सुता हुती दोय, भोय भक्ति, रही घरही में एक पति त्याग, एक पतिहू न कियौ है।
पुर मैं फिरत उभै गाइन सुचाइन सौं, धन सौ न भेंट, काहू नाम कहि दियौ है॥
आईं लगीं गायबे कों, कही समझाय, 'अहो पायबे को नाहीं कछु पावै, दु:ख हियौ है'।
चाहौ हरि भक्ति, तौ मुंडायकै लड़ाय लीजै, कीजै बार दूर, रहीं, प्रेमरस पियौ है॥ ४४२॥

(ज) नरसीके भगवन्नाम-संकीर्तनका प्रभाव

श्रीनरसीजीकी दोनों पुत्रियाँ और दोनों गायिकाएँ मिलकर एक साथ रहने लगीं। प्रेमभक्तिके रंगमें रँगकर चारों साथ-साथ हरिनाम-गुण-संकीर्तन करतीं और भावोंको बता-बताकर नृत्य करतीं। इससे सबको बड़ा आनन्द आता। परंतु इस नृत्य-गानको देखकर 'सालंग' नामके राजमन्त्री जो श्रीनरसीजीके मामा भी लगते थे, उन्होंने राजासे इनकी निन्दा करते हुए कहा कि 'बड़ा अनुचित, धर्मके विपरीत काम हो रहा है, मेरा भान्जा नरसी स्त्रियोंको एकत्रकर उनके साथ नाचता है।' राजासे उचित कार्यवाहीका आदेश लेकर सालंगने बड़े-बड़े पण्डितों और दण्डधारी संन्यासियोंकी सभा बुलायी और लोभ देकर उनसे कहा कि—आपलोग नरसीजीसे शास्त्रार्थ करके उसका भण्डाफोड़ कीजिये, शास्त्रविरुद्ध अधर्मी सिद्ध करके हम उसे अपने राज्यसे बाहर निकाल देंगे। राजाकी आज्ञासे चार सिपाही आये और नरसीजीसे बोले—आप राजदरबारमें चलिये, राजा साहबने आपको बुलाया है, वहाँ पण्डितोंकी सभामें आपसे कुछ शास्त्र-विचार करना है।

यह सुनकर श्रीनरसीजी उन चारों लड़कियोंको साथ ले भगवत्प्रेममें मग्न हो श्रीहरिनाम-संकीर्तन करते नाचते-गाते हुए राजदरबारमें पहुँचे। राजसभामें उपस्थित पण्डितोंने आपसे पूछा कि 'आप इन तरुणी स्त्रियोंके साथ नाचते-गाते हैं, उन्हें साथ लिये फिरते हैं। यह भजन-साधनकी कौन-सी रीति है?' श्रीनरसीजीने कहा—आपलोगोंने वेदशास्त्र पढ़े हैं, परंतु पढ़-लिखकर भी आप भगवद् भक्तिकी गन्धसे दूर हैं। आपलोगोंको मालूम होना चाहिये कि भजन-सत्संगमें स्त्री-पुरुषोंका एकत्र होना कदापि निन्दनीय नहीं है।

श्रीनरसीजीके सच्चे उत्तरसे विरोधी पण्डित मौन हो गये। इसी बीच सभामें उपस्थित एक भक्त ब्राह्मणने कहा—राजन्! जब ये अपनी बेटीके यहाँ छूछक देने गये थे। उस समय मैंने अपनी आँखोंसे इनका प्रभाव देखा था। ऐसा कहकर उसने उमंगमें भरकर छूछककी कथा विस्तारपूर्वक वर्णन की। इसे सुनकर राजा बहुत प्रभावित हुआ और नरसीजीके चरणोंमें गिर पड़ा और प्रार्थना करता हुआ बोला—'आप अपने घरको जाइये और सुखपूर्वक रहिये। आपने सर्वेश्वर प्रभुको अपने वशमें कर रखा है, उन्हींके भक्ति-भावमें सर्वदा निमग्न रहिये।'

भक्तश्रेष्ठ श्रीनरसीजी भगवान्‌के मन्दिरमें श्रीविग्रहके समक्ष जब सुन्दर 'केदारा' राग बड़े उत्साहके साथ गाते थे तो उस समय भगवान्‌के कण्ठकी फूल-माला अपने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप टूटकर रसिकशेखरके वक्षस्थलपर आ जाती थी। आशीर्वाद-प्रसादरूप मालाको अपने हृदयमें धारणकर श्रीनरसीजी कृतार्थ होते थे और उनसे द्वेष करनेवाले भगवद्विमुख अपने स्वभाववश दुःख पाते थे।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इन घटनाओंका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

मिलीं उभै सुता, रंग झिली संग गायन वै चायनि सौं नृत्य करै, भायनि बताय कै।
'सालंग' है नाम मामा मंडलीक मन्त्री रहै कहै 'बिपरीत बड़ी' राजा सों सुनाय कै॥
बड़े बड़े दंडी और पंडित समाज कियौ, करो वाकी भंडौ, देश दीजिए छुटाय कै।
आये चार चोबदार चलौ जू बिचार कीजै, भयौ दरबार हमैं दिये हैं पठाय कै॥ ४४३॥
चारौं तुम जावो टरि, भयौ हमैं राजा डर, सकै कहा करि? अजू चलैं संग संगहीं।
नाचत बजावत ये चलीं ढिग गावन सुभावत मगन जानी भीजि गई रंगहीं॥
आये वाही भांति, सभा प्रभा हत भई, तऊ बोले कहा रीति यह जुवती प्रसंगहीं।
कही 'भक्ति गंध दूरि, पढ़ें पोथी, परी धूरि श्रीशुक सराही तिया माथुरनि भंगहीं'॥ ४४४॥
बोलि उठ्यो बिप्र एक 'छूछक प्रसंग देख्यौ', कह्यौ रसरंग भर्‌यौ ढर्‌यौ नृप पांय में।
कही 'जू बिराजौ, गाजौ निट सुख साजौ जाय, किये हरि राय बस, भीजे रहौ भाय में'॥
धारौ उर और सिरमौर प्रभु मन्दिर में सुन्दर केदारौ राग गावैं भरे चाय में।
स्याम कंठ माल टूटि आवत रसाल हियें देखि दुख पावैं परे बिमुख सुभाय में॥ ४४५॥

(झ) नरसीद्वारा भगवान्‌को केदारा राग सुनानेकी कथा

द्वेषी दुष्टोंने जाकर राजाको सिखाया-पढ़ाया कि नरसीकी भक्तिका जो प्रभाव चारों ओर फैला है, उसमें सच्चाई कुछ भी नहीं है। नरसी कच्चे डोरेमें फूलोंकी माला पुहवाकर भगवान्‌को पहनाता है, वह अपने-आप फूलोंके भारसे टूट जाती है और प्रचार यह किया जाता है कि केदारा रागपर रीझकर भगवान् देते हैं। राजाकी माता भगवद्भक्ता थीं, उन्हें भगवद्भक्तोंमें विश्वास था। इसलिये उन्होंने अपने पुत्र राजासे कहा—'तुम इन विमुखोंकी बातोंको बिलकुल न सुनो और न ध्यान दो।' परंतु अहंकारी राजाने माताजीकी बात नहीं मानी; एक दिन राजा उस मन्दिरमें गया, जहाँ श्रीनरसीजी केदारा राग गाकर माला-प्रसाद प्राप्त करते थे। उसने बहुत मजबूत रेशम मँगवायी और बटवाकर उसका डोरा बनवाया। फिर उसमें फूलोंको गुँथवाकर माला बनवायी। उसे भगवान्‌को धारण करवाकर कहा कि अब केदारा राग गाइये, सब मालूम पड़ जायगा। श्रीनरसीजीने नित्य-नियमके अनुसार स्वरोंको साधा केदारा रागको छोड़कर दूसरे-दूसरे राग गाये, परंतु माला टूटकर नहीं गिरी।

श्रीनरसीजीके लगातार गानेपर भी माला नहीं टूटी, तब शिकायत करनेवाले विमुख लोग मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। इधर श्रीनरसीजी नयी-नयी भावभरी उक्तियोंके द्वारा उलाहना देते हुए श्रीप्रभुके सामने कहने लगे—आप निश्चिन्त होकर अपने गलेमें माला धारण किये रहिये और भक्तको मार खाने दीजिये, मरता है तो मरने दीजिये।

वस्तुतः बात यह भी थी कि श्रीनरसीजी जिस नगरमें रहते थे, उसमें धरणीधर नामक एक साहूकार था। नरसीजी उसके पास केदारा राग गिरवी रख आये थे। उसने दो ब्याह किये थे। उन दो स्त्रियोंमें बड़ीवाली भगवद्भक्ता थी। उसने आपसे बार-बार प्रार्थना की कि मुझे भी श्यामसुन्दरके दर्शन करा दीजिये। श्रीनरसीजीने कहा—'बहुत अच्छा ऐसा ही होगा।' श्रीनरसीजीकी इस बातको सत्यके लिये भगवान् स्वयं श्रीनरसीजीका रूप धारणकर उस साहूकारके घर गिरवी रखे हुए केदारा रागको छुड़ानेके लिये गये। उसके द्वारपर जाकर आपने पुकारा—'किवाड़ खोलो।' साहूकारकी भक्ता स्त्रीने उठकर किवाड़ खोले और उसने श्रीनरसीरूपी भगवान्‌का दर्शन किया। साहूकार चद्दरसे मुँह ढककर सो रहा था। उसकी स्त्रीने कहा—'श्रीनरसीजी पधारे हैं, रुपये ले लो और कागज दे दो।' उसने कहा—तुम्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपये लेकर उस कागजको वापस कर दो। उस भक्ता स्त्रीने रुपये ले लिये और कागज लौटा दिया।

इस प्रकार भगवान्ने गिरवी रखे हुए 'केदारा' रागको रुपये देकर छुड़ाया और रुपयोंकी रसीद तथा गिरवी-पत्र लाकर श्रीनरसीजीकी गोदीमें डाल दिया। उसे देखकर ये अत्यन्त प्रसन्न होकर उमंगपूर्वक केदारा राग गा उठे। उसे सुनकर श्रीश्यामसुन्दर अपने सिंहासनसे उठे। नूपुरोंकी झन्न-झन्न ध्वनि करते हुए श्रीप्रभुने श्रीनरसीजीको पुष्पहार पहना दिया। उपस्थित सभी भक्तलोग भक्त और भगवान्की जय-जयकार करने लगे। इस प्रत्यक्ष चमत्कारको देखकर राजा इनके श्रीचरणोंमें लिपट गया और उसने अपने हृदयमें भगवद्भक्तिके भावको दृढ़तासे धारण किया। इससे द्वेषी दुष्ट बहुत लज्जित हुए।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

नृपति सिखायौ जाय, वृथा जस छायौ, काचे सूत में पुहायौ हार, टूटै ख्याति करी है।
माता हरिभक्त भूप कही जिनि करौ कान, तऊ बानि राजस की माया मति हरी है॥
गयै ढिग मन्दिर के सुन्दर मँगाय पाट ताकौ बटवाय करि माला गुहि धरी है।
प्रभु पहिराय कहौ 'गाय अब जानि परै' भरैं सुर, राग और गायौ पै न परी है॥ ४४६॥
विमुख प्रसन्न भये, तब तौ उराहने दै नये-नये चोज हरि सनसुख भाखिये।
'जानै ग्वाल बाल एक माल गहि रहे हिये, जिये लाग्यौ यही रूप, कहौ लाख लाखिये'॥
नारायण बड़े महा, अहा मेरे भाग लिख्यौ, करै कौन दूर छबि पूर अभिलाखिये।
म्हारौ कहा जाय आय परसै कलंक तुम्है, राखिये निसंक हार, भक्त मारि नाखिये॥ ४४७॥
रहै तहाँ साह, किये उभै लै विवाह जामें तिया एक भक्त कहै 'हरिकौ दिखाइयै'।
नरसी कही ही 'भलै', सोई प्रभु बानी लई, सांच करि दई, गए राग छुटवाइयै॥
बोले, पट खोलि दिये, किये दरसन तानैं, ताने पट सोवै वह कही 'देवौ भाजिये'।
लिये दाम, काम कियौ, कागद गहाय दियौ दियौ कछु खाइबेको पायौ लै भिजाइयै॥ ४४८॥
गहने धर्यौ हो राग केदारौ, सो साह घर, धरि रूप नरसी कौ, जाय कै छुटायौ है।
कागद लै डारयौ गोद मोद भरि गाय उठे, आय झन्न झन्न स्याम हार पहिरायौ है॥
भयौ 'जै जैकार', नृप पाय लपटाय गयौ, गह्यौ हिये भाव सो प्रभाव दरसायौ है।
बिमुख खिसाने भये गये उठि नये नाहिं, बिन हरिकृपा भक्तिपंथ जात पायौ है॥ ४४९॥

(ञ) भगवान् श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणीद्वारा नरसीके पुत्रका विवाह सम्पन्न कराना

एक ब्राह्मणने अपनी कन्याकी सगाई करनेके लिये अपने पुरोहितको भेजा। उसने बहुत-से ब्राह्मण बालक देखे, परंतु उसे कोई पसन्द नहीं आया। इसी बीच किसीने उसे बताया कि नरसीजीके भी एक सुन्दर बालक है, उसे भी देख लो। उसे देखते ही पुरोहितजी उसपर रीझ गये। तुरंत ही उन्होंने झोलीसे अक्षत निकालकर तिलक कर दिया। श्रीनरसीजीने कहा—लड़कीके पिताजी तो धनी-मानी एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। इसलिये मैं उनसे विवाह करने योग्य नहीं हूँ। उस पुरोहितने कहा—अजी श्रीभक्तजी! आप कैसी बात करते हैं, आप तो सब प्रकारसे योग्य हैं और श्रेष्ठ हैं। मैंने समझ-बूझकर तिलक करके मदनमेहताजीकी कन्यासे सम्बन्ध पक्का कर दिया। परंतु जब ब्राह्मणने अपने यजमान (कन्याके पिता)-से यह बात बतायी तो सुनते ही उसने माथा ठोककर कहा—अरे! वह तो तालकूटा निर्धन ब्राह्मण है, तुमने मेरी पुत्रीको कुएँमें डुबा दिया। शीघ्र जाओ और तिलकको लौटा लाओ। मुझे उस लड़केके साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं करना है। यह सुनकर पुरोहितको महान् कष्ट हुआ।

पुरोहितजीने अपने यजमानसे कहा—पहले आप मेरे इस दाहिने हाथके अँगूठेको काटकर फेंक दीजिये, उसके पश्चात् आप यह कहिये कि 'तिलकको लौटा लाओ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप जरा सोचिये तो जब मैंने सोच-विचारकर तिलक कर दिया, फिर अब कैसे कहूँगा कि वापस कर दो। लड़कीके माता-पिता आदि सभी अत्यन्त दु:खमें भरकर बोले—हम समझ गये, इस लड़कीके भाग्य ही ऐसे हैं। अब तो लड़कीको सुखी करनेका यही एक उपाय है कि जब वे बारात लेकर विवाह करने आयेंगे, तब हम उन्हें बहुत-सा धन दहेजमें दे देंगे। कुछ दिन बाद जब लगन पत्रिका भेजनेका समय आया, तब पुरोहितजीने लिखकर उसे लाकर श्रीनरसीजीको दे दिया। आपने उसे देखा भी नहीं और उसे एक ओर डाल दिया। दैनिक नियमानुसार करताल बजाकर कीर्तन करने लगे। विवाह (माघ शुक्ल पंचमी)-के केवल चार दिन शेष रह गये। तब भी श्रीनरसीजीको उसकी कुछ भी चिन्ता नहीं थी। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीरुक्मिणीजीके समेत पधारे। प्रेमसे विभोर होकर आप दौड़कर श्रीभगवान्से मिले और श्रीचरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया।

श्रीप्रियादासजी नरसीजीके प्रति भगवान्‌के इस भक्तवात्सल्यका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

करन सगाई आयो, पायौ बर भायो नहीं, घर-घर फिर्‌यो, द्विज नरसी बतायौ है।
आय, सुख पाय, पूछ्यौ, सुत सो दिखाय दियौ कियौ लै तिलक मन देखत चुरायौ है॥
अजू हम लायक न, तुम सब लायक हौ सायक सो छूट्यौ जाय नाम लै सुनायौ है।
सुनत ही, माथो फोरि, कहै तालकूटा वह, बाल बोरि आये, जावो फेरि, दुख छायौ है॥ ४५०॥
काटिकै अंगूठा डारौं, तब सो उचारौ बात, मन मैं बिचारौ, कियौ तिलक बनाय कै।
जाने सुता भाग ऐसे रहे सोच पागि सब आवैं जब व्याहिबे कौ धन दै अघाय कै॥
लगन हूं लिखि दियौ, दियौ, द्विज आनि लियौ, डारि राख्यौ कहूँ, गावैं ताल ए बजाय कै।
रहे दिन चार, पै बिचार नहीं नेकु मन, आये कृष्ण रुक्मिनी जू झूमि मिले धाय कै॥ ४५१॥

श्रीरुक्मिणीजीके समेत भगवान् श्रीकृष्णके आते ही विवाहोत्सवकी चहल-पहल आरम्भ हो गयी। जहाँ-तहाँ विविध प्रकारके व्यंजन बनने लगे। महिलाएँ मंगल गान करने लगीं। घोड़ीपर वरको चढ़ाकर नगरमें भ्रमण कराया गया। उसके बाद ज्यौनार हुई, जिसमें असंख्य मनुष्योंने आकर खूब अच्छी तरहसे भोजन किया। ब्राह्मण भोजन करके 'सामान घट जाय, नरसीकी हँसी हो जाय' इस विचारसे पारसके नामपर गठरियोंको बाँधकर ले जाने लगे। परंतु सभी वस्तुएँ भण्डारमें इतनी भरी थीं कि उनमें समाती नहीं थीं। इसके बाद मुक्तामणि रत्नजटित हाथी, घोड़ा, ऊँट, रथ और पालकी आदि वाहनोंसे युक्त श्रीनरसीजीकी बारातने सज-धजकर प्रस्थान किया।

जब बारात चल पड़ी, तब श्रीठाकुरजीने श्रीनरसीका हाथ पकड़कर कहा कि 'आप बारातके साथ चलो, मैं गुप्त रूपसे सब प्रकारसे देखभाल करता हुआ चलूँगा।' श्रीनरसीजीने कहा—'प्रभो! तुम जानो और तुम्हारा काम जाने, जो चाहो, सो करो। मुझे तो आनन्द इसमें है कि आपके इस सुन्दर स्वरूपको हृदयमें धारण कर लूँ और कमर कसकर हाथमें करताल लेकर आपके गुणानुवाद गाऊँ।' तब भगवान्‌ने विचारा कि इनसे कुछ होनेवाला नहीं है। अत: सम्पूर्ण कार्यभार अपने ऊपर ले लिया। बारात चढ़कर समधीके गाँव पहुँच गयी। चारों ओर यत्र-तत्र-सर्वत्र बाराती लोग शिविर लगाकर ठहर गये।

इसी बीच जिसने सगाई की थी। वह पुरोहित बारात देखकर आ गया। वह अपने मनमें फूला नहीं समा रहा था। प्रेमविह्वल होकर वह यजमानसे बोला—आपके पास जितनी राशि है, उससे बारातके घोड़ोंकी घासका भी पूरा नहीं पड़नेका है। जा करके देखिये, नगरके चारों ओर बारात-ही-बारात भरी हुई है।

बारातका विचित्र विवरण पाकर बेटीका बाप भी बारात देखने गया। देखकर उसका सब अभिमान दूर हो गया। उसने पुरोहितका आश्रय लिया और बार-बार प्रार्थना की कि आप कृपा करके मेरी लज्जा रख लीजिये, मैं आपकी शरणमें हूँ। पुरोहितने उससे कहा—'आप सद्भावपूर्वक श्रीनरसीजीके श्रीचरणोंको पकड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_13_1_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीजिये' और 'मुझ पर दया कीजिये'—ऐसी उनसे प्रार्थना कीजिये तो सब काम बन जायगा। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। यह सुनकर आँखोंमें आँसू भरकर श्रीनरसीजीके चरण-कमलोंमें पड़कर कन्याके पिताने प्रार्थना की 'प्रभो! मुझपर कृपा कीजिये।' श्रीनरसीजी छाती-से-छाती लगाकर मिले और श्रीश्यामसुन्दरके मुखचन्द्रका दर्शन कराया और कहा—'आप अपना भार इन्हें सौंपकर निश्चिन्त हो जाइये।' (भगवान् श्रीकृष्णने कन्यापक्षका सारा कार्यभार श्रीबलरामजीको सौंप दिया) बड़े समारोहके साथ श्रीनरसीजीके पुत्रका विवाह हुआ। घराती-बाराती सभी भक्तिभावमें विभोर हो गये।

प्रियादासजीने नरसीजीकी भक्ति और भगवान्के भक्तवात्सल्यका इस प्रकार वर्णन किया है—

ठौर ठौर पकवान होत, तिया गान करैं, घुरत निसान, कान सुनिये न बात है।
चित्र मुख किये लै विचित्र पट्टरानी आय, घोरी रंग बोरी पे चढ़ायौ सुत, रात है॥
करी सो ज्योंनार, तामें मानस अपार आये द्विजनि विचारि पोट बाँधी, पै न मात है।
मणिमय ही साज बाज गज रथ ऊँट कोर झमकैं किशोर आज सजी यों बरात है॥ ४५२॥
नरसी सों कहैं गहैं हाथ 'तुम साथ चलौ, अन्तरिक्ष मैं हूं चलौं, इती बात मानियै'।
कही अजू? 'जानौ तुम, मैं तो हिये आनौं यहै लहै सुख मन मेरौ फेंट ताल आनियै'॥
आपही विचारि सब भार सों उठाय लियौ, दियो डेरा पुरी समधी की पहिचानिये।
मानस पठायौ 'दिन आयौ पै न आये', अहो? देखैं छबि छाये नर पूछें जू बखानियै॥ ४५३॥
'नरसी बरात, मत जानौ यह नरसी की, नरसी न पावै ऐसी समझ अपार है'।
आय कै सुनाई, सुधि बुधि बिसराई, कहौं 'करत हँसाई, बात भाखौ निरधार है'॥
गयौ जो सगाई करि दर बर आयौ द्विज निज अङ्ग मात कैसे रंग बिसतार है।
कहीं'एक घास धनरासि सों न पूजै किहूं, चहूँ दिसि पूरि रही देखौ भक्ति सार है'॥ ४५४॥
चले अचरज मानि, देखि अभिमान गयौ, लयौ पाछौ ब्राह्मण को 'हमैं राखि लीजिये'।
जाइ गहि पांय रहौ भाय भरि 'दया करौ', गए दृग भरै पांव परै 'कृपा कीजिये'॥
मिले भरि अंक, लै दिखायौ सो मयंक मुख, 'हूजिये निसंक इन्हैं भार सुता दीजिये'।
व्याह करि आये, भक्तिभाव लपटाये सब गाये गुण जाने जेते, सुनि सुनि जीजिये॥ ४५५॥

श्रीयशोधरजी

सुत कलत्र संमत्त सबै गोबिंद परायन।
सेवत हरि हरिदास द्रवत मुख राम रसायन॥
सीतापति को सुजस प्रथम ही गवन बखान्यो।
द्वै सुत दीजै मोहि कबित सबही जग जान्यो॥
गिरा गदित लीला मधुर संतनि आनँद दायनी।
दिवदास बंस जसुधर सदन भई भक्ति अनपायनी॥ १०९॥

श्रीदिवदासजीके वंशमें उत्पन्न श्रीयशोधरजीके घरमें अनपायनी भक्ति प्रकट हुई। आपके स्त्री-पुत्र आदि सभी लोग आपके मतसे सहमत थे। सभी भगवत्परायण थे। आप भगवान्की एवं उनके भक्तोंकी सद्भावसे सेवा करते थे। आपके श्रीमुखसे निरन्तर श्रीरामनामरसामृतकी धारा बहा करती थी। श्रीविश्वामित्रजीने अयोध्यापुरीमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर श्रीदशरथजीसे कहा—हे राजन्! यज्ञरक्षाके लिये आप अपने दोनों पुत्र श्रीराम और श्रीलक्ष्मणको दे दीजिये। श्रीदशरथजीने दे दिया, तब श्रीरामलक्ष्मणने श्रीविश्वामित्रजीके साथ गमन किया। सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रथम वनगमनका आपने अति सुन्दर ढंगसे वर्णन किया है। [गान करते हुए आप प्रेमावेशमें विभोर हो गये। वियोग सहन नहीं हुआ। 'मैं भी साथ चलूँगा'—ऐसा कहकर रोने-पुकारने लगे। प्रभुने प्रत्यक्ष प्रकट होकर कहा कि—'तुम यहीं रहो, मुनिके यज्ञको सम्पन्न कराकर हम अभी आते हैं।' परंतु वियोग न सह सकनेके कारण आपने अपने प्राणोंको प्रभुपर निछावर कर दिया।] इस आशयके आपके पद लोकमें अति प्रसिद्ध हुए। आपकी वाणीसे गायी गयी श्रीरामजीकी मधुर लीलाएँ सन्तोंको परमानन्द देनेवाली हुईं॥ १०९॥

श्रीनन्ददासजी

लीलापद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर॥
प्रचुर पयध लौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संबलित भक्त पद रेनु उपासी॥
चंद्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पथ मैं पगे।
(श्री) नंददास आनंदनिधि रसिक सु प्रभु हित रगमगे॥ ११०॥

भक्त महाकवि श्रीनन्ददासजी आनन्दसिन्धु-रसिकशेखर सुन्दर अपने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके प्रेममें पगे एवं रँगे थे। श्रीराधाकृष्णकी लीलाके पदोंकी रचनामें तथा प्रेमरसकी रीतियुक्त जो ग्रन्थ, उनकी रचनामें बड़े ही (नागर) चतुर थे। आपकी उक्तियाँ अत्यन्त सरस एवं युक्तियुक्त अर्थात् तर्कसंगत हैं। भगवद्भक्तिके सभी रसोंका गान करनेमें आप परम उजागर (प्रसिद्ध) थे। आप रामपुर ग्रामके निवासी थे, परंतु आपका पावन सुयश समुद्रपर्यन्त फैला हुआ था। उत्तम कुलीन ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होकर उनके साथ रहते हुए, उनके समेत भगवद्भक्तोंकी श्रीचरण-रजके उपासक थे। आपके बड़े भ्राता श्रीचन्द्रहासजी भी बड़े सरल-सरस हृदयवाले थे और अनन्य प्रेमके रसमें पगे हुए थे॥ ११०॥

श्रीनन्ददासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीनन्ददास भक्तिरसके पूर्ण मर्मज्ञ और ज्ञानी थे। उनका जन्म वि० संवत् १५७० में हुआ था। गोसाईं विट्ठलनाथजीने उन्हें अष्टछापमें गौरवपूर्ण स्थान दिया था। उनके पिताका नाम जीवाराम और चाचाका आत्माराम था; वे शुक्ल ब्राह्मण थे, रामपुर ग्रामके निवासी थे। कहते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजी उनके गुरुभाई थे; वे युवक होनेपर उन्हींके साथ काशीमें रहकर विद्याध्ययन किया करते थे। एक बार काशीसे एक वैष्णव-समाज भगवान् रणछोरके दर्शनके लिये द्वारका जा रहा था, नन्ददास उसके साथ चल दिये। मथुरामें उन्होंने वैष्णव-समाजका साथ छोड़ दिया। वे वहाँसे द्वारकाके लिये स्वयं आगे बढ़े। दैवयोगसे वे रास्ता भूल गये। कुरुक्षेत्रके सन्निकट सीहनन्द नामक गाँवमें आ पहुँचे और वहाँसे किसी कारणवश पुनः श्रीवृन्दावनको लौट पड़े। नन्ददास भगवती कालिन्दीके तटपर पहुँच गये। उधर वैष्णव-समाजसे गोसाईं विट्ठलनाथने पूछा कि 'ब्राह्मण देवता कहाँ रह गये?' लोग आश्चर्यचकित हो उठे। नन्ददासको अपने शिष्य भेजकर उन्होंने बुलाया, वे गोसाईंजीके परम पवित्र दर्शनसे धन्य हो उठे। गोसाईंजीने उनको नवनीत-प्रियका दर्शन कराया, नन्ददासजीको देहानुसन्धान नहीं रह गया। चेत होनेपर नन्ददासकी काव्य-वाणीने भगवान्‌की लीलारसानुभूतिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_13_2_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांगलिक गान गाया। उनका मन भगवान् श्रीकृष्णमें पूर्ण आसक्त हो गया। उन्होंने गोवर्धनमें श्रीनाथजीका दर्शन किया। वे भगवान्‌की किशोर-लीलाके सम्बन्धमें पद-रचना करने लगे। श्रीकृष्णलीलाका प्राणधन रासरस ही उनकी काव्य-साधनाका मुख्य विषय हो गया।

नन्ददास उच्च कोटिके कवि थे। उन्होंने सम्पूर्ण भागवतको भाषाका रूप दिया। नन्ददासकी सूरदाससे बड़ी घनिष्ठता थी। महाकवि सूरकी आज्ञासे वे घर आये। कमला नामक कन्यासे उन्होंने विवाह किया और घरपर रहकर भगवान्‌की रसमयी लीलापर काव्य लिखने लगे। पर उनका मन तो श्रीनाथजीके चरणोंपर न्योछावर हो चुका था, कुछ दिनोंके बाद वे गोवर्धन चले आये। वे स्थायीरूपसे मानसी गंगापर रहने लगे तथा शेष जीवन श्रीनाथजीकी सेवामें समर्पित कर दिया। नन्ददासजीने संवत् १६४० वि० में गोलोक प्राप्त किया। वे उस समय मानसी गंगापर रहते थे।

श्रीजनगोपालजी

भक्ति तेज अति भाल संत मंडल को मंडन।
बुधि प्रबेस भागवत ग्रंथ संसय को खंडन॥
नरहड़ ग्राम निवास देस बागड़ निस्तार्‌यो।
नवधा भजन प्रबोध अननि दासन ब्रत धार्‌यो॥
भक्त कृपा बांछी सदा पद रज राधालाल की।
संसार सकल ब्यापक भई जकरी जन गोपाल की॥ १११॥

भक्तश्रेष्ठ श्रीजनगोपालजीके जकरी (पन्द्रह मात्राके) छन्द सारे संसारमें व्यापक हुए। भगवद्भक्तिके प्रतापसे आपका ललाट अत्यन्त देदीप्यमान था। आप सन्तोंकी सभाके भूषण थे। आपकी प्रखर बुद्धिमें श्रीभागवतजीका प्रवेश था एवं श्रीभागवतजीमें आपकी बुद्धि प्रविष्ट हो गयी थी। सर्वदा आप उसका अनुशीलन करते रहते थे। श्रीभागवतके एवं अन्य भक्तिग्रन्थोंके सम्बन्धमें किये गये सभी सन्देहोंका, कुतर्कोंका खण्डन कर देते थे। आप नरहड़ ग्रामके निवासी थे। आपने सम्पूर्ण बागड़ प्रान्तका उद्धार किया। आप श्रीभागवतमें कही गयी नवधा भक्तिके अनुसार भजन करते थे। इसका सम्यक् प्रकारसे आपको अनुभव था। अनन्य भावसे भगवान् एवं भक्तोंके दास्यव्रतको आप दृढ़तापूर्वक निभाते थे। भगवद्भक्तोंकी एवं श्रीराधानन्दलालकी श्रीचरण-रजको प्राप्त करनेकी आपने सदा इच्छा की [आप श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराजके शिष्य थे]॥ १११॥

श्रीमाधवदासजी

प्रसिध प्रेम की बात गढ़ागढ़ परचो दीयो।
ऊँचे तें भयो पात स्याम साँचौ पन कीयो॥
सुत नाती पुनि सदृस चलत ऊही परिपाटी।
भक्तनि सों अति प्रेम नेम नहिं किहुँ अँग घाटी॥
नृत्य करत नहिं तन सँभार सम सर जनकन की सकति।
माधव दृढ़ महि ऊपरै प्रचुर करी लोढा भगति॥ ११२॥

दृढ़व्रती श्रीमाधवदासजीने पृथ्वीपर लोटन भक्तिका सुदृढ़ एवं प्रचुर प्रचार-प्रसार किया। आपके प्रेमकी बात अतिप्रसिद्ध है। आपने गढ़ागढ़में अपने प्रभुप्रेमका परिचय दिया। नृत्य-कीर्तन करते हुए प्रेमावेशमें आकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप तिमंजिलेकी ऊँची छतसे गिर पड़े। भगवान् श्रीश्यामसुन्दरने अपने प्रणको सत्य करते हुए आपके प्राणोंकी और शरीरकी रक्षा की। आपके परिवारी—बेटा-नाती भी आपके समान भगवद्भक्त हुए और आपके द्वारा चलायी हुई भक्तिकी परिपाटीपर ही चलते रहे। आपका भक्तोंसे अत्यन्त प्रेम-नेम था। भक्तिके सभी अंगोंका आप पालन करते। कहीं भी कभी भी कमी नहीं आने देते थे। कीर्तन और नृत्य करते समय आपको अपने शरीरकी सुधि-बुधि नहीं रहती थी। आपकी तुलना केवल विदेहवंशी जनकोंसे ही हो सकती है॥ ११२॥

श्रीमाधवदासजीके विषयमें संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रेमी भक्त श्रीमाधवदासजी 'गढ़ागढ़' निवासी थे और बड़े भारी भगवदानुरागी थे। हरिनाम-संकीर्तनके समय नृत्य करते-करते इन्हें अपने शरीरकी सुधि नहीं रहती थी और भूमिपर लोटने लगते थे। गढ़ागढ़का राजा अभक्त था, वह ऐसे आचरणों (सच्ची भक्ति)-को ढोंग समझता था। इसलिये उसने श्रीमाधवदासजीकी भक्तिकी परीक्षा लेनेकी सोची। श्रीहरिनाम-संकीर्तनका आयोजन कराकर इन्हें आमन्त्रित किया और तीसरी मंजिलकी छतपर मण्डप बनवाया। आप पैरोंमें नूपुर बाँधकर नृत्य-कीर्तन करने लगे। लोगोंने विलक्षण प्रेमके प्रभावको देखा। कुछ देर बाद प्रेमका ऐसा आवेश आया कि आप पृथ्वीपर लोटने लगे। आपने अपने भक्ति-भावको सत्य करके दिखलाया। छतपर मुड़गेली नहीं थी। अतः आप लोटते-लोटते तिमंजिलेसे नीचे गिर गये। वहाँ कड़ाहमें घी खौल रहा था। उसमें गिरनेपर भी आप जीवित रहे। तापका किंचित् अनुभव भी नहीं हुआ। यह देखकर राजाको बड़ा भारी डर लगा और उसे हरिभक्तोंमें विश्वास हो गया तथा हृदयमें भक्तिभाव व्याप्त हो गया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

गढ़ागढ़ पुर नाम 'माधौ' बढ़ि प्रेम, भूमि लौटैं, जब नृत्य करैं भूलैं सुधि अंग की।
भूपति बिमुख, झूठ जानिकै परीक्षा लई, आनि तीन छाति पर देखी गति रंग की॥
नूपुरनि बाँधि, नाचि, सांच सो दिखाय दियौ गिर्‌यौ हू कराह मध्य, जियौ, मति पंग की।
बड़ौ त्रास भयौ नृप, दास बिसवास बढ्यौ, बढ्यौ उर भाव रीति न्यारी या प्रसंग की॥ ४५६॥

श्रीअंगदजी

नग अमोल इक ताहि सबै भूपति मिलि जाचैं।
साम दाम बहु करैं दास नाहिन मत काचैं॥
एक समै संकट में लेबैं पानी महि डार्‌यो।
प्रभू तिहारी वस्तु बदन ते बचन उचार्‌यो॥
पाँच दोय सत कोस ते हरि हीरा लै उर धर्‌यो।
अभिलाष भक्त अंगद्द को पुरुषोत्तम पूरन कर्‌यो॥ ११३॥

भक्तवर श्रीअंगदजीकी अभिलाषाको भगवान् श्रीजगन्नाथजीने पूर्ण किया। आपके पास अमूल्य हीरा था, उसे सभी राजाओंने मिलकर माँगा और हीरा हड़पनेके सभी हथकण्डे साम, दाम, भय और भेद आदि उपाय किये, परंतु भक्त अंगद अपने विचारके कच्चे नहीं पक्के थे। उन्होंने हीरा नहीं दिया। एक बार राजाने उन्हें संकटमें डालकर उनसे हीरा लेना चाहा, तब उन्होंने हीरेको यह कहकर जलमें डाल दिया कि 'हे प्रभो! यह हीरा आपकी वस्तु है, इसे स्वीकार कीजिये।' पुरुषोत्तम प्रभुने सात सौ कोससे अपना लम्बा हाथ फैलाकर उसे ले लिया और श्रीअंगमें धारण कर लिया। इस प्रकार भक्तके मनोरथको प्रभुने पूर्ण किया॥ ११३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तवर अंगदजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

(क) अंगदजीका अपनी स्त्रीकी भक्तिसे प्रभावित हो भक्त बनना तथा उन्हें अमूल्य नग (हीरे)-की प्राप्ति

रायसेनगढ़के राजा सिलाहदीसिंह थे। उनके चाचा अंगदसिंहजी पहले भगवद्विमुख थे, पर उनकी स्त्री भगवद्भक्ता थी। एक बार उनके श्रीगुरुदेव घरपर आये और भक्ता शिष्याकी प्रार्थनापर वे सुखपूर्वक सुखस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी कथा कहने लगे। इसी बीच अंगदजी आ गये और फटकारते हुए श्रीगुरुजीसे बोले—'स्त्री जातिके साथ यहाँ क्या कर रहे हो?' इतना सुनते ही श्रीगुरुदेव वहाँसे उठकर चले गये। श्रीअंगदजीकी स्त्रीने अपने गुरुदेवके अपमानसे दु:खित होकर अन्न-जलका परित्याग कर दिया। श्रीअंगदसिंहजी तो संसारी सुखोंके वशीभूत थे। अत: स्त्रीको मनाते-मनाते इन्होंने उसके पाँव पकड़ लिये और कहा—'अब जो कुछ भी तुम कहो, मैं वही करूँगा। उस समय मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। अत: अनुचित शब्द मुँहसे निकल गये।' पतिदेवके दैन्यको देखकर उस भक्ताका हृदय दयासे भर गया। उसने कहा—'अब आप मेरे चरणोंको छोड़कर मेरे गुरुदेवके चरणोंमें जाकर पड़िये और उन्हें प्रसन्नकर उनको अपना गुरु बनाइये।'

स्त्रीकी यह बात सुनकर अंगदजी श्रीगुरुजीके पास गये और बड़े प्रेमके साथ उन्हें घर लिवा लाये। दीनभावसे विनतीकर उनके शिष्य बन गये। उन्हें सादर भोजन कराकर उनका उच्छिष्ट प्रसाद लिया। अब श्रीअंगदजीके हृदयमें भक्त-भगवान् और श्रीगुरुदेवमें एक नवीन प्रीति प्रकट हो गयी। अपने भतीजे राजा सिलाहदीसिंहजीके आदेशानुसार एक बार आपने एक शत्रु राजाके ऊपर चढ़ायी की और विजय प्राप्त कर ली। राजभवनकी लूटमें आपको राजाकी टोपी मिल गयी। जिसमें सौ नग जड़े हुए थे, उनमेंसे एक नग सबसे मूल्यवान् था। टोपीके निन्यानबे नगोंको बेच-बेचकर आपने सन्त-भगवन्तकी सेवा कर दी और एक नग जो सबसे बड़ा कीमती था, उसे आपने अपनी पगड़ीकी लपेटमें रख लिया और मनमें निश्चय किया कि इसे मैं श्रीजगन्नाथजीको अर्पण करूँगा।

श्रीप्रियादासजीने श्रीअंगदसिंहजीकी इस सेवाका वर्णन इस प्रकार किया है—

'रायसेन' गढ़ वास नृप सो 'सिलाहदी' जू, ताको यह काका रहे, 'अंगद' बिमुख है।
ताकी नारी प्यारी, प्रभु साधु सेवा धारी उर, आये गुरु घर, कहैं कृष्ण कथा सुख है॥
बैठे भौन कौन? देखि कैसे मौन रह्यौ जात? बोल्यो तिया जात, कहा करौ नर रुख है?।
सुनि उठि गये, वधू अन्न जल त्यागि दये, लये पांय जाय विषैबस भयौ दुख है॥ ४५७॥
मुख न दिखावै याहि देख्यौ ही सुहावै, कही 'भावै सोई करौ, नेकु बदन दिखाइयै'।
मैं हूं जल त्यागि दियौ, अन्न जात कापै लियौ, 'जीवौ ज़ब नीकौ तब आपु कछु खाइयै'॥
बोली 'मोसों बोलौ जिन, छांड़ौ तन याही छिन, पन सांचौ होतौ जौ पै सुनत समाइयै'।
'कहौ अब कीजै जोई, मेरी मति गई खोई', भोई उर दया बात कहि समझाइयै॥ ४५८॥
'वेई गुरु करौ जाय, पांयन मैं परौ,' गयौ, चायनि लिवाय ल्यायौ, भयौ शिष्य, दीन है।
धारौ उर माल, भाल तिलक बनाय कियौ लियो सीत, प्रीति कोऊ उपजी नवीन है॥
चढ़ी फौज संग, चढ्यौ बैरीपुर, मारि बढ्यौ, कढ्यौ, टोपी लैकै हीरा सत, एक पीन है।
डारे सब बेचि, पागपेच मध्य राख्यौ मुख्य, भाष्यौ 'सों अमोल करौ जगन्नाथ लीन है'॥ ४५९॥

(ख) हीरेकी प्राप्तिके लिये भक्त अंगदको विष देना, किंतु विषका निष्प्रभावी होना

फौजी सिपाहियोंमें कानाफूसी होते-होते सौ नगोंसे जड़ी हुई उस टोपीकी बात राजा सिलाहदीसिंहने सुन ली। राजाने लोगोंसे कहा कि 'चाचाजी! आज यदि उस हीरेको दे दें तो निन्यानबे हीरे हम माफ कर देंगे।' लोगोंने आकर इन्हें खूब समझाया-बुझाया। अनेक युक्तियाँ कीं, परंतु इन्होंने किसीकी भी नहीं मानी। तब श्रीअंगदसिंहजीकी एक बहन, जो इनके यहाँ रसोई बनाया करती थी, राजाने उसके पैर छूकर एवं लोभ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लालच देकर भेद नीतिसे उससे कहा कि तुम अंगदसिंहको विष देकर मार डालो, फिर मैं तुम्हें बहुत-सा धन-धरती दूँगा। उसने राजाकी बात मान ली, विष घोलकर भोजनमें मिला दिया और भगवान्‌का भोग भी लगा दिया। फिर बुलाकर कहा कि आओ, भोजन कर लो। थाली परोसकर उनके सामने रख दी।

श्रीअंगदसिंहकी बहनकी एक लड़की थी। ये जब भोजन करते थे तो श्रीराधाजीकी सखी मानकर उसे भी साथ बैठा लेते थे। अपनी लड़कीको बचानेके लिये उसने उसे कहीं किसीके घर छिपा दिया था। ये उसके बिना भोजन नहीं कर रहे थे, अपनी लड़कीमें अपने भाईका ऐसा अपार प्रेम देखकर उसके मनमें भ्रातृ-प्रेम उमड़ आया। भाईकी मृत्युसे डरकर रोने लगी। गलेसे लगकर रोते-रोते उसने सब बात कह दी। अब तुम इसे मत खाओ—ऐसा कहकर वह विषमिले भोजनकी थालीको लेकर जाने लगी। यह देखकर श्रीअंगदजीने कहा—'तूने विषमिले सामानका भगवान्‌को भोग लगा दिया और अब हमें खानेसे रोकती है।' ऐसा कहकर उन्होंने उसे ढकेलकर बाहर निकाल दिया और भगवदिच्छा बलवती मानकर पुनः किवाड़ बन्दकर सब प्रसाद पाकर लेट गये। आपके ऊपर विषका कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। प्रसाद-प्रेमसे आपके मुखपर नयी चमक आ गयी, परंतु आपके मनमें इस बातका असह्य कष्ट बना हुआ था कि विषमिश्रित पदार्थ भगवान्‌को भोग लगाया गया।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

काना कानी भई नृप बात सुनिलई, 'कही हीरा वह देव, तौ पै और माफ किये हैं'।
आय समुझावैं, बहु जुगति बनावै, याके मन मैं न आवैं, जाय, सबैं कहि दिये हैं॥
अंगद बहिन लागै वाकी भूवा पागै, तासौं 'देवौ विष, मारौ' फिर तू ही, पग छिये हैं।
करत रसोई घोरि गरल मिलायो, पाक, भोगहूं लगायौ, 'अजू आवो' बोलि लिये हैं॥ ४६०॥
वाकी एक सुता, संग लैकै बैठें जेंठन कों, आई सो छिपाय कही जेंवौ कहूं गई है।
जेंवत न, बोधि हारी तब सो बिचारी प्रीति, भीति, रोय मिली गरें, रीति कहि दई है॥
प्रभु लै जिवाये रांड भांड कै निकासि द्वार, दै करि किवार, सब पायौ ओप नई है।
वह दुख हियें रह्यौ कह्यौ कैसे जात काहू? बात सुनी नृपहूं नै, जैसी भांति भई है॥ ४६१॥

(ग) जगन्नाथजीद्वारा प्रत्यक्ष हाथ बढ़ाकर हीरेको प्राप्त करना

श्रीअंगदसिंहजीने सोच-विचारकर हीरा भगवान्‌को धारण करानेकी इच्छासे श्रीजगन्नाथपुरीकी ओर प्रस्थान किया। समाचार पाते ही खीझकर राजाने सिपाहियोंको भेजा, उन्होंने आकर इन्हें सब ओरसे घेर लिया। राजपुरुषोंने कहा—'आप हीरा यहीं मेरे सामने रख दीजिये, अन्यथा युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाइये।' यह सुनकर श्रीअंगदजीने कहा—'आपलोग थोड़ा ठहरिये, मैं इस कुण्डमें स्नान करके अभी हीरा दिये देता हूँ।' आपके मनमें तो भगवत्प्रेम ओत-प्रोत था। अतः उन्हें न देकर यह कहते हुए हीरा जलमें डाल दिया कि 'प्रभो! यह आपकी वस्तु है, कृपया आप इसे स्वीकार कीजिये।' प्रेमभरी भक्तकी यह वाणी श्रीजगन्नाथजीको अति प्यारी लगी। आजानुबाहु प्रभुने सात सौ कोस लम्बा हाथ बढ़ाकर उसे ले लिया और अत्यन्त सुख पाकर उसे अपने वक्षःस्थलपर धारण कर लिया।

श्रीप्रियादासजीने अंगदसिंहके इस भगवत्प्रेमका वर्णन अपने कवित्तमें इस प्रकार किया है—

चले नीलाचल, हीरा जाय पहिराय आवैं, आय घेरि लीने नृप नरनि, खिसाय कै।
कही डारि देवौ, कै लराई सनमुख लेवौ बस न हमारौ, भूप आज्ञा आये धाय कै॥
बोले 'नेकु रहौ, मैं अन्हाय पकराय देत, हेत मन और जल डार्‌यौ लै, दिखाय कै'।
बस्तु है तिहारी प्रभु, लीजियै, उचारी यह, बानी लागी प्यारी, उर धारी सुख पाय कै॥ ४६२॥

(घ) अंगदजीके भक्तिभावसे राजाका भी भक्त बन जाना

श्रीअंगदजी उस हीरेको कुण्डमें फेंककर (दुःखित मन) अपने घर आ गये। उधर राजपुरुष लोग जलमें कूद पड़े और हीरेको ढूँढ़ने लगे। महान् प्रयत्न करनेपर भी जब वह हीरा उन्हें न मिला तो वे लोग व्याकुल हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये। समाचार पाकर राजा भी वहीं आ गया। उसने कुण्डका सब पानी बाहर निकलवाया। फिर भी जब हीरा न मिला तो कीचमें ढुँढ़वाया। कीचमें भी न मिलनेपर राजा दुःखसागरमें डूब गया। इधर श्रीजगन्नाथजीने अपने पण्डोंको आज्ञा दी कि तुम जाकर अंगदसिंहजीसे कह दो कि तुम्हारा हीरा प्रभुको मिल गया है और उन्होंने धारण कर लिया है। इस मंगलमय समाचारको पण्डोंने आकर सुनाया तो इन्हें इतना आनन्द हुआ कि अपने शरीरकी सुधि-बुधि न रही। श्रीअंगदसिंहजीने पुरीमें जाकर देखा तो वही हीरा भगवान्‌के हृदयपर जगमगा रहा है।

श्रीअंगदजीके इस भक्तिके चमत्कारको देख-सुनकर राजाके हृदयमें महान् दुःख था। उसने अन्न खाना छोड़ दिया तथा ब्राह्मणोंको उन्हें लिवा लानेके लिये श्रीजगन्नाथपुरीको भेजा और उनसे कहा कि जैसे भी हो, किसी-न-किसी प्रकारसे आपलोग लिवा लाओ। यदि वे मेरे नगरमें आयें तो मैं अपने बड़े भाग्य मानूँगा। ब्राह्मणोंने राजाके कथनानुसार पुरीमें जाकर श्रीअंगदजीसे राजाके दुःखको सुनाया और प्रार्थना की कि 'अब आप वहीं पधारो।' ये किसी भी तरहसे जब आनेको तैयार न हुए, तब ब्राह्मण लोग धरना देकर पड़ गये। तब श्रीअंगदजीको दया आ गयी और राजाके दुःखको दूर करनेके लिये आप चल दिये। जब आप नगरके समीप आये तो राजाने सुना। तत्काल दौड़कर आया और इनके चरणोंमें लिपट गया। आपने उसे छातीसे लगा लिया। आँखोंसे आँसू बहने लगे। राजाने अपना सर्वस्व आपके श्रीचरणोंमें समर्पित कर दिया। इस प्रकार नव-जीवन प्राप्तकर जीवनपर्यन्त राजाने हरिभक्तिमय आचरण किया।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

ऐतौ घर आये, वे तो जलमधि कूदि छाये, अति अकुलाये, नेक खोज हूँ न पायौ है।
राजा चलि आयौ, सब नीर कढ़वायौ, कीच देखि मुरझायौ, दुःख सागर अन्हायौ है॥
जगन्नाथ देव आज्ञा दई, 'वाहि सुधि देवौ' आयकै सुनाई नर तन बिसरायौ है।
गयौ, जाय देख्यौ उर पर जगमग रह्यौ लह्यौ सुख नैनन कौ, कापै जात गायौ है॥ ४६३॥
राजा हिय ताप भयौ, दयौ अन्न त्यागि, कह्यौ आवै जोपै भाग मेरे ब्राह्मन पठाये हैं।
धरनौ दै रहे कहे नृप के वचन सब, तब ह्वै दयाल आप पुर ढिग आये हैं॥
भूप सुनि आगे आय पांय लपटाय गयौ लयौ उप लाय दृग नीर लै भिजाये हैं।
राजा सरबसु दियौ जियौ हरिभक्ति कियौ हियौ सरसायौ गुन जाने जिते गाये हैं॥ ४६४॥

श्रीचतुर्भुजजी

भक्तागमन सुनत सनमुख जोजन इक जाई।
सदन आनि सतकार सदृस गोबिंद बड़ाई॥
पाद प्रछालन सुहथ राय रानी मन सांचैं।
धूप दीप नैबेद्य बहुरि तिन आगें नाचैं॥
यह रीति करौलीधीस की तन मन धन आगें धरै।
चत्रभुज्ज नृपति की भगति कौं कौन भूप सरवरि करै॥ ११४॥

कौन ऐसा राजा है जो करौलीनरेश श्रीचतुर्भुजजीकी सन्त-सेवाकी बराबरी कर सके। आप ऐसे निष्ठावान् सन्तसेवी थे कि भगवद्भक्तका आगमन सुनकर उसकी अगवानी करनेके लिये चार कोसतक जाते थे और अति आदरके साथ उन्हें अपने महलमें लाकर भगवान्‌के समान भक्तका आदर-सत्कार करते थे। अपनी रानीके समेत राजा अपने हाथोंसे भक्तोंके श्रीचरणोंका प्रक्षालन करके चरणामृत लेते। चन्दन, फूलमाला, धूप, दीप एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैवेद्य आदि सभी उपचारोंसे पूजन करते। उसके बाद उन्हें सिंहासनपर बैठाकर उनके सामने नृत्य-कीर्तन करते। राजाकी रीति थी कि अपना तन-मन और धन सर्वस्व उन्हें समर्पित करते। सन्तोंका आदर करनेवाला ऐसा कोई भक्त-राजा नहीं, जिससे इनकी तुलना की जाय॥ ११४॥

श्रीचतुर्भुजजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीचतुर्भुजजी करौलीके राजा थे, अपने-अपने नगरके चारों ओर चार-चार कोसपर चौकियाँ बना दी थीं, वहाँ राजपुरुषोंको नियुक्त कर आज्ञा दी कि जब कोई भगवद्भक्त आयें तो उनको वहीं ठहराकर उनका स्वागत-सत्कार करो, फिर शीघ्र मुझे सूचित करो। सूचना पाकर राजा स्वयं जाते और बड़े आदर-सत्कारके साथ उन्हें अपने महलमें लिवाकर ले आते। माला-तिलकधारीमात्र कोई भी भक्त द्वारपर आ जाते तो उनको भी सच्चा भक्त मानकर उनकी सेवा-पूजा करते थे। एक राजाने करौलीधीशकी यह अद्भुत भक्ति एवं भक्तोंकी सेवाकी सुन्दर कथा सुनी तो उसने अपनी सभामें कहा कि यदि पात्र और अपात्रका विचार ही नहीं है तो ऐसा दान-सत्कार प्रशंसनीय नहीं है। उस राजाने इस प्रकार बात-ही-बातमें श्रीचतुर्भुजजीकी महिमाको उड़ा दिया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीचतुर्भुजजीकी सन्तनिष्ठा और इस घटनाको इस प्रकार वर्णित किया है—

पुर ढिग चारौ ओर चौकी राखी जोजन पै जो जन ही आवै तिन्है ल्यावत लिबायकै।
मालाधारीदास मानि, आवै कोऊ द्वार जो पै, करै वही रीति सो सुनाई छप्पय गायकै॥
सुनी एक भूप भक्त निपट अनूप कथा, सबकों भंडार खोलि देत, बोल्यौ धायकै।
पात्र औ अपात्र यों विचारही जौ नाहीं, तौ पै कहा ऐसी बात? दई नेकु मैं उड़ायकै॥ ४६५॥

(क) चतुर्भुजजीकी भक्तनिष्ठाकी परीक्षा

राजा श्रीचतुर्भुजजीके आलोचक राजाके दरबारमें एक भक्तराज ब्राह्मणदेव थे। वे श्रीमद्भागवतजीकी कथा कहा करते थे। उन्होंने राजासे कहा—'राजन्! करौलीधीशके सम्बन्धमें आप ऐसा न सोचिये कि वे पात्र-अपात्रका विवेक नहीं रखते। भक्तके हृदयमें प्रवेश करके उसके आशयको समझनेमें कौन समर्थ हो सकता है।' जब ब्राह्मणदेवने यह बात कही, तो उस राजाने श्रीचतुर्भुज राजाकी परीक्षा लेनेके लिये भक्ति-भावसे हीन एक भाटको भेजा। उसको माला-तिलक वस्त्र आदि देकर कहा कि करौलीधीशके द्वारपर जाकर अपनेको भगवान्का भक्त बतलाना। राजाज्ञासे भाट श्रीचतुर्भुजजीके यहाँ गया, परंतु वहाँ भक्तवेष-भूषा धारण करना, अपनेको भक्त कहना भूल गया और राजवंशकी महिमाका वर्णन करने लगा। सब लोगोंने उसे भाट समझकर यथोचित व्यवहार किया। अब वह भीतर कैसे जाने पाता।

एक मास बाद उसे स्मरण हुआ कि मुझे साधुवेष धारणकर राजा चतुर्भुजजीकी परीक्षा लेनेको कहा गया है। फिर क्या था उसने माला-तिलक धारणकर राजद्वारपर जाकर कहा कि—'राजासे कह दो कि एक कोई भगवद्भक्त आये हैं।' द्वारपालोंने कहा—'महात्मन्! आप निःशंक-निस्संकोच भीतर राजमहलमें जाइये, आपके लिये रोक नहीं है। यह सुनकर वह भाट भीतर चला गया। श्रीचतुर्भुजजीने भक्तवेष देखकर उसका अपनी रीतिके अनुसार खूब स्वागत-सत्कार किया। राजाने भक्तिचर्चा छेड़कर अच्छी प्रकारसे समझ लिया कि इनमें भक्तिकी किंचित् गन्ध भी नहीं है और किसीने मेरी परीक्षा लेने भेजा है। फिर राजाने अपनी वेषनिष्ठासे उस भाटके लिये भण्डार खोल दिया और प्रार्थना की कि आप इच्छानुसार धन ले लीजिये, सर्वस्व आपका ही है। उस भाटने मनमाना सोना-चाँदी आदि बहुत-सा धन बाँध लिया। तब चलते समय राजाने उसे कीमती गोटेसे जड़ी हुई तथा सुन्दर जड़तारी वस्त्रमें लिपटी हुई एक कौड़ी डिब्बेमें रखकर उसे भेंट करके प्रणाम किया'।

वह भाट करौलीसे लौटकर अपने राजाके पास आया और उसने भरी राजसभामें सब समाचार सुनाकर जो धन लाया था, उसे दिखाया। बादमें डिब्बा भी दिया। राजाने डिब्बा खोला और जड़ाऊ कपड़ेमें लिपटी एक कानी कौड़ी देखी। रातमें पण्डितजीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास आकर सब बात बताकर कौड़ी देनेका रहस्य पूछा। पण्डितजीने झट अनुमान करके बताया कि 'भक्त राजा चतुर्भुजजीके मनका भाव यह है कि इस भाटका ऊपरी साधुवेष जरीके समान अति मूल्यवान् और आदरणीय है, परंतु भीतर कानी कौड़ीके समान तुच्छ परीक्षाका भाव है।'

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भागवत गावै, भक्त भूप एक बिप्र तहाँ बोलिकैं सुनावै 'ऐसी मन जिन ल्याइयै'।
पावै आसै कौन हृदय भौन में प्रवेस करि? भरि अनुराग कहा उर मधि आइयै?॥
करी लै परीक्षा भाट बिमुख पठाय दियौ, 'दियौ भाल तिलक द्वार दास यों सुनाइयै'।
गयौ, गयौ भूलि, फूलि कुल विस्तार कियौ लियौ पहिचानि अब जान कैसे पाइयै॥ ४६६॥
बीते दिन बीस तीस, आई वह सीख सुधि, कही 'हरिदास' कोऊ आयौ, यों सुनाइयै।
बोले जू निसंक जावौ, गावौ गुन गोबिन्दके, आये घर मध्य, भूप करी जैसी भाइयै॥
भक्ति के प्रसंग कौ न रंग कहूँ नेकु जान्यौ, जान्यौ उनमान सों परीक्षा मँगवाइयै।
दियौ लै भंडार खोलि, लियौ मनमान्यौ, दई संपुटमें कौड़ी डारि, जरी लपटाइयै॥ ४६७॥
आयौ वही राजा पास, सभामें प्रकाश कियौ, लियौ धन दियौ, पाछे सोई लै दिखायौ है।
खोलि कै लपेटा मध्य सम्पुट निहारि कौड़ी, समुझि बिचारै हारै मन में न आयौ है॥
बड़ौ भागवत विप्र पंडित प्रबीन महा, निसि रस लीन जानि आयकै बतायौ है।
कर्‍यौ उनमान, भक्त मानिबौ प्रमान जरी मूंदिकैं पठाई, ताहि गुण समझायौ है॥ ४६८॥

(ख) राजाका मैना पक्षीद्वारा चतुर्भुजजीकी भक्तिके प्रभावको जानना

भक्त पण्डितजीके श्रीमुखसे जरीलिपटी कौड़ीके रहस्यको जानकर राजाने कहा—'महाराजजी! आपने अति उत्तम बात कही, परंतु मेरी इच्छा है कि आप स्वयं करौली जायँ और श्रीचतुर्भुजजीकी भक्तिका वास्तविक तत्त्व लेकर आयें।' पण्डितजी करौली गये। उनका शुभागमन सुनते ही दौड़कर राजा चतुर्भुजजी उनके पैरोंमें लिपट गये। महलोंमें ले जाकर प्रेमभावमें भरकर नित्य उनकी सेवा-पूजा करने लगे। कथा-वार्ता होती तो दोनों ही प्रेमानन्द-सागरमें डूब जाते। पण्डितजी वहाँसे चलना चाहते, परंतु राजा अनुनय-विनय करके रोक लेता और नित्य नये प्रेम-प्रसंग उपस्थितकर उन्हें सुख प्रदान करता। अन्तमें जब पण्डितजी विदा होने लगे तो दोनोंको वियोगका असह्य दुःख हुआ। राजाने अपना खजाना खोलकर यथेच्छ धन लेनेकी प्रार्थना की, परंतु पण्डितजीने कुछ भी नहीं लिया और कहा कि मुझे तो आपकी प्रीति-प्रतीतिने रिझा लिया है। उसके सामने धन क्या चीज है? राजाने कहा—'महाराजजी! कुछ तो स्वीकारकर हमें कृतार्थ कीजिये।' राजाके विशेष आग्रहपर पण्डितजीने कहा कि 'आपके राजभवनमें जो तोता और मैना हैं, इनमेंसे एक मुझे दे दीजिये।' ये दोनों पक्षी राजाको अत्यन्त प्रिय थे। अतः उनके वियोग भयसे राजा व्यथित हुए। अन्तमें उन्होंने मैनाको पण्डितजीके साथ भेज दिया।

करौलीसे चलकर पण्डितजी उस मैनाको लिये हुए उस राजाके दरबारमें आये। वह तो राजदरबार था। वहाँ सभी प्रकारके संसारी लोग आते-जाते थे। लोग बहस करनेमें व्यस्त थे। उन बातोंको सुनकर फटकारती हुई मैना बोल उठी—'अरे माटीके धोधाओ! कृष्ण कहो, कृष्ण कहो।' तब राजाने पण्डितजीसे पूछा कि 'बताइये महाराज! राजा चतुर्भुजजीका भक्ति-भाव कैसा है?' पण्डितजीने कहा—'राजन्! इस मैनासे आप ही वहाँका रहस्य समझ लें। उस समाजमें रहनेवाले इस पक्षीको भी भगवान् प्राणोंसे प्रिय हैं। मैं करोड़ों जीभोंको पाकर उनसे श्रीचतुर्भुजजीकी महिमाका वर्णन करूँ तो भी उसका पार नहीं पा सकता हूँ।' करौलीनरेशकी भक्तिका रहस्य पाकर वह राजा श्रीचतुर्भुजजीके पास आया और उनके श्रीचरणोंमें सिर रखकर उसने उन्हें प्रणाम किया, फिर उस मैनाको वापस करते हुए बोला—भक्तराज! इस भक्त मैनाको आप ही अपने महलोंमें रखिये, इसके तन-मनमें भगवान् श्यामसुन्दर रमे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

राजा रीझि पांव गहे, कहे 'जू बचन नीके ऐपै नेकु आप जाय तत्त्व याकौ ल्याइयै'।
आये, दौरि पांव लपटाय भूप भाय भरे, परे प्रेमसागर में, चरचा चलाइयै॥
चलिबे न देत, सुख देत चले लोलमन, खोलिकै भंडार दियौ लियौ न रिझाइयै।
उभै सुवा सारौ कही एक कर धारौ मेरे दई अकुलाय लई मानौ निधि पाइयै॥ ४६९॥
आयौ राजसभा, बहुबातनि अखारौ जहां, बोलि उठी सारौ 'कृष्ण कहौ' झारि डारे हैं।
पूछैं नृप 'कहौ,' 'अहौ! लहौ सब याही सों जू, पच्छी वा समाज रहै हरि प्रानप्यारे हैं'॥
कोटि कोटि रसना बखानौं पै न पाऊँ पार, सार सुनि भक्ति, आय सीस पांव धारे हैं।
'राखौ यह खग पगि रह्यौ तन मन श्याम,' अति अभिराम रीति मिले औ पधारे है॥ ४७०॥

भक्तिमती श्रीमीराजी

सदृस गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायो।
निरअंकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो॥
दुष्टनि दोष बिचारि मृत्यु को उद्यम कीयो।
बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो॥
भक्ति निसान बजाय कै काहूँ ते नाहिन लजी।
लोक लाज कुल सृंखला तजि मीराँ गिरिधर भजी॥ ११५॥

भक्तिमती श्रीमीराबाईने इस कराल कलिकालमें गोपियोंके समान श्रीकृष्णप्रेमको अपनेमें प्रकट करके उसका दूसरोंको भी दर्शन करा दिया। स्वच्छन्द और निडर होकर रसिकशेखर श्रीराधाश्यामसुन्दरके सुयशको गाया। दुष्टों (राणा)-ने इस प्रकारकी भक्तिको अनुचित माना और सोच-विचारकर इनकी मृत्युका उपाय किया। इन्हें पीनेके लिये विष दिया, उसे ये अमृतकी तरह पी गयीं। भगवान्‌की कृपासे आपका बाल भी बाँका नहीं हुआ। भक्तिका डंका बजाकर आपने बिना किसी लोक-लज्जा और संकोचके कुल-मर्यादाके बेड़ी-बन्धनोंको त्यागकर श्रीगिरिधर गोपालजीका भजन किया॥ ११५॥

भक्तिमती श्रीमीराबाईके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

(क) कृष्णप्रेमकी अनन्यता

भक्तिमती श्रीमीराबाईकी जन्मभूमि मेड़ता नगर (जोधपुर)-में थी। बाल्यकालसे आप श्रीगिरिधारी-लालजीकी भक्त हो गयी थीं। उसके बाद चित्तौड़के राणा साँगाके सुपुत्र श्रीभोजराजजीसे आपकी सगाई हुई। विवाहके समय आपके पिताजीने नयी-नयी सुन्दर मूल्यवान् वस्तुएँ एकत्र कीं। परंतु श्रीमीराबाईका मन तो प्रेमरंगरँगीले श्यामसुन्दरमें डूब चुका था। जिस समय श्रीभोजराजजीके साथ भाँवरें पड़ रही थीं, उस समय भी आपका मन साँवरे श्रीकृष्णके सुन्दर स्वरूपमें फँसा हुआ था। विवाहके पश्चात् जब विदा होकर ससुराल जानेका समय आया तो उस समय इन्हें प्रेमके आवेशमें मूर्च्छा-सी आ गयी। इनकी ऐसी विह्वल दशाको देखकर पिताजी कहने लगे कि 'बेटी! मनमें किसी प्रकारका दुःख न मानो, जो वस्त्र एवं आभूषण तुम्हें प्रिय हों, ले लो।' उस समय आपके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे, आपने पिताजीको उत्तर दिया कि 'इस धन-दौलतसे मुझे क्या काम? आपलोग यदि हमें इच्छित वस्तु देकर सब प्रकारसे सन्तुष्ट करना चाहते हैं तो श्रीगिरिधारी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लालजीको मुझे दे दीजिये। इसके अतिरिक्त और सब धन-माल-सामान उठाकर रख लीजिये।' पिता-माताको बेटी मीरा बहुत प्यारी थी। अत: मीराजीकी माताने रोते-रोते श्रीमीराजीको अपने गलेसे लगा लिया और कहा कि 'श्रीगिरिधारीलालजीको तुम अपने साथ ले जाओ, खूब प्रेमसे इनकी सेवा-पूजा करो।' श्रीमीराजीने अपनी पालकीमें अपने सामने श्रीगिरिधरलालको पधरा लिया और उनके नेत्रोंसे नेत्र मिलाती हुई चलीं। अपने प्राणपति श्रीठाकुरको पाकर आनन्दमग्न श्रीमीराजी अपने मनमें फूली नहीं समाती थीं। इस प्रकार वे राणा भोजराजके भवनोंमें पहुँच गयीं। सासने इन्हें पालकीसे उतारा। रुचिपूर्वक वर-दुलहिनकी गाँठ जोड़ी गयी और उन्हें देवीके मन्दिरमें लाया गया।

देवीजीके मन्दिरमें पहुँचकर सासने देवी-पूजाकी तैयारी की। पहले उसने वरसे देवीका पूजन करवाया। उसके बाद मीराजीसे कहा—'वधू! अब देवीकी पूजा करो।' श्रीमीराजीने कहा—'हमारा यह मस्तक तो श्रीगिरिधारीलालजीके हाथ बिक चुका है, अब यह किसी दूसरे देवी-देवताके लिये नहीं झुक सकता है। मेरे मनमें एक उन्हींको देखनेकी—प्रणाम करनेकी अभिलाषा है।' यह सुनकर सासने कहा—'कुलपूज्या देवीजी हैं, इनकी पूजा करनेसे नारियोंका सौभाग्य बढ़ता है। इसलिये तुम हठ न करो, श्रीदेवीजीके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम करो।' श्रीमीराजीने सासके हठ करनेपर बार-बार यही कहा कि आप इसे निश्चय करके मान लो कि 'मैंने सुकुमार भगवान् श्यामसुन्दरके श्रीचरणोंमें अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है। अब अन्यका पूजन या प्रणाम मुझसे नहीं होगा।'

श्रीप्रियादासजीने मीराके श्रीकृष्णप्रेमकी इस अनन्यताका वर्णन इस प्रकार किया है—

'मेरतौ' जनम भूमि, झूमि हित नैन लगे, पगे गिरिधारी लाल, पिता ही धाम में।
राना कै सगाई भई, करी व्याह सामा नई, गई मति बूड़ि, वा रँगीले घनश्याम में॥
भांवरैं परत मन सांवरे सरूप मांझ, तांवरैं सी आवैं, चलिबे कौ पति ग्राम में।
पूछैं पिता माता 'पट आभरन लीजियै जू' लोचन भरत नीर कहा काम दाम में॥ ४७१॥
'देवौ गिरिधारीलाल, जौ निहाल कियौ चाहौ, और धन माल सब राखियै उठाय कै'।
बेटी अति प्यारी, प्रीति रंग चढ्यौ भारी, रोय मिली महतारी, कही 'लीजियै लड़ाय कै'॥
डोला पधराय, दृग दृग सो लगाय चलीं, सुख न समाय चाय, प्रानपति पाय कै।
पहुँचीं भवन सासु देवी पै गवन कियौ तिया अरु बर गँठजोरौ कर्‌यौ भाय कै॥ ४७२॥
देवी के पुजायबेकौं, कियौ लै उपाय सासु, वर पै पुजाइ, पुनि बधू पूजि भाखियै।
बोली 'जू बिकायौ माथौ लाल गिरिधारी हाथ और को न नवै, एक वही अभिलाखियै'॥
'बढ़त सुहाग याके पूजे ताते पूजा करौ करौ जिन हठ सीस पायनि पै राखियै'।
कही बार बार 'तुम यही निरधार जानौ वही सुकुमार जापै वारि फेरि नाखियै'॥ ४७३॥

(ख) मीराद्वारा विषपान

श्रीमीराजीका दो टूक उत्तर सुनकर उनकी सास मन-ही-मन जल-भुन गयी। अपने पतिके पास जाकर उसने कहा—'यह बहू तो मेरे किसी कामकी नहीं है। अभी मेरा कहा न मानकर, उलटा जवाब देकर मेरा अपमान किया तो आगे चलकर मुझे क्या मानेगी?' यह कहकर वह लोहारकी धौंकनीकी तरह जोर-जोरसे लम्बी साँसें लेकर सिसकने लगी। उसकी बातोंको सुनकर राणाजीको भारी क्रोध आया और उसने अपने मनमें बहूको मार डालनेका निश्चय किया। श्रीमीराको रहनेके लिये अब उसने अलग एक कोठरी दे दी। एकान्त स्थान देखकर इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ वे अपने श्रीगिरिधरलालको दिन-रात लाड़-लड़ाती रहतीं तथा सेवा-पूजा करते हुए उन्हींके गुणोंका गान करती रहतीं। जिन्हें श्यामसुन्दरसे मिलनेकी तीव्र उत्कण्ठा होती है, उन्हें सन्तोंका सत्संग ही अच्छा लगता है। श्रीमीराजी भी सदा साधुओंका संग करतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमीराजीको सन्तोंका संग करते देखकर किसी दिन उनकी ननद, जिसका नाम ऊदाबाई था, उसने आकर कहा—'भाभी! तुम समझती क्यों नहीं हो, साधुओंसे प्रेम करनेमें कुलको बड़ा भारी कलंक लगता है। राणाजी देशके राजा हैं, तुम्हारे इस स्वच्छन्द आचरणसे उन्हें लज्जित होना पड़ रहा है और तुम्हारे पितृकुलकी जो रीति है, वह भी नष्ट हो रही है, इसलिये मेरी बात मान लो। साधुओंका संग करना शीघ्र ही छोड़ दो।' श्रीमीराजीने उत्तरमें कहा—'मेरे प्राण सदा साधुओंके साथ लगे रहते हैं। इसलिये उनके संगमें मुझे अपार सुख प्राप्त होता है। मेरे आचरणोंसे जिसे दुःख होता हो, उसे मुझसे बिलकुल अलग रखो।' इनकी यह बात सुनकर राणाने (दयाराम पण्डाके हाथ) एक कटोरा विष भगवच्चरणामृत कहकर भेज दिया। श्रीमीराजीने प्रसन्नतापूर्वक पी लिया। पी लेनेके बाद इनके अंगमें एक विशेष प्रकारकी कान्ति दिखलायी पड़ने लगी।

श्रीप्रियादासजीने मीराजीकी भगवच्चरणामृतनिष्ठाका इस प्रकार वर्णन किया है—

तब तौ खिसानी भई, अति जरि बरि गई, गई पति पास 'यह बधू नहीं काम की'।
अबही जबाब दियौ, कियौ अपमान मेरौ, आगे क्यों प्रमान करै? भरै स्वास चाम की॥
राना सुनि कोप कर्‍यौ, धर्‍यौ हिये मारिबोई, दई ठौर न्यारी, देखि रीझीमति बाम की।
लालनि लड़ावै गुन गाय कै मल्हावै, साधु संगही सुहावै, जिन्हैं लागी चाह स्याम की॥ ४७४॥
आय कै ननँद कहै 'गहै किन चेत भाभी! साधुनि सों हेत में कलंक लागै भारियै'।
राना देसपति लाजै, बाप कुल रीति, जात, मानि लीजै बात बेगि सङ्ग निरवारियै॥
'लागे प्रान साथ संत, पावत अनन्त सुख, जाको दुख होय, ताको नीके करि टारियै'।
सुनिकै, कटोरा भरि गरल पठाय दियौ, लियौ करि पान रंग चढ्यो यों निहारियै॥ ४७५॥

(ग) मीराजीका कृष्णप्रेम

श्रीमीराजी जब विष पीकर भी नहीं मरीं और उन्होंने साधु-संगको नहीं छोड़ा, तब राणाने अपने गुप्तचर लगा दिये। उनसे कह दिया कि 'जब मीराके पास कोई साधु आकर बैठा हो, तभी तुमलोग मुझे सूचना देना। मैं उसी समय उसे मार डालूँगा। यह मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है।' श्रीमीराजीके भवनमें तो श्रीगिरिधरलालजी नित्य ही विराजते थे। ये उन्हींके साथ हँसती-बोलती और खेलती रहती थीं। एक दिन हँसने-बोलनेकी प्रिय ध्वनि गुप्तचरोंके कानोंमें पड़ी। उन्होंने झट राणाको खबर कर दी। सुनते ही राणा अत्यन्त अधीर हो गये। तलवार लेकर जल्दी-जल्दी दौड़े आये और द्वारपर उन्होंने पुकारकर कहा—'किवाड़ खोलो।' श्रीमीराजीने किवाड़ खोल दिये। राणाको कोई साधु नहीं दिखलायी पड़ा। वहाँ अकेली वे ही थीं।

राणाने फटकारते हुए उनसे पूछा—जिसके प्रेमरंगमें तू रँगी है, जिसके साथ हँस-बोलकर अनेक प्रकारसे रमण कर रही थी, वह मनुष्य कहाँ गया, मुझे जल्दी बता? श्रीमीराने श्रीठाकुरजीकी ओर संकेत करके कहा—वह मेरे प्राणनाथ पुरुषोत्तम तुम्हारे सामने ही तो विराज रहे हैं। वे तुमसे लज्जा नहीं करते हैं, अब तुम भी आँखें खोलकर देख लो। क्या ही सुन्दर साज-शृंगारसे सजे हैं। राणा खिसिया गये, किंकर्तव्यविमूढ होकर ऐसे स्तब्ध हो गये, मानो दीवालपर कोई चित्र बना हो। थोड़ी देर बाद वहाँसे वापस लौट आये। क्षणभरके लिये उसके मनमें आया कि 'मीराके साथ ठाकुरजी ही लीला कर रहे थे।' फिर भी राणाके मनमें सद्भाव उत्पन्न नहीं हुआ।

श्रीप्रियादासजीने मीराके इस श्रीकृष्णप्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

गरल पठायौ, सो तौ सीस लै चढ़ायौ, संग त्याग विष भारी ताकी झार न संभारी है।
राना ने लगायौ चर, बैठे साधु ढिग ढर, तबही खबर कर, मारौं यहै धारी है॥
राजैं गिरिधारीलाल, तिनहीं सों रङ्ग जाल, बोलत हँसत ख्याल, कानपरी प्यारी है।
जायकै सुनाई, भई अति चपलाई आयौ लिये तरवार, दै किवार, खोल न्यारी है॥ ४७६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जाके संग रंग भींजि, करत प्रसंग नाना, कहा वह नर गयौ, बेगि दै बताइयै'।
'आगे ही बिराजै, कछू तोसो कही लाजै, अभूंदेखि सुख साजै, आंखैं खोलि दरसाइयै'॥
भयोई खिसानौ राना, लिख्यौ चित्र भीत मानो, उलटि पयानौ कियौ, नेकु मन आइयै।
देख्यौ हूं प्रभाव ऐपै भाव में न भिद्यौ जाइ, बिना हरिकृपा कहौ कैसे करि पाइयै॥ ४७७॥

(घ) मीराजीके सतीत्वकी परीक्षा

एक बार एक कामी नीच मनुष्य साधुका-सा वेष धारणकर श्रीमीराजीके पास आया और बोला—'तुम्हारे ठाकुर श्रीगिरिधारीलालजीने स्वयं मुझे आज्ञा दी है कि मीराके साथ अंग-संग करो। इसलिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ, तुम मेरे साथ अंग-संग करो।' ऐसी बात जब उसने कही तो श्रीमीराजीने उत्तर दिया कि 'आज्ञा स्वीकार है, परंतु प्रथम आप भोजन कीजिये। फिर आपकी यथोचित सेवा होगी।' उसने भोजन किया। पश्चात् श्रीमीराजीने सन्तोंके बीचमें शय्या बिछाकर उस विषयी पुरुषको बुलाकर कहा—'मेरे ठाकुरजीने जैसी आज्ञा आपको दी है, वैसा ही कीजिये।' वह बड़े भारी संकोचमें पड़ गया और उसका मुख सफेद हो गया। श्रीमीराजीकी भक्तिके प्रतापसे उसकी विषय-वासना सर्वथा दूर हो गयी। वह तत्काल पैरोंमें गिर गया और रोता हुआ बोला—'अब आप मुझे भक्तिका दान दीजिये।'

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

विषई कुटिल एक भेष धरि साधु लियौ, कियौ यों प्रसंग 'मोसो अंग संग कीजियै'।
आज्ञा मोंको दई आप लाल गिरिधारी, 'अहौ सीस धरि, लई, करि भोजन हूँ लीजियै'॥
संतनि समाज में बिछाय सेज बोलि लियौ, 'संक अब कौन की निसंक रस भीजियै'।
सेत मुख भयौ, विषैभाव सब गयौ, नयौ पांयन पै आय, 'मोकौ भक्तिदान दीजियै'॥ ४७८॥

(ङ) मीराजीका रणछोड़में विलीन होना

श्रीमीराजीके विलक्षण रूप-सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनकर अकबर बादशाहका हृदय आकृष्ट हो गया। इनका दर्शन करनेकी इच्छासे वह तानसेनको साथ लेकर आया। श्रीगिरिधरगोपालजीकी छवि एवं मीराजीके भक्ति-भूषित सहज-सरस सौन्दर्यको देखकर बादशाह निहाल हो गया। तानसेनने एक सुन्दर पद गाया और बादशाहने एक मणिमाला श्रीठाकुरजीके चरणोंमें अर्पण की। श्रीमीराबाईजी श्रीवृन्दावनधाम आयीं और श्रीजीवगोस्वामीजीसे मिलकर उनसे सत्संगकर बहुत सन्तुष्ट हुईं। उनके स्त्री-मुख न देखनेके प्रणको आपने छुड़ा दिया। श्रीवृन्दावनकी सभी कुंजें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके विहारसुख-समूहसे निरन्तर भरी हुई हैं। श्रीमीराजीने उनका दर्शन किया। फिर उन्हें अपने हृदयमें स्थापित करके अपने देशको लौट आयीं। वहाँ रहते हुए आपने श्रीवृन्दावनकी अनुभूत-निकुंज-लीलाका अपने पदोंद्वारा गान किया।

राणाकी द्वेष-बुद्धि देखकर श्रीमीराजी द्वारकामें जाकर बस गयीं। वहाँ रहते हुए श्रीगिरिधर-गोपालजीकी भक्ति करतीं। उधर राणाजीको श्रीमीराजीकी भक्तिके स्वरूपका ज्ञान हुआ तो उन्हें बड़ा भारी मानसिक पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने बहुतसे ब्राह्मणोंको द्वारका भेजा और उनसे कहा कि 'जैसे भी बने आपलोग श्रीमीराबाईको ले आइये। वे आकर मुझे प्राणदान देकर जीवित करें।' ब्राह्मणोंने द्वारका जाकर राणाजीकी विनती सुनायी। परंतु वे द्वारकासे वापस लौटनेको तैयार न हुईं। तब ब्राह्मण अन्न-जल त्यागकर श्रीमीराजीके द्वारपर धरना देकर पड़ गये। ब्राह्मणोंके हठको देखकर इन्होंने कहा—'अच्छा तो मैं श्रीरणछोड़लालजीसे विदा हो आऊँ।' ऐसा कहकर वे मन्दिरमें गयीं। भगवान्‌के सन्मुख विनती करते हुए इन्होंने इस आशयका पद गाया कि 'प्रभो! मुझ दीन-हीनको अपने श्रीचरणोंमें रखिये अथवा त्याग कर दीजिये। जैसी आपकी इच्छा।' पद-कीर्तन एवं नृत्य करते-करते श्रीमीराजी श्रीरणछोड़जीमें लीन हो गयीं। इसके बाद फिर किसीने उनका दर्शन नहीं पाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने मीराके श्रीरणछोड़जीमें विलीन हो जानेकी इस घटनाको इस प्रकार वर्णित किया है—

रूप की निकाई भूप 'अकबर भाई हिये लिये संग तानसेन देखिबेको आयो है'।
निरखि निहाल भयो छवि गिरिधारीलाल पद सुखजाल एक, तब ही चढ़ायो है॥
वृन्दावन आइ, जीव गुसाँई जूसों मिलि झिली, तिया मुख देखिबेको पन लै छुटायो है।
देख कुंज कुंज लाल प्यारी सुखपुंज भरी धरी उर मांझ, आय देस, बनगायो है॥ ४७९॥
राना की मलीन मति, देखि, बसीं द्वारावति, रति गिरिधारीलाल नित ही लड़ाइयै।
लागी चटपटी भूप भक्ति कौ सरूप जानि, अति दुख मानि, बिप्र श्रेणी लै पठाइयै॥
वेगि लै कै आवौ मोकों प्रान दै जिवावौ अहो गये द्वार धरनौ दै बिनती सुनाइयै।
सुनि विदा होन गई राय रणछोर जू पै छाँड़ो राखौ हीन लीन भई नहीं पाइयै॥ ४८०॥

श्रीपृथ्वीराजजी

(श्री) कृष्णदास उपदेस परम तत्त्व परचो पायो।
निरगुन सगुन निरूप तिमिर अग्यान नसायो॥
काछ बाच निकलंक मनौ गांगेय जुधिष्ठिर।
हरि पूजा प्रहलाद धर्मध्वज धारी जग पर॥
पृथीराज परचो प्रगट (तन) संख चक्र मंडित कियो।
आँबेर अछित कूरम्म को द्वारकानाथ दरसन दियो॥ ११६॥

पयोहारी श्रीकृष्णदासजीके उपदेशोंसे आमेरके कूर्मवंशी (कछवाहा क्षत्रिय) राजा पृथ्वीराजको परम तत्त्वका बोध प्राप्त हुआ। उन्होंने निर्गुण-सगुण ब्रह्मका निरूपणकर राजाके अज्ञानान्धकारको नष्ट कर दिया। वे राजा गंगाजीके पुत्र भीष्म पितामहकी तरह जितेन्द्रिय एवं धर्मराज युधिष्ठिरकी तरह सत्यवादी थे। भगवत्पूजा-निष्ठामें प्रह्लादके समान थे। वैष्णवधर्मकी पताकाको ऊँची करके फहरानेवाले एवं संसारसे परे अर्थात् जगत्के प्रपंचोंसे दूर थे। सर्वश्रेष्ठ थे। आपकी भगवद्भक्ति और गुरुभक्तिका यह परिचय सभीको प्राप्त हुआ कि आमेरमें ही रहते हुए आपका शरीर द्वारकाकी शंख, चक्रकी छापसे सुशोभित हो गया और श्रीद्वारकाधीशके दर्शनोंका परम लाभ प्राप्त हुआ॥ ११६॥

श्रीपृथ्वीराजजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

आमेरनरेश श्रीपृथ्वीराजजी स्वामी श्रीकृष्णदासजी महाराज पयोहारीजीके शिष्य थे। एक बार उनकी आज्ञासे वे उनके साथ द्वारकाजीकी यात्राके लिये तैयार हुए। राजाके दीवानने जब यह बात सुनी तो उसे दुःख हुआ। वह रातको एकान्तमें श्रीपयोहारीजी महाराजके पास गया और उसने चुपकेसे कानमें कहा—'महाराजजी! इस समय राजा तन-मन और धनसे साधुओंकी सेवामें लगे हुए हैं, आमेर नगरकी जनतामें भक्तिकी सुन्दर भावना व्याप्त है। राजाके चले जानेसे साधुसेवामें तथा भक्ति-प्रचारमें बाधा होगी। अतः मेरे विचारसे तो आप राजाको साथ न ले जायँ, सो ही ठीक है।' श्रीपयोहारीजीने कहा—'तुम जाओ, मैं राजाको साथ नहीं ले जाऊँगा।' मन्त्रीकी बातको स्वामीजीने राजासे नहीं बताया। प्रातःकाल राजा पृथ्वीराज हाथ जोड़कर श्रीस्वामीजीके सामने खड़े हो गये। तब आपने आज्ञा दी कि 'तुम मेरे साथ न चलकर यहीं आमेरमें ही रहो और साधुसेवा करो।'

राजाने श्रीपयोहारीजीसे प्रार्थना की कि 'प्रभो! मैं श्रीद्वारकानाथजीके दर्शन, श्रीगोमती-संगममें स्नान एवं भुजाओंमें शंख-चक्रकी छाप धारण करूँ, इसीलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप अपने मनमें मुझे भी साथ ले चलनेकी इच्छा कीजिये।' श्रीस्वामीजीने कहा—राजन्! तुम अपने मनमें तनिक भी चिन्ता न करो। दर्शन, स्नान और छाप—ये तीनों लाभ तुम्हें घर बैठे ही मिलेंगे। राजाने कहा—आपने जो आज्ञा दी, उसे मैंने सिरपर धारण कर लिया। इसके बाद श्रीपयोहारीजीने प्रस्थान किया। कहते हैं कि राजाकी भक्तिको देखकर आपने अपनी योगसिद्धिसे आधी रातके समय राजमहलमें प्रकट हो राजाको वहीं श्रीद्वारकाधीशजीके दर्शन करा दिये। राजाने प्रदक्षिणा करके साष्टांग दण्डवत् की। भगवान्ने कहा—मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो—'यह गोमती-संगम है, तुम इसमें स्नान कर लो।' प्रभुकी बात सुनकर राजाने बड़े प्रेमसे स्नान किया, परंतु गोता लगाकर जब बाहर आये तो वहाँ भगवान् नहीं दिखलायी पड़े। शंख-चक्रकी छाप राजाके शरीरमें लगी थी। इधर सोकर उठनेमें राजाको विलम्ब हुआ जानकर रानी उन्हें जगाने आयी। उन्होंने देखा कि राजाका शरीर भीगा हुआ है। कैसे भीगा है, पूछनेपर राजाने कहा—'अभी मैंने श्रीगोमतीजीमें स्नान किया है, तुम भी मेरे शरीर एवं वस्त्रोंमें लगे जलका स्पर्श कर लो और श्रीद्वारकानाथजीको हृदयमें धारण कर लो।' रानीने ऐसा ही करके अपनेको बड़भागिनी माना।

श्रीप्रियादासजीने इस अलौकिक घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

पृथ्वीराज राजा चल्यौ द्वारिका श्रीस्वामी संग, अति रस रंग भर्‌यौ आज्ञा प्रभु पाई है।
सुनिकै दीवान दुख मानि, निसि कान लग्यौ, कही पग्यो साधुसेवा भक्ति घर छाई है॥
देखियै निहारि कै विचार कीजै, इच्छा जोई 'लीजै नहीं साथ जावो, बात लै दुराई है'।
आयौ भोर भूप हाथ जोरि करि ठाढ़ौ रह्यौ कह्यौ, 'रहौ देश' सो निदेस न सुहाई है॥ ४८१॥
'द्वारावतीनाथ देखि गोमती स्नान करौं, धरौं भुज छाप,' आप मन अभिलाखियै।
'चिन्ता जिनि कीजै तीनौं बात इहां लीजे अजू, दीजै जोई आज्ञा सोई सिर धरि राखियै'॥
आये पहुँचाय दूर, नैन जल पूरि बहै, दहै उर भारी 'कहा संग रस चाखियै?'।
बीते दिन दोय, निसि रहे हुते सोइ, भोइ गई भक्ति गिरा आय बानी मधु भाखियै॥ ४८२॥
'अहो पृथ्वीराज' कही, स्वामी ही सी बानी लही, आयौ उठि दौरि वाही ठौर प्रभु देखे हैं।
घूम्यौ कह्यौ कान धरौ, गोमती स्नान करौ, सुनि कै अन्हायौ, पुनि वे न कहुँ पेखे हैं॥
शंख चक्र आदि छाप तन सब व्याप गयी, भई यों अबार रानी आय अवरेखे हैं।
बोले 'रह्यौ नीरमें सरीर, लै सनाथ कीजै, लीजै नाथ हियै', निज भाग करि लेखे हैं॥ ४८३॥

सबेरा होते ही आमेर नगरमें, उसके बाद सम्पूर्ण राज्यमें भक्तिके चमत्कारका शोर मच गया। बहुतसे लोगोंने आकर राजाका दर्शन किया, समाचार पाकर दूर-दूरतकके अनेक बड़े-बड़े सन्त और महन्त दौड़-दौड़कर आये और उन सभीने राजाके शरीरपर शंख-चक्रकी छापके दर्शन करके अत्यन्त सुख पाया। नाना प्रकारकी बहुत-सी वस्तुएँ भेंटमें आने लगीं। सभी लोग राजाके प्रेमकी महिमाको गाते तो उसे सुनकर राजा लज्जित होते। वे अपने मनमें यही सोचते कि 'यह सब भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा है।' लोगोंने भी समझ लिया कि राजापर गुरुगोविन्दकी महती कृपा है। इसके बाद राजाने जहाँपर दर्शन हुआ था, वहीं एक सुन्दर एवं विशाल मन्दिरका निर्माण कराया। वे सदा-सर्वदा सेवा-पूजा, भजनमें ही लगे रहते।

श्रीप्रियादासजीने राजा पृथ्वीराजपर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपाका इस प्रकार वर्णन किया है—

भयौ जब भोर, 'पुर बड़ौ भक्ति सोर पर्‌यौ, कर्‌यौ आनि दरसन भई भीर भारी है'।
आये बहु सन्त, औ महन्त बड़े-बड़े धाये, अति सुख पाये देह रचना निहारी है॥
नाना भेंट आवै, हित महिमा सुनावै, राजा सुनत लजावै, जानी कृपा बनवारी है।
मंदिर करायौ, प्रभु रूप पधरायौ, सब जग जस गायौ, कथा मोकौ लागी प्यारी है॥ ४८४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्रोंसे हीन एक ब्राह्मण श्रीवैद्यनाथजीके द्वारपर नष्ट हुई नेत्र-ज्योतिको प्राप्त करनेके लिये धरना देकर पड़ गया। पड़े-पड़े उसको कई महीने व्यतीत हो गये। श्रीशंकरजीने उसे दो-चार बार स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'हठ छोड़ दो, घरको जाओ, ये नेत्र अब फिरसे तुम्हें नहीं मिलेंगे।' परंतु उस ब्राह्मणने अपना हठ नहीं छोड़ा, द्वारपर पड़ा ही रहा। उसके इस सच्चे हठयोगको देखकर भगवान् शिवने दयासे द्रवित होकर आज्ञा दी कि 'तुम आमेरनरेश पृथ्वीराजके अँगोछेसे अपने नेत्रोंको पोंछो तो तुम्हें नेत्र-ज्योति प्राप्त हो जायगी।' उस अन्धे ब्राह्मणने आकर राजा पृथ्वीराजसे यह बात कही, तो वे ब्राह्मणकी महिमाको विचारकर डर गये कि 'ऐसा करना अनुचित है।' परंतु ब्राह्मणके आग्रह एवं लोगोंके समझानेपर राजाने एक नवीन वस्त्र मँगवाकर उसे अपने शरीरसे छुवाकर ब्राह्मणको दे दिया। आँखोंमें लगाते ही उसे नेत्र-ज्योति प्राप्त हो गयी।

श्रीपृथ्वीराजजीकी भक्तिके प्रभावको व्यक्त करनेवाली इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

विप्र दृगहीन सो अनाथ, बैजनाथ द्वार पर्‌यौ, चख चाहै मास केतिक बिहाने हैं।
आज्ञा बार दोय चार भई 'ये न फेरि होहिं' याको हठसार देखि, शिव पिघलाने हैं॥
'पृथ्वीराज' अंग के अँगोछा सों अँगोछौ जाय, आयकै सुनाई द्विज गौरव डेराने हैं।
नयौ मँगवाय तन छ्वाय दियौ छ्वायौ नैन खुले चैन भयो जन लखि सरसाने हैं॥ ४८५॥

भक्त राजागण

लघु मथुरा मेड़ता भक्त अति जैमल पोषे।
टोड़े भजन निधान रामचँद हरिजन तोषे॥
अभैराम एक रसहिं नेम नीवां के भारी।
करमसि सुरतान भगवान बीर भूपति ब्रतधारी॥
ईस्वर अखैराज रायमल्ल (कन्हर) मधुकर नृप सरबसु दियो।
भक्तनि को आदर अधिक राजबंस में इन कियो॥ ११७॥

राजाओंके वंशमें इन राजाओंने भगवान्‌के भक्तोंकी बहुत अधिक सेवा की। श्रीजयमलजीकी साधुसेवा एवं सन्त-सम्मेलनोंके विशाल आयोजनोंसे उनकी राजधानी मेड़ता दूसरी मथुराके समान जान पड़ने लगी। टोंडे ग्राममें भजनपरायण भक्त श्रीरामचन्द्रजीने भक्तोंकी उत्तम सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट किया। श्रीअभयरामजीने जीवनभर एक समान महती सन्तसेवा की। श्रीनीवांजीका सन्तसेवाका सुदृढ़ व्रत था। श्रीकरमसीलजी, श्रीसुरतानजी, श्रीभगवानजी और श्रीवीरमजी—इन चारों राजाओंने सन्तसेवाके अटल नियमको निभाया। श्रीईश्वरजी, श्रीअक्षयराजजी, श्रीरायमलजी, श्रीकन्हरजी एवं श्रीमधुकरजी—इन सभी राजाओंने भक्तोंकी सेवामें अपना सर्वस्व समर्पित किया॥ ११७॥

इनमेंसे कतिपय भगवद्भक्त राजाओंका चरित इस प्रकार है—

श्रीजयमलजी

राजा श्रीजयमलजी मेंड़ता (जोधपुर)-में रहते थे। श्रीभक्तिदेवीके सुन्दर स्वरूपको जानते थे। आपका अपने ठाकुरजीके प्रति बड़ा अनुराग था। श्रीठाकुरजीका मन्दिर नीचे मंजिलमें है, ऐसा मानकर आपने गर्मीके लिये छतके ऊपर हवादार सुन्दर कमरा बनवाया।

श्रीठाकुरजीके उस शयनागारमें जानेके लिये राजा श्रीजयमलजीने एक लकड़ीकी सीढ़ी बनवायी। उसके द्वारा उसमें जाकर आप स्वयं पुष्पादिकोंसे शय्याकी रचना करते एवं शयन भोग, जल आदि सभी वस्तुएँ यथास्थान रखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे उतर आते और सीढ़ीको वहाँसे हटाकर अलग रख देते, जिससे कोई दूसरा वहाँ जा न सके। कमरेसे थोड़ी दूर अलग बैठकर मन-ही-मन आप ध्यान करते कि लालजी शय्यापर सुखपूर्वक शयन कर रहे हैं। भगवत्सेवाके इस रहस्यको आपकी रानी भी नहीं जानती थी। एक बार रातमें उसने सीढ़ी लगायी और थोड़ा-सा परदा हटाकर झाँककर देखा तो उसे एक सुन्दर सुकुमार किशोर बालक शयन करता हुआ दिखलायी पड़ा। रानी पुनः चुप-चाप उतर आयीं और निसेनीको यथास्थान रखकर महलमें चली गयीं। प्रातःकाल आकर रानीने अपने पतिदेवको सब बात सुनायी और कहा कि मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। राजा श्रीजयमलजीने उसे डाँट-फटकारकर डरा दिया कि फिर कभी ऐसा नहीं करना और मन-ही-मन यह जानकर प्रसन्न हुए कि इसके बड़े भाग्य हैं, जो इसे श्रीलालजीके दर्शन हो गये।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

मेरतें बसत भूप, भक्ति को सरूप जानै, जैमल अनूप जाकी कथा कहि आये हैं।
करी साधुसेवा रीति प्रीति की प्रतीति भई नई एक सुनौ हरि कैसे कै लड़ाये हैं॥
नीचे मानि मन्दिर सो सुन्दर बिचारी बात, छात पर बंगलाके चित्र लै बनाये हैं।
बिबिध बिछौना सेज राजत उढ़ौना पानदान धरि सोंना जरी परदा सिवाये हैं॥ ४८६॥
ताकी दारु सीढ़ी, करि रचना, उतारि धरें, भरैं दूरि चौकि, आप भाव स्वच्छताई है।
मानसी बिचारें 'लाल सेज पग धारें, पान खात लै, उगार डारें, पौढ़े सुखदाई है'॥
तिया हु न भेद जानें, सो निसेनी धरी वानै, देखे को किशोर सोयौ फिरी भोर आई है।
पति को सुनाई, भई अति मन भाई वाकौ खीझि डरपाई जानी भाग अधिकाई है॥ ४८७॥

श्रीरामचन्द्रजी

टोंड़े राजवंशमें उत्पन्न श्रीरामचन्द्रजी बड़े ही सन्तसेवी थे। इन्होंने सन्तसेवामें अपना सर्वस्व लगा दिया। घरमें अन्नके नामपर एक दाना और द्रव्यके नामपर एक आना भी नहीं रहा। तब रात्रिमें भगवान्ने स्वप्न दिया कि तुम्हारे पुराने मकानमें अमुक स्थलपर बहुत बड़ी धनराशि गड़ी है, उसे निकालकर सन्तोंकी सेवा करो। श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा ही किया।

श्रीरायमलजी

श्रीरायमलजी जोधपुरनरेश श्रीराव मालदेवके पुत्र हैं। ये सिवाणाके जागीरदार थे। इनका भगवत्प्रेम अनुपम था। श्रीकल्याणदासजी आपके पुत्र थे, जो बड़े ही वीर और बड़े भक्त थे। परम सन्तसेवी राजा रायमलसे एक दिन इनकी भोली-भाली पत्नीने पूछा—'आप सन्तोंकी सेवा क्यों करते हैं?' इसपर रायमलजीने बताया कि—'सन्तोंकी सेवासे भगवान् प्रसन्न होते हैं। यदि भगवान्का दर्शन करना हो तो सबसे सुगम उपाय सन्तसेवा ही है।' सरलहृदया पत्नी पतिकी बात मानकर भगवद्दर्शनकी अभिलाषासे सन्तसेवा करने लगी। इसके प्रभावसे आकृष्ट होकर भगवान्ने उस महाभागवतीको चतुर्भुजरूप धारणकर दर्शन दिया। श्रीप्रभुका दर्शन पाकर रानी कृत-कृत्य हो गयी। जब दर्शन देकर प्रभु जाने लगे तो रानीने दौड़कर भगवान्का हाथ पकड़ लिया और अत्यन्त दीन होकर बोलीं—'प्रभो! मैंने तो पतिदेवके उपदेशसे आपका दर्शन पाया है, अतः आपने जैसे कृपाकर मुझे दर्शन दिया है, उसी प्रकार मेरे पतिदेवको भी दर्शन दीजिये।' भगवान् हँस पड़े और बोले—'अच्छा शीघ्र जाकर अपने पतिको भी लिवा लाओ।' परम साध्वी पत्नीने शीघ्र अपने पतिको बुलाकर भगवान्का दर्शन कराया।

श्रीमधुकरशाहजी

भक्तराजा श्रीमधुकरशाहजी ओरछाके राजा थे। जैसे मधुकर (भ्रमर) मधुको ग्रहण करता है, उसी प्रकार इन्होंने सार-गुण वैष्णव-वेषको ही ग्रहण किया। आप वैष्णव-वेषमात्रका स्वागत सत्कार करते और उनमें अगाध प्रेम रखते थे। आप केवल ओरछेके भूप नहीं, बल्कि भक्तोंमें भी अति श्रेष्ठ भूप थे। ऐसे वैष्णवोचित आचरणोंसे इनके भाई-कुटुम्बके लोग इनसे द्वेष करते थे। एक बार उन लोगोंने तुलसीकी बहुत-सी मालाओंको गलेमें पहनाकर एक गधेको उनके सामने कर दिया। उसे देखते ही राजाने अपना सौभाग्य मानकर उसको भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणाम करते हुए कहा—'धन्य है, प्रभो! आज आपने इस वैष्णवरूपसे दर्शन देकर मुझ दासको निहाल कर दिया।' द्वेषी लोगोंने जब आपकी ऐसी सच्ची वैष्णव-वेषनिष्ठा देखी तो वे आश्चर्यचकित रह गये। उनके हृदय पश्चात्तापसे द्रवीभूत हो गये। आँसू बहाते हुए आकर उन लोगोंने राजा मधुकरशाहजीके पैर पकड़ लिये। अपराधके लिये क्षमा-याचनाकी और वे भी भगवद्भक्त बन गये।

श्रीप्रियादासजीने राजा मधुकरशाहकी इस सन्तवेश-निष्ठाका वर्णन इस प्रकार किया है—

मधुकरसाह, नाम कियौ लै सफल जातें, भेष गुनसार गहै, तजत असार है।
'ओड़छे' कौ भूप, भक्त भूप, सुखरूप भयौ, लयौ पनभारी जाके और न विचार है॥
कंठी धरि आवै कोय, धोय पग, पीवै सदा, भाई दूखि, खर गर डार्‌यौ मालभार है।
पाँव परछाल, कही 'आज जू निहाल किये', हिये द्रये दुष्ट पांव गहे दृगधार है॥ ४८८॥

श्रीखेमालरत्नजी राठौर

रैना पर गुन राम भजन भागवत उजागर।
प्रेमी प्रेम किसोर उदर राजा रतनाकर॥
हरिदासन के दास दसा ऊँची ध्वजधारी।
निर्भय अननि उदार रसिक जस रसना भारी॥
दसधा संपति संत बल सदा रहत प्रफुलित बदन।
खेमाल रतन राठौर के अटल भक्ति आई सदन॥ ११८॥

श्रीखेमालरत्नजी राठौरवंशीय क्षत्रिय थे, आपके घरमें भक्तिने अचल होकर निवास किया। आपके सुपुत्र श्रीरामरयनजी श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त थे और श्रीरामजीके भजनमें सदा तत्पर रहते थे। आप परम प्रसिद्ध भगवान्के भक्त थे। श्रीखेमालजीके पौत्र श्रीरामरयनजीके पुत्र श्रीकिशोरसिंहजी भगवत्प्रेमियोंसे प्रेम करनेवाले थे। समुद्रके समान गम्भीर हृदयवाले, सद्गुण-रत्नोंके निधान थे। ये सभी भगवद्दासोंके दास थे। प्रेमकी उच्चदशाको प्राप्त इन्होंने उसकी ध्वजाको सर्वदा ऊँचा रखा। ये निर्भय, अनन्य, परम उदार और रसिक थे। रसिक श्रीश्यामसुन्दरके विशाल सुयशको आप जिह्वासे सदा गाते रहते थे। दशधा भक्तिको ही आप अपनी परम सम्पत्ति मानते थे। सन्तोंका बल आपमें था। ये सदा प्रेमविभोर, अतः प्रसन्नमुख रहते थे॥ ११८॥

राजा श्रीरामरयनजी

अजर धर्म आचर्‌यो लोक हित मनो नीलकँठ।
निंदक जग अनिराय कहा (महिमा) जानैगो भूसठ॥
बिदित गँधर्बी ब्याह कियो दुसवंत प्रमानै।
भरत पुत्र भागवत स्वमुख सुकदेव बखानै॥
और भूप कोउ छ्वै सकै दृष्टि जाय नाहिन धरी।
कलिजुग भक्ति कररी कमान रामरैन कैं रिजु करी॥ ११९॥

इस कलियुगमें भक्तिका और धर्मका पालन बहुत कठिन है, परंतु श्रीरामरयनजीने इस कठिन कार्यको बड़ी सरलताके साथ सम्पन्न किया। इन्होंने वैष्णवधर्मका इस विधिसे पालन किया कि उसमें कभी जीर्णता नहीं आयी, वह सदा नवीन बना रहा। श्रीशंकरजीके समान आप सभी लोगोंका कल्याण करनेवाले थे। परनिन्दक, दुष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनका स्वभाव कुत्तेके समान है, वे भला आपकी महामहिमाको कैसे जान सकते हैं! जैसे राजा दुष्यन्तने शकुन्तलासे विवाह किया और उनसे महान् प्रतापी पुत्र श्रीभरतजी परम भागवत हुए, जिनका वर्णन श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजीने किया है, उसी प्रकार आपने गान्धर्व विधिसे अपनी कन्याका विवाह रासबिहारी श्रीकृष्णके साथ किया। आपने जैसी भक्तिका आचरण किया, दूसरे राजा लोग उसे मनमें ला भी नहीं सकते, आचरण करना तो बहुत दूर रहा। इस ओर दृष्टि करके वे लोग देख भी नहीं सकते॥ ११९॥

श्रीप्रियादासजी श्रीरामनयनजीके जीवनमें घटी एक घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

पूनौ मैं प्रकाश भयौ सरद समाज रास विविध विलास नृत्य राग रंग भारी है।
बैठे रस भीजे दोऊ, बोल्यो राम राजा रीझि, भेंट कहा कीजै विप्र कही जोई प्यारी है॥
प्यार को बिचारै न निहारै कहूं नैकु छटा, सुता रूपघटा अनुरूप सेवा ज्यारी है।
रही सभा सोचि, आय जायके लिवाय ल्यायै, वेष सों दिवाये फेरे सम्पतलैवारी है॥ ४८९॥

कवित्तमें बताया गया है कि एक बार शरत्पूर्णिमाकी रातको जिसमें चन्द्रमाकी चाँदनी छिटकी हुई थी, उसमें रासलीलाका भव्य आयोजन हुआ। राजा श्रीरामरयनजी एवं उनकी रानी दोनों रासका दर्शन कर रहे थे। नृत्य-गानको पूर्णकर प्रेमरसमें सराबोर युगलकिशोर सिंहासनपर विराजमान हुए। उस समय राजा रामरयनजीने प्रेम-विभोर होकर अपने मन्त्रियोंसे पूछा कि 'ठाकुरजीको क्या भेंट करना चाहिये।' भक्त ब्राह्मण मन्त्रीने कहा—'राजन्! जो वस्तु आपको सर्वाधिक प्रिय हो, वही प्रभुको अर्पण करना चाहिये।' यह सुनकर राजाने अपने मनमें सोचा—विचारा और निश्चय किया कि 'घनी घटाके समान जिसमें सौन्दर्य छाया है, वही अपनी प्रिय कन्या श्रीठाकुरजीको भेंटमें देने योग्य है।' तत्पश्चात् आप महलमें गये और वस्त्राभूषणोंसे विभूषित अपनी कन्याको लिवा लाये और उसे रासबिहारी श्रीकृष्णको अर्पण कर दिया। पश्चात् विधि-विधानके अनुसार भाँवरें पड़ीं, विवाह हुआ, बहुत-सी सम्पत्ति दहेजमें दी तथा न्यौछावर की।

श्रीरामरयनजीकी रानी

आरज को उपदेस सुतौ उर नीकें धार्‌यो।
नवधा दसधा प्रीति आन धर्म सबै बिसार्‌यो॥
अच्युत कुल अनुराग प्रगट पुरुषारथ जान्यो।
सारासार बिबेक बात तीनों मन मान्यो॥
दासत्व अनन्य उदारता संतन मुख राजा कही।
हरि गुरु हरिदासन्नि सों राम घरनि साँची रही॥ १२०॥

राजा रामरयनजीकी धर्मपत्नी श्रीहरि, गुरुदेव एवं सन्तोंके प्रति सदा सच्ची रही। इन्होंने इनसे कभी छल-कपट नहीं रखा। अपने पतिदेवके उपदेशोंको तो उन्होंने अच्छी प्रकारसे हृदयमें धारण किया। नवधा-दशधा भक्तिके आचरणमें ही इन्हें प्रीति थी। दूसरे लौकिक धर्मोंको बिलकुल भुला दिया। वैष्णवोंसे प्रेम करना ही श्रेष्ठ पुरुषार्थ जाना। सत्‌को ग्रहण और असत्‌को त्याग कर देनेका विवेक आपमें था। दासत्व, अनन्यता और उदारता—ये तीनों बातें आपके मनमें बसी हुई थीं। इसकी प्रशंसा सन्तजन तथा स्वयं राजा रामरयनजी अपने मुखसे करते थे॥ १२०॥

श्रीप्रियादासजीने श्रीरामरयनजीकी रानीके सन्तप्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

आये मधुपुरी राजाराम अभिराम दोऊ, दाम पै न राख्यौ, साधू विप्र भुगताये हैं।
ऐसे ये उदार राह खरच संभार नाहिं, चलबो बिचार भयौ चूरा दीठ आये हैं॥
मुद्रा सत पाँच मोल खोलि तिया आगे धरे दीजै बेचि गये नाभा कर पहिराये हैं।
पति को बुलाइ कही नीके देखि रीझे भीजे काढ़ि कै करज पुर आये दै पठाये हैं॥ ४९०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवित्तमें बताया गया है कि एक बार राजा रामरयनजी तथा उनकी रानी दोनों श्रीमथुराजी आये। साधु-ब्राह्मणोंकी सेवा करते हुए कुछ दिन वहीं रहे। जो धन आप साथमें लाये थे, वह सम्पूर्ण धन साधु-ब्राह्मणोंकी सेवामें समाप्त हो गया, घर वापस जानेके लिये मार्गव्यय भी नहीं बचा। जब वापस लौटनेका विचार हुआ तो उस समय राहखर्चका प्रश्न उपस्थित हुआ। रानीके हाथोंमें जड़ाऊँ कंकण थे, उन्हींपर राजाकी दृष्टि पड़ी। रानीने हाथोंके कंकण उतारकर राजाके आगे रख दिये और कहा कि 'इन्हें बेच दीजिये।' श्रीरामरयनजी उन्हें बेचने बाजारको गये। संयोगवश गोस्वामी श्रीनाभाजी इन्हें मार्गमें मिल गये। इन्होंने प्रसन्न होकर दण्डवत् करते हुए (भेंटस्वरूप या सखी भाव होनेसे) दोनों कंकण उनके हाथोंमें पहना दिये। रानीने महाराजको बुलाकर कहा—'आपने यह बहुत ही अच्छा किया।' रानीकी निष्ठा देखकर राजा उसपर प्रेमविभोर हो गये। इसके पश्चात् किसीसे कर्ज लेकर आप अपने नगरको वापस आये और उसको धन भेजकर कर्ज चुकता किया।

श्रीकिशोरसिंहजी

पायनि नूपुर बाँधि नृत्य नगधर हित नाच्यो।
राम कलस मन रली सीस तातें नहिं बाँच्यो॥
बानी बिमल उदार भक्ति महिमा बिस्तारी।
प्रेम पुंज सुठि सील बिनय संतनि रुचिकारी॥
सृष्टि सराहै राम सुव लघु बैस लछन आरज लिया।
अभिलाष उभै खेमाल का ते किसोर पूरा किया॥ १२१॥

श्रीखेमालरत्नजीके दो मनोरथोंको श्रीकिशोरसिंहजीने पूर्ण किया। पैरोंमें नूपुर बाँधकर श्रीगिरिधरलालजीके सामने नित्य नृत्य करते थे। दूसरे श्रीरामचन्द्रजीकी सेवाके निमित्त अत्यन्त आनन्दपूर्वक घड़ा भरकर मधुर जल लाते थे। इस सेवासे आपका सिर कभी वंचित नहीं हुआ। आपकी वाणी निर्मल और उदार थी। उससे आपने भक्तिकी महिमाका विस्तार किया। आप श्रीरामकृष्णके प्रेमकी राशि, सुन्दर स्वभाव, विनयशील एवं भक्तोंको प्रिय लगनेवाले थे। सारा संसार बड़ाई करते हुए कहता था कि छोटी अवस्थामें ही श्रीरामरयनके पुत्र श्रीकिशोरसिंहजीने महत्पुरुषोंके लक्षणोंको धारण कर लिया॥ १२१॥

श्रीकिशोरसिंहजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकिशोरसिंहजी श्रीखेमालरत्नजीके पौत्र और श्रीरामरयनजीके पुत्र थे। शरीर त्यागते समय श्रीखेमाल-रत्नजीकी आँखोंसे निरन्तर आँसुओंकी धारा बह रही थी। कारण किसीकी समझमें नहीं आ रहा था। श्रीरामरयनजीने पूछा—'आपको क्या कष्ट है, आप स्पष्ट कह दीजिये।' श्रीखेमालरत्नजीने कहा—'मैंने अपने मनमें सेवाके दो मनोरथ किये थे, वे पूरे नहीं हुए। इसी बातका दुःख है।' वे कौनसे मनोरथ हैं, यह पूछनेपर आपने कहा कि दोमेंसे एक तो यह कि मैं भगवान् श्रीसीतारामजीके लिये अपने सिरपर रखकर जलभरा कलश नहीं लाया। दूसरा यह कि पैरोंमें घुँघरू बाँधकर कभी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके आगे मैंने नृत्य नहीं किया।

श्रीखेमालरत्नजीकी इस बातको सुनकर उनके मन्त्री, परिवारी—पुत्र आदि राजापनेके अहंकार एवं लोकलाजके कारण चुप रह गये। परंतु उसी समय आपके पौत्र परम हरिभक्त श्रीकिशोरसिंहजी बोल उठे—'आप हमें आज्ञा दीजिये, मैं इन दोनों सेवाओंको नित्य करूँगा। जबतक मेरे शरीरमें प्राण रहेंगे, तबतक नित्य-नियमको निभाऊँगा।' अपने पौत्रकी ऐसी प्रेममयी प्रतिज्ञा सुनकर श्रीखेमालरत्नजीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनमें अपार सुख हुआ। उन्होंने उठकर श्रीकिशोरसिंहको छातीसे लगा लिया और फिर सुखपूर्वक अपने शरीरका त्याग किया। श्रीकिशोरसिंहने जो प्रतिज्ञा की थी, उसका उन्होंने जीवनभर निर्वाह किया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

खेमालरतन तन त्याग समै अश्रु पात बात सुत पूछैं अजू नीकें खोलि दीजिये।
कीजै पुण्य दान बहु, सम्पत्ति अमान भरी, धरीं हियें दोई सोई कहा सुनि लीजिये॥
बिबिध बड़ाई में समाई मति भई पै न नितही विचार अब मन पर खीजिये।
नीर भरि घट सीस धरिकै न ल्यायौ और नूपुरन बांधि नृत्य कियौ नाहिं छीजियै॥ ४९१॥
रहे चुपचाप सबै जानी काम आप ही कौ, बोल्यौ यों किशोर नाती आज्ञा मोकों दीजियै।
यही नित करौं नहीं टरौं जोलौं जीवै तन मन में हुलास उठि, छाती लाय जीजियै॥
बहु सुख पाये, पाये वैसे ही निवाहे पन, गाये गुन लाल प्यारी अति मति भीजियै।
भक्ति बिसतार कियौ वैस लघु भीज्यौ, हियौ दियौ सनमान संत सभा सब रीझियै॥ ४९२॥

श्रीहरीदासजी

हरीदास हरिभक्त भक्ति मंदिर को कलसो।
भजन भाव परिपक्व हृदय भागीरथि जल सो॥
त्रिधा भाँति अति अननि राम की रीति निबाही।
हरि गुरु हरि बल भाँति तिनहि सेवा दृढ़ साही॥
पुरन इंदु प्रमुदित उदधि त्यों दास देखि बाढ़ै रली।
खेमाल रतन राठौर के सुफल बेलि मीठी फली॥ १२२॥

श्रीखेमालरत्न राठौरजीके वंशमें वैष्णव सुपुत्र उत्पन्न हुए। श्रीहरीदास भगवान्‌के एवं भगवद्भक्तोंके भक्त थे। भक्ति एवं भक्तरूपी मन्दिरके कलश थे। भजन-भावमें आप सुदृढ़ निष्ठावाले भक्त थे तथा आपका हृदय भागीरथी गंगाके समान पवित्र एवं निर्मल था। मन-वचन एवं कर्मसे आप अनन्य भक्त थे। श्रीरामरयनजीकी उपासना रीतिका ही आपने भी अनुसरण किया। इन्हें भगवत्तुल्य अपने श्रीगुरुदेवका बल भगवद्‌बलके समान ही था। इन दोनोंकी सेवा आपने राजोपचारोंसे की। जैसे शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाको देखकर समुद्र ऊँची लहरें लेकर बढ़ने लगता है, उसी प्रकार भगवद्भक्तोंको देखकर श्रीहरीदासजीके हृदयमें आनन्दसमुद्र उमड़ने लगता था॥ १२२॥

श्रीचतुर्भुजजी कीर्तननिष्ठ

गायो भक्ति प्रताप सबहिं दासत्व दृढ़ायो।
राधा बल्लभ भजन अननिता गर्ब बढ़ायो॥
मुरलीधर की छाप कबित अति ही निर्दूषन।
भक्तनि की अँघ्रि रेनु वहै धारी सिर भूषन॥
सतसंग महा आनंद मैं प्रेम रहत भीज्यो हियो।
(श्री) हरिबंस चरन बल चतुरभुज गोंड देस तीरथ कियो॥ १२३॥

गोस्वामी श्रीहितहरिवंश महाप्रभुके श्रीचरणोंके प्रतापसे श्रीचतुर्भुजदासजीने गोंड़वाना प्रान्तको तीर्थके समान पवित्र बना दिया। आपने भक्ति-प्रतापका गान किया। उसके द्वारा सभी लोगोंमें दास्य-भाव दृढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। ठाकुर श्रीराधावल्लभजीके भजनकी शिक्षा देकर आपने अनन्य भक्तोंके परिवारको तथा अनन्यताके गौरवको बढ़ाया। आपकी कविता काव्य-दोषोंसे सर्वथा रहित है, उसमें आप 'मुरलीधर' की छाप लगाते थे। हरिभक्तोंके श्रीचरणोंकी रजको भूषणके समान मानकर उसे अपने सिरपर धारण करते थे। संत-संगमें तथा भगवत्प्रेमके परमानन्दमें सदा आपका हृदय सराबोर रहता था॥ १२३॥

श्रीचतुर्भुजजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीचतुर्भुजजी गोंड़वानेके निवासी थे। इनका जन्म ब्राह्मण कुलमें हुआ था। ये श्रीहितहरिवंश महाप्रभुके शिष्य श्रीवनचन्द्राचार्यजीके शिष्य थे, अतः इन्होंने श्रीहितहरिवंश महाप्रभुको परम गुरु माना है। गोंड़वाना देशमें उस समय भक्ति-भावका नाममात्र आचरण भी कहीं नहीं दिखलायी पड़ता था। वहाँके लोग ऐसे हिंसावादी थे कि मनुष्योंको मारकर कालीदेवीको भेंट चढ़ाते थे। श्रीचतुर्भुजजीने वहाँ जाकर देवीके कानमें श्रीकृष्ण-मन्त्र सुना दिया। देवीने वैष्णवी-दीक्षा स्वीकार कर ली और गाँवके लोगोंको स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'तुम सब लोग शीघ्र ही श्रीस्वामी चतुर्भुजदासजीके शिष्य बनकर भक्त-भगवान्‌की सेवा करो, उनके दास बनो। नहीं तो सबका अनिष्ट हो जायगा।' यह सुनकर प्रातःकाल होते ही गाँवके सभी लोग इनके पास दौड़कर आये। इन्होंने कण्ठी-तिलक देकर सबको दीक्षा प्रदान की।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

गोंड़वाने देश, भक्ति लेसहूँ न देखै, कहूं, मानुस कों मारि इष्टदेव कों चढ़ायौ है।
तहाँ जाय देवता के मन्त्र लै सुनायौ कान लियौ उन मानि, गांव सुपन सुनायौ है॥
'स्वामी चतुर्भुजजूके बेगि तुम दास होहु नातौ होय नास सब' गांव भज्यौ आयौ है।
ऐसे शिष्य किये, माला कण्ठीपाय जिये, पांव, लिये मन दिये, औ अनन्त सुख पायौ है॥ ४९३॥

श्रीचतुर्भुजजी अनेक प्रकारके व्यंजन-पक्वान्न भगवान्‌को भोग लगाते और बड़े प्यारपूर्वक सन्तोंको पवाते, सब प्रकारसे उन्हें प्रसन्न करते। श्रीमद्भागवतकी कथाओंका गान करते और लोगोंमें भक्ति-भावनाका प्रचार-प्रसार करते। एक बार एक चोर किसीका धन लेकर भागा। मालिक भी उसे पकड़नेके लिये उसके पीछे दौड़ा। उसे कहीं छिपनेका स्थान नहीं मिला। वह श्रीचतुर्भुजजीकी कथाके श्रोताओंमें घुस गया और वहीं छिपकर बैठ गया। भीड़में वह धनी उसे देख नहीं पाया। इसी बीच पुराणकी कथामें उस चोरने सुना कि 'मन्त्रकी दीक्षा लेनेसे जीवका दूसरा जन्म हो जाता है।' इस शिक्षाको सुनकर वह श्रीचतुर्भुजजीका शिष्य हो गया। भीड़ कम होनेपर धनीने उसे पकड़ लिया और शोर किया कि 'यह तो चोर है।' हाकिमके यहाँ उसे पकड़कर ले गया। पूछनेपर उसने कहा कि—'मैंने तो इस जन्ममें किसीका कुछ नहीं चुराया है।' परीक्षाके लिये उसके हाथमें कच्चे सूतका धागा लपेटकर एवं घी लगाकर पीपलका पत्ता रखकर लोहेका फार तपाकर रख दिया गया। उस समय उसने सभीके सामने उच्च स्वरसे कहा—यदि सचमुच गुरुदेव तथा गुरुग्रन्थके कथनानुसार दीक्षोपरान्त दूसरा जन्म हो जाता है तो यह तप्त लोहा मुझे नहीं जला सके। उसे दृढ़ विश्वास था, अतः भगवान्‌ने उसकी रक्षा की। उसके हाथ नहीं जले।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भोग लै लगावैं नाना, संतनि लड़ावै, कथा भागवत गावै, भाव भक्ति बिसतारियै।
भज्यौ धन लैके कोऊ, धनी पाछे पर्‌यौ सोऊ, आनिकै दबायौ, बैठि रह्यौ न निहारियै॥
निकसी पुरान बात करै नयौ गात दिक्षा शिक्षा सुनि शिष्य भयो, गह्यौ यों पुकारियै।
कहै 'या जनम मैं न लियौं कछू' दियौ फारो हाथ लै उबार्‌यौ प्रभु रीति लागी प्यारियै॥ ४९४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब अग्नि-परीक्षामें वह सच्चा ईमानदार प्रमाणित हो गया, तब राजाने उस धनीको झूठा माना कि साधुओंको इसने झूठा कलंक लगाया—यह सोचकर उसने अपने सिपाहियोंसे कहा कि 'इसको अभी फाँसीपर चढ़ा दो।' आज्ञाको पाते ही वे लोग उसे पकड़कर ले चले। वह पहलेका चोर जो साधु बन गया था, इसकी फाँसीको कैसे सह सकता था? उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये और वह बोला कि 'मैंने इसका धन लिया है। यह झूठ नहीं बोलता है।' राजाने कहा—सन्तजी! आप सच्चे प्रमाणित होकर पुनः अब झूठे क्यों बन रहे हैं? उसने कहा—'श्रीस्वामी चतुर्भुजजी महाराजकी महिमा अनन्त है और उन्हींकी कृपासे मैं चोर होकर भी ईमानदार प्रमाणित हुआ।' ऐसा कहकर उसने शिक्षा-दीक्षा एवं पुनर्जन्मकी बात सुनायी। राजाने सब प्रसंग सुनकर उस धनीको भी छोड़ दिया और श्रीस्वामीजीके पास आकर उनसे उपदेश ग्रहण किया और उनका शिष्य बन गया।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

राजा झूंठ मानि कह्यौ 'करो बिन प्रान याकौं, साधु ये विराजमान लै कलंक दियौ है'।
चले ठौर मारिबेकों, धारिबेकों सकै कैसे, नैन भरि आये नीर बोल्यौ धन लियौ है॥
कहै नृप सांचो ह्वैकै झूठो जिन हुजै संत, महिमा अनन्त कही 'स्वामी ऐसौ कियौ है'।
भूप सुनि आयौ उपदेश मन भायौ, शिष्य भयौ नयौ तन पायौ भीजि गयौ हियौ है॥ ४९५॥

एक बार सन्तोंकी एक मण्डली तीर्थाटन करती हुई जा रही थी। रास्तेमें उन्हें एक चनेका पका हुआ खेत मिल गया। सन्त लोग चने तोड़-तोड़कर खाने लगे। खेतके रखवालोंके मुख उदास हो गये। उन लोगोंने शोर मचाते हुए कहा—'आपलोग फसलको न उजाड़िये, यह श्रीस्वामी चतुर्भुजजीका खेत है।' यह सुनकर सन्तोंने कहा—'तब तो हमारा काम बन गया, यह तो हमारा ही खेत है।' किसीने जाकर स्वामीजीसे कह दिया कि 'सन्त लोग खेतको अपना मानकर तोड़-तोड़कर खा रहे हैं।' यह सुनते ही आप मिष्ठान-प्रसाद लेकर खेतपर आये और बड़े प्रसन्न होकर बोले—'सन्तोंने मुझे आज अपना मान लिया, इससे मुझे बहुत बड़ा सुख मिला।' इसके पश्चात् अनुनय-विनय करके सभी सन्तोंको आप अपने घर लिवा लाये और विविध प्रकारके व्यंजन-प्रसाद पवाकर उनकी सेवा की।

श्रीप्रियादासजीने श्रीचतुर्भुजजीके इस सन्त-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

पकि रह्यौ खेत, सन्त आयकर तोरि लेत, जिते रखबारे मुख सेत सोर कियौ है।
कह्यौ स्वामी नाम, सुन्यौ कही 'बड़ौ काम भयौ, यह तौ हमारौ', सोई आप सुनि लियौ है॥
लै कै मिष्ठान आय, सुमुख बखान कीनौ, लीनौ, अपनाय आज भीज्यौ, मेरौ हियौ है।
लै गये लिवाय नाना भोजन कराय भक्ति चरचा चलाय, चाय हित रस पियौ है॥ ४९६॥

श्रीकृष्णदासजी चालक

सक्र कोप सुठि चरित प्रसिध पुनि पंचाध्याई।
कृष्न रुक्मिनी केलि रुचिर भोजन बिधि गाई॥
गिरिराज धरन की छाप गिरा जलधर ज्यों गाजै।
संत सिखंडी खंड हृदै आनँद के काजै॥
जाड़ा हरन जग जाड़ता कृष्नदास देही धरी।
चालक कि चरचरी चहूँ दिसि उदधि अंत लौं अनुसरी॥ १२४॥

श्रीकृष्णदासजी चालकके चर्चरी छन्द (गीत) समुद्रके उस पारतक फैले। समस्त पृथ्वीभरके निवासियोंने सप्रेम गाकर आनन्द प्राप्त किया। अपनी पूजा भंग हुई जानकर इन्द्रने जो व्रजपर कोप किया, उसके कारण जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णचन्द्रकी 'गोवर्धनधारणलीला' हुई, आपने इस 'गोवर्धनधारणलीला', प्रसिद्ध रासपंचाध्यायी, श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-केलि एवं श्रीभोजनविधि आदिपर अनेक सुन्दर काव्य लिखे। आप अपनी रचनाओंमें 'गिरिराजधरन' की छाप लगाते थे। मेघगर्जनके समान आपकी वाणी मधुर एवं गम्भीर थी। जगत्के अर्थात् सभी प्राणियोंके जड़तारूप जाड़ेको हरनेके लिये आपने सूर्यके समान भक्तितेजोमय शरीर धारण किया॥ १२४॥

श्रीसन्तदासजी

गोपीनाथ पद राग भोग छप्पन भुंजाए।
पृथु पद्धति अनुसार देव दंपति दुलराए॥
भगवत भक्त समान ठौर द्वै को बल गायो।
कबित सूर सों मिलत भेद कछु जात न पायो॥
जन्म कर्म लीला जुगति रहसि भक्ति भेदी मरम।
बिमलानंद प्रबोध बँस संतदास सीवाँ धरम॥ १२५॥

श्रीविमलानन्दजी प्रबोधके कुलमें श्रीसंतदासजी वैष्णवधर्मकी सीमा हुए। भगवान् श्रीगोपीनाथजीके चरणोंमें आपका अत्यन्त अनुराग था। आप उन्हें नित्य छप्पन प्रकारके व्यंजन बनाकर भोग लगाते थे। श्रीपृथुजीकी पूजा-पद्धतिके अनुसार आप प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी सेवा करते थे, लाड़ लड़ाते थे। भक्त और भगवान् दोनोंको समान मानकर आपने उनका सुयश वर्णन किया और इन्हींका बल रखते थे। आपकी कविताएँ श्रीसूरदासजीसे मिलती-जुलती हैं, उनमें कुछ भी अन्तर नहीं प्रतीत होता है। भगवान्के जन्म, कर्म और उनकी लीलाओंका आपने बड़ी चतुरताके साथ वर्णन किया है। आप अनन्य भक्तिके गुप्त रहस्य एवं भेदोंको अच्छी प्रकारसे जानते थे॥ १२५॥

श्रीसन्तदासजीके भक्तिका माहात्म्य बताते हुए श्रीप्रियादासजी कहते हैं—

बसत 'निवाई' ग्राम, स्याम सों लगाई मति, ऐसी मन आई, भोग छप्पन लगाये हैं।
बात की सचाई यह जग में दिखाई, सेवैं जगन्नाथ देव आप रुचि सौं जिमाये हैं॥
राजा कों सुपन दियौ नाम लै प्रगट कियौ, 'सन्त ही के गृह मैं तो जेवों यों रिझाये हैं'।
भक्तिके अधीन, सब जानत प्रवीण, जन ऐसे हैं, रंगीन, लाल ठौर ठौर गाये हैं॥ ४९७॥

कवित्तका भाव यह है—परमभक्त श्रीसन्तदासजी 'निवाई' ग्राममें निवास करते थे। इन्होंने भगवान् श्यामसुन्दरके चरणोंमें बुद्धि लगा रखी थी। एक दिन आपके मनमें ऐसा आया कि मैं अपने श्रीठाकुरजीको छप्पन भोग लगाऊँ तो आपने धनका अभाव होनेपर भी जैसे-तैसे (घरका सामान बेंचकर) व्यवस्था करके श्रीठाकुरजीको छप्पन भोग लगाया। श्रीठाकुरजीने भी आपकी सच्ची प्रीतिको संसारमें प्रकट करके दिखा दिया। आप ऐसी प्रेमपूर्वक श्रीठाकुरजीकी सेवा करते थे कि स्वयं श्रीजगन्नाथ भगवान्ने आपके यहाँ अत्यन्त रुचिपूर्वक भोग आरोगा और पुरीनरेशको स्वप्नमें बताया कि आजकल मैं सन्तजीके यहाँ ही भोग आरोगता हूँ। इनके प्रेमने मुझे रिझा लिया है। इस प्रकार श्रीजगन्नाथभगवान्ने श्रीसन्तजीका नाम लेकर उन्हें संसारमें प्रकट कर दिया। ऐसा करके भगवान्ने दिखा दिया कि मैं भक्तोंकी भक्तिके अधीन हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसूरदास मदनमोहनजी

गान काब्य गुन रासि सुहृद सहचरि अवतारी।
राधाकृष्न उपास्य रहसि सुख के अधिकारी॥
नवरस मुख्य सिंगार बिबिधि भाँतिनि करि गायो।
बदन उच्चरित बेर सहस पायनि ह्वै धायो॥
अँगीकार की अवधि यह ज्यों आख्या भ्राता जमल।
(श्री) मदनमोहन सुरदास की नाम सृंखला जुरि अटल॥ १२६॥

श्रीसूरदास मदनमोहनजी गानविद्याके और काव्य-शास्त्रके परम विशेषज्ञ थे। आपका हृदय अति ही सरल एवं सरस था। सभीके प्रति हितकी भावना थी। ये श्रीराधाकृष्णजीकी सखीके अवतार थे। उनके एकान्त निकुंज-विहारके दर्शन एवं अनुभव-सुखके अधिकारी थे। नवरसोंमें मुख्य जो शृंगार रस है, उसे आपने अनेक प्रकारसे गाया। आपके लीला-पद मुखसे निकलते समय ही हजारों पैरवाले होकर इतस्तत: दौड़ने लग जाते थे अर्थात् सब ओर दूर-दूरतक फैल जाते थे। भगवान्‌ने सब प्रकारसे आपको अपना भक्त मानकर अंगीकार कर लिया। जिस प्रकार अश्विनीकुमारोंका परस्परका सम्बन्ध अच्छेद्य है, उसी प्रकार भक्त श्रीसूरदास और भगवान् श्रीमदनमोहनके नामका सम्बन्ध अकाट्य जुड़ गया। यह परस्पर अंगीकारकी सीमा है॥ १२६॥

श्रीसूरदास मदनमोहनजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीसूरदास मदनमोहनजीका जन्म सं० १५६० वि० माना जाता है। आपका मूल नाम सूरध्वज था और गुरुप्रदत्त नाम सूरदास था। आप नयनविहीन नहीं थे, बल्कि आपके नेत्र खिले हुए कमलके समान विशाल एवं सुन्दर थे। आप गौड़ीय चैतन्य-सम्प्रदायके नैष्ठिक ब्राह्मण थे और श्रीसनातन गोस्वामीजीके शिष्य थे। अकबर बादशाहने आपको संडीला (जिला हरदोई उत्तर प्रदेश)-में अमीन पदपर नियुक्त किया था। एक बार आपने संडीलेके बाजारमें बहुत अच्छा गुड़ देखकर दाम बढ़ाकर उसे खरीद लिया। आपने विचारा कि इस गुड़से बने मालपुवे श्रीमदनगोपाललालजी पावेंगे। इस प्रकार प्रेमके आवेशमें आकर आपने बैलगाड़ियों, छकड़ोंमें गुड़ भरवाकर श्रीवृन्दावनधामको भेज दिया। यहाँ आकर वह गुड़ बीस गुना अधिक दामोंका पड़ा। गुड़की गाड़ियाँ रात हो जानेपर पहुँचीं। श्रीठाकुरजी शयन कर रहे थे। गुड़ भण्डारमें रख दिया गया। श्रीमदनमोहनलालजीने पुजारी एवं भण्डारियोंको स्वप्न दिया कि 'इसी गुड़के मालपुवे बनाकर अभी भोग लगाओ।' यह प्रेमोपहार भी इसी योग्य था। उसी समय मालपुवे बने। श्रीठाकुरजीने जागकर फिर मालपुवा भोग आरोगा।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

सूरदास नाम नैन कंज अभिराम फूले, झूले रंग पीके नीके जीके और ज्याये हैं।
भये सो अमीन यों सँडीलेके नवीन रीति प्रीति गुड़ देखि दाम बीस गुने लाये हैं॥
कही पूवा पावैं आप मदनगोपाल लाल परे प्रेम ख्याल लादि छकरा पठाये हैं।
आये निसि भये स्याम कियौ आज्ञा जोग लैके अबही लगावौ भोग जागे फिरि पाये हैं॥ ४९८॥

श्रीसूरदास मदनमोहनजीने एक पद बनाया, जिसमें अपनी भक्तिके गुह्यरूपको प्रकट करके दिखा दिया। उस पदका अन्तिम तुक है—***'सन्तन की पानही को रक्षक कहाऊँ मैं।'*** आपको गाते सुनकर किसी सन्तने इनकी परीक्षा लेनी चाही। एक दिन श्रीमदन-मोहनजीके द्वारपर उसे श्रीसूरदासजी मिल गये। उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने जूते उतारकर इनसे कहा—'जरा, आप इन्हें देखना, मैं दर्शन करके अभी आ जाऊँगा।' यह कहकर वह मन्दिरमें जाकर संकीर्तनमें बैठ गया। इधर मन्दिरके भीतर विराजमान श्रीगोसाईंजी एवं पुजारीजीने सेवक भेजकर इन्हें कई बार बुलाया। तब आपने सूचना भेजी कि 'आज मेरे इष्टदेवने मुझे एक बहुत बड़ी प्यारी सेवा सौंपी है और मैं सन्त-चरण-कमलका ध्यान कर रहा हूँ।' यह सुनकर सभीने एवं परीक्षक सन्तने भी आकर देखा तो आपकी करनी कथनीके अनुसार थी, सभी इस निष्ठापर न्यौछावर हो गये।

श्रीप्रियादासजीने श्रीसूरदास मदनमोहनजीके इस सन्तप्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

पद लै बनायौ, भक्तिरूप दरसायौ, दूर सन्तनि की पानही को रक्षक कहाऊँ मैं।
काहू सीखि लियो साधु लियौ चाहै परचैकों आये द्वार मन्दिरकै खोलि कही आऊँ मैं॥
रह्यौ बैठि जाय जूती हाथ में उठाय लीनी, कीनी, पूरी आस मेरी निसि दिन गाऊँ मैं।
भीतर बुलाये श्रीगुसाईं बार दोय चार, सेवा सौंपी सार कह्यौं जनपग ध्याऊँ मैं॥ ४९९॥

श्रीसूरदासजीने तहसील वसूलसे प्राप्त बादशाह अकबरकी सारी सम्पत्ति साधु-सन्तोंको खिला-पिलाकर बराबर कर दी। बादशाहकी आज्ञासे वित्त विभागके अधिकारीगण दिल्लीसे खजाना लेनेके लिये संडीलेको आये और बोले कि 'आप राजाज्ञाको मानिये, खजाना भेजिये।' आपने स्वीकारकर सन्दूकोंमें कंकड़-पत्थर भर दिये। साथ ही सन्दूकोंमें एक-एक पत्र रख दिया, जिसमें लिख दिया कि 'संडीलेकी कुल आय तेरह लाख हुई। उसे सब साधुओंने मिल-जुलकर गटक लिया। इसीसे अब हम चुपचाप श्रीवृन्दावन जा रहे है।' सन्दूकें दिल्ली पहुँचीं और बादशाहके सामने खोली गयीं तो उनमें रुपयोंके स्थानपर कंकड़-पत्थर भरे मिले, एक पर्चा मिला। जिसे पढ़कर बादशाह श्रीसूरदासजीकी भक्तिपर रीझ गया तथा वह भी प्रेममें डूब गया, परंतु वित्तमन्त्री टोडरमलने पुनः सिपाहियोंको आज्ञा देते हुए कहा कि 'सूरदासने सरकारी धनको नष्ट कर दिया है, इसलिये उसे जाकर पकड़ लाओ।' अभक्त मूढ़ मन्त्रीने इन्हें पकड़ मँगवाया। लोगोंने इन्हें बादशाहके सामने हाजिर करना चाहा तो उसने कहा कि 'इन्हें मुझसे दूर ही रखो।' किंतु निर्दयी टोडरमलने इन्हें दुष्ट दस्तमखाँ नामक जेलरके हवाले कर दिया। उसने इन्हें कारागारमें बन्दकर असह्य कष्ट देना शुरू कर दिया। कुछ दिन बाद आपने एक दोहा लिखकर अकबरके पास भेजा, उसे पढ़ते ही बादशाह प्रसन्न हो गया और कारागारसे उन्हें मुक्त कराकर कहा—आप जाकर श्रीवृन्दावनवास करो। मैंने तुम्हारे ऊपर तेरह लाख रुपये न्यौछावर कर दिये।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

पृथवीपति संपति लै साधुनि खवाइ दई, भई नहीं संक यों निसंक रंग पागे हैं।
आये सो खजानौ लैन मानौ यह बात अहो पाथर लै भरे आप आधी निसि भागे हैं॥
रुक्का लिखि डारे, दाम 'गटके ये संतनि नै, याते हम सटके हैं' चले जब जागे हैं।
पहुँचे हुजूर, भूप खोलिकै सन्दूक देखैं, पेखैं आंक कागद में रीझि अनुरागे हैं॥ ५००॥
लैनकों पठाये, कही निपट रिझायें हमें, मन में न ल्याये, लिखी 'वन तन डार्‌यौ है'।
'टोंडर' दिवान कह्यौ 'धनकों विरान कियौ ल्यावौ रे पकरि' मूढ़ फेरिकै संभार्‌यौ है॥
लै गये हुजूर, नृप बोल्यौ 'होंसों दूर राखौ,' ऐसो महाकूर सौंपि दुष्ट कष्ट धार्‌यौ है।
दोहा लिखि दीनौ 'अकबर' देखि रीझि लीनौ जावौ वाही ठौर तौपै दर्व सब बार्‌यौ है॥ ५०१॥

श्रीसूरदासजी मदनमोहन दिल्लीसे श्रीवृन्दावनको आ गये। उनका मन निकुंज-लीला-माधुरीमें मग्न हो गया। ऐसी प्रेमावस्थामें आपने जो भी पद बनाये, वे भगवत्स्वरूपके रसकी राशि हुए। आपके हृदयमें युगलकिशोर प्रिया-प्रियतमके नित्य-विहारका दिव्य-प्रकाश छाया रहता था। इस विषयमें श्रीप्रियादासजी कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये वृन्दावन, मन माधुरी में भीजि रह्यौ कह्यौ जोई पद, सुन्यौ रूप रस रास है।
जा दिन प्रगट भयौ, गयौ शत जोजन पै, जन पै सुनत भेद बाढ़ी जग प्यास है॥
'सूरध्वज' द्विज निज महल टहल पाय चहल पहल हिये जुगल प्रकास है।
मदनमोहन जू हैं इष्ट इष्ट महाप्रभु अचरज कहा कृपा दृष्टि अनायास है॥ ५०२॥

श्रीकात्यायनीजी

मारग जात अकेल गान रसना जु उचारै।
ताल मृदंगी बृच्छ रीझि अंबर तहँ गारै॥
गोप नारि अनुसारि गिरा गदगद आबेसी।
जग प्रपंच ते दूरि अजा परसैं नहिं लेसी॥
भगवान रीति अनुराग की संत साखि मेली सही।
कात्यायनि के प्रेम की बात जात कापै कही॥ १२७॥

गौड़देशके राजाकी कन्या तथा व्रजगोपीकी अवताररूपा भक्तिमती श्रीकात्यायनीजीके श्रीकृष्णप्रेमका वर्णन यथार्थ रूपसे कोई कवि कैसे कर सकता है! प्रेमानन्दमें मग्न रहनेके कारण आपकी ऐसी विचित्र दशा हो गयी थी कि मार्गमें अकेले चलती हुई भी श्रीकृष्णके लीलापदोंका गान करती थीं। उस समय आप वृक्षोंको देखकर (पत्तोंकी खड़खड़ाहट सुनकर) अनुभव करतीं कि ये ताल-मृदंग आदि वाद्योंके बजानेवाले प्रेमी लोग हैं। उनके ऊपर रीझकर पुरस्काररूपमें उन्हें न्यौछावर देने लगतीं और अपने वस्त्राभूषण अपने शरीरसे उतारकर वृक्षोंको पहना देतीं। व्रजगोपियोंकी पद्धतिसे भगवान्‌का स्मरण-भजन करतीं। प्रेमावेशमें आपकी वाणी गद्‌गद रहती। जगत्‌के प्रपंचोंसे आप सर्वदा दूर ही रहतीं। माया आपको थोड़ा भी स्पर्श नहीं कर पाती थी। आपकी श्रीकृष्णप्रेमकी रीतिको संतोंने सही माना, वे उसके साक्षी रहे और उसकी बारम्बार सराहना करते थे। भगवान् श्यामसुन्दर इनके प्रेमवश दर्शन देकर इन्हें कृतार्थ करते थे तथा इनके साथ विविध विनोद करते थे॥ १२७॥

श्रीमुरारिदासजी

बिदित बिलौंदा गाँव देस मुरधर सब जानै।
महा महौछे मध्य संत परिषद परवानै॥
पगनि घूँघुरु बाँधि राम को चरित दिखायो।
देसी सारँगपानि हंस ता संग पठायो॥
उपमा और न जगत में पृथा बिना नाहिन बियो।
कृष्न बिरह कुंती सरीर त्यों मुरारि तन त्यागियो॥ १२८॥

श्रीमुरारिदासजी मारवाड़ प्रान्तके प्रसिद्ध ग्राम 'बिलौंदा' में विराजते थे। प्रतिवर्ष आप एक सुन्दर महोत्सव किया करते थे। एक बार महा-महोत्सवमें सन्तसभाके बीच आपको भक्त-भगवत्‌का पार्षद प्रमाणित किया गया। हरिनाम-लीला-संकीर्तनके प्रसंगमें आपने पैरोंमें घुंघरू बाँधकर भगवान् श्रीरामके चरित्रको दिखाया। गान और भाव-प्रदर्शनकी विलक्षणतासे दर्शकोंको प्रत्यक्ष लीलाका-सा अनुभव हुआ। फिर आपने शास्त्रीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत-पद्धतिसे 'देसी सारंग' रागको गाते हुए सारंगधनुर्धर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वनगमनका दृश्य प्रस्तुत किया और विरह-व्यथासे व्याकुल होकर अपने प्राण-पखेरूको भगवान्के साथ भेज दिया। श्रीकृष्णके वियोगमें जैसे श्रीकुन्तीजीने अपने शरीरको त्यागा था, उसी प्रकार श्रीमुरारिदासजीने श्रीरामके विरहमें शरीरका परित्याग किया। श्रीकुन्तीजीके अतिरिक्त इनके शरीर-त्यागमें दूसरे किसीकी उपमा नहीं दी जा सकती है॥ १२८॥

श्रीमुरारिदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीमुरारिदासजीका जन्म छत्तीसगढ़ जिलेके तिलौंदा नामक ग्रामके एक अकिंचन ब्राह्मण-परिवारमें हुआ था। श्रीमुरारिदासजी राजाके गुरु थे और भगवद्भक्तोंके दासानुदास थे। एक बार आप स्नान करके वापस आ रहे थे, उसी समय एक निम्न जातिके भक्तकी आवाज आपके कानमें पड़ी। वे भगवत्सेवा करके पुकार रहे थे—'जो भगवान्के चरणामृतको लेनेका पात्र हो, वह आकर ले ले।' इस शब्दको सुनते ही आप उसके घरमें पहुँच गये। इन्हें देखकर वह डर गया और थर-थर काँपने लगा। आपने कहा—'लाइये, हमें चरणामृत दीजिये, मैं इसे पानकर अपने जीवनको धारण करूँ।' उन्होंने कहा—'हम तो नीच हैं, अति ही तुच्छ हैं, चरणामृत लो' ऐसा जो मैंने पुकारकर कहा, यह भूल की। ऐसी मेरी योग्यता नहीं है, जो मैं आपको चरणामृत दूँ। परंतु श्रीमुरारिदासजी साधुतामें बड़े भारी प्रवीण थे। अतः इन्होंने अत्यन्त हठ करके चरणामृत ले ही लिया। आपने अपने मनमें विचारा कि 'श्यामसुन्दरको तो भक्ति ही प्रिय है, प्रेमाभक्तिके प्रवाहमें जाति-पाँतिके अहंकार-दोष बह जाते हैं।' उसके यहाँ चरणामृत लेनेकी इनकी बात गाँवभरमें फैल गयी। भक्तद्वेषी-विमुख लोग इनकी निन्दा करने लगे और राजाके पास जाकर उनके भी कान भर दिये। यह बात उन्हें भी अच्छी नहीं लगी। एक दिन श्रीमुरारिदासजी राजाके प्रेम-भावको देखनेके लिये उनके पास आये तो उनके व्यवहार एवं उनकी चेष्टासे आपने यह अनुमान कर लिया कि राजामें मेरे प्रति जो प्रेमभाव पहले था, वह जाता रहा।

लोगोंका असद्भाव देखकर श्रीमुरारिदासजी अपना सब सामान वहीं छोड़कर अन्यत्र चले गये। जब राजाने यह बात सुनी तो वह दुःखमें डूब गया। राजाके नगरमें प्रति वर्ष एक सन्तोंका सम्मेलन होता था। उसमें बड़े-बड़े अच्छे सन्त-महात्मा पधारते थे। कथा-कीर्तनकी धूम मचती थी। परंतु अब श्रीमुरारिदासजीके चले जानेके बाद किसी साधु-महात्माकी छाया भी वहाँ नहीं दिखलायी पड़ती थी। राजाने इसे भारी उत्पात माना और जहाँ श्रीमुरारिदासजी विराजते थे, वहाँ उन्हें लिवानेके लिये पहुँचा। राजाने पृथ्वीपर पड़कर कई बार साष्टांग दण्डवत् की। उसके नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। श्रीमुरारिदासजी राजाको सन्त-भगवन्तसे विमुख मानकर उसका मुख भी नहीं देख रहे थे।

राजा हाथ जोड़े खड़ा था। उसकी बुद्धि दीनतामें डूबी हुई थी। उसने कहा—'आप मुझे मेरे अपराधके अनुरूप करोड़ों दण्ड दीजिये। वे मुझे स्वीकार हैं, परंतु मेरी ओर देखिये, मुझे दर्शन दीजिये और आशीर्वाद दीजिये। मुझ दीन-हीनको शरणमें रखिये।' ऐसी दीनवाणीको सुनकर श्रीमुरारिदासजी प्रसन्न हो गये और राजाके साथ आप पुनः उसी गाँवको लौट आये। आपका नाम सुनते ही अनेक सन्तजन आपसे मिलनेके लिये दौड़कर आये। विशाल सन्त-समाज एकत्र हुआ और बड़ा भारी उत्सव हुआ।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीमुरारिदास रहे राजगुरु, भक्त-दास, आवत स्नान किये कान धुनि कीजियै।
जाति कौ चमार करै सेवा सो उचारि कहै 'प्रभु चरणामृत कौ पात्र जोई लीजियै'॥
गये घरमांझ वाके, देखि डर कांपि उठ्यौ, 'ल्यावौ देवौ हमैं, अहो पान करि जीजियै'।
कही 'मैं तो न्यूनतुच्छ, बोले हमहूँतें स्वच्छ जानै कोऊ नाहिं तुम्हैं मेरी मति भीजियै'॥ ५०३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहै दृग नीर, कहै मेरे बड़ी पीर भई, तुम मति धीर, नहीं मेरी जोग्यताई है।
लियौ ई निपट हठ, बड़े पटु साधुता में, स्यामै प्यारी भक्ति, जाति पांति लै बहाई है॥
फैलि गई गांव, वाकौ नाँव लै चबाव करैं भरैं नृप कान सुनि वाहू न सुहाई है।
आयौ प्रभु देखिबेकों, गयौ वह रंग उड़ि, जान्यौ सो प्रसंग सुन्यौ वहै बात छाई है॥ ५०४॥
गये सब त्यागि, प्रभु सेवा ही सों राग जिन्हैं नृप दुख पागि, गयौ, सुनी यह बात है।
होत हो समाज, सदा भूपके बरस मांझ, दरस न काहू होत, मान्यौ उतपात है॥
चलेई लिवायबे कौं जहां श्रीमुरारिदास, करी साष्टांग रास नैन अश्रुपात है।
मुखहूं न देखे वाको बिमुख कै लेखे, अहो पेखे लोग कहैं यह गुरु शिष्य ख्यात है॥ ५०५॥
ठाढ़ौ हाथ जोरि, मति दीनता मैं बोरि, 'कीजै दण्ड मौंपै कोरि यों निहारि मुख भाखियै'।
घटती न मेरी, आप कृपा ही की घटती है, बढ़ती सी करी तातें न्यूनताई राखियै॥
सुनिकै प्रसन्न भये कहे लै प्रसंग नये, बालमीक आदि दै दै नाना बिधि साखियै।
आये निज गाम, नाम सुनि सब साधु धाये भयौई समाज वैसो देखि अभिलाखियै॥ ५०६॥

उस महोत्सवमें बहुतसे नृत्य-कीर्तन-कला-प्रवीण लोग आये। नृत्य-गान एवं नाम-संकीर्तनकी मंगलमयी मधुर ध्वनि चारों ओर छा गयी। परंतु सन्त-समाजके मनमें श्रीमुरारिदासजी महाराजकी नृत्य-संकीर्तन-कलाको देखनेकी विशेष उत्कण्ठा हुई। सन्तोंकी हार्दिक अभिलाषाको आप समझ गये, क्योंकि भावके प्रवीण-पारखी थे। सुन्दर नूपुरोंको अपने पैरोंमें बाँधा और सात-स्वर, तीन ग्रामों (सप्तक-मन्द, मध्य, तीव्र)-में तन्मय होकर नृत्य-कीर्तन करने लगे। आपने प्रेमके भावावेशमें आकर श्रीरामजीके वनगमनका चरित्र गाया। उस समय विरह सहन न होनेके कारण आपके प्राण भी प्रभुके साथ ही चले गये। आपका शरीर चित्रके समान स्तब्ध रह गया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीमुरारिजीके इस सच्चे प्रेमका वर्णन इस प्रकार किया है—

आये बहु गुनी जन नृत्य गान छाई धुनि ऐपै संत सभा मन स्वामी गुण देखिये।
जानिकै प्रबीन उठे, नूपुर नवीन बांधि सप्तस्वर, तीन ग्राम, लीन भये पेखिये॥
गायौ रघुनाथजू कौ बनकौ गमन समै ता सँग गमन प्रान चित्र सम लेखिये।
भयौ दुख रासि 'कहा पैये श्रीमुरारिदास', गए रामपास, ऐसौ हिये अवरेखिये॥ ५०७॥

भक्तमालसुमेरु गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी

त्रेता काब्य निबंध करी सतकोटि रसमायन।
इक अच्छर उच्चरैं ब्रह्महत्यादि पलायन॥
अब भक्तनि सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी।
राम चरन रस मत्त रटत अह निसि ब्रतधारी॥
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो॥ १२९॥

कराल कलिकालके कपटी प्राणियोंका उद्धार करनेके लिये आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने गोस्वामी श्रीतुलसीदासके रूपमें अवतार लिया। आदिकविने त्रेतायुगमें श्रीरामायण नामक प्रबन्ध महाकाव्य लिखा। जिसकी (श्लोक अथवा रामायण) संख्या सौ करोड़ है। इसके एक-एक अक्षरके उच्चारणमात्रसे ब्रह्महत्या आदि महापापपरायण प्राणी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्त हो जाते हैं। अब इस कलियुगमें भी उन्हीं श्रीवाल्मीकिजीने भगवद्भक्तोंको सुख प्रदान करनेके लिये पुनः शरीर धारणकर भगवान् श्रीरामजीकी लीलाओंका विशेष विस्तार किया, श्रीरामचरितमानस आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। ये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी श्रीसीतारामके पदपद्मके प्रेमपरागका पानकर सर्वदा उन्मत्त रहते थे और नियम निष्ठाओंका पालन दृढ़तासे करते थे। दिन-रात श्रीरामनामको रटते थे। इस अपार संसार-सागरको पार करनेके लिये आपने श्रीरामचरितमानसरूप सुन्दर-सुगम नौकाका निर्माण किया॥ १२९॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

(क) श्रीतुलसीदासजीका बाल्यकाल और उनके द्वारा गृहस्थका परित्याग

प्रयागके पास चित्रकूट जिलेमें राजापुर नामक एक ग्राम है, वहाँ आत्माराम दूबे नामके एक प्रतिष्ठित सरयूपारीण ब्राह्मण रहते थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम हुलसी था। संवत् १५५४ की श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन अभुक्त मूल नक्षत्रमें इन्हीं भाग्यवान् दम्पतीके यहाँ बारह महीनेतक गर्भमें रहनेके पश्चात् गोस्वामी तुलसीदासजीका जन्म हुआ। जन्मके दूसरे दिन इनकी माता असार संसारसे चल बसीं। दासी चुनियाँने बड़े प्रेमसे बालकका पालन-पोषण किया। जब तुलसीदास लगभग साढ़े पाँच वर्षके हुए, चुनियाँका भी देहान्त हो गया, अब तो बालक अनाथ हो गया। वह द्वार-द्वार भटकने लगा। इसपर जगज्जननी पार्वतीजीको उस होनहार बालकपर दया आयी। वे ब्राह्मणीका वेष धारणकर प्रतिदिन उसके पास जातीं और उसे अपने हाथों भोजन करा आतीं।

इधर भगवान् शंकरजीकी प्रेरणासे रामशैलपर रहनेवाले श्रीअनन्तानन्दजीके प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्दजीने इस बालकको ढूँढ़ निकाला और उसका नाम 'रामबोला' रखा। उसे वे अयोध्या ले गये और वहाँ संवत् १५६१ माघ शुक्ला पंचमी शुक्रवारको उसका यज्ञोपवीत-संस्कार कराया। बिना सिखाये ही बालक रामबोलाने गायत्री-मन्त्रका उच्चारण किया। इसके बाद नरहरि स्वामीने वैष्णवोंके पाँच संस्कार करके रामबोलाको राममन्त्रकी दीक्षा दी और अयोध्यामें ही रहकर उन्हें विद्याध्ययन कराने लगे। वहाँसे कुछ दिन बाद गुरु-शिष्य दोनों शूकरक्षेत्र (सोरों) पहुँचे। वहाँ श्रीनरहरिजीने तुलसीदासको श्रीरामचरित सुनाया। कुछ दिन बाद वे काशी चले आये। काशीमें शेषसनातनजीके पास रहकर तुलसीदासजीने पन्द्रह वर्षतक वेद-वेदांगका अध्ययन किया। तत्पश्चात् अपने विद्यागुरुसे आज्ञा लेकर वे अपनी जन्मभूमिको लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने विधिपूर्वक अपने पिता आदिका श्राद्ध किया और वहीं रहकर लोगोंको भगवान् रामकी कथा सुनाने लगे।

संवत् १५८३ ज्येष्ठ शुक्ला १३ गुरुवारको भारद्वाजगोत्रकी एक सुन्दरी कन्याके साथ उनका विवाह हुआ और वे सुखपूर्वक अपनी नवविवाहिता वधूके साथ रहने लगे। एक बार उनकी स्त्री अपने भाईके साथ मायके चली गयी। पीछे-पीछे तुलसीदासजी भी वहाँ जा पहुँचे। उनकी पत्नीने इसपर उन्हें बहुत धिक्कारा और कहा कि 'मेरे इस हाड़-मांसके शरीरमें जितनी तुम्हारी आसक्ति है, उससे आधी भी यदि भगवान्‌में होती तो तुम्हारा बेड़ा पार हो गया होता।'

तुलसीदासजीको ये शब्द लग गये। वे एक क्षण भी नहीं रुके, तुरंत वहाँसे चल दिये।

वहाँसे चलकर तुलसीदासजी प्रयाग आये। वहाँ उन्होंने गृहस्थवेशका परित्यागकर साधुवेश ग्रहण किया। फिर तीर्थाटन करते हुए काशी पहुँचे।

श्रीप्रियादासजीने गोस्वामीजीके गृहत्यागका इस प्रकार वर्णन किया है—

तियो सों सनेह बिन पूछे पिता गेह गई, भूली सुधि देह भजे वाही ठौर आए हैं।
बधू अति लाज भई रिस सों निकसि गई, प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाए हैं॥
सुनी जब बात मानो ह्वै गयौ प्रभात, वह पाछे पछितात तजि काशीपुरी धाए हैं।
कियौ तहां वास प्रभु सेवा लैं प्रकास कींनौं, लीनौं दृढ़ भाव नैन रूपके तिसाए हैं॥ ५०८॥

(ख) काशीमें श्रीहनुमान्‌जीसे भेंट

काशीमें तुलसीदासजी रामकथा कहने लगे। वहाँ उन्हें एक दिन एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान्‌जीका पता बतलाया। हनुमान्‌जीसे मिलकर तुलसीदासजीने उनसे श्रीरघुनाथजीका दर्शन करानेकी प्रार्थना की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान्‌जीने कहा, 'तुम्हें चित्रकूटमें रघुनाथजीके दर्शन होंगे।' इसपर तुलसीदासजी चित्रकूटकी ओर चल पड़े। चित्रकूट पहुँचकर रामघाटपर उन्होंने अपना आसन जमाया। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले थे। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोड़ोंपर सवार होकर धनुष-बाण लिये जा रहे हैं। तुलसीदासजी उन्हें देखकर मुग्ध हो गये, परंतु उन्हें पहचान न सके। पीछेसे हनुमान्‌जीने आकर उन्हें सारा भेद बताया तो वे बड़ा पश्चात्ताप करने लगे। हनुमान्‌जीने उन्हें सान्त्वना दी और कहा प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे।

श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सौच चल शेष पाय, भूत हू विशेष कोऊ, बोल्यौ सुख मानि हनुमान् जू बताए हैं।
रामायन कथा सो रसायन है काननि को, आवत प्रथम पाछे जात घृना छाए हैं॥
जाय पहिचानि संग चले उर आनि आए वन मधि जानि धाय पांय लपटाए हैं।
करैं तिरस्कार कही सकौगे न टारि, मैं तो जाने रससार रूप धर्‌यौ जैसे गाए हैं॥ ५०९॥
'मांगि लीजै वर' कही 'दीजै राम भूप रूप, अति ही अनूप, नित नैन अभिलाखियै'।
कियौ लैसंकेत, वाही दिन ही सौं लाग्यौ हेत, आई सोई समैं चेत कब छबि चाखियै॥
आए रघुनाथ, साथ लछिमन, चढ़े घोरे, पट रङ्ग बोरे हरे कैसे मन राखियै।
पाछे हनुमान आये बोले 'देखे प्रान प्यारे, नेकु न निहारे मैं तो भले फेरि भाखियै'॥ ५१०॥

(ग) चित्रकूटमें भगवान् श्रीरामके दर्शन और काशीमें श्रीशंकरजीसे वरप्राप्ति

संवत् १६०७ की मौनी अमावस्या बुधवारको उनके सामने भगवान् श्रीराम पुनः प्रकट हुए। उन्होंने बालकरूपमें तुलसीदासजीसे कहा—बाबा! हमें चन्दन दो। हनुमान्‌जीने सोचा, वे इस बार भी धोखा न खा जायँ, इसलिये उन्होंने तोतेका रूप धारण करके यह दोहा कहा—

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

तुलसीदासजी उस अद्भुत छबिको निहारकर शरीरकी सुधि भूल गये। भगवान्‌ने अपने हाथसे चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदासजीके मस्तकपर लगाया और अन्तर्धान हो गये।

संवत् १६२८ में ये हनुमान्‌जीकी आज्ञासे अयोध्याकी ओर चल पड़े। उन दिनों प्रयागमें माघमेला था। वहाँ कुछ दिन वे ठहर गये। पर्वके छः दिन बाद एक वटवृक्षके नीचे उन्हें भरद्वाज और याज्ञवल्क्यमुनिके दर्शन हुए। वहाँ उस समय वही कथा हो रही थी, जो उन्होंने सूकरक्षेत्रमें अपने गुरुसे सुनी थी। वहाँसे ये काशी चले आये और वहाँ प्रह्लादघाटपर एक ब्राह्मणके घर निवास किया। वहाँ उनके अन्दर कवित्वशक्तिका स्फुरण हुआ और वे संस्कृतमें पद्य-रचना करने लगे, परंतु दिनमें वे जितने पद्य रचते, रात्रिमें वे सब लुप्त हो जाते। यह घटना रोज घटती। आठवें दिन तुलसीदासजीको स्वप्न हुआ। भगवान् शंकरने उन्हें आदेश दिया कि 'तुम अयोध्यामें जाकर रहो और हिन्दीमें काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वादसे तुम्हारी कविता सामवेदके समान फलवती होगी।' तुलसीदासजी उनकी आज्ञा शिरोधार्यकर काशीसे अयोध्या चले आये।

संवत् १६३१ का प्रारम्भ हुआ। उस साल रामनवमीके दिन प्रायः वैसा ही योग था, जैसा त्रेतायुगमें रामजन्मके दिन था। उस दिन प्रातःकाल श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसकी रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिनमें ग्रन्थकी समाप्ति हुई। संवत् १६३३ के मार्गशीर्ष शुक्लपक्षमें रामविवाहके दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये। इसके बाद भगवान्‌की आज्ञासे तुलसीदासजी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान् विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णाको श्रीरामचरितमानस सुनाया। रातको पुस्तक श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरमें रख दी गयी। सबेरे जब पट खोला गया तो उसपर लिखा हुआ पाया गया— **'सत्यं शिवं सुन्दरम्।'** और नीचे भगवान् शंकरकी सही थी। उस समय उपस्थित लोगोंने **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** की आवाज भी कानोंसे सुनी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) भगवन्नामनिष्ठाकी एक घटना

एक बार एक ब्राह्मण (विप्रचन्द) हत्या करके फिर उसके प्रायश्चित्तस्वरूप बहुतसे तीर्थोंमें घूमता-फिरता काशी आया। वह मुखसे पुकारकर कहता था—'राम-राम! मैं हत्यारा हूँ, मुझे भिक्षा दीजिये।' गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने उसके मुखसे अति सुन्दर भगवन्नाम सुनकर उसे अपने निवास-स्थानमें बुला लिया और उसे अपनी पंक्तिमें बैठाकर भगवत्प्रसाद पवाया, उसे शुद्ध कर लिया। काशीके ब्राह्मणोंने जब यह बात सुनी तो उन्होंने एक सभा की और उसमें श्रीतुलसीदासजीको बुलवाया। सभी पण्डितोंने आपसे पूछा कि प्रायश्चित्त पूरा हुए बिना इस हत्यारेका पाप कैसे दूर हो गया? श्रीगोसाईंजीने कहा—'आपको कैसे विश्वास होगा, सो कहिये।' इसपर पण्डितोंने कहा—'इसके हाथसे यदि श्रीशंकरजीका नाँदिया खा ले तो हमलोग इसे अपनी जाति-पंगतिमें ले लेंगे।' इस बातको आपने स्वीकार कर लिया और उसे एक थालमें सजाकर प्रसाद दिया। सब लोग काशीमें ज्ञानवापीके निकट नन्दीश्वरके पास पहुँचे, जहाँकी शर्त रखी थी। श्रीगोसाईंजीने कहा—हे नन्दीश्वर! यदि यह ब्राह्मण राम-नामके प्रतापसे शुद्ध हो गया है तो आप इसके हाथसे प्रसाद स्वीकार करके नाम-महिमाको प्रमाणित कीजिये। ऐसी प्रार्थना सुनकर नन्दीश्वरने प्रसन्न होकर प्रसाद खा लिया। सभी लोगोंने रामचन्द्रजीकी एवं श्रीरामनामकी जय-जयकार की और तुलसीदासकी नामनिष्ठापर बलिहार हो गये।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

हत्या करि विप्र एक, तीरथ करत आयौ, कहै मुख 'राम' भिक्षा डारियै हत्यारे कौं।
सुनि अभिराम नाम धाम में बुलाय लियौ दियौ लै प्रसाद कियौ सुद्ध गायौ प्यारे कौं॥
भई द्विज सभा कहि बोलि कै पठाये आप 'कैसे गयौ पाप, सङ्ग लैके जेये न्यारे कौं।
पोथी तुम बांचौ, हिये भाव नहीं सांचौ अजू ताते मति कांचौ, दूर करै न अन्ध्यारे कौं'॥ ५११॥
देखी पोथी बांच, नाम महिमा हूँ कही सांच, ऐपै हत्या करै कैसैं तरै कहि दीजियै।
'आवै जौ प्रतीति कहौ', कही याके हाथ जेंवैं शिवजू कौ बैल तब पङ्गति में लीजियै'॥
थार मैं प्रसाद दियौ चले जहां पन कियौ, बोले 'आप नाम कै प्रसाद मति भीजियै'।
जैसे तुम जानो तैसी कैसी कै बखानों अहो, सुनिके प्रसन्न पायो, जै जै धुनि रीझियै॥ ५१२॥

(ङ) श्रीराम-लक्ष्मणद्वारा तुलसीदासजीकी कुटियापर पहरा देना

काशीके पण्डितोंको गोस्वामीजीसे ईर्ष्या हो गयी थी। वे दल बाँधकर तुलसीदासजीकी निन्दा करने लगे और उनके द्वारा रचित श्रीरामचरितमानसको भी नष्ट कर देनेका प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुस्तक चुरानेके लिये दो चोर भेजे। चोरोंने जाकर देखा कि तुलसीदासजीकी कुटीके आसपास दो वीर धनुष-बाण लिये पहरा दे रहे हैं। वे बड़े ही सुन्दर श्याम और गौर वर्णके थे। उनके दर्शनसे चोरोंकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्होंने उसी समयसे चोरी करना छोड़ दिया और भजनमें लग गये।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आये निशि चोर, चोरी करन हरन धन, देखे श्याम घन, हाथ चाप सर लिये हैं।
जब जब आवैं बान सांधि डरपावैं, एतौ अति मड़रावै, ऐपै बली दूरि किये हैं॥
भोर आय पूछैं 'अजू! सांवरो किशोर कौन' सुन करि मौन रहे, आंसू डारि दिये हैं।
दई सो लुटाय, जानी चौकी राम राय दई, लई उन दिक्षा शिक्षा, शुद्ध भये हिये हैं॥ ५१३॥

(च) रामभक्तिके प्रभावसे एक स्त्रीके पतिको जीवनदान देनेकी घटना

एक बार एक ब्राह्मणका देहान्त हो गया था। उसकी पत्नी उसके साथ सती होनेके लिये जा रही थी। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी अपनी कुटीके द्वारपर बैठे हुए भजन कर रहे थे। उस स्त्रीने इन्हें दूरसे ही देखा तो फिर समीप आकर उसने इनके श्रीचरणोंमें सप्रेम प्रणाम किया। आपने उसे आशीर्वाद देते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_14_1_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा कि 'सौभाग्यवती होओ।' उसने कहा—'महाराजजी! मेरे पतिका स्वर्गवास हो गया है और मैं सती होनेके लिये श्मशान घाटपर जा रही हूँ। तब इस आशीर्वादका क्या अर्थ होगा? गोसाईंजीने कहा—'अब तो मेरे मुखसे आशीर्वाद निकल चुका है, तुम और तुम्हारे घरके सभी लोग यदि भगवान् श्रीरामका भजन करें तो मैं तुम्हारे मृत पतिको जीवित कर दूँ। उस स्त्रीने अपने सभी कुटुम्बियोंको बुलाकर कहा कि यदि आपलोग सभी सच्चे हृदयसे श्रीराम-भक्ति करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करें तो यह मेरा मृत पति जीवित हो जायगा। सभीने सादर स्वीकार कर लिया और श्रीरामनामका संकीर्तन करने लगे। तब गोसाईंजीने उसे सुन्दर भक्तिमय जीवन दान दिया। इससे प्रभावित होकर उसके परिवारके लोग भगवद्भक्त हो गये।

श्रीप्रियादासजीने इस अलौकिक घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कियौ विप्र तन त्याग, तिया चली सङ्ग लागि, दूरही ते देखि, कियौ चरन प्रनाम है।
बोले यों 'सुहागवती', मर्यो पति होऊँ सती, 'अब तो निकसि गई ज्याऊँ सेवौ राम है'॥
बोलिकै कुटुम्ब कही 'जौ पै भक्ति करौ सही,' गही तब बात जीव दियो अभिराम है।
भये सब साधु व्याधि मेटी लै विमुखताकी जाकी वास रहै तौ न सूझै श्याम धाम है॥ ५१४॥

(छ) दिल्लीके बादशाहके साथ घटी घटना तथा श्रीनाभाजीसे भेंट

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी महिमा सुनकर दिल्लीके बादशाहने अपने सेनापतियोंको काशी भेजा। उन्होंने आकर काशीके सूबेदारसे कहा कि गोस्वामीजीने मरे हुए ब्राह्मणको जीवित कर दिया है, यह सुनकर बादशाह उनके दर्शन करना चाहते हैं, उन्हें आदर और सुख-सुविधापूर्वक ले जाया जायगा। तब सूबेदारने आकर गोस्वामीजीसे बहुत अनुनय-विनय की, आपने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और काशीसे दिल्लीकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर बादशाहके पास गये। उसने आपका बड़ा भारी स्वागत-सत्कार किया। ऊँचे सिंहासनपर बैठाकर बड़ी मधुरवाणीसे बादशाहने कहा—'आपकी करामातका सुयश सारे संसारमें फैला हुआ है, मुझे भी कुछ चमत्कार दिखलाइये।' गोस्वामीजीने कहा—ये सब बातें झूठी हैं, चमत्कार दिखाना हमें नहीं आता है। हम तो केवल श्रीरामजीको जानते-मानते हैं, उन्हींका भजन करते हैं। श्रीतुलसीदासजीके उत्तरको सुनकर बादशाहने कहा—'तो अपने रामको ही दिखलाओ। मैं देखूँ कि तुम्हारे राम कैसे हैं।' यह कहकर उसने इन्हें कारागारमें बन्द कर दिया। तब आपने अपने हृदयमें हनुमान्‌जीका ध्यान करते हुए उनसे प्रार्थना की—'प्रभो! आप दयासागर हैं, मुझ दासपर कृपा कीजिये।' प्रार्थना करते ही उसी समय करोड़ों नये-नये आकार-प्रकारके, रंग-रूपवाले वानर प्रकट हो गये। नगरभरमें सर्वत्र लोगोंके शरीरोंको नोचने-खरोचने लगे, बेगमोंके वस्त्रोंको भी चीड़ने-फाड़ने लगे। यह उपद्रव देखकर बादशाहकी आँखें खुलीं, वह श्रीतुलसीदासजीके पास आया और पैरोंमें गिरकर बोला—'अब तो आप हमें प्राण-दान दीजिये, आपके बचानेसे ही हमलोग बचेंगे। नहीं तो नहीं।' श्रीगोसाईंजीने कहा—'पहले आप थोड़ी-सी करामात और देख लीजिये।' आपकी बात सुनकर बादशाह अति ही लज्जित हुआ। पछताते हुए अपराधको क्षमा करनेकी प्रार्थना करने लगा। तब वानरोंका उपद्रव शान्त हुआ। आपने रक्षा की और कहा कि 'अब तुम्हारा यह किला भगवान् श्रीरामका हो गया। आप इसे बिलकुल छोड़ दीजिये।' यह सुनकर बादशाहने उस किलेको छोड़ दिया। दूसरा नया किला (नयी दिल्ली) बनाकर उसमें रहने लगा। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने दिल्लीसे प्रस्थान किया। पुनः वृन्दावनमें आकर आप श्रीनाभाजीसे मिले और बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाको अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णित किया है—

दिल्लीपति पातसाह अहदी पठाये लैन ताकौ, सो सुनायौ सूबे बिप्र ज्यायौ जानियै।
देखिबे कों चाहै नीकै सुख सों निबाहै, आय कही हहु बिनैं गही चले मन आनियै॥
पहुँचे नृपति पास, आदर प्रकाश कियौ, दियौ उच्च आसन लै, बोल्यो मृदु बानियै।
'दीजै करामात जग ख्यात सब मात किये', कही 'झूठ बात एक राम पहिचानियै'॥ ५१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखैं राम कैसौ, कहि कैद किये किये हिये 'हूजिये कृपाल हनुमानजू दयाल हो'।
ताही समै फैलि गए, कोटि-कोटि कपि नये, लोचै तन खोचैं चीर भयौ यों बिहाल हो॥
फोरैं कोट, मारैं चोट, किये डारैं लोट पोट, लीजै कौन ओट जाय मान्यौ प्रलय काल हो।
भई तब आखैं, दुखसागर कौं चाखैं, अब वेई हमें राखैं, भाखैं, वारौं धन माल हो॥ ५१६॥
आय पांय लिये तुम दिये हम प्रान पावैं, आप समझावैं 'करामात नेकु लीजियै'।
लाज दबि गयौ नृप, तब राखि लयौ, कह्यौ 'भयौ घर रामजू कौ बेगि छोड़ि दीजियै'॥
सुनि तजि दयो और कर्‌यौ लैकै कोट नयौ, अबहूँ न रहे कोऊ वामै तन छीजियै।
काशी जाय, वृन्दावन आय मिले नाभाजूसों सुन्यौ हो कबित्त निज रीझि मति भीजियै॥ ५१७॥

(ज) इष्टदेव श्रीरामके प्रति अनन्य निष्ठा

गोस्वामीजीने श्रीवृन्दावनमें श्रीमदन-गोपाल श्रीकृष्णका दर्शन करके प्रार्थना की—'प्रभो! आपकी यह छबि अवर्णनीय है, परंतु सच्ची बात तो यह है कि भगवान् श्रीराम मेरे सच्चे इष्टदेव हैं।' उस समय आपकी दृष्टि प्रेममें पगी हुई थी। भक्तकी भावना-प्रार्थनाको स्वीकारकर श्रीकृष्णजीने श्रीरामरूप धारण करके दर्शन दिया। अपने मनके अनुरूप अपने इष्टदेवकी शोभा-सुन्दरता जब आपने देखी तो आपको अत्यन्त ही प्रिय लगी। किसी दिन श्रीकृष्णके अनन्य उपासकोंने कहा—'भगवान् श्रीकृष्ण सोलह कलाओंसे पूर्ण प्रशंसनीय हैं और श्रीरामचन्द्रजी अंशावतार हैं', यह सुनकर आपने उत्तर दिया कि अबतक तो मैं उन्हें श्रीदशरथजीका पुत्र, परम सुन्दर, उपमारहित जानकर उनसे प्रेम करता था, परंतु आज आपके द्वारा मालूम हुआ कि उनमें ईश्वरता भी है। अब उनमें मेरी प्रीति करोड़ों गुनी अधिक हो गयी है।

श्रीप्रियादासजीने तुलसीदासजीकी अपने इष्टके प्रति अनन्यताका वर्णन इस प्रकार किया है—

मदनगोपाल जू कौ दरसन करि कही, सही राम इष्ट मेरे दृष्टि भाव पागी है।
वैसे ही सरूप कियौ, दियौ लै दिखाइ रूप, मन अनुरूप छवि देखि नीकी लागी है॥
काहू कही कृष्ण अवतारी जू प्रसंस महा, राम अंश, सुनि बोले 'मति अनुरागी है'।
दशरथ सुत जानौं, सुन्दर अनूप मानौं, ईशता बताई रति कोटि गुनी जागी है॥ ५१८॥

तुलसीदासजी अब असीघाटपर रहने लगे। रातको एक दिन कलियुग मूर्तरूप धारणकर उनके पास आया और उन्हें त्रास देने लगा। गोस्वामीजीने हनुमान्‌जीका ध्यान किया। हनुमान्‌जीने उन्हें विनयके पद रचनेको कहा; इसपर गोस्वामीजीने विनय-पत्रिका लिखी और भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दी। श्रीरामने उसपर अपने हस्ताक्षर कर दिये और तुलसीदासजीको निर्भय कर दिया।

संवत् १६८० श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवारको असीघाटपर गोस्वामीजीने राम-राम कहते हुए अपना शरीर परित्याग किया।

श्रीमानदासजी

करुना बीर सिंगार आदि उज्ज्वल रस गायो।
पर उपकारक धीर कबित कबिजन मन भायो॥
कोसलेस पद कमल अननि दासत ब्रत लीनो।
जानकि जीवन सुजस रहत निसि दिन रँग भीनो॥
रामायन नाटक की रहसि उक्ति भाषा धरी।
गोप्य केलि रघुनाथ की, मानदास परगट करी॥ १३०॥

श्रीमानदासजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी गुप्त-प्रकट लीलाओंका काव्यद्वारा गान करके भक्तोंको सुनाया। श्रीरामचरित्र-वर्णनप्रसंगमें आपने अपने काव्योंमें करुण, वीर, शृंगार आदि रसोंका भी समावेश किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_14_2_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी कविताएँ कविजनोंको अत्यन्त प्रिय लगती थीं। आप महान् परोपकारी, धैर्यवान् एवं शीलवान् थे। कौसलेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणकमलोंकी अनन्य भावसे सेवा करनेका आपका दृढ़ व्रत था। श्रीजानकी-जीवन प्रभुके सुयशके वर्णन, अध्ययन एवं मननके रंगमें आप दिन-रात रँगे-पगे रहते थे। श्रीरामायण और हनुमन्नाटकादि ग्रन्थोंकी, गूढ़ उक्तियोंका आपने सरस भाषामें विवेचन किया॥ १३०॥

श्रीगिरिधरजी

अर्थ धर्म काम मोच्छ भक्ति अनपायनि दाता।
हस्तामल श्रुति ग्यान सबहि सास्त्रन को ग्याता॥
परिचर्या ब्रजराज कुँवर के मन कों कर्षै।
दरसन परम पुनीत सभा तन अमृत वर्षै॥
बिट्ठलेस नंदन सुभाव जग कोऊ नहिं ता समान।
बल्लभजू के बंस में सुरतरु गिरिधर भ्राजमान॥ १३१॥

श्रीवल्लभाचार्यजीके वंशमें श्रीगिरिधरलालजी महाराज कल्पवृक्षके समान शोभायमान लगते थे। आप शरणागत भक्तोंको अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष और अचल श्रीहरिभक्तिके दाता थे। आपको वेद-शास्त्रोंका सम्पूर्ण ज्ञान हाथमें आँवलेकी तरह प्रत्यक्ष था। आप सभी शास्त्रोंके ज्ञाता थे। आपकी पूजा-पद्धति व्रजराज कुँवर भगवान् श्रीकृष्णके मनको आकृष्ट करनेवाली थी। आपके दिव्य दर्शनसे लोग पवित्र हो जाते थे। भक्तोंकी सभामें विराजमान होकर जब आप श्रीकृष्ण-कथाको कहते थे, तब ऐसा लगता था कि मानो प्रेमामृतकी वर्षा हो रही है। गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी महाराजके सुपुत्र श्रीगिरिधरलालजी महाराजके समान सरस-शीतल एवं कोमल स्वभाववाला संसारमें कोई नहीं हो सकता है॥ १३१॥

श्रीगोसाईं गोकुलनाथजी

उदधि सदा अच्छोभ सहज सुंदर मितभाषी।
गुरुबर्तन गिरिराज भलप्पन सब जग साखी॥
बिट्ठलेस की भक्ति भयो बेला दृढ़ ताकै।
भगवत तेज प्रताप नमित नरबर पद जाकै॥
निर्विलीक आसय उदार, भजन पुंज गिरिधरन रति।
(श्री) बल्लभजू के वंश में गुननिधि 'गोकुलनाथ' अति॥ १३२॥

श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके वंशमें (अर्थात् श्रीवल्लभाचार्यजीके पौत्र एवं श्रीविट्ठलनाथजीके चतुर्थ पुत्र) श्रीगोकुलनाथजी सद्‌गुणोंके निधान थे। वे क्षुभित न होनेवाले समुद्रके समान अविचल, गम्भीर तथा सहज सुन्दर थे। सर्वदा मधुर, सत्य एवं आवश्यकतानुसार बोलनेवाले थे। आपका विशाल, सुन्दर एवं दिव्य शरीर श्रीगिरिराज गोवर्धनके समान दर्शनीय था। सारा संसार आपके भलेपनका साक्षी है। आप अपने पिता श्रीविट्ठलनाथजीके भक्ति-समुद्रकी सीमा बाँधनेवाले सुदृढ़ किनारेके समान थे। आप भगवद्विभूति थे, बड़े तेजस्वी एवं प्रतापी थे। अतः बड़े-बड़े राजा-महाराजा, श्रेष्ठ व्यक्ति आपके श्रीचरणोंमें अपना सिर झुकाकर सादर नमस्कार करते थे। आपका हृदय परम पवित्र था। आप निर्विकार मन-बुद्धिवाले, परम उदार और भजन-भावकी राशि थे। श्रीगोवर्धननाथजीसे बड़ा स्नेह करते थे॥ १३२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगोसाईं गोकुलनाथजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

एकबार एक धनवान् व्यक्ति आपका शिष्य होनेके लिये आया। वह आपके लिये लाखों रुपयेकी भेंट लाया था। आपने उससे पूछा कि क्या तुम्हारा कहीं किसी वस्तुपर ऐसा स्नेह है कि जिसके मिले बिना तुम्हारा तन-मन व्याकुल हो जाता हो। उसने कहा—अजी! मेरा कहीं किसी भी वस्तुमें तनिक भी स्नेह नहीं है। तब आपने कहा कि यदि ऐसा है, तब तो हम तुम्हें कदापि दीक्षा नहीं दे सकते। तुम किसी और गुरुको खोजो। भक्तिमार्गमें तो प्रेम ही प्रधान है। जीवका जो प्रेम संसारमें होता है, दीक्षा-शिक्षाके द्वारा उसीको पलटकर भगवान्‌में लगा दिया जाता है। जब तुम्हारे हृदयमें कहीं प्रेम है ही नहीं तो तुम भगवान्‌के प्रेममें कैसे सराबोर हो सकते हो? इस प्रकारका कोरा जवाब सुनकर उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस प्रसंगका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आयौ कोऊ शिष्य होन ल्यायौ भेट लाखन की, भाखन की चातुरी पै मेरी मति रीझिये।
कहूं है सनेह तेरो जाके मिले बिना देह व्याकुलता होय जोपै, तोपै दीक्षा दीजिये॥
बोल्यौ 'अजू मेरौ काहू बस्तु सों न हेतु नेकु,' नेति नेति कही हम, गुरु ढूँढ़ि लीजिये।
प्रेम ही की बात इहां करेही पलटि जात, गयौ दुख गात, कहो कैसे रंग भीजिये॥ ५१९॥

कान्हा नामका एक भंगी था। उसने श्रीश्यामसुन्दरके प्रेमरसमें अपने मनको एकदम मिला दिया था। कान्हाको दूरसे खड़े होकर टकटकी लगाकर श्रीनाथजीका दर्शन करते हुए देखकर मन्दिरके अधिकारी, पुजारी आदि कर्मचारियोंने श्रीगोकुलनाथजीसे कहकर श्रीठाकुरजीको उसकी दृष्टिसे बचानेके लिये मन्दिरके द्वारके सामने दीवाल उठवा दी, जिससे अब न तो कान्हा श्रीश्रीनाथजीको देख सके, न श्रीश्रीनाथजी कान्हाको देख सकें। तब रात्रिमें श्रीश्रीनाथजीने स्वप्नमें कान्हासे कहा कि इस नयी दीवालकी ओट मुझे बहुत कष्ट दे रही है। अतः तुम श्रीगोकुलनाथजीसे शीघ्र कहो कि बहुत जल्दी इस दीवालको हटवा दें, जिससे कि मैं विलछू कुण्डकी शोभाका दर्शन कर सकूँ। तुम्हें दर्शन न होनेसे जो कष्ट है, उसका हमें ख्याल है।

इसी प्रकार प्रेम-प्रवीण श्रीनाथजी तीन दिनतक लगातार स्वप्नमें कान्हाको आज्ञा देते रहे। तब कान्हा हिम्मत करके श्रीगोसाईंजीके द्वारपर गया और द्वारपालसे बोला—आप श्रीगोसाईंजीसे मेरी प्रार्थना सुनाइये कि कान्हा आपसे कुछ बात करना चाहता है। यह सुनकर द्वारपालने नाराज होकर कहा—अरे! तू गोसाईंजीसे बात करेगा? इतनेमें किसीने श्रीगोसाईंजीसे कहा कि कान्हा आपसे कुछ कहना चाहता है तो आपने कहा—'उसे शीघ्र बुलाओ'। आनेपर श्रीगोसाईंजीने कहा—अहो! कहो, तुम क्या कहना चाहते हो? तब कान्हाने वही बात कही, जो श्रीश्रीनाथजीने इससे कही थी। सुनकर श्रीगोकुलनाथजी बड़े हर्षित हुए कि अहो! श्रीश्रीनाथजीने मुझे अपना मानकर मुझसे कहनेको कहा है। फिर तो आप कान्हासे बड़े प्रेमसे मिले और बोले—यदि श्रीश्यामसुन्दरने मेरा नाम लेकर कहा है तो अब उनकी बात नहीं टलेगी। गुसाईंजीने तुरंत दीवाल गिरवा दी और कान्हाको उनका अनन्य सखा जानकर एक पारस (भोजन) देनेकी आज्ञा दी।

श्रीप्रियादासजीने भगवान्‌की इस प्रेमपरवशताका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कान्हा हो हलालखोर, घोरि दियौ मन लैकै स्याम रससागर में नागर रसाल है।
निसि को सुपन मांझ, निपुन श्रीनाथजू नै, आज्ञा दई, भीत नई भई ओट साल है॥
गोकुल के नाथजू सों बेगि दै जताइ दीजै कीजै याहि दूर छबि पूर देखौ ख्याल है।
भोर जो विचारै, नाहिं धीरजकों धारै, 'उहाँ जाऊँ कोऊ मारै पैड़ें पर्‌यो यह लाल है'॥ ५२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे दिन तीन आज्ञा देते वे प्रवीन नाथ, हाथ कहा, मेरे बिन गये नहीं सरैगौ।
गए द्वार द्वारपाल बोले, 'जू बिचार एक दीजैं सुधि कान', सुनि खीझे 'बात करैगौ'॥
काहू ने सुनाय दई, लीजियै बुलाय अहो कहौ, और 'दूर करौ करे', दूरि ढरैगौ।
जाय वही कही, लही आपनी पिछानि, मिले, सुन्यौ मेरौ नाम स्याम कह्यो, नहीं टरैगौ॥५२१॥

श्रीबनवारीदासजी

बात कबित बड़ चतुर चोख चौकस अति जानै।
सारासार बिबेक परम हंसनि परवानै॥
सदाचार संतोष भूत सब कों हितकारी।
आरज गुन तन अमित भक्ति दशधा ब्रतधारी॥
दरसन पुनीत आसय उदार आलाप रुचिर सुख धाम को।
रसिक रँगीलो भजन पुँज सुठि बनवारी स्याम को॥१३३॥

श्रीबनवारीदासजी भगवान् श्यामसुन्दरके बड़े अनुरागी, रसिक एवं सुन्दर भजनानन्दी सन्त थे। भगवत्सम्बन्धी कथा-वार्ता एवं काव्य-रचनामें परम चतुर थे। साधन-भजनमें सर्वदा सावधान रहते थे। सार-पदार्थको ग्रहण करने तथा असारको त्यागनेमें आप परमहंसोंके समान थे। आप श्रेष्ठ सदाचारी और सन्तोषी थे तथा प्राणिमात्रके हितकारी थे। आपमें सभी श्रेष्ठ गुण विद्यमान थे। प्रेमाभक्तिके आचरणकी आपने प्रतिज्ञा ले रखी थी। आपका दर्शन परमपवित्र और उद्देश्य उदार था। आपका वार्तालाप परम मनोहर एवं सुखदायक था॥१३३॥

श्रीबनवारीदासजीके विषयमें संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीबनवारीदासजी खण्डेलवाल ब्राह्मण थे, आपका जन्म राजस्थानमें हुआ था। एक बार आप तीर्थयात्रा करते हुए मथुरा आये। वहाँ नारद टीलेपर आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजीके दर्शन हुए। उनसे प्रभावित होकर आपने विरक्त-दीक्षा ग्रहण की। गुरुदेवके आज्ञानुसार आप श्रीयुगलकिशोरजीकी सेवामें अनुरक्त हो गये और आजीवन व्रजमें निवासकर भक्तिका आस्वादन करते रहे।

श्रीनारायणमिश्रजी

नाम नरायन मिश्र बंस नवला जु उजागर।
भक्तन की अति भीर भक्ति दसधा को आगर॥
आगम निगम पुरान सार सास्त्रनि सब देखे।
सुरगुरु सुक सनकादि ब्यास, नारद जु बिसेषे॥
सुधा बोध मुख सुरधुनी जस बितान जग में तन्यो।
भागवत भली बिधि कथन को धनि जननी एकै जन्यो॥१३४॥

नवल-वंशमें जन्म लेकर श्रीनारायणमिश्रजीने अपनी सुन्दर कीर्तिसे उसे प्रसिद्ध किया। आप भक्तसेवी थे, अतः आपके यहाँ भक्तोंकी बड़ी भारी भीड़ लगी रहती थी। दस प्रकारकी भक्तिके आप निधान थे। आपने वेद-शास्त्र-पुराण तथा अन्य धर्मशास्त्रोंके रहस्यको प्राप्त कर लिया था। इसलिये आप बृहस्पति, शुकदेव, सनकादि ऋषि, व्यास और नारदके समान थे। आपके श्रीमुखसे श्रोताजनोंको ज्ञान देनेवाली, परम मधुर, अमृत-सरीखी वाणी श्रीगंगाजीके समान निकलती थी। आपका सुयश-वितान सारे संसारमें फैला हुआ था। श्रीनारायणदासजी मिश्रकी माताको धन्यवाद है, जिन्होंने श्रीमद्भागवतके परम श्रेष्ठ वक्ताको जन्म दिया॥१३४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनारायणमिश्रजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

भक्तमालांक सर्वेश्वरके अनुसार कुछ लोग इन्हें सनाढ्य कुलका बताते हुए ब्रजके किसी सीमावर्ती नगरको आपकी जन्मभूमि मानते हैं। इनके वंशज कई शताब्दियोंसे श्रीवृन्दावनमें निवास करते हैं। कुछ सज्जनोंका निश्चय है कि ये राजस्थानके पाटण ग्रामनिवासी श्रीनवलकिशोरजीके पुत्र हैं। श्रीमद्भागवतका कथा-प्रवचन इनके कुलकी सम्पत्ति है। श्रीनारायणमिश्रजीने केशव काश्मीरीजीकी सन्निधिमें रहकर वेद-वेदांग, वेदान्त और पुराणोंका अध्ययन किया। तत्पश्चात् श्रीभट्टदेवाचार्यजीसे विरक्त दीक्षा ली। फिर आपने ब्रजमें ही निवास किया। आप श्रीभागवतके अद्वितीय वक्ता थे।

श्रीराघवदासजी

काम क्रोध मद मोह लोभ की लहर न लागी।
सूरज ज्यों जल ग्रहै बहुरि ताही ज्यों त्यागी॥
सुंदर सील सुभाव सदा संतन सेवा ब्रत।
(गुरु) धर्म निकष निर्बह्यो, बिस्व में बिदित बड़ो भृत॥
अल्ह राम रावल कृपा आदि अंत धुकती धरी।
कलिकाल कठिन जग जीति यों राघौ की पूरी परी॥ १३५॥

श्रीराघवदासजीने महाभयंकर कलियुगको जीतकर इस संसारमें भक्त-भगवन्तकी भक्तिके प्रणको निभाया। काम, क्रोध, मद, मोह और लोभकी लहरें इनको नहीं छू सकीं। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जलको खींचते हैं और फिर समयपर उसे विश्व-कल्याणके लिये बरसाते हैं, उसी प्रकार आप भी अतिथि-साधु-सेवाके निमित्त अन्न-धन आदिका संग्रह करके फिर उसे सेवामें लगा देते थे। आपका स्वभाव और आचरण अति उत्तम था। सर्वदा सन्तोंकी सेवा करनेका दृढ़ नियम आपने अपनाया था। गुरु-सेवारूप धर्मकी कसौटीपर आप खरे उतरे। इसीसे आप सारे संसारमें महान् गुरुसेवी-गुरुभक्त प्रसिद्ध हुए। श्रीअल्हजी एवं श्रीरामरावलजीकी कृपासे आदिसे अन्ततक जीवनभर भक्त-भगवन्तमें आपने अपने मनको लगाये रखा तथा उनके प्रति नम्र रहे। इस प्रकार श्रीराघवदासजीकी निष्ठाका जीवनभर निर्वाह हुआ॥ १३५॥

श्रीबावनजी

अच्युत कुल सों दोष सुपनेहूँ उर नहिं आनै।
तिलक दाम अनुराग सबनि गुरुजन करि मानै॥
सदन माहिं बैराग्य बिदेहिन की सी भाँती।
राम चरन मकरन्द रहति मनसा मदमाती॥
जोगानन्द उजागर बंस करि निसि दिन हरि गुन गावनो।
हरिदास भलप्पन भजन बल बावन ज्यों बढ्यो बावनो॥ १३६॥

भगवद्भक्तोंकी साधुता तथा अपने भजनके बलसे श्रीहरिदासजी (वामनजी) भी बावनभगवान्‌की तरह बहुत छोटेसे बहुत बड़े हो गये। आप वैष्णवोंके किसी भी छोटे-बड़े दोषोंको स्वप्नमें भी अपने मनमें नहीं लाते, उनपर ध्यान नहीं देते थे। तिलक-माला (कण्ठी) आदि भक्तोंके चिह्नोंमें आपका परम अनुराग था तथा सभी वैष्णव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेष धारण करनेवालोंको आप अपना गुरु करके मानते। श्रीजनक राजाकी तरह आप भी गृहस्थ-आश्रममें रहते हुए परम वैराग्यवान् थे। श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलके परागको पानकर आपका मनरूपी भौंरा सदा उन्मत्त रहता था। श्रीयोगानन्दजीके वंशकी कीर्तिको उज्ज्वल करके दिन-रात भगवद्गुणोंको गाते रहते थे॥ १३६॥

श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी

ज्यों चंदन को पवन नीब पुनि चंदन करई।
बहुत काल तम निबिड़ उदय दीपक ज्यों हरई॥
श्रीभट पुनि हरिब्यास संत मारग अनुसरई।
कथा कीरतन नेम रसन हरि गुन उच्चरई॥
गोबिंद भक्ति गद रोग गति तिलक दाम सद बैद हद।
जंगली देश के लोग सब (श्रीपरसुराम) किए पारषद॥ १३७॥

श्रीपरशुरामदेवाचार्यजीने जंगली असभ्य जनोंको हरिभक्तिका उत्तम उपदेश देकर उन्हें भगवत्पार्षदोंके तुल्य पवित्र एवं पूज्य बना दिया। जिस प्रकार चन्दन वृक्षका स्पर्श करके बहनेवाले वायुका स्पर्श पाकर नीम भी चन्दनके समान हो जाता है तथा जिस प्रकार दीपक पुराने एवं घने अन्धकारको दूर कर देता है, उसी तरह आप भी हरिभक्ति-विमुख लोगोंको अपने सम्पर्कसे पवित्रकर उनके अज्ञानको दूर कर देते थे। आप श्रीभट्टजी तथा श्रीहरिव्यासदेवाचार्य आदि सन्तोंके मार्गपर चले। नित्य नियमपूर्वक आप अपनी जिह्वासे भगवत्कथा एवं कीर्तन करते रहते थे। जिस प्रकार कोई उत्तम वैद्य मधुर अनुपानके साथ रस-रसायन द्वारा असाध्य रोगीको रोग-मुक्त कर देता है, उसी प्रकार श्रीपरशुरामदेवाचार्यजीने भी तिलक-कण्ठीके समेत हरिभक्तिका उपदेश देकर संसारी जीवोंको जगत्के पाप-ताप आदि रोगोंसे मुक्त किया॥ १३७॥

श्रीपरशुरामदेवाचार्यजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीपरशुरामदेवजीका जन्म जयपुर राज्यमें सोलहवीं सदीमें हुआ था। वे परमरसिक महात्मा हरिव्यासदेवजीके शिष्य थे। परशुरामदेव अच्छे कवि और रसोपासक थे। भगवान्की कथा-सुधाके रसास्वादनमें उन्हें अमित आनन्द मिलता था। दूसरोंको कथामृतपान करानेके लिये वे सदा प्रस्तुत रहते थे। वे तिलक लगाने, माला फेरने और भगवद्गुणानुवाद करनेको बड़ा महत्त्व देते थे।

परशुरामदेवजी उच्चकोटिके रसिक थे, बड़े ठाट-बाटसे रहते थे। देखनेवालोंको भ्रम हो जाया करता था कि वे विरक्त हैं या गृहस्थ। एक बार एक ब्राह्मणने इनकी त्यागवृत्तिकी परीक्षा ली। उसने इनसे माया-त्यागकी बात चलायी। सन्तों और भक्तोंका चरित्रवैचित्र्य दूसरोंके उपकारके लिये होता है। परशुरामदेवने अपनी सारी वस्तुएँ त्याग दीं, केवल कौपीन धारणकर वे उसके साथ नागेश्वर पहाड़की गुफामें चले गये। थोड़ी ही देरमें एक व्यापारी आया, उसने अपनी सम्पत्ति इनके चरणोंमें चढ़ा दी। ब्राह्मण परशुरामदेवकी इस सिद्धि और प्रभावसे चकित हो उठा। उसने चरण पकड़कर क्षमा माँगी और उनकी आज्ञामें प्राणतक निछावर करनेको तैयार हो गया।

श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

राजसी महन्त देखि, गयौ कोऊ अन्त लैन, बोल्यौ 'जू अनन्त हरि सगे, माया टारियै।
चले सङ्ग वाके, त्यागि, पहिरि कुपीन अंग, बैठे गिरि कन्दरा में लागी ठौर प्यारियै॥
तहाँ बनिजारौ आय सम्पति चढ़ाय दई, दई और पालकी हूँ, महिमा निहारियै।
जाय लपटायौ पांय, 'भाव मैं न जान्यौं कछू आन्यौं उरमांझ, आवै प्राण वारि डारियै॥ ५२२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने 'परशुरामसागर' नामक एक ग्रन्थका निर्माण किया। इस ग्रन्थमें बाईस सौ दोहे, छप्पय, छन्द और अनेक पद हैं। इस सरस ग्रन्थमें भक्ति, ज्ञान, गुरुनिष्ठा और प्रेमकी महिमाका बखान विशेषरूपसे किया गया है।

श्रीगदाधरभट्टजी

सज्जन सुहृद सुसील बचन आरज प्रतिपालय।
निर्मत्सर निहकाम कृपा करुना को आलय॥
अननि भजन दृढ़ करन धर्‌यो बपु भक्तनि काजै।
परम धरम को सेतु बिदित बृन्दाबन गाजै॥
भागवत सुधा बरषै बदन काहू को नाहिन दुखद।
गुन निकर गदाधर भट्ट अति सब ही को लागै सुखद॥ १३८॥

श्रीगदाधरभट्टजी समस्त सद्गुणोंके समूह तथा सभीको सुख देनेवाले थे। आप स्वभावसे सज्जन, सबके मित्र, सदाचारी और पूर्वाचार्योंके वचनोंका पालन करनेवाले थे। आप ईर्ष्या, कामना आदि दुर्गुणोंसे रहित, कृपा और करुणाके निधान थे। लोगोंमें अनन्यभावपूर्वक भजन-साधनको दृढ़ करनेके लिये आपने शरीर धारण किया था। आप परम धर्मके पुष्ट सेतु थे। श्रीवृन्दावनधाममें सर्वदा विराजते थे। श्रीमद्भागवतकी कथा-सुधा आपके श्रीमुखसे बरसती रहती थी। आप किसी भी प्राणीके लिये दुःखद नहीं थे॥ १३८॥

श्रीगदाधरभट्टजीके विषयमें संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(क) अपने इष्टके धाम 'श्रीवृन्दावन' के प्रति निष्ठाका एक दृष्टान्त

श्रीगदाधरभट्टजी आन्ध्रप्रदेशके वैल्लनाटीय तैलंग ब्राह्मण थे। श्रीजीवगोस्वामीजीकी प्रेरणासे वे वृन्दावनमें आकर श्रीरघुनाथभट्टजीके अनुगत शिष्य हो गये थे। श्रीगदाधरभट्टजी जब अपनी जन्मभूमि घरमें ही रहते थे, उस समय उन्होंने ***'सखी हौं स्याम रंग रँगी'*** यह पद बनाया। श्रीजीवगोस्वामीजीने श्रीवृन्दावनमें किसीको गाते हुए उक्त पदको सुना तो उनका मन विभोर हो गया। उन्होंने शीघ्र ही एक पत्र लिखकर दो सन्तोंको श्रीगदाधरभट्टजीके पास भेजा। पत्रमें लिखा था कि—'बिना (रँगनेके स्थान)-के आपके ऊपर रंग कैसे चढ़ गया, मुझे यह सोच-विचारकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है।' प्रेमसे ओत-प्रोत पत्रको लेकर दोनों सन्त श्रीभट्टजीके गाँवमें पहुँचे। उस समय परमरसिक सन्त श्रीभट्टजी गाँवके बाहर एक कुएँपर बैठे दातौन कर रहे थे। सन्तोंने श्रीभट्टजीसे ही पूछा—'यहाँ श्रीगदाधरभट्टजी कहाँ निवास करते हैं?' उत्तरमें श्रीभट्टजीने उन दोनों सन्तोंसे पूछा—'आप लोग किस स्थानमें रहते हैं?' सन्तोंने उत्तर दिया—'श्रीवृन्दावनधाममें।' यह सुनते ही श्रीभट्टजी मूर्छित होकर कुएँसे नीचे भूमिपर गिर पड़े। उस समय ऐसा लग रहा था कि मानो इनके प्राणोंने भगवत्प्राप्ति कर ली।

श्रीगदाधरभट्टजीकी मूर्च्छा देखकर पत्र लेकर आनेवाले साधुओंसे किसी ग्रामवासीने बताया कि 'श्रीगदाधरभट्टजी ये ही हैं।' आश्चर्य करते हुए प्रेमके साथ तब उन साधुओंने श्रीभट्टजीके कानमें कहा कि 'हम आपके लिये श्रीवृन्दावनसे श्रीजीवगोस्वामीजीका पत्र लाये हैं।' यह सुनकर इनकी मूर्च्छा दूर हो गयी और उठकर बैठ गये। साधुओंने पत्र दिया, आपने उसे लेकर सिरसे लगाया और पढ़कर उसी क्षण उन साधुओंके साथ चल दिये और शीघ्र ही श्रीवृन्दावन आकर सर्वप्रथम श्रीजीवगोस्वामीजीसे मिले। मिलन-सुखसे आँखोंमें आनन्दके आँसू भर गये। शरीरकी सुधि-बुधि भूल गये। तत्पश्चात् धैर्य धारणकर वही ***'सखी हौं स्याम रंग रँगी'*** पद गाया। श्रीवृन्दावनमें निवास करते हुए आपने श्रीजीवगोस्वामीसे अनेक भक्तिशास्त्रोंका अध्ययन और सन्तोंके साथ सत्संग किया। श्रीकृष्णकी कथाओंके रसकी उमंग आपके अंग-अंगमें भर गयी। भावमें विभोर होकर आप नित्य श्रीमद्भागवतकी कथा कहने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने श्रीगदाधरभट्टजी और श्रीजीवगोस्वामीके मिलनकी घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

'स्याम रङ्ग रँगी, पद सुनिकै, 'गुसांई जीव' पत्र दै पठाये उभै साधु वेगि धाये हैं'।
'रैनी बिन रंग कैसे चढ्यौ' अति सोच बढ्यौ, कागद में प्रेम मढ्यौ तहां लैके आये हैं॥
पुर ढिग कूप, तहां बैठे रस रूप, लगे पूछिबे कौ तिनहीं सों नाम ले बताये हैं।
रहौ कौन ठौर, सिरमौर वृन्दावन धाम नाम सुनि मुरछा ह्वै गिरे प्रान पाये हैं॥ ५२३॥
काहू कही 'भट्ट श्रीगदाधर जू एई जानौ' मानौ उही पाती चाह फैरिकै जिवाये हैं।
दियो पत्र, हाथ लियो, सीस सौं लगाय, चाय, बांचत ही चले, वेगि वृन्दावन आये हैं॥
मिले श्रीगुसाईं जू सों आंखैं भरि आईं नीर, सुधि न शरीर धरि धीर वही गाये हैं।
पढ़े सब ग्रन्थ, संग, नाना, कृष्णकथा रंग रसकी उमंग अंग अंग भाव छाये हैं॥ ५२४॥

(ख) श्रीमद्भागवतकथाके मध्य घटी एक विलक्षण घटना

मथुरा-वृन्दावनके मध्यमें बसे धौरहरा गाँवका निवासी कल्याणसिंह नामक एक पवित्र हृदयवाला राजस्थानी राजपूत वृन्दावनमें श्रीगदाधरभट्टजीकी कथामें आने लगा। कथाका ऐसा विचित्र रंग उसपर चढ़ा कि उसने अपनी स्त्रीसे हँसना-बोलना बिलकुल छोड़ दिया। इससे उसकी स्त्री बड़े दुःखमें पड़ गयी। उसने निश्चय किया कि मैं ऐसी कोई नयी युक्ति करूँ, जिससे हमारे पतिका मन कथा और कथावाचकसे हट जाय। इसी बीच एक गर्भवती तरुणी स्त्री गाँवमें भीख माँगती दिखायी पड़ी।

कल्याणसिंहकी स्त्रीने युवती भिखारिनको बुलाकर बीस रुपये दिये और समझाया कि तुम वृन्दावन चली जाओ और जिस समय श्रीगदाधरभट्टजीकी कथा हो, उसी समय सबके सामने कहना—'महाराज! जैसे आपने मुझपर कृपा की और मुझे गर्भवती किया, उसी प्रकार अब मेरी सुधि लीजिये।' उस भिखारिनने स्वीकार कर लिया, तब उसने अपनी एक दासी उसके साथ कर दी। धनके लोभवश भिखारिनका चित्त दूषित हो गया था। उसने कथामें जाकर सबको सुनाकर श्रीभट्टजीसे कहा कि 'अब मेरा प्रबन्ध कीजिये।' उसकी इन बातोंको सुनकर श्रीगदाधरभट्टजीने कहा—'आओ-आओ, बैठो। मैं तो नित्य मनमें तुम्हारा स्मरण करता था, परंतु तुम जाने कहाँ चली गयी थी।' श्रोताओंने जब ये बातें सुनी तो उनके मनमें बड़ा दुःख हुआ और वे कहने लगे कि यह स्त्री झूठ कह रही है, इसे मारो, दूर भगा दो। यह सुनकर उसके प्राणोंकी रक्षाके लिये श्रीभट्टजीने कहा—यह सत्य कहती है। यह सुनकर श्रोताओंको बड़ा दुःख हुआ।

श्रोताओंमें श्रीराधिकाबल्लभदासजी नामक एक सन्त बैठे थे, वे बड़े बुद्धिमान् थे, उन्हें भी भिखारिन और भट्टजीका संवाद सुनकर महान् दुःख हुआ। उन्होंने उस भिखारिनको एकान्तमें बुलाकर उसे समझाया और डराया कि जो सच्ची बात है, उसे बता दो, तब तो तुम्हें छोड़ दिया जायगा। नहीं तो अभी तुझे मार डाला जायगा। यह सुनकर वह डर गयी और उसने सब रहस्य खोल दिया, जिसे सुनकर श्रोताओंकी जान-में-जान आयी। कल्याणसिंहजीने जब अपनी स्त्रीकी यह करतूत सुनी तो उन्हें बड़ा क्रोध आया और म्यानसे तलवार निकालकर उसे मारनेके लिये चले। तब श्रीभट्टजीने उन्हें रोक लिया और समझाते हुए कहा—'इन स्त्रियोंने हमारे ऊपर बड़ी दया की है, उन्होंने अहंकार एवं प्रभुतारूपी पिशाचिनीसे बचाया है।' सन्त श्रीभट्टजीके स्वभावको देखकर कि अपराधीके प्रति कितनी दया है, दोनों स्त्रियाँ भक्ता बन गयीं।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

नाम हो कल्यानसिंह जात रजपूत पूत, बैठ्यौ आय, कथा सो अभूत रंग लाग्यो है।
निपट निकट वास 'धौरहा' प्रवास गांव हास परिहास तज्यो, तिया दुःख पाग्यो है॥
जानी भट्ट संग सों अनंग वास दूर भई, करौ लैकै नई आनि हिये काम जाग्यो है।
मांगत फिरत हुती जुवती औ गर्भवती, कही लै रुपैया बीस नैकु कहो राग्यो है॥ ५२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गदाधर भट्ट जू की कथा में प्रकाश कहो, 'अहौ कृपा करी अब मेरी सुधि लीजियै'।
दई लौंड़ी संग, लोभ रंग चित्त भंग किये दिये लै बताय, बोली 'मेरौ काम कीजियै'॥
बोले आप 'बैठिये जू जाप नित करौं हिये, पाप नहीं मेरौ गई दर्शन दीजियै।
श्रोता दुख पाय, भाखैं झूठी याहि मारि नाखैं सांची कहि राखें, सुनि तन मन छीजियै॥ ५२६॥
फाटि जाय भूमि तौ समाय जायँ श्रोता कहैं, बहै दृग नीर ह्वै अधीर सुधि गई है।
राधिकाबल्लभदास प्रकट प्रकाश भास, भयौ दुःख रास, सुनि सो बुलाय लई है॥
'साँच कहि दीजै नहीं अभी जीव लीजै', डरि, सबै कहि दीयौ, सुख लियौ संज्ञा भई है।
काढि तरवार तिया मारिबे कल्यान गयो, दयौ परबोध 'हमें करी दया नई है'॥ ५२७॥

(ग) कथाके श्रोता एक महन्तजी और श्रीगदाधरभट्टजीका प्रेमाह्लाद

श्रीगदाधरभट्टजीकी कथाकी प्रशंसा सुनकर व्रजभूमिसे बाहर किसी स्थानके एक महन्तजी भी कथा सुनने आये। लोगोंने उन्हें सम्मानपूर्वक आगे बैठाया। कथा होने लगी तो महन्तजीने देखा कि कथा सुनकर सभी सन्तोंके नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं। अब महन्तजी सोचने लगे कि मेरी आँखोंमें आँसू क्यों नहीं आते? वे शोक-समुद्रमें मग्न हो गये। सोचते-सोचते उन्हें एक उपाय सूझा। दूसरे दिन जब ये कथा सुनने आये तो पिसी लाल मिर्च छिपाकर लाये और कथा सुनते हुए उन्होंने अपनी आँखोंमें मिर्च लगा ली। इस बातको किसी सन्तने जान लिया और कथाके समाप्त होनेपर श्रीगदाधरभट्टजीको बता दिया। जब सभी श्रोता चले गये, तब श्रीभट्टजी महन्तजीको छातीसे लगाकर मिले और रोते हुए पुकारकर बोले—मेरे मनमें यदि ऐसी रोनेकी तीव्र इच्छा प्रकट हो जाती तो मेरा जन्म सफल हो जाता। इस प्रकार कहते-कहते आपके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। उससे महन्तजी भीग गये और उनके हृदयमें भी प्रेम प्रकट हो गया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

रहै काहू देस में महन्त, आये कथा मांझ, आगै लै बैठाये देखैं सबै साधु भीजे हैं।
'मेरे अश्रु पात क्यों न होत, सोच सोत परे करे लै उपाय दै लगाय मिर्च खीजे हैं॥
सन्त एक जानिकै जताय दई भट्टजू कौ, गए उठि सब जब मिलि अति रीझे हैं।
'ऐसी चाह होय मेरे' रोयकै पुकारि कही, चली जलधार नैन प्रेम आय धीजे हैं॥ ५२८॥

(घ) चोर भगवद्भक्त बन गया

एक बार श्रीगदाधरभट्टजीके आश्रममें (माँट गाँवका) एक चोर घुस आया और उसने बहुत-सी सम्पत्ति-सामान बटोरकर एक गठरी बाँध ली, परंतु जब वह गठरी उठाने लगा तो अधिक भारी होनेके कारण उसे उठा न सका। श्रीभट्टजी देख रहे थे, वे उसके पास आये और उन्होंने गठरी उठवा दी। चोरको आश्चर्य हुआ। उसने आपका नाम पूछा। तब आपने बता दिया। नाम सुनकर उसके मनमें इनके प्रति बड़ा प्रेम हुआ और वह बोला—'मुझसे बड़ी भारी भूल हुई, मैं नहीं जानता था कि यह आपका घर है।' सिरसे गठरी उतारकर वह क्षमा-प्रार्थना करने लगा। तब आपने कहा—'आप इस गठरीको ले जाओ। मेरे पास तो सबेरा होते ही इससे दसगुनी सम्पत्ति और आ जायगी। तुम्हारी तो यही जीविका है।' उसने श्रीभट्टजीके चरण पकड़ लिये और शिष्यता स्वीकार कर ली। चोरी करना छोड़ दिया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आयौ एक चोर, घर सम्पति बटोरि, गांठि बाँधी, लै मरोरि किहूँ उठै, नाहिं भारी है।
आयकै उठाय दई, देखी इन रीति नई, पूछ्यौ नाम, प्रीति भई, भूलो मैं बिचारी है॥
बोले आप लै पधारौ, होत ही सवारौ आवै और दसगुनी मेरे तेरी यह ज्यारी है।
प्राननि कौं आगे धरौ आनि कै उपाय करौ, रहे समझाय भयौ शिष्य चोरी टारी है॥ ५२९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ङ) श्रीगदाधरभट्टजीका भगवद्भाव

श्रीगदाधरभट्टजी श्रीमद्भागवतके मर्मज्ञ विद्वान् थे, अतः सेवा-भक्तिका प्रभाव जैसा भागवतमें कहा गया है, उसे भलीभाँति जानते थे। इसलिये भक्त-भगवन्तकी सेवा-टहल नित्य आप अपने हाथोंसे ही करते थे। एक दिन आप मन्दिरमें चौका लगा रहे थे। उसी समय कोई धनी-मानी आपका शिष्य बहुत-सी भेंट लेकर दर्शन करने आया। श्रीभट्टजीके एक शिष्यने दूरसे देखकर आपसे कहा—'महाराजजी! आप शीघ्र हाथ धोकर अपने आसनपर बैठ जाइये। भक्त भेंट लेकर आ रहा है।' यह सुनकर आप उसके ऊपर नाराज हो गये। पुनः समझाया कि 'भगवत्-सेवामें ही हमें रुचि है, अतः सेवाको त्यागकर भेंट लेनेके लिये गद्दीपर नहीं बैठ सकते हैं।'

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

प्रभु की टहल निज करनि करत आप, भक्ति कौ प्रताप जानें भागवत गाई है।
देत हुते चौका, कोऊ शिष्य बहु भेंट ल्यायौ, दूर ही ते देखि दास आयौ सो जनाई है॥
धोवौ हाथ बैठौ आप, सुनिकै रिसाय उठे, सेवा ही में चाय वाकौ खीझि समझाई है।
हिये हित रासि जग आस कों विनास कियौ, पियौ प्रेम रस ताकी बात लै दिखाई है॥ ५३०॥

चारण भक्त

चौमुख चौरा चंड जगत ईस्वर गुन जाने।
करमानँद अरु कोल्ह अल्ह अच्छर परवाने॥
माधौ मथुरा मध्य साधु जीवानँद सींवा।
दुदा नरायनदास नाम माँड़न नतग्रीवा॥
चौरासी रूपक चतुर, बरनत, बानी जूवा।
चरन शरन चारन भगत हरि गायक एता हुआ॥ १३९॥

भगवान्‌के चरणकमलोंकी शरण ग्रहण करनेवाले और उन्हींके गुणोंको गानेवाले ये तेरह चारण (गवैया) भक्त हुए। श्रीचौमुखजी, श्रीचौराजी, श्रीचण्डजी, जगत्‌में भगवद्गुण गानेवाले श्रीईश्वरदासजी, श्रीकरमानन्दजी, श्रीकोल्हजी, प्रामाणिक काव्य रचनेवाले श्रीअल्हजी, मथुरामें रहनेवाले श्रीमाधवजी, सरल-सन्त श्रीजीवानन्दजी, श्रीसींवाजी, श्रीदूदाजी, श्रीनारायणदासजी और नम्र स्वभाववाले श्रीमाण्डनजी। ये सभी चारण भक्त चौरासी प्रकारसे (अथवा चौरासी लाख योनियोंके) रूपकोंकी रचनामें तथा अनेक प्रकारसे अलग-अलग हरिगुणगानमें परम चतुर हुए॥ १३९॥

इन चारण भक्तोंमेंसे कुछ भक्तोंके चरित इस प्रकार हैं—

श्रीचौमुखजी

श्रीचौमुखजीका दूसरा नाम चौमौ था। एक बार श्रीचौमुखजी अपने नगरसे बैलोंके रथपर सवार होकर दर्शनार्थ द्वारकापुरीको जा रहे थे। चलते-चलते रास्तेमें जंगलके मध्य एक बैल मर गया। अब समस्या हो गयी कि एक बैलसे रथ कैसे चले? आप मनमें बहुत चिन्तित हुए, तब उसी क्षण एक बैल आपके रथके पास आकर खड़ा हो गया। आप उसे रथमें जोतकर सानन्द द्वारका आये। यहाँ आते ही वह बैल अन्तर्धान हो गया। तब इन्हें बड़ा दुःख हुआ। भगवान् स्वयं बैल बनकर रथमें जुते—यह सोच-सोचकर आपकी आँखें सजल हो रही थीं। आपको इस प्रकार चिन्तित देखकर भगवान्‌ने स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि यदि मैं अपने भक्तपर इतना वात्सल्य न करूँ तो फिर मेरा भजन कौन करे!

श्रीचण्डजी

इनका पूरा नाम चूड़ाजी भी था। ये इसी छप्पयमें आये श्रीमाधवदासजीके पिता थे। ये मेड़ताके ठाकुर श्रीचारभुजाके अनन्य भक्त थे। इनकी भक्तिके प्रभावसे ही इन्हें माधवदास-सरीखे भक्त पुत्रकी प्राप्ति हुई।

श्रीईश्वरदासजी

ये रोहड़िया शाखाके चारण थे। इनका जन्म जोधपुर राज्यमें भाद्रेस गाँवमें वि० सं० १५९५ में हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। आपके पिताका नाम सूजा और माताका नाम अमरबाई था। आपकी धर्मपत्नीका नाम देवलबाई था, जिनकी असामयिक मृत्यु हो गयी। आपके गुरु श्रीपीताम्बरजी भट्ट थे। जामनगरमें पेथा भाई अबसूराकी पुत्री राजबाईके साथ आपका दूसरा ब्याह हुआ। पहले ईश्वरदासजी राजाओंको प्रसन्न करनेके लिये उनकी कीर्तिका गान किया करते थे। जामनगरमें जाकर वहाँके राजाको भी आपने कविताएँ सुनायीं। उत्तम कविता थी, अतः राजा बहुत प्रसन्न हुआ। परंतु श्रीपीताम्बरजी भट्ट इनकी कविता सुनकर बहुत उदास हुए। उन्होंने प्रशंसा भी नहीं की, अतः ईश्वरदासजीके मनमें भट्टजीके प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ और ये बदला लेने (मारने)-की इच्छासे रातमें पीताम्बरभट्टके यहाँ गये और छिपकर बैठ गये। भट्टजी अपनी पत्नीसे वार्तालाप कर रहे थे। उसे ईश्वरदासजी सुन रहे थे। उनकी पत्नीने पूछा कि आप उदास क्यों हैं? उन्होंने कहा—'आज एक चारण दरबारमें आया, उसने बड़ी सुन्दर कविता सुनायी, परंतु इतनी विशिष्ट काव्य रचनेकी प्रतिभा पाकर उसने राजाके गुण गाकर उसे प्रसन्न किया और धन-मान पाकर फूल गया। क्या अच्छा होता कि यदि वह अपनी कविताके द्वारा ईश्वरकी कीर्तिको गाकर उन्हें प्रसन्न करता तो उसे जीवन-जन्मका परम लाभ मिल जाता।' इतना सुनते ही हथियार फेंककर ईश्वरदास प्रकट हो गये और भट्टजीके चरणोंमें गिर गये, रोने लगे और अपनी दुष्ट भावनाको प्रकटकर बारम्बार क्षमा-याचना करने लगे। उसी समय भट्टजीको गुरु मानकर उनके शिष्य बन गये और प्रतिज्ञा की कि 'अब मैं केवल ईश्वरके गुणोंका ही गान किया करूँगा, किसी अन्यका नहीं।'

'हरिरस' नामक ग्रन्थ आपकी प्रमुख रचना है। लगभग ८० वर्षकी आयुमें आपने वैकुण्ठधामगमन किया।

श्रीकरमानन्दजी

श्रीकरमानन्दजी चारणकुलमें उत्पन्न एक श्रेष्ठ भक्त थे, वे अपने मधुर गायनसे प्रभुकी सेवा करते थे। आपका गायन इतना भावपूर्ण होता था कि उसे सुनकर पाषाण-हृदय भी पिघल जाता था। आप गृहस्थ भक्त थे, परंतु गृहस्थी आपको बहुत दिनतक रास न आयी और एक दिन आप सब कुछ छोड़कर तीर्थाटन-हेतु निकल पड़े; निस्पृह निष्किंचन। साधन-सामग्रीके नामपर आपके पास हाथमें एक छड़ी थी और गलेमें लटकता ठाकुरबटुवा। आप जहाँ-कहीं भी विश्राम करनेके लिये रुकते, वहाँ छड़ीको पृथ्वीमें गाड़ देते और ठाकुरबटुवेको उसपर लटका देते। इससे आपके आराध्य श्रीठाकुरजीको झूला झूलनेका सुख मिल जाता और आपकी भी उनको झूला झुलानेके भावकी पूर्ति हो जाती।

एक दिन आप प्रातःकाल सेवा-पूजा करके श्रीठाकुरजीको गलेमें लटकाकर चल दिये। उस समय भगवन्नाम-रूपमें मनके लगे रहनेसे छड़ीको भूल गये। जब अगले विश्राम-स्थलपर रुके तो छड़ीकी याद आयी, बिना छड़ीके अब श्रीठाकुरजीको कहाँ और कैसे पधरावें? तब आपको प्रेमाधिक्यके कारण श्रीठाकुरजीपर प्रणय-रोष हुआ। आपने कहा—हम तो जीव हैं, हमसे तो भूल होती ही रहेगी। जब हम भूल गये थे तो आपको छड़ीकी याद दिलाना था। अब वह मुकाम यहाँसे चार कोस दूर है, जाने वहाँ छड़ी है कि कोई ले गया। इतना कहकर श्रीकरमानन्दजी क्या करें और क्या न करें की स्थितिमें फँसकर चिन्तित एवं उदास हो गये। श्रीठाकुरजीने इन शब्दोंको सुननेके लिये ही यह लीला की थी। श्रीकरमानन्दजीकी डाँट-फटकारसे वे और रीझ गये। जिनकी इच्छामात्रसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका सृजन होता है, उनके लिये चार कोससे छड़ी मँगा लेना यह कौन बड़ी बात है। प्रभुकी इच्छाशक्ति योगमायाने छड़ी लाकर दी। ऐसा लगा कि भगवान् हाथ बढ़ाकर छड़ी उखाड़ लाये। छड़ी देखकर श्रीकरमानन्दजी प्रेम-विह्वल हो गये और बोले, प्रभो! क्षमा कीजिये। मैंने आपको कठोर शब्द कहे। भगवान्ने कहा—जब हम और तुम दो ही हैं, तब यदि कुछ कहने-सुनने, लड़ने-झगड़नेकी इच्छा होगी तो कहाँ जायेंगे। आपसमें ही सब लीलाएँ होंगी। मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न हूँ और तुम्हारे प्रेमके अधीन हूँ। तुम्हारा रोष मेरे सुखके लिये था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

करमानन्द चारण की बानी की उचारन में, दारुन जो हियौ होय, सोऊ पिघलाइयै।
दियौ गृह त्यागि हरि सेवा अनुराग भरे, बटुवा सुग्रीव हाथ छरी पधराइयै॥
काहू ठौर जाय गाड़ि वहीं पधराये वापै ल्याये, उर प्रभु भूलि आये कहाँ पाइयै।
फेरि चाह भई दई स्याम को जताय बात, लई मँगवाय, देखि मति लै भिजाइयै॥ ५३१॥

श्रीकोल्हजी, श्रीअल्हजी

श्रीकोल्हजी और श्रीअल्हजी दोनों भाई-भाई थे। इन दोनोंमें बड़े भाई श्रीकोल्हजी संसारके विषयोंसे उदासीन थे। वाणीसे अपनी कवितामें भगवान्‌के ही रूप और गुणोंका सर्वदा गान करते और भक्ति-भावनाको हृदयमें धारण करते थे, जबकि श्रीअल्हजी राजसी भोगोंको भोगते थे। राजाओंके गुणोंका गान करते थे, कभी-कभी भगवान्‌के भी गुणोंका गान कर लेते थे, परंतु अपने बड़े भाईके आज्ञाकारी थे।

एक दिन बड़े भाई श्रीकोल्हजीने अल्हजीसे कहा—चलो, श्रीद्वारकापुरी और श्रीद्वारकाधीशके दर्शन कर आयें। श्रीअल्हजी तो अपने बड़े भाईके सर्वथा आज्ञाकारी थे ही, अत: आज्ञा पाते ही उनके साथ चल दिये और श्रीद्वारकापुरी पहुँचे। जब मन्दिरमें दर्शन करने गये तो वहाँ एक विलक्षण घटना घटी। श्रीकोल्हजीने भगवान्‌को अपने बनाये हुए अनेक छन्द गाकर सुनाये। इसके बाद श्रीअल्हजीने भी सकुचाते हुए दो-चार छन्द सुनाये। इनके पदोंको सुनकर श्रीद्वारकाधीशने प्रसन्न होकर हुँकारी भरी और पण्डाजीको आज्ञा दी कि अल्हजीको मेरी प्रसादी-माला पहनाओ। आज्ञा पाकर पण्डाजी माला लेकर आये और जैसे ही इन्हें पहनाने लगे, इन्होंने कहा—ये मेरे बड़े भ्राता हैं, इन्हें ही माला पहनाइये, मैं इस योग्य नहीं हूँ।

श्रीअल्हजीके कहनेसे भी पुजारीजीने श्रीकोल्हजीको माला नहीं पहनायी और कहा—यह माला तो प्रभुने आपके लिये दी है न कि आपके बड़े भाईके लिये। ऐसा कहकर पुजारीजीने अल्हजीको माला पहना दी। इससे श्रीकोल्हजीने अपना बड़ा भारी अपमान समझा। अहंवश और ग्लानिके मारे समुद्रमें कूद पड़े। जलके भीतर घुसते ही इन्हें दिव्य भूमि मिल गयी। अब ये आनन्दमग्न होकर आगे चले, परंतु माला न मिलनेवाली अनीति इन्हें भूल नहीं रही थी। कुछ दूर और आगे बढ़नेपर इन्हें भगवान्‌के पार्षद मिले जो कि अगवानी करनेके लिये आये थे। उनसे मिलकर आपको सुख-शान्ति मिली। फिर आपने जब द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन किये, तब परमानन्दकी प्राप्ति हुई। अपमानका दु:ख भूल गया। इसके बाद जब कोल्हजी प्रसाद पानेके लिये बैठे, तब भगवान्‌की आज्ञासे सेवकोंने इनके सामने दो पत्तल परोसे। आपने पूछा—यह दूसरा पत्तल किसके लिये है? भगवान्‌ने उत्तर दिया—तुम्हारे छोटे भाईके लिये। वह हमें और तुम्हें भी अत्यन्त प्रिय है।

दूसरा पत्तल छोटे भाईके लिये है, यह सुनते ही अमृतमय भोजनप्रसाद विषतुल्य अप्रिय हो गया। अपमानका दु:ख जो भूल गया था, वह फिर ज्यों-का-त्यों हो गया। यह देखकर भगवान्‌ने श्रीअल्हजीके पूर्वजन्मकी कथा सुनायी और कहा—यह तुम्हारा छोटा भाई पूर्वजन्ममें बड़े भारी राजाका पुत्र था। वहाँ इसे वैराग्य हो गया। घर छोड़कर वनमें चला गया। वहाँ इसने मुझमें मन-बुद्धि लगाकर खूब मेरा भजन किया। इसी बीच एक राजा वनमें आया। उसके साथ अनेक प्रकारके भोग-विलासकी सामग्री थी, जिसे देखकर इस राजकुमारके मनमें विषय भोगनेकी वासना उत्पन्न हो गयी। इसलिये हमने इसे संसारी सुखोंको भोगनेके लिये मनुष्यका शरीर दिया ताकि यह भोगोंको भोगकर उनकी असारता समझकर वासनासे मुक्त हो जाय। फिर भगवान्‌ने कोल्हजीसे कहा—तुम्हारे वियोगमें तुम्हारे छोटे भाईने अन्न-जल त्याग दिया है। तुम्हारे वियोगमें वह अधिक दिन जीवित नहीं रह सकता है। इसलिये अब तुम शीघ्र जाकर उसकी खबर लो, यह कहकर भगवान्‌ने कोल्हजीके हाथमें प्रसाद दिया। शंख-चक्रके चिह्न लेकर आप घरको आ गये। अपमानका दु:ख स्वप्नमें हुए दु:खके समान बिलकुल भूल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनमें उसके प्रति अपार प्रेम हो गया। इधर छोटे भाई श्रीअल्हजीने जब सुना कि मेरे बड़े भ्राता कोल्हजी दिव्य द्वारकाका दर्शन करके आ रहे हैं तो उनके स्वागतके लिये चले। भाईको देखकर भूमिपर पड़कर प्रणाम किया। श्रीकोल्हजीने अल्हजीको भगवत्प्रसाद दिया तथा पूर्वजन्मका इतिहास भगवान्‌ने जो कुछ कहा था, वह सब कह सुनाया। उसी समय श्रीअल्हजी गृहकी आसक्तिको सर्वथा त्यागकर वृन्दावनमें रहने लगे। दोनों भाइयोंकी बुद्धि भक्त-भगवन्तके प्रेममें सराबोर हो गयी।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकोल्हजी और श्रीअल्हजीके इस प्रसंगका इस प्रकार वर्णन किया है—

कोल्ह अल्ह भाई दोऊ, कथा सुखदाई सुनौ, पहिलौ विरक्त मद मांस नहीं खात है।
हरि ही के रूप गुण वाणी में उचार करै, धरै भक्ति भाव हिये, ताकी यह बात है॥
दूसरौ अनुज, जानौ खाय सब उन मानौं, नृप ही कों गावै प्रभु कभूं गाय जात है।
बड़े के अधीन रहै, सोई करै जोई कहै, ईश करि चहै, आप दीनता मैं मात है॥ ५३२॥
बड़े आय कही चलौ द्वारिका निहारैं सही, मिथ्या जग भोग, यामें आयु ही बिहात है।
आज्ञा के अधीन चल्यौ, आये पुर, लीन भये, नये चोज मन्दिर मैं सुनौ कान बात है॥
कोल्ह नै सुनाये सब जे जे नाना छन्द गाये, पाछे अल्ह दोय चार कहे सकुचात है।
भर्‌यो ही हुङ्कारौ, प्रभु कही माला गरें डारौ, ल्याए पहिरावैं, कह्यो 'मेरौ बड़ौ भ्रात है'॥ ५३३॥
दयौ पै न याहि दयौ बड़ौ अपमान भयौ, गयौ बूड़ौं सागर मैं दुख कौ न पार है।
बूड़त ही आगे भूमि पाई, चल्यो झूमि प्रीति सो अनीति भूलै नाहिं मानो तरवार है॥
सौंही आये लैन हरिजन, मन चैन झिल्यो, मिल्यौ कृष्ण जाय पायो अति सुखसार है।
बैठे जब भोजन कों दई उभै पातर लै दूसरी जू कैसी कही वही भाई प्यार है॥ ५३४॥
सबै विष भयौ, दुख गयौ सोई हुयौ नयौ, दयौ परबोध वाकी बात सुनि लीजियै।
तेरो छोटो भाई मेरो भक्त सुखदाई, ताकी कथा लै जताई जामें आपही सों धीजियै॥
प्रथम जनम मांझ बड़ौ राज पुत्र भयौ, गयौ गृह त्यागि सदा, मोसों मति भीजियै।
आयौ वन कोऊ भूप सङ्ग राग रंग रूप, देखि चाह भई, देह दई भोग कीजियै॥ ५३५॥
तेरेई बियोग अन्न जल सब त्यागि दियौ जियौ नहीं जात वापै बेगि सुधि लीजियै।
हाथ पै प्रसाद दीनों, आय घर चीन्ह लीनों, सुपनौ सौ गयौ बीति, प्रीति वासों कीजियै॥
द्वारिका कौ संग सुनि आवत ही आगै चल्यौ मिल्यौ भूमि पर दृग भरि वहै दीजियै।
कही सब बात स्याम धाम तज्यौ ताही छिन कर्‌यौ बन बास दोऊ अति मति भीजियै॥ ५३६॥

श्रीनारायणदासजी

श्रीनारायणदासजी भक्तवर श्रीअल्हजीके पौत्र थे। इनसे बड़े और दूसरे भाई थे, ये सबसे छोटे थे। बड़े भाई लोग अन्न-धनका उत्पादन करनेवाले थे और ये श्रीनारायणदासजी कुछ भी कमाते नहीं थे। केवल खर्च-ही-खर्च करते थे। एक दिन इनकी भाभीने इन्हें ठण्डा भोजन दिया। इससे इन्हें महान् दुःख हुआ। इन्होंने अपनी भाभीसे कहा कि 'मुझे ताजा भोजन बनाकर दो।' इसपर वह क्रोध करके बोली—'तू अल्ह बाबा है क्या? जो मैं तुझे गर्म भोजन बना-बनाकर खिलाऊँ। जा, द्वारकाको चला जा और श्रीद्वारकाधीशजीको कविता सुनाकर उनसे हुँकारी भरवा, तब मैं तेरा बहुत आदर किया करूँगी और ताजा भोजन बना-बनाकर खिलाऊँगी।' इस प्रकार उसने परिहास किया। श्रीनारायणदासजीको यह बात लग गयी। इन्होंने उसी क्षण घर छोड़ दिया और श्रीद्वारकाधीशभगवान्‌में उसी प्रकारका अनुराग किया, जैसा कि श्रीअल्हजी करते थे। इनपर भी भगवान् प्रसन्न हो गये; क्योंकि वे तो भक्त-प्रेमके वशमें रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने श्रीनारायणदासजीका यह चरित अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णित किया है—

अल्ह ही के वंश मैं प्रसंस याहि जानि लेव, बड़ौ और भाई छोटौ श्रीनारायणदास है।
दीरघ कमाऊ लघु उपज्यो उड़ाऊ, भाभी दियौ सीरौ भोजन लै भयौ दुख रास है॥
'देवौ मोकों तातौ करि' बोली वह क्रोध भरि यहूं जा हुक्कारौ भरवावै कियो हास है।
गयौ गृह त्यागि हरि पागि कर्‌यौ वैसे ही जू, भक्ति बस स्याम कह्यौ प्रकट प्रकास है॥ ५३७॥

श्रीपृथ्वीराजजी

सवया गीत सलोक, बेलि दोहा गुन नवरस।
पिंगल काब्य प्रमान बिबिध बिधि गायो हरिजस॥
पर दुख बिदुख, सलाघ्य बचन रचना जु बिचारै।
अर्थ बित्त निर्मोल सबै सारँग उर धारै॥
रुक्मिनी लता बरनन अनुप बागीस बदन कल्यान सुव।
नरदेव उभय भाषा निपुन पृथीराज कबिराज हुव॥ १४०॥

श्रीकल्यानसिंहजीके सुपुत्र श्रीपृथ्वीराजजी संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओंमें काव्य रचनेमें बड़े निपुण हुए। आपके द्वारा रचित सवैया, गीत, श्लोक, वेली, दोहा आदि विविध छन्दोंमें काव्योचित गुण, साहित्यके नौ रस पाये जाते हैं। आपने छन्दशास्त्रके सभी नियमोंका पालन करते हुए अनेक प्रकारसे हरियशका वर्णन किया। आप दूसरेको दुःखी देखकर उसे सुखी करनेका उपाय करते थे। आपकी वचन-रचना विद्वानोंके द्वारा प्रशंसनीय है। आप काव्यके अर्थरूपी धनको अमूल्य मानकर उसे अपने हृदयमें उसी प्रकार धारण करते थे, जैसे भ्रमर मकरन्दको। 'कृष्ण रुक्मिणी बेली' नामक आपका काव्य अनुपम है। उसके पढ़नेसे ऐसा लगता है कि आपके कण्ठमें सरस्वतीका वास था॥ १४०॥

श्रीपृथ्वीराजजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

मारवाड़ प्रान्तमें स्थित बीकानेरके राजा श्रीपृथ्वीराजजी बहुत बड़े भगवद्भक्त और महान् कवि थे। भगवान्‌की सेवामें आपको बड़ा भारी प्रेम था और विषयोंसे ऐसा वैराग्य था कि मन्दिरमें आपने अपनी रानीको भी नहीं पहचाना। एकबार आप विदेश गये, वहाँ आपने मानसी-सेवाके निमित्त मनसे मन्दिरमें प्रवेश किया, परन्तु हृदयमें भगवान्‌के दर्शन नहीं हुए। अब कैसे सेवा हो और बिना सेवा भोजन-पान आदि कैसे हो? इस प्रकार तीन दिन बीत गये और भगवान्‌के दर्शन मन्दिरमें नहीं हुए। चौथे दिन मन्दिरमें भगवान्‌के दर्शन हुए, तब आपने उनकी मानसी-सेवा की और महान् सुखका अनुभव किया। पृथ्वीराजजीने पत्रमें यह सन्देश लिखकर अपने देशको भेजा कि तीन दिनतक मन्दिरमें भगवान्‌के दर्शन नहीं हुए। वहाँसे जो उत्तर लिखकर आया, उसे पढ़कर आप अत्यन्त प्रसन्न हुए। पत्रमें लिखा था कि मन्दिरमें सफाई-पोताई एवं मरम्मतके लिये कारीगर लगे थे, इसलिये भगवान् तीन दिनतक दूसरी जगह विराजे थे। एक चरित्र और सुनिये—भगवत्प्रेममें तन्मय होकर राजा पृथ्वीराजने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने शरीरको मथुरापुरीमें छोड़ूँगा। (बादशाहके पूछनेपर आपने बताया कि आजसे छः महीने बाद मथुरामें यमुना तटपर सफेद कौवेको देखते हुए मेरी मृत्यु होगी।) यह जानकर परीक्षाके लिये बादशाहने उन्हें काबुलकी कठिन लड़ाईपर भेज दिया। आपमें महान् आत्मबल था, अतः आप कालके आधीन नहीं थे।

श्रीपृथ्वीराजजीको अपनी आयुका पता था, जब आपने देखा कि अब हमारी आयु थोड़े दिनोंकी है, तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको एक-एक क्षण कल्पके समान बीतने लगा। भगवान् इनकी प्रतिज्ञाको सत्य करना चाहते थे, अतः प्रभुने इन्हें बालकके रूपमें आकर भविष्यका ज्ञान करा दिया। राजाके अंग-प्रत्यंगमें भक्तिका भाव व्याप्त था। वे तत्काल सांडिनी (ऊँट) पर सवार होकर चल दिये और मथुरापुरीमें आ गये। यहाँ आपने श्रीयमुनाजीमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणा प्रदान की। इसके बाद आसन लगाकर बैठ गये। भगवान्का ध्यान करके उन्होंने शरीरको त्याग दिया। चारों ओर जय-जयकी ध्वनि फैल गयी। बादशाहने जब यह समाचार सुना तो बहुत प्रभावित हुआ और सदाके लिये आपके सुयशरूपी चन्द्रमाका चकोरकी तरह अनुरागी बन गया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीपृथ्वीराजजीके इन भक्तिमय चरित्रोंका इस प्रकार वर्णन किया है—

मारवार देस बीकानेर कौ नरेश बड़ौ, 'पृथीराज' नाम भक्तराज कविराज है।
सेवा अनुराग और विषय वैराग्य ऐसौ, रानी पहिचानी नांहिं मानों देखी आज है॥
गयौ हो बिदेश, तहां मानसी प्रवेस कियौ, हियौ नहिं छुवै कैसे सरै मन काज है।
बीते दिन तीन प्रभु मन्दिर न दीठि परै पाछै हरि देखि, भयो सुख कौ समाज है॥ ५३८॥
'लिखिकै पठायौ देस, सुन्दर सन्देश यह 'मन्दिर न देखे हरि बीते दिन तीन हैं'।
लिख्यौ आयो सांच बांचि अति ही प्रसन्न भये लगे राज बैठे प्रभु बाहर प्रबीन हैं॥
सुनौ एक और यौं प्रतिज्ञा करी हिये धरि 'मथुरा सरीर त्याग करैं' रस लीन हैं।
पृथीपति आनि कै मुहीम दई काबुल की, बल अधिकाई, नहीं काल के अधीन हैं॥ ५३९॥
जीवन अवधि रहै निपट अलप दिन, कलप समान बीतै पल न विहात है।
आगम जनाय दियौ, चाहै इन्हैं सांचौ कियौ, लियौ भक्ति भाव जाके छायौ गात गात है॥
चल्यौ चढ़ि सांड़िनी पै लई मधुपुरी आनि, करिकै अस्नान प्रान तजे, सुनी बात है।
जै जै धुनि भई ब्यापि गई चहूँ ओर अहो, भूपति चकोर जस चन्द दिन रात है॥ ५४०॥

श्रीसींवाजी

असुर अजीज अनीति अगिनि मैं हरिपुर कीधौ।
साँगन सुत नै सादराय रनछौरै दीधौ॥
धरा धाम धन काज मरन बीजा हूँ माँड़ै।
कमधुज कुट कै हुवौ चौक चत्रभुजनी चाँड़ै॥
बाढ़ेल, बाढ कीवी कटक चाँद नाम चांड़ै सबल।
द्वारका देखि पालंटती अचढ़ सीवै कीधी अटल॥ १४१॥

एक बार अन्यायी म्लेच्छ अजीजखाँने द्वारकापुरीमें आग लगा दी। तब रणछोड़ श्रीद्वारकाधीशने सांगनके पुत्र सींवाको पुकारा। धरती, धन और धाम आदिके लिये सभी साधारण लोग लड़कर मर जाते हैं, परंतु इस वीर बाढ़ैलवंशी क्षत्रिय भक्तने चतुर्भुज श्रीद्वारकानाथके चौड़े-चौकमें यवनोंकी सेनाको विध्वंसकर अपने तन-मन और प्राणोंको न्यौछावर कर दिया। इस प्रकार राठौरवंशीय इस भक्तने अपने बाहुबलसे अपने पूर्वज चाँदके नामको उजागर किया और नष्ट होती हुई द्वारकापुरीकी तथा वहाँके निवासियोंकी रक्षा की एवं उसे सदाके लिये सुरक्षित कर दिया॥ १४१॥

श्रीसींवाजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीसींवाजी भीलोंके राजा थे, परंतु स्वयं भील नहीं थे। ये राठौर क्षत्रिय थे। द्वारकासे चार कोस दूरपर श्रीसींवाजीका निवास-स्थान था। ये वहाँसे नित्य दर्शन करने आते थे। भगवान् इन्हें प्रिय थे तथा ये भगवान्‌को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे थे, तभी तो संकटके समय भगवान्‌ने इनका स्मरण किया।

बादशाहके सेनापति अजीजखाँका उद्देश्य था कि नगरको जलाकर मन्दिरको तोड़ दें। लोग भाग न सकें, इस विचारसे उसने रातको चारों ओरसे घेरकर आग लगायी। तब द्वारकाधीशने छतके ऊपर चढ़कर पुकारा—'यवनोंने पुरीमें आग लगा दी है, सींवाजी! आकर मेरी रक्षा करो।' सींवाजीके कानमें ये शब्द पड़े तो इनकी मति भावमें डूब गयी। सर्वसमर्थ भगवान् रक्षाके लिये मुझे पुकारते हैं, यह मुझपर असीम वात्सल्य एवं दया है। प्रेमाकुल सींवाजीने भी अपनी छतपर चढ़कर नगाड़ा बजाया। जिसे सुनते ही इनके सैनिक घुड़सवार आ गये। उन्हें लेकर द्वारका पहुँच गये। प्रभु-कृपासे लगभग ५०० घुड़सवार वीरोंने कई हजार सशस्त्र यवन सैनिकोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। चाहते तो आप जीवित रह सकते थे, पर शुभ अवसर देखकर प्राणोंको न्यौछावर कर दिया। यह भी प्रसिद्ध है कि कटे हुए आपके धड़ने बचे-खुचे यवन सैनिकोंका संहार किया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीसींवाजीकी भक्ति, वीरता और बलिदानकी इस गाथाका इस प्रकार वर्णन किया है—

कावा पति, सींवा, सुत सांगन कौ, प्यारौ हरि, द्वारावति ईश, यों पुकारै रक्षा कीजिये।
सदा भगवान आप भक्त प्रतिपाल करै करौ प्रतिपाल मेरौ सुनि मति भीजिये॥
तुरक अजीज नाम धाम कों लगाई आगि लई बाग घोरन की आये टूक कीजिये।
दुष्ट सब मारे प्रभु कष्ट ते उबारे निज प्रान वारि डारे यह नयौ रस पीजिये॥ ५४१॥

श्रीमती रत्नावतीजी

कथा कीरतन प्रीति भीर भक्तनि की भावै।
महामहोछौ मुदित नित्य नँदलाल लड़ावै॥
मुकुँद चरन चिंतवन भक्ति महिमा ध्वजधारी।
पति पर लोभ न कियो टेक अपनी नहिं टारी॥
भलपन सबै विसेवहीं आँबेर सदन सुनखा जिती।
पृथीराज नृप कुलबधू भक्त भूप रतनावती॥ १४२॥

जयपुरके निकट आमेरनगरमें निवास करनेवाली सुनखाजीतकी पुत्री रत्नावतीजीमें सब प्रकारकी भलाइयाँ विशेष रूपसे विद्यमान थीं। आप महान् भक्त राजा पृथ्वीराजके कुलकी वधू थीं तथा भक्तोंमें श्रेष्ठ थीं। भगवान्‌की कथा सुननेमें, कीर्तन करनेमें आपको बड़ा प्रेम था। भक्तोंकी भीड़ आपको अच्छी लगती थी। बड़े-बड़े महामहोत्सवोंको करके प्रसन्न होती थीं। नित्य नन्दलालजीको लाड़ लड़ाती थीं। भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंके चिन्तन (ध्यान)-में मग्न रहकर आपने भगवद्भक्तिकी पताका फहरायी। भक्तिके आचरणमें बाधा करनेवाले पतिपर लोभ न करके उनसे अपने मनको हटा लिया और सन्त-भगवन्तकी भक्तिरूप अपना प्रण नहीं छोड़ा॥ १४२॥

रानी रत्नावतीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

(क) रानी रत्नावती और भगवद्भक्ता दासीका संवाद

आमेरके राजा मानसिंहजीके छोटे भाई थे माधोसिंहजी, उनकी रानी श्रीरत्नावतीजी थीं। इनके समीप सेवाके लिये एक दासी रहती थी। वह भगवद्भक्ता दासी कभी 'नवलकिशोर', कभी 'नन्दकिशोर' और कभी 'हा श्रीवृन्दावनचन्द्र' कहकर आँखोंमें पानी भर लेती थी।

एक दिन रानीने उस दासीसे पूछा—'तुम बार-बार क्या कहती रहती हो, किसका नाम लिया करती हो? उसे सुनकर मेरा हृदय भी उधर खिंचता है और मेरे मनमें आता है कि मैं भी इसी प्रकार नामका उच्चारण करूँ।' इस प्रश्नको सुनकर दासी विशेष विकल हो गयी, उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। दासीकी ऐसी दशा देखकर रानीकी भी वही दशा हो गयी। कुछ देर बाद स्वस्थचित्त होकर दासीने उत्तर दिया—'महारानी जू! आप इस बातको मत पूछिये। दिन-रात राजसुख भोगिये।' मेरी इस दशाका कारण यह है कि 'मुझपर एक प्रेमी सन्तकी कृपा हो गयी है, अतः प्रेम-वियोगके सुख-दुःखको मेरा शरीर सहन कर रहा है।' फिर रानीके विशेष आग्रहपर और उनकी उत्कण्ठाको देखकर दासीने प्रेम-मार्गके रहस्यका वर्णन किया। उसके समर्थनमें व्रजधामके रसिकशिरोमणि सन्तोंके चरित्र और उनके उपदेश सुनाये। उसका रानीके हृदयपर ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा कि उसने दासीको उसकी सेवा-टहलसे छुड़ा दिया और आदरपूर्वक उसे अपनेसे ऊँचे आसनपर बैठाया। उस दासीको अपना गुरु मान लिया।

श्रीप्रियादासजी रानी रत्नावतीके इस भगवत्प्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

मानसिंह राजा ताकौ छोटौ भाई माधौसिंह, ताकी जानौ तिया, जाकी बात लै बखानियै।
ढिग जो खवासिनि सों स्वासनि भरत नाम रटति जटित प्रेम रानी उर आनियै॥
नवल किशोर कभूं नन्द के किसोर कभूं वृन्दावन चन्द कहि आँखै भरि पानियै।
सुनत विकल भई सुनिबे की चाह भई रीति यह नई कछु प्रीति पहिचानियै॥ ५४२॥
बार बार कहै, कहा कहै उर गहै मेरौ, बहै दृग नीर हो, शरीर सुधि गई है।
पूछौ मत बात, सुख करौ दिन रात, यह सहै निज गात, रागी साधु कृपा भई है॥
अति उतकण्ठा देखि, कह्यौ सो बिसेस सब, रसिक नरेसनि की बानी कहि दई है।
टहल छुटाई, औ सिरहाने लै बैठाई वाहि, गुरु बुद्धि आई, यह जानौ रीति नई है॥ ५४३॥

(ख) दासीद्वारा रानीको भगवत्प्रेमकी रीति सिखाना

रानी श्रीरत्नावतीजी दासीके मुखसे भगवान्‌के सुन्दर रूप और गुणोंको सुनती रहतीं, इससे भगवान्‌के दर्शनोंकी अभिलाषा तीव्र हो उठी। फिर एक दिन रानीने दासीसे कहा—'आप कुछ उपाय कीजिये, मनमोहनके दर्शन करा दीजिये।' दासीने कहा—भगवान्‌के दर्शन पाना बहुत दूर अर्थात् कठिन है। उनके दर्शनके लिये राजा लोग राज्य सुखको छोड़कर, विरक्त होकर धूलिमें लोटते हैं, फिर भी छविसमुद्र भगवान्‌के दर्शन नहीं पाते हैं। वे तो केवल एकमात्र विशुद्ध प्रेमके वशमें हैं और उसीसे दर्शन देते हैं, अतः सच्चे प्रेमभावसे भगवान्‌की सेवा करो। विविध प्रकारके रसीले मेवा-मिष्टान्नोंका भोग लगाओ। तब वे अवश्य ही कृपा करेंगे।

रानी रत्नावतीजीने दासीके उपदेशानुसार इन्द्रनीलमणिकी एक श्रीमूर्ति बनवायी। भावके अनुसार भगवान् स्वयं अर्चा-विग्रहके रूपमें प्रकट हो गये। अतः उसमें अपार रूप-माधुरी आ गयी थी। रानी इस अर्चा-विग्रहकी सेवामें लग गयीं। विविध प्रकारके भोग-राग समर्पणकर भगवान्‌को बड़ा प्यार करती। अष्टयाम भगवान्‌की सेवामें उपस्थित रहती। भगवान्‌को शयन कराकर रातमें जब रानी शयन करती तो स्वप्नमें भगवान् सेवाको स्वीकार करते हुए दर्शन देकर उसे सुख देते। रानीपर गहरा प्रेमरंग चढ़ गया। नित्य ठाकुरजीका वस्त्र-आभूषणोंसे सुन्दर शृंगार करती। जिस शोभा-सागरका ओर-छोर नहीं है, उसे टकटकी लगाकर निहारती रहती।

रानी श्रीरत्नावतीजीके मनमें भगवान्‌के दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा थी। फिर भी दासीसे नित्य पूछती ही रहती कि 'भगवान्‌के दर्शन पानेका क्या उपाय है?' यह सुनकर दासीने कहा—'आप महलके निकट ही एक सन्त-निवास बनवाइये और नगरसे बाहर सभी मार्गोंपर पहरेदारोंको बैठा दीजिये। उन्हें अच्छी प्रकार समझा दीजिये कि जो भी कोई भगवान्‌के प्यारे भक्त आते-जाते मिल जायँ, उन्हें अपने साथ आदरपूर्वक यहाँ लिवा लायें। फिर उनके श्रीचरणोंको धोकर उन्हें ठहरायें और अनेक प्रकारके मिष्ठान्न-पक्वान्न उनके सामने परोसकर उन्हें भोजन करायें। उस समय आप खिड़कीपर पड़े बाँसकी तीलियोंसे बने चिकके परदेके भीतरसे उन भक्तोंका दर्शन करें। तब वहाँ आपको श्यामसुन्दर प्रत्यक्ष दिखायी देंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने रानी रत्नावतीकी भगवद्दर्शनकी इस तीव्र उत्कण्ठाका इस प्रकार वर्णन किया है—

निशि दिन सुन्यौ करै, देखिबे को अरबैर देखे कैसें जात जल जात दृग भरे हैं।
कछुक उपाय कीजै, मोहन दिखाय दीजै, तब ही तौ जीजै वे तो आनि उर अरे हैं॥
दरशन दूर, राज छोड़ै लौटैं धूर पै न पावैं छबि पूर, एक प्रेम बस करे हैं।
करौ हरि सेवा, भरि भाव धरि मेवा पकवान रसखान, दै बखान मन धरे हैं॥ ५४४॥
इन्द्रनीलमणि रूप प्रगट सरूप कियौ, लियौ वह भाव यों सुभाव मिलि चली है।
नाना विधि राग भोग लाड़कौ प्रयोग जामैं, जामिनी सुपन जोग भई रङ्ग रली है॥
करत सिंगार छबि सागर न पारावार रहत निहारि वाही माधुरी सों पली है।
कोटिक उपाय करै, जोग जज्ञ पार परै, ऐ पै नहीं पावै यह दूर प्रेम गली है॥ ५४५॥
देख्योई चहति तऊ कहति 'उपाय कहा? अहो, चाह बात कहौ कौन को सुनाइयै'।
कही जू बनावौ ढिग महलकै ठौर एक चौकी लै बैठावौ चहूं ओर समुझाइयै॥
आवै हरि प्यारे तिन्हें ल्यावैं वे लिवाय इहाँ, रहैं ते धुवाय पांय रुचि उपजाइयै।
नाना बिधि पाक सामा आगै आनि धरें, आप डारि चिक देखौ, स्याम दृगन लखाइयै॥ ५४६॥

(ग) रानीका महल छोड़कर सन्तसेवापरायण होना

रानी श्रीरत्नावतीके महलके निकट सन्त-निवास बन गया और वहाँ भगवान्के प्यारे भक्तजन आने लगे। रानी उनकी सेवा करती और उनका दर्शन करती। इस प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ। एक दिन वे सन्तगण पधारे, जिन्हें व्रजभूमि प्रिय थी, जो व्रजरसके रंगमें रँगे थे। रानीने दासीसे कहा—मैं इन सन्तोंके निकट जाकर इनका दर्शन एवं इनके श्रीचरणोंका स्पर्श करना चाहती हूँ। दासीने कहा—आप रानी हैं, अतः महलसे बाहर नहीं जा सकती हैं। रानीने कहा—रानीपनेको मैंने त्याग दिया है, अब मैं सन्तोंकी दासी हूँ। इतना कहते-कहते रानी उठकर चली ही थी कि दासीने हाथ पकड़कर रोक लिया। रानी बोली—अब मुझसे नहीं रहा जाता है। आप विचारकर यह बताइये कि कुलकी लज्जासे सत्संग न करके दुःख सहना या उसे त्यागकर सत्संग-सुख प्राप्त करना उचित है। अतः अब मैं लोक-लज्जा और कुलकी मर्यादाको बिलकुल त्यागकर उसीका आहार (आस्वादन) करूँगी।

ऐसा कहकर दासीके रोकते-रोकते रानी राजमहलसे उतरकर वहाँ आ गयी, जहाँ सुखप्रद सन्त विराजमान थे। उसने उनके चरणोंमें लिपटकर प्रार्थना की—'भगवन्! अपने हाथोंसे परोसकर साधु-सन्तोंको प्रसाद पवानेकी बड़ी भारी अभिलाषा है।' सन्तोंने अच्छी प्रकारसे देख-सुनकर यह जान लिया कि रानी भक्त-भगवन्तके प्रेममें डूबी हुई है, अतः उन्होंने कहा—'जैसी तुम्हारे मनकी अभिलाषा है, वैसा करो। इससे कुछ भी हानि न होगी।'

तदनुसार साधु-सन्तोंकी अनुमति प्राप्तकर रानी रत्नावती सोनेके थालमें विविध प्रकारके व्यंजनोंको सजाकर बड़ी उमंगके साथ आयी। रानीने बड़े प्रेमके साथ परोसकर सन्तोंको भोजन कराया। भोजन कराकर रानीने सबको चन्दन लगाया और ताम्बूल खिलाया। पुनः भगवच्चर्चा चलायी, सन्तोंके श्रीमुखसे भगवद्वार्ताको सुना। भक्त-भगवान्की रूप-माधुरीका दर्शनकर रानीके नेत्र सजल एवं सरस हो गये। उधर सम्पूर्ण आमेरनगरमें शोर मच गया कि रानी परदेसे बाहर निकलकर वैरागियोंके बीचमें आ गयी हैं। लोग देखनेके लिये उमड़ पड़े। राजाके मन्त्रीने यह समाचार लिखकर एक दूतद्वारा राजाके पास दिल्ली भेज दिया।

श्रीप्रियादासजीने रानीके इस सन्तप्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आवै हरिप्यारे साधु सेवा करि टारे दिन किहूँ पांव धारे जिन्हें व्रजभूमि प्यारियै।
जुगुल किशोर गावै नैननि बहावै नीर ह्वै गई अधीर रूप दृगनि निहारियै॥
पूछी वा खवासिन सों जू रानी कौन अङ्ग? जाके इतनी अटक सङ्ग भङ्ग सुख भारियै।
चली उठि हाथ गह्यौ, रह्यौ नहीं जात, अहो सह्यो दुख लाज बड़ी तनक विचारियै॥ ५४७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'देख्यौं मैं विचारि 'हरिरूप रससार' ताकौ कीजिये अहार, लाज कानि नीकें टारियै'।
रोकत उतरि आई जहां साधु सुखदाई, आनि लपटाई पांय, विनती लै धारियै॥
सन्तनि जिमायबे की निजकर अभिलाष, लाख लाख भांतिन सों कैसे कै उचारियै।
आज्ञा जोई दीजै सोई कीजै, सुख वाही मैं, जु, 'प्रीति अवगाही कही' करौ लागी प्यारियै॥ ५४८॥
प्रेम में न नेम, हेम थार लै उमगि चली, चली दृगधार सो परोसि कै जिवांये हैं।
भीजि गए साधु नेह सागर अगाध देखि, नैननि निमेख तजी, भये मन भाये हैं॥
चन्दन लगाय आनि बीरीऊ खवाय, स्याम चरचा चलाय चख रूप सरसाये हैं।
धूम परी गाँव, झूमि आये, सब देखिबे कों, देखि नृप पास लिखि मानस पठाये हैं॥ ५४९॥

(घ) राजाद्वारा रानी तथा पुत्रके सन्तप्रेमके प्रति रोष प्रकट करना

मन्त्रीके द्वारा लिखे गये पत्रको पढ़ते और दूतके मुखसे सारा हाल सुनते ही राजाके शरीरमें आग-सी लग गयी। संयोगवश इसी बीच रानी श्रीरत्नावतीके सुपुत्र रसिक श्रीप्रेमसिंहजी वहाँ आये। उनके मस्तकमें तिलक और गलेमें तुलसी कण्ठी-माला थी। उन्होंने राजाको प्रणाम किया। समीपके लोगोंने राजाको बताया कि राजकुमार श्रीप्रेमसिंहजी प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनकर राजाने प्रेमसिंहजीसे कहा—'आ रे वैरागिनके बेटा।' यह सुनकर इनके मनमें बड़ी पीड़ा हुई।

श्रीप्रेमसिंहको अपमानितकर क्रोधमें भरा हुआ राजा भीतर चला गया। इधर श्रीप्रेमसिंहके मनमें दुःख हो रहा था। समझमें नहीं आ रहा था कि राजाने ऐसा क्यों कहा। पीछे उन्होंने लोगोंसे पूछा तो उन्होंने आमेरसे आये पत्रका सब समाचार कह सुनाया। तब श्रीप्रेमसिंहजीने मनमें विचारा कि अहो! धन्य हैं, वैरागी ही हमारी जाति है। अपनी माताजीका स्मरणकर, प्रेम-भक्तिके भावोंको हृदयमें लाकर ये तन-मनसे सुखी हो गये। अपने निवास-स्थानपर आकर इन्होंने अपनी माताजीको पत्र लिखा कि 'यदि आपने अपने हृदयमें भगवद्-भक्ति धारण की है तो उसे छोड़ना मत। चाहे सिरकी बाजी लगानी पड़े तब भी। आप अपने प्राणोंका मोह छोड़कर भक्ति-भावकी रक्षा करना।' राजाने भरी सभामें मुझे 'मोड़ी—वैरागिनका बेटा' कहकर मेरा अपमान किया है। मैं चाहता हूँ कि अब मोड़ी—वैरागिनका बेटा ही रहूँ।'

श्रीप्रेमसिंहजीने पत्र लिखकर तीव्रगामी दूतोंके द्वारा माताजीके समीप भेज दिया। वे पत्र लेकर आमेर आये। रानीने उसे पढ़ा और उसमें (भक्तियुक्त) लिखे प्रसंगको पढ़ते ही इन्होंने इत्र-फुलेलसे भीगे अपने सिरके बालोंको मुड़वा दिया और मुण्डी—वैरागिन बन गयीं। इसके पहले ये सन्तोंको प्रसाद पवाकर उनके साथ सत्संगवार्ता करके रातको राजमहलोंमें जाकर रहती थीं। परंतु अब अपने श्रीठाकुरजीको सन्त-निवासमें ही ले आयीं और वहीं उनकी सेवा-पूजा, नृत्य-गान करने लगीं। राजाका अन्न-धन लेना भी इन्होंने छोड़ दिया। इसके बाद अपने पुत्र प्रेमसिंहको पत्र लिख दिया कि 'मैं मूड़ मुड़वाकर सच्ची वैरागिन बन गयी हूँ और दिन-रात उन्हींके बीचमें रह रही हूँ।'

रानी श्रीरत्नावतीका पत्र लेकर दूत लोग गये और उन्होंने पत्र श्रीप्रेमसिंहजीको दिया। इन्होंने उसे सिरसे लगाया और पढ़कर प्रेमानन्दमें मग्न हो गये। आजसे भगवद्दासोंमें हमारी गिनती हो गयी। यह (दूसरा जन्म) मानकर मनमें उल्लास हुआ। बहुत-सी सम्पत्ति साधु-ब्राह्मण और दीनोंको बाँटी। द्वारपर नौबत बजवायी तथा बधाइयाँ बँटवायीं। किसीने राजासे कहा—'आज कुँवर प्रेमसिंहजीके यहाँ कोई उत्सव है।' राजाने कहा—'कौन-सा यह नया उत्सव हो रहा है, पता लगाओ।' तब राजाके लोगोंने इनसे आकर पूछा, तो इन्होंने उत्तर दिया कि अब हम सचमुच वैरागिनके बेटा बन गये। अबतक तो केवल स्वाँग किया था, पर हमारी बात बन गयी। माताजीने वैरागिनका वेष धारण कर लिया है।' यह बात जब राजाने सुनी तो उनके मनमें बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख हुआ। क्रोधवश उन्होंने वैर-भावसे श्रीप्रेमसिंहपर चढ़ाई करके उनसे युद्धकी तैयारी कर ली। जब कुँवर श्रीप्रेमसिंहको यह बात मालूम पड़ी तो वे भी लड़ने—मरनेके लिये तैयार हो गये।

श्रीप्रियादासजीने रानी रत्नावती और कुँवर प्रेमसिंहके इस सन्तप्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

ह्वै करि निसङ्क, रानी बङ्क गति लई नई, दई तजि लाज, बैठी मोड़नि की भीर मैं।
लिख्यौ लै दिवान नर आये, सो बखान कियो, बांचि सुनि, आंच लागी नृपके शरीर मैं॥
'प्रेमसिंह' सुत, ताही काल सो रसाल आयौ, भाल पै तिलक, माल कण्ठी कण्ठ तीर मैं।
भूप को सलाम कियौ नरनि जताय दियौ, बोल्यौ आव मोड़ी के रे पर्‌यौ मन पीर मैं॥ ५५०॥
कोप भरि राजा गयौ भीतर सो, सोच नयौ, पाछे पूछि लयौ, कह्यौ नरनि बखानि कै।
तब तो बिचारी, 'अहो मोड़ा ही हमारी जाति' भयौ दुख गात, भक्ति भाव उर आनिकै॥
लिख्यौ पत्र मा जी कों, जु प्रीति हिये साजी जोपै सीस पर बाजी आय राखौ तजि प्रानि कै।
सभा मधि भूप कही 'मोड़ीको बिरूप भयौ' रहैं अब मोड़ीके ही भूलौ मति जानि कै॥ ५५१॥
लिख्यौ दै पठाये बेगि मानस, लै आये जहां रानी भक्ति सानी हाथ दई, पाती बांचियै।
आयो चढ़ि रङ्ग, बांचि सुत कौ प्रसंग, बार भीजै जे फुलेल, दूर किये, प्रेम सांचियै॥
आगे सेवा पाक निसि महल बसत जाय, ल्याय याही ठौर प्रभु नीके गाय नांचियै।
नृप अन्न त्यागि दियौ, दियौ लिखि पत्र पुत्र, भई मोड़ी आज, तुम हित करि जांचियै॥ ५५२॥
गए नर पत्र दियौ सीस सों लगाय लियौ, बांचि कै मगन हियौ, रीझि बहु दई है।
नौबत बजाई द्वार बांटत बधाई, काहू नृपति सुनाई कही 'कहा रीति नई है'॥
पूछै भूप लोग कह्यौ मिटे सब सोग भये मोड़ी के जू जोग स्वांग कियो बनि गई है।
भूपत सुनत बात, अति दुख गात भयौ, लयौ बैर भाव चढ्यो त्यारी इत भई है॥ ५५३॥

(ङ) लोगोंके समझानेपर राजा तथा राजकुमारके युद्धका बन्द होना

पिता-पुत्रमें युद्धकी तैयारी देखकर हितैषी लोगोंने राजाको अच्छी तरहसे समझाया कि 'लड़केके साथ युद्ध करनेसे सारे विश्वमें आपकी निन्दा होगी।' बुद्धिमान् शुभ-चिन्तकोंने उधर श्रीप्रेमसिंहजीको भी यही कहकर समझाया। इन्होंने कहा—'लौकिक विषयोंके लिये मैंने अबतक करोड़ों जन्म गँवाये हैं, यह एक भगवान्‌की भक्तिके काम आवे। मैं ऐसा ही चाहता हूँ, मुझे यही अच्छा लग रहा है।' श्रीप्रेमसिंहजीका ऐसा दृढ़ विचार सुनकर लोग इनके पैरोंमें पड़ गये और कहा—अभी कुछ समयके लिये इन बाजोंका बजना बन्द करवा दीजिये। राजासाहब आज ही रातको आमेर चले जायेंगे। फिर आप खूब नौबत बजवायें। प्रेमसिंहने मान लिया। 'नौबत बन्द हो गयी' यह कहकर लोगोंने राजाको शान्त किया। राजा माधवसिंहजी दिल्लीसे चल दिये और आमेर आ गये। इनके नगरके निकट पहुँचते ही लोग आकर इनसे मिले और उन्होंने रानीका सब वृत्तान्त कह सुनाया। अब राजाके मनमें बड़ी चिन्ता हो गयी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

नृप समझाय राख्यौ 'देश में चबाव ह्वै है, बुधिवन्त जन आय सुत सों जताई है।
बोल्यो 'विषै लागि कोटि कोटि तन खोये, एक भक्ति पर आवै काम यह मन आई है॥
पां यपरि माँगि लई दई जो प्रसन्न तुम, राजा निसि चल्यो जाय करौ जिय भाई है।
आयौ निज पुरा ढिग ढुरि नर मिले आनि कह्यौ सो बखानि सब, चिन्ता उपाजाई है॥ ५५४॥

(च) राजाद्वारा रानीको मरवानेका षड्यन्त्र करना, पर उसके भक्तिभावसे स्वयं भी भगवद्भक्त बन जाना

राजाने राजमहलोंमें पहुँचकर अपने मन्त्रियोंको बुलवाया और कहा—'मेरी नाक तो कट ही गयी, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब जुड़ नहीं सकती है, परंतु उसमेंसे जो लगातार खून बह रहा है, उसको किसी प्रकार रोकिये।' किसी प्रकार रानीको मरवा डालना आवश्यक है। अतः आपलोग कोई ऐसा उपाय सोचिये कि रानी मर जाय और हत्याका कलंक भी न लगे। जब राजाने यह कहा तो किसी बुद्धिमान् (चापलूस) मन्त्रीने बहुत सोच-विचारकर एक उपाय बताते हुए कहा—अपने यहाँ पिंजड़ेमें जो सिंह बन्द है, उसे रानीके सामने छोड़ दिया जाय। वह रानीको मार डालेगा, तब फिर उसे पकड़वा लिया जायगा। इस मन्त्रणाको गुप्त रखा जाय और बादमें यह प्रचार कर दिया जायगा कि सिंह छूट गया और उसने रानीको मार डाला। यह उपाय सबको अच्छा लगा। लोगोंने यही किया, सिंहको छोड़ दिया। जब वह रानीकी ओर आया तो उसे देखकर दासीने कहा—देखो, श्रीनृसिंहजू आपकी ओर आ रहे हैं, दर्शन कीजिये।

जिस समय सिंह आया, उस समय अनुराग रंगमें भरी रानी भगवान्‌की सेवा कर रही थीं। श्रीनृसिंहजूका शुभागमन सुनकर रानीने दृष्टि घुमाकर उधर देखा। रानीने प्रेमभावसे पहचाना और उठकर उनका आदर करते हुए कहा—'अहो! धन्य है, आज मेरे बड़े भाग्य हैं, जो मेरे घरपर मुझे दर्शन देनेके लिये श्रीनृसिंहभगवान् पधारे हैं।' रानीकी सच्ची भावना थी, अतः भगवान्‌ने अपनी उसी नृसिंह रूपकी शोभाका दर्शन कराया। रानीने फूलोंकी माला पहनायी और सँवारकर तिलक लगाया, आरती की। उसके बाद सप्रेम दर्शन किया तो चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी श्रीनृसिंहजीकी शोभा अत्यन्त प्रिय लगी। रानीकी पूजा स्वीकार करके श्रीनृसिंहभगवान् रानीके घरसे निकले, मानो खम्भ फाड़कर बाहर निकले हों। तत्काल उन्होंने विमुखोंके समूहको मार डाला।

राजाको रानीका समाचार मिला, लोगोंने बताया कि रानीने सिंहका पूजन किया, शान्त-भावसे पूजन स्वीकारकर वह वहाँसे निकला और सैकड़ों लोगोंको मारकर जाने कहाँ चला गया! राजाने सब बातें ध्यानपूर्वक सुनीं, फिर वह अत्यन्त नम्र होकर रानीके पास आया। रानीकी भक्तिके प्रभावसे राजाकी बुद्धि बदल गयी, अतः भूमिपर पड़कर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। इन्हें प्रणाम करते देखकर दासीके मनमें दया भर गयी और उसने रानीको सुनाकर कहा—'देखो, महाराज प्रणाम कर रहे हैं।' रानीने कहा—ठीक है, राजा लालजीको प्रणाम कर रहे हैं।' फिर दासीने आग्रह करते हुए कहा—'आप थोड़ा राजाकी ओर घूमकर देखें।' रानीने कहा—'ये आँखें एक ओर लगी हैं, अब दूसरी ओर नहीं जा सकतीं।' राजाने कहा—'यह सम्पूर्ण राज्य और धन आपका ही है, आप इसे स्वीकारकर सेवामें लें।' अब रानीको पतिमें या उनकी सम्पत्तिमें लोभ नहीं रह गया था। अतः उसने कहा—'राज्यसुखको आप भोगें, हमारी सम्पत्ति और सुख हमारे लालजी हैं, अब ये ही हमको प्रिय लगते हैं।'

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भवन प्रवेश कियो, मन्त्री जो बुलाय लियौ, दियौ कहि 'कटी नाक लोहू निरवारियै।
मारिबौ कलंक हू न आवै' यों सुनावै भूप काहू बुधिवन्त नै बिचारि लै उचारियै॥
'नाहर जू पींजरा मैं दीजै छाड़ि लीजै मारि पाछै ते पकरि वह बात दाबि डारियै।
सबनि सुहाई, जाय करी मन, भाई आयौ, देख्यौ वा खवासी कही 'सिंहजू निहारियै'॥ ५५५॥
करै हरि सेवा भरि रंग अनुराग दृग, सुनी यह बात नेकु नैन उन टारे हैं।
भाव ही सों जाने उठि अति सनमाने, अहो! आज मेरे भाग, श्रीनृसिंह जू पधारे हैं॥
भावना सचाई वही शोभा लै दिखाई फूल माल पहिराई, रचि टीकौ लागै प्यारे हैं।
भौन ते निकसि धाए, मानौ खम्भ फारि आये, बिमुख समूह ततकाल मारि डारे हैं॥ ५५६॥
भूप कौं खबरि भई, रानी जू की सुधि लई, सुनी नीकी भांति, आप नम्र ह्वैके आये हैं।
भूमि पर साष्टाङ्ग करी, हरी मति भई दया आप आय वाके वचन सुनाये हैं॥
'करत प्रनाम राजा' बोली 'अजू लालजू कौं' नैकु फिरि देखौ एक ओर ए लगाये हैं।
बोल्यो नृप 'राज धन सबहीं तिहारो धारौ' पति पै न लोभ कही 'करौ सुख भाये हैं॥ ५५७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(छ) रानीकी भक्तिके प्रभावसे राजा मानसिंह तथा भाई माधवसिंहका संकटसे उद्धार

एक बार राजा मानसिंहजी और माधवसिंहजी दोनों भाई काबुलकी लड़ाईमें विजय प्राप्त करके लौटते समय अटक नदीमें नावपर चढ़कर यात्रा कर रहे थे। दैववश नाव डूबने लगी। बड़े भाई मानसिंहजीने अपने छोटे भाई माधवसिंहजीसे कहा—'अब बचनेका कौन-सा उपाय किया जाय?' माधवसिंहजीने कहा—'अपने घरमें रानी भगवान्की बड़ी भक्ता हैं, ऐसे समयमें उसीका स्मरण किया जाय।' फिर दोनों भाइयोंने रानी श्रीरत्नावतीका ध्यान किया। उसका ऐसा अद्‌भुत प्रभाव हुआ कि नाव संकटसे बचकर किनारेपर लग गयी। इससे दोनों भाइयोंके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। मानसिंहके मनमें नई अभिलाषा उत्पन्न हुई कि 'भक्ता रानीका दर्शन प्रथम करना चाहिये।' तदनुसार भाई समेत मानसिंहजीने आकर रानीका एवं उनके श्रीठाकुरजीका दर्शन किया और विनती की।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

राजा 'मानसिंह' 'माधौसिंह' उभै भाई चढ़े, नाव पर कहूँ, तहां बूड़िबे कों भई है।
बोल्यौ बड़ौ भ्राता 'अब कीजिये जतन कौन? भौन तिया भक्त' कहि छोटे सुधि दई है॥
नेकु ध्यान कियौ, तब आनिकै किनारौ लियौ, हियौ हुलसायौ, जेठ चाह नई लई है।
कर्‌यौ आय दरसन बिनै करि गयौ भूप अति ही अनूप कथा हिये व्यापि गई है॥ ५५८॥

श्रीजगन्नाथ पारीखजी

(श्री) रामानुज की रीति प्रीति पन हिरदैं धार्‌यो।
संसकार सम तत्त्व हंस ज्यों बुद्धि बिचार्‌यो॥
सदाचार मुनिबृति इन्दिरा पधति उजागर।
रामदास सुत संत अननि दसधा को आगर॥
पुरुषोत्तम परसाद तें उभै अंग पहिर्‌यो बरम।
पारीष प्रसिध कुल काँथड़्या जगन्नाथ सीवाँ धरम॥ १४३॥

परम प्रसिद्ध कांथड़्यागोत्रमें श्रीरामदासजीके पुत्र श्रीजगन्नाथ पारीखजी वैष्णवधर्मकी सीमा थे। श्रीरामानुजाचार्यजीके द्वारा संस्थापित भक्तिकी रीतिके अनुसार आपने भगवान्से प्रेम करनेके शरणागतिव्रतको दृढ़तापूर्वक अपने हृदयमें धारण किया। आप वैष्णवीय संस्कारोंसे युक्त थे। नीर-क्षीर-विवेकी हंसकी तरह समान रूपसे व्याप्त भगवत्तत्त्वको आपने अपनी बुद्धिमें धारण किया। आपका सात्त्विक स्वभाव एवं आचार-विचार मुनियोंका-सा था, आप लक्ष्मी-सम्प्रदायमें चमकते हुए प्रसिद्ध सन्त थे और प्रेमाभक्तिके अनन्य उपासक थे। गुरुदेव श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजीकी कृपासे आपने स्थूल शरीरपर (राजपुरोहित होनेके कारण राजाके साथ युद्धमें) लोहेका कवच और (पुरोहिती छोड़कर) भावशरीरपर भगवान्की भक्तिका कवच धारण किया। इस प्रकार आपके दोनों शरीर सदा सुरक्षित रहे, अतः वैष्णवधर्मकी सभी मर्यादाओंका पालन करनेमें आप समर्थ हुए॥ १४३॥

श्रीजगन्नाथ पारीखजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीजगन्नाथ पारीखजी कांथड़्यागोत्रीय ब्राह्मण थे। आपके पिताका नाम श्रीरामदास था। परम भक्तिमती श्रीकरमैतीजीका जन्म इन्हींके गोत्रमें हुआ था। आप परम वैष्णव भगवद्भक्त थे। आपने कई भगवद्विमुखोंको भक्त बनाया।

एक बार आप कहीं जा रहे थे, मार्गमें आपको कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठग मिले और उन्होंने आपको लूटने-मारनेका प्रयास किया। परंतु आपका शरीर तो दिव्य कवचसे सुरक्षित था, अतः कुछ भी असर न हुआ। यह देख वे समझ गये कि ये कोई दिव्य मनुष्य हैं, अतः श्रीपारीखजीके चरणोंमें पड़कर क्षमा-प्रार्थना करने लगे। इन्होंने कहा कि हमारा कुछ भी आपने नहीं बिगाड़ा है। हम क्यों नाराज होंगे। इनकी इस मुनिवृत्तिको देखकर सभी दस्यु इनके शिष्य बन गये। चोरी आदिका उन्होंने त्याग कर दिया। इस प्रकार श्रीपारीखजी कुपात्रोंको भी सुपात्र बनानेवाले हुए।

श्रीमथुरादासजी

सदाचार संतोष सुहृद सुठि सील सुभासै।
हस्तक दीपक उदय मेटि तम बस्तु प्रकासै॥
हरि को हिय बिस्वास नंदनंदन बल भारी।
कृष्न कलस सों नेम जगत जानै सिर धारी॥
(श्री) बर्द्धमान गुरु बचन रति सो संग्रह नहिं छंडयो।
कीरतन कर सपने हूँ मथुरादास न मंडयो॥ १४४॥

श्रीमथुरादासजी सर्वदा भगवन्नामका कीर्तन करते रहते थे। इसलिये इनके ऊपर तान्त्रिकोंके मारण-मोहन आदि प्रयोग नहीं चले। आपमें शुद्ध आचार, यथालाभ-संतोष, मैत्रीभाव, सुन्दरशील आदि सभी सद्गुण विशेषरूपसे प्रकाशित थे। जिस प्रकार हाथके दीपकसे अन्धकार मिट जाता है और वस्तुएँ दिखायी पड़ती हैं, उसी प्रकार भगवत्तत्त्व-ज्ञानके द्वारा आपका हृदय प्रकाशित था। आपके हृदयमें प्रभुका विश्वास था और उन्हींका बल था। सभी लोग जानते हैं कि श्रीकृष्णकी सेवाके निमित्त जलका घड़ा आप अपने सिरपर रखकर बड़े नेम और प्रेमसे लाते थे। आपको अपने गुरुदेव श्रीवर्धमानजीके वचनोंमें बड़ा प्रेम था। आप उनके उपदेशोंका संग्रह एवं पालन करते थे। आपने गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन कभी नहीं किया॥ १४४॥

श्रीमथुरादासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीमथुरादासजीने तिजारे ग्राममें निवास करते हुए भगवद्-भक्तिकी खूब आराधना की और प्रजामें भक्तिका प्रचुर प्रचार-प्रसार किया। एक बार तिजारे ग्राममें साधु-वेषधारी एक जादूगर आया। वह सबको दिखाकर भगवान् शालग्रामकी सेवा करता था। विशेष बात यह थी कि उसके शालग्रामजी सिंहासनपर (कठपुतलीकी तरह) हिलते-डोलते रहते थे। इस चमत्कारको देखनेके लिये जनताकी भीड़ एकत्र हो जाती थी। वहाँ जो श्रीमथुरादासजीके शिष्य-सेवक थे, उनके मनमें भाव आया कि ये बड़े भारी सिद्ध सन्त हैं, तभी तो भगवान् इनके आधीन हैं। उन लोगोंने इस प्रभावका वर्णन श्रीमथुरादासजीके सामने किया और कहा कि उस सन्तकी सेवा सभीको अच्छी लगती है। कुछ समयके लिये आप भी चलिये और उसकी उपासनाकी रीति-भाँति देखिये। श्रीमथुरादासजी सर्वज्ञ थे। जादूगर ढोंगी है, भक्त नहीं है, इस रहस्यको समझकर बोले—मेरे चलनेसे उसकी माया नहीं चलेगी, तब उसके मनमें दुःख हो जायगा, अतः हम वहाँ नहीं जायेंगे।

सभी शिष्य-सेवकोंने चरणोंमें पड़कर प्रार्थना की। तब आप वहाँ गये, जहाँ उसने अपना ढोंग फैला रखा था। ये जाकर उसके पास खड़े हो गये। फिर जब उसने शालग्रामजीको हिलाना-डुलाना चाहा तो वे नहीं हिले-डोले। अब उसके मनमें बड़ा भारी शोक हुआ। वह समझ गया कि अभी-अभी जो यह साधु आया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसीका यह प्रताप है। हमारी सिद्धाईमें यह बाधक है, अत: तन्त्र-मन्त्र-जप आदि करके इसे मार डालूँ। इस विचारको उसने अपने मनमें दृढ़ किया। फिर उसने इन्हें मारनेके लिये मूठ चलायी। वह श्रीमथुरादासजीकी भक्तिके सामने आकर व्यर्थ हो गयी। उलटकर उस चलानेवालेको ही लगी। जिससे मूर्च्छित होकर वह पृथ्वीपर गिर गया। लोगोंको ऐसा लगा कि यह मर गया। पश्चात् दयालु सन्त श्रीमथुरादासजीने दया करके उसे जीवित किया। फिर समझाया और उसे सेवारूपी भक्ति-मार्गका उपदेश दिया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बासकै 'तिजारे' मांझ भक्ति रस रास करी, करी एक बात, ताकौ प्रगट सुनाइयै।
आयौ भेषधारी कोऊ करै सालग्राम सेवा, डोलत सिंहासन पै आनि भीर छाइयै॥
स्वामीके जु शिष्य भयौ, तिनहूँ कै भाव देखि, वाहि कौ प्रभाव आय कह्यौ हिय भाइयै।
नेकु आप चलौ, उह रीति कों बिलोकियै जु, बड़े सरवज्ञ, कही 'दूखै नहीं जाइयै'॥ ५५९॥
पांय परि, गये लैकै, जाय ढिग ठाढ़े भये, चाहत फिरायौ, पै न फिरै सोच पर्‌यौ है।
जानि गयौ आप, कछु याही कौ प्रताप, ऐ पे मारौं करि जाप यों विचार मन धर्‌यौ है॥
मूठ लै चलाई, भक्ति तेज आगे आई नाहिं, वाही लपटाई, भयौ ऐसौ मानौ मर्‌यौ है।
ह्वै करि दयाल, जा जिवायौ, समझायो प्रीति पन्थ दरसायौ, हिय भायौ, शिष्य कर्‌यौ है॥ ५६०॥

श्रीनारायणदासजी नर्तक

पद लीनो परसिद्ध प्रीति जामें दृढ़ नातो।
अच्छर तनमय भयो मदनमोहन रँग रातो॥
नाचत सब कोउ आहि काहि पै यह बनि आवै।
चित्र लिखित सो रह्यो त्रिभग देसी जु दिखावै॥
हँड़िया सराय देखत दुनी हरिपुर पदवी को कढ़्यो।
नृतक नारायणदास कौ, प्रेमपुंज आगे बढ़्यो॥ १४५॥

श्रीनारायणदासजी नर्तकका प्रेम दिन-प्रतिदिन बढ़नेवाला था। एक बार आपने वह प्रसिद्ध पद गाकर नृत्य किया, जिसमें 'प्रीतिका नाता ही दृढ़ माना गया है।' गाते-गाते उस पदके शब्दों-अक्षरों और भावोंमें आप तल्लीन हो गये। ***'मदनमोहन रँग रातो'*** इसे गाते हुए स्वयं भी मदनमोहनके प्रेमरंगमें रँग गये। इस संसारमें नाचते-गाते तो सभी लोग हैं, परंतु ऐसा नाचना-गाना और ऐसी भाव-तन्मयता किसमें बन सकती है? उस तन्मयतामें आप चित्रलिखितकी भाँति स्तब्ध रह गये। श्रीकृष्णने दर्शन दिया। प्रयागसे पूर्व लगभग छ: कोसकी दूरीपर हँड़ियासराय नामक गाँवमें लोगोंके देखते-देखते आप वैकुण्ठपदपर पहुँच गये॥ १४५॥

श्रीनारायणदासजी नर्तकके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीनारायणदासजीका यह दृढ़ नियम था कि वे भगवान्‌के सामने ही नृत्य-गान करते थे, दूसरे किसी मनुष्यके सामने नहीं। इस व्रतको हृदयमें धारणकर भक्तिके प्रचार एवं सन्तोंके दर्शनके लिये देश-देशान्तरोंमें जहाँ-जहाँ भक्तसमूह होता, वहाँ-वहाँ आप जाते। एक बार विचरते हुए आप हँड़ियासराय गये और वहींपर आपने निवास किया। श्रीठाकुरजीके सामने नित्य ही नृत्य-कीर्तन करते। कुछ समयके बाद आपके नृत्य-कीर्तनकी प्रशंसा सभी लोग करने लगे। उसे सुनकर वहाँके यवनशासक मीरने आपको यह कहकर बुलवाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हमारे यहाँ बड़े-बड़े महापुरुष, भगवद्भक्तजन आये हैं, आप भी आइये। गुणी लोगोंसे मिलनेकी मेरे मनमें बड़ी इच्छा रहती है। उनके न मिलनेसे मनमें दुःख होता है। जब यह सन्देश लोगोंके द्वारा आपको मिला तो उसे सुनकर आपको बड़ी कठिनाई हुई। लोगोंने समझाते हुए कहा कि 'जैसी आपकी इच्छा हो, वही कीजिये, परंतु मीर साहब आपके नृत्य-कीर्तनको देखने-सुननेके लिये बड़े व्याकुल हो रहे हैं।'

श्रीनारायणदासजी अपने मनमें विचार करने लगे कि मेरा नियम भगवान्के आगे नृत्य करनेका है, बिना भगवान्को पधराये नृत्य कैसे करूँगा। यवनोंके सामने अपने पूज्य श्रीअर्चा-विग्रहकी सेवाका विस्तार कैसे करूँगा। इस प्रकार सोचते-विचारते आपने एक मार्ग निकाल लिया और मीर साहबके दरबारमें गये। वहाँ एक ऊँचे सिंहासनपर आपने एक श्रीतुलसीजीकी मालाको विराजमान कर दिया। श्रीतुलसीजी भगवान्का अभिन्न रूप है, ऐसा मानकर आपने उन्हींके सामने बड़ा उत्तम नृत्य किया। एक ओर मीर साहब बैठे थे, उनकी ओर आपने एक दृष्टिसे भी नहीं देखा। सिंहासनपर विराजमान तुलसी-श्यामकी ओर ही देखते हुए उनकी किशोररूप-माधुरीमें मग्न हो गये। अपने शरीरकी सुधि-बुधि खो बैठे। आपने रीझकर विचार किया कि कुछ न्यौछावर करूँ। कोई वस्तु नहीं दिखायी पड़ी, अचानक अपने प्राण ही हाथ पड़े। आपने उन्हें ही न्यौछावर कर दिया। आदरपूर्वक भगवान्ने इस भेंटको स्वीकार किया।

श्रीप्रियादासजी श्रीनारायणदासजीकी इस नियम-निष्ठाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

हरि ही कें आगे नृत्य करै, हिये धरै यही, ढरै देश देसनि मैं जहां भक्त भीर है।
'हँड़िया सराय' मध्य जाइकै निवास लियौ, लियौ सुनि नाम सो मलेछ ज्ञाति मीर है॥
बोलिकै पठाये, महाजन हरिजन सबै आयौ है सदन गुनी ल्यावौ चाह पीर है।
आनिकै सुनाई, भई बड़ी कठिनाई, अब कीजै जोई भाई वह निपट अधीर है॥ ५६१॥
बिना प्रभु आगें नृत्य करियै न नेम यहै, सेवा वाके आगें कहौ कैसे बिसतारियै।
कियो यों बिचार ऊँचे सिंहासन माला धारि तुलसी निहारि हरिगान कर्‌यौ भारियै॥
एक ओर बैठ्यौ मीर, निरखैं न कोर दृग, मगन किशोर रूप, सुनि लै विसारियै।
चाहै कछु वारौ परे औचक ही प्रान हाथ, रीझि सनमान कीनौ मीच लागी प्यारियै॥ ५६२॥

श्रीभूरिदा भक्तगण

बोहित, राम गुपाल कुँवर बर गोबिंद माँडिल।
छीतस्वामि जसवंत गदाधर अनँतानँद भल॥
हरिनाभ मिश्र दीनदास बछपाल कन्हर जस गायन।
गोसू रामदास नारद स्याम पुनि हरिनारायन॥
कृष्नजिवन भगवान जन, स्यामदास बिहारी अमृतदा।
गुन गन बिसद गुपाल के एते जन भए भूरिदा॥ १४६॥

अपने उपदेशोंके द्वारा भगवान्के विशद गुणगणोंका महान् दान देनेवाले ये भक्त हुए। श्रीबोहितजी, रामगोपालजी, कुँवर वरजी, गोविन्दजी, माँडिलजी, छीतस्वामीजी, यशवन्तजी, गदाधरजी, अनन्तानन्दजी, हरिनाभमिश्रजी, दीनदासजी, बच्छपालजी, कन्हरजी, गोसूजी, रामदासजी, नारदजी, श्यामजी, हरिनारायणजी, कृष्णजीवनजी, जन भगवानजी, श्यामदासजी और विहारीदासजी। ये भगवत्-सुयशके गायक परम मधुर प्रेमरूपी अमृतके दाता हुए॥ १४६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्-यशका गान करनेवाले इन भक्तोंमेंसे कुछका परिचय इस प्रकार है—

श्रीबोहितजी

श्रीबोहितजी सांसारिक प्राणियोंको भगवद्भक्तिका दान देनेवाले थे। इस प्रकार ये भवसागरसे पार करनेवाले बोहित—जहाज ही थे। इनके आश्रमके निकट एक भूतका निवास था। वह भी दूरसे कथा-श्रवण करता था। एक बार चाँदनी रातमें आश्रमके समीप बहुतसे ग्रामीण बालक खेल रहे थे। भूत भी आकर उनके साथ खेलने लगा। आपने सभी बालकोंको आज्ञा दी कि अब खेल बन्द करके यहाँ मेरे पास आकर नाम-संकीर्तन करो। आज्ञा पाकर सभी बालक आपके समीप आ गये, परंतु एक दूर ही खड़ा रहा। श्रीबोहितजीके बुलानेपर भी नहीं आया। तब आपने बालकोंको आज्ञा दी कि उसे पकड़कर लाओ। बालक पकड़ने गये, पर वह पकड़में आता ही नहीं था। अन्तमें आपने आज्ञा दी कि इसकी चोटी पकड़ लो, फिर नहीं छूट सकेगा—ऐसा ही हुआ। समीप आनेपर आपने उससे पूछा कि बता, तू कौन है? उसने कहा—मैं पूर्वजन्ममें राजपूत था, कुसंगके कारण मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी, मैंने अपनी निरपराधिनी, सुशीला पत्नीका वध कर डाला था, उसी पापके फलस्वरूप मुझे प्रेतयोनि मिली। किंचित् अनिच्छासे कथा-श्रवणका यह उत्तम फल मुझे मिला कि आपके आश्रमके निकट रह रहा हूँ और आपके द्वारा कही गयी कथाको सुन रहा हूँ। अब आप कृपा करके मेरा उद्धार कीजिये, मैं आपकी शरण हूँ। उसकी दीनताभरी वाणी सुनकर आपने उसके कानमें भगवन्नाम सुनाया और चरणामृत दिया। वह मुक्त हो गया, आकाशमें उज्ज्वल प्रकाश छा गया, सभीको श्रीबोहितजीकी दानशीलता एवं शक्तिका परिचय मिल गया।

श्रीहरिनाभमिश्र

ये परम सुशील, सदाचारी, साधुसेवी एवं सच्चे उपदेशक थे। जिस समय आप भगवान्‌की कथा कहते, उस समय श्रोताओंको देह-गेहका स्मरण नहीं रहता। आपके उपदेशामृतसे अनन्त जीवोंका कल्याण होता। एक ब्राह्मण आपका शिष्य था। उसने आकर प्रार्थना की—भगवन्! मेरा एक पुत्र कुसंगमें पड़ गया है, मेरे समझानेसे भी नहीं मानता है। आप कृपा करके कोई उपाय बताइये, जिससे उसका उद्धार हो। श्रीमिश्रजीने कहा—उसे मेरे पास भेजा करो, यहाँ आयगा तो उसे सत्संग मिलेगा। मैं समझा-बुझाकर उसे ठीक कर दूँगा। ब्राह्मणने आकर पुत्रसे कहा—तू गुरुजीके पास नित्य जाया कर, उससे तेरी बुद्धि शुद्ध हो जायगी। उसने पिताकी बात न मानकर उनका तिरस्कार किया। उसे सत्संगमें जानेमें चिढ़ थी। ब्राह्मणने आकर सब समाचार गुरुजीको सुनाया। तब इन्होंने कहा—तुम चिन्ता मत करो, अब मैं ही कोई-न-कोई उपाय करूँगा।

संयोगवश एक दिन जब उस ब्राह्मणका पुत्र इनके आश्रमके समीप होकर निकला तो इन्होंने थोड़ा-सा जल उसके ऊपर डाल दिया। कृपापूर्ण जलका स्पर्श पाते ही उसके पाप नष्ट हो गये, उसके विचार बदल गये, बुद्धि निर्मल हो गयी, अतः नित्य सत्संगमें आने लगा। धीरे-धीरे श्रीमिश्रजीकी रसमयी कथाको सुननेकी आदत पड़ गयी। अब तो वह कुसंग और दुराचारसे बहुत दूर रहने लगा। अब कथा-सत्संगके बिना उससे रहा नहीं जाता। वह विष्णुभगवान्‌का अनन्य उपासक बन गया।

श्रीवच्छपालजी

आप अनन्य भगवद् भक्त थे। आपने अपने भजनके प्रतापसे असंख्य जीवोंका कल्याण किया। आपकी माताजीको कालज्वर आया। यमके दूत उसे डराने और ले जानेकी तैयारी करने लगे। माताको बड़े कष्टका अनुभव हो रहा था। उनको शरीरकी सुध नहीं रही, कण्ठ अवरुद्ध हो गया। श्रीवच्छपालजी घरपर नहीं थे। शहरसे आकर उन्होंने माताका कष्ट देखा तो वहीं भगवान्‌की कथा और नामोंका गायन आरम्भ कर दिया। उसे सुनते ही यमदूत भाग गये और विष्णुपार्षदोंने आकर दर्शन दिया। स्वस्थ होकर माताजीने यमदूतोंके द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त कष्टका वर्णन करते हुए कहा कि तुम्हारे कीर्तनसे मुझे बड़ा सुख मिला, मेरा सारा कष्ट दूर हो गया। तू धन्य है, तूने नरकसे मेरा उद्धार कर दिया। यमदूत मुझे मार रहे थे। अब ये विष्णुदूत विमानपर बैठाकर मुझे ले जा रहे हैं।

श्रीछीतस्वामीजी

अष्टछापके कवि श्रीछीतस्वामीजीका जन्म लगभग सं० १५७२ वि० में हुआ। आप श्रीमथुराके चतुर्वेदी ब्राह्मण और सुबल सखाके अवतार थे। वीर प्रकृतिके कारण प्रायः लोग इनसे भयभीत रहते और इन्हें गुण्डा-पण्डा कहते। जिस समय इनकी अवस्था लगभग बीस वर्षकी थी, उस समय श्रीविट्ठलनाथजीकी दिव्य भक्ति-निष्ठाकी चर्चा चारों ओर तेजीसे फैल रही थी। एक दिन छीतू चौबेकी मित्र-मण्डलीमें श्रीविट्ठल-नाथजीकी चर्चा छिड़ गयी। अन्तमें इन लोगोंने निश्चय किया कि गोकुल चलकर गोसाईंजीकी परीक्षा ली जाय। भेंटके लिये एक सूखा-थोथा नारियल और एक खोटा रुपया लेकर इन लोगोंने नावमें बैठकर गोकुलकी यात्रा की।

वहाँ पहुँचकर छीतू चौबेने कहा—तुम लोग बाहर द्वारपर खड़े रहो। मैं जाकर वहाँका रंग-ढंग देखता हूँ, पीछेसे तुम लोग भी भीतर आ जाना। उस समय श्रीगोसाईंजी विश्राम करके उठे थे और अपनी गद्दीपर बैठकर स्वाध्याय कर रहे थे, उनके हाथमें पुस्तक थी। उनके पुत्र श्रीगिरिधरजी भी समीपमें ही विराजमान थे। छीतू चौबेने उनके समीप जाकर जब उनका दर्शन किया तो इनके मनमें पश्चात्ताप हुआ कि मैं दिव्य देवस्वरूप, शान्त महापुरुषकी मसखरी और परीक्षा लेने आया, मुझे धिक्कार है। इन्होंने नारियल और रुपयेको छिपा लिया और श्रीगोसाईंजीको दण्डवत् की। तब वे मुसकराकर बोले—'आओ, छीतस्वामी! कहो, अच्छी तरहसे हो न?' इन्होंने पुनः साष्टांग दण्डवत् की और हाथ-जोड़कर प्रार्थना की—'महाराज! मैं आपकी शरणमें हूँ, आप मुझे अपनाइये।' गोसाईंजीने कहा—'तुम तो मथुराके चतुर्वेदी हो, मेरे भी पूज्य हो, सिद्ध पुरुष हो, मुझे दण्डवत् प्रणाम क्यों करते हो?' छीतस्वामीने पुनः कहा—प्रभो! अब आप मुझपर कृपा करो, मैं स्वामित्वको छोड़कर आपका दास बनना चाहता हूँ। मेरे मनमें तो बहुत कुटिलता थी, परंतु आपके दर्शनोंसे वह दूर हो गयी। मैं तो अब आपके हाथ बिक गया। आप जो चाहें सो करें। परमदयालु श्रीगोसाईंजीने छीतस्वामीके शुद्ध भावको जाना और इन्हें नाम देकर इनको अपना बना लिया। उसी समय इनकी कवित्व शक्ति जग गयी, इन्होंने बड़ी उमंगके साथ गाया—

भई अब गिरिधर सों पहचान।
कपट रूप धरि छलिबे आयौ पुरुषोत्तम नहिं जान॥
छोटो बड़ो कछू नहिं जान्यौ छाय रह्यौ अज्ञान।
छीत स्वामि देखत अपनायौ श्रीविट्ठल कृपा निधान॥

इनके चारों साथी जो बाहर बैठे ताक-झाँक कर देख रहे थे। उन्होंने कहा—छीतूको तो टोना लग गया, हम लोग यदि यहाँ रुकेंगे तो हमारे ऊपर भी टोना चल जायगा, इसलिये यहाँसे जल्दी भाग चलो। चारों मथुराको वापस आ गये। श्रीगोसाईंजीने छीतस्वामीसे कहा—'हमारी भेंट लाये हो, उसे लाओ।' ये मनमें विचार करने लगे कि नारियल और रुपया तो भेंटके योग्य हैं नहीं, ये सर्वज्ञ हैं, इनसे कुछ छिपा नहीं है। जैसे इन्होंने मुझ थोथे-खोटेको अपनाया है, उसी तरहसे मेरी भेंट भी स्वीकार करेंगे। ऐसा विचारकर डरते-डरते इन्होंने भेंट रखी। श्रीगोसाईंजीने नारियलको फोड़वाकर श्रीनवनीत-प्रियको भोग धरवाया और रुपयेके पैसे मँगवाये। नारियलमेंसे अति उत्तम गिरी निकली, सबको प्रसाद मिला, खोटा रुपया भी चल गया। इससे और अधिक श्रद्धा हुई। इन्होंने सोचा—वस्तुतः कोई भी वस्तु या जीव गुरु-गोविन्दके योग्य नहीं है, सब कुछ खोटा ही है, भगवदर्पित होकर ही वस्तु खरी होती है और जीव विशुद्ध होता है।

एक बार जन्माष्टमीके सुअवसरपर श्रीगोसाईंजी श्रीठाकुरजीको झूला झुला रहे थे। श्रीछीतस्वामीको उस समय अद्भुत दर्शन हुए। आपने देखा कि—कभी श्रीठाकुरजीको श्रीगोसाईंजी झुलाते हैं तो कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगोसाईंजीको श्रीठाकुरजी झुलाते हैं, उस समय श्रीछीतस्वामीने यह पद गाया—

प्रिय नवनीत पालने झूलैं, विट्ठलनाथ झुलावैं हो।
कबहुँक आप सङ्ग मिलि झूलैं, कबहुँक उतरि झुलावैं हो॥
कबहुँक सुरँग खिलौना लै लै, नाना भाँति खिलावैं हो।
चकइ फिरकिनी कबहूँ नचावैं, झुन-झुन हाथ बजावैं हो॥
भोजन करत थाल इक झारी, दोउ मिल खांय खवावैं हो।
गुप्त महारस प्रगट जनावैं, प्रीति नई उपजावैं हो॥
धनि धनि भाग दास निज जनके, जिन यह दर्शन पाये हो।
छीतस्वामि गिरिधरन श्रीविट्ठल, निगम एक करि गाये हो॥

इनके सेवा-भाव, प्रेम-भाव और कवित्वपर रीझकर श्रीविट्ठलनाथजीने इन्हें अष्टछापमें स्थान दिया और श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवा सौंपी। ये गोवर्धन पूंछरीके निकट रहते और श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवा करते थे। इनके प्राय: दो सौ पद प्राप्त होते हैं, कुछ अप्रकाशित भी हैं, इनकी भाषा सरल और स्पष्ट है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है, जिनमें इनके ब्रजप्रेमका वर्णन है—

ए हो विधना तो पै अचरा पसारि मांगौं,
जनम जनम दीजौ याही ब्रज बसिबो।
अहीर की जाति समीप नन्द घर,
घरी घरी स्याम हेर हेर हँसिबो॥
दधि के दान मिस ब्रज की बीथिनमें,
झकझोरिन अङ्ग अङ्ग को परसिबो।
छीतस्वामि गिरिधरन श्रीविट्ठल,
सरद रैन रस रास को विलसिबो॥

गुरुदेव श्रीविट्ठलनाथजीके लीला-प्रवेशके पश्चात् ये उनके वियोगमें व्यथित हो गये। उस समय इन्हें श्रीनाथजीने दर्शन दिया। *'विहरत सातो रूप धरे।'* इस पदको गाते-गाते अपने निवास-स्थान पूँछरीपर ही आपने वि० सं० १६४२ में शरीर छोड़ा और नित्य-लीला-धाममें प्रवेश किया।

श्रीबिहारीदासजी

भक्त-जगत्‌में आप श्रीबिहारिनदेव इस नामसे जाने जाते हैं। आपके पिताका नाम मित्रसेन था। ये दिल्ली बादशाहके उच्चपदाधिकारी थे। आप सब प्रकारके सुखोंसे सम्पन्न थे, परंतु सन्तानके बिना सभी सुख फीके लगते थे। पण्डित चतुर्भुजजी नामके एक आपके घनिष्ठ मित्र थे। इन्हें स्वामी श्रीहरिदासजीकी कृपासे पुत्रकी प्राप्ति हुई थी, अत: इन्होंने अपने मित्र मित्रसेनके लिये भी श्रीस्वामीजीसे प्रार्थना की। चतुर्भुजजीके कहनेसे मित्रसेनजी भी श्रीस्वामीजीके दर्शनार्थ श्रीवृन्दावन आये और इन्हें भी श्रीस्वामीजीकी कृपासे श्रावण शुक्ला ३ को एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। उनका नाम बिहारीदास हुआ। पण्डित चतुर्भुजजीके पुत्र श्रीकृष्णदासजी थे। वे भी श्रीस्वामीजीके कृपापात्र और अनन्य रसिकोंमेंसे एक थे। ये रात-दिन नित्य-विहार उपासनामें इतने लीन रहते थे कि अन्य बातोंकी सुध-बुध ही नहीं रहती थी। इसलिये आपके द्वारा रचित कोई साहित्य या अन्य विवरण नहीं मिलता है। पिताके देहान्तके बाद श्रीबिहारीदासजी राज-सेवामें नियुक्त हुए। एक बार आसामपर आक्रमण करनेके लिये आपको खानखानाके साथ जाना पड़ा। वहाँ युद्ध एवं उसकी रीति-नीतिसे आपके मनमें दु:ख और उसके बाद वैराग्य उत्पन्न हो गया। आपने मनमें दृढ़ निश्चय किया कि अब यवनोंकी नौकरी नहीं करनी है। छुटकारा पानेका कोई रास्ता नहीं दिखायी पड़ा तो आपने अपने ही हाथसे अपना एक हाथ काट डाला। इस महान् प्रायश्चित्तसे प्रारब्ध क्षीण हो गये और यवनराजकी सेवासे सहजमें मुक्ति मिल गयी।

श्रीधाम वृन्दावनमें आकर निधिवनमें श्रीस्वामीजीके श्रीचरणोंका स्पर्श करते ही आपका कटा हुआ हाथ ज्यों-का-त्यों हो गया। श्रीस्वामीजीकी आज्ञासे श्रीविट्ठलविपुलदेवजीने इन्हें शिक्षा-दीक्षा प्रदान की और निकुंज-महलकी उपासनाका रहस्य बताया। तभीसे 'श्रीबिहारिनदेवजी' इस नामसे आप प्रसिद्ध हुए।

श्रीस्वामी हरिदासजीके निकुंज-प्रवेशके सातवें दिन ही जब स्वामी श्रीविट्ठलविपुलदेवजी भी श्रीस्वामिनी-स्वरूपमें लीन हो गये, तो उनके स्थानपर श्रीबिहारिनदेवजी ही विराजमान हुए। श्रीबिहारीजीकी सेवा आप उसी लाड़-चावसे करते थे, किंतु कभी-कभी नित्य-केलिकी भावनामें ऐसे लीन हो जाते कि देह-कृत्यादिकी सुध-बुध भी भूल बैठते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसारसे निवृत्त भक्त

उधव रामरेनु परस (राम) गँगा धूषेत निवासी।
अच्युतकुल ब्रह्मदास, बिश्राम सेषसाइ के बासी॥
किंकर कुंडा कृष्नदास खेम सोठा गोपानँद।
जैदेव राघौ बिदुर दयाल दामोदर मोहन परमानंद॥
उद्धव रघुनाथी चतुरोनगन कुंज ओक जे बसत अब।
निरबर्त्त भए संसार तें ते मेरे जजिमान सब॥ १४७॥

भक्तोंकी भक्तिके भावमें डूबकर श्रीनाभाजी लिखते हैं कि जो भक्त मायिक संसारसे सर्वथा मुक्त हो चुके हैं, वे सभी मेरे यजमान हैं (मैं इनसे पोषित पुरोहित हूँ।) उनके नाम ये हैं—श्रीउद्धवजी, श्रीरामरेणुजी, श्रीपरशुरामजी, ध्रुवक्षेत्रमें निवास करनेवाले श्रीगंगाभक्तजी, शेषशायीके निवासी अच्युतगोत्रीय वैष्णवोंको विश्राम देनेवाले श्रीब्रह्मदासजी, कुण्डाके किंकर (सेवक) श्रीकृष्णदासजी, श्रीखेमजी, श्रीसोठाजी, श्रीगोपानन्दजी, श्रीजयदेवजी, श्रीराघवजी, जयतारन ग्राममें निवास करनेवाले श्रीविदुरजी, श्रीदयालजी, श्रीदामोदरजी, श्रीमोहनजी, श्रीपरमानन्दजी, श्रीउद्धवजी, श्रीरघुनाथजी और श्रीचतुरोनगनजी जो अब श्रीवृन्दावनके कुंज भवनमें बसते हैं॥ १४७॥

इन भक्तोंमेंसे कुछका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीउद्धवजी

श्रीउद्धवजी भगवान्‌के परम अनुरागी सन्त थे। नित्यप्रति सन्त-भगवन्तकी बड़े सद्भावसे सेवा करते। श्रीठाकुरजीकी सेवाके लिये उनके पास एक बड़ी सुन्दर लुटिया थी। उसीसे वे नित्य-प्रति भगवान्‌को जल पिलाते थे। किसी दिन एक आगन्तुक सन्तने उस लुटियाको माँगा। आपने प्रसन्नतासे उसे लुटिया दे दी। उसकी जगहपर दूसरी लुटिया सेवामें लाकर रख दी। इससे रुष्ट होकर श्रीठाकुरजीने उसे फेंक दिया। आपने लाकर फिर रखा तो फिर फेंककर बोले—तुम्हारा मुझमें स्नेह नहीं है, तभी तो मेरी अच्छी लुटिया दूसरेको दे दी और यह जो मुझे पसन्द नहीं है, लाकर मेरे पास रख दी। मैं इससे पानी नहीं पीऊँगा। अब तुम मुझे न खिला-पिलाकर उन्हें ही खिलाओ-पिलाओ, जिनसे तुम्हें प्रेम है। यह सुनकर श्रीउद्धवजीने कहा—देखो, महाराज! नाराज होनेकी जरूरत नहीं है, एक सन्तने लुटिया लाकर दी थी, दूसरा सन्त आकर उसे ले गया, तो क्या अनुचित हुआ? वह लुटिया आपकी नहीं थी। अब आपको जैसी चाहिये, वैसी किसी औरसे चाहे मुझसे मँगवा लीजिये। हम तो जैसे भी हो, सन्तोंको प्रसन्न करेंगे। आपकी अप्रसन्नताका मुझे भय नहीं है। यह सुनकर प्रभु बहुत प्रसन्न हुए और उसी क्षण उसी तरहकी लुटिया मँगवा ली।

श्रीविदुरजी

झीथड़ा ग्रामके निकट एक जयतारन नामका ग्राम है, उसमें श्रीविदुरजी भगवान्‌के परम भक्त हुए। वे बड़े प्रेमसे साधु-सन्तोंकी सेवा करते थे। एक बार वर्षा नहीं हुई, अतः सब खेती सूख गयी। श्रीविदुरजीके मनमें बड़ी चिन्ता हुई कि अब साधु-सेवा कैसे होगी। अपने भक्तके मनमें चिन्ता देखकर प्रभुने स्वप्नमें आज्ञा दी कि—सूखे खेतोंको ही कटवाओ, बैलोंसे दाँय करवाओ और फिर हवामें उड़ाओ। ऐसा करनेसे तुम्हें दो हजार मन अन्नकी प्राप्ति होगी। प्रभुकी आज्ञाके अनुसार आपने खेतोंको कटवाया। दूसरे लोग देखकर इनकी हँसी उड़ा रहे थे, परंतु श्रीविदुरजीको भगवदाज्ञापर दृढ़ विश्वास था, अतः भक्तहितकारी भगवान्‌के नाम-गुण-गानके साथ ये किसानीके काममें लग गये। हवामें उड़ानेसे अन्नका बड़ा भारी ढेर लग गया। सब लोगोंने समझ लिया कि श्रीविदुरजी प्रेमी भक्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

झीथड़े ढिग ही मैं जैतारन विदुर भयौ, भयौ हरि भक्त, साधु सेवा मति पागी है।
बरषा न भई सब खेती सूखि गई, चिन्ता नई, प्रभु आज्ञा दई, बड़ौ बड़भागी है॥
'खेत को कटावौ, औ गहावो, लै उड़ावौ, पावौ दो हजार मन अन्न', सुनी प्रीति जागी है।
करी वही रीति, लोग देखैं न प्रतीति होत, गाए हरि मीत राशि लागी अनुरागी है॥ ५६३॥

श्रीचतुरोनगनजी

सदा जुक्त अनुरक्त भक्त मंडल कों पोषत।
पुर मथुरा ब्रज भूमि रमत सबही को तोषत॥
परम धरम दृढ़ करन देव श्री गुरु आराध्यो।
मधुर बैन सुठि ठौर ठौर हरिजन सुख साध्यो॥
संत महंत अनंत जन जस बिस्तारत जासु नित।
श्रीस्वामी चतुरोनगन मगन रैन दिन भजन हित॥ १४८॥

श्रीगोस्वामी चतुरदासजी नागा दिन-रात भजन-भावमें डूबे रहते थे। आप बड़े भारी सिद्ध-योगी थे। ध्यान-समाधि लगाकर श्रीराधाकृष्णके चरणोंमें अनुराग करते थे। गृहस्थ-विरक्त भक्तसमूहका आप पोषण करते थे। आप श्रीवृन्दावनमें निवास करते थे, पर मथुरापुरी और सम्पूर्ण व्रज-मण्डलमें विचरते थे। वैष्णवधर्मको सुस्थापित करनेके लिये आपने अपने श्रीगुरुदेवकी आराधना की। आपके वचन अत्यन्त मधुर थे। सर्वदा भगवद्गुणोंका गानकर जहाँ-तहाँ सम्पूर्ण व्रज-मण्डलमें भक्तोंको सुख देते थे। असंख्य सन्त-महन्तजन सर्वदा श्रीनागाजीके सुयशका विस्तार करते हैं॥ १४८॥

गोस्वामी श्रीचतुरोनगनजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

गोस्वामी श्रीचतुरोनगनजी निम्बार्क सम्प्रदायके महान् सन्त श्रीपरमानन्ददेवाचार्यजीके शिष्य थे। एक बार इनके गुरुदेव पधारे। आप उनकी स्नेहपूर्वक सेवा करने लगे। आपका सच्चा भाव था। गुरुमें गोविन्दबुद्धि थी, अत: सेवा-भावमें बुद्धि ऐसी तल्लीन हो गयी कि आपने अपनी स्त्रीको गुरु-सेवा सौंपते हुए आदेश दिया कि ये गुरु भगवान् जैसी भोजन-पानकी इच्छा करें, जैसा आदेश-उपदेश दें, उसी प्रकार इनकी सेवा करना। आपकी आज्ञाके अनुसार उसने सेवा करना आरम्भ कर दिया और अपनी सेवासे उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। जब आपने देखा कि गुरु-गोविन्दकी सेवामें इसकी निष्ठा है। तब आपने प्रसन्न होकर कहा—भगवन्! यह घर, धन और सेवाके लिये इस वधूको लीजिये और कृपा करके यहाँ ही विराजिये। ऐसा कहकर आपने अपने घरमें उन्हें पधराया। जैसे कोई देव-प्रतिमाको सेवा-पूजाके निमित्त पधराये, उसी भावसे उन्हें पधराया। इस सेवाका प्रबन्ध करके आपको बड़ा सुख मिला। आपने गुरु-गोविन्दको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। उनकी आज्ञा और उनका आशीर्वाद पाकर उनके उपदेशानुसार आपने व्रजभूमिकी उपासना हृदयमें धारण की। श्रीबाँकेबिहारी आपके हृदयमें बस गये, अत: आपने श्रीवृन्दावनमें निवास किया और निरन्तर वृन्दावन-रसकी उपासना करके उसी रसका आस्वादन किया।

श्रीप्रियादासजीने इस गुरुभक्ति और वृन्दावन-रसकी उपासनाका इस प्रकार वर्णन किया है—

आयो गुरु गेह यों सनेह सों लै सेवा करैं, धरैं सांचौ भाव हियै अति मति भीजियै।
टहल लगाय दई नई रूपवती तिया, दियौ वासौं कहि 'स्वामी कहैं सोई कीजियै'॥
सेवा कै रिझाये याते प्रेम उर नित नयो दयौ घर धन वधू 'कृपा करि लीजियै'।
धाम पधराय, सुख पायकै, प्रनाम करी, धरी, व्रजभूमि उर बसे, रस पीजियै॥ ५६४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागा श्रीचतुरदासजी प्रातःकाल श्रीवृन्दावनधाममें विराजमान श्रीगोविन्ददेवजीकी मंगला-आरतीके दर्शन करते, फिर श्रीमथुराजीमें आकर श्रीकेशवदेवजीकी शृंगार-आरतीमें सम्मिलित होते, उसके बाद वहाँसे चलकर बरसाना—नन्दगाँवमें राजभोगकी आरती करके गोवर्धन—राधाकुण्ड होते हुए (लगभग छत्तीस कोस चलकर) सायंकालको श्रीवृन्दावन लौट आते। ऐसे ही (प्रातः से सायंतक) चार प्रहरमें प्रसन्न मनसे श्रीनागाजी नित्य यात्रा करते। एक बार (नन्दगाँवमें) पावन सरोवरपर आपको बिना खाये-पीये तीन दिन बीत गये। तब परम-प्रवीण भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं दूध लेकर आपके पास आये। श्यामसुन्दरके प्रेमरंगमें रँगे हुए श्रीनागाजीने दूध पीकर जल माँगा। व्रजवासी बालकरूपधारी भगवान् जल लेने गये तो फिर लौटकर आये ही नहीं। तब आपको बड़ा कष्ट हुआ। फिर प्रभुने रातको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'मनमें दुःख मत मानो, मैंने ही आकर तुम्हें दूध पिलाया था।'

भगवान्ने स्वप्नमें पुनः श्रीनागाजीसे कहा—दूध पिलानेके बाद माँगनेपर भी हमने तुमको पानी इसलिये नहीं दिया कि 'तुम्हें अब पानीसे क्या प्रयोजन? तुम व्रजभूमिमें बिराजते हुए घर-घर जाकर दूध ही पिया करो।' श्रीनागाजीने कहा—प्रभो! ये व्रजवासी लोग दूधके बड़े प्रेमी (लोभी) होते हैं, फिर मुझे कैसे देंगे? भगवान्ने कहा—'नहीं, मेरी आज्ञा है, अतः सब लोग तुम्हें दूध अवश्य देंगे।' यह नयी आज्ञा श्रीनागाजीने सुनी और स्वीकार की तथा सभी लोगोंको सुनायी। अब श्रीनागाजी भगवान्की आज्ञाके अनुसार व्रजमें गाँव-गाँव, घर-घर घूमने लगे और लूट-लूटकर तथा माँग-माँगकर दूध पीने लगे। जिस किसीने दूध नहीं दिया, उसे आपने परिचय एवं चमत्कार दिखाये। सब लोगोंको विश्वास हो गया। विनोद करनेके लिये कोई-कोई व्रजगोपियाँ दूधसे भरे पात्रोंको घरमें कहीं छिपा देतीं। तब उसे आप घरमें घुसकर झट ढूँढ़ लाते। इससे व्रजगोपियाँ बहुत प्रसन्न होतीं। इस प्रकार श्रीव्रजधाममें निवास करते हुए आपने मधुर रसमयी लीलाएँ कीं।

श्रीप्रियादासजीने श्रीचतुरोनगनजीकी इस रसमयी लीलाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

श्री गोविन्द चन्द जू कौ भोर ही दरस करि केसव सिंगार, राजभोग नन्दग्राम में।
गोबर्धन, राधाकुण्ड ह्वैकै, आवै वृन्दावन, मन में हुलास नित करैं चारि जाम में॥
रहे पुनि पावन पै भूखे दिन तीन बीते, आये दूध लै प्रवीन, एऊ रंगे स्याम में।
मांग्यौ नैकु पानी ल्यावौ, फेरि वही प्रानी कहां?, दुख मति सानी निसि, कही कियौ काम में॥ ५६५॥
'पानी सौं न काज, व्रज भूमि मैं बिराज दूध, पीवौ घर घर', यह आज्ञा प्रभु दई है।
'एतौ ब्रजवासी सब क्षीर के उपासी, कैसें मोको लेन दैहैं' कही 'दै हैं सुनी नई है॥
डोलै धाम धाम श्याम कह्यौ जोई मानि लियौ, दियौ परचे हूँ, परतीति तब भई है।
जहां जा छिपावै पात्र, बेगि आप ढूँढ़ि ल्यावैं अति सुख पावैं, कीनी लीला रसमई है॥ ५६६॥

भक्तसेवी मधुकरिया भक्त

गोमा परमानंद (प्रधान) द्वारिका मथुरा खोरा।
कालुष साँगानेर भलौ भगवान को जोरा॥
बीठल टोड़े खेम पँडा गूनो रै गाजैं।
स्यामसेन के बंस चीधर पीपारे विराजैं॥
जैतारन गोपाल को केवल कूबै मोल लियो।
मधुकरी माँगि सेवैं भगत तिनपर हों बलिहार कियो॥ १४९॥

गोस्वामी श्रीनाभाजी कहते हैं कि मधुकरी (चुटकी) माँगकर भगवद्भक्तोंकी सेवा करनेवाले सन्तोंपर मैं अपना तन-मन और धन न्यौछावर करता हूँ। श्रीद्वारकानिवासी गोमानन्दजी, मथुरा एवं खोराके रहनेवाले प्रधान भक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Kalyan Bhaktmal Ank_Section_15_1_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीपरमानन्दजी कालुख और सांगानेरमें विराजनेवाले दोनों भगवान नामक भक्त, टोंड़ेके श्रीबीठलजी, श्रीखेमजी, गुनौरा ग्रामके पण्डाजी, जयतारनवासी श्रीगोपालजी, पीपोर ग्रामके श्रीचीधरजी, सेनवंशमें उत्पन्न श्रीश्यामजी और श्रीकेवलदासजी, जो कूबा नामसे प्रसिद्ध हैं। इन भक्तोंने हमें खरीद लिया है। हम इनके क्रीतदास हैं॥ १४९॥

इनमेंसे कुछ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीगोमानन्दजी

श्रीगोमानन्दजी श्रीभगवद्धाम श्रीद्वारकाजीमें निवास करते थे। ये सन्त-सेवाके निमित्त चुटकी माँगकर लाते थे और बड़े प्रेमसे साधु-सेवा करते थे। एक बार बीस साधुओंसे श्रीगोमानन्दजीने हाथ जोड़कर कहा—'मेरे यहाँ भिक्षाका आटा है, जिसमें सभी अनाज मिले हुए हैं, आप जो आज्ञा दें, वही रसोई तैयार करूँ।' यह सुनकर एक सन्तने कहा—मेरी तबियत कुछ खराब-सी है, अत: मैं तो गेहूँकी रोटी खाऊँगा। भिक्षाका आटा हमारे स्वास्थ्यके अनुकूल नहीं है। इतनेमें सभी सन्त बोल उठे—हम लोग भी गेहूँकी ही रोटी खायेंगे। उस समय इनके पास गेहूँका आटा तो मात्र एक सेर ही था। एक सन्तने कहा—'जितना हो, जैसा हो वही दे दो।' पर यह बात सब सन्तोंने स्वीकार नहीं की। आपका स्वभाव था—सन्तोंको सन्तुष्ट करना, अत: आपने कहा—रुचि-अनुरूप प्रसाद पवाये बिना मैं जाने न दूँगा। आप लोग विराजें, थोड़ी देर प्रतीक्षा करें। ऐसा कहकर आप जल्दी-जल्दी बाजार गये और उधार गेहूँका आटा तथा कुछ और भी सामान माँगने लगे। किसीने भी उधार देना स्वीकार नहीं किया, तब आप बड़े सोच-विचारमें पड़ गये, कि अब क्या करूँ, कहाँसे सामान लाऊँ। भक्त-चिन्तासे चिन्तित होकर श्रीरामजीने गोमानन्दका रूप धारण किया और एक गेहूँकी पोट लेकर इनके घरपर आ गये। इनकी धर्मपत्नीसे बोले कि—'इनको झट साफ करवाकर पीस लो और पिसवा लो, प्रेमसे रोटी बनाकर सन्तोंको प्रसाद पवावो। मैं सन्तोंके पास हूँ।' इनकी पत्नीने शीघ्रतासे आटा तैयार करके रोटियाँ बनाना आरम्भ कर दिया। बाजारमें इधर-उधर टक्कर खाकर निराश श्रीगोमानन्दजी घर आये। रोटियाँ बनती देखकर प्रसन्न हुए और पत्नीसे बोले—'आटा कहाँसे आ गया?' पत्नीने उत्तर दिया—आप ही तो गेहूँ लाकर दे गये थे और पीसकर रोटी बनानेको कह गये थे, इतनी जल्दी कैसे भूल गये? पत्नीकी बात सुनकर आप समझ गये कि आज स्वयं भगवान्‌ने कृपा की है और मेरी रुचिके अनुसार सन्त-सेवामें सहयोग दिया है। भक्त-दम्पतीका सन्त-सेवामें और अधिक अनुराग बढ़ गया।

श्रीपरमानन्दजी

श्रीपरमानन्दजी महाराज श्रीठाकुरजीके निष्किंचन भक्त थे। आप श्रीभगवद्धाम श्रीमथुराजीमें रहते थे। आप मधुकरी वृत्तिसे अन्न माँगकर लाते और बड़े प्रेमसे सन्त-सेवा करते। आप बार-बार कथा-कीर्तन आदिसे सम्बन्धित उत्सव करते ही रहते थे, किंतु पर्याप्त धन न रहनेके कारण आपके मनोरथ पूरे नहीं होते। एक बार आप इस अर्थाभावके लिये श्रीठाकुरजीको ही उलाहना देने लगे, तब भगवान् दो सौ सोनेकी मुहरोंको लेकर श्रीपरमानन्दजीके घरपर आये और उन्हें मुहरें देने लगे। तब श्रीपरमानन्दजीने कहा—प्रभो! आप यहाँ इन मुहरोंको क्यों लाये? भगवान्‌ने कहा—तुम बड़े चतुर हो, जब मैं कुछ नहीं देता हूँ, तो तुम उलाहना देते हो और जब देता हूँ तो लेते नहीं हो। आपने कहा—प्रभो! मैंने जो कुछ कहा, वह विनोदमें कहा। ऐसा कहते-कहते परमानन्दजीकी आँखोंमें आँसू भर आये। वे प्रभु-चरणोंमें लिपट गये। भगवान् भी भक्त-भावमें विभोर हो गये और बोले तुम्हारे मनमें उत्सव करनेकी तथा सन्त-सेवाकी जैसी अभिलाषा है, उसको इस धनसे पूर्ण कर लो तथा जो चाहो सो और भी माँग लो, परंतु अब उलाहना मत देना। भगवान्‌के साथ हुए इस संवादसे श्रीपरमानन्दजीको जैसा परमानन्द हुआ। उसका वर्णन कोई भी नहीं कर सकता है। भगवत्कृपासे परिपूर्ण धनको लेकर श्रीपरमानन्दजीने महा-महोत्सव किया।

श्रीभगवानजी

आपका निवास कालख ग्राममें था। आपको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुकरी वृत्तिसे अन्न माँगकर सन्त-सेवा करनेका बड़ा-भारी अनुराग था। दिनभर भिक्षाटनसे जो कुछ प्राप्त होता, उस सर्वस्वसे आप अतिथि, अभ्यागत सन्तोंकी सेवा करते। एक बार ऐसा अकाल पड़ा कि भिक्षा मिलनी बन्द हो गयी और सन्तोंकी भीड़ बढ़ गयी। अब यथोचित स्वागत-सत्कार न कर पानेसे आपका मन खिन्न हो गया। आपने अपने मनमें निश्चय किया कि अब इस स्थानको छोड़कर अन्यत्र कहीं चला जाऊँगा। उसी दिन आपको आकाशवाणी सुनायी पड़ी कि—तुम इस स्थानको छोड़कर कहीं मत जाओ। मैं तुम्हारे लिये धन देता हूँ, तुम उसके द्वारा सन्त-सेवा करो। आपने कहा—मुझे इस प्रकारके धनसे सन्त-सेवा नहीं करनी है। मैं चाहता हूँ कि लोकमें सभी सुखी-समृद्ध रहें और मधुकरी वृत्तिसे हमारी झोली भरे, उससे मैं अपने इष्ट सन्तोंकी सेवा करूँ। इस भावपर रीझकर भगवान्‌ने कहा—**'एवमस्तु'** ऐसा ही हो। फिर तो नित्य आपकी झोली भरने लगी और सुकाल हो गया।

श्रीश्यामजी

प्रसिद्ध भक्त सेनके वंशमें श्रीश्यामजी महान् भगवद्भक्त हुए। पहले आप गृहस्थाश्रम-धर्मका पालन करते हुए भगवद्भजन और सन्त-सेवा करते थे। एक बार आपके यहाँ एक सिद्ध सन्त आ गये। उन्होंने सन्त-सेवाकी महिमा बताकर कहा कि यदि मानव-जीवनको सफल करना हो तो आजसे ही सन्त-सेवाका दृढ़ व्रत हृदयमें धारण कर लो। श्रीश्यामजीने पूछा—भगवन्! सन्त कैसे होते हैं, उनकी क्या पहचान है? उन्होंने कहा—हमारे-जैसी वेश-भूषा (कण्ठी-माला-तिलक) धारण करनेवाले सभी सन्त भगवदाश्रित हैं और सेव्य हैं। यदि इसी शरीरसे भगवदनुभव चाहते हो तो अब समय आ गया है, गृहस्थाश्रमका त्याग कर दो, मधुकरी वृत्तिसे भिक्षा माँगो, आये-गये साधु-सन्तों और अतिथियोंकी सेवा करो। फिर देखो कि तुमपर कितनी जल्दी प्रभु रीझते हैं और तुम सिद्ध होते हो। उस सिद्ध-सन्तके उपदेशका इनपर ऐसा विलक्षण रंग चढ़ा कि ये पूर्णतया विरक्त हो गये और भिक्षाटन एवं सन्त-सेवा करने लगे।

एक बार भिक्षा माँगते हुए आप एक सद्-गृहस्थके द्वारपर गये तो वहाँ इन्होंने देखा कि उस घरके मालिकका इकलौता बेटा मर गया है और सभी लोग करुण-क्रन्दन करते हुए विलाप कर रहे हैं। लोगोंका आर्तनाद सुनकर आपका हृदय द्रवित हो गया। दयाभावमें भरकर श्रीराम-नामका संकीर्तन करते हुए आपने जाकर बालकके शरीरका स्पर्श किया तो उसी क्षण वह जीवित हो गया। आपने कहा—तुम लोग व्यर्थ रुदन करते हो, नाम-कीर्तन करो, पुत्र जीवित हो गया। श्रीश्यामजीके इस चमत्कारको देखकर सभी लोग उनके श्रीचरणोंमें लिपट गये।

श्रीकूबाजी (केवलदास)

श्रीकूबाजीको संसारमें लोग कुम्हार जातिका कहते हैं, उनका सुन्दर नाम श्रीकेवलराम था। आपने अपनी भक्तिके प्रभावसे अपने कुलका ही नहीं, संसारका उद्धार किया। आप साधुओंकी बड़ी अच्छी सेवा करते थे। एक बार आपके घरमें बहुत-से सन्त पधारे। उनका सप्रेम स्वागत-सत्कार किया। परंतु उस दिन घरमें अन्न-धन कुछ भी न था। बड़ी भारी आवश्यकता थी, अतः आप कर्ज लेनेके लिये चले। परंतु किसी महाजनने कर्ज नहीं दिया। एक महाजनने कहा—'यदि मेरा कुआँ खोदनेका काम कर दो तो मैं तुम्हारे लिये आवश्यक सीधा-सामान उधार दे सकता हूँ।' इस बातको स्वीकारकर आपने प्रतिज्ञा की और आवश्यक अन्न-धन लाये। एकमात्र श्यामसुन्दर जिन्हें प्रिय हैं, ऐसे सन्तोंको आपने बड़े प्रेमसे भोजन कराया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकूबाजीके सन्तोंके प्रति इस भक्तिभावका एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कहत कुम्हार, जग कुल निसतार कियौ, 'केवल' सुनाम साधु सेवा अभिराम है।
आये बहु सन्त, प्रीति करी लै अनन्त, जाकौ अन्त कौन पावै, ऐपै सीधौ नहीं धाम है॥
बड़ी ए गरज, चले करज निकासिबे कों, बनिया न देत 'कुवां खोदौ कीजै काम है'।
कही बोल कियौ तोल लियौ नीके रोलकरि, हितसों जिमाये जिन्हें प्यारो एक श्याम है॥ ५६७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) श्रीकूबाजीपर भगवत्कृपा

साधु-सन्तोंकी सेवासे अवकाश पाकर श्रीकेवलरामजी महाजनका कुआँ खोदने लगे। खोदते समय आप तोतेकी तरह भगवान्‌के नामोंका उच्चारण कर रहे थे। कुआँ खुद गया—यह जानकर महाजनको और कूबाजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। खोदते-खोदते रेतीली जमीन आ गयी और चारों ओरसे कई हजार मन मिट्टी खिसककर गिर पड़ी। उसमें श्रीकेवलरामजी दब गये। लोगोंने सोचा कि अब इतनी मिट्टीको कैसे हटाया जाय। केवलरामजी तो मर ही गये होंगे, अब मिट्टीको हटानेसे भी क्या लाभ! इस प्रकार शोक करते हुए लोग अपने-अपने घरोंको चले गये। एक महीनेके बाद उस फूटे कुएँके पाससे आने-जानेवाले लोगोंने श्रीराम-नामकी ध्वनि सुनी तो गाँवमें जाकर यह शुभ प्रिय समाचार सुनाया। सुनते ही बहुत-से लोग वहाँ आये और नाम-संकीर्तनकी मधुर-ध्वनि सुनकर प्रेमके आवेशमें आ गये। लोगोंको अपने शरीरकी सुधि-बुधि नहीं रही।

इकट्ठे होकर लोगोंने श्रीकेवलरामजीके ऊपर पड़ी हुई मिट्टीको निकालकर अलग किया। जब लोग आपके पास पहुँचे तो *'हरे राम, हरे राम'* उच्चारण करते सुना। इनकी वाणी सबको बहुत ही प्रिय लगी। जब आपका दर्शन हुआ तो लोग आपके पैरोंमें लिपट गये। जहाँ आप बैठे थे, वहाँ भगवत्कृपासे एक गोल मिहराब-सी (जगह) बन गयी थी, जिसके कारण आपका शरीर सुरक्षित था। लोगोंने देखा कि अधिक दिनोंतक झुककर बैठे रहनेसे आपकी पीठमें कूबड़ निकल आया है। आपके समीप एक जलसे भरा हुआ स्वर्णपात्र रखा था। उसे देखकर लोगोंने श्रीकेवलरामजीको भगवान्‌का महान् कृपापात्र समझा। फिर कुएँसे निकालकर लोग इन्हें इनके घरपर ले आये। अब तो आपकी बड़ी भारी पूजा-प्रतिष्ठा होने लगी। आपकी भक्ति और महिमाको जानकर लोगोंने बहुत-सी सम्पत्ति आपको भेंट की तथा दीन-दु:खियोंको बाँटी।

श्रीप्रियादासजीने भगवत्कृपाकी इस अद्भुत घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

गए कुवां खोदिबे कों, सुवा ज्यौं उचारै नाम, हुआ काम जान्यौ वानै भयौ सुख भारी है।
आई रेत भूमि, झूमि माटी गिरि दबे वामैं, केतिक हजार मन होत कैसे न्यारी है॥
सोक करि आये धाम, 'राम' नाम धुनि काहूं कान परी, बीत्यो मास, कही बात प्यारी है।
चले वाही ठौर स्वर सुनि प्रीति भौंर परे, रीति कछु और यह सुनि बुधि टारी है॥ ५६८॥
माटी दूर करी, सब पहुँचे निकट जब, बोलिकै सुनायौ हरे बानी लागी प्यारियै।
दरसन भयौ, जाय पांय लपटाय गए, रही मिहराबसी ह्वै कूबहू निहारियै॥
धर्‌यौ जलपात्र एक, देखि बड़े पात्र जाने, आने निज गेह पूजा लागी अति भारियै।
भई द्वार भीर, नर उमड़ि अपार आये, महिमा बिचारि बहु सम्पति लै वारियै॥ ५६९॥

(ख) श्रीकूबाजीके घरपर श्रीरामजीका स्वयं प्रतिष्ठित होना

एक बार एक महात्माजी अपने मन्दिरमें पधरानेके लिये जयपुरसे बनवाकर श्यामवर्णका बड़ा ही सुन्दर श्रीरामजीका स्वरूप ले जा रहे थे। मार्गमें विश्राम करनेके लिये श्रीकूबाजीके यहाँ रुके। श्रीरामजीके सुन्दर स्वरूपको देखकर श्रीकूबाजीके मनमें विचार उठा कि 'यदि ये प्रभु हमारे ऊपर कृपा करें और यहीं रहकर मेरी सेवा स्वीकार करें तो बहुत अच्छा हो।' इनकी सन्त-सेवा-निष्ठा एवं प्रार्थना स्वीकार करके अन्तर्यामी भगवान् श्रीराम वहीं अचल होकर विराज गये। दूसरे दिन सन्तजी इन्हें ले जानेके लिये उठाने लगे तो अनेक उपाय करनेपर भी भगवान् वहाँसे नहीं उठे। तब श्रीकूबाजीने हँसकर कहा—'ये मुझ दासपर रीझ गये हैं। अत: यहीं रहेंगे। आपके उठानेसे नहीं उठेंगे।' भगवान्‌ने इनके मनकी बात जान ली थी। अत: इनकी प्रतिष्ठा करके श्रीकूबाजीने इनका नाम 'जानराय रामचन्द्र' रखा। प्रभुको अपने घरमें विराजमानकर तथा उनकी सेवाका सुख प्राप्तकर श्रीकूबाजी अपने अंगमें फूले नहीं समाते थे। झींथड़ामें जानराय रामचन्द्र अबतक विराजमान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सुन्दर स्वरूप श्याम ल्याये पधरायबे कों, साधु निज धाम आय कूबाजू के बसे हैं।
रूप कों निहारि मन में विचार कियौ आप 'करै कृपा मोकों प्रभु' अचल ह्वै लसे हैं॥
करत उपाय सन्त टरत न नेक किहूं कही जू अनन्त हरि रीझे स्वामी हँसे हैं।
धर्‌यौ 'जानराय' नाम जानि लई हीकी बात, अङ्ग मैं न मात सदा सेवा सुख रसे हैं॥ ५७०॥

(ग) भगवान्‌द्वारा सन्तसेवाकी आज्ञा प्राप्त होना

एक बार श्रीकूबाजीके मनमें विचार आया कि 'द्वारकाको जाऊँ और शङ्ख-चक्रकी छाप लेकर आऊँ।' आप घरसे चल दिये, परंतु मार्गमें ही भगवान्‌ने आज्ञा दी कि 'तुम अपने घरपर रहकर सन्त-सेवा करो, तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण हो जायँगे, अतः अन्यत्र कहीं मत जाओ।' ऐसी प्रभुकी आज्ञा पाकर श्रीकूबाजी घर लौट आये। कुछ दिन बाद घरमें रहते हुए ही इनके शरीरमें शंख-चक्र आदिकी छाप प्रकट हो गयी। इस प्रकारके नये-नये चमत्कार प्रकट हुए, तब लोग श्रीकूबाजीकी कीर्तिका गान करने लगे। द्वारकामें गोमती और सागरका संगम अब नहीं होता है, पहले होता था। सन्तोंके द्वारा यह सुनकर आपने अपनी माला सुमिरनी सन्तोंके हाथ भेज दी। दोनोंके मध्यमें सुमिरनी रखते ही फिर संगम होने लगा। इस प्रकार आपने गोमती-सागरका संगम कराया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

चले द्वारावति, छाप ल्यावैं 'मति भई, आज्ञा प्रभु दई फिरि घरही को आये हैं।
'करौ साधु सेवा धरौ भाव दृढ़ हिये मांझ, टरौ जिनि कहूँ, कीजै जे जे मन भाये हैं'॥
गेह ही में शङ्ख चक्र आदि निज देह भए, नये नये कौतुक प्रगट जग गाये हैं।
गोमती को सागर सों सङ्गम हो रह्यो सुन्यौं, सुमिरनी पठायकैं यों दोऊ लै मिलाये हैं॥ ५७१॥

(घ) सन्तसेवाकी अनोखी रीति

श्रीकूबाजीके बहुत-से शिष्य हुए और उन शिष्य-प्रशिष्योंकी अनेक शाखाएँ बढ़ीं। आपके उपदेशानुसार सभी शिष्य-प्रशिष्योंमें साधु-सेवाकी ही विशेष रुचि रहती थी। सन्त-सेवाकी महिमा अपार है, इस रहस्यको प्रकट करके आपने दिखा दिया। एक दिन आपके यहाँ कई साधु-सन्त पधारे। श्रीकूबाजीने पत्नी पूरीसे कहा—'इनके लिये रसोई बना लो।' उसने कहा—'मेरी तबियत खराब है, मैं रसोई नहीं बनाऊँगी। ये तो रोज ही आते रहते हैं, मैं कहाँतक इन्हें बनाकर खिलाऊँगी।' श्रीकूबाजीने कहा—'मैं चूल्हा चेताये देता हूँ, तू जब रोटी बनाने लगेगी तो सन्त-कृपासे तेरी तबियत बिलकुल ठीक हो जायगी।' इस प्रकार बहुत कहने-सुननेपर बाजरेके टिक्कर (मोटी रोटी) साधुओंके लिये उसने बनाये। इसी बीच उसका भाई आ गया तो बड़े उत्साहसे दूसरेके घरसे दूध ले आयी और उसने अपने भाईके लिये खूब सुन्दर खीर बनायी। श्रीकूबाजीने देखा तो समझ गये कि इसका स्नेह अपने भाईमें अधिक है। तब आपने एक सुन्दर उपाय सोचा। जल पृथ्वीपर गिराकर स्त्रीसे कहा—'तू जल्दी जल भरकर ले आ।' वह जल भरने चली गयी, परंतु उसे भय था कि कहीं खीर साधुओंको न परोस दें। जबतक वह गहरे कुएँसे जल भरकर आये, तबतक आपने खीर परोसकर साधुओंको खिला दी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भये शिष्य शाखा अभिलाषा साधु सेवा ही की महिमा अगाध, जग प्रगट दिखाई है।
आये घर सन्त, तिया करति रसोई, कोई आयौ वाको भाई, ताकों खीर लै बनाई है॥
कूबाजी निहारि जानी याकौ हित सोदर सों कीजियै विचार एक सुमति उपाई है।
कही भरि ल्यावो जल 'गई डरि कलपै न लई' तसमई सब भक्तनि जिमाई है॥ ५७२॥

(ङ) स्त्रीको सन्तसेवाका उपदेश

श्रीकूबाजीकी स्त्री जल्दीसे जल लेकर आयी और जब उसने साधुओंके आगे खीर देखी तो उसके शरीरमें आग-सी लग गयी। अपने भाईके मुखकी ओर देखने लगी। भाई भी उदास हो गया। अपने भाईका तिरस्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानकर दुःखके समुद्रमें डूब गयी। श्रीकूबाजीने अपनी स्त्रीको भक्त और भगवान्‌की सेवासे विमुख जानकर उसे घरसे निकाल दिया। वह अपने भाईके साथ पीहर चली गयी और उसने दूसरा पति कर लिया। दूसरे पतिके यहाँ उसके कई लड़के और लड़कियाँ हुईं। कुछ दिन बाद अकाल पड़ गया। अब वह अपने बेटा-बेटियोंका पालन करनेमें असमर्थ हो गयी। तब किसी दूसरी जगह जानेका विचार करने लगी, जहाँ पेट भर सके। पर ऐसा स्थान नहीं मिला, तब बड़ी व्याकुलता हुई। अन्तमें लाचार होकर भूखसे व्याकुल बालक-बालिकाओं तथा उपपतिके साथमें झींथड़ा आयी और श्रीकूबाजीके द्वारपर पड़ गयी तथा उसने अपना असह्य दुःख रो-रोकर सुनाया।

दुःख और दीनतासे भरे स्त्रीके वचन सुनकर श्रीकूबाजीके मनमें बड़ी दया आयी। क्योंकि ये वैष्णव-धर्मका पालन करनेमें बड़े ही निपुण एवं उदार थे। आपने उससे कहा—तू मेरे पति परमात्माको देख, जो मेरा तथा सभी जीवोंका पालन कर रहा है और अपने पतिको देख, जो अपनी स्त्री और अपने बच्चोंका पेट नहीं भर पा रहा है। महान् संकटमें पड़ गया है। अतः अब तुम सब यहीं बाहर द्वारपर पड़े रहो और द्वारके सामने झाड़ू लगा दिया करो। तुम सबको भगवान्‌का प्रसाद पानेको मिल जाया करेगा। श्रीकूबाजीकी महिमा और दयाको देखकर वह रोने लग गयी।

जब तक अकालका समय रहा, तबतक श्रीकूबाजीने उन सबको भोजन-वस्त्र दिया। जब सुकाल आ गया, तब आपने उसे विदा कर दिया। वह भी अपने पति और बालकोंको साथ लेकर चली गयी। वह अपने मनमें बहुत पश्चात्ताप कर रही थी, परंतु वह स्थान और वह सुख उसे कैसे मिल सकता था, जहाँ नित्य सन्तोंकी सभा और सत्संग है, जहाँ रसमयी प्रेमा-भक्तिका रंग छाया रहता है। श्रीकूबाजी महाराज जिस किसीको शिष्य बनाते, उसे साधु-सन्तों तथा दीनोंकी सेवाका ही आदेश-उपदेश देते हुए यही कहते कि 'जिनके रूप और गुण अनन्त हैं, ऐसे प्रभुको प्राप्त करनेकी इच्छा यदि तुम्हारे मनमें है तो कपटको त्यागकर प्रेमसे सन्त-सेवा करो।'

श्रीप्रियादासजीने श्रीकूबाजीकी इस दयालुता और वैष्णवताका इस प्रकार वर्णन किया है—

बेगि जल ल्याई, देखि आगि सी बराई हिये, झांकैं मुँह भाई, दुख सागर बुड़ाई है।
बिमुख बिचारि, तिया कूबाजू निकारि दई, गई पति कियो और, ऐसी मन आई है॥
पर्‌यौई अकाल बेटा बेटी सो न पालि सकैं, तकै कोऊ ठौर मति अति अकुलाई है।
लिये सङ्ग कर्‌यौ, जोई पुत्र सुता भूख भोई, आय परी झींथड़ा में स्वामी को सुनाई है॥ ५७३॥
नाना बिधि पाक होत, सन्त आवैं जैसे सोत, सुख अधिकाई, रीति कैसे जात गाई है।
सुनत बचन वाके दीन दुख लीन महा, निपट प्रवीन मन मांझ दया आई है॥
देखि पति मेरौ और तेरौ पति देखि याहि कैसे कै निबाहि सकैं परी कठिनाई है।
रहौ द्वार झार्‌यौ करौ पहुँचै अहार तुम्हें महिमा निहारि दृग धार लै बहाई है॥ ५७४॥
कियौ प्रतिपाल तिया पूरी कौ अकाल मास भयौ जब समै बिदा कीनी उठ गई है।
अति पछितात वह बात अब पावैं कहां? जहाँ साधु सङ्ग रंग सभा रसमई है॥
करैं जाकों शिष्य, सन्त सेवा ही बतावैं, 'करौ जो अनन्त रूप गुन चाह मन भई है।
नाभाजू बखान कियौ, मोकों इन मोल लियौ, दियौ दरसाय सब लीला नित नई है॥ ५७५॥

पण्डा श्रीदेवादासजी

पण्डा श्रीदेवादासजी गूनौर या गौनेर गाँवके निवासी थे। ये श्रीकील्हदेवजीके शिष्य थे, श्रीदेवादासजीका जन्म तत्कालीन जयपुर राज्यके सींवाड़ ग्राममें हुआ था। इनकी माताका नाम पालीबाई था। ये चार भाई थे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातिसे बाँगड़ ब्राह्मण थे, किसानी-खेती करते थे। देवादासजीकी पत्नीका नाम रूपादेवी था। इनके नारायणदास, गोपीनाथ, कन्हैयादास और कल्याणदास नामक चार पुत्र थे। एक बार श्रीदेवादासजी खेतपर हल चला रहे थे। मध्याह्नमें इनकी माता छाँछ लेकर खेतपर जा रही थीं। दयालु प्रभु श्रीराम एक सन्तका रूप धारणकर माताजीको रास्तेमें मिले। सन्तसेवी स्वभाव था, अतः माताने प्रणाम करके कहा—बाबा! भोजन कर लो। भगवान्ने कहा—यह दूसरेके लिये ले जा रही हो, मैं नहीं खाऊँगा। माताने कहा—सब कुछ पहले आप सन्तोंके लिये है, उसके बाद दूसरेके लिये है। सप्रेम आग्रहको प्रभु टाल न सके। उन्होंने बाजरेकी रोटी और राबड़ी (महेरी) खायी। सन्तुष्ट होकर उन्होंने कहा—माताजी! इस गाँवका अनिष्ट होनेवाला है, अतः आप देवादाससे कह दें और शीघ्र इस गाँवको छोड़ दें। बैलगाड़ी-छकड़ोंमें अपना सामान लादकर इस गाँवसे प्रस्थान कर दें और जहाँ गाड़ीका जुवाँ टूट जाय, वहीं निवास करें। ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये।

माताने खेतपर आकर विलम्बका कारण और सन्त-प्रभुका आदेश देवादासको सुनाया। देवादासजी हल छोड़कर सन्त-दर्शनके लिये व्याकुल होकर दौड़े। भोजन-स्थलपर भोजन-चिह्न मिले, सन्तको न पाकर रोने लगे। इन्हें अति अधीर देखकर भगवान् वहीं प्रकट हो गये। देवादासजीने चरणोंमें लिपटकर विनती की। तब भगवान्ने कहा—तुम सपरिवार इस गाँवसे प्रस्थान करो, जहाँ जुवाँ टूटेगा, वहीं मेरी एक श्रीमूर्ति तुमको मिलेगी। उसीकी तुम सर्वदा पूजा करना, मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ। ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये। ये गाँव छोड़कर सपरिवार जाने लगे तो लोगोंने बहुत मना किया, पर आप नहीं माने, चले गये। उसी रातको डाकुओंने आकर गाँवको घेरकर लूटा, घरोंको जलाया और लोगोंको मारा। गौनेर आते-आते जुवाँ टूट गया। सभीने उस स्थानपर श्रद्धासहित दण्डवत् प्रणाम किया और भूमिको खोदा तो श्रीजगदीशरूप श्रीप्रभुका विग्रह मिला। बड़ी प्रसन्नतासे अभिषेक और पूजन हुआ। जमींदार ठाकुरोंने श्रीमूर्तिको अपनी भूमिमें मिलनेके कारण अपनी कहा और छीन ले गये। रातको स्वप्नमें भगवान्ने आदेश दिया कि मुझे मेरे भक्तके पास पहुँचाओ और उनकी तुम लोग सेवा करो, वे मेरी सेवा करेंगे। ऐसा न करोगे तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। प्रातःकाल होते ही ठाकुरोंने मूर्ति दे दी। एक चबूतरेपर पधराकर देवादासजी सेवा करने लगे। तभीसे पण्डा यह उनके नामका विशेषण बन गया।

भगवान्ने बाजरेकी रोटी खायी थी, उसे स्मरणकर एक दिन उन्होंने श्रीदेवादासजीको एक मुट्ठी बाजरा दिया और कहा कि इसे खेतमें बो दो। इन्होंने उसे बोया तो बारह मन बाजरा हुआ। भगवान्ने कहा—इसे कोठीमें डाल दो और नीचेके छेदसे निकालकर खर्च करो। यह अक्षय होगा, इसीसे मेरी सेवा और मन्दिरका निर्माण करो। मन्दिर बनने लगा, मजदूर काम करते, सायंकालको मजदूरीमें बाजरा दिया जाता, परंतु नित्य एक मजदूर मजदूरी लेते समय कम हो जाता। अन्तमें श्रीपण्डाजीको अनुभव हुआ कि स्वयं भगवान् भी मजदूर बनकर काम करते हैं। विशाल मन्दिर बन गया, प्रभुकी स्थापना हो गयी।

एक बार दिल्लीका बादशाह ख्वाजापीरका दर्शन करने अजमेर जा रहा था। गौनेर होकर उसकी सवारी निकली। बादशाहने मन्दिरकी प्रशंसा सुनी तो पण्डाजीसे बोला कि कुछ करामात दिखाओ। आपने साफ इनकार किया और कहा—सेवाको छोड़कर और कुछ करामात मुझमें नहीं है। बादशाहने मन्दिरकी बुर्जको तोड़नेका आदेश दे दिया। तोड़नेवालोंसे सामर्थ्याके ठाकुरोंने और इनके पुत्र कल्याणदासने युद्ध किया। मन्दिर नहीं तोड़ने दिया। इस युद्धमें कल्याणदास वीरगतिको प्राप्त हुए। बादशाह स्वयं मन्दिरमें आया तो उसको वहीं ख्वाजापीर और मक्का-मदीना के दर्शन हुए। बड़ी देरतक बादशाह बेसुध रहा, अन्तमें सावधान होकर उसने क्षमा-प्रार्थना की और ८७० बीघा जमीनका पट्टा श्रीठाकुरजीको दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअग्रदेवजीके शिष्य

जंगी प्रसिध प्रयाग बिनोदि पूरन बनवारी।
नरसिंह मल भगवान दिवाकर दृढ़ ब्रतधारी॥
कोमलहृदय किसोर जगत जगनाथ सलूधौ।
औरौ अनुग उदार खेम खीची धरमधीर लघु ऊधौ॥
त्रिबिध ताप मोचन सबै सौरभ प्रभु जिन सिर भुजा।
(श्री) अग्र अनुग्रह तें भए, सिष्य सबै धर्म कि धुजा॥ १५०॥

श्रीस्वामी अग्रदेवाचार्यजीके अनुग्रहसे ये सब शिष्य परमधर्मकी ध्वजा हुए। उनके नाम हैं—श्रीजंगीजी, प्रसिद्ध सन्त श्रीप्रयागदासजी, श्रीविनोदीजी, श्रीपूरनदासजी, श्रीबनवारीदासजी, श्रीनरसिंहदासजी, भक्तवर श्रीभगवान-दासजी, भगवद्भजनके नियमोंका दृढ़तासे पालन करने-वाले श्रीदिवाकरजी, कोमल एवं सरस हृदयवाले श्रीकिशोरदासजी, जगत्‌में जागनेवाले (विषयोंसे सावधान रहनेवाले) श्रीजगन्नाथजी, श्रीसलूधौजी, दूसरे उदार अनुचर (गुरुके अनुगामी) खीची वंशके खेमजी तथा धर्मका धैर्यपूर्वक पालन करनेवाले लघु उद्धवजी आदि। सौरभ प्रभु श्रीअग्रदेवजीने आशीर्वादात्मक अपना करकमल इनके सिरपर रखा, इससे ये शरणागत जीवोंको दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंसे मुक्त करनेवाले हुए॥ १५०॥

श्रीअग्रदेवजीके कुछ शिष्योंका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

श्रीजंगीजी

ये बड़े ही सिद्ध-प्रसिद्ध एवं भजनानन्दी सन्त थे। एक बार तीर्थाटन एवं भक्ति-प्रचारार्थ भ्रमण करते-करते एक विरक्त साधुके स्थानमें जाकर ठहरे। वे स्थानधारी सन्त चिन्तित थे। उसका कारण यह था कि उनका स्थान एक यवनके किलेके पास था। उसके अधिकारी किलेका विस्तार करना चाहते थे, अतः उन्होंने स्थानधारी सन्तसे कहा कि तुम इस स्थानको छोड़ दो। सन्त अभी अपनी इस चिन्ताको श्रीजंगीजीको सुना ही रहे थे कि इतनेमें ही बहुत-से यवन आ गये और उन्होंने कहा कि तुम फौरन यहाँसे हट जाओ। श्रीजंगीजीने उनसे कहा—तुम लोग जाकर अपने बादशाहसे कह दो कि वह हम लोगोंके रहने योग्य ऐसा ही दूसरा स्थान बनवाकर दे, तब हम इस स्थानको खाली करेंगे। मदान्ध यवनोंने श्रीजंगीजीकी बातपर ध्यान नहीं दिया और स्थानको तोड़ने-फोड़ने, गिराने-उजाड़ने लगे। तब श्रीजंगीजी अपना प्रभाव दिखानेको विवश हो गये। आप आसनसे उठे और किलेके पास जाकर आपने उसमें एक ऐसा चरण-प्रहार किया कि वह दीवाल धराशायी हो गयी। यह देखकर उन यवनोंके होश उड़ गये। उन्होंने जाकर बादशाहसे कहा। उसने आकर चरणोंमें गिरकर विनती एवं क्षमा-प्रार्थना की। भेंटमें श्रीजंगीजीको बहुत-सा धन दिया। आपने वह धन सन्त-सेवामें लगा दिया। इस प्रकार आपने स्थान एवं सन्तोंकी रक्षा की।

श्रीविनोदीजी

श्रीविनोदीदासजी महान् भगवद्भक्त थे। एक बार आप मानसी-पूजा कर रहे थे। मानसी-अर्चन पूर्ण करके आपने आँखें खोलीं। उस समय वहीं समीप बैठे एक भोले-भाले आपके शिष्यने पूछा—प्रभो! नेत्र बन्द करके इतनी देरतक आप क्या कर रहे थे? तब आपने कहा—मैं नेत्र मूँदकर भगवान् श्रीसीतारामजीकी मानसी-पूजा कर रहा था। यह सुनकर उस शिष्यने पुनः कहा—महाराजजी! पूजनके बाद तो चरणामृत-प्रसाद मिलता है, उसे तो आपने दिया ही नहीं। गुरुदेवने कहा—हाँ, तुमने ठीक कहा, लो, भगवान्‌का चरणामृत। ऐसा कहकर आपने समीप रखे जल-पात्रसे एक चुल्लू जल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे दिया। उसके पीते ही उसके हृदयमें भगवान् श्रीसीतारामजीका दिव्य प्रकाश छा गया। उसे सर्वत्र श्रीसीतारामजीके दर्शन होने लगे। श्रीविनोदीदासजीका ऐसा प्रभाव था।

श्रीटीलाजीका वंश

अंगज परमानंद दास जोगी जग जागै।
खरतर खेम उदार ध्यान (केसो) हरिजन अनुरागै॥
सस्फुट त्योला शब्द लोहकर बंस उजागर।
हरीदास कपि प्रेम सबै नवधा के आगर॥
अच्युत कुल सेवैं सदा दासन तन दसधा अघट।
भरतखंड भूधर सुमेर टीला लाहा (की) पद्धति प्रगट॥ १५१॥

संसारमें भरतखण्डरूपी सुमेरुपर्वतके शिखरके समान श्रीटीलाजी एवं उनके विरक्त शिष्य श्रीलाहाजीकी परम्परा बहुत प्रसिद्ध हुई। श्रीटीलाके पुत्र शिष्य श्रीपरमानन्ददासजी हुए; ये जगत्‌में जागते (सावधान रहते) हुए भजनपरायण रहे। श्रीजोगीदासजी, अति तीव्र वैराग्य और विवेकवाले श्रीखेमजी, उदार मनवाले श्रीध्यानदासजी, श्रीकेशवदासजी—सभी हरिभक्तोंके अनुरागी थे। स्पष्ट वाणीवाले श्रीत्यौलाजी लोहार वंशमें परम प्रसिद्ध थे। श्रीहरिदासजीका श्रीहनुमान्‌जीमें परम प्रेम था। श्रीटीलाजीकी परम्पराके सभी गृहस्थ-विरक्त सन्त नवधा भक्तिकी उपासनामें प्रवीण, वैष्णवोंकी सेवा और वैष्णवोंमें प्रेमाभक्ति करनेवाले हुए॥ १५१॥

इनमेंसे कुछ भक्तोंका चरित संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीटीलाजी

श्रीटीलाजी महान् गो-भक्त थे, एक बार वे गोचारण करते हुए वनमें ही भजन करने लगे। इसी बीच एक महान् सिद्ध-सन्त पधारे और बोले कि 'मुझे दूध पिलाओ।' आपने सन्तको भगवन्तके तुल्य मानकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और कहा—हे श्रीरामजी महाराज! आप कृपा करके थोड़ी देर इस स्थानपर ही विराजें, मैं अभी दूध लाता हूँ। सन्तने कहा—कहीं लेने मत जाओ, उस गायको दुहकर ले आओ। श्रीटीलाजीने कहा—भगवन्! यह गाय तो बाँझ है। पुनः सन्तने कहा—तुम जाकर देखो तो सही, बिना देखे ही क्यों इनकार करते हो। तब श्रीटीलाजीने जाकर देखा तो उसके स्तन दुग्धयुक्त दिखायी पड़े। हाथ लगाते ही दुग्धधारा प्रवाहित हो चली। आपने आश्चर्यचकित होकर दूध दुहकर सन्तको दिया। सन्तने दुग्धपान किया और शेष थोड़ा-सा प्रसाद टीलाजीको भी उन्होंने दिया। उसे पीते ही टीलाजीको सब सिद्धियाँ प्राप्त हो गयीं। श्रीटीलाजी तो विभोर हो गये और सन्त-भगवान् अन्तर्धान हो गये। वस्तुतः इस रूपसे श्रीपयहारीजीने ही आपपर कृपा की थी। कालान्तरमें पुनः सन्तोंकी प्रेरणासे आकर इन्हें दीक्षा भी दी।

श्रीटीलाजीकी गृहस्थ एवं विरक्त दोनों परम्पराएँ प्राप्त होती हैं, दोनोंमें महान् सिद्ध सन्त हुए हैं। श्रीटीलाजीका जन्म खाटू खण्डेलाके पास कालूड़ा गाँवमें हुआ। ये परम प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध जोशी गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पुत्र श्रीपरमानन्ददासजीका जन्म भी वहीं हुआ। उनके एक पुत्री भी थी, जिसका नाम लाड़ाबाई था। उसके पतिदेव श्रीखेमजी भी महान् भक्त थे। दोनों ही सिद्ध भक्त थे, दम्पतीने चक्रतीर्थ गाँवमें रहकर भजन एवं भक्ति-प्रचार किया। श्रीटीलाजीकी भक्तिके अतुल प्रभावसे उनके पुत्र श्रीपरमानन्ददासजी एवं उनके चार पुत्र १. जोगीदास, २. हरिदास, ३. ध्यानदास, ४. केशवदासजी हुए। ये सब बड़े सन्तसेवी एवं भगवत्प्रेमी हुए। मनोहरपुराके राव लूणकरणजीने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीटीलाजीकी भक्ति एवं सन्त-सेवासे प्रभावित होकर वि० सं० १६०२ में इनको ४०० बीघा भूमि भेंट की। श्रीटीलाजीके पौत्र श्रीकेशवदासजीका जन्म यहीं खोरीमें हुआ था। इनके पिता यहीं आ गये थे। खोरी गाँव जयपुर राज्यमें शाहपुराके पास है। यहींपर श्रीपरमानन्ददासजीकी छतरी है। भावुक भक्त वहाँ पहुँचकर दर्शन-प्रणाम करके अपनेको कृतकृत्य मानते हैं। श्रीजोगीदासजीने खेलणा ग्राममें अपना एक मन्दिर बनाया। इनके चमत्कारोंसे प्रभावित होकर बादशाहने इन्हें जागीर दी।

श्रीलाहाजी

श्रीलाहाजी श्रीटीलाजीके विरक्त शिष्य थे। ये खाती (बढ़ई) जातिमें अवतीर्ण हुए थे। श्रीटीलाजी गुरु-आज्ञासे नित्य मानसी-सेवा किया करते थे। आपने लाहाजीको दीक्षा देकर इन्हें भी मानसी-सेवाकी विधि बतायी। गुरु-कृपासे श्रीलाहाजीकी भी मानसी-सेवा सिद्ध हो गयी। एक बार श्रीटीलाजी मन्दिरमें बैठकर मानसी-पूजा कर रहे थे। बाहर बैठे श्रीलाहाजी भी ध्यानमें अपने गुरुदेवकी मानसी-सेवाको देख रहे थे। इसी बीच एक सेवक आया और उसने लाहाजीसे बार-बार पूछा कि बताओ, श्रीगुरुमहाराज कहाँ हैं? लाहाजीने डाँटकर कहा—'यहाँ बताऊँ कि वहाँ बताऊँ?' कुछ देर बाद उसको दूसरे शिष्योंने बताया कि जाकर मन्दिरमें दर्शन करो। तब उसने जाकर मन्दिरमें दर्शन किया और श्रीलाहाजीकी शिकायत की। श्रीटीलाजीने श्रीलाहाजीको बुलवाया और पूछा कि तुमने इनके पूछनेपर ठीक उत्तर न देकर अशिष्ट व्यवहार क्यों किया? श्रीलाहाजीने कहा—'आप उस समय शरीरसे तो मन्दिरमें आसनपर विराजमान थे और मनसे गौशालामें थे।' तब मैं आपको कहाँ बताता? इस रहस्यकी बातको सुनकर श्रीटीलाजी बहुत प्रसन्न हुए। श्रीलाहाजीको छातीसे लगाकर इन्हें शुभाशीष प्रदान करके कहा कि—तुम्हारी बात सत्य है। सेवकने सुना तो उसे भी श्रीलाहाजीमें अपार श्रद्धा हुई।

श्रीपरमानन्ददासजी

श्रीपरमानन्ददासजी श्रीटीलाजी महाराजके पुत्र थे। आपने सन्तोंकी सेवा बहुत अच्छी प्रकारसे की। आप योगकी युक्तियोंसे सम्पन्न थे। सर्वथा चित्तसे श्रीसीतारामजीका चिन्तन करते रहते थे। एक बार अकाल पड़ा, लोग भूखों मरने लगे और विवश होकर गाँव छोड़कर भाग चले। तब आपने सबको रोका और कहा कि आपके गाँवमें ही अनाजका एक बहुत बड़ा भण्डार अमुक स्थानपर है, उसमेंसे निकाल-निकालकर सभी लोग सानन्द खायें। ग्रामवासियोंने कहा—महाराज! हम लोगोंने वहाँ देख लिया। वह भण्डार समाप्त हो गया, अब वहाँ एक दाना भी नहीं है। आपने कहा—तुम लोग बिना देखे पहले ही क्यों मना कर रहे हो, जाकर देखो। सभी लोगोंने निर्दिष्ट स्थानपर जाकर भण्डारको खोला तो उसमें सुन्दर धान भरे हुए थे। आश्चर्यचकित होकर सभीने श्रीपरमानन्दजीके चरणोंमें सप्रेम बारम्बार नमन किया। आपका पवित्र सुयश सर्वत्र व्याप्त हो गया। लोगोंने उसमेंसे धान निकाल-निकालकर खाये। इस प्रकार आपने दया करके सभीके प्राणोंकी रक्षा की। इससे सभीमें भक्ति स्थिर हुई।

श्रीत्यौलाजी

आप लोहार जातिमें उत्पन्न परम श्रीराम-भक्त थे। आप सदा सन्त-सेवामें लगे ही रहते थे। घोड़ोंकी टापोंमें नाल जड़नेमें आप अत्यन्त प्रवीण थे। एक बार उस नगरके मालिक सरदारने आपको नाल जड़नेके लिये बुलाया। आप सन्त-सेवामें दत्तचित्त थे, अतः सरदारके बुलानेपर भी नहीं गये। जब चार बार दूतोंकी बात आपने नहीं सुनी, तब बादशाहसे लोगोंने इनकी शिकायत की। इसपर रुष्ट होकर बादशाहने आदेश दिया कि 'त्यौलाको पकड़कर लाओ और उसे ऐसी मार लगाओ कि वह हा-हा खाने लगे।' इसी समय श्रीरघुनाथजीने त्यौलाका रूप धारण किया और बादशाहके पास पहुँचे और बोले कि—मैं भक्त-भगवत्सेवामें व्यस्त था। अवकाश न मिलनेके कारण विलम्ब हुआ। ऐसे मधुर शब्दोंसे प्रभुने बादशाहके रोषको शान्त किया और घोड़ोंके पैरोंमें नालें जड़ीं। पश्चात् अपने श्रीधामको चले गये। श्रीत्यौलाजीको बादशाहकी आज्ञाका ध्यान आया तो आप राजद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचे। बादशाहने कहा—अभी-अभी आप नाल जड़कर गये हैं, पुनः कैसे आये? आपने कहा—मैं तो अभी आ ही रहा हूँ। यह सुनकर बादशाहने समझ लिया कि इनके बदले प्रभुने आकर दर्शन दिया। धन्य है श्रीत्यौलाजी आपकी भक्ति—ऐसा कहकर बादशाह त्यौलाजीके चरणोंमें गिर पड़ा।

श्रीकान्हरजी

चारि बरन आश्रम रंक राजा अन पावै।
भक्तनि को बहुमान बिमुख कोऊ नहिं जावैं॥
बीरी चंदन बसन कृष्न कीरतन बरषै।
प्रभु के भूषन देय महामन अतिसय हरषै॥
बीठल सुत बिमल्यो फिरै दास चरन रज सिर धरै।
मधुपुरी महोछौ मंगलरूप कान्हर कैसो को करै॥ १५२॥

मथुरापुरीमें जैसा मंगलमय महोत्सव श्रीकान्हरजी करते थे। वैसा महोत्सव उन्हें छोड़कर और कौन कर सकता है अर्थात् कोई नहीं कर सकता। इनके महान् महोत्सवोंमें चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके लोग अन्न-प्रसाद पाते थे। भक्तोंका बहुत अधिक सम्मान होता था। इनके महोत्सवोंमें आकर कोई भी निराश एवं दुःखी होकर नहीं लौटता था। अखण्ड नाम-संकीर्तनकी झड़ी लगी रहती थी। उसमें बीरी, चन्दन, वस्त्र और आभूषणादिकी वर्षा करते थे। परम उदार श्रीकान्हरजी नाम-गुणका कीर्तन करनेवाले समाजियोंको भगवान्के आभूषणतक न्यौछावर कर देते थे और देकर बहुत प्रसन्न होते थे। उमंगसे भरकर श्रीविट्ठलजीके सुपुत्र इन उत्सवोंमें इतस्ततः सभी भक्तोंके समीप जा-जाकर उनके श्रीचरणोंकी रजको अपने मस्तकपर धारण करते थे॥ १५२॥

श्रीनीवाजी

आवहिं दास अनेक उठि सुआदर करि लीजै।
चरन धोय दंडौत सदन में डेरा दीजै॥
ठौर ठौर हरिकथा हृदय अति हरिजन भावैं।
मधुर बचन मुँह लाय बिबिध भांतिन्ह जु लड़ावैं॥
सावधान सेवा करै निर्दूषन रति चेतसी।
भक्तनि सों कलिजुग भले निबही 'निंबा' खेतसी॥ १५३॥

श्रीनीवाजी और श्रीखेतसी (श्रीखेतसिंह)—इन दोनोंने इस कलियुगमें भी भक्तोंके साथ भली प्रकार वैसा ही प्रेम-परिपूर्ण व्यवहार किया, जैसा कि किसान अपने खेतोंसे करता है। प्रायः नित्य ही इनके घरपर भगवद्भक्त आया ही करते थे। भक्तोंके आते ही उठकर आप उनका स्वागत-सत्कार करते थे। उनके चरणोंको धोकर चरणामृत लेते, साष्टांग दण्डवत्प्रणाम करते, फिर घरके भीतर ले जाकर उनका आसन लगवाते। आप भगवद्भक्तोंको हृदयसे प्यार करते थे और जहाँ-तहाँ कथा-कीर्तनका आयोजन करते थे। मुखसे श्रद्धा-भक्तियुक्त मधुरवचनोंको कहकर अनेक प्रकारसे भक्तोंको लाड़-प्यार करते थे। हृदयमें दोषरहित निष्काम-निष्कपट प्रेम था। अतः सर्वदा सावधान होकर भक्त और भगवन्तकी सेवा करते थे॥ १५३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीतूँवर भगवानजी

यह अचरज भयौ एक खाँड़ घृत मैदा बरषै।
रजत रुक्म की रेल सृष्टि सबही मन हरषै॥
भोजन रास बिलास कृष्न कीरतन कीनो।
भक्तनि को बहुमान दान सबही को दीनो॥
कीरति कीनी भीमसुत (सुनि) भूप मनोरथ आन के।
बसन बढ़े कुंतीबधू त्यों तूँबर भगवान के॥ १५४॥

भक्तवर श्रीभगवानदासजी तूँवरके महोत्सवमें सभी वस्तुएँ इस प्रकार बढ़ीं, जैसे दु:शासनके द्वारा खींचे जानेपर श्रीद्रौपदीजीके वस्त्र बढ़े थे। आपके एक महोत्सवमें महान् आश्चर्य यह हुआ कि खाँड़, घृत, मैदा आदिकी खूब वर्षा हुई। सोने और चाँदीके सिक्कोंकी भरमार हो गयी। आशासे अधिक दान-मान प्राप्तकर सृष्टिके सभी प्राणी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उस उत्सवमें साधु-ब्राह्मण और दीन-गरीबोंको खूब भोजन कराया गया। रासलीलाएँ हुईं और कई दिनतक अखण्ड श्रीहरिनाम-संकीर्तन हुआ। भक्तोंका विशेष सम्मान हुआ और सभी लोगोंको दान-मानसे सन्तुष्ट किया गया। श्रीभीमजीके पुत्र भगवानदासजीने ऐसी कीर्ति की कि उस उत्सवका समाचार सुनकर दूसरे राजा लोग भी इच्छा करने लगे कि हम भी ऐसा उत्सव करें। पर वे मनोरथ करके ही रह गये। तूँवर श्रीभगवानदासजीका-सा महोत्सव कोई कर नहीं सका॥ १५४॥

श्रीतूँवर भगवानजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीभगवानदास तूँवर पाण्डुवंशी क्षत्रिय थे। उनका यह दृढ़ नियम था कि वर्षके बीतनेपर मथुरापुरी आते थे। वहाँ एक बहुत बड़ा महोत्सव करते, उसमें बहुत-सा सोना लुटाते थे। इस महोत्सवमें वे पहले साधु-सन्तोंको भोजन कराते, उन्हें वस्त्र पहनाते। उसके पश्चात् ब्राह्मणोंको बुलाकर उनका भी स्वागत-सत्कार करते। ब्राह्मणोंको यह अच्छा नहीं लगता, वे प्राय: मनमें नाराज रहते। भाग्यवश कोई ऐसा समय आ गया कि श्रीभगवानदासजीकी आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी। धनकी कमी आ गयी। ऐसी हालतमें भी आप अपने प्रणको पूरा करना चाहते थे, इसलिये मथुराजी आये। इनके मनमें विचार था कि इस बार छोटा उत्सव कराऊँगा। मथुराके जो (असाधु) ब्राह्मण लोग इनके उत्सवसे दु:खित होकर इनसे द्वेष करते थे, उन्हें सुख हुआ और लोभ बढ़ा। उन लोगोंने निश्चय किया कि अब ऐसा समय है कि हमलोग आपसमें ही सम्पूर्ण धन बाँट लें और भगवानदासकी निन्दा करवा दें।

श्रीभगवानदासजी तूँवरने ब्राह्मणोंको बुलाया और जो कुछ अपने साथ धन लाये थे, उसे बड़े आदर-सम्मानके साथ ब्राह्मणोंको सौंप दिया। उन लोगोंने धनकी गाँठ बाँधकर अपने पास रख लिया। तब श्रीभगवानदासजीने हाथ जोड़कर विनती सुनायी। 'मेरे पास बस इतना ही धन है, इससे आप चाहे साधु-सन्तोंका भण्डारा कर दें, चाहे रासलीला करवा दें और चाहे स्वयं आपलोग भोजन कर लें। जिस प्रकार आपको सुख हो, आपलोग वही काम कीजिये।' ब्राह्मणोंने सीधा-सामान एक कोठेमें रख दिया और जो नगद धन था, उसे थैलियोंमें भर लिया। ब्राह्मणोंको बुलाकर देने लगे। एक-एकको बीस-बीस गुना सामान देने लगे। उनके मनमें था कि किसी प्रकार सीधा-सामान कम पड़ जाय और भगवानदासकी निन्दा हो जाय, परंतु भगवान्‌की कृपासे यह लीला (द्रौपदी चीर-हरणकी तरह) हो रही थी कि वे जितना देते थे, उससे सौ गुना सीधा-सामान और थैलीमें धन बढ़ता जाता था। देते-देते और लेते-लेते लोग थक गये। भक्त और भगवान्‌की अपार महिमाका सबको प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बीतत बरस मास आवैं 'मधुपुरी', नेम प्रेम सों महोछौ रास हेम ही लुटाइयै।
सन्तनि जिवांय, नाना पट पहिराय, पाछे द्विजन बुलाय, कछु पूजैं, पै न भाइयै॥
आयौ कोऊ काल, धन माल जा बिहाल भए, चाहैं पन पार्‍यौ आए 'अलप कराइयै'।
रहे बिप्र दूषि सुनि भयौ सुख भूख बढ़ी, आयौ यों समाज करौ ख्वारी मन आइयै॥ ५७६॥
अति सनमान कियौ, ल्याए जोई सौंपि दियौ, लियौ गांठ बांधि तब बिनती सुनाइयै।
सन्तनि जिंवायो, भावै रास लै करावौ, भावै जेंवौ सुख पावौं, कीजै मन भाइयै॥
सीधौ लाय कोठे धर्‍यो, रोक हो, सो थैली भर्‍यो द्विजन बुलाय देत किहूं निघटाइयै।
जितनौ निकासै ताते सौगुनी बढ़त और, एक एक ठौर बीस गुनो दै पठाइयै॥ ५७७॥

श्रीजसवन्तजी

भक्तनि सौं अति भाव निरंतर अंतर नाहीं।
कर जोरे इक पाय मुदित मन आग्या माहीं॥
श्रीबृंदाबन बास कुंज क्रीडा रुचि भावै।
राधाबल्लभ लाल नित्य प्रति ताहि लड़ावै॥
परम धरम नवधा प्रधान सदन साँच निधि प्रेम जड़।
जसवंत भक्ति जैमाल की रूड़ा राखी राठवड़॥ १५५॥

राठौरवंशी श्रीजसवन्तसिंहजीने अपने बड़े भाई श्रीजयमालसिंहजीकी भक्ति करनेकी जो पद्धति थी, उसे यथावत् सुदृढ़ रखा। आपका भगवद्भक्तोंमें निरन्तर निष्कपट परम प्रेम था। भक्तोंकी आज्ञाका पालन करनेके लिये आप उनके सामने प्रसन्न मनसे हाथ जोड़े एक पैरसे खड़े रहते थे। श्रीधामवृन्दावनविहारिणी-विहारीजीकी निकुंज-लीलामें आपका बड़ा भारी प्रेम था। इष्टदेव श्रीराधावल्लभलालको आप नित्य प्रति सप्रेम सभी सेवाएँ समर्पित करते थे। आप वैष्णवधर्म और नवधा भक्तिके प्रधान सदन थे। परम धर्म और नवधा भक्तिरूपी सच्ची सम्पत्तिका आपने अपने हृदयमें संचय कर रखा था। भगवत्कथा-कीर्तन एवं इष्टका स्मरणकर आप प्रेममें विभोर होकर जड़वत् (अचल) हो जाते थे॥ १५५॥

श्रीहरिदासजी

अमित महागुन गोप्य सार बित सोई जानै।
देखत को तुलाधार दूर आसै उनमानै॥
देय दमामौ पैज बिदित बृन्दाबन पायो।
राधाबल्लभ भजन प्रगट परताप दिखायो॥
परम धरम साधन सुदृढ़ कलिजुग कामधेनु में गन्यो।
हरिदास भक्तनि हित धनि जननी एकै जन्यो॥ १५६॥

उस माताको धन्यवाद है, जिसने भक्तोंसे प्रेम एवं उनकी सेवा करनेके लिये अतिश्रेष्ठ पुत्र हरिदासजीको जन्म दिया। श्रीहरिदासजीमें परम श्रेष्ठ अनेक ऐसे शुभ गुण थे, जो गोपनीय थे, जिन्हें उन्होंने छिपा रखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके गुणोंको कोई प्रेमी ही समझ और जान सकता था। कहनेको तो आप वैश्य जातिके थे; परंतु जहाँ सबकी पहुँच नहीं है, ऐसे गूढ़तम रहस्योंका आप अनुमान (साक्षात्कार) कर लेते थे। आपने डंकेकी चोटपर अपनी यह प्रतिज्ञा घोषित कर दी थी कि मैं यद्यपि शरीरसे काशीमें रह रहा हूँ, परंतु व्रजधाममें शरीर छोड़कर श्रीधामकी रजको (तथा नित्यवृन्दावनधामको) प्राप्त करूँगा। इस अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार आपने श्रीवृन्दावनधामको प्राप्त किया। आपने श्रीराधावल्लभजीके अनन्य भजनके अद्भुत प्रभावको प्रकट करके सबको दिखा दिया। परम वैष्णवधर्मके साधनमें आप सदा सुदृढ़ रहे, उससे कभी विचलित नहीं हुए। इस कराल कलिकालमें मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले कामधेनुके समान जो महान् भक्त हुए, उनमें आपकी गणना हुई॥ १५६॥

श्रीहरिदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

वैश्यकुलमें उत्पन्न श्रीहरिदासजीका निवास-स्थान काशीपुरीके निकट था। इनकी यह प्रतिज्ञा थी कि मैं व्रज-वृन्दावनमें ही शरीरको छोड़ूँगा। अन्तमें ऐसा हुआ कि इन्हें बड़े वेगसे ज्वर चढ़ आया, नाड़ी छूट गयी। क्रमशः तीन वैद्य आये और सबने यही कहा कि इनकी असाध्य अवस्था है। इनकी अब कोई चिकित्सा नहीं है। इस अवस्थामें भाव-प्रवीण श्रीहरिदासजीने कहा कि 'मेरा मन व्रज-वृन्दावनधामके प्रेमरंगमें मग्न हो रहा है।' इनकी चार पुत्रियाँ थीं, उन्हें चार सन्तोंको देकर बोले कि 'आप इन्हें स्वीकार कीजिये और हमको डोलीमें रखकर श्रीवृन्दावन पहुँचा दीजिये। मेरे नेत्रोंके सामने वहाँका ध्यान बार-बार आ रहा है।' चारों सन्त इन्हें लेकर चले। ये श्रीराधावल्लभजीके नामका संकीर्तन कर रहे थे। गाँवके सभी लोग इन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे और कह रहे थे कि ये किसी भी प्रकारसे वृन्दावनतक नहीं पहुँच सकते हैं।

श्रीवृन्दावनधामके आते-आते मार्गमें ही श्रीहरिदासजीका शरीर छूट गया, परंतु भगवान् श्यामसुन्दरने आपके प्रणको सत्य कर दिया। दिव्य श्रीवृन्दावनधामका प्रत्यक्ष दर्शन करा दिया और दिव्य शरीर देकर इन्हें श्रीवृन्दावन पहुँचा दिया। श्रीहरिदासजीने श्रीवृन्दावन पहुँचकर अपने इष्टदेव श्रीराधावल्लभलालजीके तथा अपने श्रीगुरुदेव भगवान् श्रीवनचन्दजीके सप्रेम दर्शन किये। चीरघाटपर जाकर श्रीयमुनाजीमें स्नान किया और अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। जो लोग इन्हें लेकर आ रहे थे, वे लोग शोक करते हुए, रोते हुए, पीछेसे आये और उन लोगोंने श्रीहरिदासजीके गुरुदेवसे तथा सन्तोंसे कहा कि 'हरिदासजीको हमलोग श्रीवृन्दावनको ला रहे थे, परंतु दुःखकी बात है मार्गमें ही उनका शरीर छूट गया।' श्रीवृन्दावनके सभी सन्तोंने कहा कि 'वे तो उसी दिन यहाँ आ गये थे।' इस भक्त-चरित्रमें भक्तिका प्रभाव प्रत्यक्ष प्रकट है। भगवान्की कृपाके बिना इस प्रकार दिव्य-देहकी तथा श्रीवृन्दावनकी प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

हरिदास बनिक, सो कासी ढिग बास जाकौ, ताकौ यह पन तन त्यागौ ब्रज भूमहीं।
भयौ ज्वर नाड़ी छीन, छोड़ि गए बैद तीन, बोल्यौ यों प्रबीन वृन्दावन रस झूमहीं॥
बेटी चरि सन्तनि कौ दई अङ्गीकार करौ, धरौ डोली मांझ मोको ध्यान दृग घूमहीं।
चले सावधान राधावल्लभ कौं गान करै, करै अचरज लोग परी गांव धूमहीं॥ ५७८॥
आवत ही मग मांझ छूटि गयौ तन, पन सांचौ कियौ स्याम, वन प्रगट दिखायौ है।
आय दरसन कियौ, इष्ट गुरु प्रेम भरि नेम पर्‌यौ पूरौ, जाय चीरघाट न्हायौ है॥
पाछें आए लोग, सोक करत भरत नैन बैन सब कही, कही 'ताही दिन आयौ है'।
भक्ति कौ प्रभाव यामें भाव और आनौ जिनि, बिन हरिकृपा यह कैसे जात पायौ है॥ ५७९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगोपालजी तथा श्रीविष्णुदासजी

बाबोली गोपाल गुननि गंभीर गुना रट।
दच्छिन दिसि बिष्णुदास गाँव कासीर भजन भट॥
भक्तनि सों यह भाय भजैं गुरु गोबिंद जैसे।
तिलक दाम आधीन सुबर संतनि प्रति तैसे॥
अच्युत कुल पन एकरस निबह्यो ज्यौं श्रीमुख गदित।
भक्ति भार जूड़ै जुगल धर्म धुरंधर जग बिदित॥ १५७॥

अनन्त सद्गुणोंसे युक्त, स्वभावसे परम गम्भीर और हरिगुणगायक भक्तवर श्रीगोपालज़ी 'बाँबोली' ग्रामके निवासी थे। भजन-भावमें शूरवीर श्रीविष्णुदासजी दक्षिण दिशामें 'काशीर' गाँवके रहनेवाले थे। ये दोनों सन्तों-भक्तोंको गुरु-गोविन्दके समान मानकर उनकी सेवा करते थे। तिलक-कण्ठीधारीमात्रकी आधीनता और सेवा श्रेष्ठ सन्तोंके समान करते थे। भगवान्ने अपने श्रीमुखसे अपनेसे भी अधिक अपने भक्तोंको जैसे पूज्य कहा है, उसीके अनुसार इन्होंने प्रतिज्ञापूर्वक सर्वदा अच्युतगोत्रीय सन्तोंकी सेवा की। इस प्रकार ये दोनों सन्त भक्तिभावके भारको वहन करनेमें श्रेष्ठ, वैष्णव-धर्मधुरन्धर सकल संसारमें प्रसिद्ध हुए॥ १५७॥

श्रीगोपालजी और श्रीविष्णुदासजीके सम्बन्धमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगोपालदासजी और श्रीविष्णुदासजी दोनों गुरुभाई थे। साधु-सेवामें दोनों गुरुभाइयोंका हार्दिक परम अनुराग था। ये दोनों साधु-सन्तोंको ऐसे सुख देनेवाले थे कि इन्होंने एक नयी रीति चलायी। निमन्त्रण पाकर जिस किसी महोत्सवमें आप जाते, वहाँ बड़े उल्लासके साथ गाड़ीमें भरकर घी, चीनी और आटा आदि सामान ले जाते तथा कोठारीसे मिलकर गुप-चुप सामानमें अपना सामान मिलवा देते। किसीको इसका पता न चलता। ऐसा करनेमें आपका तात्पर्य यह होता था कि महोत्सवमें किसी प्रकारकी कमी न पड़े और सन्तकी निन्दा न हो। इस भेदको कोई भी जान नहीं पाता था। महोत्सवके बाद सभीको बड़ा सुख होता था कि कोठार-भण्डारमें किसी वस्तुकी कोई कमी नहीं हुई। इन दोनों भक्तोंके गुरुदेव बड़े सिद्ध तथा प्रसिद्ध महात्मा थे। एक दिन इन दोनोंने हाथ जोड़कर विनती करते हुए अपने गुरुदेवसे कहा—भगवन्! बहुत दिनोंसे हमारे मनमें ऐसी उमंग उठ रही है कि (सिद्धसन्तोंके दर्शनार्थ) एक महा-महोत्सव हो। उसमें आपकी कृपा और आज्ञाकी आवश्यकता है। श्रीगुरुजी बोले—'यदि ऐसा विचार है तो शीघ्रातिशीघ्र तैयारी करो।' वे ऐसे सिद्ध थे कि उन्होंने वहींसे बैठे-बैठे चारों ओर जल फेंका और सभी साधु-सन्तोंको न्यौता दे दिया। फिर उन्होंने दोनों शिष्योंसे कहा कि इस उत्सवमें महात्माओंकी भारी भीड़ इकट्ठी होगी, अतः उनके ठहरनेके लिये कुटियाँ (सुन्दर निवास-स्थान) बनवाओ। उत्सव प्रारम्भ होते ही चारों ओरसे सन्तजन पधारे। दोनों गुरु-भाइयोंने उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम और विनती की, फिर उन्हें आदरपूर्वक भोजन-प्रसाद पवाया और वस्त्र भेंटकर सब प्रकारसे प्रसन्न किया। इस प्रकार पाँच दिनोंतक सन्त-समूहके द्वारा अखण्ड कथा-कीर्तन होता रहा।

उत्सवकी समाप्ति होनेपर श्रीगुरुदेवने दोनों शिष्योंको आज्ञा दी कि 'कल प्रातःकाल सम्पूर्ण सन्त-मण्डलीकी परिक्रमा करने जाना। वहाँ परमानन्दस्वरूप श्रीनामदेवजीके दर्शन होंगे। वे उज्ज्वल वस्त्र धारण किये हुए प्रसन्न मनसे अकेले ही जा रहे होंगे। उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम करना। वे तुम्हें परम सिद्ध सन्त श्रीकबीरजीका दर्शन करा देंगे।' श्रीगुरुदेवकी आज्ञा पाकर प्रातःकाल होते ही दोनों गुरुभाई सन्तशालाकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदक्षिणा करने चले। पहले दिव्य शरीरधारी श्रीनामदेवजीके दर्शन हुए। उमंगके साथ दोनों उनके श्रीचरणोंमें लिपट गये। छुड़ानेसे भी चरणोंको नहीं छोड़ रहे थे, तब श्रीनामदेवजीने उन दोनोंसे कहा—जहाँ साधु-सन्तोंका अपमान होता है, वहाँ हमलोग कभी नहीं आते-जाते हैं और जहाँ उनका सम्मान होता है, वहाँ हमलोग आते-जाते हैं। हमने तुम्हारी सन्तोंमें प्रीति और सेवा करनेकी रीति देखी है, उससे हम बहुत प्रसन्न हुए। ऐसा कहकर श्रीनामदेवजीने दोनों भक्तोंको गलेसे लगा लिया। फिर कहा—'जाओ, आगे चलनेपर तुम्हें श्रीकबीरजी मिलेंगे।' जैसे ही ये दोनों आगे चले, तैसे ही इन्हें भक्तराज श्रीकबीरजीके दर्शन मिले। दोनोंने चरणोंमें पड़कर प्रणाम किया। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। हँसकर श्रीकबीरजी बोले—'कहो, अभी पीछे किसी सुखदायी सन्तके तुम्हें दर्शन हुए।' इन्होंने उत्तर दिया—'हाँ, महाराज! दर्शन हुए।' इसके पश्चात् श्रीकबीरजीने दोनोंका सम्मान किया। इस प्रकार इन दोनों गुरु-भाइयोंपर सन्तोंकी और गुरुदेवकी पूर्ण कृपा हुई।

श्रीप्रियादासजीने सन्त-सेवाकी इस महिमाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

रहैं गुरु भाई दोऊ, भाई साधु सेवा हिये, ऐसे सुखदाई, नई रीति लै चलाइयै।
जायँ जा महोछौ में बुलाए हुलसाए अंग संग गाड़ी सामा सो भण्डारी दे मिलाइयै॥
याकौ तातपर्य सन्त घटती न सही जात, बात वे न जाने, सुख मानै मन भाइयै।
बड़े गुरु सिद्ध जग महिमा प्रसिद्ध, बोले बिनै कर जोरि सोई कहिकै सुनाइयै॥ ५८०॥
चाहत महोछौ कियौ हुलसत हियौ नित, लियौ सुनि बोले करौ बेगि दै तयारिये।
चहुँदिशि डार्‌यौ नीर, कर्‌यौ न्यौतो ऐसे धीर, आवै बहु भीर सन्त, ठौरनि सँवारिये॥
आए हरि प्यारे, चारो खूँट तें निहारे नैन, जाय पगु धारे सीस बिनै लै उचारिये।
भोजन कराय दिन पांच लगि छाय रहे पट पहिराय सुख दियो अति भारिये॥ ५८१॥
आज्ञा गुरु दई 'भोर आवौ फिरि आस पास, महा सुख रासि नामदेवजू निहारियै।
उज्ज्वल बसन तन एकले प्रसन्न मन, चले जाति बेगि सीस पांयनि पै धारियै॥
बेई दें बताय 'श्रीकबीर' अति धीर साधु, चले दोऊ भाई परदक्षिना विचारियै।
प्रथम निरखि नाम हरखि लपटि पग लगि रहे छोड़त न बोले सुनौ धारियै॥ ५८२॥
साधु अपराध जहां होत तहां आवत न, होय सनमान सब सन्त तहीं आइयै।
देखि प्रीति रीति हम निपट प्रसन्न भए, लये उर लाय जावौ श्रीकबीर पाइयै॥
आगें जो निहारें भक्तराज दृग धारैं, चलीं बोले हँसि आप कोऊ मिल्यौ सुखदाइयै।
कह्यौ 'हां जू' मान दई भई कृपा पूरन यों, सेवा कौ प्रताप कहौ कहां लगि गाइयै॥ ५८३॥

श्रीकील्हदेवजीके शिष्यगण

आसकरन रिषिराज रूप भगवान भक्त गुरु।
चतुरदास जग अभै छाप छीतर जु चतुर बर॥
लाखै अद्‌भुत रायमल्ल खेम मनसा क्रम बाचा।
रसिक रायमल गोंदु देवा दामोदर हरि रँग राचा॥
सबै सुमंगल दास दृढ़ धर्म धुरंधर भजन भट।
कील्ह कृपा कीरति बिसद परम पारषद सिष प्रगट॥ १५८॥

श्रीकील्हदेवाचार्यजीकी कृपासे निर्मल कीर्तिवाले इनके सभी शिष्य भगवत्पार्षदोंके समान थे। राजर्षि श्रीआशकरणजी, श्रीरूपदासजी, गुरुभक्त श्रीभगवानदासजी, निर्भयकी छापवाले श्रीचतुरदासजी, चतुरशिरोमणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीछीतरजी, अद्भुत प्रभाववाले श्रीलाखैजी, मन-वाणी और कर्मसे परोपकारी श्रीरायमलजी, श्रीखेमदासजी, रसिक श्रीरायमलजी, श्रीगोंदुदासजी, श्रीदेवादासजी और हरिरंगमें रँगे श्रीदामोदरजी—ये सभी मंगलमय भगवान् श्रीरामके सच्चे सेवक, धर्मधुरन्धर और भजनमें वीर हुए॥ १५८॥

श्रीकील्हदेवजीके इन शिष्योंमेंसे कुछका परिचय संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीचतुरदासजी

श्रीचतुरदासजी सन्त एवं तीर्थदर्शनार्थ भ्रमण करते रहते थे। एक बार आप एक गाँवके समीप एक वृक्षके नीचे जाकर ठहरे। ग्रामवासियोंने आकर आपसे कहा—महाराज! यहाँ न ठहरकर आप किसी दूसरे स्थानपर ठहरें, यहाँ एक अत्यन्त प्रबल प्रेतका निवास है। आपने पूछा कि वह क्या करता है तो लोगोंने बताया कि यहाँ रहनेवालेको बड़ा कष्ट देता है। भैंसा, सिंह, हाथी आदि रूपोंको धारणकर डराता है और ऊपर ले जाकर फिर पटक देता है। इस तरह वह किसीको जिन्दा नहीं छोड़ता है, मार ही डालता है। श्रीचतुरदासजी श्रीरामजीके अनन्य भक्त थे, सर्वत्र सबमें अपने प्रभुको ही देखते थे, अतः निडर थे। इन्होंने वहीं आसन लगाया। रातमें प्रेतने इन्हें देखा तो इनके तेजसे भयभीत होकर इनसे दूर ही रहा। गाँवके चारों ओर चक्कर काटता और चिल्लाता रहा कि—यह जगह तो हमारी है, साधुबाबाने अपना आसन लगा लिया, अब हम कहाँ जायँ? लोगोंने उसका प्रलाप सुना। प्रातः आकर देखा तो श्रीचतुरदासजी अपने भजन-पूजनमें व्यस्त हैं। आपने कहा—अब यहाँ कभी किसीको प्रेत-बाधा न होगी।

श्रीरायमलजी

श्रीरायमलजीका तेज-प्रताप, करनी-करतूति सब कुछ अद्भुत था, अतः इनकी 'अद्भुत' छाप थी। इनके द्वारा अनेक चमत्कार हुए, जिनका साधुजन वर्णन करते हैं। सन्तोंकी सेवा आप बड़े सम्मानके साथ करते थे। एक बार आप ध्यान लगाकर श्रीसीतारामजीकी मानसी-सेवा कर रहे थे। होलीके दिन थे, उद्दण्ड प्रकृतिके कुछ लोग आकर इनपर भी धूल डालने लगे। कुछ देरतक तो आपने मौन रहकर सहन किया। पश्चात् इन्होंने मना किया कि बस, अब हो गया, मेरे भजनमें विघ्न न करो। इतनेपर भी जब लोग नहीं माने, तब आपने उन्हें शिक्षा देनेके लिये किंचित् क्रोध किया और कहा कि किसी सन्तपर फूल बरसाओगे तो तुम्हारे ऊपर भी फूल बरसेंगे और यदि धूल बरसाओगे तो धूल बरसेगी। इतना कहते ही उन लोगोंपर आकाशसे कंकड़ और धूल बरसने लगी। जहाँ गये वहाँ भी बरसती रही, तब वयोवृद्ध ग्रामवासियोंने सबको साथ ले जाकर श्रीरायमलजीसे क्षमा-याचना की, तब धूल बरसनी बन्द हुई। इस प्रकार आपने लोगोंको प्रभावितकर सबको भक्ति-पथका पथिक बनाया।

श्रीखेमदासजी

आप अपने गुरुदेव श्रीकील्हजीकी सेवा बड़ी निष्ठा और श्रद्धाके साथ करते थे। आपमें आलस्य और प्रमादका लेश न था। सर्वदा गुरु-सेवामें रुचि रखते, उसीमें सन्तुष्ट रहते और नित्य सीथ-प्रसाद लेते थे। जब श्रीकील्हदेवजीने स्वेच्छासे शरीरको त्यागकर साकेत-गमन किया। तब आपने उनका सीथ-प्रसाद रख लिया और नित्य उसका सेवन करते रहे। किसी समय वह गुम हो गया तो आपके मनमें बड़ा ही दुःख हुआ। आपने भोजन-पान बन्द कर दिया और अधीर होकर रोते-कलपते रहे। आपके सच्चे प्रेमको देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी श्रीकील्हदेवका शरीर धारण करके आये। दर्शन, प्रबोध और सीथ-प्रसाद देकर श्रीरामजीने इनके दुःखको दूर किया। इस प्रकार सच्ची गुरु-भक्तिसे आपको भगवान्‌के दर्शन मिले।

श्रीरूपजी

ये आमेरनरेश श्रीपृथ्वीराजजीके सुपुत्र थे। इनके विवेक और वैराग्यसे प्रभावित होकर लोग इन्हें 'वैरागीजी' कहने लगे। रूपजी वैरागी इस नामसे आप प्रसिद्ध हुए। इन्होंने किशनगढ़के उत्तरमें अपने नामपर एक नगर बसाया, जिसका नाम रूपनगर है। प्रसिद्ध भक्त श्रीभगवानदासजी और आशकरणजी आपके भतीजे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनाथभट्टजी

आगम निगम पुरान सार सास्त्रनि जु बिचार्‌यो।
ज्यों पारो दै पुटहि सबनि को सार उधार्‌यो॥
श्री रूप सनातन जीव भट्ट नारायन भाष्यो।
सो सर्बसु उर साँच जतन करि नीकें राख्यौ॥
फनी बंस गोपाल सुव रागा अनुगा को अयन।
रस रास उपासक भक्तराज नाथ भट्ट निर्मल बयन॥ १५९॥

फणीवंशमें श्रीगोपालदासजीके सुपुत्र श्रीनारायण-भट्टजीके शिष्य श्रीश्रीनाथभट्टजी रागानुगा भक्तिके भवन, शृंगाररसके उपासक थे, आपकी वाणी अत्यन्त निर्मल थी और आप भक्तोंमें श्रेष्ठ थे। आपने सभी वेद, पुराण, शास्त्रोंका गम्भीर अध्ययन-मनन करके उसका सार-तत्त्व उसी प्रकार निकाल लिया था, जैसे जड़ी एवं पारेका पुट देकर रसायनी ताँबेसे रसायन—सोना बना लेता है। गोस्वामी श्रीरूपजी, श्रीसनातनजी, श्रीजीवजी और श्रीनारायणभट्टजीने भक्तिके सिद्धान्तका जिस प्रकार निरूपण किया है, उस सम्पूर्ण रहस्यको शुद्ध और सत्य मानकर उसे यत्नपूर्वक आपने अपने हृदयमें धारण किया। पुनः योग्य पात्रोंमें उसे वितरित किया॥ १५९॥

श्रीकरमैतीजी

नस्वर पति रति त्यागि कृष्न पद सों रति जोरी।
सबै जगत की फाँसि तरकि तिनुका ज्यों तोरी॥
निरमल कुल काँथड़्या धन्य परसा जिहिं जाई।
बिदित बृन्दाबन बास संत मुख करत बड़ाई॥
संसार स्वाद सुख बांत करि फेर नहीं तिन तन चही।
कठिन काल कलिजुग्ग में करमैती निकलक रही॥ १६०॥

श्रीकरमैतीजी इस घोर कलिकालमें उत्पन्न होकर भी सर्वथा निष्कलंक रही। इन्होंने अपने शरीरके पतिके प्रति नश्वर प्रेमको छोड़कर आत्माके पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीचरणोंमें सच्चा प्रेम किया। अपने तर्कोंके द्वारा सोच-विचारकर संसारके सभी बन्धनोंको तोड़ डाला। निर्मल कुल काँथड़्या और उनके पिता श्रीपरशुरामजी धन्य हैं, जिन्होंने श्रीकरमैती-सरीखी भक्ता पुत्रीको जन्म दिया। सर्वविदित है कि श्रीकरमैतीजीने घरको छोड़कर श्रीवृन्दावनधाममें निवास किया। सन्तजन इनके त्याग, वैराग्य और भक्तिकी बड़ाई करते थे। इन्होंने सांसारिक विषयोंके भोगोंसे प्राप्त होनेवाले सभी सुखोंको वमनकी तरह त्याग दिया॥ १६०॥

श्रीकरमैतीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकरमैतीबाई शेखावत राजाके पुरोहित श्रीपरशुरामजीकी पुत्री थीं। इनका निवास-स्थान खँड़ेला (सीकर—राजस्थान) था। करोड़ों कामदेवोंसे भी अधिक मनोहर श्रीश्यामसुन्दर श्रीकरमैतीबाईके हृदयमें बस गये थे। इसलिये इन्हें घर और घरके काम-काज सब भूल गये थे। नित्य भगवान्‌की मानसी-सेवा करती थीं। जब ये ध्यान लगाकर बैठ जातीं तो कई प्रहर बैठे बीत जाते। इनके मन और बुद्धिकी वृत्ति सर्वदा श्रीकृष्णकी शोभामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पगी रहती थी। विवाह हो चुका था। उसके कुछ दिन बाद आपके पतिदेव गौना करानेके लिये आये। इससे इनके पिता-माताके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे बड़े चावके साथ वस्त्र और आभूषणोंका संग्रह करने लगे, परंतु गौनेकी चर्चा सुनकर श्रीकरमैतीजी बड़े सोच-विचारमें पड़ गयीं कि अब हमको क्या करना चाहिये? हड्डी और चमड़ेसे बना यह मानव-शरीर प्रेम करनेके योग्य नहीं है, अतः इसको त्याग देना चाहिये। पुनः श्रीकरमैतीजी अपने मनको समझाती हुई कहने लगीं—'अरे मन! अब तू मत सो, जाग जा। जागनेसे ही तेरे भीतरके मैल धुलेंगे। श्रीश्यामसुन्दरकी प्रीति ही सच्ची और सुख देनेवाली है। संसारमें प्रीति मिथ्या और दुःख देनेवाली है। यदि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको प्राप्त करनेकी चाह है तो लोक-लज्जाकी क्या आवश्यकता?' इस प्रकार श्रीकरमैतीजीने मनसे पतिदेवके साथ न जानेका निश्चय किया, क्योंकि ये पूर्णरूपसे कृष्णानुरागके रंगमें रँगी हुई थीं। इनके साथ वही एक श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ही थे और कोई न था। श्रीकरमैतीजीकी बुद्धि भक्तिरससे सरस हो गयी थी, अतः वे सबके सो जानेपर आधी-रातको घरसे निकलीं। सबेरा होते ही गाँव-घरमें सर्वत्र शोर मच गया कि 'करमैतीका पता नहीं है।' पिता-माताको बड़ा भारी दुःख हुआ, उन्होंने जहाँ-तहाँ ढूँढ़ा तथा पता लगानेके अनेक उपाय किये। बहुत-से लोग चारों ओर दौड़े। जब श्रीकरमैतीजीने देखा कि मुझे ढूँढ़नेवाले घुड़सवारलोग अब बिलकुल समीप आ गये हैं, तब उन्होंने वहींपर मरे पड़े हुए एक ऊँटके कंकालमें अपने शरीरको छिपा दिया। भगवान्‌में मन लगा हुआ था, अतः उन्हें विषयी संसारकी दुर्गन्ध ऐसी खराब लगी कि उसकी तुलनामें ऊँटके कंकालकी वह सड़ी दुर्गन्ध सुगन्धके समान अच्छी लगी।

श्रीकरमैतीजीको ऊँटके कंकालमें ही रहते हुए तीन दिन व्यतीत हो गये। तीन दिनके बाद चौथे दिन ऊँटके कंकालसे निकलकर चलीं तो आपको तीर्थयात्रियोंका साथ मिल गया। उनके साथ आप श्रीगंगाजीके किनारे आयीं। वहाँ स्नानकर आपने अपने सब आभूषण ब्राह्मणोंको दान कर दिये। उसके पश्चात् आप श्रीधाम वृन्दावन आ गयीं। आपके पिता श्रीपरशुरामजी आपको ढूँढ़ते हुए मथुरा आये। वहाँ लोगोंने श्रीकरमैतीजीका पता बताया। तदनुसार मथुराके पण्डोंके साथ आप श्रीवृन्दावन गये। उन दिनों ब्रह्मकुण्डपर अत्यन्त घना जंगल था। वहाँ एक वटवृक्षके ऊपर चढ़कर देखनेसे श्रीकरमैतीजी दिखलायी पड़ीं। वे प्रिय-विरहमें बैठी रुदन कर रही थीं। उनके आँसुओंसे वहाँकी पृथ्वी भीग गयी थी।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकरमैतीजीके इस श्रीकृष्ण-प्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

शेषावति नृप के पुरोहित की बेटी जानौ, बास हो खँडेला करमैती सो बखानियै।
बस्यो उर श्याम अभिराम कोटि काम हूं ते, भूले धाम काम सेवा मानसी पिछानियै॥
बीत जात जाम तन बाम अनुकूल भयौ, फूलि फूलि अंग गति मति छबि सानियै।
आयौ पति गौनो लैन, भायौ पितु मातु हिये, लिये चित चाव पट आभरन आनियै॥ ५८४॥
पर्‍यौ सोच भारी कहा कीजिये बिचारी, हाड़ चाम सों सँवारी देह रति के न काम की।
तातें देवौ त्यागि मन सोवै जनि, जाग अरे, मिटै उर दाग एक सांची प्रीति स्याम की॥
लाज कौन काज जौपै चाहै ब्रजराज सुत, बड़ोई अकाज, जोपै करै सुधि धाम की।
जानी भोर गौनो होत, सानी अनुराग रंग, संग एक वही, चली भीजी मति बाम की॥ ५८५॥
आधी निसि निकसी यों बसी हिये मूरति सो, पूरति सनेह तन सुधि बिसराई है।
भोर भये सोर पर्‍यौ पर्‍यौ पितु मातु सोच, कर्‍यौ लै जतन ठौर ठौर ढूँढ़ि आई है॥
चारों ओर दौरे नर, आये ढिग ढुरि जानि, ऊँट के करंक मध्य देह जा दुराई है।
जग दुरगन्ध कोऊ ऐसी बुरी लागी, जामें वह दुरगन्ध सो सुगन्ध सी सुहाई है॥ ५८६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीते दिन तीन वा करंक ही में संक नहीं, बंक प्रीति रीति यह कैसें करि गाइयै।
आयौ कोऊ संग ताही संग गंग तीर आई, तहां सो अन्हाई दै भूषन बन आइयै॥
ढूँढ़त परसराम पिता मधुपुरी आये, पते लै बताये जाय माथुर मिलाइयै।
सघन बिपिन ब्रह्मकुण्ड पर, बर एक, चढ़ि करि, देखी, भूमि अँसुवा भिजाइयै॥ ५८७॥

श्रीकरमैतीजीके पिता वटवृक्षसे नीचे उतरकर आये। उन्होंने अपनी पुत्रीकी वेश-भूषा और श्रीकृष्ण-प्रेमको देखा और उसके चरणोंमें लिपट गये। पुनः धैर्य धारणकर बोले—'बेटी! इस प्रकार गौनेके अवसरपर घरसे छिपकर तुम्हारे भाग आनेसे संसारमें मेरी नाक कट गयी। मैं मुख दिखानेके योग्य नहीं रह गया। अब तुम चलकर घरमें ही रहो, जिससे संसारमें हमारी हँसी और निन्दा जो हुई है, वह मिट जाय। तुम ससुराल मत जाना, घरमें रहकर भगवान्‌की सेवामें मन लगाना। यहाँ इस घोर वनमें कोई बाघ-सिंह तुम्हारे शरीरको नष्ट कर देगा। मुझे इस बातका बड़ा डर लग रहा है। अतः अपने घर चलो और मृतप्राय मुझे तथा अपनी माताको जीवन दान दो।' यह सुनकर श्रीकरमैतीबाईने कहा—'पिताजी! आपने सत्य कहा। बिना भगवद्भक्तिके शरीर मृतक ही समझिये। यदि आप जीवन चाहते हैं तो भगवान्‌में भक्ति और उनकी कीर्तिका गान कीजिये।'

श्रीकरमैतीजी पुनः पिताजीसे बोलीं कि आपने जो यह कहा कि 'मेरी नाक कट गयी।' नाक कटे तो तब जब हो, जब है ही नहीं तो कटेगी क्या? नाक अर्थात् प्रतिष्ठा तो केवल भगवद्-भक्ति है, आप अपने मनमें विचारिये—पचास वर्षोंसे आप विषयोंमें आसक्त हैं, फिर भी आपको उनसे वैराग्य नहीं हुआ। भोगे हुए विषयोंको ही बार-बार भोग रहे हैं। मैंने सब भोगोंको देखते हुए भी उनको नहीं देखा। मैंने तो केवल एक श्यामसुन्दरको देखा है, अतः अब संसारकी ओर मेरी दृष्टि नहीं जा सकती है। आप भी सब कामोंको छोड़कर भगवान्‌की सेवामें ही तन-मन और धनको लगाइये। श्रीकरमैतीजीके इस उपदेशको सुनकर पिता श्रीपरशुरामजीका अज्ञान उसी समय नष्ट हो गया है। जब वे घरको चलने लगे, तब श्रीकरमैतीजीने श्रीयमुनाजीसे प्राप्त उन्हें एक कृष्णभगवान्‌की मूर्ति दी, उसे लेकर वे घरको चले आये। श्रीकरमैतीजीने जो कुछ कहा, वह उनके हृदयमें आ गया।

श्रीपरशुरामजी रातको घरमें आये। बड़े चावके साथ उन्होंने घरमें भगवत्सेवाको पधराया और मन लगाकर सेवा करने लगे। अब उन्हें भगवत्कैंकर्य ही अच्छा लगता था। कहीं आना-जाना या लोगोंसे मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता था। कुछ दिनोंके बाद राजाको अपने पुरोहित श्रीपरशुरामजीकी याद आयी, तब उसने लोगोंसे पूछा—'पण्डितजी कहाँ हैं?' यह सुनकर किसीने राजाको बताया कि अब वे अपने घरमें ही भगवत्सेवा और सत्संगमें मग्न रहते हैं। ऐसा सुनकर राजाको श्रीपरशुरामजीके प्रति अत्यन्त अनुराग हुआ। तब उसने एक सेवकको भेजकर उनका समाचार मँगवाया। श्रीपरशुरामजीने राजसेवकसे कहा—तुम जाकर राजासे कह दो कि—हे राजन्! मैं (आपका पुरोहित) यहाँ अपने घरपर रहता हुआ ही आपको आशीर्वाद देता हूँ, भगवत्-चरणोंमें तुम्हारा प्रेम बढ़े। सानन्द सकुशल रहो। परंतु अब दरबारमें नहीं आ सकता। यह सुनकर राजाके मनमें श्रीपरशुरामजीके प्रति बड़ा प्रेम हुआ और उनके दर्शनोंकी इच्छा हुई, तब राजा आया।

राजाने श्रीपरशुरामजीका अद्भुत प्रेम देखा और उनकी सेवाकी रीति देखी। राजाने श्रीकरमैतीबाईजीका समाचार पूछा। तब श्रीपरशुरामजीने रोते-रोते सब बात कही कि 'वह तो भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके प्रेमरंगमें रँग गयी हैं।' राजाके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगे, उसने कहा—'मुझे श्रीवृन्दावन जाकर दर्शन करनेकी आज्ञा दीजिये।' श्रीपरशुरामजीने मना किया, तब राजाने पुनः कहा—मुझे जाने दीजिये, मैं जाकर समझा-बुझाकर यहाँ ले आऊँगा तो मेरा बड़ा सौभाग्य होगा, अन्यथा दर्शन कर आऊँगा। मेरे मनमें दर्शनकी बड़ी भारी इच्छा हो रही है। ऐसा कहकर राजा श्रीवृन्दावनको आया और उसने यहाँ आकर देखा कि श्रीकरमैतीजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमुनाजीके तटपर खड़ी हैं, उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। उनका रूप कुछ और ही प्रकारका हो गया है। प्रेमके उमंगमें डूब रही हैं। अब राजा कहें तो क्या कहें? राजाने प्रार्थना की कि 'कुछ सेवा करनेकी आज्ञा दो।' श्रीकरमैतीजीने कहा—'तुम्हारी किसी भी प्रकारकी सेवाकी आवश्यकता नहीं है।' इनके बार-बार बहुत मना करने पर भी राजाने अपनी इच्छासे ब्रह्मकुण्डके निकट ही एक कुटी बनवा दी और उसके बाद अपने देशको लौट आये। श्रीकरमैतीजीके दिव्य भगवत्प्रेमको एवं उपदेशको स्मरण करके राजा भी प्रेमरंगमें रँग गया और भगवद्-भजन करने लगा।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकरमैतीजीके इस दिव्य कृष्ण-प्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

उतरि कै आय रोय पांय लपटाय गयौ, 'कटी मेरी नाक जग मुख न दिखाइयै।
चलौ गृह बास करो लोक उपहास मिटै, सासु घर जावौ मत सेवा चित लाइयै॥
कोऊ सिंह व्याघ्र अजू बपु कों बिनास करै, त्रास मेरे होत, फिरि मृतक जिवाइयै'।
बोली कही सांच बिन भक्ति तन ऐसो जानौ जोपै जियौ चाहौ, करो प्रीति जस गाइयै॥ ५८८॥
कही तुम कटी नाक, कटै जो पै होय कहूँ, नाक एक भक्ति नाक लोक में न पाइयै।
बरस पचास लगि बिषै ही में बास कियौ, तऊ न उदास भये चबेकों चबाइयै॥
देखे सब भोग मैं न देखे, एक देखे श्याम, ताते तजि काम तन सेवा में लगाइयै।
रात तें ज्यौं प्रात होत, ऐसे तम जात भयो, दयौ लै सरूप प्रभु, गयौ, हिये आइयै॥ ५८९॥
आये निसि घर, हरिसेवा पधराय, चाय मन को लगाय, वही टहल सुहाई है।
कहूं जात आवत न भावत मिलाप कहूँ, आप नृप पूछे द्विज कहां? सुधि आई है॥
बोल्यौ कोऊ जन धाम स्याम संग पगे सुनि, अति अनुरागे, बेगि खबर मँगाई है।
कहौ तुम जाय 'ईश इहांई असीस करौ', कही भूप आयौ हिये चाह उपजाई है॥ ५९०॥
देखी नृप प्रीति रीति, पूछी, सब बात कही, नैन अश्रुपात, 'वह रँगी श्याम रंग मैं।
बरजत आयौ भूप 'जायके लिवाय ल्याऊँ पाऊँ जोपै भाग मेरे' बढ़ी चाह अंग मैं॥
कालिन्दी के तीर ठाढ़ी नीर दृग, भूप लखी, रूप कछु औरै कहा कहैं वे उमंग मैं।
कियौ मने लाख बेर ऐपै अभिलाष राजा कीनी कुटी, आए देस, भीजे सो प्रसंग मैं॥ ५९१॥

श्रीखड्गसेनजी कायस्थ

गोपी ग्वाल पितु मातु नाम निरनै कियो भारी।
दान केलि दीपक्क प्रचुर अति बुद्धि उचारी॥
सखा सखी गोपाल काल लीला में बितयो।
कायथ कुल उद्धार भक्ति दृढ़ अनत न चितयो॥
गौतमी तंत्र उर ध्यान धरि तन त्याग्यो मंडल सरद।
गोबिंदचंद गुन ग्रथन को बसेन बानी बिसद॥ १६१॥

श्रीराधागोविन्दचन्द्रके गुणगणोंको वर्णन करनेमें श्रीखड्गसेनजीकी वाणी अति उज्ज्वल थी। आपने व्रजकी गोपियों और ग्वालोंके पिता-माताओंके नामोंका ठीक-ठीक निर्णय किया। इसके अतिरिक्त 'दानकेलिदीपक' आदि काव्योंका निर्माण किया, जिनसे यह मालूम होता है कि आपको साहित्यका प्रचुर ज्ञान था और आपकी बुद्धि प्रखर थी। श्रीराधागोपालजी, उनकी सखियाँ और उनके सखाओंकी लीलाओंको लिखने और गानेमें ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने अपना समय व्यतीत किया। कायस्थ वंशमें जन्म लेकर आपने उसका उद्धार किया। आपके हृदयमें भक्ति दृढ़ थी, अतः अन्यत्र (सांसारिक विषयोंकी ओर) नहीं देखा। गौतमीतन्त्रमें वर्णित विधिसे शरत्पूर्णिमाके महारासका हृदयमें ध्यान धारणकर आपने शरीरका परित्याग किया॥ १६१॥

श्रीखड्गसेनजी कायस्थके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

भक्तवर खड्गसेनजी ग्वालियरमें निवास करते थे। आप रासके समाज अर्थात् रासलीलाके आयोजन यथासमय करते ही रहते थे। एक बार शरत्पूर्णिमाकी रात्रिमें महारास हो रहा था। उस दिन उनके ऊपर प्रेमका बड़ा भारी गाढ़ा रंग चढ़ गया। वह भावावेश बढ़ता ही गया, आँखोंमें रासविहारिणी-बिहारीजीकी सुन्दर छवि निरन्तर समाती ही चली गयी। '**तत-थेई**' कहकर नृत्य और गान करती हुई प्रिया-प्रियतमकी सुन्दर जोड़ीको आपने अपलक नेत्रोंसे भलीभाँति निहारा तो उसी समय मानसिक भावनासे नश्वर शरीरको त्यागकर युगलकिशोरकी नित्यलीलामें पहुँच गये। इस प्रकार श्रीखड्गसेनजीने अपार दिव्य-सुखका अनुभवकर तथा लीलाबिहारीकी छविपर रीझकर अपने शरीरको न्यौछावर कर दिया। प्रेम ही सत्य है, यह और उसके निभानेकी रीतिको आपने प्रत्यक्ष दिखला दिया। रास-रसके प्रेमी-भावुकोंने जब आपका प्रकट-प्रेम देखा तो उनके मन भी रास-रसमें सराबोर हो गये। इस प्रकार प्रेम करना और शरीर त्यागना बहुत प्रिय लगा।

श्रीप्रियादासजीने श्रीखड्गसेनजीके इस प्रभुप्रेमका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

ग्वालियर बास, सदा रास कौ समाज करें, सरद उजारी अति रंग चढ़्यौ भारी है।
भाव की बढ़नि दृग रूप की चढ़नि ततथेई की रढ़नि जोरी सुन्दर निहारी है॥
खेलन में जाय मिले त्यागि तन भावना सों झेलत अपार सुख, रीझि देह वारी है।
प्रेम की सचाई ताकी रीति लै दिखाई भई भावुकनि सरसाई, बात लागी प्यारी है॥ ५९२॥

श्रीगंगग्वालजी

स्यामा जू की सखी नाम आगम बिधि पायो।
ग्वाल गाय ब्रजगाँव पृथक नीकें करि गायो॥
कृष्नकेलि सुख सिंधु अघट उर अंतर धरई।
ता रस में नित मगन असद आलाप न करई॥
ब्रजबास आस ब्रजनाथ गुरु भक्त चरन रज अननि गति।
सखा स्याम मन भावतो गंग ग्वाल गंभीरमति॥ १६२॥

श्रीगंगग्वालजी भगवान् श्यामसुन्दरके प्रिय सखा थे, आपकी बुद्धि अति गम्भीर थी। आपने पुराण एवं धर्मग्रन्थोंसे ढूँढ़कर श्रीराधिकाजीकी सखियोंके नाम, ग्वालबालोंके नाम, गायोंके नाम एवं व्रजके गाँवोंके नाम भलीभाँति अलग-अलग वर्णन किये। श्रीराधाकृष्णके विहारका जो अपार सुख-समुद्र आपने अपने हृदयमें धारण किया, सदा उसी रसमें डूबे रहते थे। व्यर्थ एवं असत्य वार्तालाप कभी नहीं करते थे। आप व्रजभूमिमें निवास करते थे एवं मनमें व्रजनाथ गुरु और व्रजनाथ श्रीकृष्णकी कृपाकी आशा रखते थे। गुरुदेव और हरिभक्तोंकी चरणरजमें अनन्य भाव था, उसीसे अपनी सद्गति चाहते थे॥ १६२॥

श्रीगंगग्वालजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

एक बार दिल्लीका बादशाह श्रीवृन्दावन आया। उसने इच्छा की कि कोई हमें सारँग राग सुनाये। लोगोंने कहा—वर्तमान समयमें सारँग रागके सर्वश्रेष्ठ गायक श्रीगंगग्वालजी हैं। बादशाहकी आज्ञासे सिपाही लोग बुलाने गये, परंतु आपने अस्वीकार कर दिया, तब वे जबरदस्ती आपको पकड़कर लाये। उस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके साथ बल्लभ नामके एक गायक और थे। दोनोंने स्वर मिलाकर सारँग रागका आलाप किया तो उस समय रागका रंग सर्वत्र व्याप्त हो गया। बादशाहके समेत सभी लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। लोगोंके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। रीझा हुआ बादशाह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और उसने प्रार्थना की कि आप हमारे साथ दिल्ली चलिये, परंतु श्रीगंगग्वालने स्वीकार नहीं किया और कहा कि 'व्रजभूमि ही हमारा जीवन है। अतः मैं अन्यत्र नहीं जा सकता।' अन्तमें बादशाह आपको नजरकैद करके अपने साथ दिल्ली लाया। वहाँ आनेपर भक्तवर श्रीहरीदासजी तूंवरने आपको छुड़वा दिया। तब आप पुनः व्रजभूमिमें आ गये। मरे हुएको जैसे प्राणोंका लाभ हुआ हो, ऐसी प्रसन्नता आपको हुई।

श्रीप्रियादासजीने आपकी इस व्रजनिष्ठाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

पृथ्वीपति आयौ वृन्दावन, मन चाह भई सारँग सुनावै कोऊ जोराबरी ल्याये हैं।
बल्लभहूँ संग सुर भरत ही छायौ रंग, अति ही रिझायौ, दृग अँसुवा बहाये हैं॥
ठाढ़ौ कर जोरि बिनै करी, पै न धरी हियै, जियै, ब्रजभूमि ही, सो बचन सुनाये हैं।
कैद करि साथ लिये दिल्ली ते छुटाय दिये 'हरीदास तूँवर' नै आये प्रान पाये हैं॥ ५९३॥

श्रीसोतीजी

परम भक्ति परताप धर्मध्वज नेजा धारी।
सीतापति को सुजस बदन सोभित अति भारी॥
जानकि जीवन चरन सरन थाती थिर पाई।
नरहरि गुरु परसाद पूत पोते चलि आई॥
राम उपासक छाप दृढ़ और न कछु उर आनियो।
'सोति' स्लाघ्य संतनि सभा, दुतिय दिवाकर जानियो॥ १६३॥

श्रीदिवाकर सोतीजी सन्तोंकी सभामें प्रशंसनीय, ज्ञान तथा भक्तिके प्रकाशक दूसरे सूर्यके समान थे। श्रीभगवद्भक्तिके श्रेष्ठ प्रतापसे धर्मरूपी ध्वजाके दण्डको आपने दृढ़तासे धारण किया। सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र सुयशका आप सदा गान करते रहते थे। श्रीजानकीजीवन राघवेन्द्रके चरणोंकी शरणागति आपकी स्थिर पूँजी थी, आपने उसका व्यय नहीं किया। आपके गुरुदेव श्रीनरहरिदासजी थे, उनकी कृपासे आपके पुत्र-पौत्रोंतकमें भक्ति सुदृढ़ बनी रही। 'राम-उपासक' यह आपकी पुष्ट छाप थी। आपने श्रीरामोपासनाके अतिरिक्त और कुछ भी अपने हृदयमें नहीं आने दिया॥ १६३॥

श्रीलालदासजी

हृदै हरी गुन खानि सदा सतसँग अनुरागी।
पद्मपत्र ज्यों रह्यों लोभ की लहर न लागी॥
बिष्नु रात सम रीति बघैरै त्यों तन त्याज्यो।
भक्त बराती बृंद मध्य दूलह ज्यों राज्यो॥
खरी भक्ति हरिषांपुरै गुरु प्रताप गाढ़ी गही।
जीवत जस पुनि परम पद लालदास दोनों लही॥ १६४॥

श्रीलालदासजीको यहाँ जीवनमें सुयश और शरीर त्यागनेके बाद परमपद वैकुण्ठधाम मिला। आपका हृदय भगवदीय गुणोंकी खान था। आप सत्संगके बड़े प्रेमी थे। जैसे कमलपत्र जलमें रहकर उससे अछूता रहता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी तरह संसारमें रहते हुए भी सांसारिक सुखोंका लोभ आपके मनमें नहीं आया। बघेरे ग्राममें श्रीमद्भागवतकी कथाको सुनकर श्रीपरीक्षित्‌की तरह आपने भी अपने शरीरको छोड़ा। बारातमें जैसे दूल्हेकी शोभा होती है, उसी प्रकार सन्तोंकी मण्डलीमें आप सुशोभित होते थे। अपने गुरुदेवके प्रतापसे गुरु आश्रम हरिषांपुरमें रहकर सच्ची भगवद्भक्ति आपने ग्रहण की। इस प्रकार आपका जीवन और शरीरान्त दोनों धन्य रहे॥ १६४॥

श्रीमाधवग्वालजी

निसि दिन यहै बिचार दास जिहिं बिधि सुख पावैं।
तिलक दाम सों प्रीति हृदै अति हरिजन भावैं॥
परमारथ सों काज हिएँ स्वारथ नहिं जानै।
दसधा मत्त मराल सदा लीला गुन गानै॥
आरत हरिगुन सील सम प्रीति रीति प्रति पाल की।
भक्तनि हित भगवंत रची देही माधौ ग्वाल की॥ १६५॥

भगवान्‌ने भक्तोंके हितके लिये श्रीमाधवग्वालजीको इस संसारमें प्रकट किया। ये दिन-रात इसी सोच-विचारमें डूबे रहते थे कि भक्तोंको कैसे सुख पहुँचे। तिलक-कण्ठीसे एवं उनके धारण करनेवाले भक्तोंसे आप बड़ा प्रेम करते थे। भगवद्भक्त इन्हें हृदयसे अच्छे लगते थे। आप केवल परमार्थसे प्रयोजन रखते थे। हृदयमें स्वार्थकी भावना कदापि नहीं रखते थे। ये प्रेमाभक्तिके मराल थे। सदा भगवान्‌की लीलाओंका गान किया करते थे और भगवद् गुणानुवादको सुननेके लिये सदा आतुर रहते थे। सुन्दर, सरल-स्वभाव, सर्वत्र समत्व बुद्धि रखकर आपने प्रीतिकी रीतियोंका प्रतिपालन किया, आदिसे अन्ततक प्रीतिका निर्वाह किया॥ १६५॥

श्रीप्रयागदासजी

मानस बाचक काय राम चरननि चित दीनो।
भक्तनि सों अति प्रेम भावना करि सिर लीनो॥
रास मध्य निर्जान देह दुति दसा दिखाई।
आड़ो बलियो अंक महोछौ पूरी पाई॥
क्यारे कलस औली ध्वजा बिदुष सलाघा भाग की।
श्रीअगर सुगुरु परताप तें पूरी परी प्रयाग की॥ १६६॥

सद्गुरु श्रीअग्रदेवाचार्यके प्रतापसे श्रीप्रयागदासजीके भक्त-भगवत्सेवा-सम्बन्धी सभी कार्य पूर्ण हुए, उनमें कभी किसी प्रकारसे विघ्न नहीं आया। इन्होंने मन, वाणी और शरीरसे सन्त-भगवन्तकी सेवा की। सब ओरसे मनको हटाकर श्रीरामजीके चरणोंमें लगाया। भक्तोंमें आपका अत्यन्त प्रेम था। आपने उन्हें अपनी भावनासे प्रभुतुल्य सर्वश्रेष्ठ माना और उनकी खूब सेवा की। एक बार जब रासलीला हो रही थी। उस समय आपने लीलामें तन्मय होकर शरीर त्याग दिया। आड़ो-बलियोके महोत्सवमें आपने पूरी-प्रसाद ग्रहण किया। क्यारे नामक ग्रामके मन्दिरपर कलश चढ़ाया और औली गाँवमें ध्वजारोपण कराया। इस दिव्य चमत्कारको देखकर विद्वानों और सन्तोंने आपके भाग्यकी प्रशंसा की॥ १६६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रेमनिधिजी

सुंदर सील सुभाव मधुर बानी मंगल करु।
भक्तनि कों सुख दैन फरयो बहुधा दसधा तरु॥
सदन बसत निर्बेद सारभुक, जगत असंगी।
सदाचार ऊदार नेम हरिदास प्रसंगी॥
दया दृष्टि बसि आगरैं कथा लोग पावन कर्‌यो।
प्रगट अमित गुन प्रेमनिधि धन्य बिप्र जेहिं नाम धर्‌यो॥ १६७॥

श्रीप्रेमनिधिजीमें प्रेमाभक्तिसम्बन्धी अनन्त गुण प्रकट थे। उस ज्योतिषी विप्रको धन्यवाद है, जिसने गुणोंके अनुरूप ऐसा (सार्थक) नाम रखा। आप सुन्दर, शीलवान् और स्वभावसे नम्र थे। आपकी वाणी मधुर, रसमयी और श्रोताओंका सर्वविध कल्याण करनेवाली थी। हरिभक्तोंको सुख देनेके लिये आप कल्पवृक्षके समान थे, जिसमें प्रेमा-पराभक्तिके बहुतसे फल लगे रहते थे। घरमें रहते हुए आप गृहस्थाश्रमके प्रपंचोंसे परम विरक्त थे। विषयोंको त्यागकर सारतत्त्व प्रेमका आस्वादन करनेवाले, सदाचारी और परम उदार थे। नियमपूर्वक भगवद्भक्तोंके साथ सत्संग किया करते थे। (आगरानिवासी) भक्तोंपर दया करके आपने श्रीवृन्दावनसे बाहर आगरेमें निवास किया और भगवान्‌की कथाओंके द्वारा सबको पवित्र किया॥ १६७॥

श्रीप्रेमनिधिजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीप्रेमनिधिजी मिश्र श्रीविट्ठलनाथजीके शिष्य थे। आप महान् प्रेमी सन्त थे और आगरेमें रहते थे। आप बड़े सुन्दर भावसे श्रीश्यामबिहारीजीकी सेवा-पूजा किया करते थे। नित्य कुछ रात रहे ही श्रीठाकुरसेवाके लिये आप श्रीयमुनाजीसे जल लाया करते थे। एक बार वर्षाका मौसम था, अधिक वर्षाके कारण जहाँ-तहाँ सर्वत्र रास्तेमें कीचड़ हो गया। तब आपको बड़ी चिन्ता हुई कि यमुनाजल कैसे लायें? आपने अपने मनमें विचारा कि यदि अन्धेरेमें जल लेने जाऊँ तो कीचड़में फँसनेका भय है और यदि प्रकाश होनेपर जाऊँ तो आने-जानेवाले लोगोंसे छू जाऊँगा। यह भी ठीक न होगा। अन्तमें सोच-विचारकर निश्चय किया कि अन्धेरेमें ही जल लाना ठीक है; क्योंकि उस समय किसीसे छूनेका डर नहीं रहेगा। जैसे ही आप दरवाजेके बाहर निकले तो आपने देखा कि एक सुकुमार किशोर बालक मशाल लिये जा रहा है। आप भी उसीके पीछे-पीछे चल दिये।

श्रीप्रेमनिधिजीने अपने मनमें समझा कि यह बालक किसीको पहुँचाकर वापस लौट रहा है, कुछ देरके बाद अपने घरकी ओर मुड़कर गायब हो जायगा। पर अच्छा है, कुछ देर तो प्रकाश मिलेगा। जितनी देर मिलेगा उतनी दूरतक सुखसे पहुँच जाऊँगा। इस प्रकार आप सोचते ही रहे, परंतु वह बालक किसी दूसरी ओर न मुड़कर यमुनाजीके किनारेतक आया। इससे इनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ और उस मशालची लड़केमें ही मनको लगाये हुए आपने श्रीयमुनाजीमें स्नान किया, परंतु इनकी बुद्धिको उसके रूपने अपनी ओर खींच लिया था। स्नानके बाद जलसे भरा घड़ा जैसे ही आपने अपने सिरपर रखा, उसी क्षण पहलेकी तरह वह बालक फिर आ गया और फिर आप उसके पीछे-पीछे चले। जैसे ही आप अपने घरके द्वारपर पहुँचे, वैसे ही वह मशालची लड़का गायब हो गया। अहो! प्रभुने यह क्या किया। वह बालक कहाँ गया? कौन था? उसे पुनः देखनेके लिये आप आतुर हो गये और आपके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

प्रेमनिधि नाम, करैं सेवा अभिराम स्याम, आगरौ सहर निसि सेस जल ल्याइयै।
बरखा सु रितु जित तित अति कीच भई भई चित चिन्ता 'कैसे अपरस आइयै'॥
जौ पै अन्धकार ही में चलौं तौ बिगार होत, चले यों बिचारि 'नीच छुवै न सुहाइयै'।
निकसत द्वार जब देख्यौ सुकुमार एक हाथ में मसाल 'याके पाछे चले जाइयै'॥ ५९४॥
जानी यहै बात पहुँचाये कहूँ जात यह अबहीं बिलात भले चैन कोऊ घरी है।
जमुना लौं आयौ अचरज सो लगायौ मन, तन अन्हवायौ, मति वाही रूप हरी है॥
घट भरि धर्‍यौ सीस, पट वह आय गयौ, आय गयौ घर, नहीं देखी, कहा करी है।
लागी चटपटी अटपटी न समझि परै, भटभटी भई नई, नैन नीर झरी है॥ ५९५॥

श्रीप्रेमनिधिजी बहुत अच्छी कथा कहते थे। प्रभुके स्वरूपको दरसा देते थे, उससे श्रोताओंके मनको अपनी ओर खींचकर उसमें भगवद्-भक्तिके भावोंको भर देते थे। यह देखकर दुष्टोंके हृदयमें बड़ा दुःख हुआ। ईर्ष्यावश उन्होंने बादशाहको सिखाया, शिकायत करते हुए उन्होंने कहा कि—'प्रेमनिधिके घरमें अच्छे-अच्छे घरानेकी बहुत-सी औरतें हर समय आती-जाती रहती हैं।' यह सुनकर बादशाह क्रोधसे जल उठा। उसने अपने सिपाहियोंको आज्ञा दी कि 'प्रेमनिधिको फौरन पकड़ लाओ।' श्रीप्रेमनिधिजी जिस समय जलभरी झारी बड़े प्रेमसे भगवान्‌के सामने रखकर उन्हें जल पिलाना चाहते थे, उसी समय चोबदारोंने आकर इन्हें बादशाहकी कठोर आज्ञा सुनायी और कहा—'अभी इसी समय हमारे साथ चलो।' ऐसा कहकर वे लोग शोर मचाने लगे। तब भगवान्‌को जल पिलाये बिना ही श्रीप्रेमनिधिजी बादशाहके समीप गये। उसने इनसे पूछा—कहो, क्या मौज-बहार है, तुम स्त्रियोंके साथ प्रसंग करते हो, हमारे राज्यमें ऐसा अन्याय? यह सुनकर आपने कहा—'मैं संसारी विषयोंकी बात न कहकर भगवान् श्रीकृष्णकी ही कथाओंका वर्णन करता हूँ। जिन स्त्रियों या पुरुषोंको कथा अच्छी लगती है, वे आकर कथामें बैठते हैं। जो किसी कथारूपी तीर्थमें श्रोताको डाटे, फटकारे या निकाले अथवा उनको बुरी निगाहसे देखे तो उसे बड़ा भारी पाप लगता है।' यह सुनकर बादशाहने कहा—'यह बात तो तुमने बहुत ठीक कही, परंतु तुम्हारी गली-मुहल्लेके लोगोंने ही आकर तुम्हारे सम्बन्धमें मुझसे जो कुछ कहा है, उसके अनुसार तुम्हारा चाल-चलन, रहन-सहन कुछ और ही है।' यह कहकर बादशाहने चोबदारोंसे कहा—'तबतक इन्हें हवालातमें बन्द कर दो, अच्छी तरह जाँच-पड़तालके बाद मैं फैसला करूँगा।' ऐसी आज्ञा पाकर सिपाहियोंने इन्हें ले जाकर कैदखानेमें बन्द कर दिया।

भक्तवर श्रीप्रेमनिधिजीको कैदखानेमें बन्द करवाकर बादशाह उस रातमें जब सोया तो श्रीबिहारीजीने उसके इष्ट मुहम्मद साहबका भेष बनाकर स्वप्नमें उससे कहा—'मुझे बहुत जोरकी प्यास लगी है।' बादशाहने कहा—'आबखानेमें जाकर पानी पी लीजिये।' यह सुनकर प्रभु बहुत रुष्ट हुए और बोले—वहाँ कोई प्रेमी भक्त है, जो मुझे प्रेमसे पानी पिलाये? जब बादशाहने कुछ उत्तर नहीं दिया, तब भगवान् जोरसे उसे डाँटते हुए बोले—'अरे मूर्ख! तूने मेरी बात नहीं सुनी।' बादशाहने कहा—'जिसे आप आज्ञा दें, वही भाग्यशाली पानी पिलायेगा।' पुनः प्रभुने कहा—'उसे तो तूने कैदखानेमें बन्द कर रखा है।' यह सुनकर बादशाह घबड़ाया और डर गया। उसके हृदयमें प्रेमनिधिजीके प्रति सद्‌भाव भर गया और वह सोयेसे जग गया।

उसी समय रातको ही बादशाहने दास-दासियोंको आज्ञा दी कि 'शीघ्र ही श्रीप्रेमनिधिजीको कैदखानेसे छुड़ाकर लाओ।' यह सुनकर दासी-दास सभी दौड़े और श्रीप्रेमनिधिको ले आये। इन्हें देखते ही बादशाह इनके चरणोंमें गिर पड़ा और रोते हुए बोला—'साहब प्यासे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, आप अभी ही जाकर उन्हें जल पिलाइये। वे किसी दूसरेके हाथसे नहीं पीते हैं, आपपर बहुत ही प्रसन्न हैं, ठाकुरजीकी सेवाके लिये आप मुझसे देश-गाँव तथा इच्छानुसार धन ले लीजिये। सर्वदा अपने प्यारे प्रभुकी सेवामें लगे रहिये। अब आपको कभी कोई कष्ट मैं न दूँगा।' श्रीप्रेमनिधिजीने कहा—मैं सदा अपने प्रभुमें मन लगाये रहता हूँ, धन पाकर बहुतसे लोग नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं, अतः मैं कुछ भी न लूँगा। बादशाहने मशालचियोंके साथ उसी समय श्रीप्रेमनिधिजीको घर भेज दिया। श्रीप्रेमनिधिजीने घर आकर स्नान किया और श्रीबिहारीजीको जल पिलाकर उन्हें प्रसन्न किया तथा स्वयं भी कृपाका अनुभव करके प्रसन्न हुए।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया—

कथा ऐसी कहैं जामैं गहैं मन भाव भरै करैं कृपादृष्टि दुष्टजन दुख पायो है।
जायकै सिखायौ बादशाह उर दाह भयौ, कही तिया भली को समूह घर छायौ है॥
आए चौबदार कहैं चलो एही बार वारि झारी प्रभु आगे धर्‌यौ चाहै सोर लायौ है।
चले तब संग गए पूछै नृप रंग कहा? तियनि प्रसंग करौ? कहिकै सुनायौ है॥ ५९६॥
कान्ह भगवान् ही की बात सो बखानि कहौं, आनि बैठे नारी नर लागी कथा प्यारी है।
काहू कों बिडारैं, झिरकारैं नैकु टारैं, बिषै दृष्टि कै निहारैं, ताकों लागै दोष भारी है॥
कही तुम भली तेरी गली ही के लोग मोसों आयकै जताई वह रीति कछु न्यारी है'।
बोल्यौ 'याहि राखौ सब करौं' निरधार नीके, चले चोबदार लैकै, रोके प्रभु धारी है॥ ५९७॥
सोयौ बादशाह निसि, आयकै सुपन दियौ, कियो वाकौ इष्टभेष कही प्यास लागी है।
पीवौ जल 'कही' आबखाने लै बखाने तब अति ही रिसाने को पियावे, कोऊ रागी है॥
फेर मारी लात अरे सुनी नहीं बात मेरी, आप फुरमावौ जोई प्यावै बड़भागी है।
सो तौ तैं लै कैद कर्‌यौ सुनि अरबर्‌यौ डर्‌यौ, भर्‌यौ हिये भाव मति सोवत तें जागी है॥ ५९८॥
दौरे नर ताही समै वेगि दै लिवाय ल्याये, देखि लपटाये पांय नृप दृग भीजे हैं।
साहिब तिसाये जाय अबही पियावौ नीर, और पै न पीवैं, एक तुमही पै रीझे हैं॥
लेवौ देस गांव सदा पीव हीं सो लग्यौं रहौं, गहों नहीं नेक धन पाय बहु छीजे हैं।
संग दै मसाल, ताही कालमें पठाये, यों कपाट जाल खुले, लाल प्यायौ जल, धीजे हैं॥ ५९९॥

श्रीराघवदास दूबलोजी

सदाचार गुरु सिष्य त्याग बिधि प्रगट दिखाई।
बाहेर भीतर बिसद लगी नहिं कलिजुग काई॥
राघौ रुचिर सुभाव असद आलाप न भावै।
कथा कीरतन नेम मिलें संतनि गुन गावै॥
ताप तोल पूरौ निकष (ज्यौं) घन अहरनि हीरो सहँत।
दूबरो जाहि दुनियाँ कहै सो भक्त भजन मोटो महँत॥ १६८॥

जिन श्रीराघवदासजीको दुनियाँके लोग 'दुर्बलदास' या 'दुबला' के नामसे पुकारते थे, वे शरीरसे यद्यपि दुर्बल थे, परंतु सन्तोंकी सेवा करनेमें मोटे अर्थात् बड़े महन्त थे। आपने सदाचार, गुरुता तथा शिष्योंसे कुछ भी धन न लेकर त्यागकी रीति सबको प्रत्यक्ष दिखलायी। आप बाहर और भीतरसे निर्मल थे। कलियुगके दोष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप आपका स्पर्श नहीं कर सके। आपका स्वभाव बड़ा सुन्दर था, मिथ्या-भाषण आपको अच्छा नहीं लगता था। नित्य नियमसे सन्तोंके साथ भक्त-भगवत्-कथा-वार्ताको कहते-सुनते और नाम-कीर्तन करते थे। जैसे तपाने-छेदने और कसौटीपर कसनेसे सोनेकी, निहाईपर घनोंकी चोटसे हीरेकी पहचान होती है, उसी प्रकार श्रीराघवदासजीने भी आपत्तियोंको सहनकर अपनी सच्ची साधुताको लोकमें प्रमाणित किया॥ १६८॥

सन्तसेवी भक्त

दासनि के दासत्व कौ, चौकस चौकी ये मड़ी॥
हरिनारायन नृपति पदम बेरछैं बिराजै।
गाँव हुसंगाबाद अटल ऊधौ भल छाजै॥
भेलै तुलसीदास ख्यात भट देवकल्यानो।
बोहिथ बीरारामदास सुहेलै परम सुजानो॥
'औली' परमानंद कै, ध्वजा सबल धर्म कि गड़ी।
दासनि के दासन्न को चौकस चौकी ए मड़ी॥ १६९॥

भगवद्भक्तोंकी सावधानीसे सेवा करनेके लिये ये सुन्दर स्थान बने। बेरछामें श्रीहरिनारायणजी और राजा श्रीपद्मजी, होशंगाबादमें श्रीऊधौजी अटल होकर विराजते थे। भेलामें प्रसिद्ध श्रीतुलसीदासजी और श्रीदेवकल्याणजी, सुहेलामें परम सुजान श्रीबोहिथजी तथा श्रीबीरारामजी विराजते थे। औलीमें श्रीपरमानन्दजीका ऊँचा और पुष्ट वैष्णवधर्मका झण्डा गड़ा हुआ था। ये महान् सन्तसेवी थे॥ १६९॥

इनमेंसे कुछ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीहरिनारायणजी

श्रीहरिनारायणजी बड़े ही सन्त-सेवी भगवद्भक्त थे। आप अच्छी प्रकारके मेवा-पक्वान्न प्रसाद सन्तोंको पवाते तथा वस्त्र, पात्र आदि देकर मीठी वाणीसे उन्हें सन्तुष्ट करते। इनका एक पुत्र था, वह उद्दण्ड प्रकृतिका था। उसका सन्तोंमें भाव न था। इसलिये आपके मनमें बड़ी-भारी चिन्ता रहती कि इसका कल्याण कैसे होगा। मेरे मरनेके बाद सन्त-सेवा बिलकुल बन्द हो जायगी। आप मन-ही-मन प्रभुसे प्रार्थना करते कि इस बालकको सद्बुद्धि दो, भक्तोंमें इसका प्रेम हो। युवावस्थाको प्राप्तकर वह लड़का सेनामें भर्ती हो गया। कुछ दिन बाद युद्ध करनेके लिये उसे एक मोर्चेपर जाना पड़ा। भयंकर संग्राम हुआ। यह भक्तका बालक भी शत्रुओंसे घिर गया। तब घबराया और पिताकी भक्तिका ध्यान आया। इसने मन-ही-मन प्रार्थना की और प्रतिज्ञा की कि यदि मेरे प्राण बच गये तो मैं भी पिताजीकी तरह भक्त-भगवान्की सेवा करूँगा। हार्दिक प्रार्थनाका ऐसा प्रभाव हुआ कि यह अकेला बच गया, शरीरमें चोट भी नहीं आयी और सेनाके सभी लोग मारे गये। इससे इसका भी सन्तोंमें अटल विश्वास और प्रेम हो गया। अब तो यह भी अपने पिताकी तरह सन्त-सेवाको महत्त्व देने लगा। इस प्रकार प्रभुने श्रीहरिनारायण भक्तकी इच्छा पूरी की।

श्रीऊधौजी

श्रीऊधौजीकी सन्तोंमें बड़ी निष्ठा थी। आप बड़ी श्रद्धाके साथ सन्त-सेवा करते थे। नित्य ही सन्तोंका आना-जाना होता रहता था। कण्ठी, माला, तिलकधारी सन्तोंके अतिरिक्त दुष्ट, विमुखजन आपके आश्रमकी ओर नहीं आते थे। श्रीऊधौजीको जब कभी यह पता लग जाता कि अमुक स्थानपर सन्तजन पधारे हैं तो वहाँ आप अवश्य जाते, सन्तोंके दर्शन करते, उन्हें अपने घर लिवा लाते और बड़े प्रेमसे उनकी सेवा करते। एक बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको समाचार मिला कि किसी सन्तके महोत्सवमें बहुतसे साधु-महात्मा पधारे हैं। आपने वहाँ पहुँचकर दर्शन-सत्संग किया। पश्चात् सभी सन्तोंसे विनय की कि आप लोग पधारकर दासके घरको पवित्र करें। इनके प्रेमको देखकर सभी सन्त चलनेके लिये तैयार हो गये। तब आपके नौकरने आपको सावधान किया कि घरपर इतने सन्तोंके भोजनके लिये सामान नहीं है, आपने सबको न्यौता कैसे दे दिया? आपने कहा सन्तोंको पधारने दो, बादमें देखा जायगा। सन्तोंकी भीड़ आपके द्वारपर पहुँच गयी, तब आपको भी चिन्ता हुई कि अब क्या करूँ? आपकी सन्तोंमें भक्ति देखकर आकाशवाणी हुई कि चिन्ता मत करो, इतने सामानसे ही पूर्ति हो जायगी। आपने बड़े उल्लासपूर्वक भोजन बनवाया, भोग लगनेके बाद सन्तोंने पूर्ण तृप्त होकर प्रसाद पाया और आशीर्वाद दिया। बचा हुआ प्रसाद आपने ग्रामवासियोंको दे दिया। इस चमत्कारसे सभीके मनमें सन्त-सेवाका भाव और दृढ़ हो गया।

भेलाग्राम-निवासी श्रीतुलसीदासजी

भेलाग्राम-निवासी श्रीतुलसीदासजी सन्तोंकी रुचिके अनुसार उनकी सेवामें ही सुख मानते थे। एक बार ये किसी दूसरे गाँवको गये और वहाँसे सन्त-सेवाके लिये एक गाड़ी गेहूँ लेकर चले। रास्तेमें कई डाकुओंने घेरकर कहा कि गाड़ी छोड़कर भाग जाओ अन्यथा तुम्हें जानसे मारकर हम लोग गेहूँकी गाड़ी हाँक ले जायेंगे। बिना किसी हर्ष-विषादके आप गाड़ी छोड़कर चल दिये। अभी आप बीस ही पग दूर गये थे कि प्रभुने कला दिखायी। दोनों बैल गाड़ीसे अलग होकर सिंहके समान गरजे और चोरोंको मारने दौड़े। सभी भागकर श्रीतुलसीदासजीके पास पहुँचे और चरणोंमें पड़कर बोले—महाराज! अपराध क्षमा करो, अपनी गाड़ी ले जाओ। आपने पूछा कि गाड़ी लेकर अब क्यों छोड़ रहे हो, उसे ले जाओ। तब उन्होंने सब हाल कहा और सदाके लिये श्रीतुलसीदासजीके भक्त बन गये। उन्होंने चोरी छोड़ दी। इस प्रकार आपने सन्त-सेवाके प्रतापसे दुष्टोंको भी सज्जन बनाया।

भगवद्भक्त नारियाँ

देमा प्रगट सब दुनी रामाबाई (बीरां) हीरामनि।
लाली नीरा लच्छि जुगुल पार्बती जगत धनि॥
खीचनि केसी धना गोमती भक्त उपासिनि।
बादररानी बिदित गंग जमुना रैदासिनि॥
जेवा हरसा जोइसिनि कुवँरिराय कीरति अमल।
अबला सरीर साधन सबल ए बाई हरिभजन बल॥ १७०॥

ये बाइयाँ शरीरसे अबला थीं, परंतु इनके भजन-साधन अत्यन्त सबल अर्थात् श्रेष्ठ थे। इनमें भक्तिका अपार बल था। सम्पूर्ण जगत्में प्रसिद्ध श्रीदमाबाई, रामाबाई, वीराबाई, हीरामनि, लाली, नीराँ, लक्ष्मीबाई, इस संसारमें धन्य दोनों पार्वती बाइयाँ, खीचनि, केशी, धनाबाई, भक्तोंकी उपासना करनेवाली गोमती, जगत् प्रसिद्ध बाँदररानी, गंगा-जमुना दोनों बाइयाँ (रैदासिनि), जेवाबाई, हरिषाबाई, जोइसिनि और पवित्र कीर्तिवाली कुँवरिरायजी॥ १७०॥

इनमेंसे कुछ भगवद्भक्त नारियोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीदमाबाईजी

श्रीदमाबाईजी अत्यन्त उच्चकोटिकी सन्त थीं। भगवद्भजनपरायण दमाबाईकी सन्त-सेवामें बड़ी रुचि थी। सन्तोंके श्रीमुखसे भगवद् गुणानुवाद सुनते-सुनते आपके मनमें अभिलाषा हुई कि प्रभु कृपा करके दर्शन दें, अपनी मनमोहिनी झाँकी दिखाकर मुझे कृतार्थ करें। इनकी निरन्तर उत्कट अभिलाषाको देखकर कई बार प्रभुने सन्त-वेशमें आकर इन्हें दर्शन दिया, पर ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌को पहचान न सकीं। जब इनकी व्याकुलता अधिक बढ़ गयी तो फिर श्रीठाकुरजी एक सन्तका रूप धारण करके आये। आपने बड़े प्रेमसे उन्हें भोजन कराकर पूछा—महाराज! कृपा करके यह बतलाइये कि इस युगमें भगवान्‌के दर्शन कभी किसीको होते हैं अथवा नहीं। सन्तरूपधारी प्रभुने कहा—'होते हैं, अवश्य होते हैं। आपको भी कई बार हो चुके हैं। एक बार बहुतसे पक्वान्नोंको आप परोसती गयीं, वे खाते चले गये, न उनको तृप्ति होती थी और न आपका भण्डार घटता था। तब आपको बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरी बार आपकी नाड़ी देखी और औषधि दी।' इन रहस्यमयी बातोंको सुनकर दमाबाई समझ गयीं कि ये भगवान् ही हैं, फिर इन्होंने पूछा कि इन गुप्त बातोंका आपको कैसे पता है? यह कह आपने आगे बढ़कर सन्त-वेशधारी भगवान्‌का हाथ पकड़ना चाहा, तभी वे अन्तर्धान हो गये। अब इन्हें विरह व्याप गया। व्याकुल होने, तड़पने और विलाप करने लगीं तो भगवान्‌ने स्वप्नमें दर्शन देकर सन्तुष्ट किया और समझाया कि मैं तुमसे दूर नहीं हूँ। तुम्हारी सन्त-सेवासे सन्तुष्ट हूँ। अमृतमयी प्रभुकी वाणीसे इन्हें परमानन्द हुआ।

श्रीलालीजी

श्रीलालीजीका स्वभाव अत्यन्त सरल था और साधु-सेवामें उन्हें बड़ी प्रीति थी। एक बार इनके पुत्रकी मृत्यु हो गयी। उस समय इनकी सन्त-भक्तिकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् एक सन्तका वेष धारण करके आ गये। सन्तको आया देखकर ऐसी प्रसन्नता हुई कि उससे पुत्र-मृत्युका दुःख विस्मृत हो गया। झट उन्होंने पुत्रके शवको छिपा दिया और सन्तकी सेवामें उपस्थित हो गयीं। आसनपर बैठाकर लालीजीने पूछा—'महाराज! आप रसोई अपने हाथसे स्वयं बनायेंगे अथवा मेरे श्रीठाकुरजीका प्रसाद ग्रहण करेंगे। भगवान्‌ने कहा—'हम तो तुम्हारे ही हाथसे बना प्रसाद पायेंगे।' श्रीलालीजी भोजन बनाने लगीं। इतनेमें भगवान् लालीजीके पतिका रूप धारण करके आये और उसे फटकारने लगे कि—'यह क्या? घरमें लड़का मरा पड़ा है और तू इस मुड़ियाके लिये पक्वान्न बना रही है। तुझे न मेरा भय है और न लोक-मर्यादा का।' श्रीलालीजीने बड़ी नम्रतासे कहा—पुत्रका संस्कार तो बादमें भी हो जायगा, परंतु यदि सन्त लौट गये तो इनका आना सम्भव नहीं। सन्त-भगवन्त तो लोक-मर्यादासे अतीत होते हैं। यह सुनकर सन्तरूपधारी प्रभुने कहा—क्या तुम्हारे पुत्रकी मृत्यु हो गयी है? बताओ, वह कहाँ है? मेरे पास एक जड़ी है, उससे मृतक भी जीवित हो जाता है। आज्ञा मानकर लालीजीने पुत्रका शव लाकर दिखाया। प्रभुने झट उसे जीवित कर दिया और बोले—अब तो मैं स्नान करने जा रहा हूँ। बादमें प्रसाद लूँगा। ऐसा कहकर वे चले गये फिर लौटकर वापस आये ही नहीं। जब लालीजीके पतिदेव आये तो रहस्य खुला। इस प्रकार भगवान्‌ने आकर दर्शन दिया और पुत्रको जीवित किया। इस अहैतुकी भगवत्कृपाका अनुभव करके सभीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

श्रीनीराजी

श्रीनीराबाई भक्त अंगदकी धर्मपत्नी थीं। जब श्रीअंगदजी श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करके राजाके बुलानेपर घर आये। तब आनन्दमग्न होकर उन्होंने हीरा धारण किये श्रीजगन्नाथजीकी शोभाका खूब वर्णन किया। उसे सुनकर भक्तिमती श्रीनीराबाईके मनमें भी प्रभु-दर्शनकी तीव्र लालसा जग उठी। इनकी उत्कट प्रेममयी उत्कण्ठा देखकर भगवान् पुरुषोत्तम प्रकट हो गये। पतिमुखसे वर्णित सुन्दर रूपमाधुरीका दर्शनकर श्रीनीराजी कृतार्थ हो गयीं और विनती करने लगीं। इसी बीच वहीं श्रीअंगदजी भी आ गये। उन्होंने भी दर्शन किया। भगवान्‌ने कहा—'तुम्हारी भक्ता पत्नीको दर्शन देनेके लिये मैं पुरुषोत्तमपुरीसे आया हूँ। इनके विशाल प्रेमजालने मुझे खींच लिया।' तब श्रीअंगदजीने हाथ जोड़कर कहा कि इस भक्ताको धन्य है, जिसके प्रेमवश आपने पधारकर मुझे भी दर्शन दिया। इस प्रकार प्रभु भक्त-दम्पतीको कृतार्थकर अन्तर्धान हो गये।

श्रीखीचनीजी

खीची जातिमें उत्पन्न होनेके कारण आपका 'खीचनी' यह नाम पड़ गया था। एक राजाके साथ आपका विवाह हुआ था। आपका सन्तोंके चरणोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा-भारी प्रेम था। एकबार खीचनीजीने सुना कि अमुक गाँवमें सन्तजन पधारे हैं। उनका नाम सुनकर इन्होंने अनेक पक्वान्न बनाये और एक दासीके हाथ भेज दिये। साथमें एक लड़केको भी भेजा। दासी सन्तोंको पक्वान्न और भेंट देकर वापस लौटी। मार्गमें लुटेरोंने लड़केको मारकर भगा दिया और दासीको पकड़कर ले गये। लड़केने आकर समाचार सुनाया तो राजाको रानीपर क्रोध आ गया। वह रानी खीचनीको डाटने लगा—मुण्डे वैरागियोंकी सेवामें मेरी दासी क्यों भेजी? वह बड़ी सुन्दर, चतुर और मुझे प्यारी थी। अब वैसी दासी कहाँ मिलेगी? हो सकता है कोई वैरागी ही उसे उड़ा ले गया हो? ऐसे वाक्वाणोंसे रानीका हृदय घायल हो गया। सन्त-निन्दा उससे सही नहीं जा रही थी, अब तो वह श्रीठाकुरजीसे प्रार्थना करने लगी कि 'प्रभो! किसी तरह सन्तोंकी प्रतिष्ठा हो, राजाके मनमें भी सन्तोंके प्रति प्रेम हो।' करुण-पुकार सुनकर सन्त-सेवासे सन्तुष्ट भगवान्ने दासीको लाकर राजमहलमें खड़ा कर दिया। दासीने राजासे कहा कि मैं घने वनसे यहाँ कैसे आ गयी, मुझे भी पता नहीं। रानी खीचनीके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। राजाके मनमें भी सन्त और भगवन्तके प्रति श्रद्धा हो गयी।

श्रीकेशीबाईजी

श्रीकेशीबाईजी भक्त श्रीखोजीजीकी धर्मपत्नी थीं। खोजीजीके भावानुकूल श्रीकेशीबाईका भी सन्त-सेवामें बड़ा प्रेम था। एकबार सरदीके समयमें आपके यहाँ कई सन्तोंका शुभागमन हुआ। कपड़ोंकी कमीसे उन्हें ठिठुरता हुआ देखकर आपने अपने पतिदेवसे कहा कि इन सन्तोंके लिये वस्त्रोंका प्रबन्ध कीजिये। श्रीखोजीजीने कहा कि इस समय मेरे पास धनका अभाव है, अतः यदि तुम अपने आभूषण दे दो तो उन्हें बेचकर सन्तोंको वस्त्र दिये जा सकते हैं। स्त्रियोंको आभूषणोंसे मोह रहता है, पर इन्हें तो सन्त-सेवामें प्रेम था, अतः बड़ी प्रसन्नतासे इन्होंने अपने आभूषण देकर सन्तोंके लिये वस्त्र बनवा दिये।

श्रीबाँदररानीजी

श्रीबाँदररानीजीका नाम मोहनदासी था और ये स्वामी हरिदासजीकी शिष्या थीं। ये बन्दरोंको चने चुगाकर उनका पालन करती थीं, अतः इनका बाँदररानी यह उपनाम प्रसिद्ध था।

श्रीबाँदररानी वानरवंशी श्रीलाखाजीकी धर्मपत्नी थीं। इन्हें सन्त-सेवा बहुत प्यारी थी। इनके पतिदेवने जब दण्डवत् करते हुए श्रीजगन्नाथजीकी यात्रा की, तब घरमें रहकर आपने सन्त-सेवा शुरू रखी। श्रीलाखाजी कुछ दिनोंतकके लिये सामानका संग्रह कर गये थे। जब वह समाप्त हो गया तो बाँदररानीने आभूषण बेंचकर सन्त-सेवा की। उसके बाद घरके बर्तन बेंच दिये, परंतु सन्त-सेवामें कमी नहीं आने दी। उनके बाद अन्नकी कमीका अनुभव होने लगा। अब साधु-सेवा कैसे होगी, इस बातकी बड़ी-भारी चिन्ता हुई। जो अपने धर्ममें दृढ़ है, उसके धर्मकी रक्षा भगवान् करते हैं। भगवान्ने एक राजाको स्वप्न दिया कि लाखा भक्तकी स्त्रीके पास खर्चेकी कमी हो गयी है, अतः साधु-सेवाके लिये तुम उन्हें अन्न-धन दो। राजाने प्रातःकाल होते ही स्वप्नका स्मरण किया और अपना सौभाग्य मानकर बहुत-सा सामान लाखाजीके घर भेज दिया। इस प्रकार बाँदररानीकी सेवा-निष्ठासे निरन्तर सेवा चलती रही।

गंगा-जमुनाबाई

सोलहवीं शताब्दीमें इस देशमें मुसलमानोंका अत्याचार काफी जोरपर था। उस समय एक मुगल सरदारने कामवनपर चढ़ाई की और गाँवों को खूब लूटा। इस लूट-खसोट और भीषण नर-हत्याकाण्डमें गंगा-यमुना दो असहाय लड़कियोंको भी अपने घर और कुटुम्बसे हाथ धोना पड़ा। इस समय इनकी अवस्था ९-९ वर्षकी थी। ये जंगलमें भाग छिपी थीं। इसीसे इनके प्राण बच गये।

प्रभुकी लीला विचित्र है। जिस समय गंगा-यमुना जंगलमें अकेली भूखसे रो रही थीं, उसी समय मनोहरदास नामक कोई ब्राह्मण वहाँसे निकला। उसे उन बालिकाओंपर दया आयी और वह इन्हें मथुरा ले आया। उसने उन दोनों बालिकाओंको नृत्य-गानकी अच्छी शिक्षा दी और पाँच वर्षोंमें उन्हें इस कलामें निपुण कर दिया। अब वह इन्हें जगह-जगह नचाकर इनसे पैसे कमाने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा-यमुना दोनों अत्यन्त सुन्दरी थीं। अत: मनोहरदासको खूब धन मिलता, किंतु वह इनसे अधिक-से-अधिक रुपया कमाना चाहता था। इसलिये उसने इन्हें बेचनेका विचार किया। एक दिन वह आगरेके किसी राजा मानसिंहके यहाँ इनका सौदा भी कर आया। सौदा दो हजार रुपयोंका हुआ। पापका फल शीघ्र मिल जाता है। मनोहरदास सौदा करके आया और कन्या-विक्रयके ही पापसे दूसरे दिन मर गया। मरते समय वह अपना गुप्त धन इन कन्याओंको बता गया।

अस्तु, अबतक गंगा-यमुना अपने गुणके लिये प्रसिद्ध हो गयी थीं। उनकी कला और गानका आनन्द लेनेके लिये श्रीवृन्दावनके एक वृद्ध संत श्रीपरमानन्ददासजी कभी-कभी मनोहरदासके यहाँ आया करते। उनसे गंगा-यमुनाका परिचय और प्रेम था। मनोहरदासके मरनेपर दोनों बहनें बाबा श्रीपरमानन्ददासजीके आश्रयमें चली आयीं। अब उन्हें इस नृत्य-गानसे घृणा हो चुकी थी और संत-संगके प्रभावसे स्वाभाविक ही भजनमें उनकी रुचि हो गयी थी। धीरे-धीरे उनका मन इस संसारके विषयोंसे उपरत हो गया। अब दोनों बहनोंने वैष्णवी-दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। बालिकाओंकी सच्ची जिज्ञासा देखकर श्रीपरमानन्ददासजीने उन्हें अपने गुरुदेव गोस्वामी श्रीहितहरिवंशचन्द्रके शरणापन्न करा दिया। वैष्णवी दीक्षा लेकर गंगा-यमुना दोनों श्रीठाकुरजीकी सेवा, नाम-जप और पाठ-भजन आदि बड़ी प्रीतिसे करने लगीं। इनके पास जो मनोहरदासकी सम्पत्ति थी, उसे साधु-संतोंकी सेवामें लगाने लगीं। इससे उन्हें अत्यधिक आनन्द मिलता।

इस प्रकार कितने ही दिन बीतनेके पश्चात् उनके जीवनमें एक उपद्रव आया। गंगा-यमुनाके रूप-लावण्यकी चर्चा तो सर्वत्र थी ही, मथुराके हाकिम अजीज़बेगने भी सुनी। उसने जाकर इन्हें देखा भी। तब तो मानो उसकी छातीपर साँप-सा लोटने लगा। अजीज़बेगने चुपकेसे दूसरे दिन गंगा-यमुनाकी कुटियाके आस-पास घेरा डाल दिया और रात्रिके समय उनकी कुटियापर आया। उसने वहाँ एक सिंहको रखवाली करते पाया। सिंहने गर्जना करके उसे खूब डराया भी। वह भागा-भागा अपने घर आया। डरके मारे उसे ज्वर आ गया। कई बार मूर्च्छा भी हुई। सारी रात बड़े कष्टसे बीती।

यह सब तो हुआ, पर गंगा-यमुनाको इस बातका कि कोई आया भी था, पतातक न चला। वे तो संतोंके संगमें बैठी हरिगुणगान करती रहीं। सबेरा होनेपर अजीज़बेग गंगा-यमुनाके पास आया और उन्हें माता शब्दसे सम्बोधित करके उसने अपना अपराध क्षमा कराया। उसीने उन्हें सिंहकी कथा भी सुनायी तथा बहुत-सा द्रव्य भेंट किया। किंतु इन्होंने उसके धनको छुआतक नहीं और उसे संतोंकी सेवामें लगा देनेका उपदेश दिया।

श्रीकान्हरदासजी

श्रीगुरु सरनै आय भक्ति मारग सत जान्यो।
संसारी धर्म छाँड़ि झूँठ अरु साँच पिछान्यो॥
ज्यों साखा द्रुम चंद जगत सों इहिं बिधि न्यारौ।
सर्बभूत समदृष्टि गुननि गंभीर अति भारौ॥
भक्त भलाई बदन नित, कुबचन कबहूँ नहिं कह्यो।
कन्हरदास संतनि कृपा हरि हिरदै लावो लह्यो॥ १७१॥

श्रीकान्हरदासजीने सन्तोंकी कृपासे यह महान् लाभ प्राप्त किया कि अपने हृदयमें भगवान्को स्थापित किया। इन्होंने गुरुदेवकी शरणमें आकर भक्तिमार्गको सच्चा, सात्त्विक, सरल और श्रेष्ठ जाना। आपने संसारी धर्मको त्यागकर क्या सत्य है और क्या झूठ है, इस बातको पहचाना और सत्‌का ग्रहण तथा असत्‌का त्याग किया। भगवद्धर्मको स्वीकार किया। आप संसारसे उसी प्रकार अलग रहे, जैसे पेड़की शाखासे चन्द्रमा अलग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_16__Front

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दूर रहता है, लेकिन दिखानेके लिये पेड़के पासमें बताया जाता है। आप संसारके सभी प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखते थे। अनेक सद्गुणोंसे युक्त थे। अतः आप महान् थे। आपने अपने मुखसे सदा सज्जनों-भक्तोंकी प्रशंसा की। मिथ्या, कटु और परनिन्दारूप कुवचन आपने कभी नहीं कहे॥ १७१॥

श्रीकेशवजी लटेरा और श्रीपरशुरामजी

कहनी रहनी एक एक प्रभु पद अनुरागी।
जस बितान जग तन्यो संत संमत बड़भागी॥
तैसोइ पूत सपूत नूत फल जैसोइ परसा।
हरि हरिदासनि टहल कबित रचना पुनि सरसा॥
(श्री) सुरसुरानंद संप्रदा दृढ़ केसव अधिक उदार मन।
लट्यो लटेरा आन बिधि परम धरम अति पीन तन॥ १७२॥

श्रीकेशवदासजी लटेरा आचार-विचारका जैसा उपदेश देते थे, उसीके अनुसार स्वयं आचरण भी करते थे। प्रभुके श्रीचरणोंमें आपका अनन्य प्रेम था। सारे संसारमें आपकी कीर्ति फैली हुई थी। सन्तोंकी सम्मति आपके साथ थी, अतः आप बड़भागी थे। जैसे निष्ठावान् सन्तसेवी भक्त श्रीकेशवजी थे, वैसे ही उनके सुपुत्र श्रीपरशुरामजी भी थे। श्रीकेशवरूप कल्पवृक्षके अनोखे, सन्तोंसे प्रशंसनीय फल श्रीपरशुरामजी थे। ये भगवान् और उनके भक्तोंकी प्रेमसे सेवा करते थे तथा सरस पदोंकी रचना भी करते थे। ये आचार्य श्रीरामानन्द स्वामीके शिष्य श्रीसुरसुरानन्दजीके शिष्य थे। अपने सम्प्रदायकी पद्धतिके कट्टर अनुयायी और परम उदार हृदयके थे। ये महोत्सव आदि वैष्णवधर्मके पालन करनेमें परम पुष्ट और विवाह आदि संसारी कार्योंके लिये अत्यन्त दुर्बल थे अर्थात् बहुत कम खर्च करते थे॥ १७२॥

श्रीकेवलरामजी

भक्ति भागवत बिमुख जगत गुरु नाम न जानैं।
ऐसे लोक अनेक ऐंचि सनमारग आनैं॥
निर्मल रति निहकाम अजा तें सदा उदासी।
तत्त्वदरसि तम हरन सील करुना की रासी॥
तिलक दाम नवधा रतन कृष्न कृपा करि दृढ़ दिया।
'केवलराम' कलिजुगा के पतित जीव पावन किया॥ १७३॥

श्रीकेवलरामजीने साधनपथभ्रष्ट अनेक (सिन्ध-देशके) पतित जीवोंका उद्धार किया। जो लोग भक्त, भगवान्, वैष्णवधर्म और गुरुओंसे विमुख थे, इन सबकी निन्दा करते थे, इनकी महिमासे सर्वथा अपरिचित थे, ऐसे अनेक नारकी लोगोंको खींचकर भक्तिमार्गमें लाये। भगवान्‌में आपका निष्काम प्रेम था। माया एवं मायिक जगत्‌से आप सर्वथा उदासीन थे। शास्त्रोंका अध्ययन करके आपने भगवत्-तत्त्वको जान लिया था, अतः अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेमें आप समर्थ हुए। आप सत्य, सदाचार और करुणाके निधान थे। आपने तिलक, कण्ठी, नवधा भक्तिरत्न और श्रीकृष्णकी कृपाको श्रीकृष्णकी कृपासे लोगोंके मनमें दृढ़तासे स्थापित करके पतित जीवोंको पवित्र किया॥ १७३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकेवलरामजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकेवलरामजी सबके घरोंमें, द्वारोंपर जाकर यही कहते कि आपलोग कृपा करके हमको यह दान दें कि 'सदा मन लगाकर भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा कीजिये और उनके नामका जप कीजिये।' एक बार आपने दस-बीस ऐसे अनाचारी देखे, जिनका वेश तो वैष्णवोंका-सा था, परंतु आचरण दुष्टोंका-सा था। उनपर दया करके आपने उन्हें भगवान् शालग्रामकी मूर्तियाँ, मन्त्र, गोपीचन्दन, तुलसी-मालाएँ दीं और सेवा-पूजाकी विधि सिखा दी। वे सब सच्चे सदाचारी वैष्णव बन गये। करुणानिधान तो आप ऐसे थे कि संसारमें आप-सरीखा दूसरा कहीं नहीं देखा-सुना गया। एक बार किसी बनजारेने आपके सामने बैलको जोरसे डण्डा मारा। दयावश आपको उसकी पीड़ाका ऐसा अनुभव हुआ कि आप उसी क्षण धरतीपर गिर गये। डण्डेका निशान आपकी पीठपर उभर आया। इसे तन और मनकी सच्चाई कहते हैं। श्रीकेवलरामजी तदाकार हो गये थे, उन्होंने बैलके और अपने शरीरमें भेद नहीं माना, उसके कष्टको अपना माना। (ऐसा तादात्म्य देखकर बनजारा भी वैष्णव बन गया।) ऐसी दयालुताका वर्णन वाणीसे समझकर कैसे किया जाय। महापुरुष ही अनुभव करके जान सकते हैं।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकेवलरामजीकी दयालुताका एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

घर घर जाय कहैं यहै दान दीजै मोकों कृष्ण सेवा कीजै नाम लीजै चित लायकै।
देखे भेषधारी दस बीस कहूँ अनाचारी दये प्रभु सेवनि कों रीति दी सिखायकै॥
करुणानिधान कोऊ सुने नहीं कान कहूँ, बैल के लगायौ साँटौ लोटे दया आयकै।
उपट्यो प्रगट तन मन की सचाई अहो, भए तदाकार कहौं कैसे समुझायकै॥ ६००॥

श्रीआसकरनजी

धर्मसील गुनसींव महाभागवत राजरिष।
पृथीराज कुलदीप भीमसुत बिदित कील्ह सिषि॥
सदाचार अति चतुर बिमल बानी रचना पद।
सूर धीर ऊदार बिनय भलपन भक्तनि हद॥
सीतापति राधा सुबर भजन नेम कूरम धर्यो।
(श्री) मोहन मिश्रित पद कमल आसकरन जस बिस्तर्यो॥ १७४॥

राजर्षि भक्त श्रीआसकरनजी धर्म, शील और सद्गुणोंकी सीमा थे। आप आमेरनरेश श्रीपृथ्वीराजके पौत्र, श्रीभीमसिंहजीके पुत्र और स्वामी श्रीकील्ह-देवजीके शिष्य थे। ये सदाचारका पालन करनेमें परम चतुर थे। आपकी वाणी निर्मल थी, आपने अनेक पदोंकी रचना की। आप शूरवीर, धीर, गम्भीर, उदार, विनयी, बड़प्पन आदिसे युक्त तथा भक्तोंमें श्रेष्ठ थे। कूर्मवंशीय श्रीआसकरनजी सीतापति श्रीरामचन्द्र और राधापति श्रीकृष्णचन्द्र—दोनोंकी नियमपूर्वक सेवा (भजन) करते थे। जिन दोनों ठाकुरोंके नाममें मोहन शब्द जुड़ा है, ऐसे श्रीजानकीमोहन और श्रीराधामोहन—इन दोनों इष्ट स्वरूपोंके श्रीचरणकमलोंकी आशा करनेवाले श्रीआसकरनजीका सुयश सर्वत्र फैल गया॥ १७४॥

राजर्षि आसनकरनजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

मनुष्योंमें श्रेष्ठ श्रीआसकरनजी नरवरगढ़के राजा थे। आप मनमोहन भगवान्‌को मनमें धारण करके चार घण्टेतक लगातार मन्दिरमें रहकर प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करते थे। उस समय द्वारपर चौकीदारको बैठा देते। कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर जाने नहीं पाता। इस प्रकार आपकी बुद्धि सेवामें भलीभाँति रम गयी थी। एक बार किसी आवश्यक कार्यसे नरवरगढ़में दिल्लीका बादशाह आया और उसने अपने सेवकोंसे कहा कि 'आसकरनजीको शीघ्र ही लिवा लाओ।' वे लोग आये तो उस समय ये मन्दिरमें थे, अतः बादशाहके दूतोंकी बात यहाँ किसीने नहीं सुनी। पहरेदारोंने आसकरनजीको सूचना देनेसे इनकार कर दिया। तब बादशाहने अपनी आज्ञाका उल्लंघन मानकर बड़ी भारी सेना भेज दी। सेनापतिने आकर कहा 'मेरे आनेकी सूचना राजा आसकरनके पास भेजो।' इस बातको सुनकर भी लोगोंने टाल दिया। सेवामें विघ्न-भयसे सूचना न दी। अब क्या होगा, यह विचारकर लोगोंके मनमें बड़ी घबड़ाहट पैदा हो गयी।

बादशाहके सेनापतिने बादशाहके पास सूचना भेजी कि 'हमारे कहनेसे भी कोई राजाको खबर नहीं पहुँचा रहा है, आपकी आज्ञा हो तो मैं युद्ध छेड़ दूँ।' यह सुनकर बादशाहके मनमें रुचि उत्पन्न हुई कि राजा कैसा सेवानिष्ठ है, चलकर देखना चाहिये। अब बादशाह स्वयं ही वहाँ आया। तब सभी राजकर्मचारी बड़े सोच-विचारमें पड़ गये कि अब क्या करना चाहिये। उन लोगोंने बादशाहसे कहा—हम राजाकी आज्ञाका उल्लंघन करके वहाँ नहीं जा सकते हैं और न कुछ सूचना ही दे सकते हैं। आप चाहें तो अकेले जा सकते हैं। बादशाह भीतर गया तो उसे वहाँका दृश्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय श्रीआसकरनजी भगवत्सेवा पूरी करके भूमिपर लेटकर साष्टांग दण्डवत्प्रणाम कर रहे थे। बादशाह खड़ा देखता रहा, बड़ी देर हो गयी फिर भी ये न उठे। तब बादशाहने राजा आसकरनके पैरमें तलवार मारी, इससे राजाकी एड़ी तो कट गयी, परंतु उनकी भौंह भी टेढ़ी नहीं हुई अर्थात् कष्टका किंचित् अनुभव नहीं हुआ। नित्य-नियमके अनुसार राजाने बड़ी शान्ति एवं धैर्यके साथ सब कार्य सम्पन्न किया। इस प्रकार राजाने अपना अद्भुत धैर्य दिखलाया।

श्रीआसकरनजी भगवान्‌को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके उठे और उन्होंने चिक (परदा) डाल दिया। पश्चात् मुड़कर पीछे देखा तो बादशाह दिखायी पड़ा। तब इन्होंने शिष्टाचारके अनुसार उसे जोहार (सलाम) किया। राजाकी भगवत्सेवामें नियम-निष्ठाको देखकर बादशाह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। प्रेमकी सच्चाई यही है कि उसमें थोड़ी भी शिथिलता या बनावटीपना न हो। इसके बाद बादशाहने श्रीआसकरनजीसे प्रेम-नेमके सम्बन्धमें कुछ बातचीत की और इनके विचार सुनकर वह बहुत ही खुश हुआ। उसका हृदय भक्ति-रससे सराबोर हो गया। कुछ दिनोंके बाद श्रीआसकरनजी शरीरको त्यागकर भगवद्धाम चले गये। यह सुनकर बादशाहको बहुत कष्ट हुआ। फिर कुछ दिनोंके बाद उसने सुना कि सेवा-पूजा और भोग-रागके अभावमें श्रीठाकुरजी कष्ट पा रहे हैं। तब उसने सेवा-पूजा करनेवाले ब्राह्मणोंको अलग-अलग गाँव लिख दिये और उन पुजारियोंको आदेश दिया कि आसकरनजीके प्राण-प्यारे ठाकुरजीकी सेवा-पूजा आपलोग बड़े प्रेम-नेमसे किया कीजिये। इस प्रकार भगवत्सेवाका यथोचित प्रबन्ध करके बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

नरवर पुर ताकौ राजा नरवर जानौ मोहन जू धरि हियै सेवा नीके करी है।
घरी दस मन्दिर में रहैं रहै चौकी द्वार, पावत न जान कोऊ ऐसी मति हरी है॥
पर्‍यो कोऊ काम आय अबहीं लिवाय ल्यावौ कहै पृथीपति लोग कान में न धरी है।
आई फौज भारी सुधि दीजिये हमारी, सुनि वहू बात टारी, परी अति खरबरी है॥ ६०१॥
कहिकै पठाई 'कहौ कीजियै लराई' सुनि रुचि उपजाई चलि पृथीपति आयौ है।
पर्‍यौ सोच भारी, तब बात यों बिचारि कही 'आप एक जावौ', गयौ अचरज पायौ है॥
सेवा करि सिद्धि, साष्टाङ्ग ह्वै कै भूमि परे, देखि बड़ी बेर, पांव खडग लगायौ है।
कटि गई एड़ी, एपै टेढ़ीहू न भौंह करी करी नित नेम रीति धीरज दिखायौ है॥ ६०२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठि चिक डारि, तब पाछें सो निहारि, कियौ मुजरा विचारि, बादशाह अति रीझे हैं।
हित की सचाई यहै नेकु न कचाई होत, चरचा चलाई भाव सुनि सुनि भीजे हैं॥
बीते दिन कोऊ नृप भक्त सो समायौ, पृथीपति दुख पायौ, सुनी भोग हरि छीजे हैं।
करै विप्र सेवा तिन्हैं गाव लिखि न्यारे दिये वाके प्रान प्यारे लाड़ करौ कहि धीजे हैं॥ ६०३॥

श्रीहरिवंशजी

कथा कीरतन प्रीति संत सेवा अनुरागी।
खरिया खुरपा रीति ताहि ज्यों सर्बसु त्यागी॥
संतोषी सुठि सील असद आलाप न भावै।
काल बृथा नहिं जाय निरंतर गोबिंद गावै॥
सिष सपूत श्रीरंग को उदित पारषद अंस के।
निहकिंचन भक्तनि भजै हरि प्रतीत 'हरिबंस' के॥ १७५॥

श्रीहरिवंशजी परम निष्किंचन भक्त थे। सभी भक्तोंकी विशेषकर निष्किंचन भक्तोंकी बड़े प्रेमसे सेवा करते थे। जिस प्रकार द्वापरके एक घसियारेने मात्र खरिया-खुरपाका दान करके श्रेष्ठ लोक तथा प्रसिद्धि पायी। उसी प्रकार आपने भी अपना सर्वस्व भक्तोंकी सेवामें अर्पितकर 'सर्वस्व दानी' पद प्राप्त किया। आप परम सन्तोषी और अत्यन्त नम्र थे। झूठ बोलना और बुरी बात कहना आपको अच्छा नहीं लगता था। समयको व्यर्थ न बिताकर निरन्तर भगवान्‌के गुणोंको गाते रहते थे। आप श्रीरंगजीके सुपात्र शिष्य एवं पुत्र थे और भगवत्पार्षदोंके अंशरूपमें प्रकट हुए थे। भगवान्‌में आपका अटल विश्वास था॥ १७५॥

श्रीकल्याणजी

नवकिसोर दृढ़ब्रत अनन्य मारग इक धारा।
मधुर बचन मन हरन सुखद जानत संसारा॥
पर उपकार बिचार सदा करुना की रासी।
मन बच सर्बस रूप भक्त पद रेन उपासी॥
धर्मदास सुत सील सुठि (मन) मान्यो कृष्न सुजान के।
हरिभक्ति भलाई गुन गंभीर बाँटे परी कल्यान के॥ १७६॥

अगाध गुणोंसे युक्त भगवान्‌की भक्ति और भलाई श्रीकल्याणदासजीके हिस्से आयी। चंचल नदीकी धाराकी तरह आपकी चित्तवृत्ति निरन्तर नवकिशोर श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर प्रवाहित रहा करती थी। आपकी अनन्य भावसे भजन करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा थी। आपके मधुर वचन मनोहर और सुखप्रद थे, इस बातको सभी लोग जानते थे। सदा दूसरोंके साथ उपकार करनेका विचार इनके मनमें रहता था। आप कृपा-करुणाके निधान थे। मन-वाणी और अपने समस्त धनसे भक्तोंके चरणोंकी रजकी उपासना करते थे। सुन्दर शीलवान् श्रीकल्याणदासजी श्रीधर्मदासजीके पुत्र थे और भक्तोंके मनकी बातोंको जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रको परम प्रिय थे॥ १७६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीबीठलदासजी

आदि अंत निर्बाह भक्त पद रज ब्रतधारी।
रह्यो जगत सों ऐंड़ तुच्छ जानै संसारी॥
प्रभुता पति की पधति प्रगट कुल दीप प्रकासी।
महत सभा मैं मान जगत जानै रैदासी॥
पद पढ़त भई परलोक गति गुरु गोबिंद जुग फल दिया।
बिठलदास हरि भक्ति के दुहूँ हाथ लाडू लिया॥ १७७॥

श्रीबीठलदासजीने भगवद्भक्तिके दोनों फलों (लोकमें सन्तसेवा परलोकमें प्रभुसेवा)-को प्राप्त किया। आपने आदिसे अन्ततक अर्थात् जीवनभर भक्तोंकी चरणरजको प्रतिज्ञापूर्वक सिरपर धारण किया अर्थात् सब प्रकारसे सन्तोंकी सप्रेम सेवा की। अहंकारी धनिकों और विमुखोंको आपने तुच्छ जाना, कभी उनकी खुशामद नहीं की। सर्वदा भगवद् बलपर उनसे ऐंठकर ही चलते थे। आप प्रभुताके पतिकी पद्धतिमें (अर्थात् श्रीसम्प्रदायमें श्रीरैदासजीकी प्रणालीसे सन्तसेवा करके) अपने कुलके दीपक हुए। सभी जानते थे कि आप रैदासवंशी हैं, परंतु बड़ी-बड़ी सभाओंमें बड़े-बड़े महापुरुष आपका सम्मान करते थे। भगवल्लीलापदोंको पढ़ते-पढ़ते आपने शरीर छोड़ा और भगवद्धामको प्राप्त किया। आपपर प्रसन्न होकर श्रीगुरु और गोविन्द दोनोंने दो फल दिये, अतः आपके दोनों हाथोंमें हरिभक्तिके लड्डू रहे॥ १७७॥

भगवद्भक्तोंके भक्त

क्वाहब श्रीरँग सुमति सदानंद सर्बसु त्यागी।
स्यामदास लघुलंब अननि लाखै अनुरागी॥
मारू मुदित कल्यान परसबंसी नारायन।
चेता ग्वाल गुपाल सँकर लीला पारायन॥
सन्त सेय कारज किया तोषत स्याम सुजान कों।
भगवंत रचे भारी भगत भक्तनि के सनमान कों॥ १७८॥

भगवद्भक्तोंकी सेवा करनेके लिये भगवान्ने इन सन्तोंको प्रकट किया। इन सन्तोंने भक्तोंकी सेवाके द्वारा भगवान्को प्रसन्न किया। श्रीक्वाहबजी, सुन्दर मतिवाले श्रीरंगजी, सन्तसेवाके लिये सर्वस्वका त्याग करनेवाले श्रीसदानन्दजी, लघुलम्ब (बौने) श्रीश्यामदासजी, अनन्य भक्त श्रीलाखाजी, मारु रागके प्रवीण गायक श्रीकल्याणनजी, परसवंशमें उत्पन्न श्रीनारायणजी, श्रीचेताजी, श्रीग्वालजी, श्रीगोपालजी और भगवान्की लीलाओंके प्रेमी श्रीशंकरजी—इन भक्तोंने सन्तसेवा रूप महान् कार्य किया। उससे सुजान श्यामसुन्दर सन्तुष्ट हुए॥ १७८॥

भगवद्भक्तोंकी सेवा करनेवाले इन भक्तोंमेंसे कुछका चरित इस प्रकार है—

श्रीसदानन्दजी

आप बड़े प्रेमसे सन्त-सेवा करते थे। आप सर्वस्व त्यागकर भी सन्तोंको सन्तुष्ट करना अपना कर्तव्य समझते थे। एक बार एक सन्त इनके पास आकर बोले—मैं बड़ा अभागी हूँ। मेरे पास रहनेके लिये घर नहीं है। जो था वह भी छिन गया। खाने-पहननेके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्न-वस्त्र नहीं है, अतः मेरे रहने और खाने-पीनेका प्रबन्ध कर दीजिये। श्रीसदानन्दजीने कहा—आप अपने कुटुम्बके साथ आज ही मेरे स्थानमें आ जाइये, रहिये, खाइये। मैं अपने लिये वनमें एक झोपड़ी बना लूँगा। ऐसा कहकर अपना सर्वस्व उसे सौंपकर स्वयं वनमें जाकर रहने लगे। भगवान्ने अपने एक धनी भक्तको स्वप्नादेश दिया कि 'मेरा प्रिय भक्त सदानन्द वनमें रह रहा है। एक आश्रम बनवाकर उसमें उसे रखो।' उसने आश्रम बनवाकर इन्हें रखा और खर्चेके लिये सीमित सीधा-सामान भी देने लगा, पर इनके यहाँ सन्तोंकी भीड़ अधिक होती। कभी-कभी सामानकी कमी पड़ने लगी। एक दिन आप उस स्थानको छोड़कर कहीं चले गये। इनके जाते ही साधुओंकी बड़ी जमात आ गयी। तब भगवान् सदानन्दजीका रूप धारण करके आये और उन्होंने सभी सन्तोंकी खूब सेवा की तथा आश्रमको अन्न-धनसे भर दिया। फिर वैश्य भक्तका रूप बनाकर श्रीसदानन्दजीके पास आये और बोले—अरे! आप यहाँ कैसे आ गये? अभी तो आप सन्तोंकी पंगत करा रहे थे। मैंने देखा है, आपके आश्रममें ऋद्धि-सिद्धिके भण्डार भरे हैं। पंगत करके सन्तोंने वरदान दिया है कि सदानन्द! तुम्हारे यहाँ सदा ही आनन्द रहेगा। कभी किसी वस्तुकी कमी न होगी। यह सुनकर आप आये और मन-ही-मन अपने आराध्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपाकी अनुभूति की।

श्रीनारायणदासजी

आपकी सन्त-सेवामें बड़ी प्रीति थी। एकबार एक राजा आश्रमके समीप हरे वृक्षोंको कटवा रहा था। श्रीनारायणदासजीने मना किया, पर वह नहीं माना। राजकर्मचारी पेड़ काटने लगे। तब आप पेड़के समीप खड़े हो गये और बोले कि मैं पेड़को नहीं काटने दूँगा। पेड़ काटना जीवहत्याके समान है। राजकर्मचारियोंको क्रोध आ गया। एकने श्रीनारायणदासजीपर जैसे ही प्रहार किया, वैसे ही स्वयं चिल्लाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और छटपटाने लगा। इस समाचारको सुनकर राजा भी वहीं आ गया। प्रहार करनेवालेको चोट लगी। सन्त जीवकी रक्षा कर रहे थे, अतः उन्हें चोट नहीं लगी। इस चमत्कारसे प्रभावित होकर राजाने श्रीनारायणदासजीका विशेष सत्कार किया और इनके उपदेशोंको स्वीकार किया। केवल प्राणियोंके प्रति ही नहीं, वृक्षोंके प्रति भी इनके मनमें करुणा थी।

श्रीशंकरजी

सन्तसेवी श्रीशंकरजी एकबार अपने गाँवसे बाहर दूसरे गाँवमें गये हुए थे। वहाँपर आपने किसी सेठके द्वारपर कई साधुओंको देखा। निकट जाकर दण्डवत् प्रणाम करनेके बाद पूछनेपर मालूम हुआ कि सन्तजन गेहूँका आटा और कुछ घी भगवान्के भोगके लिये माँग रहे हैं और वह सेठ बेझड़के आटेकी पर्ची दे रहा है। श्रीशंकरजीने उससे कहा कि—तेरी गाँठसे क्या जा रहा है? पर्ची तुम्हें बनानी है। सामान पंचायती मिलना है। गेहूँका ही आटा और थोड़ा घी दे दो। सन्त-सेवा हो जायगी, इसमें तुम्हारी क्या हानि होगी? यह सुनकर सेठने क्रुद्ध होकर कहा—'यदि आप ऐसे बड़े सन्तसेवी हैं तो इन्हें ले जाइये और मनमाना भोजन कराइये।' इसपर आपने सन्तोंसे विनती करके कहा—भगवन्! आप लोग मेरे यहाँ चलिये। अश्रद्धालुका अन्न लेना उचित नहीं है। आपके पास आवश्यक सीधा-सामान न था। इसलिये घरका कुछ सामान बेचकर आपने गेहूँका आटा और घी आदि लाकर सन्तोंको दिया। सन्तोंने भोग लगाया, पाया। आपकी इस सेवा-निष्ठापर प्रसन्न होकर भगवान् एक वैश्यका रूप धारण करके आये और एक पात्रमें भरकर मुहरें देते हुए बोले कि—हमें प्रभुकी आज्ञा हुई है, अतः हम यह धन सन्त-सेवाके निमित्त देते हैं, आप स्वीकार करें। ऐसा कहकर वे तुरंत अन्तर्धान हो गये। तब आपने जाना कि ये तो स्वयं प्रभु ही थे। कृपा करके आये और सन्त-सेवाका उपदेश दे गये।

श्रीलाखाजी

ये गुनीर गाँव हँसुवा फतेहपुरके निवासी अध्वर्यु ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम श्रीपरमानन्द था। गुनीर गाँव गंगाजीके तटपर बसा हुआ है, वहीं झोंपड़ी बनाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीलाखादासजी रहते थे। इनका गंगा-स्नान करनेका नित्य-नियम था। दैवयोगसे एकबार गंगाजी कुटीसे दूर हट गयीं। उस समय ये पूर्ण वृद्ध हो चुके थे, फिर भी नित्य स्नान करने जाते थे। ग्रीष्मसे तप्त रेती और उसपर नंगे पैर धीरे-धीरे चलना, उनकी कठिन तपश्चर्या थी। आने-जानेमें असमर्थ होकर एक दिन इन्होंने प्रार्थना की—'मातः गङ्गे! अब आप अपने पूर्वस्थानपर पधारें, यदि नहीं चलेंगी तो मैं भी कुटियापर नहीं जाऊँगा।' गंगाकी धारासे आवाज आयी—'तुम चलो, मैं आ रही हूँ।' यह सुनकर प्रसन्नचित्त आप कुटीपर आये। पीछेसे गंगाजीकी धारा भी कुटीके निकट आ गयी। इस घटनाको देखकर दर्शक चकित हो गये। इनका सुयश चारों ओर फैल गया।

श्रीलाखादासजीने अपने ग्रन्थमें गुरु-परम्पराका उल्लेख किया है और अपनेको श्रीवर्द्धमान एवं गंगलभट्टाचार्यकी परम्पराका अनुवर्ती लिखा है। कई स्थानोंपर हरिनारायण आदि शब्दोंके साथ गुरु शब्दोंको जोड़कर हरि-गुरुनिष्ठाका परिचय दिया है। इन्हें श्रीरूपनारायणजीसे सम्प्रदायकी शिक्षा और श्रीहरिव्यास-देवाचार्यजीसे दीक्षा प्राप्त हुई थी।

श्रीहरीदासजी

सरनागत कों सिबिर दान दाधीच टेक बलि।
परम धरम प्रहलाद सीस जगदेव देन कलि॥
बीकावत बानैत भक्त पन धर्म धुरंधर।
तूँवर कुल दीपक्क संत सेवा नित अनुसर॥
पार्थ पीठ आचरज कौन सकल जगत में जस लियो।
तिलक दाम परकास कों हरीदास हरि निर्मयो॥ १७९॥

तिलक-कण्ठीधारी वैष्णवोंकी सेवाके वास्ते ही भगवान्ने इस पृथ्वीपर श्रीहरीदासजीको प्रकट किया। शरणागतकी रक्षा करनेमें आप राजा शिविके समान थे। दान देनेमें श्रीदधीचि ऋषिके समान, प्रतिज्ञाको निभानेमें राजा बलिके समान, वैष्णव धर्मका पालन करनेमें श्रीप्रह्लादजीके समान और रीझकर सिर देनेमें श्रीजगदेवजीके समान थे। श्रीबीकाजीके वंशमें प्रसिद्ध शूरवीर थे। भक्तोचित प्रण और धर्मका पालन करनेमें अतिश्रेष्ठ थे। तूँवर क्षत्रिय कुलके दीपक और नित्य सन्तसेवामें तत्पर रहनेवाले थे। अर्जुन और परीक्षित्के वंशमें उत्पन्न श्रीहरीदासजीमें ऐसे गुणोंका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अपनी दृढ़ भक्तिके कारण आपने सारे संसारमें सुयश प्राप्त किया॥ १७९॥

श्रीहरीदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीप्रह्लादजी, श्रीशिविजी, श्रीदधीचिजी और श्रीबलिजी —इन भगवद्भक्तोंके गुण श्रीमद्भागवतमें वर्णन किये गये हैं। श्रीहरीदासजीमें ये सभी गुण एक स्थानपर ही दिखलायी पड़ते हैं। टीकाकार श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि मूल छप्पयमें श्रीनाभाजीने रीझनेमें श्रीहरीदासजीको श्रीजगदेवजीके समान कहा है, परंतु कलियुगके भक्त श्रीजगदेवजीके रीझनेके प्रसंगको प्रायः सब लोग नहीं जानते हैं। मैंने उसे किसी सन्तसे जैसा सुना है, वैसा यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ। उत्तम रूप और गुणोंसे युक्त एक नटी थी। वह साक्षात् शक्ति कालीदेवीका स्वरूप ही थी। जब वह गाती थी, तो सुननेवालोंको सुननेकी बड़ी भारी चटपटी लग जाती थी और उसकी मधुर-मुसकान देखकर वे मोहित हो जाते थे। रिझवार राजा श्रीजगदेवजीने एक बार उस नटीका अद्भुत नृत्य देखा और मधुर गानको सुना तो वह उसपर रीझ गया। जब उसने पुरस्कार देनेका विचार किया तो कोई भी वस्तु उसके योग्य न दिखायी पड़ी। अन्तमें उसने नटीसे कहा—मैंने अपना सिर तुम्हें दिया, जब चाहो, तब इसे ले सकती हो। अब यह मेरा नहीं है, तुम्हारा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीजगदेवजीके द्वारा दिये गये मस्तकदानको स्वीकारकर उस नटीने कहा—'मैंने भी अपना दाहिना हाथ आपको दिया। अब इस हाथको फैलाकर न तो किसीसे कुछ माँगूँगी और न लूँगी।' कुछ दिनोंके बाद किसी एक राजाने सुना कि उस नटीने राजा जगदेवसे ऐसा कुछ इनाम पाया है कि उसके बदले अपना दाहिना हाथ उन्हें दे दिया। अब मैं उस नटीको अधिक इनाम देकर जगदेवके इनामको तुच्छ कर दूँ। इस विचारसे उस राजाने नटीको नृत्य करनेके लिये अपने दरबारमें बुलाया। नटीने अपना नृत्य-गान प्रस्तुत किया, तब उस राजाने प्रसन्न होकर नटीको कुछ इनाम देना चाहा। नटीने लेनेके लिये अपना बायाँ हाथ फैलाया। इसपर राजाने रुष्ट होकर कहा—'हमारा इतना अपमान।' नटीने कहा—'मैं अपना दाहिना हाथ राजा जगदेवजीको दे चुकी हूँ, अतः दाहिने हाथमें किसीसे कुछ नहीं ले सकती हूँ।' उस राजाने पूछा—'राजा जगदेवजीसे ऐसी कौन-सी अलभ्य वस्तु मिली है? तुम उस वस्तुको मुझे दिखा दो और उससे दसगुनी वस्तु मुझसे ले लो।' नटीने कहा—दूसरा कोई वैसी वस्तु नहीं दे सकता है।

उस राजाको नटीने बहुत समझाया, परंतु वह नहीं माना। उसे जिद सवार हो गयी। उसने बार-बार उस वस्तुको लाकर दिखानेका हठ किया। तब नटी बारह वर्ष बाद परम बड़भागी राजा जगदेवके पास गयी और बोली—'राजन्! मेरी वस्तु मुझे दीजिये।' राजाने सिर काटकर नटीको दे दिया। नटीने धड़को न जलानेका आदेश देकर सुरक्षित रखवा दिया और उस पुरस्कारको थालमें ढककर उस राजाके पास ले आयी और दिखाकर बोली—'इसे देख लीजिये और इससे दसगुनी या बराबर ही दीजिये।' सिरको देखते ही वह राजा मूर्च्छित हो गया और पृथ्वीपर गिर पड़ा। अनेक उपचारोंसे उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब उसने कहा—'मैंने तो यह समझा था कि धन मिला होगा, अतः उससे दसगुना देनेको कहा, किन्तु यहाँ धनकी बात नहीं रही। अब मैं क्या करूँ और क्या दूँ, मेरे वशकी बात नहीं है।' नटीने कहा—'ऐसे अमूल्य पुरस्कारके बदले ही मैंने अपना दाहिना हाथ राजा जगदेवको दिया है।' राजा लज्जित हो गया, इसके पश्चात् नटीने आकर राजा जगदेवके धड़से उनका सिर जोड़ दिया और जिस पदपर रीझकर उन्होंने अपना सिर दिया था, उसी पदको गाया। तानके साथ आलापको सुनकर राजा जगदेव जीवित हो गये।

राजा जगदेवजीकी रिझवार निष्ठाका वृत्तान्त एक बड़े (यवन) राजाकी लड़कीने सुना तो वह उनमें आसक्त हो गयी और उसने अपने पितासे कहा कि 'मेरा विवाह आप राजा जगदेवजीके साथ कर दीजिये।' उसने जगदेवजीको बुलाकर अनेक प्रकारसे समझा-बुझाकर स्पष्ट कहा कि 'आप मेरी पुत्रीके साथ विवाह कर लीजिये।' श्रीजगदेवजीने स्वीकार नहीं किया। राजाने पुनः-पुनः आग्रह किया, परंतु इन्होंने हर बार मना ही किया। तब उस राजाने जगदेवजीको मार डालनेकी आज्ञा दी। बधिक लोग मारनेके लिये ले जा रहे थे, राजकन्याने देखा तो वह बोली कि 'इनको मत मारो, मेरा इनमें अनुराग है। इन्हें मेरे सामने लाओ।' सामने लाये जानेपर राजकन्याने इनको अपनी ओर देखनेके लिये बाध्य किया। परंतु श्रीजगदेवजीने राजकन्याकी ओर नहीं देखा, तो रुष्ट होकर उसने भी इन्हें मार डालनेकी अनुमति देकर कहा कि 'इनके सिरको काटकर मेरे पास ले आओ।' बधिकोंने ऐसा ही किया। राजकन्या अपने सामने कटे सिरको रखकर जब उसकी ओर देखने लगी तो वह सिर राजपुत्रीके सामनेसे घूम गया। इस धर्मनिष्ठापर सभी लोग रीझ गये।

श्रीप्रियादासजीने राजा जगदेवसे सम्बन्धित इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

प्रहलाद आदि भक्त गाए गुण भागवत सब इक ठौर आये देखे 'हरिदास' मैं।
रीझि 'जगदेव' सो यों कहिकै बखान कियौ, जानत न कोऊ सुनौ करयौ लै प्रकास मैं॥
रहै एक नटी सक्तिरूप गुण जटी गावै लागै चटपटी मोह पावै मृदु हांस मैं।
राजा रिझवार करै देवे को विचार, पै न पावै सार काटै सीस राख्यौ तेरे पास मैं॥ ६०४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दियौ कर दाहिनौ मैं, यासों नहीं जाचौं कहूँ, सुनि एक राजा भेद भाव सों बुलाई है।
नृत्य करि गाई रीझि 'लेवौ कही' आई 'देहु' ओड़्यो बायों हाथ, रिस भरिकै सुनाई है॥
'इतौ अपमान', 'पानि दक्षिन लै दियौ अहो 'नृप जगदेवजू कों' 'ऐसी कहा पाई है'।
'तासों दसगुनी लीजै, मोको सो दिखाय दीजै', 'दई नहीं जाय काहू, मोहिये सुहाई है॥ ६०५॥
कितौ समझावै 'ल्यावौ' कहै, यहै जक लागी, गई बड़भागी पास वस्तु मेरी दीजियै।
काटि दियो सीस, तन रहै ईश शक्ति लखो, ल्याई बकसीस थार ढाँपि देखि लीजियै॥
खोलिकै दिखायो, नृप मूरछा गिरायो तन, धन की न बात अब याकौ कहा कीजियै।
मैं जु दीनौ हाथ जानि आनि ग्रीव जोरि दई लई वही रीझि पद तान सुनि जीजियै॥ ६०६॥
सुनी जगदेव रीति, प्रीति नृपराज सुता पिता सों बखानि कही वाही कौ लै दीजियै।
तब तौ बुलाये समुझाये बहु भाँति खोलि बचन सुनाये अजू बेटी मेरी लीजियै'॥
नट्यौ सतबार जब कही 'डारों मारि', चले मारिबे को, बोली वह 'मारौ मत भीजियै।
'दृष्टि सों न देखै' कही 'ल्यावौ काटि मूंड़', लाए चाहै सीस आँखिन को, गयौ फिरि रीझियै॥ ६०७॥

टीकाकार श्रीप्रियादासजी बताते हैं कि श्रीजगदेवजीकी रिझवार-निष्ठाका विस्तारसे वर्णन किया गया। अब श्रीहरीदासजीने जैसी साधु-सेवा की, उसको सुनिये। राजा होकर इनकी साधु-सेवामें ऐसी निष्ठा थी कि वे सन्तोंसे परदा या किसी प्रकारका कपट नहीं करते थे। बिना रोक-टोकके साधुओंका महलोंमें आना-जाना होता था। ऐसी विलक्षण एवं दृढ़-निष्ठा देखकर भगवान्‌ने इनकी परीक्षा ली। परीक्षार्थ एक अल्पवयस्क सन्तका रूप धारण करके आये और इनके यहाँ निवास करने लगे। उनके प्रति श्रीहरीदासजीका भगवन्मय वात्सल्य भाव था। वे बालक-बालिकाओंके साथ खेलते रहते। एक दिन ग्रीष्म-ऋतुमें बालक-बालिका छतपर सोये हुए थे, वे कुछ ओढ़े नहीं थे। श्रीहरीदासजी दातौन करनेके लिये छतपर चढ़कर गये। गहरी नींदमें सन्त-भगवन्तको बेसुध सोये देखकर इन्होंने अपनी चादर ओढ़ा दी। शयनके दर्शनकर आप नीचे उतरे तो हृदयमें प्रभुका ध्यानकर उसमें मगन हो गये।

प्रातःकाल होनेपर बालक भगवान् और राजाकी कन्या दोनों जगे। विलम्बसे जगनेके कारण घबड़ाये। विचार करने लगे कि हम चादर ओढ़कर नहीं सोये फिर यह किसकी चादर है, कौन ओढ़ा गया? बालिकाने पहचानकर कहा कि यह तो पिताजीकी है। भगवान् हरीदासजीकी परीक्षा ले रहे थे, अतः जैसे कुछ भूल हो गयी हो—ऐसी मुखमुद्रा बनाये, दृष्टिको नीचे किये हुए छतसे उतरकर (स्नानार्थ) चले। प्रभुकी ऐसी चेष्टा देखकर रास्तेमें मिलकर श्रीहरीदासजीने चरण पकड़ लिये और एकान्तमें विनती करते हुए कहा कि 'प्रभो! आप जो भी लीला करें, सो उचित है। परीक्षार्थ ऐसी लीला न करें, जिससे नास्तिक दुष्टजन सन्तोंकी निन्दा करें। मुझे अपनी निन्दासे भय नहीं है, वह तो मुझे सुख देनेवाली है, परंतु सन्त-निन्दासे हमें भय है।'

श्रीहरीदासजीने सन्त भगवान्‌से पुनः कहा कि महाराज! इस प्रकार आपको चेतावनी देनेसे मेरी भक्तिमें कलंक लगता है। आप चाहे जैसे अपने भक्तकी परीक्षा लें, मुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिये, परंतु मैंने इस शंकाके कारण आपसे कुछ कहा कि कहीं कोई साधु-सन्तका अपमान न करे। किसी साधुमें किसी प्रकारकी कमी है, यह सुनना मुझे अच्छा नहीं लगता। सन्त भगवान्‌ने फिर परीक्षार्थ ऐसा भाव दिखाया कि जैसे लज्जित हो रहे हों। सन्त भगवान्‌ने कहा—मैं अब कहीं अन्यत्र जाकर भजन करना चाहता हूँ। हरीदासने चरण पकड़ लिये और अपने सच्चे सद्भावसे सन्तरूपधारी भगवान्‌को प्रसन्न कर लिया। तब भगवान् अपने रूपसे प्रकट हो गये और प्रसन्न होकर उन्हें अपना स्वरूप प्रदान किया। फिर बोले—मैं तुम्हारी सन्त-सेवा-निष्ठासे प्रसन्न हूँ, जो चाहो सो वरदान माँग लो। श्रीहरीदासजीने कहा—'हे प्रभो! आप उसी बालक सन्तरूपसे मेरे घरमें रहिये। साथ-साथ सेवा-भजन करनेका सुख दीजिये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एवमस्तु' कहकर भगवान् पुनः उसी बालक सन्तरूपमें आ गये। सन्तोंमें इनकी ऐसी श्रद्धा थी कि भगवान् सन्त रूप धारणकर इनके यहाँ रहे। आपके छोटे भाई श्रीगोविन्ददासजी थे, जिन्हें सन्त-भगवन्तके ही आगे बंसी बजानेकी प्रतिज्ञा थी। बादशाहके कहनेपर भी बंसी नहीं बजायी।

श्रीप्रियादासजीने आपके इस पावन चरित्रका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

निष्ठा रिझवार रीति कीनी विस्तार यह सुनौ साधु सेवा हरीदास जू ने करी है।
परदा न सन्त सों है देत हैं अनन्त सुख रह्यौ सुख जानि भक्त सुता चित धरी है॥
दोऊ मिलि सोवैं रितु ग्रीषम की छात पर, गात पर गात सोये सुधि नहीं परी है।
दातुन के करिबे को चढ़े निसि सेस आप चादर उढ़ाय नीचे आए ध्यान हरी है॥ ६०८॥
जागि परे दोऊ, अरबरे देखि चादर कों पेखि पहिचानी सुता पिता ही की जानी है।
सन्त दृग नये चले बैठे मग पग लये गये लै एकान्त में यों विनती बखानी है॥
नेकु सावधान ह्वैकै कीजिये निसङ्क काज, दुष्टराज छिद्र पाय कहै कटु बानी है।
तुमको जु नाव धरै जरै सुनि हियौ मेरौ, डरैं निन्दा आपनी न होत सुखदानी है॥ ६०९॥
इतनी जतावनी में भक्ति कों कलङ्क लगै, ऐपै सङ्क वही, साधु घटती न भाइयै।
भई लाज भारी, विषैबास धोय डारी नीके, जीके दुख रासि चाहै कहूँ उठि जाइयै॥
निपट मगन किये नाना विधि सुख दिये, दिये पै न जान, मिलि लालन लड़ाइयै।
गोविन्द अनुज जाके बाँसुरी कौ साँचोपन मन मैं न ल्यायौ नृप इहि विधि गाइयै॥ ६१०॥

श्रीकृष्णदासजी

तान मान सुर ताल सुलय सुंदर सुठि सोहै।
सुधा अंग भ्रूभंग गान उपमा कों को है॥
रतना कर संगीत राग माला रँग रासी।
रिझये राधालाल भक्त पद रेनु उपासी॥
स्वर्नकार खरगू सुवन भक्त भजन पद दृढ़ लियो।
नंदकुँवर कृष्नदास कों निज पग तें नूपुर दियो॥ १८०॥

श्रीकृष्णदासजी महान् भक्त थे। एक बार नृत्य करते समय इनके पैरमेंसे नूपुर खुलकर गिर गया तो स्वयं नन्दनन्दनने अपने चरणोंमेंसे खोलकर एक नूपुर इनके पैरमें बाँध दिया। जिस समय ये स्वर-तालको सँभालकर सुन्दर लयके साथ गाते थे, उस समय श्रोताओंको बड़ा ही आनन्द आता था। नाचनेका सुन्दर ढंग, भौहोंके साथ अंगोंका संचालन और गायनमें इनके समान कोई भी नहीं दिखायी देता था। आप शास्त्रीय संगीतके विशेषज्ञ थे। आपने अपने भक्तियुक्त सद्गुणोंसे श्रीराधाकृष्णको रिझा लिया। भक्तोंकी चरणधूलिके उपासक, खरगू स्वर्णकारके सुपुत्र श्रीकृष्णदासजीने भक्तोंकी सेवाका दृढ़ नियम ले रखा था॥ १८०॥

श्रीकृष्णदासजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

भक्तवर श्रीकृष्णदासजी सुनार जातिके थे। इन्होंने परमानन्दके रूप युगल श्रीराधाकृष्णकी सेवाको अपनाया। आप नित्य-नियमसे प्रिया-प्रियतमकी सेवा करनेके पश्चात् उनके सामने आनन्दमग्न होकर नृत्य और गान करते थे। एक दिन आप नाचने-गानेमें ऐसे मग्न हो गये कि आपको अपने शरीरकी सुध नहीं रही। इसी बीच आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पैरका नूपुर खुलकर गिर गया। आप नृत्य-भावमें विभोर थे, अतः आप नूपुरको बाँध नहीं सके। नूपुर टूटकर गिर गया है, इसका आपको पता नहीं था। घुँघरूके बिना बजे तालकी गति बिगड़ गयी। नृत्य-गान और तानके रंगमें रँगे श्रीलालजीसे यह सहन नहीं हुआ, अतः उन्होंने अपने श्रीचरणमेंसे अपना दिव्य नूपुर खोलकर कृष्णदासजीके पैरमें बाँध दिया। अब तालपर घुँघरूका बजना सुनकर श्रीठाकुरजी बहुत ही प्रसन्न हुए। नृत्य-गानको समाप्तकर श्रीकृष्णदासजी जब स्वस्थ हुए तो उन्होंने देखा कि मेरे पैरका नूपुर अलग धरतीपर पड़ा है और उसकी जगह मेरे पैरमें दूसरा दिव्य नूपुर बँधा हुआ है। भगवान्‌की इस कृपालुताका अनुभव करके आपके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। दूसरे जिन-जिन लोगोंने जाना-सुना, उन्हें भी भगवद्भक्ति प्रिय लगी, वे भी भजन-कीर्तन करने लगे। श्रीकृष्णदासजीकी पवित्र कीर्ति संसारमें फैल गयी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कृष्णदास ये सुनार राधाकृष्ण सुखसार, लियौ सेवा पाछे नृत्य गान बिसतारियै।
ह्वै करि मगन काहू दिन तन सुधि भूली, एक पग नूपुर सो गिर्‌यौ न सँभारियै॥
लाल अति रंग भरे जानी जति भंग भई पांय निज खोलि आप बाँध्यौ सुख भारियै।
फेरि सुधि आई देखि धारा लै बहाई नैन कीरति यों छाई जग भक्ति लागी प्यारियै॥ ६११॥

परमधर्मपोषक संन्यासी भक्त

चितसुख टीकाकार भक्ति सर्बोपर राखी।
श्रीदामोदर तीर्थ राम अर्चन बिधि भाषी॥
चंद्रोदय हरिभक्ति नरसिंहारन्य जु कीनी।
माधौ मधुसूदन्न (सरस्वती) परमहँस कीरति लीनी॥
परबोधानंद रामभद्र जगदानँद कलिजुग्ग धनि।
परमधर्म प्रतिपोष कौं संन्यासी ये मुकुटमनि॥ १८१॥

श्रीचित्सुखानन्दजी सरस्वतीने श्रीभगवद्गीतापर चित्सुखी नामकी टीका लिखी, उसमें इन्होंने कर्म, ज्ञान आदिकी अपेक्षा हरिभक्तिको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया। श्रीदामोदरतीर्थने रामार्चनविधिका वर्णन किया, उसमें भक्तिको महत्त्व दिया। श्रीनृसिंहारण्यजीने हरिभक्तिचन्द्रोदय नामक ग्रन्थ लिखा। श्रीमधुसूदनजी सरस्वतीने भक्तिरसायन आदि ग्रन्थ लिखे। श्रीमाधवानन्दजी भी भगवद्भक्त हुए। श्रीमाधवानन्दजी और श्रीमधुसूदनजीसरस्वती ये दोनों सत्-असत्-विवेकी परमहंस प्रसिद्ध थे। श्रीप्रबोधानन्दजी, श्रीरामभद्रजी और श्रीजगदानन्दजी भी कलियुगमें भगवद्भक्तिकी आराधना करके धन्यवादके योग्य हुए। इन सभी संन्यासी महानुभावोंने परमधर्म श्रीहरिभक्तिका प्रतिपादन और समर्थन किया। अतः ये संन्यासियोंके मुकुटमणि कहे गये॥ १८१॥

इनमेंसे कुछ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीदामोदरतीर्थजी

ये भगवान् श्रीरामके परमभक्त थे। निरन्तर ध्यानमें मग्न रहा करते थे। एकबार आप ध्यानमग्न होकर श्रीसीताराम नामका जप कर रहे थे, उसी समय श्रीसीतारामजीने प्रकट होकर दर्शन दिया। आपके हृदयमें भक्तिका भाव और दृढ़ हो गया। परमानन्दमय प्रभुरूपमें आप मग्न हो गये। फिर आपके मनमें भाव आया कि यह दर्शन दूसरे भक्तोंको कैसे सुलभ हो। तब श्रीराघवेन्द्रने प्रेरणा की कि अर्चन-पद्धतिका वर्णन करो। उससे हमारा दर्शन सुलभ हो जायगा। आपके द्वारा लिखित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामार्चन-विधिसे अर्चन करके लोगोंने श्रीसीतारामजीका दर्शन पाया। इस प्रकार ग्रन्थोंका निर्माणकर आपने भक्तिपथ प्रदर्शित किया।

श्रीनृसिंहारण्यजी

आपको भक्ति अत्यन्त प्रिय थी। आपने हरिभक्तिचन्द्रोदय नामक उत्तम ग्रन्थकी रचना की। उसमें जीवलोककी मुक्तिभूमिपर विवेकको राजा बताया। उसके शत्रु मोहसे विवेकका बड़ा-भारी युद्ध हुआ। शील, धर्म, सन्तोष और वैराग्य आदिको विवेकके सेनानी बताया। काम, क्रोध, लोभ और ममता आदिको मोहके सेनानी कहा। चिरकालतक भयंकर युद्धके पश्चात् मोह जीत गया और विवेककी सेना भाग खड़ी हुई। विवेककी एक श्रद्धा नामकी स्त्री थी। उसके गर्भमें प्रीति नामकी एक कन्या थी। उसी समय उसका जन्म हुआ और वह तत्क्षण बहुत बड़ी हो गयी। उसने ज्ञानरूपी खड्गको हाथमें लिया और सेनासहित मोहको मार भगाया। फिर विवेककी शक्ति जगी। उसके मरे सैनिक जी उठे। इस प्रकार भक्तिकी विजयका वर्णन करके आपने परमधर्मका पोषण किया।

श्रीरामभद्रजी

ये भगवान् श्रीरामके परमभक्त थे। चातुर्मास्य व्रतके लिये आप एक स्थानपर ठहरे। वहाँ आपके सदुपदेशोंको सुननेके लिये बहुत भीड़ एकत्र होती। वर्षा-ऋतुके बीत जानेपर आप वहाँसे चलनेके लिये तैयार हो गये। तब भगवान्‌ने स्वप्न दिया कि वर्षाके बाद शरद् ऋतुमें भी यहीं निवास करो और अपने उपदेशोंसे लोगोंमें भक्तिका प्रचार करो। आपने स्वप्नादेशका उल्लंघन कर दिया। उसे केवल अपने मनका विकार माना और प्रतिपदाको ही चल दिये। मार्गमें एक नदी मिली। आपने देखा कि पानी थोड़ा है, अतः पैदल ही उसे पार करनेके लिये उसमें घुसे। बीच धारमें पहुँचते ही जलकी बाढ़ आ गयी। तेज गहरी धारमें श्रीरामभद्रजी बहने और डूबने लगे। तब आपको भगवान् श्रीरामकी याद आयी, अपनी भूलपर पछताने लगे। शरीरका अन्तिम समय समझकर राम-नामका स्मरण करने लगे। तब श्रीरामने झट हाथ पकड़ लिया और बड़ी मधुर वाणीसे बोले—'तुमने मेरी आज्ञाको छोड़ा, अब मैं तुमको नदीके जलमें छोड़ रहा हूँ।' श्रीरामभद्रजीने कहा—'प्रभो! मैं अज्ञानी जीव, आपका शिशु अनुचित कर सकता हूँ, पर आप अपने स्वभावको नहीं छोड़ सकते हैं।' ऐसे दीनवचन सुनकर प्रभुने इन्हें नदीसे निकालकर तटपर खड़ा कर दिया और स्वयं आप फिर नदीमें कूद पड़े। भगवत्स्पर्श और दर्शनसे कृतार्थ हुए श्रीरामभद्रजीसे नहीं रहा गया, ये भी नदीमें कूद पड़े। हँसकर प्रभुने इन्हें फिर निकाला और अपने दर्शनोंसे इनके मनोरथको पूर्ण किया। प्रेममग्न होकर आप पुनः उसी स्थानपर आ गये। सुनकर लोगोंकी भीड़ उमड़ पड़ी। आपने स्वप्नादेश और भगवत्कृपाका वर्णन करके सभीके मनमें भक्तिभाव भर दिया।

श्रीजगदानन्दजी

श्रीजगदानन्दजी भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। आपकी जैसी भक्ति भगवान् श्रीरामके चरणोंमें थी, वैसी किसी विरले ही पुरुषमें होगी। आपमें वर्ण-आश्रम या विद्या आदिका अहंकार बिलकुल न था। वैष्णव सन्तको देखते ही उसके चरणोंमें सिर झुकाते, उसकी परिक्रमा करते और मधुर वाणीसे सत्कार करते हुए कहते कि 'आज मेरे धन्य भाग्य हैं, जो मुझे श्रीरामजीके प्यारे मिल गये।' भोजन-विश्रामादिके बाद उनसे प्रार्थना करते कि 'श्रीरामजीकी कोई कथा सुनाइये।' इस प्रकार सत्संगमें सर्वदा भगवत्कथाओंको कह-सुनकर परमधर्मका प्रचार-प्रसार करते। एक बार दो सन्त तीर्थयात्रा करते हुए काशीजीमें आये। वहाँ एक सन्त बीमार हो गये और उनका शरीर छूट गया। उसके वियोगमें दूसरा सन्त करुणक्रन्दन करने लगा। उसका विलाप सुनकर श्रीजगदानन्दजीसे नहीं रहा गया। निकट जाकर आपने उससे कहा—सन्तजी! आप विलाप न करें, ये मरे नहीं हैं। आपके साथ-साथ तीर्थयात्राको पूर्ण करके, अपने स्थानमें पहुँचकर आजसे एक माहके बाद शरीर त्यागकर वैकुण्ठको पधारेंगे। आपका स्पर्श पाकर सन्त उठ बैठे। दोनोंने आपको सिद्ध महापुरुष मानकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दण्डवत्प्रणाम किया। इस प्रकार आपने अनेकोंके संकट काटकर उन्हें परमधर्मका उपदेश दिया।

श्रीमधुसूदनसरस्वती

ईसाकी लगभग सोलहवीं शताब्दीमें बंगालके फरीदपुर जिलेके कोटालपाड़ा ग्राममें प्रमोदन पुरन्दर नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। उनके तृतीय पुत्र हुए कमलनयनजी। इन्होंने न्यायके अगाध विद्वान् गदाधरभट्टके साथ नवद्वीपके हरिराम तर्कवागीशसे न्यायशास्त्रका अध्ययन किया। काशी आकर दण्डीस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजीसे इन्होंने वेदान्तका अध्ययन किया और यहीं संन्यास ग्रहण किया। संन्यासका इनका नाम 'मधुसूदनसरस्वती' पड़ा।

स्वामी मधुसूदनसरस्वतीको शास्त्रार्थ करनेकी धुन थी। काशीके बड़े-बड़े विद्वानोंको ये अपनी प्रतिभाके बलसे हरा देते थे। परंतु जिसे श्रीकृष्ण अपनाना चाहते हों, उसे मायाका यह थोथा प्रलोभन-जाल कबतक उलझाये रख सकता है! एक दिन एक वृद्ध दिगम्बर परमहंसने उनसे कहा—स्वामीजी! सिद्धान्तकी बात करते समय तो आप अपनेको असंग, निर्लिप्त ब्रह्म कहते हैं, पर सच बताइये, क्या विद्वानोंको जीतकर आपके मनमें गर्व नहीं होता? यदि आप पराजित हो जायँ, तब भी क्या ऐसे ही प्रसन्न रह सकेंगे? यदि आपको घमण्ड होता है तो ब्राह्मणोंको दुःखी एवं अपमानित करनेका पाप भी होगा।' कोई दूसरा होता तो मधुसूदनसरस्वती उसे फटकार देते, परंतु उस संतके वचनोंसे वे लज्जित हो गये। उनका मुख मलिन हो गया। परमहंसने कहा— 'भैया! पुस्तकोंके इस थोथे पाण्डित्यमें कुछ रखा नहीं है। तुम श्रीकृष्णकी शरण लो। उपासना करके हृदयसे इस गर्वके मैलको दूर कर दो। सच्चा आनन्द तो तुम्हें आनन्दकन्द श्रीवृन्दावनचन्द्रके चरणोंमें ही मिलेगा।'

स्वामीजीने उन महात्माके चरण पकड़ लिये। दयालु संतने श्रीकृष्णमन्त्र देकर उपासना तथा ध्यानकी विधि बतायी और चले गये। मधुसूदनसरस्वतीने तीन महीनेतक उपासना की। जब उनको इस अवधिमें कुछ लाभ न जान पड़ा, तब काशी छोड़कर ये घूमने निकल पड़े। कपिलधाराके पास वही संत इन्हें फिर मिले। उन्होंने कहा—'स्वामीजी! लोग तो भगवत्प्राप्तिके लिये अनेक जन्मोंतक साधन, भजन, तप करते हैं और फिर भी बड़ी कठिनतासे उन्हें भगवान्‌के दर्शन हो पाते हैं, पर आप तो तीन ही महीनेमें घबरा गये।' अब अपनी भूलका स्वामीजीको पता लगा। ये गुरुदेवके चरणोंपर गिर पड़े। काशी लौटकर ये फिर भजनमें लग गये। प्रसन्न होकर श्रीश्यामसुन्दरने इन्हें दर्शन दिये।

अब तो इनका जीवन ही बदल गया था, अद्वैतसिद्धि, सिद्धान्तबिन्दु, वेदान्तकल्पलतिका, अद्वैत-रत्न-रक्षण, प्रस्थानभेदके लेखक इन प्रकाण्ड नैयायिक तथा वेदान्तके विद्वान्‌ने श्रीकृष्ण-प्रेमके वशीभूत होकर भक्तिरसायन, गीताकी गूढार्थदीपिका नामक व्याख्या और श्रीमद्भागवतकी व्याख्या लिखी।

श्रीप्रबोधानन्दजी

श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीजीका जन्म एक श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें हुआ। इनके पूर्वज आन्ध्रप्रदेशके निवासी श्रीसम्प्रदायी वैष्णव थे। श्रीरंगक्षेत्रसे प्रभावित होकर उसके निकट कावेरीतटपर बसे बेलंगुरी गाँवमें आकर सपरिवार निवास करने लगे। इनके ज्येष्ठ भ्राताका नाम श्रीवेंकटभट्ट और मध्यम भ्राताका नाम श्रीत्रिमल्लभट्ट था। श्रीगौरांग महाप्रभु तीर्थयात्राके व्याजसे प्रेमभक्तिका वितरण करते हुए दक्षिणदेशमें पधारे। तब श्रीवेंकटभट्टने उन्हें अपने घरपर चातुर्मास्य बितानेके लिये आग्रहपूर्वक रखा। फिर भट्टपरिवार महाप्रभुजीके प्रेमसे प्रभावित होकर उनके पदाश्रित हो गया। श्रीप्रबोधानन्दजी बड़े रसिक एवं प्रेमानन्दमें विभोर रहनेवाले महान् सन्त और आनन्दकन्द श्रीगौरांग महाप्रभुके प्रिय सेवक थे। आपने श्रीवृन्दावनविहारिणी बिहारीजीकी नित्य नयी-नयी निकुंज-लीलाओंका अनुभव करके उनका अपने ग्रन्थोंमें वर्णन किया तथा प्रिया-प्रियतमकी अनुपम रूप-माधुरीके मधुर रसका पानकर उन्हें अपने नेत्रोंकी पुतली बना लिया। श्रीवृन्दावन-महिमामृत आदि ग्रन्थोंमें आपने श्रीवृन्दावनधामके वाससे मिलनेवाले दिव्यसुखको प्रकाशित किया। इस प्रकार व्रजरसके परमानन्दसागरको भावुकोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये सुलभ किया तथा भगवद्भक्तिविहीन कर्म-धर्मोंके आचरणको आपने त्याज्य बताया। आपके द्वारा वर्णित रससिद्धान्तको पढ़-पढ़कर एवं सुन-सुनकर करोड़ों भक्तोंने प्रेमरंग प्राप्त किया। श्रीवृन्दावनधामका वास आपको ऐसा प्रिय लगा कि आपने उसपर अपना तन-मन और धन सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीप्रबोधानन्दजीके इस वृन्दावन-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया—

श्रीप्रबोधानन्द, बड़े रसिक आनन्दकन्द, श्री 'चैतन्यचन्द' जू के पारषद प्यारे हैं।
राधाकृष्ण कुञ्ज केलि, निपट नवेलि कही, झेलि रसरूप, दोऊ किये दृग तारे हैं॥
वृन्दावन वास कौ हुलास लै प्रकास कियौ, दियौ सुख सिन्धु, कर्म धर्म सब टारे हैं।
ताहि सुनि सुनि कोटि कोटि जन रङ्ग पायौ, बिपिन सुहायौ, बसे तन मन वारे हैं॥ ६१२॥

श्रीद्वारकादासजी

सरिता कूकस गाँव सलिल में ध्यान धर्‍यो मन।
राम चरन अनुराग सुदृढ़ जाकें साँचो पन॥
सुत कलत्र धन धाम ताहि सों सदा उदासी।
कठिन मोह को फंद तरकि तोरी कुल फाँसी॥
कील्ह कृपा बल भजन के ग्यान खड्ग माया हनी।
अष्टांग जोग तन त्यागियो द्वारकादास जानै दुनी॥ १८२॥

सन्त श्रीद्वारकादासजी 'कूकस' नामक गाँवके निकट बहनेवाली नदीके जलमें प्रवेश करके भजन-ध्यान करते थे। श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंमें आपका सुदृढ़ अनुराग था। आपने प्रतिज्ञापूर्वक भगवान्‌की उपासना की। आप स्त्री, पुत्र, घर और धनसे सदा विरक्त रहे। यद्यपि मोहका बन्धन कठिन होता है, परंतु आपने अपने विवेकसे उसे तोड़-फोड़ डाला। अपने गुरुदेव श्रीकील्हदेवाचार्यजीकी कृपा एवं भगवद्भजनके बलसे आपने ज्ञानरूपी तलवारसे अविद्या-मायाका नाशकर अष्टांगयोगकी विधिसे नदीमें शरीरको छोड़ा और साकेतधामको प्राप्त किया। इस बातको दुनिया जानती है॥ १८२॥

श्रीपूर्णजी

उदै अस्त परबत्त गहिर मधि सरिता भारी।
जोग जुगति बिस्वास तहाँ दृढ़ आसन धारी॥
ब्याघ्र सिंह गुंजै खरा मनहिं कछु संक न मानैं।
अर्ध न जातैं पौंन उलटि ऊरध कों आनैं॥
साखि सब्द निर्मल कहा कथिया पद निर्बान।
पूर्न प्रगट महिमा अनँत करिहै कौन बखान॥ १८३॥

श्रीपूर्णजीकी महिमा अपार है, कोई भी उसका वर्णन नहीं कर सकता है। आप उदयाचल और अस्ताचल—इन दो ऊँचे पर्वतके बीच बहनेवाली सबसे बड़ी (श्रेष्ठ) नदीके समीप पहाड़की गुफामें रहते थे। योगकी युक्तियोंका आश्रय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर और प्रभुमें दृढ़ विश्वास करके समाधि लगाते थे। व्याघ्र, सिंह आदि हिंसक पशु वहीं समीपमें खड़े गरजते रहते थे, परंतु आप उनसे जरा भी नहीं डरते थे। समाधिके समय आप अपान वायुको प्राणवायुके साथ ब्रह्माण्डको ले जाते थे, फिर उसे नीचेकी ओर नहीं आने देते थे। आपने उपदेशार्थ साक्षियोंकी, मोक्षपद प्रदान करनेवाले पदोंकी रचना की। इस प्रकार मोक्षपदको प्राप्त श्रीपूर्णजीकी महिमा प्रकट थी॥ १८३॥

श्रीपूर्णजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीपूर्णजी भगवत्कृपाप्राप्त श्रीरामभक्त सन्त थे। एक बार आपका शरीर अस्वस्थ हो गया। आपको औषधिके लिये औंगरा (एक जड़ी)-की आवश्यकता थी। इनके मनकी बात जानकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने एक ब्राह्मणका रूप धारण किया और औंगरा लाकर दिया। जिससे ये स्वस्थ हो गये। भगवत्कृपाका अनुभव करके आप प्रेम-विभोर हो गये। आप पूर्णतया अकाम और सभी प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित थे। एक बार एक यवन-बादशाहने आपके इन्द्रिय-संयमकी परीक्षा लेनी चाही, किंतु आप उसमें पूर्ण सफल रहे।

श्रीपूरनजीका नाम श्रीअग्रदेवजीके शिष्योंमें आया है। एक बार आप स्वर्णरेखा नदीके तटपर स्थित पीपलकी छायामें विराजे थे। भगवत्स्मरण करते हुए शान्त-एकान्तमें आपको निद्रा आ गयी। वृक्षकी खड़खड़ाहटसे आपकी नींद खुली तो आपने एक वानरको पीपलपर इधर-उधर कूदते देखा। उसी समय वानरके मुखसे **'दासोऽहं राघवेन्द्रस्य'** यह स्पष्ट सुनायी पड़ा। साक्षात् श्रीहनुमान्जी हैं, यह जानकर आपने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और हनुमदाज्ञासे उसे पवित्र स्थल जानकर आपने वहीं अपना निवासस्थान बनाया और वहाँ श्रीहनुमान्जीकी प्रतिमा स्थापित की। भगवन्नाम-जपके प्रभावसे आपमें सर्वसिद्धियाँ आ गयीं। सुख-शान्तिके निमित्त आनेवाले जनसमुदायके मनोरथ पूर्ण होने लगे।

श्रीलक्ष्मणभट्टजी

सदाचार मुनिबृत्ति भजन भागवत उजागर।
भक्तनि सों अति प्रीति भक्ति दसधा को आगर॥
संतोषी सुठि सील हृदय स्वारथ नहिं लेसी।
परम धर्म प्रतिपाल संत मारग उपदेसी॥
श्रीभागवत बखानि कै नीर छीर बिबरन कर्‍यौ।
श्रीरामानुज पद्धति प्रताप भट्ट लच्छिमन अनुसर्‍यौ॥ १८४॥

श्रीलक्ष्मणभट्टजीने श्रीरामानुज-सम्प्रदायकी पद्धतिके अनुसार भगवान्की सेवा-पूजाका अनुसरण किया। आप महान् सदाचारी, मुनियोंकी-सी वृत्ति स्वीकार करके जीवनमें धारण करके जीवन-यापन करनेवाले, भजन-परायण और यशस्वी भगवद्भक्त थे। भगवद्भक्तोंमें आपका बड़ा भारी स्नेह था। आपके हृदयमें दशधा भक्तिका निवास था। आप परम सन्तोषी, बड़े शीलवान् थे। नाममात्रका भी स्वार्थ आपमें नहीं था। जिससे भगवद्भक्ति दृढ़ हो, उस परम धर्मका पालन करनेवाले तथा सन्तोंका जो मार्ग है, उसके आप उपदेशक थे। श्रीमद्भागवतकी कथाएँ कहकर आपने सत् और असत्का उसी प्रकार विवेचन किया, जैसे हंस नीर और क्षीरका करता है। इस प्रकार श्रीभट्टजीने असत्को छोड़कर सत् अर्थात् भगवत्-शरणागतिको ग्रहण किया॥ १८४॥

श्रीलक्ष्मणभट्टजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीलक्ष्मणभट्टजी सन्त थे। आप श्रीमद्वल्लभाचार्यके पिता एवं श्रीरामानुज-सम्प्रदायमें दीक्षित थे। एक बार आपने एक भक्त शिष्यके यहाँ श्रीमद्भागवतकी कथा कही, उसमें प्रचुर भेंट आयी। आपने ज्यों-की-त्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पूर्ण भेंट सन्त-सेवाके निमित्त एक साधुको समर्पित कर दी। ये केवल उपकार-सन्तसंगकी भावनासे कथा कहते थे। एक बार राजाने आपको श्रीभागवत-कथाके लिये आमन्त्रित किया, उन्हीं तिथियोंमें किसी सन्तने कथाके लिये कहा। आप सन्तके यहाँ गये, राजाके यहाँ नहीं गये। ऐसे सन्त-प्रेमी और निर्लोभी थे आप!

स्वामी श्रीकृष्णदासजी पयहारी

कृष्नदास कलि जीति न्यौति नाहर पल दीयो।
अतिथि धर्म प्रतिपाल प्रगट जस जग में लीयो॥
उदासीनता अवधि कनक कामिनि नहिं रातो।
राम चरन मकरंद रहत निसि दिन मदमातो॥
गलतें गलित अमित गुन सदाचार सुठि नीति।
दधीचि पाछें दूसरी (करी) कृष्णदास कलि जीति॥ १८५॥

महान् सिद्धसन्त पयहारी श्रीकृष्णदासजी जयपुरमें श्रीगलताजीकी गद्दीपर विराजते थे। आप अनन्त दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, बड़े सदाचारी और अच्छे नीतिज्ञ थे। श्रीदधीचिजीके बाद इस कलियुगमें उत्पन्न होकर कलिकालके विकारोंपर आपने विजय प्राप्त की। अतिथिके रूपमें प्राप्त सिंहको आपने न्यौता दिया और अपने शरीरमेंसे मांस काटकर उसे भोजनके लिये अर्पण किया। इस प्रकार विलक्षण रूपसे अतिथिधर्मका पालन करके आपने सुयश प्राप्त किया। आप वैराग्यकी तो सीमा ही थे और कभी भी धन और स्त्रियोंमें आसक्त नहीं हुए। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंके परागमें आपका मन उसी प्रकार आनन्दित रहता था, जैसे पुष्परसको पाकर भ्रमर मतवाला हो जाता है॥ १८५॥

स्वामी श्रीकृष्णदासजी पयहारीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

एक बार पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराज अपनी गुफामें विराजमान थे, उसी समय द्वारपर एक सिंह आकर खड़ा हो गया। आपने विचार किया कि 'आज तो अतिथि-प्रभु पधारे हैं।' उनके भोजनके लिये आपने अपनी जाँघ काटकर मांस सामने रख दिया और प्रार्थना की—'प्रभो! भोजन कीजिये।' धर्मकी बहुत बड़ी महिमा है और उसका पालन करना बहुत ही कठिन है। इनकी सच्ची धर्मनिष्ठाको देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे नहीं रहा गया, उन्होंने प्रकट होकर दर्शन दिया; क्योंकि आपका भाव बिलकुल सत्य था। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके जाँघका दुःख न जाने कहाँ चला गया। संसारमें लोग अतिथिको अन्न-जल देनेमें ही कष्टका अनुभव करते हैं, तब इस प्रकार अपने शरीरका दान कौन कर सकता है! आपके इस चरित्रको सुनकर लोगोंके मनमें महान् आश्चर्य होता है।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बैठे हैं गुफा में, देखि सिंह द्वार आय गयौ, लयौ यों बिचारि हो अतिथि आज आयौ है।
दई जाँघ काटि डारि, कीजियै अहार अजू, महिमा अपार धर्म कठिन बतायौ है॥
दियौ दरसन आय, साँच में रह्यो न जाय, निपट सचाई, दुख जान्यौ न बिलायौ है।
अन्न जल देबै ही कों झींखत जगत नर, करि कौन सकै जन मन भरमायौ है॥ ६१३॥

Kalyan Bhaktmal Ank_Section_17_1_Front
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगदाधरदासजी

लाल बिहारी जपत रहत निसि बासर फूल्यौ।
सेवा सहज सनेह सदा आनँद रस झूल्यौ॥
भक्तनि सों अति प्रीति रीति सबही मन भाई।
आसय अधिक उदार रसन हरि कीरति गाई॥
हरि बिस्वास हिय आनि कै सपनेहुँ आन न आस की।
भली भाँति निबही भगति सदा गदाधरदास की॥ १८६॥

श्रीगदाधरदासजीकी भक्तिका सर्वदा निर्वाह हुआ, उसमें कभी भी कोई बाधा नहीं उपस्थित हुई। आप श्रीबिहारीलालजीके नामोंका जप करते हुए दिन-रात प्रफुल्लित ही रहते थे। भक्त-भगवन्तकी सेवामें आपका सहज स्नेह था। उसीके आनन्दमें सर्वदा झूमते रहते थे। भक्तमें आपका बड़ा भारी अनुराग था। आपकी सन्त-सेवाकी रीति सभीको अच्छी लगती थी। आप मन-बुद्धिसे परम उदार थे और जिह्वासे सदा भगवान्‌की कीर्तिका गान किया करते थे। हृदयमें केवल भगवान्‌का विश्वास और भरोसा रखकर आपने स्वप्नमें भी किसी दूसरेकी आशा नहीं रखी॥ १८६॥

श्रीगदाधरदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगदाधरदासजी श्यामसुन्दरके प्रेममें ऐसे डूबे कि उनका घर, धन और परिवार सब कुछ छूट गया। परमविरक्त हो गये। कुछ दिन इधर-उधर घूम-फिरकर आप महाराष्ट्रमें ताप्ती नदीके तटपर बुरहानपुरको आये और उसीके निकट एक बागमें आसन लगाकर बैठ गये। लोगोंने आपसे बहुत अनुनय-विनय करके कहा—'प्रभो! गाँवमें चलकर किसी मन्दिरमें रहिये।' परंतु उनके कहनेसे आप गाँवमें नहीं गये। उसका कारण यह कि आपको एकान्तमें ही सुख था। भगवद्भजनको छोड़कर दूसरी किसी कामनासे आपका कोई प्रयोजन न था। एक बार कई दिनोंतक लगातार वर्षा होती रही, उससे आपका शरीर और वस्त्र भीग गये। इनके कष्टको देखकर प्यारे श्यामसुन्दरने अत्यन्त मीठे स्वरमें एक भक्त सेठसे कहा—तुम्हारे घरमें बहुत-सा धन भरा हुआ है, तुम श्रीगदाधरदासजीके लिये और उनके ठाकुरजीके लिये एक सुन्दर मन्दिर बनवाओ और उन्हें लाकर उस मन्दिरमें रखो।

भगवान्‌की आज्ञा पाकर उस सेठ भक्तने सुन्दर विशाल मन्दिर बनवाया और भगवान्‌की आज्ञाको सुनाकर (संत-सेवार्थ) बहुत आग्रह किया, तब बड़ी मुश्किलसे आप उस मन्दिरमें आये। आपने उस मन्दिरमें भगवान्‌के श्रीविग्रहकी स्थापना की और उनका नाम 'श्रीलालबिहारीजी' रखा। श्रीठाकुरजीके सुन्दर मधुर स्वरूपको देख-देखकर आप सर्वदा उसी आनन्दमें विभोर रहते। बड़े प्रेमके साथ आप सन्तोंकी सेवा करते, इनकी सेवासे सन्तजन बहुत प्रसन्न होते और सन्तोंको सुखी देखकर आप भी प्रसन्न रहते। सन्त-भगवन्तकी सेवाके लिये जो भी कुछ सामान आता था, आप उसे उसी दिन सेवामें लगा देते, बासी अन्न-धन दूसरे दिनके लिये नहीं रखते। एक बार रसोइयाने छिपाकर कुछ सामान रख रखा था। संयोगवश आश्रममें कई सन्त आ गये। तब श्रीगदाधरदासजीने अपने रसोइयासे कहा—कुछ सामान हो तो उसीसे रसोई बनाकर प्रेमपूर्वक इन साधु-सन्तोंको भोजन करा दो।

शिष्य रामदास और वेंकटदास रसोइयाने श्रीगदाधरदासजीसे कहा—'श्रीठाकुरजी भूखे न रहें, इसलिये मैंने भोगके लिये कुछ थोड़ी-सी सामग्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_17_1_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचाकर रखी है।' आपने कहा कि 'उसे निकालो और सन्तोंको खिला दो, प्रातःकाल कहीं-न-कहींसे कुछ और आयेगा।' रसोइयाने आपकी आज्ञाके अनुसार रसोई बनाकर सन्तोंको प्रसाद पवाया। श्रीगदाधरदासजीने भी सन्तोंका प्रसाद लिया और बहुत बड़े सुखका अनुभव किया। सन्त-सेवामें इनके प्रेमको देखकर उन सन्तोंने प्रसन्न होकर कहा कि 'आपके पवित्र सुयशको सारा संसार गायेगा।' सबेरा हुआ, पर कहींसे कुछ भोगके लिये सामान नहीं आया। तीन पहर बीत गये, श्रीठाकुरजी भूखे ही रहे, उन्हें भोग नहीं लगा। इससे रसोइयाको क्रोध हुआ, वह कहने लगा—'न जाने कब परमात्मा हमको ऐसे गुरुसे और इस दुःखसे छुड़ायेगा।' उसी समय किसी भक्त सेवकने आकर दो सौ रुपये श्रीगदाधरदासजीको भेंट किये। तब आप बोले—इन रुपयोंको इसके माथेपर पटक दो। देखें, यह कितना खाता है।

श्रीगदाधरदासजीकी इस बातको सुनकर वह सेठ डर गया, उसने सोचा कि शायद महाराजजी मेरे ऊपर रुष्ट हो गये हैं। पश्चात् श्रीगदाधरदासजीने समझाकर उसका समाधान किया। तब तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और भक्त-भगवन्तके भोगमें जितना सामान लगता, नित्य उसे देता। इस प्रकार वह सेवा करके सुख प्राप्त करने लगा। साधु-सेवामें उसकी श्रद्धा अब और बढ़ गयी। कुछ दिन बुरहानपुरमें रहनेके बाद आयुको थोड़ी जानकर श्रीगदाधरदासजी वहाँसे चलकर मथुराजी आ गये और वहीं रहकर परमानन्ददायिनी ब्रजलीलाओंके मधुर रसका आस्वादन करने लगे। इस प्रकार आपने श्रीबिहारिणी-बिहारीजीकी तथा साधुओंकी प्रेमसे सेवा की। उनके श्रीचरणकमलोंमें अपने मनको भलीभाँति लगाया।

श्रीप्रियादासजी श्रीगदाधरदासजीके इस सन्तप्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

बुरहानपुर ढिग बाग तामें बैठे आय करि अनुराग गृह त्याग पागे स्याम सों।
गाँव मैं न जात, लोग किते हाहा खात, सुख मानि लियौ गात, नहीं काम और काम सों॥
पर्‌यौ अति मेह, देह बसन भिजाय डारे, तब हरि प्यारे बोले स्वर अभिराम सों।
रहै एक साह भक्त कही जाय ल्यावौ उन्हैं मन्दिर करावौ तेरौ भर्‌यौ घर दाम सों॥ ६१४॥
नीठि नीठि ल्याये हरि बचन सुनाये जब, तब करवायौ ऊँचौ मन्दिर सँबारिकै।
प्रभु पधराये, नाम 'लाल' औ 'विहारी' स्याम अति अभिराम रूप रहत निहारिकै॥
करैं साधु सेवा जामें निपट प्रसन्न होत, बासी न रहत अन्न सोवैं पात्र झारिकै।
करत रसोई जोई राखी ही छिपाय सामा आये घर सन्त, आप कही ज्यांवौ प्यारिकै॥ ६१५॥
बोल्यौ प्रभु भूखे रहैं ताके लिये राख्यौ कछू भाष्यो तब आप काढ़ौ भोर और आवैगौ।
करिकै प्रसाद दियौ लियौ सुख पायौ सब सेवा रीति देखि कही जग जस गावैगौ॥
प्रात भये भूखे हरि गए तीन जाम ढरि रहे क्रोध भरि कहैं कबधौं छुटावैगौ।
आयौ कोऊ ताही समै दो सत रुपैया धरे बोले गुरु 'सीस लै कै मारौ' कितौ पावैगौ॥ ६१६॥
डर्‌यौ वह साह, मति मोपै कछू कोप कियौ कियौ समाधान सब बात समुझाई है।
तब तौ प्रसन्न भयौ अन्न लगै जितौ देत, सेवा सुख लेत, साधु रुचि उपजाई है॥
रहे कोऊ दिन, पुनि मधुपुरी बास लियो, पियौ ब्रजरस लीला अति सुखदाई है।
लाल लै लड़ाए सन्त नीके भुगताए गुन जाने जिते, गाये, मति सुन्दर लगाई है॥ ६१७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनारायणदासजी

भक्ति जोग जुत सुदृढ़ देह निज बल करि राखी।
हिएँ सरूपानंद लाल जस रसना भाषी॥
परिचय प्रचुर प्रताप जान मनि रहस सहायक।
श्रीनारायन प्रगट मनो लोगनि सुखदायक॥
नित सेवत सन्तनि सहित दाता उत्तर देस गति।
हरि भजन सींव स्वामी सरस श्रीनारायनदास अति॥ १८७॥

स्वामी श्रीनारायणदासजी भगवद्भजनकी सीमा थे और आपका हृदय अति सरस था। आपने भक्तियोगसे युक्त सुदृढ़ शरीरको अपनी भक्तिके प्रतापसे स्वस्थ एवं भक्तिमय आचरण करनेयोग्य रखा। हृदयमें श्रीगोपाललालके सुन्दर रूपके ध्यानका आनन्द लेते हुए आप जिह्वासे उनके सुयशका वर्णन करते रहते थे। भक्तिके प्रतापसे आपके द्वारा अनेक चमत्कार प्रकट हुए। सुजानशिरोमणि श्यामसुन्दर रहस्यमय ढंगसे आपकी सहायता करते थे। इसी तरह आप सबके सहायक थे। श्रेष्ठज्ञानी होनेके कारण आप रहस्यका बोध कराकर साधककी सहायता करते थे। विश्वका कल्याण करनेके लिये मानो स्वयं नारायण भगवान्ने ही अवतार लिया था। आप बड़े प्रेमके साथ सन्तोंकी सेवा करते थे। उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेशमें निवास करनेवालोंको आपने उपदेश देकर उन्हें सद्गति प्रदान की॥ १८७॥

श्रीनारायणदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

महात्मा श्रीनारायणदासजी पहले बदरिकाश्रममें निवास करते थे, फिर वहाँसे श्रीमथुरापुरीको चले आये। यहाँ पुरीका दर्शन करके आपको बड़ा भारी सुख मिला। आप श्रीकेशवदेवजीके द्वारपर रहने लगे। आपने मनमें विचार किया कि मन्दिरमें दर्शन करनेके लिये जो लोग आते हैं, उन्हें भगवान्के दर्शनोंका आनन्द अच्छी प्रकारसे नहीं मिलता है, क्योंकि उनके मनमें जूतोंके चोरी चले जानेका भय बना रहता है, इसलिये मैं दर्शनार्थियोंके जूतोंकी रखवाली किया करूँ तो इन भक्तोंको भगवद्दर्शनका पूरा-पूरा आनन्द मिलेगा। ऐसा निश्चयकर आप जूतोंकी रखवाली करने लगे। इससे दर्शनार्थी और स्वयं आप भी आनन्दित हुए। दूसरे लोग आपके प्रभावको तथा आपकी सेवा-निष्ठाको नहीं जानते थे कि आपके हृदयमें सेवाका कैसा अपार भाव भरा है। एक बार एक दुष्ट आया और उसने एक बड़ी-सी पोटली आपके सिरपर रख दी और कहा कि इसे ले चलो। आप बिना किसी ननु-नचके पोटली लादकर उसके साथ चल दिये।

जब श्रीनारायणदासजी उस दुष्टकी पोटलीको सिरपर लिये जा रहे थे तो उसी समय रास्तेमें एक कोई बड़े प्रतिष्ठित सज्जन मिल गये और उन्होंने श्रीनारायणदासजीको पहचान लिया। फिर बड़े अनुरागमें भरकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और उस दुष्टको बड़े जोरसे डाँटा-फटकारा। तब उस महादुष्टने भी आपकी महिमाको जाना और उसने भी इनके चरण पकड़ लिये। उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ। उसका देहाभिमान छूट गया और वह पछताकर कहने लगा कि मुझसे बड़ी भारी भूल हुई। श्रीनारायणदासजीने उसे समझाते हुए कहा—'तुम्हारा काम हो रहा है, तुम अपने मनमें किसी बातकी चिन्ता मत करो।' यह सुनकर वह रोने लगा, उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। उसने प्रार्थना करते हुए श्रीनारायणदासजीसे कहा कि 'अब मैं घरका मुख नहीं देखूँगा। मुझे अपनी शरणमें रखिये।' उसके दैन्य-भावसे प्रसन्न होकर आपने उसे भगवद्भक्तिका उपदेश दिया। उसे भी मालूम हो गया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Kalyan Bhaktmal Ank_Section_17_2_Back

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति-जगत् कैसा होता है। साधु-सन्तोंमें क्या विशेषता है, उनकी कैसी क्षमा-शक्ति होती है। इस चरित्रका तात्पर्य यह है, साधुजन मेघके समान समदर्शी और उदार होते हैं।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आये बद्रीनाथ जू तें, मथुरा निहारि नैन, चैन भयौ, रहैं जहाँ केसौजू कौ द्वार है।
आवै दरसनी लोग जूतनि कौ सोग हिये रूप कौ न भोग होत कियौ यों बिचार है॥
करै रखवारी, सुख पावत है भारी, कोऊ जानै न प्रभाव, उर भाव सो अपार है।
आयो एक दुष्ट पोट पुष्ठ सो तौ सीस दई लई, चले मग ऐसौ धीरज कौ सार है॥ ६१८॥
कोऊ बड़ौ नर, देखि मग पहिचानि लिये किये, परनाम भूमि परि, भरि नेह कौ।
जानिकै प्रभाव, पाँव लीने महादुष्ट हूँ नै, कष्ट अति पायो छूट्यौ अभिमान देह कौ॥
बोले आप 'चिन्ता जिनि करौ, तेरौ काम होत', नैन नीर सोत 'मुख देखौं नहीं गेह कौ'।
भयौ उपदेश, भक्ति देस उन जान्यौं साधु सक्ति कौ विसेस, इहाँ जानौ भाव मेह कौ॥ ६१९॥

श्रीभगवानदासजी

भजन भाव आरूढ़ गूढ़ गुन बलित ललित जस।
श्रोता श्रीभागवत रहसि ग्याता अच्छर रस॥
मथुरापुरी निवास आस पद सन्तनि इकचित।
श्रीजुत खोजो स्याम धाम सुखकर अनुचर हित॥
अति गंभीर सुधीर मति हुलसत मन जाके दरस।
भगवानदास श्रीसहित नित सुहृद सील सज्जन सरस॥ १८८॥

भक्त श्रीभगवानदासजी श्री (-भक्ति)-से सम्पन्न थे। सभीके सुहृद, सुशील, सज्जन और परम रसिक थे। आप सर्वदा भजन-भावमें तत्पर रहते थे। गोप्य गुणोंसे युक्त भगवान्‌के मनोहर सुयशसे आपका हृदय परिपूर्ण था। श्रीमद्भागवतके रसिक श्रोता थे, चरित्रोंके गम्भीर रहस्य तथा अक्षर (अविनाशी)-के रसके ज्ञाता अनुभवी थे। आप श्रीमथुरापुरीमें निवास करते थे और एकाग्र मनसे एकमात्र सन्तोंके श्रीचरणोंकी आशा रखते थे। श्रीमान् खोजीजी एवं श्यामदासके परिवारको सुख देनेवाले तथा उनके हितकारी सेवक थे। आप अत्यन्त धीर-गम्भीर बुद्धिवाले एवं ऐसे प्रेमी भक्त थे कि आपके दर्शन-मात्रसे मन प्रसन्न हो जाता था॥ १८८॥

श्रीभगवानदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीभगवानदासजी आमेरनरेश भारमलके पुत्र थे। आप बादशाह अकबरके मनसबदार थे। अकबरकी मृत्युके बाद जहाँगीरके समयमें आपको मथुराका हाकिम बनाया गया। आपका वैष्णव तिलक और कण्ठीमें विशेष प्रेम था। एक बार (जहाँगीर) बादशाहके मनमें आया कि तिलक-कण्ठी धारण करनेका प्रण किसका सच्चा और किसका कच्चा है—इसकी परीक्षा करनी चाहिये। उसने मथुरा नगरमें ढिंढ़ोरा पिटवा दिया कि 'कोई भी माला-तिलक धारण न करे, यदि कोई माला-तिलक धारण किये देखा जायगा तो उसे फाँसीकी सजा दी जायगी।' बादशाहकी आज्ञाके अनुसार बहुतोंने प्राणोंके लोभमें आकर माला-तिलक धारण करना बन्द कर दिया। बहुत-से लोग अपने घरोंमें छिप गये, बाहर नहीं निकले। लोगोंने श्रीभगवानदासजीको समझाया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाह जानेगा तो मरवा डालेगा, परंतु भक्त श्रीभगवानदासजी बादशाहकी आज्ञाको सुनकर बिलकुल भयभीत नहीं हुए, क्योंकि उनके हृदयमें आनन्दस्वरूपा अपार भक्ति भरी हुई थी। उन्होंने अति सुन्दर वैष्णव-वेश (द्वादश तिलक एवं कण्ठी-माला) धारण किया और बादशाहके दरबारमें जा पहुँचे। बादशाहको माला-तिलक धारण करनेकी दृढ़-निष्ठा बहुत ही प्रिय लगी। वह इनकी इस निष्ठा और निर्भयताको देखकर रीझ गया। प्रसन्न होकर बादशाहने श्रीभगवानदासजीसे कहा—'आप जो चाहो, वह माँग लो।' आपने अपने जीवनपर्यन्त मथुरापुरीमें निवास करनेकी इच्छा प्रकट की, इसे बादशाहने स्वीकार कर लिया। इसके बाद आप मथुराको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं गये। आपने श्रीगोवर्धनमें श्रीहरिदेवजीका लाल पत्थरका मन्दिर बनवाया, जो बड़ा ही दर्शनीय है।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

जानिबे कों पन, पृथीपति मन आई, यों दुहाई लै दिवाई माला तिलक न धारियै।
मानि आनि प्रान, लोभ, केतिकनि त्याग दिये, छिपे नहीं जात, जानी बेग मारि डारियै॥
भगवानदास उर भक्ति सुखरास भर्‍यौ कर्‍यौ लै सुदेस देस, रीति लागी प्यारियै।
रीझ्यौ नृप देखि, रीझ मथुरा निवास पायौ, मन्दिर करायौ 'हरिदेव' सों निहारियै॥ ६२०॥

श्रीकल्याणदासजी

जगन्नाथ को दास निपुन अति प्रभु मन भायो।
परम पारषद समुझि जानि प्रिय निकट बुलायो॥
प्रान पयानो करत नेह रघुपति सों जोर्‌यो।
सुत दारा धन धाम मोह तिनुका ज्यों तोरयो॥
कौंधनी ध्यान उर में लस्यौ, राम नाम मुख जानकी।
भक्त पच्छ ऊदारता, यह निबही कल्यान की॥ १८९॥

भक्तोंका पक्ष लेना तथा उदारतापूर्वक सबसे व्यवहार करना—इन दोनों बातोंको श्रीकल्याणदासजीने जीवनभर निभाया। ये श्रीजगन्नाथजीके सेवक थे और सेवा करनेमें बड़े चतुर थे, अतः भगवान्‌को बहुत ही अच्छे लगते थे। भगवान्‌ने इन्हें अपना नित्य प्रिय पार्षद मानकर अपने पास बुला लिया। इन्होंने प्राण त्यागते समय स्त्री-पुत्र, धन-धामके महामोहको तृणके समान तोड़कर केवल भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे स्नेह जोड़ा और हृदयमें श्रीरामजीकी कौंधनीका ध्यान तथा मुखसे श्रीसीतारामजीके नामका उच्चारण करते हुए सद्‌गति प्राप्त की॥ १८९॥

श्रीकल्याणदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकल्याणदासजी सन्त-सेवी सद्‌गृहस्थ थे। आप ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए थे और श्रीराघवेन्द्रसरकार आपके इष्टदेव थे। एक बार आपके यहाँ कन्याका विवाह था। जाति-बिरादरीके साथ-साथ सन्तोंको भी आपने आमन्त्रित कर रखा था। जब भोजनका समय हुआ तो आपने सन्तोंकी पंगत पहले करा दी। इससे अन्य ब्राह्मण लोग बड़े असन्तुष्ट हुए और कहने लगे कि इन साधुओंकी जाति-पाँतिका कोई पता नहीं है, आपने इन्हें कैसे पहले खिला दिया? इसपर आपने सबको समझाते हुए कहा कि सन्तोंका 'अच्युत' गोत्र होता है और ये विश्वका कल्याण करनेवाले होते हैं। सन्त धरा-धामपर साक्षात् भगवान् श्रीहरिके प्रतिनिधि होते हैं, अतः उनके पहले प्रसाद ग्रहण कर लेनेसे आप सबको असन्तुष्ट नहीं होना चाहिये। इस प्रकारकी इनकी सन्त-निष्ठा देखकर अन्य ब्राह्मण भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो गये। आपके यहाँ सन्त-सेवा चल रही है, सुनकर और भी बहुतसे अनामन्त्रित सन्त भी आ पहुँचे। यह देखकर बिरादरीके लोग कहने लगे—अभी आपके घराती और बराती बाकी ही हैं, अगर आप इन अनामन्त्रित सन्तोंको भोजन करा देंगे तो उनके लिये क्या बचेगा? इसपर आपने कहा—चिन्ता करनेकी बात नहीं है, सन्तोंको खिलानेसे कम नहीं पड़ता, सारी पूर्ति रामजी करेंगे। यह कहकर आपने सब सन्तोंको भोजन करा दिया, फिर जब घरातियों-बारातियोंको खिलानेकी बात आयी तो आपने पंगतमें सबको बैठवा दिया और परोसनेवालोंसे परोसनेको कहा। प्रभुकृपासे सभीने पूर्ण तृप्तिका अनुभव किया और भोजनमें किसी भी प्रकारकी न्यूनता नहीं आयी। सन्त-कृपाका ऐसा चमत्कार देखकर सब लोग धन्य-धन्य कह उठे।

श्रीसन्तदासजी तथा श्रीमाधवदासजी

संतदास सदबृत्ति जगत छोई करि डार्‌यो।
महिमा महा प्रबीन भक्तिवित धर्म बिचार्‌यो॥
बहुर्‌यो माधौदास भजन बल परचौ दीनो।
करि जोगिनि सों बाद बसन पावक प्रतिलीनौ॥
परम धर्म बिस्तार हित प्रगट भए नाहिन तथा।
सोदर सोभूराम के सुनौ संत तिन की कथा॥ १९०॥

हे भगवद्भक्तजनो! श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजीके दोनों सहोदर भाइयोंकी कथाका श्रवण कीजिये। सदाचार एवं सात्त्विक वृत्तिसे निर्वाह करनेवाले श्रीसन्तदास (संतरामजी)-ने इस जगत्‌को नीरस एवं नि:सार वस्तु जान-मानकर उसे त्याग दिया। आप महामहिमावाले तथा प्रवीन (अर्थात् सत्य-असत्यका निर्णय करनेमें चतुर) थे, भक्तितत्त्वके ज्ञाता थे, अत: सोच-विचार करके उसे अपनाया। दूसरे भाई श्रीमाधवदासजीने भजनके प्रतापसे चमत्कार दिखाया और अभक्त योगियोंसे वाद-विवाद करके अपने वस्त्र जलती अग्निमें डालकर ज्यों-के-त्यों वापस कर लिये। परमधर्ममयी श्रीहरिभक्तिके प्रचार-प्रसारके लिये ही ये दोनों भाई प्रकट हुए। इन्होंने जैसा कार्य किया, वैसा दूसरा कोई नहीं कर सकता है॥ १९०॥

श्रीमाधवदासजी और श्रीसन्तदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीमाधवदासजी और श्रीसन्तदासजी दोनों सगे भाई थे। श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजीके आशीर्वादसे इन दोनोंका जन्म हुआ था। एक बार श्रीमाधवदासजीने एक नाथपंथी योगीके शिष्य एक राजाको दीक्षा देकर वैष्णव बना लिया। इससे वह कनफटा योगी बहुत नाराज हुआ और बोला कि तुमने ऐसा क्यों किया? आपने कहा—ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादिसे पूजित होनेके कारण विष्णुभगवान् श्रेष्ठ हैं। उनके चरणोंसे गंगाकी उत्पत्ति हुई, जो त्रिलोकतारिणी अघहारिणी हैं; अत: किसी भी देवी-देवके उपासकको विष्णु-भक्तिका उपदेश देना उचित है, इससे वे देवगण अप्रसन्न नहीं होते हैं। इस सम्बन्धमें जोगीने श्रीमाधवदासजीसे बहुत वाद-विवाद किया, पर इनसे नहीं जीता, तब बोला कि—हम अपने कानोंकी मुद्राएँ और सिंगीको अग्निमें डालते हैं, तुम अपनी कण्ठी-मालाको डालो। जिसकी वस्तुएँ जल जायँ, वह हारा और जिसकी न जलें, वह जीता माना जायगा। श्रीमाधवदासजीने कहा—तुलसी-मालाको हम अग्निमें नहीं डाल सकते हैं। हम अपना वस्त्र डालेंगे। अग्निमें डालनेपर जोगीकी मुद्राएँ और सिंगी जल गयीं, परंतु इनका अँचला नहीं जला। हारकर उसने चरण पकड़े,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षमा-प्रार्थना करके अनुयायी बना। उस योगीमें अग्नि-स्तम्भन सिद्धि थी। कई स्थानोंमें उसका प्रदर्शन कर चुका था, अतः उसे अहंकार था। भक्तिके सामने मायिक सिद्धियाँ व्यर्थ हो जाती हैं, इसलिये वह हार गया। उन दिनों हरियाणामें बड़ा आतंक फैला हुआ था, वे वैष्णव सन्तोंको टिकने नहीं देते थे। एक बार कई लोगोंने आपकी भजन-कुटीमें चारों ओरसे आग लगा दी, पर कुटी नहीं जली। भक्तिके ऐसे प्रभावको देखकर बहुत-से लोग आपके शिष्य बन गये।

एक बार श्रीसन्तदासजीके मनमें उत्कट वैराग्य उत्पन्न हुआ और ये जंगलमें जा विराजे। संसारियोंसे आप कुछ भी प्राप्त करनेकी आशा नहीं करते थे। बहुत-से ग्रामीण लोगोंने आपसे आकर कहा कि आप चलकर गाँवमें रहिये, वहाँ आपके भोजनादिका यथोचित प्रबन्ध हो जायगा। यहाँ जंगलमें कुछ भी प्रबन्ध नहीं हो सकता है। श्रीसन्तदासजीने कहा—मुझे तो श्रीगोविन्दजीकी आशा है। आप लोग मेरी चिन्ता न करें। यह सुनकर गाँवके लोग निराश होकर चले आये। आप वहीं भजनमें मग्न रहे। भगवान्‌ने नगरके हाकिमको आदेश दिया कि मेरा भक्त वनमें बैठा है, उसकी सेवा करो। उस हाकिमने बहुतसे मिष्ठान्न-पक्वान्न लाकर आपको भोजन कराया। समीपमें चौकीदारोंको नियुक्त किया। इसके बाद आपकी महिमा बढ़ी। अनेक लोग दर्शन करने और उपदेश लेने आने लगे। इस प्रकार आप दोनों भाइयोंने परमधर्मका विस्तार किया।

श्रीकन्हरदासजी

कृष्न भक्ति को थंभ ब्रह्मकुल परम उजागर।
छमासील गंभीर, सर्ब लच्छन को आगर॥
सर्बसु हरिजन जानि हृदय अनुराग प्रकासै।
असन बसन सनमान करत अति उज्ज्वल आसै॥
सोभूराम प्रसाद तें कृपादृष्टि सब पर बसी।
बूड़िए बिदित कन्हर कृपाल आतमाराम आगम दरसी॥ १९१॥

श्रीकन्हरदासजी बूड़िया ग्रामके निवासी, आत्मामें रमण करनेवाले, परम दयालु, शास्त्रोंके तथा भविष्यके द्रष्टा थे। आप श्रीकृष्णभक्तिके आधारभूत खम्भेके तुल्य थे तथा ब्राह्मणवंशमें प्रकट, अति प्रसिद्ध, क्षमाशील, गम्भीर एवं सभी शुभगुणोंसे सम्पन्न थे। भक्तोंको अपना सब कुछ जानकर उनके प्रति बड़ा अनुराग करते थे। भोजन-वस्त्र आदिसे सेवा तथा उनका बहुत सम्मान करते थे। आपका उद्देश्य बड़ा पवित्र था। गुरुदेव श्रीस्वभूरामजीकी कृपाका बल पाकर आपने सभी जीवोंके ऊपर कृपाकी वर्षा की॥ १९१॥

श्रीकन्हरदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकन्हरदासजी पंजाब प्रान्तके बूड़िया ग्रामके निवासी थे। आप भविष्यद्रष्टा सन्त थे। भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाओंकी जानकारी आपको पहले ही हो जाती थी और आप उन्हें अपने शिष्योंको बता देते थे। एक बार आपके यहाँ रसोई बन रही थी, अचानक आपने भण्डारीको आज्ञा दी कि बीस सन्तोंके लिये सामग्री और बढ़ा दो। भण्डारी और रसोइयेने आज्ञाका पालन किया और सचमुच पंगतके समय बीस मूर्तियाँ आ गयीं। इसी प्रकार आप प्रायः अपने यहाँ और अपने सेवकोंके यहाँ आनेवाले सन्तोंकी संख्या बता देते और उनकी बतायी संख्या सदैव सत्य होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगोविन्ददासजी भक्तमाली

रुचिरसील घननील लील रुचि सुमति सरित पति।
बिबिधि भक्त अनुरक्त ब्यक्त बहु चरित चतुर अति॥
लघु दीरघ सुर सुद्ध बचन अबिरुद्ध उचारन।
बिस्वबास बिस्वास दास परिचय बिस्तारन॥
जानि जगत हित सब गुननि सुसम नरायनदास दिय।
भक्त रतन माला सुधन गोबिंद कंठ बिकास किय॥ १९२॥

भक्तरत्नमाला (भक्तमाल)-रूपी उत्तम धन श्रीगोविन्ददासजीके कण्ठमें सुशोभित होकर वृद्धिको प्राप्त हुआ। इन्हें सम्पूर्ण भक्तमाल कण्ठस्थ था। अत्यन्त सुन्दर शील-स्वभाववाले तथा मेघके समान नील वर्णवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंमें आपकी सहज ही रुचि थी। शुद्ध बुद्धिके तो आप समुद्र ही थे। सभी प्रकारके भक्तोंमें आपका परम अनुराग था और उन सबके चरित्रोंका वर्णन करनेमें आप अत्यन्त चतुर थे तथा श्रीभक्तमालको पढ़ते या गाते समय ह्रस्व-दीर्घ स्वरोंका यथावत् उच्चारण करते थे। चरित्रोंका वर्णन करनेमें वाक्य एवं शब्दोंकी इस प्रकार योजना करते थे कि उसमें विरोध न हो, अर्थकी संगतिमें बाधा न हो। आप सम्पूर्ण विश्वमें निवास करनेवाले भगवान् एवं उनके भक्तोंमें दृढ़ विश्वास रखते थे और भक्तोंके चमत्कारोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करते थे। सभी जीवोंके हितमें तथा भक्त-भक्ति-भगवन्त और गुरुदेवकी सेवा-निष्ठा आदिमें श्रीनाभाजीने अपने समान जानकर 'भक्तरत्नमाल' रूप सम्पत्तिको इन्हें प्रदान किया, अतः ये श्रीभक्तमालके श्रेष्ठ प्रवक्ता प्रथम भक्तमाली हुए॥ १९२॥

श्रीजगतसिंहजी

श्रीजुत नृपमनि जगतसिंह दृढ़ भक्ति परायन।
परम प्रीति किए सुबस सील लक्ष्मीनारायन॥
जासु सुजसु सहजहीं कुटिल कलि कल्प जु धायक।
आग्या अटल सुप्रगट सुभट कटकनि सुखदायक॥
अति ही प्रचंड मार्तंड सम तम खंडन दोर्दंड बर।
भक्तेस भक्त भव तोषकर संत नृपति बासो कुँवर॥ १९३॥

भक्तोंके स्वामी जो भगवान् उनके महान् भक्त श्रीशिवको सन्तुष्ट करनेवाले भक्तराज श्रीजगतसिंहजी वासोदेईके सुपुत्र थे। आप राजाओंमें श्रेष्ठ, भक्तिमें दृढ़ निष्ठावाले भक्त थे। आपने अपनी सच्ची प्रीति तथा विनम्र स्वभावसे श्रीलक्ष्मीनारायणभगवान्को अपने वशमें कर लिया था। आपका सुयश कलियुगके दोष-पापोंको नष्ट करनेवाला है। आपकी आज्ञा अटल थी, उसका उल्लंघन करनेका साहस किसी भी योद्धा या दुष्टमें नहीं होता था। समरभूमिमें आपके पराक्रमको देखकर वीरोंकी सेनाएँ प्रसन्न हो जाती थीं और दूने उत्साहसे युद्ध करने लगती थीं। आपके भुजदण्ड प्रचण्ड सूर्यके तुल्य थे, उससे भयरूप अन्धकारका सर्वथा नाश हो जाता था॥ १९३॥

श्रीजगतसिंहजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

भक्तवर राजा श्रीजगतसिंहजी श्रीलक्ष्मीनारायण-भगवान्‌की सेवामें पूर्णरूपसे तत्पर रहते थे, उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिज्ञा कर ली थी कि भगवान्‌का डोला सदा अपने साथ रखूँगा। तदनुसार डोला आपके साथ ही रहता। जब आप युद्ध करनेके लिये लड़ाईके मैदानमें जाते तो आप आगे रहते और डोला पीछे रहता। इसके अतिरिक्त जब कभी आप किसी यात्रामें जाते तो आगे-आगे भगवान्‌का डोला रहता और सेवककी तरह आप पीछे-पीछे चलते। आपके हृदयमें श्रीठाकुरजीकी सेवाका ऐसा उत्साह था कि सेवाके लिये नित्य जल भरकर घड़ेको अपने सिरपर रखकर लाते। आपकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर जयसिंह और जसवन्तसिंहको बड़ी प्रसन्नता हुई। एक बार दिल्लीमें सभी राजा लोग इकट्ठे हुए। वहाँ श्रीयमुनाजलका घड़ा गाजे-बाजेसहित सिरपर रखकर लाते हुए श्रीजगतसिंहको जयसिंह और जसवन्तसिंहने देखा तो धरतीपर लेटकर प्रणाम किया। फिर विनती करते हुए कहा—'वस्तुतः आपका शरीर धारण करना ही सफल है, क्योंकि आपने शरीरसे सेवा करके भगवत्प्रेमको प्राप्त कर लिया।' इस प्रकार इनकी प्रशंसा करते-करते दोनों ही भगवत्प्रेमके प्रसंगमें डूब गये।

राजा जगतसिंहजीने जयसिंहजीसे कहा—'मुझमें भगवत्प्रेम कहाँ है? सच्चा प्रेम तो आपकी बहन दीपकुँवरिजीमें है, उसके प्रेमकी गन्धको भी मैं नहीं पा सकता हूँ, वे तो वात्सल्य प्रेमरसकी खान हैं। मैं तो थोड़ी-बहुत भगवान्‌की सेवा कर पाता हूँ।' यह सुनकर जयसिंहजीको बड़ा सुख हुआ। कुछ समयसे किसी कारणवश ये अपनी बहन श्रीदीपकुँवरिसे नाराज रहते थे। अब श्रीजगतसिंहजीसे उनके प्रेमका परिचय पाकर जयसिंहजीने उस नाराजगीको अपने हृदयसे निकाल दिया। बहनके जो गाँव छीन लिये थे, वे फिरसे दे दिये और स्वयं हरिका ध्यान करने लगे। मन्त्रीको लिखित आदेश दिया कि 'बहनजी जैसे-जैसे सन्त-भगवन्तकी सेवा करना चाहें, वैसे-वैसे उन्हें करने देना। इनकी कृपासे अब मैं भी दिन-रात भक्त-भगवद्‌गुणोंका गान करता हूँ।'

श्रीप्रियादासजीने राजा जगतसिंहके इस भगवत्प्रेमका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

जगता कौ पन मन सेवा श्री नारायण जू, भयौ ऐसौ पारायण, रहै डोला सङ्ग ही।
लरिबे कों चलै आगै, आगै सदा पीछे रहै, ल्यावै जल सीस, ईश भर्‍यौ हियो रङ्ग ही॥
सुनि जशवन्त जयसिंह कै हुलास भयौ, देख्यौ, दिल्ली माँझ, नीर ल्यावत अभङ्ग ही।
भूमि परि, बिनै करी, 'धरी देह तुमहीं नै', यातै पायौ नेह भीजि गये यों प्रसङ्ग ही॥ ६२१॥
नृपति जैसिंहजू सों बोल्यौ 'कहा नेह मेरे? तेरी जो बहिन ताकी गन्ध को न पाऊँ मैं'।
नाम 'दीपकुंवरि' सो बड़ी भक्तिमान जानि, वह रसखानि ऐपै कछुक लड़ाऊँ मैं॥
सुनि सुख भयौ भारी, हुती रिस वासों, टारी, लिये गांव काढ़ि फेरि दिये, हरि ध्याऊँ मैं।
लिखिकै पठाई 'बाई करैं सो करन दीजै, लीजै साधु सेवा करि निस दिन गाऊँ मैं'॥ ६२२॥

श्रीगिरिधरग्वालजी

प्रेमी भक्त प्रसिद्ध गान अति गदगद बानी।
अंतर प्रभु सों प्रीति प्रगट रहै नाहिन छानी॥
नृत्य करत आमोद बिपिन तन बसन बिसारै।
हाटक पट हित दान रीझि तत्काल उतारै॥
मालपुरै मंगल करन रास रच्यो रस रंग कौ।
गिरिधरन ग्वाल गोपाल को सखा साँचिलो संग कौ॥ १९४॥

श्रीगिरिधरग्वालजी गोपालकृष्णके सच्चे सखा और साथी थे। ये प्रसिद्ध प्रेमी भक्त थे। प्रेमके आवेशमें आकर गद्‌गद कण्ठसे जब ये भगवद्‌गुणगान करते तो उस समय आपके हृदयकी प्रीति छिपाये नहीं छिपती थी, प्रकट हो जाती थी। प्रेम-विवश आनन्दमें मग्न होकर जब ये श्रीवृन्दावनमें नृत्य करते तो उस समय इन्हें अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरकी तथा वस्त्राभूषणोंकी सुध नहीं रहती। उस समय यदि कोई आपके सामने पड़ जाता तो आप रीझकर उसे सोनेके गहने अथवा जरीदार वस्त्र उतारकर दे देते। एक बार प्रेमी भक्तोंके मंगल कल्याणके लिये आपने मालपुरा (जयपुरके निकट) नामक ग्राममें रास करवाया। उसमें रसरूपी रंगकी वर्षा हुई, जिसमें सभी रँग गये॥ १९४॥

श्रीगिरिधरग्वालजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगिरिधरग्वालजी जातिसे ब्राह्मण थे, परंतु गोचारणमें स्वाभाविक स्नेह होनेके कारण आपकी 'ग्वाल' उपाधि हो गयी थी। श्रीगिरिधरग्वालजीको सर्वदा साधु-सेवाका ही स्मरण रहता था। सन्तोंका दर्शन करके आप कृतार्थ हो जाते थे, अपनेको धन्य मानते थे। सन्त-तत्त्वको आपने भलीभाँति समझ लिया था, अतः शरीर छूट जानेके बाद भी उस सन्तका चरणामृत लेते थे। इससे अधिक सन्तोंमें प्रेम करनेकी रीति और क्या हो सकती है। जो ब्राह्मण लोग इनकी दृढ़-निष्ठासे अपरिचित थे, उन्होंने मृतकका चरणामृत लेना अनुचित मानकर पंचोंको एकत्र किया और उसमें श्रीग्वालभक्तजीको भी बुलाया। सभी लोगोंने इनसे कहा कि 'मृतकका चरणोदक लेना ठीक नहीं है, आप इसे छोड़ दीजिये।' आपने उत्तर दिया कि 'जिसे सन्तोंमें अश्रद्धा हो, उनके महत्त्वको न जानता हो, वह उन्हें मृतक मानकर उनका चरणामृत न ले। मैं सन्तोंमें श्रद्धा करता हूँ, उनके अद्भुत प्रभावको भलीभाँति जानता हूँ। शरीर त्यागकर भगवद्धाम जानेवाले सन्तोंको मृतक नहीं मानता हूँ। अतः उनका चरणामृत लेता हूँ, जिसे मृतक-बुद्धि हो, आपलोग उसे मना कीजिये।' यह सुनकर सबोंने इनका जाति-पाँतिसे बहिष्कार कर दिया, फिर चमत्कारको देखकर सभी नतमस्तक हुए। सबको इनकी दृढ़निष्ठा अच्छी लगी। सभी लोग इनकी प्रशंसा करने लगे।

श्रीप्रियादासजीने श्रीगिरिधरग्वालजीकी इस सन्तनिष्ठाका वर्णन इस प्रकार किया है—

गिरिधर ग्वाल, साधु सेवा ही कौ ख्याल जाके, देखि यौं निहाल होत प्रीति साँची पाई है।
सन्त तन छूटे हूँते लेत चरणामृत जो, और अब रीति कहौ कापै जात गाई है॥
भये द्विज पञ्च इक ठौरे सो प्रपञ्च मान्यौ आन्यौ सभा माँझ कहैं 'छोड़ौ न सुहाई है।
'जाके हो अभाव मत लेवौ, मैं प्रभाव जानौं मृतक यों बुद्धि ताकौ बारो' सुनि भाई है॥ ६२३॥

श्रीगोपालीजी

प्रगट अंग में प्रेम नेम सों मोहन सेवा।
कलिजुग कलुष न लग्यो, दास तें कबहुँ न छेवा॥
बानी सीतल सुखद सहज गोबिंद धुनि लागी।
लक्षन कला गँभीर धीर संतनि अनुरागी॥
अंतर सुद्ध सदा रहै रसिक भक्ति निज उर धरी।
गोपाली जन पोष कों जगत जसोदा अवतरी॥ १९५॥

भक्तोंका वात्सल्यभावसे पालन-पोषण करनेके लिये श्रीगोपालीबाईके रूपमें मानो श्रीयशोदाजीने ही अवतार लिया था। इनके अंग-प्रत्यंगमें प्रेम प्रकट था। नित्य-नियमसे अपने मोहनलालकी सेवा करती थीं। कलियुगके दोष-पाप आपके तन-मनको छूतक नहीं पाये थे और भक्तोंसे किसी प्रकारका छल-कपट आपने नहीं रखा। आपकी वाणी सहज ही शीतल एवं सुख देनेवाली थी। श्रीगोविन्दभगवान्‌के नामको सदा रटती रहती थी। भक्ता एवं पतिव्रता स्त्रियोंके सभी शुभ लक्षण एवं कलाएँ आपमें विद्यमान थीं। स्वभावसे धीर-गम्भीर एवं सन्तोंमें श्रद्धा-भक्ति रखनेवाली श्रीगोपालीबाईका अन्तःकरण सदा परम पवित्र रहता था। इन्होंने वात्सल्यरसमयी भक्ति अपने हृदयमें धारण की॥ १९५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगोपालीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगोपालीजी भगवान् श्रीकृष्णकी वात्सल्यभावसे भावित भक्त थीं। ऐसा लगता था मानो श्रीयशोदाजी ही भक्तिमती गोपालीजीके रूपमें गोलोकसे पृथ्वीपर आ गयी थीं। वही आवेश आपके अंगमें था। आप बड़े प्रेमसे मोहनलालकी सेवा करती थीं। एक बार इनकी भक्तिपर रीझकर प्रभु एक सन्तका वेश धारणकर इनके घरपर पधारे। उस समय गोपालीबाई श्रीठाकुरजीको भोग लगा रही थीं। सन्तभगवान्का सत्कार करके प्रसादसे भरी थाली लाकर बाईने सन्तके सामने रखकर प्रार्थना की—'प्रसाद पाइये।' सन्तने कहा—पहले भगवान्को पवाओ। बाईने कहा—भगवान् तो गन्धमात्र ग्रहण करते हैं, मैं उन्हें कैसे पवाऊँ? सन्तने कहा—यदि आप अपने हाथसे उनके श्रीमुखमें ग्रास दे दें तो वे अवश्य ही खायेंगे। बाईने मन्दिरमें थाल ले जाकर अपने हाथसे भगवान्के मुखमें ग्रास दिया। बड़े प्रेमसे भगवान्ने खा लिया। इससे बाईको बड़ा-भारी सुख हुआ, वे प्रेममें विभोर हो गयीं। जिस सन्तकी कृपासे यह अभूतपूर्व आनन्द मिला, उस सन्तको भोजन करानेकी उत्कण्ठासे मन्दिरके बाहर आयीं तो सन्तके दर्शन न हुए। अब इन्हें बड़ी बेचैनी हुई। आप समझ गयीं कि वे सन्त भगवान् ही थे। फिर आप मन्दिरमें श्रीठाकुरजीको पवाने लगीं। इस बार प्रभुने कुछ भी नहीं खाया। तब ये अधीर होकर रुदन करने लगीं। उसी समय आकाशवाणी हुई कि एक बार मैंने तुम्हारे प्रेमसे खा लिया। अब तुम आग्रह न करो। मैं रसका आस्वादन अपने भक्तोंकी रसनासे करता हूँ। तुम भक्तोंको उनकी रुचिके अनुसार भोजन कराओ, उनकी सेवा करो।

इस आज्ञाके बाद बाईको भक्तोंकी इच्छाका अनुभव होने लगा। तदनुसार ये सेवा करने लगीं। एक दिन दस सन्त आये, उनके मनमें था, आज सीरा मिले। बाईने जानकर सीरा बनाकर भोग लगाया और सन्तोंके सामने रख दिया। सन्तोंके मनमें आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन सन्तोंने आपसमें बातचीत करके खीर-भोग आरोगनेकी इच्छा की तो बाईने खीर ही खवाई। तीसरे दिन सिखरन भातकी इच्छा हुई तो बाईने सिखरन भात ही पवाया। आश्चर्यचकित होकर सन्तोंने पूछा—तो आपने बताया कि मुझे सन्त-भगवन्तका आशीर्वाद मिल गया है, अतः उसका ज्ञान हो गया है। फिर कभी दो सन्त पधारे, उन्होंने इच्छा की कि हमारे वस्त्र फट गये हैं। गोपाली बाईके यहाँ पहुँचकर उनसे नये वस्त्र ले लेंगे। इस इच्छासे आये सन्तोंको भोजन कराकर बाईने वस्त्र अर्पण करके कहा कि जो इच्छा हो सो बनवा लो। सन्तोंने त्याग दिखाया और वस्त्र लेनेसे इनकार कर दिया, तब बाईने कहा—'जब आप वस्त्रकी इच्छा करके आये हैं, तब फिर अब क्यों अस्वीकार करते हैं?' सन्तोंने गोपालीके चरणोंकी वन्दना की और आशीर्वादके साथ वस्त्र प्राप्त किये। इस प्रकार इनका सुयश सन्तोंमें फैल गया।

श्रीरामदासजी

सीतल परम सुसील बचन कोमल मुख निकसै।
भक्त उदित रबि देखि हृदय बारिज जिमि बिकसै॥
अति आनँद मन उमँगि सन्त परिचर्जा करई।
चरन धोय दंडौत बिबिधि भोजन बिस्तरई॥
बछबन निवास बिस्वास हरि जुगल चरन उर जगमगत।
श्री (रामदास) रस रीति सों भली भाँति सेवत भगत॥ १९६॥

श्रीरामदासजी बड़े मधुर भावसे भक्तोंकी सेवा करते थे। इनके मुखसे शीतल, कोमल और नम्रतापूर्ण वचन ही निकलते थे। सूर्योदय होते ही जैसे कमल विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार भक्तको देखकर आपका हृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिल उठता था। मनमें अपार उत्साह रखकर बड़ी रुचिके साथ सन्तोंकी विविध प्रकारसे सेवा-शुश्रूषा करते थे। आते ही सन्तोंके श्रीचरणोंको धोकर चरणोदक लेते, उन्हें साष्टांग दण्डवत् करते; तत्पश्चात् अनेक प्रकारके उत्तम-से-उत्तम भोजन-प्रसाद पवाते। बछवनमें आपका निवास स्थान था, भगवान्‌में आपका अटल विश्वास था और उन्हींके युगल श्रीचरणकमल आपके हृदय-भवनमें जगमगाते रहते थे॥ १९६॥

श्रीरामदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

किसी सन्तने श्रीरामदासजीके भक्ति-भावकी प्रशंसा सुनी तो वे इनकी भक्तिनिष्ठाको देखनेके लिये इनके आश्रमपर आये। संयोगवश ये वहीं बैठे थे। वे सन्त इन्हींसे पूछने लगे कि 'श्रीरामदासजी कौन हैं?' सन्तको आया देखकर श्रीरामदासजी जल्दीसे उठे और उन्होंने सन्तके चरण धोकर चरणामृत लिया। इसके बाद साष्टांग दण्डवत् करके बोले—'आप विराजो, रामदास अभी आता है।' आगन्तुक सन्तने कहा—'पहले हमें यह बतलाइये कि रामदासजी कहाँ हैं, उनसे मिलनेकी मुझे तीव्र लालसा है और यहाँ आनेका हमारा यही मुख्य प्रयोजन है। उनसे मिलकर हमें शीघ्र ही चले जाना है।' श्रीरामदासजीने उत्तर दिया—'पहले आप चलकर प्रसाद लीजिये, फिर रामदास आ जायगा।' सन्तने कहा—'नहीं, पहले रामदासजीको बुलाकर उनका दर्शन करा दीजिये। उसके बाद ही मैं प्रसाद पाऊँगा।' इस प्रकार उनका आग्रह देखकर श्रीरामदासजीने कहा—'आप सन्तोंका सेवक रामदास यही है, यह आपका ही आश्रम है, कृपा करके आप अपने आश्रममें पधारिये और प्रसाद पाइये।' यह सुनते ही वे सन्त श्रीरामदासजीके चरणोंमें गिर पड़े। उनका हृदय आनन्दसे भर गया, वे फूले नहीं समा रहे थे। वे कहने लगे—'आपके सुयशकी चाँदनी सर्वत्र फैली है, उससे सभी लोगोंको सुख-शान्ति मिल रही है। आपका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। मेरे हृदयमें भी प्रकाश हो गया।'

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सुनि एक साधु आयौ, भक्ति भाव देखिबे कों, बैठे रामदास, पूछै रामदास कौन है?'।
उठे आप धोए पाँव, आवै रामदास अब, 'रामदास कहाँ? मेरे चाह और गोन है'॥
'चलो जू प्रसाद लीजै दीजै रामदास आनि', 'यही रामदास, पग धारौ निज भौन है'।
लपटानौ पाँयन सो चायन समात नाहिं, भायनि सों भर्‌यौ हिये, छाई जस जौन्ह है॥ ६२४॥

श्रीरामदासजीकी कन्याका विवाह था। उस अवसरपर सबको बड़ा भारी उत्साह हुआ। अनेक प्रकारके पक्वान्न बाराती और घरातियोंके लिये बनाकर कोठेमें रख दिये गये। इनके पुत्र और नाती पक्वान्नोंकी रखवाली करने लगे। उन्होंने कोठेमें ताला बन्द कर दिया; क्योंकि उनके मनमें डर था कि कहीं बाबाजी सब सामान साधु-सन्तोंको बाँट न दें। अवसर पाकर श्रीरामदासजीने दूसरी ताली लगाकर कोठेका ताला खोल लिया। आप किसीसे डरते न थे। सन्तजन पधारे, आपने पोटली बँधवा दी और कहा कि स्थानमें ले जाकर आपलोग भोग लगाइये और पाइये। सन्त-भगवन्तको पक्वान्नोंकी पोटलियाँ बँधवाकर आपने महान् सुख प्राप्त किया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बेटी को विवाह, घर बड़ौ उतसाह भयो, किये पकवान नाना, कोठे मांझ धरे हैं।
करैं रखवारी सुत नाती दिये तारौ रहैं, और ही लगाई तारी खोल्यौ नहीं डरे हैं॥
आये गृह सन्त तिहैं पोट बँधवाय दई, पायौ यों अनन्त सुख ऐसे भाव भरे हैं।
सेवा श्रीबिहारीलाल, गाई पाक सुद्धताई, मेरे मन भाई, सब साधु उर हरे हैं॥ ६२५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामरायजी

भक्ति ग्यान वैराग्या जोग अंतर गति पाग्यो।
काम क्रोध मद लोभ मोह मतसर सब त्याग्यो॥
कथा कीरतन मगन सदा आनँद रस भूल्यो।
संत निरखि मन मुदित उदित रबि पंकज फूल्यो॥
बैर भाव जिन द्रोह किय तासु पाग खसि भ्वै परी।
बिप्र सारसुत घर जनम रामराय हरि रति करी॥ १९७॥

सारस्वत ब्राह्मणवंशमें जन्म लेकर श्रीरामरायजीने भगवान्‌में प्रेम किया। आपकी चित्तवृत्ति ज्ञान, वैराग्य और भक्तियोगमें सर्वदा पगी रहती थी। काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह और ईर्ष्या आदि मायिक विकारोंको आपने सर्वथा छोड़ दिया था। आप सर्वदा भगवत्कथा-कीर्तनमें मग्न होकर इसके आनन्दमय अनुभवसे झूमते रहते थे। सन्तोंको देखकर आपका मन उसी प्रकार खिल जाता था, जैसे सूर्यको देखकर कमलका पुष्प। जिन दुष्टोंने आपसे द्वेष किया, आपको नीचा दिखाना चाहा, उन्हें स्वयं ही नीचा देखना पड़ा॥ १९७॥

श्रीरामरायजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीरामरायप्रभुका जन्म रावी नदीके तटपर बसे लाहौर (पंजाब) में वि० सं० १५४० वैशाख शुक्ल ११ को मध्याह्नमें हुआ। आपके पिता श्रीगुरुगोपालजी और माता श्रीयशोमतिजी थीं। परम्परागत रूपसे घरमें विराजमान श्रीगीतगोविन्दके कर्ता श्रीजयदेवजीके ठाकुर श्रीराधामाधवजीने श्रीगुरुगोपालजीको स्वप्नादेश दिया कि मेरा चरणामृत अपनी धर्मपत्नीको पिलाओ, उससे एक महान् चमत्कारी भक्तपुत्र उत्पन्न होगा। पादोदक पान करते ही यशोमतिजीको ऐसा अनुभव हुआ कि किसी शक्तिविशेषने मेरे उदरमें प्रवेशकर मुझे कृतार्थ किया। किसीके मतसे श्रीरामेश्वरम्‌की यात्रामें वहीं जन्म हुआ, इसलिये इनके रामेश्वर, रामराय, रामदास और रामगोपाल आदि नाम पड़ गये। ग्यारह वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। पिताने इन्हें गायत्रीके साथ श्रीराधागोपालमन्त्र दिया, जो वृन्दावनमें श्रीजीके द्वारा श्रीजयदेवजीको प्राप्त हुआ था। श्रीरामरायजीने वि० सं० १५५२ बसन्त पंचमीके दिन श्रीजयदेवजीकी जन्म-जयन्तीके उपलक्ष्यमें बिना सामग्री मँगवाये एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराया, इससे आपकी महिमा सर्वत्र विख्यात हो गयी। ठाकुर श्रीराधामाधवजीने आज्ञा दी कि तुम वृन्दावन जाओ। उसके बाद मैं चन्द्रगोपालके साथ आऊँगा। आदेश पाकर योगबलसे आप हरिद्वार पहुँच गये। वहाँ नानाके बड़े भ्राता श्रीआसुधीरजी मिले। उन्हें भी वृन्दावन ले आये। मार्गमें उपब्रज (अलीगढ़)-में प्रसादी नामके ब्राह्मण सन्तसेवा करते थे, उनके यहाँ विश्राम किया। उनकी दीनता देखकर आपने अपनी मुद्रिका उतारकर दे दी और आशीर्वाद दिया कि खूब लक्ष्मीसे सम्पन्न हो जाओ और श्रीराधामाधवका भजन करो। कालान्तरमें वे श्रीसे सम्पन्न होनेपर श्रीराधामाधवकी सेवा-पूजा करने लगे।

एक दिन श्रीरामरायजीने वृन्दावनमें बास करनेकी इच्छा प्रकट की। लोगोंने समझाया कि यहाँ हिंसक जानवर रहते हैं, फिर भी एक दिन सभीको सोते हुए छोड़कर आप वृन्दावन पहुँच गये। यमुनापुलिन धीर समीरमें आपको श्रीराधामाधवजीके दिव्य दर्शन हुए। श्रीठाकुरजीने आदेश दिया कि पहले तीर्थाटन करो, तब यहाँ बास करना। तीर्थाटन करते हुए आप काशी पहुँचे। विद्वानोंने प्रभावित होकर आपकी शोभायात्रा निकाली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें श्रीमाधवेन्द्रपुरी, राजेश्वरतीर्थ, प्रकाशानन्दसरस्वती, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीगोकुलानन्द, विद्यासागर गोविन्द कवि रंगनाथ एवं विश्वनाथ आदि महापुरुष उपस्थित थे। ईर्ष्यावश जिन्होंने शास्त्रार्थ किया, उन्हें पराजित करके भक्तिकी स्थापना की। हजारों लोगोंको प्रसाद पवाकर सन्तुष्ट किया। श्रीनित्यानन्द महाप्रभुने प्रसन्न होकर इन्हें अपनी ओर आकर्षित किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरीजीने श्रीरामरायजीको बताया कि ये संकर्षण भगवान् हैं, इनसे दीक्षा ले लो। गुरुत्वको स्वीकार करो। आचार्य होकर भी इन्होंने उनके गुरुत्वको स्वीकार किया। आपके उत्कृष्ट दैन्यको देखकर श्रीवल्लभाचार्यजी बहुत सन्तुष्ट हुए। इसके पश्चात् श्रीरामरायजी श्रीनित्यानन्दजीके साथ नवद्वीप पधारे और श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका दर्शन किया। उन्हें अष्टपदी सुनाया। प्रसन्न होकर श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने कहा—'आप साक्षात् रामभद्र हैं।' मैं श्रीवृन्दावनमें आकर आपसे मिलूँगा। अपने साथ भूगर्भ और लोकनाथको ले जाओ। आप श्रीजगन्नाथ भगवान्‌का दर्शन करते हुए वृन्दावन आये।

श्रीगौरांग महाप्रभु वृन्दावन पधारे और अक्रूरघाटपर ठहरे। श्रीरामरायजी नित्य गीतगोविन्द सुनाकर उन्हें प्रसन्न करते। आपने अपना अधिकांश समय व्रज-वृन्दावनमें ही बिताया। अन्तिम समयमें कहीं आना-जाना बन्द करके आप बन-विहार और वंशीवटमें रहकर भजन-ध्यान करते रहे। उसी समय आपने ब्रह्मसूत्रपर गौरविनोदिनी वृत्ति लिखी। इनके छोटे भ्राता श्रीचन्द्रगोपालजीने वृत्तिके ऊपर भाष्य किया। श्रीरामरायजीके संस्कृतमें द्वादश ग्रन्थ हैं। आदिवाणी और श्रीगीतगोविन्दपर पदावली ये भाषाग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार वि० सं० १५४० तक आपकी दिव्य जीवनलीला रही। आपके १२ प्रधान शिष्य थे। इनके नाम इस प्रकार हैं—(१) श्रीभगवानदासजी, (२) श्रीगरीबदासजी, (३) श्रीविष्णुदासजी, (४) श्रीयुगलदासजी, (५) गोस्वामी श्रीराधिकानाथजी, (६) श्रीकिशोरदासजी, (७) श्रीकेशवदासजी, (८) श्रीमनोहरदासजी, (९) श्रीलाखादासजी, (१०) श्रीमधुसूदनदासजी, (११) श्रीहरिदासजी पटेल तथा (१२) श्रीतीर्थरामजी जोशी।

श्रीभगवन्तमुदितजी

कुंजबिहारी केलि सदा अभ्यंतर भासै।
दंपति सहज सनेह प्रीति परमिति परकासै॥
अननि भजन रस रीति पुष्ट मारग करि देखी।
बिधि निषेध बल त्यागि पागि रति हृदय बिसेषी॥
माधव सुत संमत रसिक तिलक दाम धरि सेव लिय।
भगवंत मुदित ऊदार जस रस रसना आस्वाद किय॥ १९८॥

श्रीमाधवदासजीके सुपुत्र श्रीभगवन्तमुदितजीने रसिक भक्तोंसे समर्थित तुलसीकण्ठी और तिलक धारणकर अपने इष्टदेव श्रीराधाकृष्णकी नित्य-नियमसे सेवा की तथा उदार भगवान्‌के परमोदार सुयशका अपनी वाणीसे वर्णन करके उसके रसका आस्वादन किया। श्रीकुंजविहारिणी-कुंजविहारीकी नित्य-निकुंजलीला इनके हृदयमें सर्वदा प्रकाशित रहती थी। दम्पति श्रीराधाकृष्णका जो पारस्परिक सहज स्नेह और प्रीतिकी जो अन्तिम सीमा है, उससे आपका हृदय प्रकाशित था। अनन्य भावसे सेवा करनेकी जो रसमयी रीति है, उसीको आपने उत्तम-से-उत्तम मार्ग मानकर अपनाया, उसीपर चले। भक्तिसे भिन्न लौकिक-वैदिक विधि-निषेधोंका सहारा छोड़कर आपका हृदय विशेषकर श्रीराधाकृष्णके परमानुरागमें सराबोर रहता था॥ १९८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्तमुदितजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीभगवन्तमुदितजी परमरसिक सन्त थे। आप आगराके सूबेदार नवाब शुजाउल्मुल्कके दीवान थे। कोई भी ब्राह्मण, गोसाईं, साधु या गृहस्थ ब्रजवासी जब आपके यहाँ पहुँच जाता तो आप अन्न, धन और वस्त्र आदि देकर उसे प्रसन्न करते थे; क्योंकि व्रजवासियोंके प्रेममें इनकी बुद्धि रम गयी थी। आपके गुरुदेवका नाम श्रीहरिदासजी था। ये श्रीवृन्दावनके ठाकुर श्रीगोविन्ददेवजी मन्दिरके अधिकारी थे। इन्होंने व्रजवासियोंके मुखसे श्रीभगवन्तमुदितजीकी बड़ी प्रशंसा सुनी तो इनके मनमें आया कि हम भी आगरा जाकर (शिष्य) भक्तकी भक्ति देखें।

श्रीभगवन्तमुदितजीने सुना कि श्रीगुरुदेव आ रहे हैं तो इन्हें इतनी प्रसन्नता हुई कि ये अपने अंगोंमें फूले नहीं समाये। ये अपनी स्त्रीसे बोले कि 'कहो, श्रीगुरु-चरणोंमें क्या भेंट देनी चाहिये?' स्त्रीने कहा—'हम दोनों एक-एक धोती पहन लें और शेष सब घर-द्वार, कोठार-भण्डार, चल-अचल सम्पत्ति श्रीगुरुदेवको समर्पण कर दें और हम दोनों वृन्दावनमें चलकर भजन करें। स्त्रीकी ऐसी बात सुनकर श्रीभगवन्तमुदितजी उसपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'सच्ची गुरु-भक्ति करना तो तुम ही जानती हो, यह तुम्हारी सम्मति हमको अत्यन्त प्रिय लगी है।' ऐसे कहते हुए उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। गुरुदेव रात्रिमें बाहर द्वारपर बैठे सुन रहे थे। सर्वस्व-समर्पणकी बात गोस्वामी श्रीहरिदासजीने सुन ली और उन्होंने जान लिया कि ये सर्वस्व-त्याग करके विरक्त बनना चाहते हैं, जिसका अभी योग नहीं है, अतः आप उसी समय बिना श्रीभगवन्तमुदितजीसे मिले ही परिचित व्यक्तिको बताकर लौटकर श्रीवृन्दावनको चले आये और इनके प्रेम-भरे त्यागके प्रणपर बहुत ही सन्तुष्ट हुए।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—

सूजा के दीवान भगवन्त रसवन्त भए, वृन्दावन बासिन की सेवा ऐसी करी है।
बिप्र कै गुसाईं साधु कोऊ ब्रजवासी जाहु, देत बहु धन एक प्रीति मति हरी है॥
सुनी गुरुदेव, अधिकारी श्रीगोविन्द देव, नाम हरिदास 'जाय देखैं' चित धरी है।
जोग्यताई सीवां प्रभु दूध भात माँगि लियो कियौ उत्साह तऊ पेखैं अरबरी है॥ ६२६॥
सूनी गुरु आवत, अमावत न किहूँ अंग रंग भरि तिया सों, यों कही 'कहा कीजियै?'।
बोली घर बार पट सम्पति भण्डार सब भेंट करि दीजै, एक धोती धारि लीजियै॥
रीझे सुनि बानी, साँची भक्ति तैं ही जानी, मेरे अति मन मानी, कहि आँखें जल भीजियै।
यही बात परी कान, श्रीगुसाईं लई जान, आये फिरि वृन्दावन, पन मति धीजियै॥ ६२७॥

श्रीभगवन्तमुदितजीको जब यह मालूम हुआ कि श्रीगुरुदेव आये और वापस चले गये तो आपका उत्साह नष्ट हो गया। हृदयमें अपार पश्चात्ताप हुआ। फिर आपने गुरुदेवके दर्शन करनेका विचार किया और नवाबसे आज्ञा माँगकर श्रीवृन्दावन आये। गुरुदेवके दर्शनकर सुखी हुए। बहुतसे लीला-पदोंकी रचना की। आपका 'श्रीरसिक अनन्यमाल' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इस प्रकार आपने अनन्य-प्रेमका एकरस निर्वाह किया। गुरुदेवसे आज्ञा लेकर आगराको लौट गये। वहाँ किसी कारणवश कई व्रजवासी चोरोंने आपके घरमें ही चोरी कर ली, पर इससे आपने जरा भी मनमें दुःख न माना; क्योंकि आपका मन भगवान्‌की भक्तिमें सराबोर था और दृष्टिमें श्रीवृन्दावन-बिहारिणी-बिहारीजी समाये हुए थे। वास्तवमें आप बड़े ही भाग्यशाली और प्रेमी सन्त थे। संसारमें आपका भगवत्प्रेम प्रसिद्ध था। श्रीभगवन्तमुदितजीके पिता श्रीमाधवदासजी रसिक थे। आगे उनकी कथा सुनिये—

'श्रीमाधवदासजी बेसुध हैं, नाड़ी छूटनेवाली है, अब इनका अन्तिम समय आ गया है'— ऐसा जानकर लोग उन्हें पालकीमें बैठाकर आगरासे श्रीवृन्दावनधामको ले चले। जब आधी दूर आ गये, तब श्रीमाधवदासजीको होश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो आया। दु:खित होकर आपने लोगोंसे पूछा कि क्रूरो! तुम लोग मुझे कहाँ लिये जा रहे हो?' लोगोंने कहा—'आप जिस श्रीवृन्दावनधामका नित्य ध्यान किया करते हैं, वहीं ले चल रहे हैं।' यह सुनकर आपने कहा—'अभी लौटाओ, यह शरीर श्रीवृन्दावन जानेके योग्य कदापि नहीं है, इसे जब वहाँ जलाया जायगा, तब इसमेंसे बड़ी-भारी दुर्गन्ध निकलेगी, वह प्रिया-प्रियतमको अच्छी नहीं लगेगी।' प्रिया-प्रियतमके पास जानेयोग्य जो होगा, वह अपने-आप उनके पास चला जायगा। आप ऐसे भावकी राशि थे। वापस जाकर आगरामें ही आपने शरीर छोड़ा।

श्रीप्रियादासजीने श्रीमाधवदासजीकी इस भावनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

रह्यौ उत्साह उर दाह कौ न पारावार कियौ लै विचार, आज्ञा माँगि, बन आये हैं।
रहे सुख लहे, नाना पद रचि कहे, एक रस निर्बंहे ब्रजवासी जा छुटाये हैं॥
कीनी घर चोरी, तऊ नेकु नासा मोरी नाहिं, बोरी मति रंग, लाल प्यारी दृग छाये हैं।
बड़े बड़भागी, अनुरागी, रति जागी, जग माधव रसिक बात सुनौ पिता पाये हैं॥ ६२८॥
आयौ अन्तकाल जानि बेसुध पिछानि, सब आगरे तें लैकै चले वृन्दावन जाइयै।
आये आधी दूर, सुधि आई बोले चूर ह्वै कै 'कहाँ लिये जात कूर?' कही जोई ध्याइयै॥
कह्यौ 'फेरो तन बन जाइबे कौ पात्र नाहीं, जरै बास आवै प्रिया पिय को न भाइयै'।
जानहारौ होई, सोई जायगो जुगल पास, ऐसे भावरासि ताही ठौर चलि आइयै॥ ६२९॥

श्रीलालमतीजी

गौर स्याम सों प्रीति प्रीति जमुना कुंजनि सों।
बंसीबट सों प्रीति प्रीति ब्रज रज पुंजनि सों॥
गोकुल गुरुजन प्रीति प्रीति घन बारह वन सों।
पुर मथुरा सों प्रीति प्रीति गिरि गोबर्द्धन सों॥
बास अटल बृन्दाबिपिन दृढ़ करि सो नागरि कियो।
दुर्लभ मानुष देह को लालमती लाहो लियो॥ १९९॥

परमभक्ता श्रीलालमतीजीने गौर-श्याम श्रीराधाकृष्ण, श्रीयमुनाजी तथा उसके तटपर विराजमान कुंज-भवनोंसे प्रेम किया। इनके हृदयमें वंशीवट, व्रजरज, गोकुल, व्रजवासी रसिक सन्त, श्रीमथुरापुरी एवं श्रीगिरिराज गोवर्धनके प्रति अपार प्रीति थी। इस चतुर व्रजभक्ता देवीने श्रीवृन्दावनधाममें अखण्डवास किया। इस प्रकार इन्होंने दुर्लभ मानवदेहका अलभ्य लाभ (हरिभक्ति) प्राप्त किया॥ १९९॥

श्रीलालमतीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीलालमतीजीकी व्रज-वृन्दावनमें बड़ी निष्ठा थी। उन्होंने यमुना-कुंज आदि अष्ट स्थानोंमें प्रेम किया, वे इनकी यात्रा करती रहती थीं। शरीरके क्षीण होनेपर भी दर्शन-यात्रा, सेवा आदिमें शिथिलता नहीं आयी। दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा देखकर प्रभुने इन्हें स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि प्रात:काल श्रीयमुना-कुंजमें आओ, वहाँ तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन होंगे। तुम्हारा शरीर शिथिल हो गया है, अत: यात्रा बन्द करके श्रीवृन्दावनमें ही वास करो। स्वप्नका स्मरणकर आपके मनमें बड़ा मोद हुआ। प्रात: आपने अपनी दासीके साथ यमुना-स्नान किया और कुंजमें आकर बैठ गयीं। वहींपर श्रीराधाकृष्णने इन्हें दर्शन दिया। प्रेममें विह्वल प्रभुकी शोभाका गान करके दासीको सुनाने लगीं। दासी भी सुनने लगी, पर दासीको भगवान्‌की छायाके भी दर्शन नहीं हो रहे थे। श्रीलालमतीजीने प्रार्थना की—प्रभो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दासीपर भी किंचित् कृपा हो। भगवान्ने प्रार्थना स्वीकार करके मुरली बजायी। जिसकी ध्वनि दासीको सुनायी पड़ी और वह भी कृतार्थ हुई। इसके बाद लीलाधारी प्रभु यमुनामें कूद पड़े। कुछ दूरतक बाईको दर्शन होते रहे। इसके बाद प्रभु अन्तर्धान हो गये। श्रीलालमतीजी दासीसहित कुंजमें बेसुध पड़ी रहीं। पश्चात् श्यामसुन्दरकी उसी शोभाका ध्यान करती रहीं। इस प्रकार श्रीधाममें वास प्राप्तकर लालमतीजीने जीवन-जन्म सफल किया।*

भक्त ही सर्वश्रेष्ठ

कबिजन करत बिचार बड़ो कोउ ताहि भनिज्जै।
कोउ कह अवनी बड़ी जगत आधार फनिज्जै॥
सो धारी सिर सेस सेस सिव भूषन कीनो।
सिव आसन कैलास भुजा भरि रावन लीनो॥
रावन जीत्यो बालि (पुनि) बालि राम इक सर दँड़े।
अगर कहै त्रैलोक में हरि उर धारैं ते बड़े॥ २००॥

परम विवेकी ऋषिगण एकत्र होकर विचार करने लगे कि सबसे बड़ा कौन है? जिसका भजन-कीर्तन किया जाय। किन्हीं लोगोंने कहा कि पृथ्वी सबसे बड़ी है, क्योंकि यह सारे विश्वको धारण की हुई है। (दूसरेने कहा कि) उस पृथ्वीको शेषभगवान्ने अपने फणोंपर रजकणके समान धारण कर रखा है, अतः शेष उससे बड़े हैं। (तीसरेने कहा कि) शेषको श्रीशंकरजीने अपने उरपर आभूषणकी तरह धारण कर रखा है, अतः शंकरजी बड़े हैं। (चौथेने कहा कि) शिवका निवास-स्थान कैलासपर्वत है, उसके समेत रावणने शिवको अपनी भुजाओंपर उठा लिया। उस रावणको बालिने जीत लिया। ऐसे पराक्रमी बालिका वध करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सबसे बड़े हैं। (यह सुनकर पाँचवें श्रीपंचने कहा कि) ऐसे महतो महीयान् भगवान्को जो भक्त अपने हृदयमें धारण करते हैं, वे तीनों लोकोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। श्रीअग्रदेवजीका मत है कि सबसे बड़े जो भक्तजन हैं, उन्हींकी सेवा करो॥ २००॥

भक्तोंके सुयशकी महिमा

नेह परसपर अघट निबहि चारौं जुग आयो।
अनुचर को उतकर्ष स्याम अपने मुख गायो॥
ओत प्रोत अनुराग प्रीति सबही जग जानैं।
पुर प्रबेस रघुबीर भृत्य कीरति जु बखानैं॥
अगर अनुग गुन बरनते सीतापति नित होयँ बस।
हरि सुजस प्रीति हरि दास के त्यों भावैं हरि दास जस॥ २०१॥

जिस प्रकार भगवद्भक्तोंको भगवान्के सुयशमें प्रीति होती है, उसी प्रकार भगवान्को भी अपने प्रेमी भक्तोंकी कथा बहुत ही अच्छी लगती है। भक्तोंके और भगवान्के पारस्परिक प्रेमका चारों युगोंमें निर्वाह हुआ है—यह सर्वदा पूर्ण और एक-सा रहता है। अपने भक्तोंकी महिमाको भगवान्ने बार-बार अपने श्रीमुखसे गाया है। भगवान् भक्तोंके अनुरागमें सदा ही सराबोर रहते हैं। इसको सारा संसार जानता है। वनवासकी अवधि पूरी होनेपर श्रीअयोध्या-पुरीमें प्रवेश करते समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने अनुचरोंकी कीर्तिका वर्णन किया है। श्रीअग्रदेवाचार्यजी कहते हैं कि उक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि भक्तोंके गुणोंका वर्णन करनेसे श्रीसीतापति श्रीरामचन्द्रजी सदाके लिये वशमें हो जाते हैं॥ २०१॥

* भक्तमालमें वर्णित भगवद्भक्तोंका पावन चरित यहाँ पूर्ण हो जाता है। आगेके छन्दोंमें भक्तोंकी महिमा आदिका वर्णन हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तोंका उत्कर्ष

दुर्बासा प्रति स्याम दासबसता हरि भाषी।
ध्रुव गज पुनि प्रह्लाद राम सबरी फल साषी॥
राजसूय जदुनाथ चरन धोय जूँठ उठाई।
पांडव बिपति निवारि दिए बिष बिषया पाई॥
कलि बिसेष परचो प्रगट आस्तिक ह्वै कै चित धरौ।
उतकर्ष सुनत संतनि को अचरज कोऊ जिनि करौ॥ २०२॥

इस भक्तमालमें या अन्यत्र इतिहास-पुराणोंमें सन्तोंकी बहुत बड़ी बड़ाईका वर्णन सुनकर कोई आश्चर्य (अविश्वास) न करे; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने (श्रीभागवतमें) दुर्वासा ऋषिसे कहा है कि 'मैं भक्तोंके वशमें हूँ।' श्रीध्रुवजी, गजेन्द्र, श्रीप्रह्लादजी आदिके चरित्र एवं श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा शबरीके फलोंका सादर खाया जाना आदि प्रसंग सन्तोंकी बड़ाईके साक्षी हैं। श्रीयुधिष्ठिरजीके राजसूय-यज्ञमें श्रीकृष्णने साधु-ब्राह्मणोंके चरण धोये और उनकी जूठी पत्तलें उठायीं। पाण्डवोंपर आयी अनेक बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे उनकी रक्षा की। भक्त चन्द्रहासजीको दुष्टने विष दिया, पर उसके बदले उन्हें विषया नामक स्त्री और राज्यकी प्राप्ति हुई। ये तो पिछले तीन युगोंकी बातें हुईं। इस कलियुगमें तो विशेष सन्तोंके चमत्कार प्रकट हुए। अतः कुतर्क त्यागकर विश्वासपूर्वक आस्तिक-बुद्धिसे भक्तचरित्रोंको हृदयमें धारण करो, तभी रहस्य समझमें आयेगा॥ २०२॥

श्रीनाभादासजीकी भक्तोंसे विनय-प्रार्थना

पादप पेड़हिं सींचते पावै अँग अँग पोष।
पूरबजा ज्यों बरनते सब मानियो संतोष॥ २०३॥
भक्त जिते भूलोक मैं कथे कौन पै जायँ।
समुँद पान श्रद्धा करै कहँ चिरि पेट समायँ॥ २०४॥
श्रीमूरति सब बैष्नव लघु बड़ गुननि अगाध।
आगे पीछे बरनते जिनि मानौ अपराध॥ २०५॥
फल की सोभा लाभ तरु तरु सोभा फल होय।
गुरू सिष्य की कीर्ति अचरज नाहीं कोय॥ २०६॥
चारि जुगन में भगत जे तिन के पद की धूरि।
सर्बसु सिर धरि राखिहौं मेरी जीवन मूरि॥ २०७॥

जैसे पेड़की जड़को सींचनेसे उस पेड़के अंग-प्रत्यंग, शाखा, पत्र-पुष्प आदि सभी पुष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार पूर्वाचार्यों (सम्प्रदायाचार्यों)-के वर्णनसे सभी भक्तोंका वर्णन हो गया, ऐसा मानकर जिनका चरित्र इस भक्तमालमें नहीं आया है, उनका भी स्मरणकर सन्तोष करना चाहिये॥ २०३॥ इस जगत्में जितने भगवान्के भक्त हैं, उन सबके चरित्रोंका वर्णन कौन कर सकता है? जैसे कोई छोटी चिड़िया समुद्रके सम्पूर्ण जलको पी लेनेकी श्रद्धापूर्वक इच्छा करे तो वह उसके पेटमें कैसे समा सकता है॥ २०४॥ भगवद्विग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या तुलसीदल चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, सबकी एक-जैसी महान् महिमा है, उसी प्रकार वैष्णवजन चाहे छोटे हों या बड़े, सभी अनन्त गुणोंके कारण महा महिमावाले हैं। इस भक्तमालमें किसीका वर्णन आगे-पीछे, बड़े-छोटेकी दृष्टिसे नहीं किया गया है। इसलिये यदि कहीं आगे वर्णनीयका पीछे वर्णन दिखायी पड़े तो पाठकजन इसमें दासका अपराध न मानें॥ २०५॥ जिस प्रकार वृक्षमें लगे रहनेसे फलोंकी शोभा होती है और फलमें स्थित बीजसे वृक्ष-उत्पत्ति-रूप लाभ होता है तथा फलोंसे वृक्षकी शोभा और वृक्षसे फलोंका लाभ मिलता है, उसी प्रकार गुरुजनोंकी महिमा और कीर्तिसे शिष्योंकी महिमा और कीर्ति बढ़ती है तथा शिष्योंकी कीर्तिसे गुरुजनोंकी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है॥ २०६॥ चारों युगोंमें जितने भक्त हुए हैं तथा जो आगे होंगे, उनके श्रीचरणकमलोंकी धूलि सर्वदा हमारे मस्तकपर रहे, वही हमारी जीवनमूरि है और वही सर्वस्व है॥ २०७॥

भक्तोंकी महिमा

जग कीरति मंगल उदै तीनौं ताप नसायँ।
हरिजन को गुन बरनते हरि हृदि अटल बसायँ॥ २०८॥
हरिजन को गुण बरनते जो करै असूया आय।
इहाँ उदर बाढ़ै बिथा औ परलोक नसाय॥ २०९॥
(जो) हरि प्रापति की आस है तौ हरिजन गुन गाव।
नतरु सुकृत भुंजे बीज ज्यौं जनम जनम पछिताय॥ २१०॥
भक्तदास संग्रह करै कथन श्रवन अनुमोद।
सो प्रभु प्यारौ पुत्र ज्यों बैठे हरि की गोद॥ २११॥
अच्युत कुल जस बेर इक जाकी मति अनुरागि।
उन की भक्ती सुकृत को निहँचै होय बिभागि॥ २१२॥
भक्त दास जिन जिन कथी तिन की जूँठनि पाय।
मो मति सार अच्छर द्वै कीनौं सिलौ बनाय॥ २१३॥
काहू के बल जोग जग्य, कुल करनी की आस।
भक्त नाम माला अगर (उर) बसौ नारायनदास॥ २१४॥

भगवद्भक्तोंके गुण और चरित्रोंका वर्णन करनेसे इस संसारमें कीर्ति और सभी प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति होती है, त्रितापका नाश होता है तथा हृदयमें अटलरूपसे भगवान्‌का वास हो जाता है॥ २०८॥ हरिभक्तोंके गुण-वर्णनको सुनकर जो लोग उनके गुणोंमें दोषारोपण करते हैं, उन्हें इस जन्ममें जलोदर आदि अनेक उदर रोगोंसे कष्ट भोगना पड़ता है और मरनेके बाद उनका परलोक भी नष्ट हो जाता है॥ २०९॥ यदि भगवान्‌को प्राप्त करनेकी आशा है तो भक्तोंके गुणोंको गाइये, निस्सन्देह भगवत्प्राप्ति हो जायगी। नहीं तो जन्म-जन्मान्तरोंमें किये गये अनेक पुण्य भुने हुए बीजकी तरह बेकार हो जायँगे। उनसे कल्याण न होगा फिर जन्म-जन्ममें पछताना पड़ेगा॥ २१०॥ जो कोई भक्त-चरित्रोंका संग्रह करे अथवा कथन-श्रवण एवं समर्थन करे, वह भगवान्‌को पुत्रके समान प्रिय है, उसे भगवान् अपनी गोदमें बैठा लेते हैं॥ २११॥ अच्युतगोत्रीय भगवद्भक्तोंकी कीर्तिको कहने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुननेमें जिसके मनमें एक बार अनुराग हो गया, वह मनुष्य निश्चय ही उन सन्तोंके भजन और पुण्यमें हिस्सेदार हो जाता है। (जैसे पिताकी सम्पत्तिमें पुत्रका सहज अधिकार होता है)॥ २१२॥ जिन-जिन सन्त, विद्वान् महान् महानुभावोंने भक्तोंके चरित्रोंका वर्णन किया है, उन्हींकी जूठन लेकर मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार इस 'भक्तमाल' की रचना उसी प्रकार की है, जैसे कोई सिला (खेतके अन्न-कण) बीनकर संग्रह करे॥ २१३॥ किसीको बल, योग और यज्ञ आदिका भरोसा है, इनसे कल्याण होगा यह विश्वास है। किसीको अपने उत्तम कुल और पवित्र कर्मोंकी आशा है कि इन्हींसे भवसागर पार हो जायँगे। पर इन योग, यज्ञादिका अनुष्ठान मेरे वशका नहीं है, इसलिये हमें इनकी आशा नहीं है। मुझ नारायणदासकी तो यही इच्छा है कि गुरुदेव, भगवद्भक्तोंके नाम और उनके चरित्र मेरे हृदयमें निवास करें॥ २१४॥

॥ श्रीनाभादासविरचित भक्तमाल सम्पूर्ण हुआ॥

श्रीप्रियादासजीद्वारा गुरु-वन्दना

रसिकाई कबिताई जाहि दीनी तिनि पाई भई सरसाई हिये नव नव चाय हैं।
उर रङ्गभवन में राधिका रवन बसैं लसैं ज्यौं मुकुर मध्य प्रतिबिम्ब भाय हैं॥
रसिक समाज में विराज रसराज कहैं चहैं मुख सब फूलैं सुख समुदाय हैं।
जन मन हरि लाल मनोहर नांव पायो उनहूँ को मन हरि लीनौ याते राय हैं॥ ६३०॥

भक्तिरसबोधिनी टीकाकार श्रीप्रियादासजी भक्तमालके उपसंहारमें अपने गुरुदेवजी श्रीमनोहरदासजीका परिचय देते हुए कहते हैं कि मेरे गुरुदेवने जिन-जिन लोगोंको रसिकता और कवित्व प्रदान किया, उन्हें-उन्हें उसकी प्राप्ति हुई और उनके हृदयमें सरसता तथा नवीन प्रेमका चाव उत्पन्न हुआ। मेरे गुरुदेवके हृदयरूपी रंगमहलमें श्रीराधारमणजी उसी प्रकार निवास करते हैं, जैसे कि दर्पणमें प्रतिबिम्ब स्वाभाविक रूपसे रहता है। मेरे गुरुदेवजी रसिकोंकी सभामें विराजमान होकर जिस समय उज्ज्वल शृंगाररसकी कथा कहते हैं, उस समय सभी भावुक श्रोता उनके श्रीमुखकी ओर टकटकी लगाकर देखते ही रह जाते हैं और आनन्दमें मग्न होकर फूले नहीं समाते हैं। अपने भक्तोंके मनको हरण करके भगवान् श्रीकृष्णने 'मनोहर' यह नाम पाया, परंतु मेरे श्रीगुरुदेवने मनोहरके मनको भी हर लिया है, इसीलिये वे 'मनोहरराय' हैं॥ ६३०॥

इनहीं के दास दास दास प्रियादास जानौ तिन लै बखानौ मानौ टीका सुखदाई है।
गोवर्द्धननाथ जू कें हाथ मन पर्‍यौ जाको कर्‍यौ बास वृन्दावन लीला मिलि गाई है॥
मति उनमान कह्यौ लह्यौ मुख सन्तनि के अन्त कौन पावै जोई गावै हिय आई है।
घट बढ़ जानि अपराध मेरौ क्षमा कीजै साधु गुणग्राही यह मानि मैं सुनाई है॥ ६३१॥

इन्हीं श्रीमनोहरदासजीके दासोंका दास यह प्रियादास है, ऐसा जानिये। उसने श्रीभक्तमालकी इस सुखदायिनी भक्तिरसबोधिनी टीकाका वर्णन किया है। श्रीगोवर्धननाथजीके हाथोंमें जिनका मन पड़ गया है, उसने श्रीवृन्दावनमें निवास करके और सन्तोंसे मिलकर इस लीलाका गान किया है। सन्तोंके श्रीमुखसे जैसा कुछ सुना, उसे ही अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया। इन लीलाओंका अन्त कौन पा सकता है। सम्पूर्ण लीलाओंका वर्णन करना असम्भव है। जिसकी बुद्धिमें जितनी लीलाएँ आयीं, उसने उतनी गायी हैं, इन लीलाओंको गानेमें मुझसे जो कुछ घटी-बढ़ी हो गयी हो, इस अपराधको आपलोग क्षमा कीजिये। साधुजन गुणग्राही होते हैं, त्रुटियोंकी ओर ध्यान नहीं देते हैं, ऐसा मानकर ही मैंने अपनी तुच्छ-बुद्धिके अनुसार इन लीलाओंको गाकर सुनाया है॥ ६३१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीप्रियादासजीद्वारा श्रीनाभादासजीकी वन्दना

कीनी भक्तमाल सुरमाल नाभा स्वामी जू ने तरे जीव जाल जग जन मन पोहनी।
भक्ति रस बोधिनी सो टीका मति सोधिनी है बाँचत कहत अर्थ लगै अति सोहनी॥
जो पै प्रेम लक्षना की चाह अवगाहि याहि मिटै उर दाह नेकु नैननि हूँ जोहनी।
टीका अरु मूल नाम भूल जात सुनै जब रसिक अनन्य मुख होत विश्वमोहनी॥ ६३२॥

गोस्वामी श्रीनाभाजीने सुन्दर मधुर-रससे व्याप्त श्रीभक्तमालकी रचना की। यह सभी भक्तोंके मनको गूँथनेवाली है। इसका पठन-श्रवण करके अनेक जीव भवसागरसे तर गये। उसी भक्तमालकी यह भक्तिरसबोधिनी नामकी टीका है। इसके पठन-श्रवणसे मायासे मोहित बुद्धि भी शुद्ध हो जाती है। पढ़नेमें, कहनेमें और अर्थ करनेमें यह बहुत ही अच्छी लगती है। यदि किसीको प्रेम-लक्षणा भक्तिको प्राप्त करनेकी इच्छा है तो वह इस टीकाका निरन्तर पठन, श्रवण और मनन करे। जो इसे मनके नेत्रोंसे भलीभाँति देखेगा, उसके हृदयका दाह दूर हो जायगा। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसे प्रेमसे सुनते समय यह भूल जाता है कि हम मूलका श्रवण कर रहे हैं या कि टीकाका। अनन्यरसिक भगवद्भक्तके श्रीमुखसे जब इसका कथन होता है, तब यह सारे जगत्को मोहित करनेवाली हो जाती है॥ ६३२॥

नाभा जू कौ अभिलाष पूरन लै कियौ मैं तौ ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइकै।
भक्ति विशवास जाके ताही कों प्रकाश कीजै भीजै रंग हियो लीजै सन्तनि लड़ाइकै॥
सम्वत् प्रसिद्ध दस सात सत उन्हत्तर, फालगुन मास बदी सप्तमी बिताइकै।
नारायणदास सुख रास भक्तमाल लै कै, प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइकै॥ ६३३॥

मैंने श्रीनाभाजीकी अभिलाषाको ही पूर्ण किया है। उसकी साक्षी मैंने पहले ही भलीभाँति गाकर सुना दी है। जिसके हृदयमें भक्त-भगवच्चरणारविन्दोंमें भक्ति और विश्वास हो, उसीके सामने इस भक्तमालकी कथाको कहना चाहिये, जिसे सुनकर उसका हृदय भक्तमालके रंगमें डूब जाय और वह श्रद्धासमेत सन्तोंकी सेवा करने लग जाय। प्रसिद्ध विक्रम सम्वत् १७६९ फाल्गुन कृष्ण सप्तमीको यह 'भक्तिरसबोधिनी' टीका पूर्ण हुई। मेरी प्रार्थना है कि सुखप्रद श्रीनारायणदासजी (श्रीनाभास्वामी) सुखस्वरूप श्रीभक्तमाल-ग्रन्थके समेत दासानुदास मुझ प्रियादासके हृदयमें सर्वदा निवास करें॥ ६३३॥

श्रीप्रियादासजीद्वारा भगवान्‌से निवेदन

अगिनि जरावौ लैके जल में बुड़ावौ भावै सूली पै चढ़ावौ घोरि गरल पिवायबी।
बीछू कटवावौ कोटि साँप लपटावौ हाथी आगे डरवावौ ईति भीति उपजायबी॥
सिंह पै खवावौ चाहौ भूमि गड़वावौ तीखी अनी बिधवावौ मोहिं दुख नहीं पायबी।
ब्रजजन प्रान कान्ह बात यह कान करौ भक्त सों बिमुख ताको मुख न दिखायबी॥ ६३४॥

ब्रजजनोंके प्राणस्वरूप हे श्रीकृष्णभगवान्! आप चाहे मुझे अग्निमें डालकर जलाइये, चाहे जलमें डुबाइये, आपकी इच्छा हो तो शूलीपर चढ़ा दीजिये, घोलकर विष पिला दीजिये, बिच्छुओंसे कटवाइये, मेरे शरीरमें करोड़ों साँप लिपटवाइये, मतवाले हाथीके आगे डलवा दीजिये, ईति (पीड़ा), भीति आदि मेरे कष्टके लिये प्रकट कर दीजिये, सिंहके द्वारा मरवाइये, चाहे धरतीमें गड़वाइये, तीक्ष्ण भाला आदिसे छिदवाइये—इन सबसे मुझे नाममात्रका भी दुःख नहीं होगा, परंतु हे कान्ह! ध्यानपूर्वक मेरी यह बात सुन लीजिये कि जो भक्तविमुख हैं, उनका मुख कभी न दिखाइये, उससे मुझे बहुत भयंकर कष्ट होगा॥ ६३४॥

॥ श्रीप्रियादासकृत भक्तिरसबोधिनी टीका पूर्ण हुई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

परमात्मप्रभु तथा भगवद्भक्तोंकी असीम अनुकम्पाका ही यह फल हुआ कि '**भक्तमाल-अङ्क**' विशेषाङ्कके रूपमें आप महानुभावोंके समक्ष प्रस्तुत हो सका। हमारे लिये यह विशेष महत्त्वकी बात रही कि इस वर्ष भक्तोंके मंगलमय पावन चरित्रोंके पठन एवं मननका महान् सौभाग्य प्राप्त हुआ। भक्त कौन है तथा भगवान्‌से उसका कैसा सम्बन्ध रहता है, इसकी जिज्ञासामें परमाराध्य प्रभु स्वयं कहते हैं कि जो भगवान्‌के चरणारविन्दोंसे आधे पलके लिये भी अपना चित्त नहीं हटाता, निरन्तर उन चरणोंकी सन्निधि और सेवामें लगा रहता है, उन्हींका नित्य स्मरण करता रहता है, वही वास्तवमें सच्चा भगवद्भक्त है—'**न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥**' (श्रीमद्भा० ११। २। ५३)

वास्तवमें मानव-देह पाकर जो भगवान्‌की उपर्युक्त वाणीको अपने जीवनका ध्येय बना लेता है और एकनिष्ठ होकर इस मार्गपर सदा अग्रसर रहता है, उसीका जीवन सफल है। ऐसा व्यक्ति ही इस जगत्‌में पुण्यात्मा है और उसे नारायणके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये—'**स एव सुकृती लोके ज्ञेयो नारायणांशजः।**' जिस कुलमें सात्त्विक गुणोंसे सम्पन्न तथा दैवीसम्पदासे समन्वित ऐसा भगवद्भक्त, सन्तसेवी जन्म लेता है, उसके पितर प्रमुदित होते हैं, देवता आनन्दविभोर हो नृत्य करने लगते हैं और ऐसे सौभाग्यशालीको पाकर यह पृथिवी सनाथ हो जाती है—'**मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति।**' (नारदभक्तिसूत्र ७१)

इतना सब होनेपर भी क्यों नहीं इस ओर प्रवृत्ति होती, क्यों जगत्‌की ओर दृष्टि जाती है, इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि आज मानवने जीवनके वास्तविक उद्देश्यको भुलाकर सुख और दुःखकी यथार्थ परिभाषाको न समझते हुए संसारमें सुख खोजनेका मन बनाया है, इसीलिये वह सारी विपदाओंसे घिरा हुआ है। संसार तो दुःखालय है और सुखके शाश्वत निधान हैं—भगवान्। भगवान् और उनके प्रेमी भक्तोंकी उज्ज्वल गाथाओं, मंगलमय चरित्रोंके गानमें और उनके द्वारा बताये गये रास्तेपर चलनेमें ही सच्चे सुखकी अनुभूति है। भगवान्‌को तथा भगवद्भक्तोंके साथ की गयी उनकी लीलाको भूल जाना ही विपत्ति—दुःख है और उनकी निरन्तर स्मृति बने रहना ही सम्पत्ति—सच्चा सुख है—'**विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः।**'

भगवान् और उनके लीला-सहचर भक्तोंकी निरन्तर स्मृति बनी रहे और तदनुसार अपना जीवन भी बन सके, इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये गीताप्रेससे निरन्तर उपयोगी सत्साहित्य एवं 'कल्याण' प्रकाशित होता रहता है। पूर्वमें भक्ताङ्क, संताङ्क, नारी-अङ्क तथा भक्तचरिताङ्क आदि कल्याणके विशेषाङ्क भी इसी आशयसे प्रकाशित हुए हैं, जो अत्यन्त ग्राह्य एवं उपयोगी सिद्ध हुए। इनमें भक्तोंकी रहनी-करनीका वर्णन है। इसी शृंखलाको आगे बढ़ाते हुए इस वर्ष कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें '**भक्तमाल-अङ्क**' प्रकाशित किया जा रहा है।

'**भक्तमाल**' परमभागवत श्रीनाभादासजी महाराजकी काव्यमयी रचना है। इसमें चारों युगों, विशेषकर कलियुगके भक्तोंका बड़े ही रोचक ढंगसे वर्णन हुआ है। इसी भक्तमालग्रन्थको आधार बनाकर तथा श्रीप्रियादासजीकी 'भक्तिरसबोधिनी' टीकाको समाहित करते हुए प्रभुकृपासे सम्पन्न इस विशेषाङ्कको आप सभी महानुभावोंकी सेवामें प्रस्तुत करते हुए हमें महान् हर्षकी अनुभूति हो रही है। आशा है अन्य विशेषाङ्कोंकी भाँति यह '**भक्तमाल-अङ्क**' भी सभीके लिये उपयोगी होगा तथा भगवन्मार्गमें प्रवृत्त करानेमें सहायक बन सकेगा।

वास्तवमें भक्तमालके प्रकाशनकी प्रेरणा मलूक-पीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज तथा भक्तमाली श्रीनारायणदासजी (बक्सरके पूज्य मामाजी)-के द्वारा प्राप्त हुई। इन दोनों महानुभावोंका विशेष आग्रह था कि गीताप्रेसद्वारा भक्तमालका प्रकाशन किया जाय।

अतः कुछ समय पूर्व 'भक्तमाल'को ग्रन्थरूपमें प्रकाशित करनेकी योजना बनी; तदनुसार सामग्री-संचयन तथा लेखन आदिका कार्य भी लगभग पूर्ण हो गया था, लेकिन सामग्रीका प्रारूप इतना बढ़ गया कि वह लगभग एक हजार पृष्ठका हो गया। इसके साथ ही पाठक महानुभावोंका यह आग्रह भी बराबर बना रहा कि भक्तमालको शीघ्र प्रकाशित किया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम भी यही चाहते थे, किंतु अवान्तर आवश्यक कार्योंकी अधिकता एवं व्यस्तताके कारण समयका संकोच था तथा उसे ग्रन्थरूपमें तैयार करनेमें समय भी अधिक लगनेकी सम्भावना थी और प्रभुकी यह प्रेरणा हुई कि भक्तमालको विशेषाङ्कके रूपमें पहले प्रकाशित कर दिया जाय। यह निर्णय सभीको अनुकूल जान पड़ा। अतः यह योजना बनी कि भक्तमालमें आये भक्तोंके चरित्रोंके वर्णनको संक्षिप्त करके विशेषाङ्क प्रकाशित कर दिया जाय, फिर बादमें सम्पूर्ण सामग्रीको लेकर पुस्तक प्रकाशित की जाय। इस निर्णयका परिणाम यह हुआ कि भक्तोंकी कथाको अत्यन्त संक्षेपमें देना पड़ा और भक्तोंके उपलब्ध चित्र भी यथास्थान न जा सके। दूसरी बात यह कि भक्तमालमें जितने भक्तोंका उल्लेख हुआ है, उनमेंसे कई भक्तोंके सम्बन्धमें सामग्री भी प्राप्त नहीं हो सकी है, अतः वह नहीं दी जा सकी। इसमें हमारी विवशता ही थी। भविष्यमें इस सम्पूर्ण सामग्रीको लेकर भक्तमालको ग्रन्थरूपमें प्रकाशित करनेका विचार है।

यद्यपि स्थानाभावसे कथाभागका संकोच हुआ है, फिर भी भक्तोंके जीवनकी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ, उनकी सन्तसेवा, भक्तिनिष्ठा, भगवदनुग्रहकी अनुभूति आदि बातें देनेकी चेष्टा अवश्य की गयी है। कुछ भक्तोंके चरित्रमें चमत्कारी घटनाओंका वर्णन भी आया है, जो आधुनिकजनोंकी समझसे परे है। यद्यपि भक्तोंके जीवनमें चमत्कारकी बातें होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है, परंतु सच्चे भक्त इससे प्रभावित नहीं होते। भक्तजनोंसे तो भगवत्प्रेमवश सहज क्रियाएँ होती रहती हैं, जो सामान्य जनोंको चमत्कार प्रतीत होती हैं, भक्तोंका इनसे कोई प्रयोजन नहीं रहता। हाँ, सामान्यजन इससे अभिभूत अवश्य हो जाते हैं।

भक्तमाल कई हैं। श्रीनाभादासजीसे पूर्व तथा पश्चात् भी भक्तोंके पावनचरित्रोंके अनेक संग्रह भक्तमाल नामसे हुए हैं। श्रीभारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने भी भक्तमाल नामसे नाभाजीके भक्तमालमें वर्णित भक्तोंके बादके भक्तोंका वर्णन किया है, जो उत्तरार्ध भक्तमाल कहलाता है तथापि इन सभीमें नाभादासजीकृत भक्तमालकी विशेष प्रसिद्धि तथा प्रतिष्ठा है। अतः इसी ग्रन्थको आधार बनाया गया है। इस ग्रन्थपर टीका भी कई हैं, यहाँ श्रीप्रियादासजीकृत कवित्तमयी 'भक्तिरसबोधिनी' टीकाको ग्रहण किया गया है।

यह भक्तमाल कई स्थानोंसे प्रकाशित है, इनमेंसे श्रीरामानन्दपुस्तकालय सुदामाकुटी श्रीधामवृन्दावन (मथुरा)-से प्रकाशित चार खण्डोंवाला भक्तमाल, श्रीसद्गुरु पुस्तकालय श्रीभक्तमाल आश्रम वंशीवट वृन्दावन (मथुरा)-से प्रकाशित एक खण्डात्मक भक्तमाल, श्रीअ०भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, परशुरामपुरी (सलेमाबाद) तथा श्रीश्रीजी मन्दिर वृन्दावनसे प्रकाशित एक खण्डवाला भक्तमाल और कल्याणके भक्तचरिताङ्कमें प्रकाशित मूल भक्तमालका आश्रय लेकर मूलपाठ आदिका निर्धारण किया गया है।

संयोगवश कुछ समय पूर्व बक्सरवाले पूज्य मामाजी श्रीभक्तमालीजीका एक दुर्घटनामें देहावसान हो गया। यह बात हम सबके लिये कष्टप्रद थी, परंतु चिरन्तनरूपमें आज भी वे हम सबके बीच उपस्थित हैं और इस अङ्कके प्रकाशनसे उन्हें आत्मिक शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त होगी, यह हमारा विश्वास है।

इस विशेषाङ्कके सम्पादन, प्रूफ-संशोधन तथा आवृत्ति इत्यादि कार्योंमें सम्पादकीय विभागके मेरे सहयोगी विद्वानोंने तथा अन्य सभी लोगोंने मनोयोगपूर्वक सहयोग प्रदान किया है, फिर भी सम्पादन, संशोधन तथा छपाई आदिमें कोई भूल हो तो इसके लिये हमारा अपना अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है। अतः इसके लिये हम अपने पाठकोंके प्रति क्षमाप्रार्थी हैं।

इस बार भक्तमालके सम्पादनकार्यके क्रममें भगवद्-भक्तोंकी ललित कथाओं, उनके चरित्र-चिन्तन, मनन तथा स्वाध्यायका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा है। हमें आशा है कि इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको भी यह सौभाग्यलाभ अवश्य प्राप्त होगा।

पाठक-पाठिकागण इस भक्तमालको पढ़कर लाभ उठायें तथा भगवद्भक्तोंके चरितका अनुसरणकर लोक-परलोकमें सुख-शान्ति और मानव-जीवनके परम एवं चरम लक्ष्य परमात्मप्रभुकी करुणामयी कृपा प्राप्त करें—यही प्रार्थना है।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये सबसे क्षमा माँगते हैं तथा अपने इस लघु प्रयासको भगवान्‌के चरणकमलोंमें अर्पित करते हुए यह मंगल-कामना करते हैं—

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इन के पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥

—राधेश्याम खेमका
(सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरि: ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर-प्रकाशन

कोड — मूल्य रु०

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-तत्त्व-विवेचनी—(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका) २५१५ प्रश्न और उत्तर-रूपमें विवेचनात्मक हिन्दी-टीका, सचित्र, सजिल्द

- ■ 1 बृहदाकार २००
- ■ 2 ,, ग्रन्थाकार विशिष्ट संस्करण १०० [बँगला, तमिल, ओड़िआ, कन्नड, अंग्रेजी, तेलुगु, गुजराती, मराठीमें भी]
- ■ 3 ,, साधारण संस्करण ६५

गीता-साधक-संजीवनी—(टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी) गीताके मर्मको समझनेहेतु व्याख्यात्मक शैली एवं सरल, सुबोध भाषामें हिन्दी-टीका, सचित्र, सजिल्द

- ■ 5 बृहदाकार, परिशिष्टसहित ३००
- ■ 6 ,, ग्रन्थाकार, परिशिष्टसहित १६० [मराठी, तमिल (दो खण्डोंमें), गुजराती, अंग्रेजी (दो खण्डोंमें), कन्नड (दो खण्डोंमें), बँगला, ओड़िआमें भी]
- ■ 8 गीता-दर्पण—(स्वामी श्रीरामसुखदासजीद्वारा) गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश, गीता-व्याकरण और छन्द-सम्बन्धी गूढ़ विवेचन सचित्र, सजिल्द [मराठी, बँगला, गुजराती, ओड़िआमें भी] ६०
- ■1562 गीता-प्रबोधनी—पुस्तकाकार ४० (बंगला, ओड़िआ, पंजाबीमें भी)
- ■1590 ,, पॉकेट, वि०सं० ३०
- ■1796 श्रीज्ञानेश्वरी-हिन्दी भावानुवाद ७०
- ■ 784 ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ-दीपिका (मराठी) १७५
- ■ 748 ,, मूल, गुटका (मराठी) ३५
- ■ 859 ,, मूल, मझला (मराठी) ५०
- ■ 10 गीता-शांकर-भाष्य ८५
- ■ 581 गीता-रामानुज-भाष्य ५०
- ■ 11 गीता-चिन्तन—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीता-विषयक लेखों, विचारों, पत्रों आदिका संग्रह)
- ■ 17 गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका, टिप्पणी प्रधान लेखसहित, सचित्र, सजिल्द [गुजराती, बँगला, मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिलमें भी] ३५
- ■ 16 गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें (मराठीमें भी) ३५
- ■1555 गीता-माहात्म्य (वि०सं०) ४५
- ■ 19 गीता—केवल भाषा (तेलुगु, उर्दू, तमिलमें भी) १०
- ■ 18 गीता-भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान विषय, मोटा टाइप [ओड़िआ, गुजराती, मराठीमें भी] १८
- ■ 502 गीता- ,, ,, (सजि०) ३० [तेलुगु, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तमिलमें भी]
- ■ 20 ,, -भाषा-टीका, पॉकेट साइज ८ [अंग्रेजी, मराठी, बँगला, असमिया, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तेलुगुमें भी]
- ■1566 गीता—भाषा-टीका, पॉकेट साइज, सजिल्द १४ [गुजराती, बँगला, अंग्रेजी भी]
- ■ 21 श्रीपञ्चरत्नगीता—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें) [ओड़िआमें भी] २०
- ■1628 ,, (नित्यस्तुति एवं गजल-गीतासहित) पॉकेट साइज १०
- ■ 22 गीता—मूल, मोटे अक्षरोंवाली [तेलुगु, गुजरातीमें भी] १०
- ■ 23 गीता—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित ४ [कन्नड, तेलुगु, तमिल, मलयालम, ओड़िआमें भी]
- ■1556 गीता—श्लोकार्थसहित—लघु आकार ६
- ■1602 गीता—सजिल्द (वि०सं०)—लघु आकार १०
- ■ 700 गीता—मूल, लघु आकार (ओड़िआ, बँगला, तेलुगुमें भी) २
- ■1392 गीता ताबीजी—(सजिल्द) (गुजराती, बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) ५
- ■ 566 गीता—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१०० प्रति एक साथ) .२५
- ▲ 388 गीता-माधुर्य-सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें (हिन्दी) १० [तमिल, मराठी, गुजराती, उर्दू, तेलुगु, बँगला, असमिया, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, संस्कृतमें भी]
- ▲ 679 गीतामाधुर्य (केवल मूल) ६
- ■1242 पाण्डवगीता एवं हंसगीता ४
- ■1431 गीता-दैनन्दिनी पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) ५५
- ■ 503 गीता-दैनन्दिनी—रोमन, पुस्तकाकार, प्लास्टिक जिल्द ४०
- ■1769 गीता-दैनन्दिनी—लघु १५
- ■ 506 गीता-दैनन्दिनी-पॉकिट (वि० सं०) २५
- ▲ 464 गीता-ज्ञान-प्रवेशिका १५
- ■1796 ज्ञानेश्वरी-हिन्दी अनुवाद ८०

रामायण

- ■1389 श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार (विशिष्ट संस्करण) ४५०
- ■ 80 ,, बृहदाकार ३५०
- ■1095 ,, ग्रन्थाकार (वि०सं०) (गुजरातीमें भी) २४०
- ■ 81 ,, ग्रन्थाकार सचित्र, सटीक, मोटा टाइप, १७० [ओड़िआ, बँगला, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी, नेपालीमें भी]
- ■1402 ,, सटीक, ग्रंथाकार (सामान्य) १३५
- ■1563 श्रीरामचरितमानस—मझला, सटीक विशिष्ट सं० ९०
- ■ 82 ,, मझला साइज, सटीक ८५ सजिल्द [गुजराती, अंग्रेजी भी]
- ■1318 ,, रोमन एवं अंग्रेजी अनुवादसहित २००
- ■1617 ,, मझला १००
- ■ 456 ,, अंग्रेजी अनुवादसहित १४०
- ■1436 ,, मूलपाठ बृहदाकार २००
- ■ 83 ,, मूलपाठ, ग्रंथाकार ९० [गुजराती, ओड़िआ भी]
- ■ 84 ,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी] ५०
- ■ 85 ,, मूल, गुटका [,,] ३५
- ■1544 ,, मूल गुटका (वि०सं०) ४०
- ■ 790 ,, केवल भाषा

[श्रीरामचरितमानस—अलग-अलग काण्ड (सटीक)]

- ■ 94 श्रीरामचरितमानस-बालकाण्ड २५
- ■ 95 ,, अयोध्याकाण्ड २२
- ■ 98 ,, सुन्दरकाण्ड [कन्नड, तेलुगु, बँगला भी] ६
- ■1349 ,, सुन्दरकाण्ड सटीक मोटा टाइप (लाल अक्षरोंमें) (श्रीहनुमानचालीसासहित) [गुजरातीमें भी] २०
- ■ 101 ,, लंकाकाण्ड १२
- ■ 102 ,, उत्तरकाण्ड १५
- ■ 141 ,, अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड १२
- ■ 830 ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, ग्रन्थाकार, मोटा (रंगीन)
- ■1583 ,, सुन्दरकाण्ड, (मूल) मोटा (आड़ी) रंगीन ७
- ■1919 ,, रंगीन (वि०सं०) १०
- ■ 99 श्रीरामचरितमानस-सुन्दरकाण्ड—मूल, गुटका [गुजराती भी] ४
- ■ 100 ,, सुन्दरकाण्ड मूल, मोटा टाइप ६ [गुजराती, ओड़िआ भी]
- ■ 858 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, लघु आकार [गुजराती भी] ३
- ■1710 ,, किष्किन्धाकाण्ड २

- ■1376 मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका—(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार-प० प० प्रज्ञानानन्द सरस्वती (सातों खण्ड) ७६०

(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

- ■ 86 मानसपीयूष-(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड) १४००

(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

- ■1935 मानस-पीयूष—परिशिष्ट ७५
- ■1907 श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण—बृहदाकार, भाषा ४००
- ■1291 श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-कथा-सुधा-सागर
- ■ 75, 76 श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट [तेलुगु भी] ३५०
- ■ 77 रामायण—केवल भाषा २२५
- ■ 583 ,, (मूलमात्रम्) १४०
- ■ 78 ,, सुन्दरकाण्ड, मूलमात्रम् [तमिल भी] २०
- ■1549 श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड-सटीक [तमिल भी] ६०
- ■ 452, 453 श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण (अंग्रेजी अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट) ४००
- ■ 74 अध्यात्मरामायण—सटीक [तमिल, तेलुगु, कन्नड, मराठी भी] ८०
- ■ 223 मूल रामायण [गुजराती, मराठी भी] २
- ▲1654 लवकुश-चरित्र २०
- ▲ 401 मानसमें नाम-वन्दना ८
- ■ 103 मानस-रहस्य ४०
- ■ 104 मानस-शंका-समाधान १५

अन्य तुलसीकृत साहित्य

- ■ 105 विनयपत्रिका—सरल भावार्थसहित ३०
- ■1701 विनयपत्रिका, सजिल्द ४०
- ■ 106 गीतावली— ,, ३०
- ■ 107 दोहावली—भावार्थसहित १५
- ■ 108 कवितावली— ,, १५

☞ भारतमें डाक खर्च, पैकिंग तथा फारवर्डिंगकी देय राशि:—२ रुपया-प्रत्येक १० रु० या उसके अंशके मूल्यकी पुस्तकोंपर। —रजिस्ट्री / वी० पी० पी० के लिये २० रु० प्रति पैकेट अतिरिक्त। [पैकेटका अधिकतम वजन ५ किलो (अनुमानित पुस्तक मूल्य रु० २५०)]

☞ रंगीन चित्रोंपर २० रु० प्रति पैकेट स्पेशल पैकिंग चार्ज अतिरिक्त।

☞ रु० ५००/-से अधिकको पुस्तकोंपर ५% पैकिंग, हैण्डलिंग तथा वास्तविक डाकव्यय देय होगा।

☞ पुस्तकोंके मूल्य एवं डाकदरमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित मूल्य / डाकदर देय होगा।

☞ पुस्तक-विक्रेताओंके नियमोंकी पुस्तिका अलग है। विदेशोंमें निर्यातके अलग नियम हैं।

☞ रु० २००० से अधिकको पुस्तकें एक साथ लेनेपर १५% छूट (▲चिह्नवाली पुस्तकोंपर ३०%) छूट देय। (पैकिंग, रेल-भाड़ा आदि अतिरिक्त)।

नोट—अन्य भारतीय भाषाओंकी पुस्तकोंका मूल्य एवं कोड पृष्ठ-५०३ से ५०६ पर देखें।

सम्पर्क करें—व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोड — मूल्य रु०

- ■ 109 रामाज्ञाप्रश्न—भावार्थसहित १०
- ■ 110 श्रीकृष्णगीतावली ,, ६
- ■ 111 जानकीमंगल— ,, ५
- ■ 112 हनुमानबाहुक— ,, ४
- ■ 113 पार्वतीमंगल— ,, ४
- ■ 114 वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण ४

सूर-साहित्य

- ■ 555 श्रीकृष्णमाधुरी २४
- ■ 61 सूर-विनय-पत्रिका २५
- ■ 62 श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी २४
- ■ 735 सूर-रामचरितावली २२
- ■ 547 विरह-पदावली २०
- ■ 864 अनुराग-पदावली— २५

पुराण, उपनिषद् आदि

- ■1930 श्रीमद्भागवत-सुधासागर [मोटा टाइप] २००
- ■1945 ,, (विशिष्ट संस्करण) २८०
- ■ 25 श्रीशुकसुधासागर—बृहदाकार, बड़े टाइपमें ४००
- ■1190, 1191 श्रीशुकसुधासागर, बड़े टाइपमें ग्रन्थाकार, दो खण्डोंमें सेट
- ■1535, 1536 श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट, (विशिष्ट संस्करण) ४६०
- ■ 26, 27 श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट (गुजराती, मराठी, बंगला भी) ३६०
- ■ 564, 565 श्रीमद्भागवतमहापुराण—अंग्रेजी सेट ३००
- ■ 29 ,,मूल मोटा टाइप (तेलुगु भी) १२५
- ■ 124 ,, मूल मझला ८०
- ■1855 ,, मूल गुटका-वि०सं० ९०
- ■ 571 श्रीकृष्णलीलाचिन्तन
- ■ 30 श्रीप्रेम-सुधासागर ८०
- ■ 31 भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र, सजिल्द [तमिल भी] ३०
- ■ 728 महाभारत—हिन्दी टीकासहित, सजिल्द, सचित्र [छः खण्डोंमें] सेट १५६० (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)
- ■ 38 महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक २५०
- ■1589 ,, केवल हिन्दी २००
- ■ 39, 511 संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें) [बँगला भी] ३२०
- ■ 44 संक्षिप्त पद्मपुराण—सचित्र, सजिल्द २००
- ■1468 सं० शिवपुराण (वि० सं०) २००
- ■ 789 सं० शिवपुराण—मोटा टाइप [गुजराती भी] १५०
- ■1133 सं० देवीभागवत [,,] १७०
- ■1770 श्रीमद्देवीभागवत-मूल
- ■ 48 श्रीविष्णुपुराण—सटीक, सचित्र १२०
- ■1364 श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी) ७०
- ■1183 सं० नारदपुराण १५०
- ■ 279 सं० स्कन्दपुराणाङ्क २३०
- ■ 539 सं० मार्कण्डेयपुराण ७५
- ■1111 सं० ब्रह्मपुराण १००
- ■1113 नरसिंहपुराणम् —सटीक ७०
- ■1189 सं० गरुडपुराण १२०
- ■1362 अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद) १५०
- ■1361 सं० श्रीवराहपुराण ७५
- ■ 584 सं० भविष्यपुराण १२०
- ■1131 कूर्मपुराण—सटीक १००
- ■ 631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण १७५
- ■1432 वामनपुराण—सटीक ९०
- ■1897 देवीभागवतमहापुराण—सटीक, प्रथम खण्ड १५०
- ■1898 देवीभागवतमहापुराण—सटीक, द्वितीय खण्ड १५०
- ■ 557 मत्स्यमहापुराण—,, २००
- ■1610 देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क ९०
- ■ 517 गर्गसंहिता ११०
- ■ 47 पातञ्जलयोग-प्रदीप १३०
- ■ 135 पातञ्जलयोगदर्शन—[बँगला भी] १३
- ■ 582 छान्दोग्योपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य १००
- ■ 577 बृहदारण्यकोपनिषद्—(,,) १२०
- ■ 1421 ईशादि नौ उपनिषद्- (,,) एक ही जिल्दमें १२५
- ■ 66 ईशादि नौ उपनिषद्—अन्वय-हिन्दी व्याख्या [बँगला भी] ६०
- ■ 67 ईशावास्योपनिषद्-सानुवाद, शांकरभाष्य [तेलुगु, कन्नड भी] ५
- ■ 68 केनोपनिषद्— सानुवाद, शांकरभाष्य १५
- ■ 578 कठोपनिषद्— ,, १५
- ■ 69 माण्डूक्योपनिषद्—,, २७
- ■ 513 मुण्डकोपनिषद्— ,, १०
- ■ 70 प्रश्नोपनिषद्— ,, १२
- ■ 71 तैत्तिरीयोपनिषद्— ,, २०
- ■ 72 ऐतरेयोपनिषद्— ,, १०
- ■ 73 श्वेताश्वतरोपनिषद्-,, २५
- ■ 65 वेदान्त-दर्शन—हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द ५०
- ■ 639 श्रीनारायणीयम्—सानुवाद [तेलुगु, तमिल भी]

भक्त-चरित्र

- ■ 40 भक्त चरिताङ्क-सचित्र, सजिल्द १६०
- ■1771 जैमिनीकृतमहाभारतमें भक्तोंकी गाथा-सजिल्द ५०
- ■ 51 श्रीतुकाराम-चरित—जीवनी और उपदेश ४०
- ■ 121 एकनाथ-चरित्र २०
- ■ 53 भागवतरत्न प्रह्लाद २०
- ■ 123 चैतन्य-चरितावली-सम्पूर्ण एक साथ १२०
- ■ 751 देवर्षि नारद १५
- ■ 168 भक्त नरसिंह मेहता [मराठी, गुजराती भी] १५
- ■ 169 भक्त बालक-गोविन्द, मोहन आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड, मराठी भी] ६
- ■ 170 भक्त नारी—मीरा, शबरी आदिकी गाथा ६
- ■ 171 भक्त पञ्चरत्न—रघुनाथ, दामोदर आदिकी (तेलुगु भी) १०
- ■ 172 आदर्श भक्त—शिबि, रन्तिदेव आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी] १०
- ■ 175 भक्त-कुसुम—जगन्नाथ आदि छः भक्तगाथा ८
- ■ 173 भक्त सप्तरत्न-दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड भी] ८
- ■ 174 भक्त चन्द्रिका—सखू, विट्ठल आदि छः भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड, तेलुगु, मराठी, ओड़िआ भी] ८
- ■ 176 प्रेमी भक्त-बिल्वमंगल, जयदेव आदि [गुजराती भी] ८
- ■ 177 प्राचीन भक्त—मार्कण्डेय, उत्तंक आदि १५
- ■ 178 भक्त सरोज—गंगाधरदास, श्रीधर आदि (गुजराती भी) १०
- ■ 179 भक्त सुमन—नामदेव, राँका-बाँका आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी] १०
- ■ 180 भक्त सौरभ—व्यासदास, प्रयागदास आदि १०
- ■ 181 भक्त सुधाकर—रामचन्द्र, लाखा आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी] १०
- ■ 182 भक्त महिलारत्न—रानी रत्नावती, हरदेवी आदि [गुजराती भी] १०
- ■ 183 भक्त दिवाकर—सुव्रत, वैश्वानरआदिकी भक्तगाथा १०
- ■ 184 भक्त रत्नाकर—माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा १०
- ■ 185 भक्तराज हनुमान्—हनुमान्‌जीका जीवनचरित्र [मराठी, ओड़िआ, तमिल, तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी] ६
- ■ 186 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र [ओड़िआ भी] ५
- ■ 187 प्रेमी भक्त उद्धव [तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ भी] ५
- ■ 188 महात्मा विदुर [गुजराती, तमिल, ओड़िआ भी] ५
- ■ 136 विदुरनीति १४
- ■ 138 भीष्मपितामह [तेलुगु भी] १५
- ■ 189 भक्तराज ध्रुव [तेलुगु भी] ५

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

- ■683 तत्त्वचिन्तामणि—(सभी खण्ड एक साथ) [गुजराती भी] १२०
- ■814 साधन-कल्पतरु (१३ महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह) ७०
- ▲1944 परम सेवा १५
- ▲1597 चिन्ता-शोक कैसे मिटें? १०
- ▲1631 भगवान् कैसे मिलें? ८
- ▲1653 मनुष्य-जीवनका उद्देश्य ८
- ▲1681 भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं ८
- ▲1747 भगवत्प्राप्ति कैसे हो? ८
- ▲1666 कल्याण कैसे हो? १०
- ▲ 527 प्रेमयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी] २०
- ▲ 242 महत्त्वपूर्ण शिक्षा—[तेलुगु भी] २०
- ▲ 528 ज्ञानयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी] १८
- ▲ 266 कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-१) (गुजराती भी) १२
- ▲ 267 कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-२) १२
- ▲ 303 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय [तमिल, गुजराती भी] १४
- ▲ 298 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य [तमिल, गुजराती, मराठी भी] १२
- ▲ 243 परम साधन—भाग-१ १२
- ▲ 244 ,, ,, —भाग-२ १०
- ▲ 245 आत्मोद्धारके साधन (भाग-१) १५
- ▲ 335 अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति—(आत्मोद्धारके साधन भाग-२) [गुजराती भी] १२
- ▲ 579 अमूल्य समयका सदुपयोग [तेलुगु, गुजराती, मराठी, कन्नड, ओड़िआ भी] ९
- ▲ 246 मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१) १२
- ▲ 247 ,, ,, (भाग-२) १२
- ▲ 611 इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति [गुजराती भी] १०
- ▲ 588 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति [,,] १२
- ▲1015 भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता [,,] १०
- ▲1923 भगवत्प्राप्तिके सुगम साधन ८
- ▲1296 कर्णवासका सत्संग [तमिल भी] ९
- ▲ 248 कल्याणप्राप्तिके उपाय-(त०चि०म०भा०१) [बँगला भी] १८
- ▲ 249 शीघ्र कल्याणके सोपान-भाग-२, खण्ड-१ [गुजराती भी] १४
- ▲ 250 ईश्वर और संसार—भाग-२, (खण्ड-२) १६
- ▲1900 निष्कामभावसे भगवत्प्राप्ति ८
- ▲ 519 अमूल्य शिक्षा—भाग-३, (खण्ड-१) ११
- ▲ 253 धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि—भाग-३, (खण्ड-२) १२
- ▲ 251 अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि-भाग-४, (खण्ड-१) १५
- ▲ 252 भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा-भाग-४ (खण्ड-२) १४
- ▲ 254 व्यवहारमें परमार्थकी कला—त० चि० भाग-५,(खण्ड-१) [गुजराती भी] १२
- ▲ 255 श्रद्धा-विश्वास और प्रेम-गुजराती, भाग-५, (खण्ड-२) [गुजराती भी] १५
- ▲ 258 तत्त्वचिन्तामणि—भाग-६, (खण्ड-१) १०
- ▲ 257 परमानन्दकी खेती—भाग-६, (खण्ड-२) १०
- ▲ 260 समता अमृत और विषमता विष-भाग-७, (खण्ड-१) १५
- ▲ 259 भक्ति-भक्त-भगवान्-भाग-७, (खण्ड-२) १४
- ▲ 256 आत्मोद्धारके सरल उपाय १४
- ▲261 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान [मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी] ४
- ▲ 262 रामायणके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तमिल, मराठी भी] १०
- ▲ 263 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, तमिल, मराठी भी] ७
- ▲ 264 मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—१ १२
- ▲ 265 मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—२ १०
- ▲ 268 परमशान्तिका मार्ग—भाग-१(गुजराती भी) १०
- ▲ 269 परमशान्तिका मार्ग-(भाग-२) १२
- ▲1792 शान्तिका उपाय १०
- ▲ 543 परमार्थ-सूत्र-संग्रह [ओड़िआ भी] १०
- ▲1530 आनन्द कैसे मिले? ८
- ▲1837 अनन्यभक्ति कैसे प्राप्त हो? ८
- ▲ 769 साधन नवनीत [गुजराती, ओड़िआ, कन्नड भी] १०
- ▲ 599 हमारा आश्चर्य १०
- ▲ 681 रहस्यमय प्रवचन १०
- ▲1021 आध्यात्मिक प्रवचन [गुजराती भी] १०
- ▲1324 अमृत वचन [बँगला भी] १०
- ▲1409 भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय ८
- ▲1433 साधना पथ ८
- ▲1483 भगवत्पथ-दर्शन १०
- ▲1493 नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें ८
- ▲1435 आत्मकल्याणके विविध उपाय ८
- ▲1529 सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो? ८
- ▲1561 दुःखोंका नाश कैसे हो? १०
- ▲1587 जीवन-सुधारकी बातें १०
- ▲1022 निष्काम श्रद्धा और प्रेम [ओड़िआ भी] १०
- ▲ 292 नवधा भक्ति [तेलुगु, मराठी, कन्नड भी] ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोड		मूल्य रु०
▲ 274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी	८
▲ 273	नल-दमयन्ती [मराठी, तमिल, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी]	४
▲ 277	उद्धार कैसे हो?— ५१ पत्रोंका संग्रह [गुजराती, ओड़िआ, मराठी भी]	७
▲1871	आवागमनसे मुक्ति	८
▲1856	महात्माओंकी अहैतुकी दया	७
▲1860	भगवत्प्राप्तिकी युक्तियाँ	८
▲1874	महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी बातें	८
▲1790	जन्म-मरणसे छुटकारा	८
▲ 278	सच्ची सलाह— ८० पत्रोंका संग्रह	१०
▲ 280	साधनोपयोगी पत्र	१०
▲ 281	शिक्षाप्रद पत्र	१२
▲ 282	पारमार्थिक पत्र	१०
▲ 284	अध्यात्मविषयक पत्र	७
▲ 283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ [अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, मराठी, तेलुगु, ओड़िआ भी]	७
▲1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें	१०
▲ 680	उपदेशप्रद कहानियाँ [अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु भी]	१०
▲ 891	प्रेममें विलक्षण एकता [मराठी, गुजराती भी]	१०
▲ 958	मेरा अनुभव [गुजराती, मराठी भी]	१०
▲1283	सत्संगकी मार्मिक बातें [गुजराती भी]	१०
▲1150	साधनकी आवश्यकता [मराठी भी]	१०
▲1908	प्रतिकूलतामें प्रसन्नता	८
▲ 320	वास्तविक त्याग	७
▲1791	त्यागकी महिमा	८
▲ 285	आदर्श भ्रातृप्रेम [ओड़िआ भी]	६
▲ 286	बालशिक्षा [तेलुगु, कन्नड, ओडिआ, गुजराती भी]	५
▲ 287	बालकोंके कर्तव्य [ओड़िआ भी]	५
▲ 272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा [कन्नड, गुजराती भी]	१०
▲ 290	आदर्श नारी सुशीला [बँगला, तेलुगु, तमिल, ओड़िआ, गुजराती, मराठी भी]	४
▲ 291	आदर्श देवियाँ [ओड़िआ भी]	५
▲ 300	नारीधर्म	४
▲ 293	सच्चा सुख और....... [गुजराती भी]	२
▲ 294	संत-महिमा [गुजराती, ओड़िआ भी]	३
▲ 295	सत्संगकी कुछ सार बातें [बँगला, तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]	३
▲ 301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म	२
▲ 310	सावित्री और सत्यवान् [गुजराती, तमिल, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, मराठी भी]	३
▲ 623	धर्मके नामपर पाप (गुजराती भी)	२
▲ 299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश— ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप [तेलुगु व अंग्रेजी भी]	४
▲ 304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित [गुजराती, असमिया, तमिल, मराठी भी]	३
▲ 297	गीतोक्त संन्यास तथा निष्काम कर्मयोगका स्वरूप	२
▲ 309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय [ओड़िआ भी]	३
▲ 271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?	२

कोड		मूल्य रु०
▲ 311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य [ओड़िआ भी]	२
▲ 306	धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं? [गुजराती, ओड़िआ व अंग्रेजी भी]	२
▲ 307	भगवान्‌की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण) [ओड़िआ, कन्नड, गुजराती भी]	२
▲ 316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये और सत्यकी शरणसे मुक्ति	३
▲ 314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य [गुजराती, मराठी भी]	३
▲ 315	चेतावनी और सामयिक चेतावनी [गुजराती भी]	३
▲ 318	ईश्वर दयालु और न्यायकारी है और अवतारका सिद्धान्त [गुजराती, तेलुगु भी]	३
▲ 270	भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द एवं महात्मा किसे कहते हैं? (तेलुगु भी)	२
▲ 302	ध्यान और मानसिक पूजा [गुजराती भी]	२
▲ 326	प्रेमका सच्चा स्वरूप और शोकनाशके उपाय [ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]	२

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

■820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार) सभी खण्ड एक साथ	७०
■ 050	पदरत्नाकर	६०
■ 049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	६०
▲ 058	अमृत-कण	२२
▲ 332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	२५
▲ 333	सुख-शान्तिका मार्ग	२०
▲ 343	मधुर	१६
▲ 056	मानव-जीवनका लक्ष्य	१५
▲ 331	सुखी बननेके उपाय	१४
▲ 334	व्यवहार और परमार्थ	१५
▲ 514	दुःखमें भगवत्कृपा	१५
▲ 386	सत्संग-सुधा	१३
▲ 342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल [तमिल भी, तीन भागमें]	१८
▲ 347	तुलसीदल	१४
▲ 339	सत्संगके बिखरे मोती	१५
▲ 349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति	१८
▲ 350	साधकोंका सहारा—	१६
▲ 351	भगवच्चर्चा—(भाग-५)	१६
▲ 352	पूर्ण समर्पण	१७
▲ 353	लोक-परलोक-सुधार-I	१२
▲ 354	आनन्दका स्वरूप	१५
▲ 355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर	१७
▲ 356	शान्ति कैसे मिले?	१७
▲ 357	दुःख क्यों होते हैं?	१६
▲ 348	नैवेद्य	१२
▲ 337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श [गुजराती, तेलुगु भी]	८
▲ 336	नारीशिक्षा [गुजराती, कन्नड भी]	१०
▲ 340	श्रीरामचिन्तन	१२
▲ 338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन	१२
▲ 345	भवरोगकी रामबाण दवा [ओड़िआ भी]	९
▲ 341	प्रेमदर्शन [तेलुगु, मराठी भी]	११
▲ 358	कल्याण-कुंज— (क० कुं० भाग-१)	८
▲ 359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प— (क० कुं० भाग-२)	८
▲ 360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (क० कुं० भाग-३)	१०
▲ 361	मानव-कल्याणके साधन (क० कुं० भाग-४)	१२

कोड		मूल्य रु०
▲ 346	सुखी बनो	८
▲ 362	दिव्य सुखकी सरिता— (क० कुं० भाग-५) [गुजराती भी]	६
▲ 363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ- (क० कुं० भाग-६)	६
▲ 364	परमार्थकी मन्दाकिनी— (क० कुं० भाग-७)	६
▲ 366	मानव-धर्म	६
▲ 526	महाभाव-कल्लोलिनी	५
▲ 367	दैनिक कल्याण-सूत्र	५
▲ 369	गोपीप्रेम [अंग्रेजी भी]	४
▲ 370	श्रीभगवन्नाम [ओड़िआ भी]	४
▲ 368	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष [ओड़िआ भी]	५
▲ 373	कल्याणकारी आचरण	१
▲ 374	साधन-पथ—सचित्र [गुजराती, तमिल भी]	४
▲ 375	वर्तमान शिक्षा	३
▲ 376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	४
▲ 377	मनको वश करनेके कुछ उपाय [गुजराती भी]	१
▲ 378	आनन्दकी लहरें [बँगला, ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]	३
▲ 379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य	४
▲ 381	दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य	१
▲ 382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन	२
▲ 344	उपनिषदोंके चौदह रत्न	६
▲ 371	राधा-माधव-रससुधा- (षोडशगीत) सटीक	४
▲ 384	विवाहमें दहेज—	१
▲ 809	दिव्य संदेश एवं मनुष्य सर्वप्रिय और जीवन कैसे बनें?	१

परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

■ 465	साधन-सुधा-सिन्धु [ओड़िआ, गुजराती भी] (४३ पुस्तकें एक ही जिल्दमें)	११०
▲1675	सागरके मोती	१२
▲1598	सत्संगके फूल	१२
▲1733	संत-समागम	७
▲1633	एक संतकी वसीयत [बँगला भी]	२
▲ 400	कल्याण-पथ	१०
▲ 401	मानसमें नाम-वन्दना	१०
▲ 605	जित देखूँ तित-तू [गुजराती, मराठी भी]	१०
▲ 406	भगवत्प्राप्ति सहज है [अंग्रेजी भी]	१०
▲ 535	सुन्दर समाजका निर्माण	१०
▲1485	ज्ञानके दीप जले	१५
▲1447	मानवमात्रके कल्याणके लिये (मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती, अंग्रेजी, नेपाली भी)	१५
▲1175	प्रश्नोत्तर मणिमाला [बँगला, ओड़िआ, गुजराती भी]	१०
▲1247	मेरे तो गिरधर गोपाल	८
▲ 403	जीवनका कर्तव्य [गुजराती भी]	१०
▲ 436	कल्याणकारी प्रवचन [गुजराती, अंग्रेजी, बँगला, ओड़िआ भी]	८
▲1093	आदर्श कहानियाँ [ओड़िआ, बँगला भी]	८
▲ 407	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता [कन्नड, मराठी भी]	८
▲ 408	भगवान्‌से अपनापन [गुजराती, ओड़िआ भी]	६
▲ 861	सत्संग-मुक्ताहार [,,]	५

कोड		मूल्य रु०
▲ 405	नित्ययोगकी प्राप्ति [ओड़िआ भी]	८
▲ 409	वास्तविक सुख [तमिल, ओड़िआ भी]	७
▲1308	प्रेरक कहानियाँ [बँगला, ओड़िआ भी]	८
▲1408	सब साधनोंका सार [बँगला भी]	५
▲ 411	साधन और साध्य [मराठी, बँगला, गुजराती भी]	६
▲ 412	तात्त्विक प्रवचन [मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती भी]	६
▲ 410	जीवनोपयोगी प्रवचन [अंग्रेजी भी]	८
▲ 414	तत्त्वज्ञान कैसे हो? एवं मुक्तिमें सबका समान अधिकार [बँगला, गुजराती भी]	७
▲ 822	अमृत-बिन्दु [बँगला, तमिल, ओड़िआ, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, कन्नड भी]	८
▲ 821	किसान और गाय [तेलुगु भी]	३
▲ 417	भगवन्नाम [मराठी, अंग्रेजी भी]	५
▲ 416	जीवनका सत्य [गुजराती, अंग्रेजी भी]	६
▲ 418	साधकोंके प्रति [बँगला, मराठी भी]	५
▲ 419	सत्संगकी विलक्षणता [गुजराती भी]	५
▲ 545	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग [गुजराती भी]	४
▲ 420	मातृशक्तिका घोर अपमान [तमिल, बँगला, मराठी, गुजराती, ओड़िआ भी]	४
▲ 421	जिन खोजा तिन पाइयाँ [बँगला भी]	६
▲ 422	कर्मरहस्य [बँगला, तमिल, कन्नड, ओड़िआ भी]	५
▲ 424	वासुदेवः सर्वम् [मराठी, अंग्रेजी भी]	५
▲ 425	अच्छे बनो [अंग्रेजी भी]	६
▲ 426	सत्संगका प्रसाद [गुजराती भी]	५
▲1019	सत्यकी खोज [गुजराती, अंग्रेजी भी]	६
▲1479	साधनके दो प्रधान सूत्र [ओड़िआ, बँगला भी]	४
▲1035	सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण	१
▲1360	तू-ही-तू	३
▲1434	एक नयी बात	३
▲1440	परम पितासे प्रार्थना	१
▲1441	संसारका असर कैसे छुटे?	२
▲1176	शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता और..[बँगला भी]	३
▲ 431	स्वाधीन कैसे बनें? [अंग्रेजी भी]	३
▲ 702	यह विकास है या....	२
▲ 589	भगवान् और उनकी भक्ति [गुजराती, ओड़िआ भी]	७
▲ 617	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम [तमिल, बँगला, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, गुजराती, मराठी भी]	५
▲ 770	अमरताकी ओर [गुजराती भी]	७
▲ 434	शरणागति [तमिल, ओड़िआ, तेलुगु, कन्नड भी]	५
▲ 432	एकै साधे सब सधै [गुजराती, तमिल, तेलुगु भी]	५
▲ 427	गृहस्थमें कैसे रहें? [बँगला, मराठी, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु, गुजराती, असमिया, पंजाबी भी]	८
▲ 433	सहज साधना [गुजराती, बँगला, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]	५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोड — मूल्य रु०

- ▲ 435 आवश्यक शिक्षा (सन्तानका कर्तव्य एवं आहारशुद्धि) [गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी, मराठी भी] ६
- ■1012 पञ्चामृत—(१०० पन्नोंका पैकेटमें) [गुजराती भी] १
- ■1037 हे मेरे नाथ मैं आपको भूलूँ नहीं (१०० पन्नोंका पैकेटमें) १
- ■1611 मैं भगवान्का अंश हूँ (,,) १
- ■1612 सच्ची और पक्की बात (,,) १
- ▲1072 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? [गुजराती, ओड़िआ भी] ५
- ▲ 515 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन १ [गुजराती, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु भी]
- ▲ 438 दुर्गतिसे बचो [गुजराती, बँगला २ (गुरुतत्त्वसहित), मराठी भी]
- ▲ 439 महापापसे बचो [बँगला, तेलुगु, कन्नड, गुजराती, तमिल भी] ३
- ▲ 440 सच्चा गुरु कौन? [ओड़िआ भी] २
- ▲ 444 नित्य-स्तुति और प्रार्थना [कन्नड़, तेलुगु भी] २
- ▲ 729 सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण [गुजराती भी] २
- ▲ 447 मूर्तिपूजा-नाम-जपकी महिमा [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी] ३
- ▲ 445 हम ईश्वरको क्यों मानें? [बँगला भी] २
- ▲ 745 भगवत्तत्त्व [गुजराती भी] २
- ▲ 632 सब जग ईश्वररूप है [ओड़िआ, गुजराती भी] ६

नित्य पाठ-साधन-भजन एवं कर्मकाण्ड-हेतु

- ■1593 अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश १००
- ■1928 त्रिपिण्डी श्राद्ध पद्धति १२
- ■1809 गया श्राद्ध पद्धति २५
- ■1895 जीवच्छ्राद्धपद्धति ५०
- ■ 592 नित्यकर्म-पूजाप्रकाश [गुजराती भी] ४५
- ■1416 गरुडपुराण-सारोद्धार (सानुवाद) २५
- ■1627 रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद २०
- ■1417 शिवस्तोत्ररत्नाकर २५
- ■1774 देवीस्तोत्ररत्नाकर २५
- ■1623 ललितासहस्रनामस्तोत्रम् [तेलुगु भी] ८
- ■ 610 व्रतपरिचय ३५
- ■1162 एकादशी-व्रतका माहात्म्य—मोटा टाइप [गुजराती भी] १७
- ■1136 वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य २५
- ■1588 माघमासका माहात्म्य ६
- ■1899 श्रावणमास-माहात्म्य (सानुवाद) २७
- ■1367 श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा १०
- ■ 052 स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद [तेलुगु, बँगला भी] २५
- ■1629 ,, ,, सजिल्द ३५
- ■1567 दुर्गासप्तशती—मूल, मोटा (वेड़िया) ३०
- ■876 ,, मूल गुटका १०
- ■1727 ,, -मूल, लघु आकार १०
- ■1346 ,, सानुवाद मोटा टाइप २५
- ■ 118 ,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी] २२
- ■ 489 ,, सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी] ३०
- ■1281 ,, ,, (विशिष्ट सं०) ४०
- ■ 866 ,, केवल हिन्दी १५
- ■1161 ,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द ४०
- ■ 819 श्रीविष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य २४
- ■ 206 श्रीविष्णुसहस्रनाम—सटीक ५
- ■1801 श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (हिन्दी-अनुवादसहित) ६
- ■ 226 श्रीविष्णुसहस्रनाम—मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड, तमिल, गुजराती भी] २
- ■1872 श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्-लघु १
- ■ 509 सूक्ति-सुधाकर २०
- ■ 207 रामस्तवराज—(सटीक) ३
- ■ 211 आदित्यहृदयस्तोत्रम्—हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी] २
- ■ 224 श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र [तेलुगु, ओड़िआ भी] ५
- ■ 231 रामरक्षास्तोत्रम्—[तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी] २
- ■ 715 महामन्त्रराजस्तोत्रम् ४

नामावलिसहितम्

- ■1594 सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह ८५
- ■1599 श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम् ६
- ■1600 श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम् ६
- ■1601 श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम् ६
- ■1663 श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम् ६
- ■1664 श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम् ६
- ■1665 श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम् ५
- ■1706 श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् ६
- ■1704 श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम् ६
- ■1705 श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम् ६
- ■1707 श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम् ६
- ■1708 श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम् ६
- ■1709 श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम् ५
- ■1862 श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्-सटीक १०
- ■ 495 दत्तात्रेय-वज्रकवच—सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी] ४
- ■ 563 शिवमहिम्नस्तोत्र [तेलुगु भी] ४
- ■1748 संतानगोपालस्तोत्र ५
- ■1850 शतनामस्तोत्रसंग्रह २०
- ■1885 वैदिक सूक्त-संग्रह २४
- ■ 054 भजन-संग्रह ३५
- ■1849 भजन-सुधा १२
- ■ 229 श्रीनारायणकवच [ओड़िआ, तेलुगु भी] २
- ■ 230 अमोघ शिवकवच २
- ■ 140 श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली २०
- ■ 142 चेतावनी-पद-संग्रह (दोनों भाग) २०
- ■ 144 भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह ९
- ■1355 सचित्र-स्तुति-संग्रह ५
- ■1800 पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह ६
- ■1092 भागवत-स्तुति-संग्रह
- ■1214 मानस-स्तुति-संग्रह १२
- ■1344 सचित्र-आरती-संग्रह १२
- ■1591 आरती-संग्रह—मोटा टाइप १२
- ■ 153 आरती-संग्रह ६
- ■1845 प्रमुख-आरतियाँ—पॉकेट ५
- ■ 208 सीतारामभजन ३
- ■ 221 हरेरामभजन—दो माला (गुटका) ४
- ▲ 385 नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, सानुवाद [बँगला, तमिल भी] ४
- ■ 222 हरेरामभजन—१४ माला १२
- ■ 225 गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, हिन्दी पद्य, भाषानुवाद [तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी] २
- ■1505 भीष्मस्तवराज ३
- ■ 699 गङ्गालहरी २
- ■1094 हनुमानचालीसा—हिन्दी भावार्थसहित ५
- ■1917 हनुमानचालीसा—रंगीन, वि०सं० ३
- ■ 227 ,, —(पॉकेट साइज) २ [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]
- ■ 695 हनुमानचालीसा—(लघु आकार) [गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ भी] १
- ■1525 हनुमानचालीसा—अति लघु आकार [गुजराती भी] १
- ■ 228 शिवचालीसा—(असमिया भी) २
- ■1185 शिवचालीसा—लघु आकार १
- ■ 232 श्रीरामगीता ४
- ■ 383 भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी.... २
- ■ 851 दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा २
- ■1033 ,, —लघु आकार १
- ■ 203 अपरोक्षानुभूति ४
- ■ 139 नित्यकर्म-प्रयोग १२
- ■ 524 ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री ३
- ■1471 संध्या, संध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य ५
- ■ 210 सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण-बलिवैश्वदेवविधि—मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी] ५
- ■ 236 साधकदैनन्दिनी ४
- ■ 614 सन्ध्या २

बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकें

- ■1316 बालपोथी (शिशु), रंगीन १२
- ■ 461 ,, ,, भाग-१ ४
- ■ 212 ,, ,, भाग-२ ४
- ■ 684 ,, ,, भाग-३ ४
- ■ 764 ,, ,, भाग-४ १०
- ■ 765 ,, ,, भाग-५ १०
- ■ 125 ,, ,, रंगीन, (भाग-१) ५
- ■1692 बालकको दिनचर्या रंगीन, ग्रन्थाकार २०
- ■1693 बालकोंकी सीख ,, २०
- ■1694 बालकके आचरण ,, २०
- ■1690 बालकके गुण ,, २५
- ■ 216 बालकको दिनचर्या ४
- ■ 214 बालकके गुण ५
- ■ 217 बालकोंके सीख ४
- ■ 219 बालकके आचरण ४
- ■ 218 बाल-अमृत-वचन ४
- ■ 696 बाल-प्रश्नोत्तरी [गुजराती भी] ४
- ■ 215 आओ बच्चो तुम्हें बतायें ४
- ■1689 ,, ,, ग्रन्थाकार, रंगीन २०
- ■ 213 बालकोंकी बोल-चाल ४
- ■1691 बालकोंकी बातें—रंगीन १२
- ■ 146 बड़ोंके जीवनसे शिक्षा [ओड़िआ भी] १०
- ■ 150 पिताकी सीख [गुजराती भी] १२
- ■ 396 आदर्श ऋषि-मुनि ६
- ■ 397 आदर्श देशभक्त ७
- ■ 398 आदर्श सम्राट् [गुजराती भी] ६
- ■ 402 आदर्श सुधारक ६
- ■ 399 आदर्श संत ६
- ■ 516 आदर्श चरितावली ६
- ■ 116 लघुसिद्धान्तकौमुदी, सजिल्द ३०
- ■1437 वीर बालक (रंगीन) १२
- ■1451 गुरु और माता-पिताके भक्त बालक (रंगीन) १२
- ■1450 सच्चे-ईमानदार बालक-रंगीन १०
- ■1449 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (रंगीन) १०
- ■1448 वीर बालिकाएँ (रंगीन) १०
- ■ 727 स्वास्थ्य, सम्मान और सुख ४

सर्वोपयोगी प्रकाशन

- ■ 698 मार्क्सवाद और रामराज्य—स्वामी करपात्रीजी
- ■1673 सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ १८
- ■1657 भलेका फल भला
- ■1927 जीवन-संजीवनी ४
- ■1300 महाकुम्भपर्व ३५
- ■ 542 ईश्वर
- ■ 57 मानसिक दक्षता ३
- ■ 59 जीवनमें नया प्रकाश २५
- ■ 60 आशाकी नयी किरणें २४
- ■ 119 अमृतके घूँट २०
- ■ 132 स्वर्णपथ १८
- ■ 55 महकते जीवनफूल १६
- ■1461 हम कैसे रहें? २८
- ■ 774 कल्याणकारी दोहा-संग्रह, १० गीताप्रेस-परिचयसहित १०
- ■ 387 प्रेम-सत्संग-सुधामाला १८
- ■ 668 प्रश्नोत्तरी २
- ■ 501 उद्धव-सन्देश २०
- ■ 195 भगवान्पर विश्वास ६
- ■ 120 आनन्दमय जीवन १७
- ■ 133 विवेक-चूडामणि [तेलुगु, बँगला भी] १५
- ■ 862 मुझे बचाओ, मेरा क्या कसूर? २०
- ■ 131 सुखी जीवन १८
- ■ 122 एक लोटा पानी १५
- ▲ 701 गर्भपात उचित या...... ३ [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड भी]
- ■ 888 परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ [बँगला भी] १५
- ■ 134 सती द्रौपदी १२
- ■1624 पौराणिक कथाएँ १२
- ■1938 गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ—पुस्तकाकार ८
- ■1782 प्रेरणाप्रद कथाएँ १५
- ■1669 पौराणिक कहानियाँ १२
- ■ 137 उपयोगी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, कन्नड़, गुजराती, बँगला भी] १०
- ■ 159 आदर्श उपकार—(पढ़ो, समझो और करो) १५
- ■ 160 कलेजेके अक्षर ,, १५
- ■ 161 हृदयकी आदर्श विशालता ,, १५
- ■ 162 उपकारका बदला ,, १५
- ■ 163 आदर्श मानव-हृदय ,, १५
- ■ 164 भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो) १५
- ■ 165 मानवताका पुजारी ,, १५
- ■ 166 परोपकार और सच्चाईका फल ,, १५
- ■ 510 असीम नीचता और असीम साधुता १५
- ■ 157 सती सुकला ५
- ■ 147 चोखी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, गुजराती, मराठी भी] ६
- ■ 129 एक महात्माका प्रसाद [गुजराती भी] २५
- ■1688 तीस रोचक कथाएँ १२
- ■ 151 सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला १२
- ■1922 गोरक्षा एवं गोसंवर्धन ६

चित्रकथा

- ■1647 देवीभागवतकी प्रमुख कथाएँ २०
- ■1646 महाभारतके प्रमुख पात्र २०
- ■ 190 बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला १५
- ■ 868 भगवान् सूर्य (ग्रंथाकार) २०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोड — मूल्य रु०

- ■1156 एकादश रुद्र (शिव) ५०
- ■1032 बालचित्र-रामायण-पुस्तकाकार ५
- ■ 869 कन्हैया [बँगला, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी] १२
- ■ 870 गोपाल [बँगला, तेलुगु, तमिल भी] १२
- ■ 871 मोहन [बँगला, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी] १२
- ■ 872 श्रीकृष्ण [बँगला, तमिल, तेलुगु भी] १२
- ■1018 नवग्रह—चित्र एवं परिचय [बँगला भी] १२
- ■1016 रामलला [तेलुगु, अंग्रेजी भी] २०
- ■1116 राजा राम [तेलुगु भी] २०
- ■1017 श्रीराम २०
- ■1394 भगवान् श्रीराम (पुस्तकाकार) १०
- ■1418 श्रीकृष्णलीला-दर्शन ,, १२
- ■1278 दशमहाविद्या [बँगला भी] १२
- ■1343 हर-हर महादेव २०
- ■ 829 अष्टविनायक [ओड़िआ, मराठी, गुजराती भी] १२
- ■1794 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र २०
- ■ 204 ॐ नमः शिवाय [बँगला, ओड़िआ, कन्नड भी] २०
- ■ 787 जय हनुमान् [तेलुगु, ओड़िआ भी] २०
- ■ 779 दशावतार [बँगला भी] १२
- ■1215 प्रमुख देवता १२
- ■1216 प्रमुख देवियाँ १२
- ■1442 प्रमुख ऋषि-मुनि २०
- ■1443 रामायणके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी] २०
- ■1488 श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी] २०
- ■1537 श्रीमद्भागवतकी प्रमुख कथाएँ २०
- ■1538 महाभारतकी प्रमुख कथाएँ २०
- ■1420 पौराणिक देवियाँ १२
- ■1307 नवदुर्गा—पॉकेट साइज ५
- ■ 205 नवदुर्गा [तेलुगु, गुजराती, असमिया, कन्नड, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी] १२
- ■ 537 बाल-चित्रमय बुद्धलीला ७
- ■ 194 बाल-चित्रमय चैतन्यलीला [ओड़िआ, बँगला भी] १०
- ■ 651 गोसेवाके चमत्कार [तमिल भी] १२

रंगीन चित्र-प्रकाशन

- ▲1695 चित्र—भगवती सरस्वती ८
- ▲1582 चित्र भगवान् श्रीकृष्ण १०
- ▲ 237 जय श्रीराम—भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण १५
- ▲ 546 जय श्रीकृष्ण—भगवान् श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण १५
- ▲1001 जगज्जननी श्रीराधा ८
- ▲1020 श्रीराधा-कृष्ण—युगल छवि ८
- ▲ 491 हनुमान्जी—(भक्तराज हनुमान्) १०
- ▲ 492 भगवान् विष्णु ८
- ▲1568 भगवान् श्रीराम-बालरूपमें १०
- ▲1351 सुमधुर गोपाल ८
- ▲ 560 लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप) ८
- ▲1674 ,, (प्लास्टिक कोटेड) १५
- ▲ 776 सीताराम—युगल छवि ८
- ▲ 548 मुरलीमनोहर-भगवान् मुरलीमनोहर १०
- ▲ 782 श्रीरामदरबारकी झाँकी ८
- ▲1290 नटराज शिव ८
- ▲ 630 सर्वदेवमयी गौ ८
- ▲ 531 श्रीबाँकेबिहारी ८
- ▲ 812 नवदुर्गा (माँ दुर्गाके नौ स्वरूपोंका चित्रण) ८

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

- ■1184 श्रीकृष्णाङ्क
- ■ 41 शक्ति-अङ्क १५०
- ■ 616 योगाङ्क १३०
- ■ 627 संत-अङ्क १८०
- ■ 604 साधनाङ्क
- ■1773 गो-अङ्क १३०
- ■ 44 संक्षिप्त पद्मपुराण २००
- ■ 539 संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण ७५
- ■1111 संक्षिप्त ब्रह्मपुराण १००
- ■ 43 नारी-अङ्क १७०
- ■ 659 उपनिषद्-अङ्क १५०
- ■ 279 सं० स्कन्दपुराण २३०
- ■ 40 भक्त-चरिताङ्क १६०
- ■1183 सं० नारदपुराण १५०
- ■ 667 संतवाणी-अङ्क १५०
- ■ 587 सत्कथा-अङ्क १४०
- ■ 636 तीर्थाङ्क १५०
- ■ 574 संक्षिप्त योगवासिष्ठ १२०
- ■1133 सं० देवीभागवत-मोटा टाइप १७०
- ■ 789 सं० शिवपुराण-(बड़ा टाइप) १५०
- ■ 631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण १७५
- ■ 572 परलोक-पुनर्जन्माङ्क १५०
- ■1135 भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क १२०
- ■ 517 गर्ग-संहिता ११०
- ■1113 नरसिंहपुराणम्—सानुवाद ७०
- ■1362 अग्निपुराण १५० (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)
- ■1432 वामनपुराण ९०
- ■ 557 मत्स्यमहापुराण (सानुवाद) २००
- ■ 657 श्रीगणेश-अङ्क १००
- ■ 42 हनुमान-अङ्क १००
- ■1361 सं० श्रीवाराहपुराण ७५
- ■ 791 सूर्याङ्क ८०
- ■ 584 सं० भविष्यपुराण १२०
- ■ 586 शिवोपासनाङ्क
- ■ 653 गोसेवा-अङ्क १००
- ■1131 कूर्मपुराण १००
- ■ 448 भगवल्लीला-अङ्क ६५
- ■1044 वेद-कथाङ्क १००
- ▲1542 भगवत्प्रेम-अङ्क-अजि० ६५
- ▲1467 भगवत्प्रेम-अङ्क-सजि० ८५
- ■1592 आरोग्य-अङ्क (परिवर्धित संस्करण) १५०
- ■1189 सं० गरुडपुराण १२०
- ■1610 देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क ९०
- ■1793 श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध) १००
- ■1842 श्रीमद्देवीभागवताङ्क (उत्तरार्द्ध) १००

Annual Issues of Kalyan-Kalpataru

- ▲ 1395 Woman No. 40
- ▲ 1397 Manusmrti No. 40
- ▲1398 Hindu Samskrti No. 40
- ▲ 1841 Jaiminiya Mahabharata (Áswamedhika Parva) (Part I) 40
- ▲ 1847 Jaiminiya Mahabharata (Áswamedhika Parva) (Part II) 40
- ▲ 2109 Morality Number 40

अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन

बँगला

- ■1937 सं० शिवपुराण १२५
- ■1883 श्रीरामचरितमानस-मझला, सटीक १५०
- ■1577 श्रीमद्भागवतपुराण-सटीक-I १७०
- ■1744 श्रीमद्भागवतपुराण-सटीक-II १७०
- ■1785 भागवतेरमणिभुक्तेर १८
- ■1662 श्रीचैतन्यचरितामृत १२०
- ■1603 ईशादि नौ उपनिषद् ६०
- ■1786 मूल वाल्मीकीयरामायण ६
- ■1839 कृतिवासीरामायण ११०
- ■1901 साधन समर ११०
- ■1574 संक्षिप्त महाभारत-भाग-I १६०
- ■1660 ,, ,, भाग-II १५०
- ■ 763 गीता-साधक-संजीवनी-परिशिष्टसहित १७०
- ■1118 गीता-तत्त्व-विवेचनी ८०
- ■1851 गीता रसामृत ७५
- ■ 556 गीता-दर्पण ६०
- ■1736 गीता-प्रबोधनी ३५
- ■1489 गीता-दैनन्दिनी (२०१३) ५५
- ■ 013 गीता-पदच्छेद ३५
- ■1444 गीता-ताबीजी—सजिल्द ५
- ■1455 गीता-लघु आकार २
- ■1322 दुर्गासप्तशती—सटीक २२
- ■1604 पातञ्जलयोगदर्शन १४
- ■1460 विवेकचूडामणि १२
- ■1075 ॐ नमः शिवाय (चित्रकथा) २०
- ■1787 महावीर हनुमान् (,,) २०
- ■1043 नवदुर्गा (चित्रकथा) १२
- ■1439 दश महाविद्या (,,) १२
- ■1292 दशावतार (,,) १२
- ■1096 कन्हैया (,,) १२
- ■1097 गोपाल (,,) १०
- ■1892 सीतापतिराम (,,) १७
- ■1893 राजाराम (,,) १७
- ■1891 रामलला (,,) २०
- ■1098 मोहन (,,) १२
- ■1123 श्रीकृष्ण (,,) १२
- ■1888 जय शिवशंकर (,,) २०
- ■1889 प्रमुख ऋषिमुनि (,,) २०
- ■1495 बालचित्रमय चैतन्यलीला १०
- ■1393 गीता भाषा-टीका-पॉकेट सजि. १४
- ■1454 स्तोत्ररत्नावली २४
- ■1854 भागवतरत्नावली १४
- ■1659 श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम १
- ■1852 रामरक्षास्तोत्र—लघु आकार १
- ■1853 आमेदेरलक्ष्य और कर्तव्य १०
- ■ 496 गीता-भाषा-टीका (पॉकेट) १०
- ■1834 श्रीमद्भगवद्गीता (मूल) एवं विष्णुसहस्रनाम ७
- ▲1581 गीतार-सारात्सार ६
- ■1496 परलोक और पुनर्जन्मकी... १२
- ▲1795 मनको वश करनेके कुछ उपाय व आनन्दकी लहरें ५
- ■1920 शाकाहार या मांसाहार-फैसला... ७
- ▲1925 ईश्वरकी सत्ता एवं महत्ता ८
- ▲ 275 कल्याण-प्राप्तिके उपाय २०
- ▲1305 प्रश्नोत्तर मणिमाला १०
- ▲ 395 गीतामाधुर्य ७
- ▲1102 अमृत-बिन्दु ६
- ■1356 सुन्दरकाण्ड—सटीक १०
- ▲ 816 कल्याणकारी प्रवचन ६
- ▲1838 जीवनोपयोगी प्रवचन ८
- ▲ 276 परमार्थ-पत्रावली (भाग-१) ६
- ▲1306 कर्तव्य साधनासे भगवत्प्राप्ति ५
- ▲1119 ईश्वर और धर्म क्यों ? १२
- ▲1456 भगवत्प्राप्तिका पथ व पाथेय १०
- ▲1580 अध्यात्मसाधनाय कर्महीनतानय ६
- ▲1452 आदर्श कहानियाँ ८
- ▲1453 प्रेरक कहानियाँ ६
- ■1513 मूल्यवान् कहानियाँ १०
- ▲1469 सब साधनोंका सार ५
- ▲1478 मानवमात्रके कल्याणके लिये १३
- ▲1359 जिन खोजा तिन पाइयाँ ६
- ▲1115 तत्त्वज्ञान कैसे हो ? ६
- ▲1303 साधकोंके प्रति ५
- ▲1358 कर्म-रहस्य ५
- ▲1122 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ? ५
- ▲1742 शरणागति ५
- ▲1784 प्रेमभक्ति प्रकाश तथा ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप ३
- ▲ 625 देशकी वर्तमान दशा.... ५
- ▲ 428 गृहस्थमें कैसे रहें ? ५
- ▲ 903 सहज साधना ४
- ▲1415 अमृतवाणी १०
- ▲ 312 आदर्श नारी सुशीला ४
- ▲1541 साधनके दो प्रधान सूत्र ४
- ▲ 955 तात्त्विक प्रवचन ५
- ■1652 नवग्रह (चित्रकथा) १२
- ▲ 449 दुर्गतिसे बचो सच्चा गुरु कौन ? ४
- ▲ 956 साधन और साध्य ५
- ▲1579 साधनार मनोभूमि ६
- ▲ 330 नारद एवं शांडिल्य-भक्ति-सूत्र ३
- ▲ 762 गर्भपात उचित या अनुचित··· ३
- ■1881 हनुमानचालीसा—सटीक २
- ■1880 हनुमानचालीसा—लघु १
- ■1743 शिवचालीसा, लघु आकार १
- ■1797 स्तवमाला २
- ▲1319 कल्याणके तीन सुगम मार्ग २
- ▲1651 हे महाजीवन! हे महामरण ! २
- ▲1293 शिखा धारणकी········· २
- ▲ 450 हम ईश्वरको क्यों मानें ? ३
- ▲1884 ईश्वर-लाभके विविध उपाय २
- ▲ 849 मातृशक्तिका घोर अपमान ३
- ▲ 451 महापापसे बचो २
- ▲ 469 मूर्तिपूजा १
- ▲ 296 सत्संगकी सार बातें १
- ▲1936 ईश्वरेरप्रति विश्वास ४
- ▲ 443 संतानका कर्तव्य १
- ■1835 सत्यनिष्ठ साहसी बालक बालिकादेर कथा १५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी

कोड		मूल्य रु०
■1314	श्रीरामचरितमानस सटीक, मोटा टाइप	१७०
■1687	सुन्दरकाण्ड, सटीक	६
■1508	अध्यात्मरामायण	९०
■ 784	ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ-दीपिका	१७५
■1808	श्रीतुकाराममहाराजांची गाथा	८५
■1942	जगतगुरु तुकाराम	१५
■1934	संतश्रेष्ठ एकनाथ	१८
■1931	ब्रह्मचित्कलादर्शन अर्थात् श्रीमुक्ताबाई चरित्र व गाथा	६५
■1915	संतनामदेवांची अभंग गाथा	१००
■1817	पाण्डव-प्रताप	११०
■1836	श्रीगुरुचरित्र	८५
■1780	श्रीदासबोध, मझला साइज	७५
■1781	दासबोध (गद्यरूपान्तरासह)	१५०
■ 853	एकनाथी भागवत—मूल	१४०
■1678	श्रीमद्भागवतमहापुराण-I	१५०
■1735	श्रीमद्भागवतमहापुराण-सटीक-I	१५०
■1776	श्रीमद्भागवतमहापुराण (केवल मराठी अनुवाद)	१७०
■ 7	गीता-साधक-संजीवनी टीका	१५०
■1304	गीता-तत्त्व-विवेचनी	९०
■ 859	ज्ञानेश्वरी—मूल मझला	५०
■ 15	गीता-माहात्म्यसहित	३५
■ 504	गीता-दर्पण	३५
■ 748	ज्ञानेश्वरी—मूल गुटका	३५
■1896	ज्ञानेश्वरी—माउली	१५
■ 14	गीता—पदच्छेद	३५
■1388	गीता-श्लोकार्थसहित (मोटा टाइप)	१२
■1257	गीता—श्लोकार्थसहित	९
■1168	भक्त नरसिंह मेहता	१२
■1913	संत श्रेष्ठ नामदेव	१५
■1671	महाराष्ट्रातील निवडक....	१०
▲ 429	गृहस्थमें कैसे रहें?	१०
▲1703	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	५
▲1387	प्रेममें विलक्षण एकता	१०
■ 857	अष्ट विनायक (चित्रकथा)	१२
▲ 391	गीतामाधुर्य	१०
▲1099	अमूल्य समयका सदुपयोग	९
▲1335	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१०
▲1155	उद्धार कैसे हो?	५
▲1716	भगवान् कैसे मिले?	७
▲1719	चिन्ता,शोक कैसे मिटे?	८
▲1717	मनुष्य जीवनका उद्देश्य	८
▲1074	आध्यात्मिक पत्रावली	८
▲1275	नवधा भक्ति	६
▲1386	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1340	अमृत-बिन्दु	७
▲1382	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	८
■1818	उपयोगी कहानियाँ	१०
▲1210	जित देखूँ तित-तू	१०
▲1330	मेरा अनुभव	१०
■1277	भक्त बालक	६
■1073	भक्त चन्द्रिका	६
■1383	भक्तराज हनुमान्	६
■1778	जीवनादर्श श्रीराम	२०
▲ 886	साधकोंके प्रति	६
▲ 885	तात्त्विक प्रवचन	५
■1607	रुक्मिणी स्वयंवर	१५
■1640	सार्थ मनाचे श्लोक	५
■1333	भगवान् श्रीकृष्ण	६
■1331	कृष्ण भक्त उद्धव	४
■1682	सार्थ सं० देवीपाठ	६
■1332	दत्तात्रेय-वज्रकवच	४
■1732	शिवलीलामृत	४०
■1768	श्रीशिवलीलामृतांतील-अकरावा अध्याय	४
■1730	श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्	४
■1731	श्रीविष्णुसहस्त्रनामावलिः	४
■1729	श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्	६
■1670	मूल रामायाण, पॉकिट साइज	४
■1679	मनाचे श्लोक, पॉकिट साइज	४
■1680	सार्थश्रीगणपत्यथर्वशीर्ष	२
■1683	सार्थ ज्ञानदेवी गीता	१२
■1810	कन्हैया (चित्रकथा)	१२
■1811	गोपाल (,,)	१२
■1812	मोहन (,,)	१२
■1813	श्रीकृष्ण (,,)	१२
■1828	रामलला (,,)	२०
■1829	श्रीराम (,,)	२०
■1830	राजाराम (,,)	२०
■1645	हरीपाठ (सार्थ सविवरण)	१०
■ 855	हरीपाठ	४
■1169	चोखी कहानियाँ	५
▲1385	नल-दमयंती	४
▲1384	सती सावित्री-कथा	३
■1814	सामाजिक संस्कार कथा	१५
■1815	घराघरातील संस्कार कथा	१५
▲ 880	साधन और साध्य	६
▲1006	वासुदेवः सर्वम्	५
▲1276	आदर्श नारी सुशीला	४
▲1334	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	४
▲1749	श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश व ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	३
▲ 899	देशकी वर्तमान दशा···	५
▲1339	कल्याणके तीन सुगम मार्ग और सत्यकी शरणसे मुक्ति	५
▲1428	आवश्यक शिक्षा	५
▲1341	सहज साधना	५
▲1711	शिखा (चोटी) धारण...	२
▲ 802	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 882	मातृशक्तिका घोर अपमान	४
▲ 883	मूर्तिपूजा	३
■1746	मनोबोधभक्तिसूत्र	८
▲ 884	सन्तानका कर्तव्य	२
▲1279	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1613	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	१०
▲1642	प्रेमदर्शन	१२
▲1641	साधनकी आवश्यकता	१०
▲ 901	नाम-जपकी महिमा	२
▲ 900	दुर्गतिसे बचो	२
▲1171	गीता पढ़नेके लाभ	२
▲ 902	आहार-शुद्धि	
▲1170	हमारा कर्तव्य	२
▲ 881	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	८
▲ 898	भगवन्नाम	५
▲1578	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१६
■1779	भलेका फल भला	४

गुजराती

कोड		मूल्य रु०
■ 799	श्रीरामचरितमानस-ग्रन्थाकार	१७०
■1939	वाल्मीकीयरामायण—सटीक-I	२००
■1940	वाल्मीकीयरामायण—सटीक-II	२००
■1943	गीता-माहात्म्य	३५
■1552	भागवत—सटीक (खण्ड-१)	१६०
■1553	भागवत—सटीक (खण्ड-२)	१६०
■1608	श्रीमद्भागवत-सुधासागर	२२०
■1326	सं० देवीभागवत	१७०
■1798	सं० महाभारत (खण्ड-१)	१८५
■1799	सं० महाभारत (खण्ड-२)	१८५
■1286	संक्षिप्त शिवपुराण	१५०
■1650	तत्त्वचिन्तामणि, ग्रन्थाकार	८०
■1630	साधन-सुधा-सिन्धु	१२५
■ 467	गीता-साधक-संजीवनी	१४०
■1313	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१२०
■ 785	श्रीरामचरितमानस-मझला, सटीक	८०
■ 878	श्रीरामचरितमानस—मूल मझला	५०
■ 879	,, —मूल गुटका	३५
■1637	सुन्दरकाण्ड-सटीक, मोटा टाइप	२०
■1365	नित्यकर्म-पूजाप्रकाश	४५
■1565	गीता-मोटे अक्षरवाली सजिल्द	३०
■1668	एकादशीव्रतका माहात्म्य	१५
■ 12	गीता-पदच्छेद	३५
■1315	गीता—सटीक, मोटा टाइप	२०
■1366	दुर्गासप्तशती—सटीक	२२
■1634	दुर्गासप्तशती—सजिल्द	३०
■1227	सचित्र आरतियाँ	१०
■ 936	गीता छोटी—सटीक	९
■1034	गीता छोटी—सजिल्द	१४
■1636	श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, मोटा टाइप	८
■1225	मोहन— (चित्रकथा)	१२
■1224	कन्हैया—(,,)	१२
■1228	नवदुर्गा—(,,)	१२
■1656	गीता-ताबीजी, मूल, सजिल्द	४
■ 948	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	६
■1085	भगवान् राम—	६
■ 950	सुन्दरकाण्ड—मूल गुटका	४
■1199	सुन्दरकाण्ड—मूल लघु आकार	३
■1823	विनय-पत्रिका	३०
■1226	अष्ट विनायक (चित्रकथा)	१२
■ 613	भक्त नरसिंह मेहता	१५
▲1518	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	१०
▲1486	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१४
▲1164	शीघ्र कल्याणके सोपान	१२
▲1146	श्रद्धा, विश्वास और प्रेम	१५
▲1144	व्यवहारमें परमार्थकी कला	१२
▲1062	नारीशिक्षा	१०
▲1129	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	१०
■1400	पिताकी सीख	१०
■1425	वीर बालिकाएँ	६
■1423	गुरु, माता-पिताके भक्त बालक	६
■1422	वीर बालक	८
■1424	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ	६
■1258	आदर्श सम्राट्	६
▲1128	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श	८
▲1061	साधन नवनीत	९
▲1520	कर्मयोगका तत्त्व (भाग—१)	१०
▲1264	मेरा अनुभव	१०
▲1046	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	१०
■1142	भक्त सरोज	७
▲1211	जीवनका कर्तव्य	१०
▲ 404	कल्याणकारी प्रवचन	७
▲ 877	अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति	१०
▲ 818	उपदेशप्रद कहानियाँ	१०
▲1265	आध्यात्मिक प्रवचन	८
▲1516	परमशान्तिका मार्ग (भाग-१)	१०
▲1504	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	१०
■1212	एक महात्माका प्रसाद	२०
▲1539	सत्संगकी मार्मिक बातें	१०
▲1457	प्रेममें विलक्षण एकता	१०
▲1655	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	१०
▲1503	भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें भावकी प्रधानता	८
▲1325	सब जग ईश्वररूप है	६
▲1052	इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति	१०
▲1878	जन्ममरणसे छुटकारा	८
■ 934	उपयोगी कहानियाँ	८
■1084	भक्त महिलारत्न	६
■ 875	भक्त सुधाकर	६
▲1067	दिव्य सुखकी सरिता	६
▲ 933	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१०
▲1295	जित देखूँ तित-तू	१०
▲ 943	गृहस्थमें कैसे रहें?	८
▲1260	तत्त्वज्ञान कैसे हो?	६
▲1263	साधन और साध्य	५
▲1294	भगवान् और उनकी भक्ति	७
▲ 932	अमूल्य समयका सदुपयोग	९
▲ 392	गीतामाधुर्य	१०
■1082	भक्त सप्तरत्न	५
■1087	प्रेमी भक्त	५
▲1077	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७
▲ 940	अमृत-बिन्दु	७
▲ 931	उद्धार कैसे हो?	७
▲ 894	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७
▲ 413	तात्त्विक प्रवचन	६
■ 895	भगवान् श्रीकृष्ण	६
▲1126	साधन-पथ	५
▲ 946	सत्संगका प्रसाद	५
▲ 942	जीवनका सत्य	६
▲1145	अमरताकी ओर	६
▲1066	भगवान्‌से अपनापन	६
■ 806	रामभक्त हनुमान्	६
▲1086	कल्याणकारी प्रवचन (भाग-२)	६
▲1287	सत्यकी खोज	६
▲1088	एकै साधे सब सधै	४
■1399	चोखी कहानियाँ	६
▲ 889	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	४
▲1141	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	५
▲ 939	मातृ-शक्तिका घोर अपमान	३
▲1047	आदर्श नारी सुशीला	४
▲1059	नल-दमयन्ती	५
▲1045	बालशिक्षा	५
▲1063	सत्संगकी विलक्षणता	५
▲1064	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग	४
▲1165	सहज साधना	५
▲1151	सत्संगमुक्ताहार	४
■1401	बालप्रश्नोत्तरी	४
▲ 893	सती सावित्री	३
▲1177	आवश्यक शिक्षा	४
■1867	स्वास्थ्य, सम्मान और सुख	४
▲ 804	गर्भपात उचित या अनुचित··	२
▲1049	आनन्दकी लहरें	३
■ 937	विष्णुसहस्त्रनाम	२
■1941	श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्र नामावली...	६
■1910	गजेन्द्रमोक्ष	२
■1909	आदित्यहृदयस्तोत्र	२
■1911	गोपालसहस्त्रनामस्तोत्र	५
▲1058	मनको वश करनेके उपाय एवं कल्याणकारी आचरण	२
▲1050	सच्चा सुख	२
▲1060	त्यागसे भगवत्प्राप्ति और गीता पढ़नेके लाभ	२
▲1840	एक संतकी वसीयत	२
■ 828	हनुमानचालीसा	२
▲ 844	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1055	हमारा कर्तव्य एवं व्यापार सुधारकी आवश्यकता	१.५०
▲1048	संत-महिमा	२
▲1310	धर्मके नामपर पाप	२
▲1179	दुर्गतिसे बचो	२
▲1178	सार-संग्रह, सत्संगके अमृत कण	२
▲1152	मुक्तिमें सबका अधिकार	१.५०
▲1207	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
▲1206	धर्म क्या है? भगवान् क्या है?	२
▲1500	सन्ध्या-गायत्रीका महत्त्व	२
▲1051	भगवान्‌की दया	१.५०
■1198	हनुमानचालीसा—लघु आकार	१
■1649	हनुमानचालीसा-अति लघु आकार	१
▲1054	प्रेमका सच्चा स्वरूप और सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 938	सर्वोच्चपदप्राप्तिके साधन	१
▲1056	चेतावनी एवं सामयिक...	१
▲1053	अवतारका सिद्धान्त और ईश्वर..	१.५०
▲1127	ध्यान और मानसिक पूजा	१.५०
▲1148	महापापसे बचो	२
▲1153	अलौकिक प्रेम	१.५०

तमिल

कोड		मूल्य रु०
■1426	साधक-संजीवनी (भाग-१)	१४०
■1427	साधक-संजीवनी (भाग-२)	७५
■1843	श्रीमद्भागवतमहापुराण—दशम स्कन्द, सटीक	१३०
■ 800	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१२०
■1807	वा०रा०-सटीक (खण्ड-१)	२००
■1903	वा०रा०-सटीक (खण्ड-२)	१५०
■1904	वा०रा०-सटीक (खण्ड-३)	१००
■1905	वा०रा०-सटीक (खण्ड-४)	१६०
■1906	वा०रा०-सटीक (खण्ड-५)	१२०
■1256	अध्यात्मरामायण	७०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोड		मूल्य रु०
■ 823	गीता—पदच्छेद	४५
■ 743	गीता—मूलम्	३०
■ 795	गीता—भाषा	८
■1918	गीता—छोटी	१०
■1606	श्रीमन्नारायणीयम्, सटीक	७०
■1605	भागवत एकादश-स्कन्ध—सटीक	५५
■1618	वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड वचनमु	४०
■1619	वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड मूलम्	३०
■1890	कंबरामायण सुन्दरकाण्डम्	२५
■1912	व्रत-कल्पत्रयम्	११
▲ 389	गीतामाधुर्य	१२
■1788	श्रीमुरुगनुतुदिमालै	१०
■1789	तिरुप्पावैविलक्कम्	१५
■ 365	गोसेवाके चमत्कार	१२
■1134	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१३
▲1007	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
▲ 553	गृहस्थमें कैसे रहें?	१२
▲ 850	संतवाणी—(भाग १)	८
▲ 952	" (" २)	८
▲ 953	" (" ३)	८
▲1353	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१२
▲1354	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	१०
■ 646	चोखी कहानियाँ	१०
■ 608	भक्तराज हनुमान्	९
■1246	भक्तचरित्रम्	१०
▲ 643	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	६
▲ 550	नाम-जपकी महिमा	२
▲1289	साधन-पथ	५
▲1480	भगवान्के स्वभावका रहस्य	९
▲1481	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	१०
▲1482	भक्तियोगका तत्त्व	१०
■ 793	गीता मूल-विष्णुसहस्रनाम	७
▲1117	देशकी वर्तमान दशा...	५
▲1110	अमृत-बिन्दु	८
▲ 655	एकै साधे सब सधै	७
▲1243	वास्तविक सुख	६
■ 741	महात्मा विदुर	६
▲ 536	गीता पढ़नेके लाभ, सत्यकी..	५
▲ 591	महापापसे बचो, संतानका कर्तव्य	४
▲ 609	सावित्री और सत्यवान्	३
▲ 644	आदर्श नारी सुशीला	५
▲ 568	शरणागति	५
▲ 805	मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲ 607	सबका कल्याण कैसे हो?	३
■ 794	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■ 127	उपयोगी कहानियाँ	१०
■ 600	हनुमानचालीसा	४
▲ 466	सत्संगकी सार बातें	३
▲ 499	नारद-भक्ति-सूत्र	२
■ 601	भगवान् श्रीकृष्ण	१०
■ 642	प्रेमी भक्त उद्धव	८
■ 647	कन्हैया (चित्रकथा)	१५
■ 648	श्रीकृष्ण—(" ")	१५
■ 649	गोपाल— (" ")	१५
■ 650	मोहन— (" ")	१५
▲ 742	गर्भपात उचित या....	२.५०
▲ 423	कर्मरहस्य	५
▲ 569	मूर्तिपूजा	२
▲ 551	आहारशुद्धि	२
▲ 645	नल-दमयन्ती	७
▲ 606	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	३
▲ 792	आवश्यक चेतावनी	४

कन्नड़

कोड		मूल्य रु०
■1112	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१००
■1369 / 1370	गीता-साधक-संजीवनी (दो खण्डोंमें सेट)	२००
■1728	सार्थ ज्ञानेश्वरी	१५०
■1739	श्रीमद्भागवतमहापुराण (सटीक) खण्ड-१	१५०
■1558	अध्यात्मरामायण	८५
■1740	श्रीमद्भागवतमहापुराण (सटीक) खण्ड-२	१५०
■1560	रामचरितमानस-सटीक	१३०
■1559	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-सुन्दरकाण्ड	७०
■ 726	गीता-पदच्छेद	३५
■ 718	गीता-तात्पर्यके साथ	२०
■1372	गीता-माहात्म्य	१०
■1723	श्रीभीष्मपितामह	१०
■1724	भक्त नरसिंह मेहता	१२
■1737	विदुरनीति	१५
■1726	प्रेमी भक्त	७
■1720	कृष्ण-भक्त उद्धव	४
▲1721	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	५
■1725	महात्मा विदुर	४
▲1722	बालकोंके कर्तव्य	५
■1816	गुरु और माता-पिताके....	८
■1375	ॐ नमः शिवाय	२०
■1357	नवदुर्गा	१२
▲1109	उपदेशप्रद कहानियाँ	१२
▲ 945	साधन नवनीत	१४
■ 724	उपयोगी कहानियाँ	१०
▲1499	नवधा भक्ति	५
▲1498	भगवत्कृपा	५
▲ 833	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	११
■1827	भागवतके प्रमुख पात्र	२०
▲ 834	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	१०
■1107	भगवान् श्रीकृष्ण	६
■1288	गीता—श्लोकार्थ	१०
▲ 716	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	८
■ 832	सुन्दरकाण्ड (सटीक)	९
■1819	कन्हैया (चित्रकथा)	१२
■1820	गोपाल (" ")	१०
■1821	मोहन (" ")	१२
■1822	श्रीकृष्ण (" ")	१२
■1825	श्रीराम (" ")	२०
■1824	रामलला (" ")	१७
■1826	राजाराम (" ")	१७
■1863	दशावतार (" ")	१२
■1864	प्रमुख ऋषि मुनि (" ")	२०
■1865	प्रमुख देवता (" ")	१२
■ 840	आदर्श भक्त	८
■ 841	भक्त सप्तरत्न	८
■ 843	दुर्गासप्तशती—मूल	१२
▲ 390	गीतामाधुर्य	९
▲1625	नारीशिक्षा	९
▲1626	अमृत-बिन्दु	९
▲ 720	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	८
▲1374	अमूल्य समयका सदुपयोग	८
▲ 128	गृहस्थमें कैसे रहें?	७
■ 661	गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	७
■ 721	भक्त बालक	७
■ 951	भक्त चन्द्रिका	८
■ 835	श्रीरामभक्त हनुमान्	७
■ 837	विष्णुसहस्रनाम—सटीक	७
■ 842	ललितासहस्रनामस्तोत्र	६
■1373	गजेन्द्रमोक्ष	२
■1106	ईशावास्योपनिषद्	३
▲ 717	सावित्री-सत्यवान् और आदर्श नारी सुशीला	५
▲ 723	नाम-जपकी महिमा और.....	३
▲ 725	भगवान्की दया एवं···	४
▲ 722	सत्यकी शरणसे मुक्ति, गीता पढ़नेके लाभ	३
▲ 325	कर्मरहस्य	४
▲ 597	महापापसे बचो	१.५०
▲ 719	बालशिक्षा	५
▲ 839	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	४
▲1882	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	६
▲1371	शरणागति	४
▲ 836	नल-दमयन्ती	४
▲ 838	गर्भपात उचित या अनुचित"	२
■1105	श्रीवाल्मीकि रामायणम्-संक्षिप्त	२
■ 737	विष्णुसहस्रनाम एवं सहस्रनामावली	४
■ 736	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
■ 738	हनुमत्-स्तोत्रावली	२
▲ 593	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	८
▲ 598	वास्तविक सुख	६
▲ 831	देशकी वर्तमान दशा तथा···	४

असमिया

कोड		मूल्य रु०
■ 714	गीता—भाषा-टीका-पॉकेट	१०
■1564	महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव	८
■1222	श्रीमद्भागवतमाहात्म्य	८
■ 825	नवदुर्गा	
▲624	गीतामाधुर्य	
▲1487	गृहस्थमें कैसे रहें?	१०
▲1715	आदर्श नारी सुशीला	४
■1323	श्रीहनुमानचालीसा	२
■1515	शिवचालीसा	२
▲ 703	गीता पढ़नेके लाभ	१
▲1924	सत्संगकी कुछ सार बातें	१

ओड़िआ

कोड		मूल्य रु०
■1551	संत जगन्नाथदासकृत भागवत	१८०
■1750	सन्त जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध	२२
■1777	सन्त जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध	८०
■1121	गीता-साधक-संजीवनी	१५०
■1100	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१००
■1473	साधन-सुधा-सिन्धु	१४०
■1463	रामचरितमानस—सटीक, मोटा टाइप	१७०
■1218	" मूल, मोटा टाइप	१००
■1831	श्रीमद्भागवतमहापुराण-I	१५०
■1832	श्रीमद्भागवतमहापुराण-II	१५०
■1298	गीता-दर्पण	५०
■1672	गीता-प्रबोधनी	३५
■ 815	गीता-श्लोकार्थसहित (सजिल्द)	३०
■1219	गीता-पञ्चरत्न	२५
■1702	गीता-ताबीजी	४
■1009	जय हनुमान् (चित्रकथा)	२०
■1250	ॐ नमः शिवाय (")	
■1010	अष्ट विनायक (")	१२
■1248	मोहन (")	१२
■1249	कन्हैया (")	१२
■ 863	नवदुर्गा (")	१२
■1494	बालचित्रमय चैतन्यलीला	७
■1157	गीता-सटीक, मोटे अक्षर	१८
■1465	गीता-अन्वयअर्थसहित पॉकेट साइज	२०
▲1511	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१३
■1476	दुर्गासप्तशती-सटीक	२०
▲1251	भवरोगकी रामबाण दवा	१०
▲1270	नित्ययोगकी प्राप्ति	६
▲1268	वास्तविक सुख	६
▲1209	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	१०
▲1464	अमृत-बिन्दु	८
▲1274	परमार्थ सूत्र-संग्रह	१०
▲1254	साधन नवनीत	
■1008	गीता—पॉकेट साइज	१०
▲ 754	गीतामाधुर्य	८
▲1208	आदर्श कहानियाँ	८
▲1139	कल्याणकारी प्रवचन	८
■1342	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	८
▲1205	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	८
▲1506	अमूल्य समयका सदुपयोग	१०
▲1272	निष्काम श्रद्धा और प्रेम	१०
■1204	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	६
▲1299	भगवान् और उनकी भक्ति	७
■ 854	भक्तराज हनुमान्	६
▲1004	तात्त्विक प्रवचन	६
▲1138	भगवान्से अपनापन	६
▲1187	आदर्श भ्रातृप्रेम	६
▲ 430	गृहस्थमें कैसे रहें?	५
▲1321	सब जग ईश्वररूप है	५
▲1269	आवश्यक शिक्षा	६
▲ 865	प्रार्थना	४
▲ 796	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲1130	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	५
■1154	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■1200	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	५
▲1174	आदर्श नारी सुशीला	४
▲1507	उद्धार कैसे हो	७
■ 541	गीता-मूल, विष्णुसहस्रनाम-सहित	४
▲1614	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७
■1644	गीता-दैनन्दिनी-पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण	५५
▲1635	प्रेरक कहानियाँ	६
▲1003	सत्संगमुक्ताहार	५
▲1512	साधनके दो प्रधान सूत्र	४
▲ 817	कर्मरहस्य	५
▲1078	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	५
▲1079	बालशिक्षा	५
▲1163	बालकोंके कर्तव्य	
▲1252	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३
▲ 757	शरणागति	५
▲1186	श्रीभगवन्नाम	
▲1267	सहज साधना	५
▲1005	मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲1203	नल-दमयन्ती	४
▲1253	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य	
▲1220	सावित्री और सत्यवान्	२
▲ 826	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 798	गुरुतत्त्व	२
■ 856	हनुमानचालीसा	२
■1661	" " (लघु आकार)	१
▲ 797	सन्तानका कर्तव्य	२
■1036	गीता—मूल, लघु आकार	२
■1509	रामरक्षास्तोत्र	२
■1070	आदित्यहृदयस्तोत्र	२
■1068	गजेन्द्रमोक्ष	२
■1069	नारायणकवच	२
■1775	अमोघ शिवकवच	२
▲1089	धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं?	२
▲1039	भगवान्की दया एवं भगवत्कृपा	२
▲1090	प्रेमका सच्चा स्वरूप	२
▲1091	हमारा कर्तव्य	२
▲1040	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1011	आनन्दकी लहरें	२
▲ 852	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
▲1038	संत-महिमा	२
▲1041	ब्रह्मचर्य एवं मनको वश करनेके कुछ उपाय	२
▲1221	आदर्श देवियाँ	३
■1201	महात्मा विदुर	३
■1202	प्रेमी भक्त उद्धव	
■1173	भक्त चन्द्रिका	६

उर्दू

कोड		मूल्य रु०
■1446	गीता—उर्दू	१०

तेलुगु

कोड		मूल्य रु०
■1573	श्रीमद्भागवत-मूल मोटा टाइप	१५०
■1858	श्रीमद्आन्ध्रमहाभागवतमु-दशम स्कन्धमु—सटीक	१४०
■1738	श्रीमद्भागवत संग्रहमु	९०
■1698	श्रीमन्नारायणीयम्—श्लोकार्थसहितम्	४५
■1699	श्रीमहाभागवत मकरंदालु	१८
■1767	श्रीपोतनभागवतमधुरिमलु	५०
■1632	महाभारत विराटपर्व	७०
■1352	रामचरितमानस-सटीक,ग्रन्थाकार	१६०
■1419	रामचरितमानस—केवल भाषा	९०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोड		मूल्य रु०
■ 975	संक्षिप्त शिवपुराण	१५०
■ 981	श्रीमद्वाल्मीकीय रा०वचमु	२३०
■ 979	सं०महाभारतमु प्रथम खण्डमु	१५०
■ 980	,, ,, द्वितीय खण्डमु	१५०
■ 1557	वाल्मीकिरामायण-(भाग १)	१३०
■ 1622	,, ,, (भाग-२)	१५०
■ 1745	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (भाग-३)	१५०
■ 1429	श्रीमद्वाल्मीकिरामायण सुन्दरकांड (तात्पर्यसहित)	७५
■ 1477	,, ,, (सामान्य)	७५
■ 1714	गीता-दैनन्दिनी-पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण	५५
■ 1172	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१००
■ 845	अध्यात्मरामायण	१००
■ 772	गीता-पदच्छेद-अन्वयसहित	३५
■ 1921	नित्यकर्म-पूजाप्रकाश	९०
■ 914	स्तोत्ररत्नावली	२२
■ 1684	श्रीगणेशस्तोत्रावली	३
■ 1685	श्रीदेवीस्तोत्रावली	३
■ 1804	श्रीरामस्तोत्रावलि	४
■ 1806	श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावलि	४
■ 1639	बालरामायण-लघु आकार	१
■ 1466	वाल्मीकीयरामायण-सुन्दरकाण्ड, मूल, पुस्तकाकार	४०
■ 924	,, ,, मूल गुटका	२५
■ 1532	,, ,, वचनमु	४०
■ 1026	पंच सूक्तमुलु-रुद्रमु	७
■ 1758	शिवपंचायतनपूजा	६
■ 1763	श्रीललितासहस्रनाम, त्रिशती एवं खड्गमालासहितम्	१२
■ 771	गीता—तात्पर्यसहित	२५
■ 910	विवेकचूडामणि	२०
▲ 904	नारद-भक्तिसूत्र मुलु (प्रेमदर्शन-)	१४
■ 959	कन्हैया (चित्रकथा)	१०
■ 960	गोपाल (,,)	१०
■ 961	मोहन (,,)	१२
■ 962	श्रीकृष्ण (,,)	१०
■ 963	रामलला (,,)	२०
■ 964	राजा राम (,,)	२०
■ 966	भगवान् सूर्य (,,)	२०

कोड		मूल्य रु०
■ 965	दशावतार (चित्रकथा)	१२
■ 1686	अष्टविनायक (,,)	१२
■ 967	रामायणके प्रमुख पात्र (,,)	२०
■ 887	जय हनुमान् (,,)	२०
■ 968	श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र (,,)	२०
■ 1301	नवदुर्गा (,,)	१२
■ 1859	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र (,,)	१७
■ 970	प्रमुख देवियाँ (,,)	१०
■ 971	बालचित्रमय श्रीचैतन्यलीला (,,)	८
■ 1753	भागवतकी प्रमुख कथाएँ (,,)	१७
■ 909	दुर्गासप्तशती—मूलम्	१५
■ 1029	भजन-संकीर्तनावली	२०
■ 1309	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१५
■ 1390	गीता तात्पर्य-पॉकेट, मोटा टाइप	१२
■ 691	श्रीभीष्मपितामह	१२
▲ 1028	गीतामाधुर्य	१४
▲ 915	उपदेशप्रद कहानियाँ	१०
▲ 1572	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७
▲ 905	आदर्श दाम्पत्य-जीवनमु	१०
▲ 1757	आदर्श भातृप्रेम	६
■ 1526	गीता-मूल मोटे अक्षर, पॉकेट	८
■ 1570	गीता-ताबीजी	५
■ 1031	गीता—छोटी, पॉकेट साइज	९
■ 1571	गीता-लघु आकार	२
■ 929	महाभक्तुलु	८
■ 919	मंचि कथलु (उपयोगी कहानियाँ)	८
■ 1502	श्रीनामरामायणम् एवं हनुमान-चालीसा (लघु आकार)	१
▲ 766	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	८
▲ 768	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१०
▲ 733	गृहस्थमें कैसे रहें ?	८
■ 1879	परलोक और पुनर्जन्म...	१८
■ 908	नारायणीयम्—मूलम्	१५
■ 682	भक्त पञ्चरत्न	७
■ 687	आदर्श भक्त	८
■ 767	भक्तराज हनुमान्	७
■ 917	भक्त चन्द्रिका	८
■ 918	भक्त सप्तरत्न	१०
■ 641	भगवान् श्रीकृष्ण	६
■ 663	गीता भाषा	८
■ 662	गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	५

कोड		मूल्य रु०
■ 753	सुन्दरकाण्ड—सटीक	६
■ 685	भक्त बालक	५
■ 977	दयालु परोपकारी बालक-बालिकाएँ	१०
■ 976	गुरु माता-पिताके भक्त बालक-रंगीन	१०
■ 978	सच्चे ईमानदार बालक-रंगीन	१०
■ 692	चोखी कहानियाँ	६
▲ 1752	आदर्श कहानियाँ	७
▲ 1802	प्रेरक कहानियाँ	७
■ 1803	श्रीमद्भागवत पंचरत्नमुलु	२२
■ 1751	महात्मा विदुर	५
▲ 920	परमार्थ-पत्रावली	६
■ 930	दत्तात्रेय-वज्रकवच	४
■ 846	ईशावास्योपनिषद्	३
■ 686	प्रेमी भक्त उद्धव	४
■ 1023	श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्-सटीक	४
■ 1760	द्वादश ज्योतिर्लिंग महिमा	१०
■ 1761	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	१०
■ 973	शिवस्तोत्रावली	४
■ 972	शतकत्रयम्	६
■ 1025	स्तोत्रकदम्बम्	५
■ 674	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■ 675	सं० रामायणम्, रामरक्षास्तोत्रम्	३
▲ 906	भगन्तुडे आत्मेयुगु	४
■ 676	हनुमानचालीसा	४
■ 801	ललितासहस्रनाम	५
■ 974	,, ,, (लघु आकार)	३
■ 1024	श्रीनारायणकवचमु तात्पर्यसहितमु	३
■ 1030	सन्ध्योपासनविधि	१५
▲ 927	भक्तियोगतत्त्वमु	१२
■ 688	भक्तराज ध्रुव	३
■ 670	विष्णुसहस्रनाम—मूल	२
■ 911	,, -मूल (लघु आकार)	१
■ 1527	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् नामावलिसहितम्	५
■ 912	रामरक्षास्तोत्र, सटीक	२
■ 677	गजेन्द्रमोक्षम्	२
■ 1531	गीता-विष्णुसहस्रनाम-मोटा	१०
■ 732	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
▲ 923	भगवन्तु दयालु न्यायमूर्ति	२
■ 1762	भजगोविंदम् मोहमुद्गर	५
▲ 1756	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	८

कोड		मूल्य रु०
■ 1764	गोविन्दनामावलि और भजगोविन्दम्-लघु आकार	१
■ 1857	प्रश्नोत्तरी मणिरत्नमाला	५
▲ 760	महत्त्वपूर्ण शिक्षा	६
▲ 913	भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट साधनमु-नाम स्मरणमें	१.५०
▲ 761	एकै साधे सब सधै	६
▲ 922	सर्वोत्तम साधन	५
▲ 759	शरणागति एवं मुकुन्दमाला	५
▲ 752	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 734	आहारशुद्धि, मूर्तिपूजा	३
▲ 664	सावित्री-सत्यवान्	३
▲ 665	आदर्श नारी सुशीला	५
▲ 921	नवधा भक्ति	५
▲ 1759	वासुदेव सर्वम्	४
▲ 666	अमूल्य समयका सदुपयोग	९
▲ 672	सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 671	नामजपकी महिमा	१
▲ 678	सत्संगकी कुछ सार बातें	१
▲ 731	महापापसे बचो	२
▲ 925	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२
▲ 1547	किसान और गाय	२
▲ 758	देशकी वर्तमान दशा तथा...	४
▲ 916	नल-दमयन्ती	६
▲ 689	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	५
▲ 928	भगवान्के स्वभावका रहस्य	१०
▲ 690	बालशिक्षा	५
▲ 907	प्रेमभक्ति-प्रकाशिका	२
▲ 673	भगवान्का हेतुरहित सौहार्द	१.५०
▲ 926	सन्तानका कर्तव्य	२
■ 1765	भलेका फल भला	३

मलयालम

■ 1916	गीता—पॉकेट साइज, अजिल्द	९
■ 739	गीता-विष्णुसहस्रनाम, मूल	६
■ 740	विष्णुसहस्रनाम—मूल	२

पंजाबी

■ 1697	गीता प्रबोधनी	३०
▲ 1616	गृहस्थमें कैसे रहें ?	७
▲ 1894	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७

Our English Publications

■ 1318	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text, Transliteration & English Translation)	200
■ 1617	Śrī Rāmacaritamānasa A Romanized Edition with English Translation	100
■ 456	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text and English Translation)	140
■ 1550	Sunder Kand (Roman)	15
■ 452 / 453	Śrīmad Vālmīki Rāmāyaṇa (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 2 volumes	400
■ 564 / 565	Śrīmad Bhāgavata (With Sanskrit Text and English Translation) Set	300
■ 1080 / 1081	Śrīmad Bhagavadgītā Sādhaka-Sañjīvanī (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Set of 2 Volumes	140
■ 457	Śrīmad Bhagavadgītā Tattva-Vivecanī (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary	100
■ 455	Bhagavadgītā (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size	7
■ 534	,, (Bound)	12
■ 1658	Śrīmad Bhagavadgītā (Sanskrit text with hindi and English Translation)	15
■ 824	Songs from Bhartṛhari	3
▲ 783	Abortion Right or Wrong You Decide	2
■ 1491	Mohana (Picture Story)	12
■ 1643	Ramaraksastotram (With Sanskrit Text, English Translation)	2
■ 494	The Immanence of God (By Madan Mohan Malaviya)	3
■ 1528	Hanumāna Cālīsā (Roman) (Pocket Size)	4
■ 1638	,, Small size	2
■ 1492	Rāma Lalā (Picture Story)	20
■ 1445	Virtuous Children	20
■ 1545	Brave and Honest Children	20

By Jayadayal Goyandka

▲ 477	Gems of Truth [Vol. I]	8
▲ 478	,, ,, [Vol. II]	8
▲ 479	Sure Steps to God-Realization	14
▲ 481	Way to Divine Bliss	6
▲ 482	What is Dharma? What is God?	2
▲ 480	Instructive Eleven Stories	6
▲ 1285	Moral Stories	15
▲ 1284	Some Ideal Characters of Rāmāyaṇa	10
▲ 1245	Some Exemplary Characters of the Mahābhārata	10
▲ 694	Dialogue with the Lord During Meditation	3
▲ 1125	Five Divine Abodes	4
▲ 520	Secret of Jñānayoga	15
▲ 521	,, ,, Premayoga	10
▲ 522	,, ,, Karmayoga	12
▲ 523	,, ,, Bhaktiyoga	15
▲ 658	,, ,, Gītā	6
▲ 1013	Gems of Satsaṅga	2
▲ 1501	Real Love	5

By Hanuman Prasad Poddar

▲ 484	Look Beyond the Veil	8
▲ 622	How to Attain Eternal Happiness ?	10
▲ 483	Turn to God	10
▲ 485	Path to Divinity	10
▲ 847	Gopis' Love for Śrī Kṛṣṇa	4
▲ 620	The Divine Name and Its Practice	3
▲ 486	Wavelets of Bliss & the Divine Message	

By Swami Ramsukhdas

▲ 1470	For Salvation of Mankind	12
▲ 619	Ease in God-Realization	6
▲ 471	Benedictory Discourses	8
▲ 473	Art of Living	7
▲ 487	Gītā Mādhurya	10
▲ 1101	The Drops of Nectar (Amṛta Bindu)	6
▲ 1523	Is Salvation Not Possible without a Guru ?	5
▲ 472	How to Lead A Household Life	6
▲ 570	Let Us Know the Truth	5
▲ 638	Sahaja Sādhanā	6
▲ 621	Invaluable Advice	3
▲ 474	Be Good	12
▲ 497	Truthfulness of Life	2
▲ 669	The Divine Name	3
▲ 476	How to be Self-Reliant	
▲ 552	Way to Attain the Supreme Bliss	1

Special Editions

■ 1411	Gītā Roman (Sanskrit text, Transliteration & English Translation) Book Size	25
■ 1584	,, (Pocket Size)	15
■ 1407	The Drops of Nectar (By Swami Ramsukhdas)	12
■ 1406	Gītā Mādhurya(,,)	15
■ 1438	Discovery of Truth and Immortality (By Swami Ramsukhdas)	20
■ 1413	All is God (,,)	12
■ 1414	The Story of Mīrā Bāī (Bankey Behari)	15

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरि: ॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याण-पथ (आत्मोद्धारके सुमार्ग)-पर अग्रसरित करनेकी प्रेरणा देना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम—भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि प्रेरणाप्रद एवं कल्याण-मार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

१-'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके मध्यमें बननेवाले ग्राहकोंको जनवरीका विशेषाङ्क एवं अन्य उपलब्ध मासिक अङ्क दिये जाते हैं।

२-जनवरीका विशेषाङ्क ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। वर्षपर्यन्त मासिक अङ्क ग्राहकोंको उसी शुल्क-राशिमें भेजे जाते हैं।

३-**एकवर्षीय सदस्यता-शुल्क**—भारतमें रु० १८० (सजिल्द रु० २००) (विदेशमें हवाई डाकसे भेजनेके लिये US$ 40 (चेक कलेक्शनके लिये US$ 6 अतिरिक्त)।

पंचवर्षीय शुल्क—भारतमें रु० ९०० (सजिल्द रु० १०००) विदेशमें हवाई डाकसे भेजनेके लिये US$ 200 (चेक कलेक्शनके लिये US$ 6 अतिरिक्त)। विदेशका शुल्क वर्तमानमें रु० ५५ प्रतिडालरके हिसाबसे भारतमें भी देय।

डाकखर्च आदिमें अप्रत्याशित वृद्धि होनेपर पंचवर्षीय ग्राहकोंद्वारा अतिरिक्त राशि भी देय हो सकती है।

४-दिसम्बर मासके अन्ततक सदस्यता-शुल्क प्राप्त न होनेपर आगामी वर्षका विशेषाङ्क वी०पी०पी०से भेजा जाता है। इसपर डाकशुल्कका रु० १० अतिरिक्त देय होता है।

५-जनवरीका विशेषाङ्क रजिस्ट्री/वी०पी०पी०से तथा फरवरीसे दिसम्बरतकके अङ्क प्रतिमासके प्रथम सप्ताहतक साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। खोये हुए मासिक अङ्कोंकी सूचना आनेपर उपलब्ध होनेकी स्थितिमें पुनः निःशुल्क भेजनेका प्रयास किया जाता है।

६-पता बदलनेकी सूचनामें **ग्राहक-संख्या, पिनकोडसहित पुराना और नया पता पढ़नेयोग्य अक्षरोंमें लिखना चाहिये।**

७-पत्र-व्यवहारमें 'ग्राहक-संख्या' अवश्य लिखी जानी चाहिये।

८-**'कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी स्थितिमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)**

गीताप्रेसके दो महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

महाभारत—सटीक [छः खण्डोंमें सेट] (कोड 728)—महाभारत हिन्दू-संस्कृतिका महान् ग्रन्थ है। इसे पंचम वेद भी कहा जाता है। यह भारतीय धर्म-दर्शनके गूढ़ रहस्योंका अनुपम भण्डार है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें भगवान् श्रीकृष्णके गुण-गौरवका गान, उपनिषदोंका सार तथा इतिहास-पुराणोंका आशय है। मूल्य रु० १५६०

मानस-पीयूष [सात खण्डोंमें सेट] (कोड 86)—महात्मा श्रीअञ्जनीनन्दन शरणजी द्वारा सम्पादित यह ग्रन्थ श्रीरामचरितमानसकी सबसे बृहत् टीका है। यह महान् ग्रन्थ ख्यातिलब्ध रामायणियों, उत्कृष्ट विचारकों, तपोनिष्ठ महात्माओं एवं आधुनिक मानसविज्ञोंकी एक साथ व्याख्याओंका अनुपम संग्रह है। मूल्य रु० १४००

(कोड 1935) मानस-पीयूष-परिशिष्ट मूल्य रु० ७५ नवीन-प्रकाशन भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र० ति० २०-१२-२०१२
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2011-2013
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2011-2013

'स वै भागवतोत्तमः'

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः। भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥
ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च। प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥
अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते। न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥
गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति। विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः॥
देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः। संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः॥
न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः। वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः॥
न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा। सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः॥

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥
विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः॥

[योगीश्वर हरिने राजर्षि निमिसे परमभागवतोंका लक्षण बताते हुए कहा—राजन्!] आत्मस्वरूप भगवान् समस्त प्राणियोंमें आत्मारूपसे—नियन्तारूपसे स्थित हैं। जो कहीं भी न्यूनाधिकता न देखकर सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्ताको ही देखता है और साथ ही समस्त प्राणी और समस्त पदार्थ आत्मस्वरूप भगवान्में ही आधेयरूपसे अथवा अध्यस्तरूपसे स्थित हैं, अर्थात् वास्तवमें भगवत्स्वरूप ही हैं—इस प्रकारका जिसका अनुभव है, ऐसी जिसकी सिद्ध दृष्टि है, उसे भगवान्का परमप्रेमी उत्तम भागवत समझना चाहिये। जो भगवान्से प्रेम, उनके भक्तोंसे मित्रता, दुःखी और अज्ञानियोंपर कृपा तथा भगवान्से द्वेष करनेवालोंकी उपेक्षा करता है, वह मध्यम कोटिका भागवत है और जो भगवान्के अर्चा-विग्रह—मूर्ति आदिकी पूजा तो श्रद्धासे करता है, परंतु भगवान्के भक्तों या दूसरे लोगोंकी विशेष सेवा-शुश्रूषा नहीं करता, वह साधारण श्रेणीका भगवद्भक्त है। जो श्रोत्र-नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा शब्द-रूप आदि विषयोंका ग्रहण तो करता है, परंतु अपनी इच्छाके प्रतिकूल विषयोंसे द्वेष नहीं करता और अनुकूल विषयोंके मिलनेपर हर्षित नहीं होता—उसकी यह दृष्टि बनी रहती है कि यह सब हमारे भगवान्की माया है—वह पुरुष उत्तम भागवत है। संसारके धर्म हैं—जन्म-मृत्यु, भूख-प्यास, श्रम-कष्ट, भय और तृष्णा। ये क्रमशः शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्राप्त होते ही रहते हैं। जो पुरुष भगवान्की स्मृतिमें इतना तन्मय रहता है कि इनके बार-बार होते-जाते रहनेपर भी उनसे मोहित नहीं होता, पराभूत नहीं होता, वह उत्तम भागवत है। जिसके मनमें विषय-भोगकी इच्छा, कर्म-प्रवृत्ति और उनके बीज वासनाओंका उदय नहीं होता और जो एकमात्र भगवान् वासुदेवमें ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्भक्त है। ××जो धन-सम्पत्ति अथवा शरीर आदिमें 'यह अपना है और यह पराया'—इस प्रकारका भेद-भाव नहीं रखता, समस्त पदार्थोंमें समस्वरूप परमात्माको देखता रहता है, समभाव रखता है तथा किसी भी घटना अथवा संकल्पसे विक्षिप्त न होकर शान्त रहता है, वह भगवान्का उत्तम भक्त है। राजन्! बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि भी अपने अन्तःकरणको भगवन्मय बनाते हुए जिन्हें ढूँढ़ते रहते हैं—भगवान्के ऐसे चरणकमलोंसे आधे क्षण, आधे पलके लिये भी जो नहीं हटता, निरन्तर उन चरणोंकी सन्निधि और सेवामें ही संलग्न रहता है, यहाँतक कि कोई स्वयं उसे त्रिभुवनकी राज्यलक्ष्मी दे तो भी वह भगवत्स्मृतिका तार नहीं तोड़ता, उस राज्यलक्ष्मीकी ओर ध्यान ही नहीं देता, वही पुरुष वास्तवमें भगवद्भक्त वैष्णवोंमें अग्रगण्य है, सबसे श्रेष्ठ है। ××विवशतासे नामोच्चारण करनेपर भी सम्पूर्ण अघराशिको नष्ट कर देनेवाले स्वयं भगवान् श्रीहरि जिसके हृदयको क्षणभरके लिये भी नहीं छोड़ते हैं; क्योंकि उसने प्रेमकी रस्सीसे उनके चरणकमलोंको बाँध रखा है, वास्तवमें ऐसा पुरुष ही भगवान्के भक्तोंमें प्रधान है। [श्रीमद्भागवत]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar